

वैदिक दर्शन

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

अध्ययन की पद्धति

वेदका अध्ययन करना वैदिक धर्मियोंके लिये अत्यंत आवश्यक है। वेदका अध्ययन दो रीतियोंसे होना संभव है और आवश्यक भी है।

(१) एक देवतानुसार मंत्रोंका अध्ययन । और

(२) दूसरा ऋषिके अनुसार मंत्रोंका अध्ययन ।

देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेकी सुविधा करनेके उद्देश्यसे " देवत-संहिता " बनायी है और देवतानुसार मंत्रोंके अनुवाद प्रकाशित किये जा रहे हैं। इस समयतक " मरुदेवता " के मंत्रोंका अनुवाद प्रकाशित हुआ है और " अधिना " देवताके मंत्रोंका अनुवाद छप रहा है। आगे अन्यान्य देवताओंके मंत्रोंके अनुवाद इसीतरह प्रकाशित किये जायेंगे।

दैवत और आप्येय मंत्रसंग्रह

ऋषिके क्रमानुसार मंत्रोंका संग्रह ऋग्वेदमें है। अतः ऋग्वेद ' संहिता ' ' आप्येय संहिता ' ही है। केवल नवम मण्डलमें सोमदेवताके मन्त्र ऋषिक्रममें संमिलित होना आवश्यक है।

यह पुस्तक ' आप्येय संहिता ' का प्रथम भाग है ।

इसमें मधुच्छन्दा ऋषिके मंत्रोंका अनुवाद है। इसीतरह आगे अन्यान्य ऋषियोंके मंत्रोंका अनुवाद प्रसिद्ध किया जायगा। इससे एक एक ऋषिके मंत्रोंका भाव पाठक सहज हीसे समझ जायेंगे।

मन्त्रोंके द्रष्टा

ऋषि ' मंत्रोंके द्रष्टा ' होते हैं। इसलिये ' ...ऋषिका दर्शन ' ऐसा इसका नाम रखा है। इस पुस्तकका नाम ' मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन ' है। आगेका ग्रन्थ ' मेधातिथि ऋषिका दर्शन ' इस नामसे प्रकाशित किया जायगा और इसी क्रमानुसार आगे ऋग्वेदका अनुवाद क्रमपूर्वक प्रकाशित होता रहेगा।

यथार्थ ज्ञान

' आप्येय-संहिता ' और ' दैवत-संहिता ' इन दोनों क्रमोंके अनुसार वेदका अध्ययन हुआ तो यथार्थ रीतिसे वेदाध्ययन हुआ ऐसा समझना योग्य है। आज्ञा है कि यह प्रयत्न वेदकी विद्या वैदिक धर्मियोंके अन्दर प्रसृत करनेके लिये सहायक होगा और वेदका ज्ञान फैलानेके लिये हममें योग्य सहायता होगी।

निवेदनकर्ता

श्रीपाद दामोदर मानवन्देकर

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल

श्रीव (जि० मातारा)

नीरोग, मुट्ठ और दीर्घायु होगा। आयुर्वेदमें ऋतुचर्या लिखी है, वह यहां देखनी योग्य है। मनुष्यके जीवनमें भी यावत्, कौमार, तारुण्य, वार्धक्य, जीर्ण, क्षीण ऐसे अवस्था के ऋतु होते हैं। इनके अनुसार मनुष्यको अपनी दिनचर्या रखनी योग्य है। इससे नीरोगिता सिद्ध होगी। प्रतिदिन उपवास, सूर्योदय, मध्याह्न, उत्तराह्न, सायंकाल, रात्रि ये ऋतु होते हैं। इनके अनुसार दैनंदिनका व्यवहार करना योग्य है। इस तरह ऋतुसंधियोंमें जो परिवर्तन होते हैं, उस कारण नाना रोग उत्पन्न होते हैं, उस समय योग्य उपचार करनेसे रोगोंका शमन होता है। ऋतुके अनुसार विचारपूर्वक व्रतन, याजन, तथा अन्यान्य व्यवहार करनेसे मनुष्यका स्वास्थ्य होगा है। ऋतुके अनुकूल दिनचर्या रखनेवाला पुनः आदर्श पुनः है, इसीलिये वह ऋतुके नियम है।

देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा (निरुक्त) देव दान देता है दान देनेसे प्रकाशता भी है। अग्नि प्रकाशका दान करता धनदाता है, 'द्रविणो-दा' अर्थात् धनका दाता अश्विका नाम है। इसलिये यह जो अपने पास इतना रखता है वह अनुयायियोंको दान करनेके लिये ही निरुक्त है। अग्नि धन प्राप्त करता है और उसका दान भी करता है। यही उसका महत्त्व है। मानवोंको भी धन प्राप्त करना उसका दान करना उचित है।

जो अग्रभागमें रहता है, प्रथमसे सत्रका हित है, शुभ कर्मोंका प्रवर्तन करता है, ऋतुके अनुसार धन करता है, देवोंको बुलाता है, अपने पास धनका संग्रह करता है, उसका जो दान करता है, उसीका वर्णन करना योग्य है।

अर्थात् जो पीछे रहता है, सत्रकर्मोंका प्रवर्तन नहीं करता

लेकर मुखमें प्रविष्ट हुआ है। अर्थात् वाणी अग्निका रूप है। यह वाणी ब्राह्मणोंमें रहती है, इसलिये ब्राह्मण अग्निके रूप हैं। उन ब्राह्मणोंमेंसे 'पुरोहित, ऋत्विज्, होता' के तीन नाम इस मन्त्रमें कहे हैं। इसी सूक्तमें 'कवि' नाम अग्निके लिये आया है (सं. ५)। यह कवि भी वाणी का ही प्रभावी रूप है। इस मन्त्रका 'रत्न-धा-तम' पद भी धनवान् का वाचक है। धनवान् मानव भी अग्नि-रूप है। यह पद यहाँ यजमानका वाचक है। आगे यज-मानको अनेक मंत्रोंमें धनवान् कहा है। यजमान धनधान्य संग्रह होनेसे ही वह उस धनसे तथा धान्यसे यज्ञ करता है। अतः 'रत्नधातम' पद धनी लोगोंका वाचक मानना योग्य है। इस तरह समाजमें कौन अग्नि हैं, इसका ज्ञान हो सकता है।

'रत्न-धा-तम' पद अग्निका भी वाचक है, क्योंकि भूमि-तत्त्व अग्निकी उष्णतासे ही तो नाना प्रकारके रत्न हीरे, त्वाल, पहे आदि बनते हैं। भूमिगत उष्णता न होगी तो ईं रत्न नहीं बनेगा। इस तरह अग्निका रत्नोंकी उत्पत्तिके लिये सम्बन्ध है। इस मन्त्रके सब पद अग्निवाचक तो हैं ही। ऐसे होते हुए मानाजिक मानवरूप अग्निके भी वाचक हैं।

'तत् पव अग्निः' (वा० य० ३२।१) वह ब्रह्म ही अग्नि है। यह जो अग्नि जलता है वह ब्रह्मका प्रकट रूप है। एकै सत् विभ्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यम०। (अ. १।१६।४६) एक ही मन्त्र है, उसका वर्णन ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे करते हैं, उसीको अग्नि, यम, इन्द्र आदि कहते हैं। इस तरह यह 'अग्नि' ब्रह्मण, आत्माका, परब्रह्मका, परमानाका अथवा परमेश्वरका रूप है। 'अग्निं पश्चिमा आरुयं' (अथर्व १०।७।३३) अग्नि परमेश्वरका सुगु है। इस तरह अग्निकी परमात्माका रूप कहा है। परमात्माका स्वरूप समझकर ही अग्निकी ओर देवता आदि।

यह परमानाका स्वरूप अग्नि है, यह उपानियोंकी अन्न-भाग्यमें-अन्निक सुविचार विहितक ले जाता है, सामने रखकर दही तैल बरका है, हस्तक यज्ञकी विधि करता है, ऋत्विजोंके अनुष्ठान संपत्ती योग्यता करता है, दान देता है, सब देवताओंको लाता है। सुविधि लाता समस्त देवताओं को अपने आँगन ध्यात करता है। यह परमाभिरुचक

वर्णन इसी मन्त्रमें है। व्यक्तिके शरीरमें रहनेवाले जीव आत्माका भी यही वर्णन अंगरूपसे-थोड़े संक्षेपसे हो जाता है।

अग्निः पूर्वोभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरत ।

स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

अन्वयः- पूर्वोभिः ऋषिभिः उत नूतनैः ईड्यः अग्निः (वक्षति) । सः देवान् इह वा वक्षति ॥ २ ॥

अर्थ- प्राचीन ऋषियोंद्वारा तथा नवीन ऋषियों द्वारा स्तुति करने योग्य यह अग्निदेव है। वह अन्य देवोंको यहाँ ले जाता है।

अग्निदेव तथा अन्नगी जिसके गुण पूर्व मन्त्रमें कहे गये हैं, वह प्राचीन तथा नवीन ज्ञानियों द्वारा प्रशंसाके योग्य है। सर्व कालोंमें उक्त गुणोंवाला प्रशंसित होता है, क्योंकि वह सब देवोंको अपने साथ लाता है और अपना निवास-स्थान देवतामय करता है। परमात्मा सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वायु, आदि देवताओंके साथ ही इस विश्वमें विराजता है। जीवाना इस देहमें देवतांग नैत्र, कर्ण, नासिका श्रवण, मुख, आदि अवयवोंके साथ रहता है, यह भी गर्भमें अपने साथ इन देवताओंको लाता है और यथास्थान रगता है। इस शरीरमें यह जीव दन्तान्धानरिक यज्ञ करता है। देह इसका कार्यभार है और ३३ देवताओंके अंग इसके साथ रहते हैं। राष्ट्रमें अग्नि जैमा तेजस्वी राजा अपने साथ नाना प्रकारके कोहदेदारोंको, मिशनोंको, दुर्गोंको, पत्नीयोंको और कर्मदारोंको रखता है और इनके द्वारा राज्य-मानव चलाता है। ज्ञानी जन अनेक दिग्गुणधारियोंको अपने साथ लाता और यहाँका संसार सुवन्धन करता है। इस तरह देवोंको साथ लानेका सर्वप्र कर्ता ही मनुष्य है। जो अपने साथ देवोंको लाता और रखता है, वही प्राचीनों और धर्माचारियों द्वारा प्रशंसित होता है।

यहाँ प्राचीनों और धर्माचारियोंद्वारा समस्त देवता प्रशंसित होनेकी बात कही है। यह कहे सम्भव ही है। देवोंके अनुष्ठान किसी एक मन्त्रमें प्रशंसित हो सकता है, परन्तु वह प्रशंसा मात्र नहीं है। जिसकी प्रशंसा प्राचीन और वर्तमान, दूरी और करीबी द्वारा भी होती है, वही सर्वोत्तम प्रशंसा है। यह प्रशंसा प्रशंसित समझना चाहिए।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे-दिवे ।

यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

अन्वयः— अग्निना रयिं, दिवे दिवे पोषं, वीरवत्तमं यशसं अश्नवत् ॥

अर्थ— अग्निसे धन, प्रतिदिन पोषण और वीरता युक्त यश प्राप्त होता है ।

परमात्मासे विश्वमें और जीवात्मासे व्यक्तिके शरीरमें शोभा, पुष्टि और यशकी प्राप्ति होती है, यह सबोंके ध्यानमें आसकता है । धन, रयि, ये पद धन्यता, शोभा आदिके वाचक पद हैं । शरीरमें शोभा तो जीवके रहनेसे ही है, पोषण भी जीवके रहनेतक ही होता है और वीरता भी जीवके रहनेतक ही रहती तथा बढ़ती है । शरीरमें जीवात्मा न रहा तो न शोभा, न पोषण और नाही वीरता ही होगी ।

समाजमें पुरोहित और कवि राष्ट्रके जीवनरूप हैं । वे ही समाजमें तथा राष्ट्रमें नवचैतन्य निर्माण करते हैं । समाज में धन, शोभा, पुष्टि और वीरतायुक्त यश बढ़ानेवाले कविरूप अग्नि ही हैं । लेखक, कवि, वक्ता, उपदेशक पुरोहित ब्राह्मण ही समाज और राष्ट्रमें धन पोषण और वीरता-युक्त यश बढ़ाते रहते हैं ।

यहां 'वीरवत्तमं यशसं पोषं रयिं' ये पद महत्वपूर्ण हैं; धन, पोषण और यश मानवोंको चाहिये, पर ये तीनों 'वीर-वत्-तमम्' वीरतासे अत्यंत परिपूर्ण चाहिये ! जिसके साथ वीरता नहीं है, ऐसा धन भी नहीं चाहिये, कमजोरी उत्पन्न करनेवाला पोषण भी नहीं चाहिये, और निर्बलताको बढ़ानेवाला यश भी नहीं चाहिये । वीरतारहित धन किस कामका है ? उस धनकी रक्षा कौन करेगा ? इस लिये धनके साथ वीरताका बल अवश्य चाहिये । शरीर बड़ा पुष्ट रहता है, पर वीरता नहीं है, ऐसा पोषण धनवान् सेटोंका होता है । यह किस कामका ? जिस पुष्टिसे वीरतायुक्त बल बढ़ता है वही पुष्टि हमें चाहिये । यश भी बल और वीरत्वके साथ चाहिये । नहीं तो कई लोग बहुत ज्ञान प्राप्त करने हैं, पर शरीरसे मरियल, रोगी और निर्बल रहते हैं । ऐसी विद्या किस कामकी ? अतः धन, पुष्टि और यशके साथ वीरता भी अवश्य चाहिये । यहाँ तीनोंके साथ वीरता चाहिये यह भाव समझना उचित है । यहाँ 'वीर' का अर्थ 'मुपुत्र, सुसंतान' मान कर अर्थ करना भी योग्य है ।

धन, पोषण और यशके साथ सुसंतान भी चाहिये । नहीं तो मनुष्य धनवान् तो रहता है, पुष्ट भी रहता और विश्वमें यशस्वी भी होता है, परंतु संतान नहीं है, ऐसा पुत्ररहित घर किस कामका है ? घरमें पुत्र पौत्र और वे सब धनी हूए पुष्ट और यशस्वी भी हों ।

पुत्रके लिये वेदमें 'वीर' पद आता है । इस आशय यह है कि (वीरयति अमित्रान्) जो शत्रुओं से दूर भगानेका सामर्थ्य रखता है, वह वीर कहलाता है । वीर संतान हो । पुत्र पौत्र कैसे होने चाहिये इसका स्पष्ट निर्देश है कि पुत्र शत्रुको परास्त करनेवाले होने चाहिये ।

हम देखते हैं कि धनवान् स्वयं कमजोर निर्बल होते हैं, उनको प्रायः संतान भी नहीं होता । परंतु वेदने यहाँ कहा है कि धनके साथ बल, बलके साथ पुष्टि, और पुष्टिके साथ वीरपुरुषों और वीरपुत्रोंके साथ मिलनेवाला यश प्राप्त करना चाहिये ।

अपने पास क्या है इसकी परीक्षा मनुष्य करे और जो दोष हों वहाँका आवश्यक सुधार करे । इस मन्त्रने आदामानव अशिके वर्णनसे बताया है । प्रत्येक मनुष्य इस आदाम से अपनी परीक्षा करे ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।

स इदेवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

अन्वयः— हे अग्ने ! यं अध्वरं यज्ञं (त्वं) विश्वतः परिभूः असि, सः (यज्ञः) इन् देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! जिस हिंसा रहित यज्ञको (तू) विश्वतः ओरसे सफल बनानेवाला है, वह (यज्ञ) निःसंशय देवोंके पास पहुंचता है ॥

यज्ञ वह कर्म है कि जिसमें श्रेष्ठोंका सत्कार, जनता संगठन और निर्बलोंकी सहायता होती है । यह कर्म ऐसा होना चाहिये कि जिसमें (अध्वरः) कुटिलता, कपट, धोखे, पन, छल, हिंसा न हो । हिंसा या कुटिलता कायिक, भाषिक और मानसिक सब प्रकारकी यहाँ समझनी चाहिये । अध्वरसे जो यज्ञ होता है उसका नाम 'अध्वरः' यज्ञ है अर्थात् इसमें सत्कार-संगठन-दानरूप त्रिविध कर्म अवश्य दी होगा, परन्तु इसमें हिंसा मात्र हिंसा, कुटिलता

ज या कष्ट नहीं होगा। यहां अ-ध्वर पदसे यज्ञमें हिंसा कुटिलताका सर्वथा निषेध किया है। यह वेदमें सर्वत्र रक्षण रखने योग्य महत्त्वकी बात है। अग्नि जो यज्ञ करता वह (अ-ध्वर) हिंसारहित होनेवाला कर्म है। कायिक, चिकित्सक और मानसिक कुटिलता भी उसमें होनेकी संभावना नहीं है। किसीकी हिंसा अर्थात् प्राणवियोगकी संभावना भी यहां नहीं है। इसीलिये अग्नि ऐसे हिंसारहित कर्मों को चारों ओरसे सफल बनानेका यत्न करता है और निर्विघ्नतया परिपूर्ण करता है।

‘परि-भूः’ का अर्थ शत्रुका पराभव करना, विजय प्राप्त करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको घेरना, चारों ओरसे घेरना, साथ रहकर परिपूर्ण करना, सम्भाषण, ब्यालसे सुरक्षित रखना, बलाना, अपने स्वानित्यसे जारी रखना, ठीक मार्गसे चलाकर योग्य रीतिसे ममाह करना है।

अग्रणी शत्रुका पराभव करके निर्विघ्नता पूर्वक यज्ञकर्म सफल और सुफल करता है। यह भाव यहां ‘परि-भूः’ में है।

जो यज्ञकर्म देवोंतक जाकर पहुँचता है, देवता जिसका शीकार करते हैं वह यज्ञकर्म हिंसा कुटिलता तथा छल पटले रहित ही होना चाहिये। यह इस मंत्रका आशय है। अग्रणी अपने अनुयायियोंसे ऐसेही हिंसारहित और कुटिलता रहित कर्म करावे। यही कर्म दिव्य विषुवोंको श्रिय होते हैं। पुरोहित, कविश्च और होता यजमानसे ऐसे ही हिंसारहित कर्म करावे और जहाँ ऐसे हिंसारहित कर्म होते हैं वहाँ उन कर्मोंकी सहायता भी करें।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रध्रुवस्तमः ।

देवो देवेभिरा गमन् ॥ ५ ॥

अन्वयः— होता कविक्रतुः सत्यः चित्रध्रुवस्तमः देवः अग्निः देवेभिः वा गमन् ॥ ५ ॥

अर्थ— हवन करनेवाला अथवा देवोंको पुकानेवाला, कवियों या ज्ञानियोंकी कर्मशक्तिका प्रेरक, सत्य सविनाशी, अत्यंत विलक्षण वस्तुसे युक्त, यह दिव्य अग्निदेव अनेक देवोंसे साथ जाता है।

‘कवि-क्रतु’ पद ज्ञान और कर्म शक्तिका बोधक है। ‘कवि’ पद ज्ञानीका वाचक और ‘क्रतु’ पद कर्मनुष्ठान

कर्मवीरका वाचक है। ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला, ज्ञानका उपयोग कर्ममें करनेवाला, यह भाव यहां प्रतीत होता है। मनुष्यको प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और उस ज्ञानका उपयोग करके सुयोग्य कर्म करना चाहिये। ज्ञानपूर्वक किये कर्मसे ही मनुष्यकी उन्नति होती है।

मनुष्य (होता) दाता, हवनकर्ता तथा यज्ञकर्ता बने, और (कवि-क्रतुः) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला बने, कवि बने, ज्ञानी बने और सुयोग्य कर्म भी करे। मनुष्यकी पूर्णता होनेके लिये ज्ञान, कर्मप्रावीण्य और दातृत्व इन गुणोंकी आवश्यकता है।

‘चित्र-ध्रुवस्-तमः’ यह भी गुण उत्तम है। ‘ध्रुवस्’ का अर्थ ‘यश, प्रशंसनीय कर्म, धन’ है। प्रशंसनीय कर्मसे यश और धन मिलता है। अत्यंत विलक्षण, वाञ्छार्थकारक, प्रशंसनीय कर्म करनेवाला, यश प्राप्त करनेवाला और धन प्राप्त करनेवाला। ‘ध्रुवस्’ का अर्थ ध्रुवण करना भी है। ‘बहु-ध्रुत’ जैसा अर्थ इस पदमें है। जो अग्रणी अनुयायियोंकी सब बातें ध्यानपूर्वक सुनता है वह ‘चित्रध्रुवस्तम’ है। जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं वे सबकी बातें सुनते हैं और विचारपूर्वक जो करना योग्य है, वही किया करते हैं।

हवन करनेवाला, ज्ञान प्राप्त करके योग्य कर्म करनेवाला, सत्यनिष्ठ, अत्यंत ध्यानपूर्वक ध्रुवण करनेवाला दिव्य तेजस्वी देव अपने साथ अन्य दिव्य विषुवोंकी ले जाता है। ज्ञानी के साथ अन्य ज्ञानी सदा रहते हैं।

‘देवो देवेभिः आगमन्’ अनेक देवोंके साथ एक देवका जाना यहां लिखा है। एक देव शरीरमें आत्मदेव ही है। यही जीवाना है। यह अपने साथ ३३ देवताओंकी ले जाता है और उनको शरीरमें यथास्थान रखता है तथा स्वयं उनका अधिष्ठाता होकर रहता है। आंगमें सूर्य, कानमें दिशार्ण, नाकमें वायु तथा अधिदेव, मुखमें अग्नि, त्वचामें वायु, पैरोंमें अग्नि (जादर), चालोंमें अधिधियन-स्वप्ति, जिह्वामें जल इस तरह सब ३३ देवताओंके अंशदेव इन देवोंमें यथास्थान रहे हैं और इन सबका अधिष्ठाता आत्मा तद्वत्में रहा है। अनेक देवोंके साथ एक देवका जाना इस तरह शरीरमें होता है। मनुष्यके मरण पर जीव जाना इन देवोंमें से साथ चला जाता है और पुनः

शरीरमें, गर्भमें, आनेके समय पुनः उन ३३ देवोंके साथ आता है। यह है देवका देवोंके साथ आना।

विश्वमें परमात्मा महान् तैत्तिरीय देवोंके साथ विश्वरूपमें ही विराजमान है। इनके ही ३३ अंश जीवके साथ आते हैं। इस तरह देवोंका देवके साथ आना होता है।

इसीका स्वरूप यज्ञमें बताया जाता है। जैसा भूप्रदेशोंका नकशा कागजपर खींचा जाता है, वैसा ही विश्वभरमें जो है और देहमें जो बनता है, उसका चित्र यज्ञभूमिमें बताया जाता है। यहां मुख्य अग्निदेव रहता है और बाकीके ३३ देव यथास्थान सत्कारपूर्वक रहते हैं, पूजे जाते हैं। देवोंका देवके साथ आना इस तरह हरएक मनुष्य देख सकता है और इसका अनुभव भी कर सकता है।

यदङ्ग दाशुपे त्वमग्ने भद्रं करिष्यासि।

तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

अन्वयः— हे अङ्ग अग्ने ! दाशुपे त्वं यत् भद्रं करिष्यासि, हे अङ्गिरः, तत् (कर्म) तव इत् सत्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे प्रिय अग्ने ! दान करनेवालेके लिये तू जो कल्याण करता है, हे अङ्गिरः अग्ने वह (कर्म) निःसन्देह तेरा ही सत्य कर्म है।

यहां अग्निके दो विशेषण आये हैं। अङ्ग और अङ्गिरः। 'अङ्ग' का अर्थ— तत्काल, पुनः, हर्षप्रिय अर्थवाला संश्लेषण अर्थात् किसीको पुकारनेके लिये प्रयुक्त होनेवाला पद। हे प्रिय ! हे अङ्ग ! अर्थात् हे अपने अंगके समान निज ! अपने शरीरका भाग। अपने शरीरका भाग ही अत्यंत प्रिय होता है। 'अङ्गिरः, अङ्गिरस्, अङ्गिर्य-रस' अंगों अवयवों और इंद्रियोंमें जो जीवनरस होता है, वही अंगिरस् कहलाता है। आंगिरसोंने इस अंगरस-विद्याकी खोज की थी, इसलिये इस जीवनरसको यह नाम मिला है। शरीरमें जो जीवनरस है उस संबंधकी विद्या अंगरस विद्या है। जो अग्नि अंगप्रत्यङ्गोंमें जीवनरस बनकर रहा है वह अंगिरस अग्नि है। इसीसे अंगसौष्टव सुस्थिर रहता है।

जो अन्न जितना आग्नेय गुण शरीरमें बढ़ाता है, वह अन्न उतना अंगीय रस शरीरमें उत्पन्न करता है। अग्नि प्रदीप्त करके उसमें आहुतियाँ देनेका अर्थ प्रदीप्त जाडर अग्निमें अन्नकी आहुतियोंका प्रदान करना ही है।

यह अग्नि दावाका कल्याण करता है और यही इसका

सत्य कर्म है। ऐसा यहां कता है। इसका अनुभव प्रदीप्त जाडराग्निमें जो उत्तम अन्नकी आहुतियाँ देकर उसका कल्याण वही जाडर अग्नि करता है। उस उत्तम पचन होता है और उसका अंगीय रस बनता है। उत्तम अंगरस बनना ही मनुष्यका सच्चा कल्याण है। अंगरससे मनुष्यका शरीर सुंदर, बलवान्, वीर्यवान्, दीर्घजीवी, उत्साही, कार्यक्षेम, और भोजनशील बनता है। लिये इस अंगीय-रसका महत्त्व मानव जीवनमें अधिक है।

अखिल मानव समाजके दिनके लिये अपने भीतर मान ज्ञान बल और धन तथा कर्म शक्तिका प्रदान वालोंका कल्याण होता है। राष्ट्रमें यही यज्ञसे सिद्ध होता है। यज्ञ, यही अन्निका महत्त्व है।

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तथिया वयं नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

अन्वयः— हे अग्ने ! दिवे दिवे दोषा वस्तः वयं नमः भरन्तः त्वा उप आ इमसि ॥ ७ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! प्रतिदिन, रात्रीमें और दिनमें सब अपनी बुद्धिसे, मनः पूर्वक, नमस्कार करते हुए समीप पहुँचते हैं, अथवा अन्न लेकर तुझे अर्पण लिये तेरे समीप आते हैं।

'दोषा' रात्रीका नाम है, क्योंकि रात्रीमें ही अनेक अनेक अपराध होते हैं, अन्धकार रहनेके कारण चोर चिंता बड़ा उपद्रव होता है। 'वस्तः' दिनका नाम है, यह मनुष्योंके लिये चसने योग्य समय है। रात्रीमें पुनः और दिनमें एक बार ऐसे प्रतिदिन दो बार मनुष्य अन्न अग्निके पास जाते हैं और नमनपूर्वक उस अग्निमें आहुतियाँ समर्पण करते हैं। (धिया नमः भरन्तः) बुद्धिपूर्वक नमन करते हुए, जानबूझकर ज्ञानपूर्वक पात्र करके सब हम मिलकर अग्निके पास पहुँचते हैं उसकी उपासना करते हैं। यहां दोवार उपासना कही

जाडर अग्निमें भी दिनमें दो बार अन्नकी आहुतियाँ योग्य हैं। प्रतिदिन दो बार भोजनका सेवन करना है। अधिकवार खाना योग्य नहीं है।

हैं, प्रयत्नपूर्वक यहाँ आइये, क्योंकि ये रस आपके लिये रखे हैं। हे वीर और हे राजन् ! तुम दोनों अन्नो के साथ आका निवास करनेवाले हो और रसोंका स्वाद तुम दोनों नते हो, इसलिये यहाँ शीघ्र आओ। हे वीर और हे राजन् ! यह सोमरस बुद्धिकी कुशलतासे तैयार करके आपके ये ही रखा है इसलिये तुम दोनों यहाँ आओ और इसका पीकार करो।'

यह सूक्त राजा और सेनापतिके सम्मानके लिये है ऐसा धिभूत धर्ममें कहा जा सकता है। अतः इससे इनके निम्न गणित कर्तव्य प्रगट होते हैं—

(हन्द्रः—हन् + द्रः) शत्रुका नाश करनेवाला, राजा शत्रुके शत्रुका नाश करनेका उत्तम प्रबंध करे। (वायु—गतिगन्धनयोः) शत्रुपर गतिसे हमला करना और शत्रुका नाश करना। वीर शत्रुपर हमला करे और उसका नाश करे। (प्रयोभिः आगतं) प्रयत्न, अन्न और यत्नके साथ दोनों जावें। प्रयत्न करके राष्ट्रमें अन्न उत्पन्न करें और शकके प्रदानसे यज्ञ करें। राष्ट्रमें पर्याप्त अन्न उत्पन्न करना और सबको अन्न प्राप्त करा देनेका यत्न करना ये इनके कर्तव्य हैं। वीर सबकी सुरक्षा करें और राजा प्रजाद्वारा गत्य प्रबंध करें, इस तरह दोनों राष्ट्रमें अन्नोकी पर्याप्त माणमें उत्पत्ति करावें। राष्ट्रमें भरपूर अन्न उत्पन्न हो। वाजिनीवधः) अन्नके साथ जनताको बसानेहारे, बलवर्धक बसोंके साथ प्रजाको रखनेवाले, सेनाके साथ प्रजाकी सुरक्षिततासे यत्ती बढाने वा अन्नके द्वारा सबको सुस्थिर रखनेवाले। 'वाजिनी' के अर्थ बल, बलवर्धक अन्न, सेना ये हैं। इनसे प्रजाको बसानेवाले राजा और सेनापति। ये (न-रौ) अपने भोगोंमें ही न रमनेवाले हों और नरौ) जनताके नेता हों, जनताको आगे उत्पत्तिकी ओर जानेवाले हों।

इन कर्तव्योंको निभानेवाले राजा और सेनापतिका सम्मान सब प्रजाजन करें और प्रजाकी सहायता और सुरक्षा करें। यहाँ सोमरस ही अन्न कहा है, इसमें दूध, दही, घृत, सत्तूका आटा मिलाकर यह रस पिया जाता है। इस रसका वर्णन आगे आनेवाला है।

हन्द्र—वायु, विद्युत् और वायु—से घृष्ट होती है, और घृष्टसे अन्न होता है। 'पर्जन्यात् अन्न-संभवः।'

२ (मधु०)

(गीता ३।१४।) यह अन्न शाकाहारका ही आश है। यह अन्न धान्य, सोमरस आदि ही है।

मित्रावरुणौ

(२।७-९) सधुच्छन्दा वैश्वामित्रः।

७-९ मित्रावरुणौ। गायत्री।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।

धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।

ऋतुं बृहन्तमाशथे ॥ ८ ॥

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।

दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—पूतदक्षं मित्रं, रिशादसं वरुणं च हुवे, घृताचीं धियं साधन्ता ॥ ७ ॥ मित्रावरुणौ ऋतावृधौ ऋतस्पृशा, ऋतेन बृहन्तं ऋतुं आशथे ॥ ८ ॥ कवी तुविजाता उरुक्षया मित्रावरुणा अपसं दक्षं नः दधाते ॥ ९ ॥

अर्थ—पवित्र बलसे युक्त मित्रको, और शत्रुका नाश करनेवाले वरुणको मैं बुलाता हूँ, ये स्नेहमयी बुद्धि तथा कर्मको संपन्न करते हैं ॥ ७ ॥ ये मित्र और वरुण सत्यसे बढनेवाले तथा सत्यसे सदा युक्त हैं, वे सत्यसे ही बडे यज्ञ को संपन्न करते हैं ॥ ८ ॥ ये ज्ञानी, बलशाली और सर्वत्र उपस्थित रहनेवाले मित्र और वरुण कर्म करनेका उत्साह देनेवाला बल हमें देते हैं ॥ ९ ॥

'मित्रावरुणौ' ये दो राजा हैं, सम्राट् हैं, ऐसा निम्न लिखित मन्त्रमें कहा है— 'राजानौ अन्नभिद्रुहा... सदसि... आसाते ॥ ५ ॥ ता सम्राजा... सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥ (ऋ. २।४१) ये दो राजा परस्पर द्रोह नहीं करते, क्योंकि...ये सभामें...बैठते (और सभा की संमतिसे राज्य करते हैं)। ये दो सम्राट् हैं...ये छल-कपट रहित आचरण करनेवालेकी सहायता करते हैं। ऐसे ये दो सम्राट् हैं।

गुरुका नाम 'मित्र' है जो मित्रवत् सत्यसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है, दूसरा 'वरुण' है जो निष्पक्ष व्यवहार करता है। यह मित्र (पूत-दक्षः) पवित्र कार्यमें ही अपना बल लगाता है, अपने बलसे कभी अपवित्र कार्य नहीं करता, सदा शुभ कार्य ही करता है। दूसरा वरुण (रिशा-

अन्वयः—हे दर्शत वायो! आ याहि, इमे सोमाः अरंकृताः, तेषां पाहि, हवं ध्रुधि ॥ १ ॥ हे वायो! सुतसोमाः अहविंदः जरितारः उक्थेभिः त्वां अच्छ जरन्ते ॥ २ ॥ हे वायो! तव प्रवृज्जती उरुची धेना सोम पीतये दाशुपे जिगति ॥ ३ ॥

अर्थ—हे सुन्दर दर्शनीय वायो! यहां आओ, ये सोमरस अलंकृत करके तुम्हारे लिये यहां रखे हैं, उनका पान करो, और हमारी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥ हे वायो! सोमरस निकालनेवाले, दिनका महत्त्व जाननेवाले, स्तोता लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारे महत्त्वका अच्छी तरह वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ हे वायो! तुम्हारी हृदयस्पर्शी विस्तृत वाणी सोमरसपानके लिये दाताके पास पहुंचती है ॥ ३ ॥

यहां वायुको परमलका रूप समझकर वर्णन है। 'तत् वायुः' (वा० य० ३.२.१) वह ब्रह्म वायुरूपसे यहां है। यह वायु 'दर्शत' (दर्शनीय, सुन्दर) कैसा माना जा सकता है, यह विचारणीय विषय है। वायुका रूप शरीरमें 'प्राण' है यह भी दीखता नहीं, वायु भी अदृश्य है। जो अदृश्य है वह सुन्दर कैसे हो सकेगा? विचार करनेपर इस बातका पता लगता है कि वायुका रूप प्राण है और यह प्राण जहां तक शरीरमें रहता है तबतक ही वहां सौंदर्य रहता है। प्राणके चले जानेपर वहां सौंदर्य नहीं रहता, इस लिये सौंदर्य प्राणका रूप है और वही विश्व-प्राण-वायुका सौंदर्य है, ऐसा मानना स्वाभाविक है और इस दृष्टिसे प्राण-रूप यह वायु सुन्दर माना जाना स्वाभाविक है।

सोमरस अलंकृत करके रखे हैं अर्थात् रस छान कर, उनमें दूध मिलाकर तैयार करके रखे हैं, सुन्दर बनाये हैं। सोमरसको एक वर्तनेसे दूसरे वर्तनमें इसलिये ठण्डा किया है कि उसमें वायु मिले। यही वायुका सोमरस सेवन होता है। वायुका शब्द इस सोमरसस्पर्शके लिये, सोमरसमें मिलनेके लिये सब सोमरस निकालनेवाले सुनते हैं और वे उसकी प्रशंसा करते हैं।

इन्द्रवायु

(२. १. ६) मधुच्छन्दा वैश्वमित्रः । ५-६ इन्द्रवायु । गायत्री ।

इन्द्रवायु इमे सुता उप प्रयोमिरा गतम् ।

इन्द्रवा वासुशन्ति हि ॥ ४ ॥

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू ।
तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् ।
मक्षिविन्त्या धिया नरा ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र-वायू! इमे सुताः, प्रयोभिः आ गतम् । इन्द्रवः हि वां उशन्ति ॥ ४ ॥ हे वायो! च, (युवां) वाजिनीवसू सुतानां चेतथः, तां (युवां) द्रवत् उप आ यातम् ॥ ५ ॥ हे वायो इन्द्रः च, हे नरा इत्या धिया मधु सुन्वतः निष्कृतं उप आ यातम् ॥ ६ ॥

अर्थ—हे इन्द्र और वायु! ये सोमके रस यहां हैं, प्रयत्नके साथ यहां आइये, क्योंकि ये सोमरस ही चाहते हैं ॥ ४ ॥ हे वायो और हे इन्द्र! (तुम दोनों) अन्नके साथ रहनेवाले सोमरसों (की विशेषता) जानते हो, वे (तुम दोनों) शीघ्र ही यहां आओ ॥ ५ ॥ हे वायो और हे इन्द्र! हे नेता लोगो! इस बुद्धिकौशल्यसे सत्वर रस निकालनेवाले तैयार हो सोमरसके समीप आइये ॥ ६ ॥

यह सूक्त इन्द्र और वायुका मिलकर है। इन्द्र विद्युत्का है और वायु यही वायु है। वृष्टिकालमें विद्युत् और वायु वृष्टिके पूर्व अपना कार्य दिखाते हैं। विद्युत् भेदकडकी हुई धातुके साथ चमकती है और वायु भेदकधर उधर ले जाता है। इस समयके ये दो-इन्द्र वायु-नेता हैं, धुरीण हैं, प्रमुख हैं, मुख्यकार्यका करनेवाले हैं। इसीलिये इनको (नरौ) नेता कहा है।

ये 'वाजिनी-वसू' अर्थात् अन्नसे युक्त हैं। ये अन्नके उत्पादनकर्ता हैं। अन्नको बसानेवाले हैं। मेघस्था रहनेवाला विद्युद्गति और वायु ये दोनों नाना प्रकारके उपपन्न करते हैं। इसीलिये कहा है कि (प्रयोभिः आग) नाना प्रकारके अन्नोंके साथ आओ। जब ये दोनों आकाशमें संचार करने लगते हैं, तब वृष्टि होती है। वृष्टिसे अन्न उपपन्न होता है, इस तरह ये दो देव अ साथ आते हैं।

इन्द्र राजाका नाम है। नरेन्द्र राजाको कहते हैं। मरुतोका अर्थात् इन्द्रके वीर सैनिकोंका नाम है। इस व यद् सूक्त 'नरेन्द्र और वीर सैनिकोंका' है। हे राजा और हे सेनापते! आपके लिये ये सोमरस यहां तैयार

(असत्या) कभी असत्यका अवलंबन न करने-
(रुद्र-वर्तनी) शत्रुका नाश करनेके लिये
का अवलंबन करनेवाले हैं। ये (यज्वरीः)
(यज्ञीय पवित्र वस्त्र खाते हैं, पवित्र भक्त
रते हैं, (शवीरया धिया गिरः वनतं) अपनी
से अनुयायियोंके भाषण सुनते हैं और (युवा-
हिपः सुताः) दूध आदि मिलाये, छानकर
ले सोमरसोंका पान करनेके लिये याजकोंके
हैं।

पद मानवोंको निम्नलिखित बोध दे रहे हैं। (१)
पालन करो और घोड़ोंपर सवार हो जाओ, (२)
बोंका बल बढ़ाओ, (३) शुभ कार्योंकोही करो,
अने हथोंसे करने योग्य कार्य जल्दीसे परम्पु-
र जाओ, (४) अनेक कार्य करनेकी क्षमता अपने
जाओ, (५) बुद्धि और धैर्य अपने अन्दर बढ़ाओ,
ता बनो, अनुयायियोंको उत्तम मार्गसे ले जाओ,
शुका पूर्ण नाग करो, (६) कभी असत्यका अव-
लंबन करो, (७) शत्रुका नाश करनेके लिये अश्वानक
भी आवश्यक हुआ तो अवश्य अवलंबन करो, (८)
असत्या भोजन करो, (९) जिसके साथ भाषण
उसका भाषण शान्तिसे सुनो, (१०) सोमरसका
पान हो तो उसमें दूध दही शहद सख आदि जो
हो वह मिला दो, उसको अच्छी तरह छान लो
आर उसका पान करो। हर एक रसके पानके विषयमें
नेयम है।

१ सुनका प्रत्येक पर मानवोंको महापूर्ण उपदेश
है।

पूतासः, त्वायवः सुताः, आयाहि ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! धिया
इषितः विप्रजुतः (त्वं) सुतावतः वावतः प्रह्लाणि उप
(धन्वनाय) आ याहि ॥ २ ॥ हे हरियः इन्द्र ! (त्वं)
प्रह्लाणि उप (ऐतुं) तूतुजानः आ याहि, नः सुते चनः
दधिष्व ॥ ३ ॥

अर्थ- हे विलक्षण कान्तिसे युक्त इन्द्र ! ये अंगुलियोंसे
निचोड़े, सदा पवित्र, तेरे लिये तैयार किये सोमरस (हैं,
अतः तू) यहाँ आ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हमारी बुद्धियोंद्वारा
प्रार्थित, ब्राह्मणोंसे प्रेरित हुआ, तू सोमरस अपने पान तैयार
रखनेवाले स्तोत्राके स्तोत्र (गान सुननेके लिये) यहाँ आ
॥ २ ॥ हे घोड़ोंवाले इन्द्र ! तू हमारे स्तोत्र श्रवण करनेके
लिये त्वराके साथ यहाँ आ और हमारे सोमयागमें हमारे
अन्नका स्वीकार कर ॥ ३ ॥

इन्द्र राजा है, श्रेष्ठ है, वह विलक्षण तेजसे युक्त है। वह
घोड़ोंका पालन करता है, उत्तम पीन वर्णके घोड़े अपने
पास रखता है। वह यज्ञमें त्वरासे भागा है। याजकोंद्वारा
दिया सोमरस तथा अन्न सेवन करता है। याजक उनको
बुलाते हैं और उसके शूर कर्मोंका वर्णन करते हैं।

इस तरह मनुष्य वीरोंके कान्तिोंका गान करें, वीरोंको
बुलायें, उनका सम्मान करें। सर्वत्र वीरताका वायुमण्डल
फैलाते रहें।

विश्वे देवाः

(३।३-५) मध्यखण्डा वैश्वानराः ३-५ विश्वे देवाः वायवी ।

ओमावध्वर्जनीधृता विश्वे देवान् आ गत ।

दाध्वांसो दाशुवः सुतम् ॥ ७ ॥

विश्वे देवास्तो अश्वरः सुतमा गत मूर्धन्यः ।

उन्मा हव स्वमनासि ॥ ८ ॥

धदस्) शत्रुको खानेवाला है, शत्रुका पूर्णरूपसे नाश करता है, शत्रुको जीधित नहीं रखता। ये दोनों राजा मिलकर (वृत्त-अर्चा) वृत्तसे पूर्णतया भीगी, घीसे लबालब भरी, अर्थात् स्नेहसे परिपूर्ण (धियं) बुद्धिको तथा कर्मको करते हैं, परस्पर स्नेहभाव बढ़ने योग्य कर्म करते हैं। ऐसे विचार प्रसूत करते हैं तथा ऐसे कार्य करते हैं जो स्नेहको बढ़ानेवाले हों। परस्पर घैर बढ़ने योग्य किसी तरह भी आचरण नहीं करते। (७)

ये मित्र और वरुण (ऋत-स्पृशौ) सदा सत्यको ही स्पर्श करनेवाले, सत्यपालक हैं। ' ऋत ' का अर्थ सत्य, सरलता है। ये (ऋता-वृधौ) सत्य व्यवहारको बढ़ानेवाले, सत्यव्यवहारसे ही बुद्धिको प्राप्त करनेवाले हैं, कभी असत्यकी ओर नहीं जाते, इसलिये (वृहन्तं क्रतुं) बड़े बड़े कार्योंको (ऋतेन आशायै) सत्यसे ही परिपूर्ण करते हैं। अर्थात् इन राजाओंका सारा राज्ययन्त्र सत्यके आश्रयसे चलता है, कभी किसी तरह असत्य, छल, कपट, कुटिलता, डेढापन इनके व्यवहारमें नहीं रहता और इसी कारण ये किसीका द्रोह नहीं करते हैं। (८)

ये दोनों (कवी) ज्ञानी, बुद्धिमान्, कवी हैं, दूरदर्शी हैं, (त्रुवि-जातौ) सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध हैं, (उरु-धया) विस्तृत घरमें रहते हैं, बड़े निवासस्थानमें रहते हैं। और (अपसं दक्षं) कर्म करनेकी शक्ति या क्षमता अपनेमें धारण करते हैं, बढ़ाते हैं। (९)

इन तीनों मंत्रोंमें दो राजाओंका व्यवहार कैसा हो, इसका उत्तम वर्णन है। राजा लोग अपना बल पवित्र कार्यमें ही लगायें, कभी अयोग्य, अपवित्र कार्यमें न खर्च करें। शत्रुका नाश करनेका बल धारण करें, इसमें कभी न्यूनता न रखें, परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार करें और प्रजासे भी स्नेहमय व्यवहार होने योग्य ज्ञान प्रजामें फैला दें। सत्य और सरल व्यवहार बढ़ावें, सदा सत्य और सरल मार्गका अवलंब करें, कभी डेढे और असन्मार्गसे न जायें। सत्य सरल व्यवहार करते हुए बड़े बड़े कार्य करें और बड़े विशाल कार्य सफल करें। ज्ञानी बनें, बल बढ़ावें, सुदृढ़ विशाल घरोंमें रहें और कर्म को यथायोग्य रीतिसे निभानेका सामर्थ्य अपनेमें बढ़ावें।

संक्षेपसे इस तरहकी राज्यव्यवस्था उक्त तीन मंत्रोंमें कही है।

' मित्रानर्घा ' के और भी अर्थ हैं- प्राग और त. मा. ३।३।१२; अदोरात। न. मा. १।१।३।२३; वि. मा. ४।१०; दोनों पक्ष (गुरु) मित्रावरण हैं। तां. मा. २५।१०।१०; भूलोक और मित्रावरण हैं। न. मा. १२।१।२।१२; मृत मित्र है चन्द्रमा वरुण है। इस तरह वैदिक वाङ्मयमें अनेक हैं। मनन करनेवाले इसका अधिक मनन करें।

अश्विनौ

(३।१-२) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । १-३ अश्विनौ ।
अश्विना यज्वरीरिपो द्रवत्पाणी शुभस्पती ।
पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया ।
धिण्यया वनतं गिरः ॥ २ ॥
दत्ता युवाकवः सुता नासत्या वृक्तवर्हिपः ।
आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

अन्वयः- हे पुरुभुजा शुभस्पती ! द्रवत्पाणी यज्वरीः इपः चनस्यतम् ॥ १ ॥ हे पुरुदंससा धिण्यया अश्विना ! शवीरया धिया गिरः वनतम् ॥ २ ॥ हे नासत्या रुद्रवर्तनी ! युवाकवः वृक्तवर्हिपः सुताः तम् ॥ ३ ॥

अर्थ- हे विशाल भुजावाले, शुभ कार्योंका पालन वाले, अतिशीघ्र कार्य करनेवाले अश्विदेवो ! यज्ञके अन्नसे आनन्द-प्रसन्न हो जाओ ॥ १ ॥ हे अनेक कार्य वाले, धैर्ययुक्त बुद्धिमान् नेता अश्विदेवो ! अपनी तेजस्वी बुद्धिके द्वारा हमारे भाषणको सुनो ॥ २ ॥ हे विनाशकर्ता असत्यसे दूर रहनेवाले भयंकर मार्गसे जानेवाले ! ये संमिश्रित किये, तिनके निकाले हुए सोम उनका पान करनेके लिये यहां आओ ॥ ३ ॥

यहां दोनों अश्विदेवोंका वर्णन है। अश्वोंका पालन करनेमें ये चतुर थे। ये (पुरुभुजा) विशाल वाले, (शुभस्-पति) शुभ कर्मोंको करनेवाले, (पाणी) अपने हाथोंसे अतिशीघ्र कार्य करनेवाले, (दंससा) अनेक कार्य निभानेवाले, (धिण्यया) बुद्धिमान् तथा धैर्ययुक्त, (नरा) नेता, अनुयायियोंको मार्गसे ले जानेवाले, (दत्ता) शत्रुका नाश

धी' का अर्थ बुद्धि और कर्म हैं। बुद्धिसे जो उत्तम कर्म होते हैं उनसे नाना प्रकारके धन देनेवाली यही विद्या है, (सूनुतानां चोदयित्री) सत्यसे बनेवाले विशेष महत्त्वपूर्ण कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली यह विद्या है, (सुमतीनां यतन्ती) शुभ मतियोंको चेतना यही देती है, यह विद्या (केतुना) ज्ञानका प्रसार करनेके कारण (महो धर्णः प्रचेतयति) कर्मोंके बड़े महासागरको ज्ञानीके सामने खुला कर देती है। ज्ञानसे नाना प्रकारके कर्म करनेके मार्ग मनुष्य

के सम्मुख खुले होते हैं। जितना ज्ञान बढ़ेगा उतने नाना प्रकारके कर्म करनेकी शक्ति भी मनुष्यकी बढ़ती जायगी और यही मनुष्यके सुखोंको बढ़ानेवाली होगी। मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंपर इसी विद्याका राज्य है। विद्यासे ही सभी मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंका तेज बढ़ सकता है। मानवी बुद्धियोंपर विद्याकाही साम्राज्य है।

यह विद्याका उत्तम सूक्त है और इसका जितना मनन किया जाय, उतना वह अधिक बोधप्रद होनेवाला है।

(२) द्वितीयोऽनुवाकः ।

इन्द्रः

॥ १-१० ॥ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

रूपरुतुमूतये सुदुधामिव गोदुहे ।

गृहमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

प नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिव ।

गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।

रा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

रे दि विग्रमस्त्वृत्तिमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।

पस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

उत ध्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।

दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥

उत नः सुभगां अरिषोच्युर्दस्म कृष्टयः ।

स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यशश्चिन् नृमादनम् ।

पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।

प्रायो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।

धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

यो रायोऽवानिमर्दान्सुपातः सुन्वतः सखा ।

तस्मा इन्द्राय नायत ॥ १० ॥

अन्वयः — गोदुहं सुदुधं इव, यवि रावि जग्ये सुर-
रुतुं गृहमसि ॥ १ ॥ हे नोमपाः ! नः सवना उप भा-

गहि, सोमस्य पिव, रेवतः मदः गोदा इत् ॥ २ ॥ अथ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम, (त्वं) नः सा अति ख्यः, आ गहि ॥ ३ ॥ परा इहि, यः ते सखिभ्यः वरं आ (यच्छ-
ति, तं) विग्रं अस्तुतं विपश्चितं इन्द्रं पृच्छ ॥ ४ ॥ इन्द्रे इत्
दुवः दधानः, ध्रुवन्तु, नः निदः अन्यतः चित् उत निः
आरत । ॥ ५ ॥ हे दस्म ! अरिः नः सुभगात् वोच्युः, उत
कृष्टयः (च वोच्युः), इन्द्रस्य शर्मणि स्याम इत् ॥ ६ ॥
आशवे ई यज्ञश्चिन्, नृमादनं, पतयत् मन्दयत्सखं आशुं आ
भर ॥ ७ ॥ हे शतक्रतो ! अस्य पीत्वा वृत्राणां घनः अभवः,
वाजेषु वाजिनं प्र भावः ॥ ८ ॥ हे शतक्रतो ! इन्द्र ! धनानां
सातये वाजेषु तं वाजिनं त्वा वाजयामः ॥ ९ ॥ यः रायः
अवानिः, महान् सुपातः, सुन्वतः सखा, तस्मै इन्द्राय
नायत ॥ १० ॥

अर्थ- गौके दूहनेके समय जिस तरह उत्तम दूध देने-
वाली गौको ही बुलाते हैं उस तरह, प्रतिदिन अपनी सुरक्षा
के लिये सुन्दर रूपवाले इस विश्वके निर्माता (इन्द्र)
की हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥ हे सोमपान करनेवाले
इन्द्र ! हमारे सोमरस निकालनेके समय हमारे पान आओ,
सोमरसका पान करो, (तुम जैसे) धनवानका हर्ष निः-
संदेह गौसे देनेवाला है ॥ २ ॥ तेरे पासकी सुमतियों हम
प्राप्त करें, (तुम) हमें छोटकर अन्यके समीप प्रकट न हो-
ओ, हमारे पान ही आओ ॥ ३ ॥ (हे मनुष्य !) तू दूर
जा और जो तेरे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ धनादि (देता है उस)
ज्ञानी, पराजित न हुए कर्मप्रवीण इन्द्रसे पूछ ले और (जो
मांगना है वह उसमे मांग) ॥ ४ ॥ इन्द्रजी ही उपायना

हे सब देवो ! आप कर्म करनेमें कुशल हैं, सत्वर कर्म करनेवाले हैं, अतः जिस तरह अपनी गोशालामें गौवें जाती हैं, उस तरह यहाँ आओ ॥ ८ ॥ हे सब देवो ! आपका घातपात कोई नहीं कर सकता, आपकी कुशलता अनुपम है, आप किसीका द्रोह नहीं करते, आप सबके लिये सुख साधन ढोकर ला देते हैं, वे आप हमारे यज्ञमें आकर हमारे दिये अन्नका सेवन करो ॥ ९ ॥

यहाँका 'विश्वे देवाः' का वर्णन मानवोंके लिये बड़ा बोधप्रद हो सकता है। (१) ओमासः = सबका रक्षण करनेवाले; (२) चर्षणी-धृतः = मानव संघोंका धारण पोषण करनेवाले, किसानोंकी सुरक्षा करनेवाले; (३) दाश्वांसः = दान देनेवाले, दाता; (४) अप-नुरः = त्वरासे सब कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाले; (५) नृण्यः = सब कार्य अतिशीघ्र परंतु उत्तम संपन्न करनेवाले; (६) अ-स्त्रिधः = जिनका कोई घातपात नहीं कर सकते, जिनके कार्यमें कोई रुकावट नहीं डाल सकते (७) एहिमायासः = जिनकी कर्मकुशलता अनुपम है, जिनके समान कुशल दूसरे कोई नहीं हैं, जो कुशलताके पापोंमें ही प्रगति करते हैं, (८) अ-द्रुहः = किसीका कभी द्रोह न करनेवाले, (९) वह्नयः = ढोकर सब भोगसाधन जनताके पास पहुँचानेवाले, वाहनकर्ता। ये गुण प्रत्येक मनुष्यको अपनेमें संपादन करनेयोग्य हैं।

ये विश्व देव यज्ञ-कर्ताके सोमयागके पास जाते हैं, गाँव में आये समान यात्रकों घर आते हैं और पवित्र अन्नका सेवन करते हैं।

'मेधा' का अर्थ यज्ञ है। जिसमें मेधाकी वृद्धि होती है उसका नाम मेधा है। मेधाकी वृद्धि करनेवाले कर्मका नाम मेधा है। इसमें पूर्व 'अ-श्वर' पद यज्ञवाचक आया है। इसका अर्थ है अहिंसायुक्त कर्म। मेधा वृद्धिकी वृद्धि करनेवाले यज्ञ हैं और उनमें सब देव आते हैं, आदर प्राप्त करते हैं और उस यज्ञकी सहायता करते हैं।

इसमें सब मनुष्योंके देवकी वृद्धि करनेवाले हैं और अन्तर्गत उन मनुष्योंके सहायता करना ही मनुष्योंके लिये करने योग्य अनुष्ठान है।

सरस्वती

१२-१३ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन । १२-१३ सरस्वती ।
नमः ॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

अन्वयः — सरस्वती नः पावका, वाजेभिः ।
धियावसुः यज्ञं वष्टु ॥ १० ॥ सूनृतानां चोदयित्री, तीनां चेतन्ती, सरस्वती यज्ञं दधे ॥ ११ ॥ सरस्वती महो अर्णः प्र चेतयति, विश्वा धियः वि राजति ॥ १२ ॥

अर्थ — विद्या हमें पवित्र करनेवाली है, देनेके कारण वह अन्नवाली भी है, बुद्धिसे होनेवाले कर्मोंसे नाना प्रकारके धन देनेवाली (यह विद्या यज्ञकी सफलता करे ॥ १० ॥ सत्यसे होनेवाले कर्मोंकी करनेवाली, सुमत्तियोंको बढ़ानेवाली, यह विद्यादेवी यज्ञका पूर्ण रूपसे धारण करती है ॥ ११ ॥ यह ज्ञानसे (जीवनके) बड़े महासागरको स्पष्ट दर्शाती (यह विद्या) सब प्रकारकी बुद्धियोंपर विराजती है ॥

यह सरस्वतीका सूक्त है। सरस्वती विद्या ही है। कालसे चली आयी विद्या प्रवाहवती होनेसे कहलाती है। यह विद्या रस देती है, रहस्य प्राप्त उत्तम आनंद देती है, इसलिये 'सर-स्-वती' है। सरस्वती नदीके तीरपर नाना ऋषियोंके आश्रम और विद्याका पढ़ना पढ़ाना वहाँ अनादि कालसे चलता इसलिये उस नदीको भी सरस्वती नाम मिला होगा।

यह विद्या सब प्रकारका ज्ञान ही है। अध्यात्म, और अर्धिदेवता केना तीन प्रकारका ज्ञान होता है, इसमें प्रकारका ज्ञान अन्तर्भूत होता है ! मनुष्यकी उन्नति वाला यही सब प्रकारका त्रिविध ज्ञान है। इसी विद्याका नाम इस सूक्तमें सरस्वती कहा है ! यह (पावका) पवित्रता करनेवाली है, दारार मन और बुद्धि शुद्धता इसी विद्यासे होती है। (वाजेभिः वाजिनीवती विद्या अन्न देती है, ग्वानपानके प्रश्नका हल करती है, लिये इसकी अन्नवाली कहते हैं। नाना प्रकारके बल विद्यासे प्राप्त होने हैं, अतः विद्याको यज्ञकी भी कहते 'यज्ञ' का अर्थ अन्न और बल दोनों हैं। (विद्यावसुः

धी' का अर्थ बुद्धि और कर्म हैं। बुद्धिसे जो उत्तम कर्म होते हैं उनसे नाना प्रकारके धन देनेवाली यही विद्या है, (सूक्तानां बोधयित्री) सत्यसे बननेवाले विशेष महत्त्वपूर्ण कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली यह विद्या है, (सुमतीनां दन्तन्ती) शुभ मतियोंको चेतना यही देती है, यह विद्या केतुना) ज्ञानका प्रसार करनेके कारण (महो अर्णः चेतयति) कर्मोंके बड़े महासागरको ज्ञानीके सामने खुला कर देती है। ज्ञानसे नाना प्रकारके कर्म करनेके मार्ग मनुष्य

के सम्मुख खुले होते हैं। जितना ज्ञान बढ़ेगा उतने नाना प्रकारके कर्म करनेकी शक्ति भी मनुष्यकी बढ़ती जायगी और यही मनुष्यके सुखोंको बढ़ानेवाली होगी। मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंपर इसी विद्याका राज्य है। विद्यासे ही सभी मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंका तेज बढ़ सकता है। मानवी बुद्धियोंपर विद्याकाही साम्राज्य है।

यह विद्याका उत्तम सूक्त है और इसका जितना मनन किया जाय, उतना वह अधिक बोधप्रद होनेवाला है।

(२) द्वितीयोऽनुवाकः ।

इन्द्रः

(११-१०) मधुच्छन्दा वैधमित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

सुरूपकृन्तुमृतये सुदुधामिव गोदुहे ।

जुहमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।

गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।

मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

परे हि विग्रमस्मृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।

यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

उत ध्रुवन्तु नो निद्रो निरन्यतश्चिदारत ।

दधाना इन्द्र इह दुवः ॥ ५ ॥

उत नः सुभगां अरिर्वोच्युर्दस्म कृपयः ।

स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्चिरं नृमादनम् ।

पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो धनो वृत्राणामभवः ।

प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।

धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

यो रायोऽश्वानिमहान्सुपारः सुन्वतः सखा ।

तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अन्वयः — गोदुहे सुदुधामिव, यवि सखि उत्तम सुरूपकृन्तुं जुहमसि ॥ १ ॥ हे सोमपाः ! नः सवना उप धा-

गहि, सोमस्य पिब, रेवतः मदः गोदा इव ॥ २ ॥ अथ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम, (त्वं) नः मा अति ख्यः, आ गहि ॥ ३ ॥ परा इहि, यः ते सखिभ्यः वरं आ (यच्छति, तं) विग्रं अस्तुतं विपश्चितं इन्द्रं पृच्छ ॥ ४ ॥ इन्द्रे इव दुवः दधानः, ध्रुवन्तु, नः निद्रः अन्यतः चित् उत निः आरतः ॥ ५ ॥ हे दस्म ! अरिः नः सुभगान् वोच्युः, उत कृपयः (च वोच्युः), इन्द्रस्य शर्मणि स्याम इव ॥ ६ ॥ आशवे ई यज्ञश्चिरं, नृमादनं, पतयत् मन्दयत्सखं आशुं आ भर ॥ ७ ॥ हे शतक्रतो ! अस्य पीत्वा वृत्राणां धनः अभवः, वाजेषु वाजिनं प्र भावः ॥ ८ ॥ हे शतक्रतो ! इन्द्र ! धनानां सातये वाजेषु तं वाजिनं त्वा वाजयामः ॥ ९ ॥ यः रायः अश्वानिः, महान् सुपारः, सुन्वतः सखा, तस्मै इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अर्थ— गौके दोहनके समय जिस तरह उत्तम दूध देनेवाली गौको ही बुलाते हैं उस तरह, प्रतिदिन अपनी सुरक्षा के लिये सुन्दर रूपवाले इस विश्वके निर्माता (इन्द्र) की हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥ हे सोमपान करनेवाले इन्द्र ! हमारे सोमरस निकालनेके समय हमारे पाम आशु, सोमरसका पान करो, (तुम जैसे) धनवाद्का हर्ष निःसंदेह गाँव देनेवाला है ॥ २ ॥ तेरे पामकी सुमतिसे हम प्राप्त करें, (तुम) हमें छोड़कर अन्यके समीप प्रकट न होओ, हमारे पाम ही भाजो ॥ ३ ॥ (हे मनुष्य !) न दूर जा और जो तेरे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ धनादि (देता है उम) ज्ञानी, पराजित न हुए कर्मप्रवीण इन्द्रने पृच्छ के और (जो भांगना है वह उमने भांग) ॥ ४ ॥ इन्द्रकी ही उपपन्न

सौन्दर्य देनेवाला। जो करना है वह अलंन सुन्दर बनानेवाला। यह इन्द्रकी कुशल कारीगरीका वर्णन है। मनुष्य भी अपने अन्दर इस तरहकी कर्ममें कुशलता लाये और बढावे।
 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।' (ऋ० ६।४७।१८)
 इन्द्र अपनी कुशलताओंसे अनेक रूप होकर विचरता है। इन्द्र अनेक रूप इतनी कुशलताके साथ लेता है कि वह पहचाना नहीं जाता। ऐसा बहुरूपिया इन्द्र है। यह भी इन्द्रकी कुशलताका ही उदाहरण है। वैसी ही कुशलता इस पदमें वर्णन की है। इन्द्र जो बनाता है वह सुन्दर बनाता है। इन्द्र पद परमात्माका वाचक है और उसमें ये पद पूर्णतया सार्थ होते हैं। अन्यत्र अंशरूप सार्थकता समझनी चाहिये।

२ सोमपाः — सोमरसका पान करनेवाला।

३ गो-दाः — गौवं देनेवाला।

४ अ-स्तृतः — अपराजित, जिसको कोई परास्त नहीं कर सकता ऐसा अजेय वीर।

भी करे।

१२ ते अन्तमानां मृमतीनां विद्याम- इन्द्रके जो उत्तम बुद्धियां हैं उनको हम प्राप्त हों। वीर बुद्धि हो और वह उत्तम मन्त्रणा या परामर्श दूसरोंको दे दे।

१३ सखिभ्यः वरं आ (यच्छति)- मित्रोंको और श्रेष्ठ वस्तुओंका प्रदान करता है। मित्रोंको कल्याण कारी वस्तु ही दी जाये।

१४ इन्द्रस्य शर्मणि स्वाम- इन्द्रके सुखमें हम रहें। इन्द्र सुख देता है। वैसा सुख वीर सब लोगोंको दे दे।

१५ वृजाणां धनः- धरनेवाले शत्रुका विनाश करने वाला। वीर अपने शत्रुका नाश करे।

१६ वाजेषु वाजिनं प्रायः, वाजेषु वाजिनं वाजय युद्धोमें बल दिखानेवालेकी सुरक्षा कर।

१७ धनानां सातिः- इन्द्र धनोंका प्रदान करता है। वीर धन कमाता चले और उसका जनताको उन्नतिके दान भी करे।

१८ रायः अवनिः- धनोंकी सुरक्षा कर,

११ महान् सुवारः- तुममें उत्तम पार है ना ।
 करने मन्त्र-उपासने क्या ही बोध दिया है । सुभा
 रता, धनवान् मौजोंका पावन सराय करें और मौजोंका
 भी है, अपने दुर्गि सुमेरुकासंग करें और तुममें
 सम सदा है, करने मित्रोंके श्रेष्ठ मनुष्य प्रदान करें,
 सुखोंको सुख दे दें, करने मनुष्य नाम करें, तुममें मौजोंके
 देनेवालोंकी सहायक करें, अपने धर्मोंका उत्तम दान करें,
 नकी सुरक्षा करें, तुममें पार ऐश्वरीय योजना करें । ये
 देव इस मन्त्रके मनुष्योंके मित्र हैं ।

पाठक इस तरह मन्त्रके पद्यद्वारा मन्त्र करें और उसके
 देनेवाला बोध जनता को ।

इस मन्त्रमें 'इन्द्रे दुर्ध्वं दधानाः' ऐसा मन्त्रभाग है,
 इन्द्रकी उपासनाका धारण करनेवाले । ऐसा इसका कार्य
 है । इससे पता चलता है कि इन्द्रकी उपासनाका मत धारण
 क्या जाता था । इसी सूत्रके ५ वें मन्त्रमें (निद्रः) निन्द्रक
 १। वे संभवतः इन्द्रकी उपासना करनेवालोंके द्रोही या
 नैतिक होंगे । वे दूर भाग जायें और हम इन्द्रकी उपासना
 सदासांग करें । वागोंके छठे मन्त्रमें कहा है कि ये ही शत्रु
 हों कि हम इन्द्रकी उपासनासे (सुमेरु) भाग्यवाद बन
 गये हैं । इन्द्रकी उपासना करनेवालोंका भाग्य बढ़ता है
 यह देखकर अन्य लोग भी इस उपासनाका धारण
 करेंगे । यह वास्तव यहाँ दीक्षा है ।

इन्द्र

(१११-१०) महेच्छन्दा वैश्वान्रिः । इन्द्रः । गायत्री ।
 आ त्वेता नि पदितेन्द्रमभि प्र गायत ।
 सखायः सोमवाहसः ॥ १ ॥
 पुरुतमं पुरुषामीशानं वायामाम् ।
 इन्द्रं सोमं सदा सुते ॥ २ ॥
 स दानो योग आ भुवन् स राये स पुरंध्वाम् ।
 गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥
 यस्य संस्थे न वृषवते हरी समन्तु शत्रवः ।
 तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
 सुतपात्रे सुता इमे मुचयो यन्ति वीतये ।
 सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥
 त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो वज्रायथाः ।
 इन्द्र ज्येष्ठाय सुकतो ॥ ६ ॥

आ त्वा विश्वान्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्यणः ।
 स ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥
 त्वां स्तोमा अवीवृधन्वामुक्थ्य शतकतो ।
 त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
 अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
 यस्मिन् विश्वानि पौल्या ॥ ९ ॥
 मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्यणः ।
 ईशानो यवया वर्धम् ॥ १० ॥

अन्वयः- हे सोमवाहनः सखायः ! आ तु आ इत,
 निरीदित, इन्द्रे जबि प्र गायत ॥ १ ॥ सखा सोमं सुते
 पुरुतमं, पुरुषों वायामां ईशानं इन्द्रं (जबि प्र गायत)
 ॥ २ ॥ स घ नः योगे, सः राये, स पुरंध्वां आ भुवन् । सः
 वाजेभिः नः आ गमन् ॥ ३ ॥ समन्तु यस्य संस्थे हरी
 शत्रवः न वृषवते, तस्मै इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥ इमे सुताः
 मुचयोः दध्याशिरः सोमासः सुतपात्रे वीतये यन्ति ॥ ५ ॥
 हे सुकतो इन्द्र ! त्वं सुतस्य पीतये ज्येष्ठाय सद्यः वृद्धः
 वज्रायथाः ॥ ६ ॥ हे गिर्यणः इन्द्र ! सोमासः आशवः त्वां
 आविशान्, ते प्रचेतसे सं सन्तु ॥ ७ ॥ हे शतकतो ! त्वां
 स्तोमा, त्वां उक्थ्य अवीवृधन्, नः गिरः त्वां वर्धन्तु ॥ ८ ॥
 अक्षितोतिः इन्द्रः यस्मिन् विश्वानि पौल्या सहस्रिणं इमं
 वाजं सनेन् ॥ ९ ॥ हे गिर्यणः इन्द्र ! मर्ताः नः तनूनां ना
 अभिद्रुहन्, ईशानः वर्धं यवय ॥ १० ॥

अर्थ- हे स्तोत्र पाठक मित्रो ! जानो, यहाँ आजो, बैठो,
 और इन्द्रके ही स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥ सबके द्वारा मिलकर
 सोमरस निकालनेपर, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, बहुत पास रखनेयोग्य
 धनके स्वामी, इन्द्रकी (स्तुतिका गान करो) ॥ २ ॥ वही
 इन्द्र निश्चयसे हमें प्राप्ति की प्राप्ति करानेमें, धन-प्राप्तिमें
 और विशाल बुद्धि करनेमें सहायक होवे, वह अपने अनेक
 सामर्थ्योंके साथ हमारे पास आ जाये ॥ ३ ॥ युद्धोंमें जिसके
 रथमें घोड़े जुत जानेपर शत्रु जिसको पकड़ नहीं सकते,
 उसी इन्द्रका काव्यगायन करो ॥ ४ ॥ ये सोमरस छान कर
 पवित्र किये और दही मिलाकर सोम पीनेवाले इन्द्रके पानेके
 लिये सिद्ध हुए हैं ॥ ५ ॥ हे उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र !
 तू सोमरस पीनेके लिये और श्रेष्ठ होनेके लिये सबर ही
 बड़ा हो गया है ॥ ६ ॥ हे स्तुति-योग्य इन्द्र ! ये सोमरस
 तेरे चन्द्र प्रविष्ट हों और तेरे चित्रको जानन्द देते रहें ॥ ७ ॥

का धारण करनेवाले घोषणा करके कहें कि, हमारे सब निन्दक दूर जायें और वहाँसे भी वे भाग जायें ॥ ५ ॥ हे सनत्त नामार्थवाले इन्द्र ! हमारे शत्रुभी हमें भाग्यवान् कहें, इसी तरह सभी मनुष्य (कहें), हम इन्द्रके ही आश्रयमें रहेंगे ॥ ६ ॥ इन्द्रको यह यज्ञकी शोभा बढाने-वाला, मनुष्योंको जानन्द देनेवाला, यज्ञको संपन्न करने-वाला, जानन्द देनेवालेका मित्र जैसा यह सोमरस भरपूर दे ॥ ७ ॥ हे सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! इस सोमरसके योगसे तुम दुर्गोंका नाश करनेवाले बने हो, इसीसे तुम लोगोंमें दीर्घता सुरक्षा करने हो ॥ ८ ॥ हे सैकड़ों कर्म करने-वाले इन्द्र ! अमोघ दान करनेके लिये तुम्होंमें बलवानेवाले तुम्हारे इस अन्न प्रदान करने हैं ॥ ९ ॥ जो तुम्हें धनकारश्चक प्रदान करने के लिये देनेवाला, यज्ञकर्ताका मित्र है उसी

५ विपाश्चित् — ज्ञानी, विद्यावान् ।

६ विग्रः — मेधावान्, प्रज्ञावान् (निर्व. ३१) जिसकी बुद्धिकी ग्राहक शक्ति विशेष है । जिसकी नहीं होती ।

७ शतक्रतुः — सैकड़ों कर्म करनेवाला, बड़े बड़े करनेवाला ।

८ वाजी — बलवान्, अन्नवान् ।

९ द्रुम — शत्रुका नाश करनेवाला, सुन्दर ।

इन पदोंद्वारा कर्मकी कुशलता, गौओंका दान स्वभाव, अपराजित रहनेका बल, ज्ञान और धारणा अनेक बड़े कार्य करनेकी शक्ति, सामर्थ्यवान्, शत्रुका करना आदि गुणोंका वर्णन हुआ है । ये गुण मानवी अत्यंत ही आवश्यक हैं । अब वाक्योंद्वारा इन्द्रके

हे सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ये स्तोत्र तेरी और ये गान तेरी वधाई करें, हमारी वाणियाँ तेरी यशोवृद्धि करें ॥ ८ ॥ जिसकी रक्षाशक्तिमें कभी न्यूनता नहीं होती वह इन्द्र, जिसमें सब बल समाये हैं, ऐसा सहस्रोंके पालन करनेके सामर्थ्यसे युक्त बल हमें देवे ॥ ९ ॥ हे स्तुतियोग्य इन्द्र ! कोई भी मानव हमारे शरीरोंको किसी तरहका उपद्रव न दे सके, और तू सबका ईश है इसलिये वध हमसे दूर कर दे ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनके लिये निम्नलिखित पद प्रयुक्त हुए हैं—

१. पुरुतमः— जिसके पास अत्यंत धन है। जो सबका पालन और पोषण करता है वह 'पुरु' है और वही पालनपोषणका कार्य अत्यंत पूर्ण रीतिसे करता है, इसलिये वह 'पुरु-तम' है। अत्यंत श्रेष्ठ, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, मनुष्य श्रेष्ठ बने।

२. पुरुणां वार्याणां ईशानः— अनंत धनोंका स्वामी, जिसके पास जनताका पालनपोषण करनेवाले सब प्रकारके पर्याप्त धन हैं। मनुष्य अपने पास धन रखे।

३. सुत-पाया— सोमरस पीनेवाला।

४. सुकनुः— उत्तम कर्म करनेवाला।

५. वृद्धः— बड़ा हुआ, श्रेष्ठ।

६. विर्यशः— प्रशंसाके योग्य।

७. प्रचेतस्— धिमेय विचारशील, ज्ञानी।

८. शनशनुः— सैकड़ों कर्म करनेवाला, सैकड़ों प्रकारकी बुद्धियाँ जिसके पास हैं।

९. अक्षित-ऊतिः— जिसके पासके संरक्षणके साधन सभी न्यून नहीं होते, मदा जिसके पास पर्याप्त सुरक्षाके साधन रहते हैं।

१०. ईशानः— जो समर्थ प्रभु है।

जनताका पालन करनेके साधन अपने पास रखना, अनेक धन अपने पास रखना, रस पीना, उत्तम कर्म करना, अपने संरक्षक होने, प्रशंसाके योग्य बनना, विचारशील बनना, सैकड़ों उत्तम कर्म करना, अपने पास अनेक सुरक्षाके साधन रखना और सामर्थ्य युक्त होना यह उपदेश ये पद दे रहे हैं। इनमेंसे कौनसे पद उपदेश इन पदोंमें मिलता है।

११. इस सूक्तमें निम्न लिखित वाक्य जो उपदेश देने हैं वे हैं—

११. स योगे राये पुरन्ध्यां आभुवत्— वह धन और सुशुद्धि देता है। वैसा मनुष्य जो जिसके हो वह उसको देवे, धनका प्रदान करे, और उत्तम देता रहे।

१२. समत्सु शत्रवः यस्य न वृण्वते— शत्रु जिसको घेर नहीं सकते। मनुष्य ऐसा सामर्थ्य करे कि जिससे वह शत्रुको भारी हो जावे।

१३. ज्यैष्ठ्याय वृद्धः अजायथाः— श्रेष्ठ होनेके बड़ा हुआ। मनुष्य श्रेष्ठ बने और बड़ा बने।

१४. अक्षितोतिः इन्द्रः विश्वानि पाँस्या, वाजं सनेत्— अक्षय रक्षासाधनोंसे संपन्न इन्द्र और सहस्रोंका पालन करनेवाला अन्न देता है। इसी मनुष्य अपने पास अनेक रक्षा साधन रखे और और का पालन पोषण होने योग्य अन्नका प्रदान करे।

१५. ईशानः वधं यवय— परिस्थितिका स्वामी और मृत्यु दूर कर। मनुष्य अपनी परिस्थितिका करे, उसपर अपना अधिकार चलावे और दुःख तथा दूर करे। दीर्घायु बने।

इस तरह प्रत्येक पदका और प्रत्येक वाक्यका करके मानव धर्मका बोध वेदमंत्रोंसे प्राप्त करना योग्य है जैसा इन्द्र करता है वैसा मनुष्य करे और अपनेमें स्थिर करे।

इन्द्रः, मरुतश्च

(६।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ इन्द्रः; ४, ६, ७ मरुतः; ८, ९ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रः। गायत्री।

गुञ्जन्ति वधनमरुतं चरन्तं परि तस्त्थुपः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

गुञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णं नृवाहसा ॥ २ ॥

केतुं कृण्वन्केतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुपद्मिरजायथाः ॥ ३ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।

दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

वीलु चिदरुजन्तुभिर्गुहा चिदिन्द्र चद्रिभिः
अविन्द उस्त्रिया अनु ॥ ५ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विद्वद्भुं गिरः ।
महामनूयत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अग्निभ्युपा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवयैरभिधुभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिजग्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्वृज्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

अन्वयः- अरुणं चरन्ते ममं परि तस्युपः युजन्ति, (तस्य) रोचना दिवि रोचन्ते ॥ ६ ॥ अस्य रथे विपक्षसा काम्या शोणा णू नृवाहसा हरी युजन्ति ॥ ७ ॥ हे मर्याः ! अनेतये नृ कृण्वन्, अपेक्षसे पेशाः (कृण्वन्), उपदिः सं अजा- पाः ॥ ८ ॥ आत् अट्, स्वर्धा अनु, यजिये नाम दधानाः (विरतः) गर्भत्वं पुनः पुरिरे ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! चीलु चित् आर- णुभिः वहिभिः गुहा चित् उत्तिया अनु अविन्द्रः ॥ ५ ॥ देवयन्तः गिरः महो विद्वद्भुं श्रुतं यथा मतिं, अच्छ अनूपत ६ ॥ अग्निभ्युपा इन्द्रेण संजग्मानः सं दृक्षसे हि । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥ मरुतः अनवयैः अभिधुभिः काम्यैः गणैः केन्द्रस्य सहस्वन् अर्चति ॥ ८ ॥ हे परिजग्ना ! अतः आगहि, रूपः वा, रोचनाम् अधि, अरिमन् गिरः सं अज्जते ॥ ९ ॥ तः पार्थिवात्, दिवः वा, महो वा रजसः इन्द्रं साति अभि महे ॥ १० ॥

अर्थ- अहिंसित परंतु गतिगाम् सूर्यके रूपमें अवस्थित (इन्द्र) के साथ चारों ओरसे सब पदार्थ अपना संबंध जोड़ते हैं, (इसके) किरण सुलोकमें प्रकाशते हैं ॥ ६ ॥ मरु (इन्द्र) के रथमें शुराके दोनों ओर जोड़े, प्रिय, आलस्यवाले, शत्रुका धर्षण करनेवाले, घोरोंको डोनेवाले दो द्वि जोते रहते हैं ॥ ७ ॥ हे मनुष्यों ! आगतीनको ज्ञान प्राप्त हुआ, स्पर्शितको स्पर्शवा (परता हुआ) उपार्जित । आत् (यह सूर्यरूप इन्द्र) समस्त रीतिसे प्रवृत्त हुआ ॥ ८ ॥ निधयसे अरुणों प्राप्ति की दृष्टा बरसे, दानसे प्राप्त दान धारण करनेवाले (ये तीरे मरुत्) गर्भोंको पुनः प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! बज्रवात् सुते- धारण प्राप्त करनेमें समर्थ अभिप्रेत (अरुणों के साथ

रहनेवाला तू शत्रुकेद्वारा) गुहामें रखी हुई गाँधीको भी प्राप्त कर सका ॥ ५ ॥ देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करने- वाले स्तोता जन बड़े धनवान् और ज्ञानी (मरुत्) की, अपनी बुद्धिके अनुसार मुख्यतासे स्तुति करते रहे ॥ ६ ॥ न करनेवाले इन्द्रके साथ जानेवाला (यह मरुत्समूह) दीखता है । ये दोनों (इन्द्र और मरुत्) सदा आनंदित और समान रूपसे तेजस्वी हैं ॥ ७ ॥ यह वज्र विदों पर तेजस्वी और प्रिय मरुत्तोंके साथ रहनेवाले इन्द्रकी बल- पूर्वक पूजा करता है ॥ ८ ॥ हे चारों ओर जानेवाले सहज ! यहांसे आओ, सुलोकसे आओ अथवा इस तेजस्वी सूर्य- लोकसे आओ, क्योंकि इस यज्ञमें सब स्तुतियां मिलकर तेरी ही प्रसाधना करती हैं ॥ ९ ॥ इस पार्थिव लोकसे, सुलोक- से अथवा बड़े अन्तरिक्षलोकसे (लाया हुआ धन हम) इन्द्रके पाससे दानरूपमें पानेकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें सूर्यरूप धारण किये इन्द्रकी स्तुति है । इस सूक्तमें इन्द्रके गुण बतानेवाले ये पद हैं—

१ अट् — बड़ा, आकारमें सबसे बड़ा,

२ अ-रुण जिसका कोई घानपात नहीं कर सकता,

३ चरन्— चलने, किरने, घूमनेवाला, हलचल करनेमें समर्थ, (ये तीनों पद सूर्यके भी विशेषण हैं, पर यहां इन्द्रके वर्णनमें आये हैं ।)

४ अग्निभ्युप — न करनेवाला, निर्भीक, भयगिन,

५ मन्दू — आनन्दित, मदा प्रसन्न,

६ चरन् — तेजस्वी, प्रकाशमान,

ये पद निम्नलिखित अधिमानवर्गों दे रहे हैं— बड़ा मनो, सुहारी कोई हिंसा न कर सके ऐसा मान-पेदा करनेवाला, मदा हलचल करे, निडर मनो, आनन्दप्रसन्न होने और तेजस्वी बनकर रहे । अट् इस सूक्तमें चारों ओर जो अधि मित्या है वह यह है—

७ अनेतये केन कृण्वन्— अजातीको ज्ञान देता है । अजातीको ज्ञान देना सर्वत्र जाने, निरन्तरको साधन करने ।

८ अपेक्षसे पेशाः कृण्वन्— मरुतीनको सुख करनेवाले हैं । जो सुख नहीं है उसको सुख करनेवाले ।

९ चीलु आरुणानुभिः गुहा उत्तिया अनु अविन्द्रः— आरुणानुभिः की संज्ञकतासे अहिंसित मरुत् न कर सकते हैं । इस सूक्तमें हमें सूर्यके इन्द्र के साथ बतलाते हैं । अनेतये

हे सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ये स्तोत्र तेरी और ये गान तेरी बधाई करें, हमारी वाणियाँ तेरी यज्ञोवृद्धि करें ॥ ८ ॥ जिसकी रक्षाशक्तिमें कभी न्यूनता नहीं होती वह इन्द्र, जिसमें सब बल समायें हैं, ऐसा सहस्रोंके पालन करनेके सामर्थ्यसे युक्त बल हमें देवे ॥ ९ ॥ हे स्तुतियोग्य इन्द्र ! कोई भी मानव हमारे शरीरोंको किसी तरहका उपद्रव न दे सके, और तू सबका ईश है इसलिये वध हमसे दूर कर दे ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनके लिये निम्नलिखित पद प्रयुक्त हुए हैं—

१. पुरुतमः— जिसके पास अत्यंत धन है। जो सबका पालन और पोषण करता है वह 'पुरु' है और वही पालनपोषणका कार्य अत्यंत पूर्ण रीतिसे करता है, इसलिये यह 'पुरु-तम' है। अत्यंत श्रेष्ठ, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, मनुष्य श्रेष्ठ बने।

२. पुरुषां वार्याणां ईशानः— अनंत धनोंका स्वामी, जिसके पास जनताका पालनपोषण करनेवाले सब प्रकारके पदार्थ भृत हैं। मनुष्य अपने पास धन रखे।

३. मृत-पाया— सोमरस पीनेवाला।

४. मुक्तुः— उत्तम कर्म करनेवाला।

५. वृद्धः— बड़ा हुआ, श्रेष्ठ।

६. निर्धनः— प्रशंसार्ह योग्य।

७. प्रवेनसु— विविध विचारशील, ज्ञानी।

८. शतक्रतुः— सैकड़ों कर्म करनेवाला, सैकड़ों प्रकारके कृत्योंसे जिसके पास है।

९. अश्विन-जनिः— जिसके पासके मंत्रश्रवणके माधन कभी न्यून नहीं होते, मन्त्रा जिसके पास पर्याप्त सुरश्रावणके माधन होते हैं।

१०. ईशानः— जो समर्थ प्रभु है।

उपरोक्त वर्णन करनेके माधन अपने पास रखना, अनेक कृत्यों में अपने पास रखना, रस पीना, उत्तम कर्म करना, निर्धन से भक्त होना, प्रशंसार्ह योग्य बनना, विचारशील बनना, विविध विचार करने, अपने पास अनेक सुरश्रावणके माधन रखना और माधनसे युक्त होना यह उपदेश ये पद दे रहे हैं। अतएव इन्द्र के लिये यह वर्णन इन्द्र पदोंमें मिलता है।

इस सूक्तमें निम्न लिखित वाक्य जो उपदेश देने हैं

११. स योगे राये पुरन्ध्या आभुवत्— धन और सुखदि देता है। वैसा मनुष्य जो जिसके पास हो वह उसको देवे, धनका प्रदान करे, और उत्तम देता रहे।

१२. समस्तु शत्रवः यस्य न वृण्वते— शत्रु जिसको धर नहीं सकते। मनुष्य ऐसा सामर्थ्य करे कि जिससे वह शत्रुको भारी हो जावे।

१३. ज्यैष्ठ्याय वृद्धः अजायथाः— श्रेष्ठ होनेका बड़ा हुआ। मनुष्य श्रेष्ठ बने और बड़ा बने।

१४. अश्वितोतिः इन्द्रः विश्वानि पौंस्या, वाजं सनेत्— अश्व रक्षासाधनोंसे संपन्न इन्द्र और सहस्रोंका पालन करनेवाला अन्न देता है। इसी मनुष्य अपने पास अनेक रक्षा साधन रखे और और का पालन पोषण होने योग्य अन्नका प्रदान करे।

१५. ईशानः वधं यवय— परिस्थितिका स्वामी और मृत्यु दूर कर। मनुष्य अपनी परिस्थितिका करे, उसपर अपना अधिकार चलावे और दुःख तथा दूर करे। दीर्घायु बने।

इस तरह प्रत्येक पदका और प्रत्येक वाक्यका करके मानव धर्मका बोध वेदमंत्रोंसे प्राप्त करना योग्य जैसा इन्द्र करता है वैसा मनुष्य करे और अपनेमें स्थिर करे।

इन्द्रः, मरुतश्च

(६।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ इन्द्रः; ४, ५ मरुतः; ६, ७ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रः। गायत्री

युञ्जन्ति बधनमरुतं चरन्तं परि तस्थुषः
राचन्ते राचना दिवि ॥ १ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे
शोणा धृष्णं नृवाहसा ॥ २ ॥

केतुं कृण्वन्नकतवे पशो मया अपशसे।
समुपद्रिगजायथाः ॥ ३ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भन्वमरिं।

दधाना नाम यदियम् ॥ ४ ॥

वांष्ट्र चिदाकजन्तुभिर्गुहा चिदिन्द्र यदिभि
अविन्द उम्रिया अनु ॥ ५ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विद्वस्तुं गिरः ।
महामनूयत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दक्षसं संजग्मानो अविभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनघचैरभिद्युभिर्मखः सहस्रवर्चसि ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परित्मज्ञा गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृज्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

अन्वयः- मरुतं चरन्तं प्रभं परि तस्थुषः युञ्जन्ति, (तस्य) यथा दिवि रोचन्ते ॥ ६ ॥ अस्य रथे विपक्षसा काम्या शोणा गृह्णाहसा हरी युञ्जन्ति ॥ ७ ॥ हे मर्याः ! अनेतवे ! कृण्वन्, अपदासे पैदाः (कर्षन्), उपक्षिः सं अजागः ॥ ८ ॥ आगृह, स्वर्धो अनु, यज्ञियं नाम दधानाः (रुतः) गर्भत्वं पुनः परिरं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! वीलु चित् आरु-
नुभिः वह्निभिः गुहा चित् उत्तरिया अनु अविन्दः ॥ ५ ॥
इयन्तः गिरः महो विद्वस्तुं श्रुतं यथा मतिं, अच्छ अनूपत ॥ ६ ॥ अविभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः सं दक्षसे हि । मन्दू मानवर्चसा ॥ ७ ॥ मन्दः अनवर्चः अभिद्युभिः काम्यैः गणैः न्द्रस्य सहस्रवर्चसि ॥ ८ ॥ हे परिजम् ! अतः आगहि, (तः) वा, रोचनाद् अधि, अस्मिन् गिरः सं प्रज्जते ॥ ९ ॥ गः पार्थिवात्, दिवः वा, महो वा रजसः इन्द्रं सातिं अधि मते ॥ १० ॥

अर्थ- अस्मिन्ति परंतु गतिमान् सूर्यके रूपमें अविभ्युषा (इन्द्र) के साथ चारों ओरसे सब पदार्थ अपना संबंध होता है, (तस्य) विरण सुलोकमें प्रकाशते हैं ॥ ६ ॥ ग (इन्द्र) के रथमें एतारे दोनों और जोड़े, प्रिय, गणवर्णवाले, सदावा धर्मण वरनेवाले, दोनों ही होनेवाले दो ही जोते रहते हैं ॥ ७ ॥ हे मरुयो ! आनंदीसकी जनता हुआ, अपरिचितको रूपवान् (वरता हुआ) उदासीन भाव (या सूर्यरूप इन्द्र) समस्त विहित प्रकट हुआ ॥ ८ ॥ निष्ठयमे अतया आदिनीं एतया वरने, सत्यमे ता एतया वरना धारण करनेवाले (ये और मरुत्) दोनों ही इन्द्र प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! वरदान तुल्य-
आनंदका प्राप्त करनेसे समस्त अस्मिन्ति (मरुतों के साथ)

रहनेवाला न अनुकेद्वारा) गुहामें रखी हुई गोशोंको भी प्राप्त कर सका ॥ ५ ॥ देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करने-
वाले स्तोता जन बड़े धनवान् और ज्ञानी (मरुत्) की, अपनी बुद्धिके अनुसार मुख्यतासे स्तुति करते रहे ॥ ६ ॥ न डरनेवाले इन्द्रके साथ जानेवाला (यह मरुत्समूह) दीखता है । ये दोनों (इन्द्र और मरुत्) सदा आनंदित और समान रूपसे तेजस्वी हैं ॥ ७ ॥ यह यह निद्रोप तेजस्वी और प्रिय मरुत्समूहोंके साथ रहनेवाले इन्द्रकी वल-
पूर्वक पूजा करता है ॥ ८ ॥ हे चारों ओर जानेवाले मरुत् ! यहांसे आजो, सुलोकसे आजो अथवा इस तेजस्वी सूर्य-
लोकसे आजो, क्योंकि इस वनमें सब स्तुतियां मिलकर तेरी ही प्रसाधना करती हैं ॥ ९ ॥ इस पार्थिव लोकसे, सुलोक-
से अथवा बड़े अन्तरिक्षलोकसे (लाया हुआ धन हम) इन्द्रके पाससे दानरूपमें पानेकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें सूर्यरूप धारण किये इन्द्रकी स्तुति है । इस सूक्तमें इन्द्रके गुण बतायेवाले ये पद हैं—

१ ब्रह्म — बड़ा, आकारमें सबसे बड़ा,

२ अ-रूप जिसका कोई घातघात नहीं कर सकता,

३ चरन् — चलने, गिरने, घूमनेवाला, हलचल करनेमें समर्थ, (ये तीनों पद सूर्यरे भी विनियोग हैं, पर यहां इन्द्रके वर्णनमें आये हैं ।)

४ अविभ्युष — न डरने वाला, निर्भीक, भयमंजित,

५ मन्दु — आनन्दित, मरुत् प्रभृति,

६ धर्मस् — तेजस्वी, प्रकाशमान,

ये पद विस्मयितकर दो रमानंदकी वृत्ति हैं — बड़ा आनंद, सुशायी कोई हिंसा न कर करे ऐसा आनंद, ईश्वर आनंद, मरुत् आनंदका आनंद, निद्रा करने, आनन्दप्रसन्न होने और तेजस्वी बनकर रहने । अतः इस सूक्तमें मरुतों का जो भी है मिलता है वह यह है—

७ अनेकतेज केतु सूर्यरूप — अनेकतेजों वाला सूर्य । अज्ञानीको ज्ञान देनेवाला सूर्य, निद्राप्रसन्न होने वाला ।

८ अंतरहित पैदाः सुवर्चस् — अंतरहितको सूर्य प्रकाश है । जो सुख नहीं है उसको सुख प्रकाश है ।

९ दीप्ति आनन्दप्रसन्नः सुता उन्मिषा — सूर्य दीप्ति आनन्दप्रसन्न है । दीप्तिमान् सूर्यको दीप्तिमान् कहते हैं । उन्मिषा अ-
रुचिकारका होनेसे रुचिकारका होकर आनंद प्रकाश करने वाला ।

होती है। यह भी हमें कि जो सूर्यके गर्वोंकी ओर निकले, और सूर्यका प्रभाव करने वाला प्रकृति और प्रकाश करने देते ।

१२ अथर्ववेदः मंत्राणां नामः— न अथर्ववेदके साथ मिलकर अथर्ववेदका । निम्न कीर्ति का भाग देते ।

१३ इन्द्रोऽस्मिन् यथा ईश्वरः— इन्द्रके प्रभावसे हमें प्रकाश प्राप्त करना चाहते हैं । ऐश्वर्यवान् ही ऐश्वर्य को हमें देती ।

ये उपदेश स्पष्ट हैं, अतः इन्द्रके विषयों करनेकी कोरे भावः प्रकृति होती है । इस सूत्रमें कुछ शास्त्रीय विज्ञान के हैं, उनका भव विचार करने हैं—

सूर्यका आकर्षण

अरुणं चरन्तं ग्रहं परि तस्मिन् भुजः मुञ्चन्ति ।
(तस्य) रोचना दिशि गमन्ते ॥ १ ॥

‘ अविनाशी, गतिशील महान् सूर्यके साथ उगते आरों ओर रहनेवाले सब पदार्थ जुड़े हुए हैं । ’ आकर्षण-संबंधों से जुड़े रहते हैं । इस सूर्यके किरण आकाशमें प्रकाशते हैं । यहाँ सूर्यका यह आकर्षण-संबंध अन्य सब सूर्यमालिकाके पदार्थोंके साथ है ऐसा स्पष्ट कहा है । सूर्य (ग्रहः) बड़ा है, सूर्यमें गुरुता या गुरुत्व है, इस गुरुताका ही यह संबंध है । इस गुरुत्वाकर्षणके संबंधसे सब पदार्थ, विश्वकी सब वस्तुएँ, सूर्यसे बंधी गयी हैं ।

अनेक उपाओंके पश्चात् सूर्यका आना

उपद्भिः सं अजायथाः ॥ ३ ॥

अनेक उपाओंके पश्चात् सूर्य उत्पन्न होता है । अनेक उपाओंके पश्चात् सूर्यका उदय उत्तरीय भुव-प्रदेशमें ही दीखनेवाला दृश्य है । ‘ उपद्भिः ’ का अर्थ ‘ किरण ’ करते हैं, परन्तु ‘ उपाओंके पश्चात् ’ ऐसा ही इसका अर्थ है । उत्तरभुव-प्रदेशमें अनेक उपाओंके पश्चात् ही सूर्य उदय होता है ।

मरुतोंका वर्णन

इस सूक्तमें मरुतोंका भी वर्णन है । यह वर्णन मरुतोंके लोका है, इसमें निम्नलिखित पद अत्यंत महत्त्वके हैं—

१ वींछु आरुजंतुः— वलवान् और सुदृढ शत्रुका पूर्ण न करनेवाला मरुतोंका समूह है । वलवान् शत्रुका पूर्ण

नाश करनेकी शक्ति प्राप्त करने में चाहते हैं ।

२ वृद्धिः— अग्नि तेजः तेजस्वी वनः । मृगयति— लावते ।

३ अथ अरुजंतुः— अरुजंतु वनः ।

४ मृगयति— तेजस्वी वनः ।

५ काश्यपः— विपत्ति वनः ।

६ अथ मरुतः— मरुतः ।

७ अग्निः— अग्नि वनः । अग्नि वनः ।

ये विवेचन वीर केने हैं, हम विवृणुका वीर केने मनुष्य मरुतोंके समान वीर बनें । अग्निमें अग्नि वनः शत्रुका भी नाश करे । अग्निमें मरुतों केने विपत्ति वनः निंदनीय कार्य न करें, वनःकी सेवा उसका विपत्ति बनें, सब प्रमाण करने अग्निको वीर वीर उनका नाश करें ।

देवत्वकी प्राप्ति

छंद मन्त्रों ‘ देवत्वपन्तः ’ पद है । देवत्वकी प्राप्ति करनेवाले उपायक होने हैं । मनुष्य देवत्वकी प्राप्ति करने । यदी वेदके भूमिों कायलता है कि देवत्वसे युक्त हो जाय । यद केने वने ? जो देवत्वप्राप्ति सूक्तों और मन्त्रोंमें वर्णन किये हैं उनको अपनेमें स्थिर करे और बराबे । यदी साधना है, यदी अनुष्ठान अग्नि, इन्द्र, मरुत, विश्वे देव, मित्र और वरुण, आदि देवोंके सूक्त यहाँ तक आये हैं । इन देवोंके हतने सूक्तोंमें हैं । यहाँ देवोंके वर्णनोंमें जो पद प्रयुक्त हैं उन पदोंसे व्यक्त होनेवाले गुण साधक अपनेमें पा करें । जितना इन गुणोंका धारण साधक करेंगे उतनी उन साधकोंकी होगी । इस साधनाको बतानेके लिये हमने पदों और वाक्योंका अलग स्पष्टीकरण यहाँ किया और आगे भी ऐसा ही बताया जायगा ।

इन्द्र

(७।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रमिद्राधिनी बृहदिन्द्रमर्कोभिरर्किणः ।

इन्द्रं वाणीरनूपत ॥ १ ॥

इन्द्र इन्द्रयोः सचा संमिश्र आ वचोयुजा ।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयद्वि ।

वि गोभिरद्रिमेरयत् ॥ ३ ॥

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।

उग्र उग्राभिरुतिभिः ॥ ४ ॥

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।

युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥

स नो वृषन्नमु चरं सत्रादावन्नपा वृधि ।

असभ्यमप्रतिष्कृतः ॥ ६ ॥

तुजे तुजे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।

न विन्दे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियत्याजसा ।

ईशानो अप्रतिष्कृतः ॥ ८ ॥

य एकध्वर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।

इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।

अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

अन्वयः- गाथिनः इन्द्रं इत् वृहत् (अनूपत) । अर्किणः

भिः इन्द्रं (अनूपत) । वाणीः (च) इन्द्रं अनूपत ॥ १ ॥

इन्द्रः इत् वचोयुजा हव्योः सचा आ संमिष्ठः । (अयं)

इन्द्रः वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे सूर्य

वि भारोहयत् । (सः) गोभिः अर्द्रि वि ऐरयत् ॥ ३ ॥

इन्द्र ! (त्वं) उग्रः उग्राभिः उतिभिः वाजेषु सहस्र-

प्रधनेषु च नः अय ॥ ४ ॥ वयं महाधने इन्द्रं (हवामहे) ।

(वयं) अर्भे (अपि) वृत्रेषु वज्रिणं युजं इन्द्रं हवामहे ॥ ५ ॥

सत्रादावन् वृषन् ! सः नः अमुं चरं अपा वृधि । असभ्यं

मप्रतिष्कृतः ॥ ६ ॥ तुजे-तुजे ये स्तोमाः उत्तरे (सन्ति तैः)

वज्रिणः अस्य इन्द्रस्य सुष्टुतिं न विन्दे ॥ ७ ॥ अप्रतिष्कृतः

ईशानः वृषा भोजसा कृष्टीः वंसगः यूथा-इव इयति ॥ ८ ॥

यः एकः चर्षणीनां (इरज्यति), वसूनां इरज्यति, स इन्द्रः

पञ्च क्षितीनां (ईशः भक्तिः) ॥ ९ ॥ विश्वतः जनेभ्यः परि

इन्द्रं यः हवामहे । (सः) अस्माकं केवलः अस्तु ॥ १० ॥

अर्थ- गायन करनेवाले (गाथिनः) इन्द्रकी ही वृह-

त्सामसे स्तुति गाते हैं, अर्चना करनेवाले स्तोत्रोंसे इन्द्रकी

ही अर्चना करते हैं । हमारी सब वाणियों इन्द्रकी ही प्रशंसा

करती हैं ॥ १ ॥ इन्द्र निःसन्देह शत्रुओंके इशारेसे ही

चलाये जानेवाले घोड़ोंको जोतनेवाला है । (यह) इन्द्र

वज्रधारी और सुवर्णके आभूषण पहननेवाला है ॥ २ ॥ इन्द्र

ने दीर्घकालतक प्रकाश मिले इसलिये सूर्यको सुलोकमें ऊपर

चढाया है । वह सूर्य किरणोंसे पर्वतोंको प्रेरित करता है

॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! (तू) वीर है इसलिये वीरतासे होने-

वाले संरक्षणोंसे युद्धोंमें तथा धन प्राप्तिके सहस्रों साधनोंसे

हमारी सुरक्षा कर ॥ ४ ॥ हम जैसे बड़े युद्धमें इन्द्रकी

सहायता चाहते हैं, वैसे ही हम स्वल्प धन प्राप्तिके प्रयत्नमें

भी, तथा वृत्रोंके साथ होनेवाले युद्धमें गुटनेवाले इन्द्रकी

सहायता चाहते हैं ॥ ५ ॥ हे अभीष्ट फल इकट्ठा ही देने-

वाले बलवान् इन्द्र ! वह तू हमारे लिये यह अन्नका खजाना

खोल दे । तथा हमारे विरुद्ध न हो जाओ ॥ ६ ॥ शत्रुका

नाश करनेवाले वीरके विषयमें जो स्तोत्र उत्तमसे उत्तम

(हैं, उनमें) वज्रधारी इस इन्द्रकी स्तुति होने योग्य एक

भी स्तोत्र नहीं मिलता है ॥ ७ ॥ विरोध न करनेवाला प्रभु

बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे सब प्रजाओंको वैसा प्रेरित

करता है जैसा सांड गौओंकी झुण्डको ॥ ८ ॥ जो अकेला

ही मनुष्योंपर स्वामित्व करता है, धनोंपर स्वामित्व करता

है । वह इन्द्र पाँचों मानवोंका एक ही प्रभु है ॥ ९ ॥ सब

मानवोंपर स्वामित्व करनेवाले इन्द्रकी हम आप सबके हितार्थ

प्रार्थना करते हैं । वह इन्द्र केवल हमारा ही सहायक

हो ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रका वर्णन करनेवाले जो पद हैं, उनका

अव विचार कीजिये—

१ वज्री- वज्र धारण करनेवाला,

२ हिरण्ययः- सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाला,

सुनहरी बेलवृटीके वस्त्र पहननेवाला,

३ उग्रः- शूरवीर, बड़ा प्रतापी वीर,

४ सत्रादावन्- एक साथ अनेक दान करनेवाला,

५ वृषा- बलवान्, सुखोंकी वृष्टि करनेवाला,

६ अप्रतिष्कृतः- अप्रतिष्कृतः- विरोध न करने-

वाला, निषेध न करनेवाला,

७ ईशानः- स्वामी, प्रभु, अधिपति,

इसमें 'हिरण्यय' पदसे इन्द्रके पोशाकका ज्ञान होता

है, वह सुवर्णाभूषण तथा सुनहरी बेलवृटीके उग्र पहनता

था । वज्रधारण करना, बलवान् होना हुआ भी धनुषायि-

कोंका विरोध नहीं करता और उनसे कपट दान देना

था। अब इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनपरक वाक्योंका भाव देखिये—

८ वचोयुजा हर्योः सचा- केवल इशारेसे ही जान-
चाले घोड़ोंको रथमें जोतनेवाला। इस तरहके शिक्षित
घोड़ोंको अपने पास रखनेवाला।

९ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः वाजेषु नः अघ- वीर
अपने प्रतापी सुरक्षा करनेके साधनोंसे युद्धोंमें हमारी रक्षा
करे। वीर अपने पास सुरक्षाके उत्तम साधन रखे और
उनसे वह हमारी रक्षा करे।

१० सहस्र-प्रथनेषु च अघ- धन-प्राप्तिके सहस्रों
कार्योंमें हमारी सुरक्षा हो।

११ सः (त्वं) नः अमुं चरुं अपावृधि- वह तू
हमारे लिये इस अन्नके खजानेको खोल दे। इस जलाशयको
खुला कर दे। अन्न और जल सबको मिले ऐसा कर। अन्नके
ऊपरका टक्कन खोल दे।

१२ वृषा ओजसा कृषीः इयति- बलवान् वीर
अपने सामर्थ्यसे सब लोगोंको प्रेरित करता है, सबको
मार्गदर्शन करता हुआ, उन्नति पथसे चलाता है। प्रेमसे
सबको चलाता है।

१३ एकः पञ्च चर्पणीनां क्षितीनां इरज्यति- एक
ही प्रभु सब पाँचों मानववंशोंका राजा है। सब मानवोंका
पूज्य ही राजा हो।

१४ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं हवामहे- सब
जगत्पूज्य प्रभु बननेवालेकी हम प्रशंसा करते हैं।

सूक्तमें कविका नाम

इस सूक्तके प्रारम्भमें 'इन्द्रं इष्टाशिनो वृद्धत्' यह
श्लोक है। उसमें 'गाथिनः' पद है, यह इस सूक्तके
कविका सूचक है। इस सूक्तका ऋषि 'मधुच्छन्दा' है,
यस्य त्रि (विश्वामित्रः) विश्वामित्रका पुत्र है और विश्व-
ामित्र (गाथिनः) गाथा या गाथि कुलमें उत्पन्न हुआ है,
इसलिए मधुच्छन्दा भी 'गाथिनः' अर्थात् गाथिकुलका
है। 'विश्वामित्रो गाथिनः' के सूक्त नीमरे मण्डल
में आरम्भमें उल्लेख है, अन्तमें विश्वामित्र पुत्रोंके कुछ सूक्त
का उल्लेख इस स्थिति में उल्लेख है ऋषि देखें। यद्यपि
'गाथिनः' पद सामान्य करनेवालेके अर्थमें यहाँ
उल्लेख नहीं है, किन्तु अनेक गौरवका भी उल्लेख

करना है ऐसा पता लगता है।

सुदीर्घ प्रकाश

इस सूक्तमें सुदीर्घ प्रकाश देनेके लिये इन्द्रने
आकाशमें ऊपर चढ़ाया ऐसा लिखा है—

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस्त आ सूर्यं रोहयद्दि
वि गोभिः अट्टि पेरयत् ॥ ३ ॥

'इन्द्रने सुदीर्घ प्रकाशके लिये सूर्यको धुलोकमें
चढ़ाया और उस सूर्यने पश्चात् अपने किरणोंसे
विशेष प्रकारसे चलाया।'

यह वर्णन सूक्ष्म दृष्टिसे देखने योग्य है। इन्द्र
था, उस समय सूर्य नीचे था, उस समय अन्धेरा भी
पश्चात् इन्द्रने सूर्यको धुलोकपर चढ़ाया, सूर्य वहाँ
और वहाँसे सुदीर्घ काल तक वहाँ रहता हुआ प्रकाश
रहा। सूर्यके इस प्रदीर्घ कालके प्रकाशके किरणोंसे
भी विचलित हुए, पिघलने लगे। बर्फ पिघलकर पानी
जल चूने लगा।

हमारे देशमें प्रतिदिन सूर्य धुलोकमें अर्धात् आकाश
मध्यमें नियत समय चढ़ता और वहाँ प्रकाशता है। प्रति
दिन प्रायः यह ऐसा ही होता है। इसको कोई प्रदीर्घ
कालतक प्रकाशना नहीं कहेंगे।

अनेक उपासकोंके पश्चात् सूर्यके उदय होनेका वर्णन
क्र. १।१।३ में देख लिया है। जहाँ अधिक उपासकोंके
सूर्य जाता होगा, उसी प्रदेशमें सूर्य धुलोकमें
अधिक दिनतक रहना होगा और वहाँ अधिक दीर्घ
भी होती होगी।

सर्वसाधारणतः छः मासकी रात्रि और छः मासकी
उत्तरीय ध्रुवमें होता है। इसमें एक मासका उपःकाल,
मासका मध्य संध्याकाल और दोप रात्रिका अग्रपण्ड
का समय और अग्रपण्ड प्रकाशका भी उतना ही
होना है।

यहाँ सूर्य बिल्कुल मध्य आकाशमें कभी जाता ही नहीं
नौ वज्रेसे साठेदस वज्रेतक सूर्य जहाँ रहता है वहाँ।
सूर्य रहा हुआ सोल इर्दगिर्द घूमता है। किसी पक्ष
प्रदक्षिणा करनेके समान सूर्य घूमता है। प्रदक्षिणा करने
कालका इसी सूर्यसे प्रचलित हुई होगी।

१. १९५३-५४ में १००० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 २. १९५४-५५ में १२०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 ३. १९५५-५६ में १४०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 ४. १९५६-५७ में १६०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 ५. १९५७-५८ में १८०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 ६. १९५८-५९ में २००० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 ७. १९५९-६० में २२०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 ८. १९६०-६१ में २४०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 ९. १९६१-६२ में २६०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।
 १०. १९६२-६३ में २८०० करोड़ रुपये का बजट पेश किया गया था।

एवा हि ते विभूतयः ऊतय इन्द्र माचते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुपे ॥ ९ ॥
एवा हास्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपातये ॥ १० ॥

अन्वयः— हे इन्द्र ! सानसिं सज्जित्वानं सदासहं
विंष्टं रयिं ऊतये वा भर ॥ १ ॥ येन त्वोत्तासः मुष्टिहस्त्या
सर्वता वृत्रा नि रणधामहे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! त्वोत्तासः
धनं धना वज्रं वा द्ददीमहि, सुष्टि रथः सं जयेम ॥ ३ ॥
हे इन्द्र ! वयं शूरेभिः वस्तुभिः त्वया युजा वयं पृतन्यतः
सिंहायाम ॥ ४ ॥ इन्द्रः महान् परः च, नु वज्रिणे महित्वं
स्तु, चाः न दावः प्रथिना ॥ ५ ॥ ये नरः समोहे, लोकस्य
निर्ता वा, विप्रासः वा धियायवः, आशत ॥ ६ ॥ यः
सोमपातमः कुक्षिः समुद्र इव पिबन्ते, काकुद्ः उर्वीः आपः
॥ ७ ॥ अस्य विरप्शी गोमती मही, नृनृता दाशुपे एवा
पता शाखा न ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! ते विभूतयः एवा हि,
तवते दाशुपे ऊतयः सद्यश्चित् सन्ति ॥ ९ ॥ अस्य स्तोमः
कथं च एवा हि काम्या शंस्या सोमपातये इन्द्राय ॥ १० ॥

अर्थ— हे इन्द्र ! सेयनीय, सदा विजयी, सदा शत्रुका
राभव करनेवाले, सामर्थ्यसे युक्त, श्रेष्ठ धन, हमारी सुरक्षा
के लिये, हमारे पास भरपूर भर दे ॥ १ ॥ जिस धनसे
हरी सुरक्षासे सुरक्षित हुए हम, मुष्टि-प्रहारसे और बन्धुबुद्ध
के शत्रुओंका निरोध कर सवेंगे, (ऐसा धन हमें दे दो)
॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तेरेसे सुरक्षित हुए हम सुख प्राप्त (हाथमें)
लेने और बुद्धमें रक्षार्थ करनेवाले शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे
॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम शूर और शत्रुपर प्रहार करनेमें वनात
सोडाओंके साथ, तथा तेरे साथ रहने हुए, हमपर सेनासे
बचाई करनेवाले शत्रुको, परास्त करेंगे ॥ ४ ॥ इन्द्र बड़ा
है और श्रेष्ठ भी है, इस इन्द्रका महत्त्व सदा स्थिर रहे,
इसका सुलोकसे समान विस्तृत सामर्थ्य फैला जाय ॥ ५ ॥
हो (यम) शूर लोग तुझमें प्राप्त करने हैं, जो तुझकी
शक्तिमें आश्रय मिलता है, वही शानी लोग मुष्टिबी वृत्र
हममें संपादन करते हैं, ॥ ६ ॥ जो इन्द्रके वेष्टका भाव
सोमस्य रश्मिसे समुद्र ऐसा पृथक् है वैसा हमके सुखका
भाव सोमस्यसे बड़े पैमाने भर जाय ॥ ७ ॥ इस इन्द्रकी
कृपासे हमारे हाथ, सोमस्यसे सोमस्य, सुख सदा प्राप्त
होगा जिसे देवी अम्बिका देवी हैं, देवी दुर्गा देवी

कलौकी शाखा ॥ ८ ॥ तेरी विभूतियों ऐसी हैं, मुझ जैसे
दाताके लिये तेरी संरक्षक शक्तियाँ सदैव मिलती हैं ॥ ९ ॥
इसके स्तोत्र और स्तोत्रगान ऐसे प्रिय और वर्णनीय हैं,
सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये ही ये समर्पित हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं—
१ इन्द्रः महान्— इन्द्र बड़ा है, गहां इसका महत्त्व
वर्णन किया गया है ।

इसके अतिरिक्त ' वज्रिन् ' (वज्रधारी) पद है जिस
का आशय पूर्व स्थानमें अनेक बार आया है ।

२ वज्रिणे महित्वं अस्तु— वज्रधारी शूर इन्द्रका
महत्त्व प्रख्यात होवे । जो शूर है और जो अपने शस्त्रसे
शत्रुको परास्त करता है, उसको महत्त्व प्राप्त होता है ।

३ अस्य विरप्शी नृनृता दाशुपे एवा हि— इस
इन्द्रकी उत्तम स्पष्ट चाणी दाताके लिये ऐसा ही सुख देती
है । इसी तरह लोग दाताका कल्याण करनेके लिये ही
सपना भाषण करें । जो योलें उससे सबका हित हो ।

४ दाशुपे ऊतयः सद्यः सन्ति— दाताके लिये सुरक्षाएँ
तत्काल प्राप्त हों ।

दान करनेकी इच्छा यदायी जाय । इन्द्र उदार दाताकी
सहायता करता है, वैसेही मय लोग अन्योकी सहायता
करें । यह इस सूक्तका तात्पर्य है । इन्द्र जिस तरह सबकी
सुरक्षा करता है, वैसे ही मय लोग करें । हम गृहमें
निम्नलिखित मंत्रों पेदा की गयी हैं—

वीरतावाला धन

१ सानसिं, सज्जित्वानं सदासहं, यविंष्टं, रयिं
ऊतये आभर— स्वीकार करने योग्य, विजयगीत, यदा
शत्रुका नाश करनेमें समर्थ, श्रेष्ठ धन हमारी सुरक्षा करनेके
लिये हमें भरपूर भर दे । यहां धन भरपूर मांगा है, परन्तु
मय केवल धनही नहीं है, परन्तु वयं ' यविंष्टं रयिं ' श्रेष्ठ
धन है, हमें ऐसे श्रेष्ठ धन चाहिए, मध्यम वा निम्न धन
नहीं चाहिये । धन हमें प्रकाश दे, हममें श्रेष्ठ संपत्ति
करिष्ठ धन ही चाहिये । समुद्र करने दास हममें समस्त
धन संपन्नता प्राप्त करे । हमें वयं ' धन ' ही मरनी है,
हमारे दास हममें हममें हो, हममें वयं वयं न हो,
दास धनके विपरीत हममें दास दास हममें वयं दास

(वि-रूपशी) विशेष सुन्दर स्वरालापोंसे युक्त वाणी , सुन्दर मधुर कोमल वाणी हो, (गो-मती) गति-ली, प्रवाहयुक्त, प्रगतिशील वाणी हो, (मही) महत्व-ली, यही श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त और (सूनृता=सु+नृ+ता) उत्तम मानवता जिससे प्रकट होती है, मनुज्यवृत्ता का विकास करनेवाली, जिस वाणीमें पशुता या वसुरता नहीं और जिससे मानवता प्रकट होती है ऐसी वाणी मनुज्यों की बोलनी चाहिये ।

इस सूक्तमें धन और वाणीका वर्णन मनुज्योंके लिये करने योग्य है । मनुज्यमें स्वभावतः वाणी है, मनुज्य को कैसी उन्नत और प्रयुक्त करे, यह बात यहां कही है । मनुज्यको धन चाहिये, वह धन भी कैसा हो, यह भी यहां बताया है । ये दोनों महत्वपूर्ण विषय इस सूक्तमें अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं । पाठक इनको समझें और धन करके सपनायें ।

इन्द्रः

(११-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।
इन्द्रेहि मत्सन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महां अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चकिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥
मत्स्वा सुशिप मन्दिभिः स्तोमभिर्विश्ववर्णैः ।
सर्वेषु सपतेष्वा ॥ ३ ॥
अमृमभिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुद्धासत ।
अजोपा नृपभं पतिम् ॥ ४ ॥
तं नोदय विभ्रमर्वाग्वाध इन्द्र वरेणम् ।
समदिक्षे विभु प्रभु ॥ ५ ॥
अरमान्स्व तत्र नोदयेन्द्र राये रभस्वतः ।
तुविशुम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु ध्रुवो दृहन् ।
विश्वानुप्रेतक्षितम् ॥ ७ ॥
अस्मे धेहि ध्रुवो दृहन् ध्रुवो दृहन् सप्तमम् ।
इन्द्र ता रथिनी रथः ॥ ८ ॥
यसो रथिन्द्र वसुपति गोभिर्गुणान्तः प्रमिदम् ।
होम गन्तारं गन्तये ॥ ९ ॥

५ (मृ०)

सुते सुते न्योक्तसे बृहद्बृहत् एतदि ।
इन्द्राय शूपमर्वति ॥ १० ॥

अन्वयः- हे इन्द्र ! एहि, विश्वेभिः सोमपर्वभिः अन्धयः मसि । ओजसा महान् अभिष्टिः ॥ १ ॥ सुते ई मन्दि चकिं एनं विश्वानि चक्रये मन्दिने इन्द्राय आ सृजत ॥ २ ॥ हे सुशिप ! मन्दिभिः स्तोमभिः मत्स्व । हे विश्ववर्ण ! एषु सवनेषु सचा आ (गच्छ) ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! ते गिरः अमृप्रम् । नृपभं पतिं त्वां प्रति उन् महासत अजोपाः ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! वरेण्यं चिभ्रं राधः अर्वाक् सं नोदय, ते विभु प्रभु अस्व दय ॥ ५ ॥ हे तुविशुम्न ! इन्द्र ! राये रभस्वतः यशस्वतः अस्मान् तत्र सु नोदय ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! गोमत्, वाजवत्, पृथु, दृहन्, विश्वानुः अक्षितं ध्रुवः, अस्मे सं धेहि ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! दृहन् ध्रुवः सप्तमसातमं सुम्न अस्मे धेहि । ताः इयः रथिनीः ॥ ८ ॥ वसोः उत्तये वसुपतिं क्षमिमं गन्तारं इन्द्रं गोभिः गुणान्तः होम ॥ ९ ॥ आ इत् क्षमि सुते सुते दृहन् शूपं न्योक्तसे बृहत् इन्द्राय अर्वति ॥ १० ॥

अर्थ- हे इन्द्र ! (हमारे) समीप आ । तब सोमके पर्वोंसे निकाले वस्तु (इस रथका पान करके) आनेगि हो । (नृ पतिने) सामर्थ्यसे (हमारा) यश ही सदायक है ॥ १ ॥ सोमरथ निकालनेपर आनन्ददायक, कर्मवर्धक, इस (सोमरथको), यद कर्म करनेवाले आनन्द-युक्त इन्द्रके लिये (प्रभु) रथ दी ॥ २ ॥ हे सुन्दर मनु-नाले इन्द्र ! हमें यशानेवाले इन गोदोंसे आनेगि हो जाओ । हे मर मानदोंका जित करनेवाले इन्द्र ! इन गोमके पर्वतोंमें (अन्य देवोंके) नाम जाओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तेरी (सुनि करनेके लिये ही मैंने अपनी) वाणियों उद्योगी है । दलमाही, सबके पालनकर्ता तुमको (ये सुनिनी) पटुनी हैं, (और तुमने उनका) स्तोत्र भी किया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मेरा और विश्ववर्णोदयः पति अमृम भेज दो । मेरे पास वह विभ्रमर्वाही रथ नि मन्दिने है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! मेरा ध्रुव धनवाने इन्द्र ! तब प्रभु करनेके लिये प्रवर्तनीय और यशस्वी ऐसे हम सबको तुम (सोम कर्मों) देकर कर । ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तेरी रथी तुम, दृहन् तुम, वाजवत्, विश्वानु, पृथु वासु विपति, अजोपा अजोपा अजोपा अजोपा ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! वसो वसुपति, गोभिः गोभिः होम करनेवाला, धन हमें दे दो । हे इन्द्र ! तेरी रथी तुम

हैं ॥ ८ ॥ धनकी सुरक्षाके लिये धनपालक, स्तुतियोग्य यज्ञके प्रति जानेवाले इन्द्रकी स्तुति हम अपनी वाणियोंसे करने हैं ॥ ९ ॥ प्रगतिशील मानव प्रत्येक सोमयागमें बड़े बलकी प्राप्तिके लिये शाश्वत स्थानमें रहनेवाले बड़े महान् इन्द्रकी पूजा करता है ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्न लिखित विशेषण आये हैं—

१ सु-शिप्र— उत्तम हनुवाला, उत्तम नासिकावाला, अथवा जिसकी नासिका और हनु सुन्दर हैं ।

२ वृषभः— बल जैसा बलिष्ठ, वीर्यवान्, शक्तिमान् ।

३ पतिः— पालनकर्ता, स्वामी, अधिपति ।

४ तुवि द्युम्नः— अत्यंत प्रकाशमान, बहुत धनवाला, अति तेजस्वी ।

५ वसुपतिः— धनका स्वामी ।

६ ऋग्मियः— ऋचाओंसे जिसकी प्रशंसा होती है, प्रशंसित स्तुत्य ।

७ गन्ता— चलनेवाला, चलनेमें अग्रेसर, यज्ञ जैसे शुभ कर्मोंमें जानेवाला ।

८ ओजसा महान् अभिष्टिः— अपनी विशाल शक्तिसहस्रायता करनेवाला, संरक्षण करनेवाला, शत्रुपर हमला करनेवाला ।

९ विश्वानि चक्षिः— सब प्रकारके महान् कार्य करनेवाला, सब गुरूपार्थ करनेवाला ।

१० मन्दी— आनंदित, हर्षयुक्त, सदा हास्ययुक्त, उल्लासवृत्तिवाला ।

११ सन्ना आ— अपने साथ (श्रेष्ठ वीरोंको) रखनेवाला ।

१२ विश्व चर्षणिः— सब मानवोंका हित करनेवाला ।

१३ न्योकः— बड़े विशाल घरमें रहनेवाला ।

ये पद इस सूक्तमें इन्द्रके गुण दर्शाते हैं । ये गुण मनुष्य को अपनाते चाहिये । इनमें 'सुशिप्र' पदसे हनु और नासिकाका संदर्भ बताया है, यह हर कोई मनुष्य अपना नहीं सकता । परन्तु वेप पद मनुष्यके लिये बोधप्रद हो सकते हैं । साथक बल बढ़ावे, अपने अनुयायियोंका पालन करे, अपनी तेजस्विता बढ़ावे, धनका संग्रह करे, प्रशंसित, शीघ्रतासे चलनेका अभ्यास बढ़ावे, अपनी शक्तिके द्वारा जनताकी सहायता करे, सदा अच्छे कर्म करता रहे,

सदा आनंदित रहे, अच्छे भद्र गुणोंको अपने पास इत्यादि बोध उक्त पद दे रहे हैं ।

धन कैसा हो ?

किस तरहका धन प्राप्त करना योग्य है, इस पर इस सूक्तके निर्देश मनन करने योग्य हैं—

१ वरेण्यं चित्रं विभु प्रभु राधः— श्रेष्ठ प्रकारका, विशेष बढनेवाला, विशेष प्रभावी और पहुंचानेवाला धन हो, तथा—

२ गोमत्, वाजवत्, पृथु, वृहत्, विश्वायु, श्रवः— गौओंके साथ रहनेवाला, बलके साथ तेजस्वित, बड़ा, पूर्ण आयुक्त जीवित रहनेवाला, यश देनेवाला धन हो, तथा—

३ वृहत् श्रवः, सहस्रसातमं द्युम्नं— सहस्रोंको दान दिया जानेवाला तेजस्वी धन हो ।

४ वसु— जो मनुष्योंके सुखपूर्वक निवासका हेतु हो ऐसा धन हो ।

धनका वर्णन करनेवाले ये पद देखनेसे धन कैसा चाहिये इस बातका पता लग सकता है । धन श्रेष्ठ विविध प्रकारका हो, विशेष पराक्रम और प्रभाव वाला हो, अन्तिम सिद्धितक पहुंचानेवाला हो, गौओंका पालन होता रहे, बल बढ़ता जाय, आयु सहस्रोंको दान देनेके बाद भी कम न हो, मनुष्यका सुखसे व्यतीत हो जाय । (क्र. १।८।१-२ में) जो धनका वर्णन पूर्वस्थानमें आया है वह भी इसके साथ देखें । इस सूक्तकी एक विशेषता यह है कि यहाँ धनकी प्रार्थना नहीं है, प्रत्युत धन प्राप्तिके लिये स्वयं करनेका भी उपदेश है, देखिये—

प्रथम अपना प्रयत्न

५ रभस्वतः यशस्वतः अस्मान् राये च हम प्रयत्न करते हैं, यश मिलनेतक हम यत्न करते इतना करनेके बाद हमें ईश्वर अनुकूलतापूर्वक धन यहाँ प्रथम धन प्राप्त करनेके लिये बड़ा प्रयत्न करना और यश मिलनेतक यत्न करते रहना चाहिये ऐसा है वह बड़े महत्त्वका है । अपना प्रयत्न प्रथम होना यश मिलनेके लिये जो भी किया जा सकता है,



सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ १ ॥
पूर्वोऽरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्युतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते
मधम् ॥ ३ ॥
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥
त्वं बलस्य गोमतोऽपावरट्टिवो विलम् ।
त्वां देवा अविभ्युपस्तुज्यमानास आविपुः ॥ ५ ॥
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेपां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूपत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

अन्वयः— विधाः गिरः, समुद्र—व्यचसं, रथीनां रथी-
तमं, वाजानां पतिं, सत्पतिं इन्द्रे अवीकृधन् ॥ १ ॥ हे
शवसस्पते इन्द्र ! ते सख्ये वाजिनः मा भेम । जेतारं अपरा-
जितं त्वां अभि प्रणोनुमः ॥ २ ॥ इन्द्रस्य रातयः पूर्वाः ।
स्तोतृभ्यः गोमतः वाजस्य मधं यदि मंहते, उतयः न वि
दस्यन्ति ॥ ३ ॥ पुरां भिन्दुः, युवा कविः, अमितांजाः,
विश्वस्य कर्मणः धर्ता पुरुष्टुतः वज्री इन्द्रः अजायत ॥ ४ ॥
हे अट्टिवः ! त्वं गोमतः बलस्य विले अप अवः । तुज्यमानासः
देवाः अविभ्युपः त्वां आविपुः ॥ ५ ॥ हे शूर ! तव रातिभिः
महं सिन्धुं आवदन् प्रत्यायं । हे गिर्वणः ! कारवः उप
अतिष्ठन्त, तस्य ते विदुः ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! त्वं मायिनं शुष्णं
मायाभिः अवातिरः । मेधिराः तस्य ते विदुः । तेषां श्रवांसि
उत्तिर ॥ ७ ॥ स्तोमाः ओजसा ईशानं इन्द्रं अभि अनूपत ।
यस्य रातयः सहस्रं सन्ति, उत वा भूयसीः ॥ ८ ॥

अर्थ— सब वाणिज्यी, समुद्र जैसे विस्तृत, रथियोंमें
श्रेष्ठ रथी, बलों (वा जनों) के स्वामी, सजनोंके पालन
कर्ता इन्द्र (के महत्व) को बढ़ाते हैं ॥ १ ॥ हे बलोंके
स्वामी इन्द्र ! मेरी मित्रतामें (रहकर) बलिष्ठ बने इस
विश्वमें उठते रहो । तब विजयी और कर्मा पराजित न
बने। इन प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्रके दान प्राचीन
से (किये जाते हैं) । गोमात्रोंके दान गोमाँसे

प्राप्त शवका दान जो देने हैं, उनके लिये इन्द्र
कभी कम नहीं होने ॥ ३ ॥ प्रबुद्ध गरीबों
तकण धानी, अपरिमित बलवान्, सब कर्म
कर्ता, बहनों द्वारा प्रशंसित, वज्रधारी इन्द्र (इन्द्र)
हुआ है ॥ ४ ॥ हे पर्यंतपरसे लड़नेवाले इन्द्र
हीन लेनेवाले बल असुरके (दुर्गके) दान
दिया है । (इस युद्धमें) मेघस्ता हुए देव (तेरे
कारण) न डरते हुए तेरे पास पहुँचे ॥ ५ ॥
तेरे दानोंसे (उन्माहित हुआ) मैं, मोमर
करवा हुआ, तेरेपास पुनः (दान लेनेके लिये)
हे स्तुत्य इन्द्र ! जो कारीगर तेरे पास पहुँचते
सहिमाको जानते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तूने मा
असुरको अपनी कुशल योजनाओंसे परान्त
मेधावी लोग तेरे (इस महत्त्वको) जानते
यशोंको तू बढ़ाओ ॥ ७ ॥ सब यज्ञ अपने साम
इन्द्रकी प्रशंसा फैलाते हैं । उस इन्द्रके दान
अथवा उससे भी अधिक हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुणोंका वर्णन

१ समुद्र-व्यचाः— समुद्रके समान विस्तृत
बड़ा, समुद्रके पार जिसकी प्रशंसा फैली है;

२ रथीनां रथीतमः— रथियोंमें श्रेष्ठ वीर,
वीर, शूरोंमें शूर,

३ वाजानां पतिः— बलोंका स्वामी, जनों
बहुत संख्यामें जिसके पास अनेक सामर्थ्य हैं ।

४ सत्पतिः— सजनोंका पालन करनेवाला,
'परित्राणाय साधूनां' (गी० १८/८) भगवान्
की रक्षा करनेवाला कहा है, वही भाव यहाँ है
वृष्णि थे, यह 'वृष्णि' पद इन्द्रवाचक है
(क. ११/०१२) आया है । दुष्ट कर्म करनेवाला
करनेवाला तो अनेक बार कहा ही गया है ।

५ शवसः—पतिः— बलका स्वामी, बलिष्ठ,

६ जेता— जयवाली, विजयी, जीतनेवाला,

७ अपराजित— जो कभी पराजित नहीं है
विजयी,

८ पुरां भिन्दुः— बड़की नगरियोंको, बड़

नेवाला,

१० सुवा— तरुण, जवान्

१० कविः— कवि, ज्ञानी, विद्वान्,

११ अमित-ओजाः— अपरिमित सामर्थ्यवान्

१२ विश्वस्य कर्मणः धर्ता— सब कर्मोंका धारण

वाला, सब कर्मोंका आधार, सब कर्मोंका संचालक,

१३ वज्री— वज्रधारी,

१४ पुन-स्तुतः— अनेकोंद्वारा प्रशंसित,

१५ अद्वि-चः— पर्यन्तपर रहनेवाला, सैनोंमें रहनेवाला,

परके कीलोंमें रहकर दाहुले लड़नेवाला,

१६ शूर— शूर वीर,

१७ निर्विणः— स्तुतियोग्य,

१८ ईशानः— स्वामी, अधिपति,

१९ मायिनं मायाभिः अवातिरः— कपटों जगुका

न कपट युक्तियोंसे करनेवाला,

सोमरस

इस सूक्तमें 'सिन्धु' पद सोमरसका वाचक है, इसका कारण यह है कि सोमरस निकालते ही उसमें (सिन्धु) रीका पानी मिलाते हैं और छानते हैं। जिसमें नदीका नी मिलाया जाता है उसका नाम सिन्धु ही है।

बल असुर

बल नामक असुर था, वह गोवं सुरा कर ले जाता था और किसी गुप्त स्थानमें उसकी बंद करके रखता था। इन्द्र उस स्थानका पता लगाता था, उस स्थानके द्वारको तोड़कर हींको गहले मुक्त करके उनके स्वामीको देता था। गद्यतन— 'गोमतः बलस्य विलं त्यं अप अयः ।' (५) इस मेंमें है।

'बल्' धातुका अर्थ 'घेरना, लपेटना, अलगादन करना, पार करना' है। इस कारण 'बल्' का अर्थ घेरनेवाला, अलगादन करनेवाला' है। 'वृत्' का भी यही अर्थ है। अतएव नीचे प्रदत्तमें सर्वत्र बारण जो वर्ष भूमिपर आया तब्यदिपर गिरता है उसका यह नाम है। भूमिपर लपेटने, बांधा।

उपरी भूवर्गमें लपेटा पटना और वर्ष पटना एक ही समान होता है, अतएव पटनेका ही नाम सर्वत्र बिरतोंपर अन्धेका अलगादन होता, धरती परी गाँधीका हत्या है। सर्व-

किरणोंका नाम गाँवें हैं।

इस अन्धरा, दीर्घरात्री, वर्षाका भूमिपर उड़ान, आदिपर अनेक रूपक वेदमें किये गये हैं; अन्धकारको दूर करना और प्रकाशका फैलाव करना ही धर्म है। यही धर्म इन नाना प्रकारके रूपकों द्वारा बताया है।

सूर्यास्त होता है, यही विवरमें सूर्यको बंद करना है, और सूर्योदयकाही अर्थ उस विवरको तोड़कर सूर्यका तथा किरणोंका बाहर आना है। अतः 'विलं' पद जो यहाँ है वह सार्थ है।

वीरताका आदर्श

इस सूक्तमें इन्द्र वीरताका आदर्श करके वर्णन किया है। ये सब वर्णन पाठक अपने लिये आदर्श समझें और उनको अपनानेके यत्नमें प्रयत्नशील हों। यही वेदोंका मनन, और ध्यान है।

यहाँ प्रथम मण्डलमें 'मधुच्छन्दाका दर्शन' समाप्त होता है।

सोमः

(३० १।१।१-१०) मधुच्छन्दा वैभाषितः।

पवमानः सोमः। गायत्री।

स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्य सोम धारया।

इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

रक्षोहा विश्ववर्षणिगभि योनिमयोहतम्।

शृणा सधस्यमासद्यत् ॥ २ ॥

वरिवोधातमो भव मेहिष्टो नृवहन्तमः।

पापे राधो मधोनाम् ॥ ३ ॥

अभ्यर्ष महानां देवानां योनिमन्धरा।

अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥

त्वामच्छा चरामसि तदिदं दिवे-दिवे।

इन्द्रो न्वे न आशसः ॥ ५ ॥

पुनाति ते परिश्रुते सोमं सूर्यस्य दुहिता।

वरेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

तमीनध्वीः समर्य आ गुभन्ति योपयो दश।

स्वसारः पापे दिवि ॥ ७ ॥

तमीं हिन्दन्त्यश्रुवा धमन्ति वाकुरं एतिस।

त्रिधातु चारणे मधु ॥ ८ ॥

अभीममच्छा उन आलन्ति धेनवः निनुम्।

सोममिन्द्राय पातये ॥ ९ ॥

अंगुलियोंसे यह पकड़ा जाता है और दोनों हाथोंकी लियोंसे बड़ी शक्ति लगाकर दोनों ओरसे दबाकर रस माला जाता है।

अष्टम मंत्रमें यही क्रिसे कहा है। तीन पात्रोंमें यह रस रक्ते हैं। एकके ऊपर दूसरा और दूसरेपर तीसरा ऐसे न पात्र रखते हैं और एकसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें छाना जाता है। अधिक बार छाननेसेही यह अधिक द्रव होता है। यह रस मधुर है और दुःखका निवारण करनेवाला है अर्थात् इसके सेवनसे उन्माद बढ़ता है, रीरिक क्लेश दूर होते हैं और मनुष्यकी कर्मशक्ति ती है।

नवम मंत्रमें सोमरसको बालक या पुत्र कहा है। सोम ही माता है, और यह रस उसका पुत्र है। इसको गौवें दूध माली हैं। इस तरह दूध पीकर यह रसरूपी बालक पुत्र होता है। यह बड़ा उत्तम आलंकारिक वर्णन है। सोमरसको नव मंत्रोंमें 'सिशु' भी कहा है। इसका तात्पर्य यह कि सोमरसमें गौका दूध मिलानेके बादही उसका पान रक्ते हैं।

दशम मंत्रका कथन है कि शूर इन्द्र सोमरस पीकर नन्द-प्रसन्न होता है और इस उत्साहमें सब शत्रुओंका नाश करता है तथा उनका धन अपने राज्यमें लाकर अपने

अनुयायियोंको बांट देता है।

दस मन्त्रोंमें सोमके विषयमें इतना वर्णन है। इस सूक्तों सोमके कुछ विशेषण धीरताका वर्णन करनेवाले हैं। उनका स्वरूप यह है—

१ रक्षो-हा- राक्षसोंका चय करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला,

२ विश्व-चर्याणिः— सब मानवोंका हित करनेवाला, जनताका हित करनेवाला,

३ वरियः-धा-तमः— विपुल प्रमाणमें धन देनेवाला, धनका अधिकसे अधिक दान करनेवाला, (तुलना करो 'रत्न-धा-तमः' से। क्र० ११।१)

४ मंहिष्ठः— महान्, बड़ा,

५ वृत्र-हन्तमः— असुरोंका नाशकर्ता, शत्रुओंका नाशकर्ता, रुकावटोंका खूब विध्वंस करनेवाला।

६ सदस्यं आसीद्— अपने स्थानमें रह, अपने देशमें रह, (तुलना करो 'स्ये दमे वर्धमान' से। क्र० ११।८)

७ मथोनां राधः पथि— शत्रुके धानिकोंका धन लाकर अपने लोगोंको दो। (सूचना— यह शत्रुके धनको लूटनेकी रीति आजतक चली आयी है।)

ये गुण मानवोंके लिये अपनाये योग्य हैं। इनमें धीरता, शत्रुत्व आदि गुण विशेष उल्लेखनीय हैं।

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्दा ऋषिके देवे मंत्र ऋग्वेदके म मण्डलमें १०२ हैं, नवम मण्डलमें सोमदेवताके १० हैं। अर्थात् कुल ११२ मंत्र ऋग्वेदमें हैं और इसके अलावा ऋषिके ८ हैं। सब मिलकर १२० मंत्र होते हैं। मंत्रोंमें इन दो ऋषियोंका सम्बन्धन अर्पित है, जिसे देवता है और उसका मनन करना है। इन मन्त्रोंका ता देवताओंके अनुसार इस प्रकार है।

मधुच्छन्दा विश्वामित्र

प्रथम अनुवाक।

१।१।१—९ अग्निः ९ मन्त्र

१।१—१ वायुः १ ..

२ (मधु०)

१।२।४—६ इन्द्रवायू ३ मंत्र

७—९ मित्रावरुणा ३

३।१—३ अश्विनौ ३

४—६ इन्द्रः ३

७—९ विधे देवाः ३

१०—१२ सरस्वती ३ (मंत्र १०)

द्वितीय अनुवाक।

४।१—१० इन्द्रः १०

५।१—१० .. १०

६।१—१० इन्द्रावरुणा १०

७।१—१० इन्द्रः १० (मंत्र १०)

तृतीय अनुवाक ।

१।१।१—१० इन्द्रः १०

१।१—१० " १०

१०।१—१२ " १२

जेता माधुच्छन्दाः ।

११।१—८ इन्द्रः ८ (मंत्र ५०)

११०

११।१—१० सोमः १० १०

१२०

माधुच्छन्दा मैत्रागिरिके मंत्र ११२

जेता माधुच्छन्दाके " ८ १२०

ऋग्वेद-सूक्तक्रमसे ये मंत्र लिखे हैं, अब देवताके क्रमसे मंत्रसंख्या इसतरह है—

वेदक्रम	मन्त्राधिक्यक्रम
अग्निः ९ मंत्र	इन्द्रः ७३ मंत्र
वायुः ३ "	सोमः १० "
इन्द्रवायू ३ "	इन्द्रावरुणौ १० "
मित्रावरुणौ ३ "	अग्निः ९ "
अश्विनौ ३ "	वायुः ३ "
विश्वे देवाः ३ "	इन्द्रवायू ३ "
सरस्वती ३ "	मित्रावरुणौ ३ "
इन्द्रामरुतौ १० "	अश्विनौ ३ "
इन्द्रः ७३ "	विश्वे देवाः ३ "
सोमः १० "	सरस्वती ३ "
१२० मंत्र	१२० "

इन्द्र ७३, सोम १०, इन्द्रामरुतौ १०, अग्नि ९ शेष (१) वायु—(२) इन्द्रवायू—(३) मित्रावरुणौ—(४) अश्विनौ—(५) विश्वे देवाः—(६) सरस्वती इनमेंसे प्रत्येकके तीन तीन मिलकर उक्त छः देवताओंके १८ होते हैं। ये सब १२० हुए ।

ऋषि देवताओंका साक्षात्कार करते हैं, उन देवताओंमें वे अपने अतीन्द्रिय दृष्टिसे कुछ विशेष गुणधर्म देखते हैं। इनमें कई गुणधर्म ऐसे हैं कि जो अन्य लोग देख नहीं सकते, केवल अमौलिक दिव्य दर्शन करनेवाले ऋषिही देखते हैं, कविही देख सकते हैं। ये इनके जो दर्शन हैं, वे

ऋषियोंके साक्षात्कार दर्शन हैं। ये इन्द्रादीना भक्तका कर्मोपादे हैं।

ऋषिही दृष्टिमें अग्नि मानते हैं, कवि हैं, अग्नि सोमानी स्मरते हैं। ये गुणधर्म साक्षात्कार करने सोममें देव नहीं सकते। अग्निदेवाग्निर्देवी दृष्टि सकते हैं। अग्नि-स्वरूपमें वे देवका कार्य भाग्य ही कारणही देव कायकी विवेचना है और जो विद्वत् दृष्टिमें देवता देवता ऋषियोंका साक्षात्कार नहीं होगी कारण देव कायमें यत्न हुआ है, जो मननपूर्वक देवता योग्य है।

इसके देखनेकी कुछ विवेचना मिली है, उगी रीति यह माननाही देवता जा सकता है। जैसा देवता व्यवहार करने हैं, वैसा व्यवहार मानवीकी करता देवताकी अपना आदर्श मानना आदिमें और उनके बननेका यत्न करना आदिमें।

गर्हणा प्रकुर्वीतत्करवाणि । (श० ब्रा०)

मर्त्या दया अन्नं देवा आरुः॥ (श० ब्रा० ११।१) ११।१

एतेन धं देवा देवत्वमगच्छन् ।

देवत्वं गच्छन्ति य एयं वेद । (ता० ब्रा० २।१।१)

जैसा देव करते हैं वैसा मैं करूंगा । देव प्रथमतः ही थे। वे विद्वत् श्रेष्ठ कर्मके अनुष्ठानसे देवत्वको प्राप्त जो इस अनुष्ठानकी जानता है, वह देवत्व प्राप्त करता ऋग्वेदके मंत्रमें भी कहा है—

मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः । (क्र० १।१।१)

सायणभाष्य-एयं कर्माणि कृत्वा मर्तासो अपि सन्तोऽमृतत्वं देवत्वं आनशुः कृतैः कर्मभिल्लिभिरे । (क्र० १।१।१।४)

‘ऋषुदेव प्रथम मर्त्य थे, पश्चात् शुभ कर्म करनेसे वे प्राप्त हुए।’ इस तरह मर्त्य भी देवत्वको प्राप्त होते देवत्वके गुणधर्मोंको धारण करनेसे मर्त्य देव बनते यही इस सब प्रतिपादनका तात्पर्य है। इस तात्पर्य यह है कि वेदके मंत्रोंमें जो देवोंका गुणवर्णन वह मनुष्योंको अपने जीवनमें धारण करनेके लियेही देवत्व-प्राप्तिका यही अनुष्ठान है।

इस दृष्टिसे मंत्र और सूक्त देखनेसे, उनसे जो मानव-
मिलना संभव है, वह मनुष्यके मनमें मंत्रके मननसे
कर सकता है। उदाहरणके लिये देखिये—

‘इन्द्र वृत्रका वध करता है’ यह एक मंत्रका अर्थ है।
इसका अर्थ ‘धेरकर लड़नेवाला शत्रु’ है। इस मन्त्रसे
मानवको इस क्षात्रधर्मका ज्ञान होता है कि ‘मनुष्य अपने
शत्रुका नाश करे।’ इसीतरह अन्योन्य मन्त्रोंके विषयमें
ज्ञान उचित है। वेदमंत्रोंसे मानवधर्म इस तरह प्रकट
होता है।

देवताके स्थानमें उपासक अपने आपको रखे और
प्रोक्त वर्णन अपना वर्णन होनेके लिये कितने अधिक
अनुष्ठानकी आवश्यकता है, इसकी परीक्षा करे। सोम
अग्निदेवताओंके विषयमें विशेष आलंकारिक रीतिसे बोध
दाता पड़ेगा। सोम—(स+उमा)—विद्या (उमा) है,
इसके समेत विद्वानही सोम है। इस सोमका ज्ञानरूप
है, यही सोमरस है। हरएक मनुष्य ज्ञान ग्रहण करता
है, यह शिष्य गुरुरूपी सोमके ज्ञानरूप रसको पीता है
और ज्ञान ग्रहण करके समर्थ और प्रभावी होता है। इस-
तरह सोमके विषयमें जानना चाहिये।

मन्त्रोंसे अनुष्ठानकी रीति इस तरह जानी जा सकती
है। पाठक मन्त्रोंका मनन करते जायेंगे तो उनको इस
तरह पता लगता जायगा। यहां संकेतमात्र लिखा है।
यदि एक देवताके लिये गुणों का विवरण करना आवश्यक है।
तो देवताके सम्मान अपना जीवन करनाही अनुष्ठानका
मुख्य सूत्र है, इसमें संदेह नहीं है। अब मधुच्छन्दा ऋषिके
श्रुतिगत विचार कीजिये। मधुच्छन्दा ऋषिने जो मन्त्र
प्रोक्त वे यहां १२० हैं। इस ऋषिने कौनसा आदर्श देवता-
पूजामें देखा और उन्होंने यह जनताके सम्मुख रखा है, इस
सूत्रका अब विचार करना है।

अग्नि देव—[आदर्श ब्राह्मण]

प्रथम अनुवाक ।

मधुच्छन्दा ऋषिके इन मन्त्रोंमें अग्निदेवके वर्णनके लिये
मन्त्र है। इनमें निम्न लिखित आदर्श ऋषिने देखा है—

[१] इस सूत्रके ‘पुरोहित. कृत्विक्. होता सं० १’
पद पुरोहितके, कर्मात् प्रत्ययके बोधक है। इन

पदोंसे पुरोहित, कृत्तिकर्म और हवन करनेका भाव
प्रकट होता है। इसतरह अग्नि देवताके मंत्रोंमें ब्राह्मणधर्मकी
शलक दीखती है। ‘होता’ पद ५ वें मन्त्रमें भी पुनः
आया है। वह देवोंको बुलाने, आवाहन करनेका बोध
करता है।

[२] छठे मंत्रका ‘अंगिरः’ (मं० ६) पदभी अंग-
रस-विद्याके प्रचारक तथा अग्निकी उत्पत्ति करके यज्ञ-
विद्याके प्रवर्तक आंगिरस ऋषिका सूचक है।

[३] ‘सत्यः’ (५) और ‘ऋतस्य गोपा’ (८)
सत्यका रक्षक ये पदभी सत्यपालन करनेका गुण बता रहे
हैं। यमनियममें सत्यपालन एक व्रत है, जो इन पदोंसे
बताया है। ‘यज्ञस्य देवः’ (मं० १) ये पद यज्ञका
प्रकाशक होनेका भाव बता रहे हैं। यज्ञमार्गका प्रवर्तन
करनेका भाव इससे स्पष्ट होता है।

[४] ‘अध्वरं परिभूः’ (मं० ४) हिंसारहित यज्ञ-
का करनेवाला है। इसके कर्ममें हिंसा नहीं होती। यम-
नियमपालनमें ‘सत्य’के विषयमें पहिले कहा, अब
‘अहिंसा’के विषयमें यह निर्देश है। अ-हिंसाके लिये
यहाँ ‘अध्वर’ पद है। जो अहिंसामय कर्म है, यही
‘स देवेषु गच्छति’ (४) देवोंके पास पहुंचता है। देव
उस कर्मका स्वीकार करते हैं कि जो हिंसारहित होता है।
हरएकको इस कारण हिंसारहित कर्म करने चाहिये।
इस तरह कर्ममें अहिंसाका पालन करना आवश्यक है।
‘अध्वराणां राजन्’ (मं० ८) अहिंसापूर्ण कर्मोंमें
प्रकाशना आवश्यक है। मनुष्यको अहिंसापूर्ण कर्मोंमेंही
अपना यश बटाना चाहिये। अहिंसामय कर्म कानाही
मानवोंका धेष्ट धर्म है। अहिंसा और अकृत्तिलनाही मानव-
धर्मका मुख्य सूत्र है।

[५] ‘कवि-ऋतुः’ (५) ‘कवि’ पद ज्ञानीता वाचक
है और ‘ऋतु’ पद ज्ञान, प्रज्ञा और कर्मका वाचक है।
ज्ञानपूर्वक कर्म करने चाहिये। अपनी और कर्मप्रवीण होने-
की सूचना इसमें मिलती है।

[६] ‘यदे दमे वर्धमानः’ (८) अपने न्यायमें वृद्धि-
की प्राप्त होना। अपने देशमें उत्थितों का प्राप्त करना अहिंसा
उत्थि या प्रगति का भाव यह है—

यह है कि, हमने मेलापति और मैत्रिक, प्रत्यक्ष परामर्श

करें, बहुत भन प्राप्त करें, बहुत अन्न प्राप्त करें और उग्र धन तथा अन्नके साथ हमारे पास आजायें, हमारी सुरक्षा करें और वह भन और अन्न हमें बांट देंगे। अन्य मूर्तोंके वर्णनका विचार साधारण करनेसे इस सूक्तमें यह भाव प्रकट होता है। यह धर्मियोंका कर्तव्यही है।

इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है वह यही है कि ये इन्द्र और वायु (सेनापति और सैनिक) यहाँ अन्नके साथ आजायें और उनके लिये तैयार किया हुआ सोमरस पीयें। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विजयी सैनिक विजय प्राप्त करके जब आते हैं, तब उनका स्वागत करनेके लिये स्थान स्थानपर सोमरस तैयार करके रक्ते रहें। ये आँत और उन रसोंका सेवन करें।

विजयी वीरोंका स्वागत इस तरह होता रहे, यह इसका आशय है।

(३-३) मित्रावरुणौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दशममें द्वितीय सूक्तका तीसरा त्रिक मित्र और वरुण देवताका है। मित्र और वरुण (सूर्य और चन्द्र) ये दो राजा हैं, इनके राज्यमें सभाके द्वारा राज्य चलाया जाता है। प्रजाजनही अपने लिये जैसा चाहिये वैसा राज्य चलाते हैं, अतः ऐसे दो राजाओंका आपसमें युद्ध नहीं होता। वे परस्पर मित्रताके साथ रहते हैं।

‘मित्र’का अर्थ मित्रभावसे वर्तान करनेवाला, (मित्र) हित करके रक्षा करनेवाला है, ‘वरुण’का अर्थ श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। ये इनके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे दो राजा आपसमें लड़ते नहीं, परंतु परस्पर सहायक होकर एक-दूसरेका भला करते रहते हैं। सब राजा लोग ऐसे वन और परस्पर न लड़ते हुए मित्रभावसे परस्पर सहायक हैं। यही वेदका संदेश इन मन्त्रोंद्वारा प्रकट हुआ है।

(पूतदक्षं मित्रं) पवित्रताका बल मित्रके पास है और (वधं वरुणं) शत्रुका पूर्णताके साथ नाश करनेकी वरुणके पास है। (रिश-भदस्) शत्रुको खा जानेका वरुणका है। ये बल राजाके पास रहने चाहिये।

(शत्रुं क्रमशः शनैः शनैः नष्ट करता है, उसका रि है। जैसा जलके स्पर्शसे लोहेका नाश होना तरह जो शत्रु शनैः शनैः नाश करता है, वह ‘रिश’ है।

२. पूतदक्ष, मित्रावरुणौ शत्रुनाश करनेवाले पवित्रताका बल और शत्रुनाशका सामर्थ्य वे दो मन्त्रोंमें वर्णित हैं और सोमविजयोंके कर्त्ता हैं। जहाँ जहाँ वे चला सामर्थ्यकी वजह से परंतु उसका उपयोग पवित्रताके साथ करना चाहिये। उग्र पावन बलका उपयोग शत्रुका नाश करने करना चाहिये। ऐसा किया जाय, तो बड़े बड़े काम सुसंपन्न हो सकते हैं।

३. मित्रावरुणौ स्वस्वर्गोंके पालन करनेवाले, स्वस्वर्गोंकी रक्षानेवाले, स्वस्वर्गोंके साथ रहनेवाले, मार्गमेंही बड़े बड़े कामोंकी सुसंपन्न करने हैं। यहाँ का अर्थ व्यापक, प्रविष्ट, शुद्ध, दीर्घ, योग्य, मार्ग, यद्यपि यहाँ स्वर्गका अर्थ मान किया जाता है, तपस्वी और मार्गमें भोत्रा अवतर है। जो गया है, जो वैश्व है वैसा कदना गया है, परंतु जो योग्य है वह ज्ञाता है। जो मज्य है, व्यापक, शुद्ध, उग्र, योग्य, सरल और करने योग्य है, वह ज्ञाता है। सत्य हो, स है वा नहीं, यह देखना चाहिये और स्वर्गकी करना चाहिये।

ये मित्र और वरुण स्वर्गका पालन करनेवाले हैं, स्वर्गके साथ रहने हैं, इसलिये वे अपने शुद्ध पक्षमें कार्य सुसंपन्न करते हैं। जहाँ तेटापन बिलकुल नहीं जहाँ कुटिलता नहीं है, ऐसा सरल शुद्ध और योग्य इनका है। दूसरोंको धोखा देना या फंसाना इनके बाहर है। इसी तरह सरल मार्गसे वे अपने सब करते रहते हैं।

३. कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं दक्षं भाव्ये ज्ञानी विशेष सामर्थ्यसे युक्त हैं, विशाल स्थानमें और शुभ कामोंकी सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य धारण करते राजा लोग (कवि) ज्ञानी हों, सुविचारी हों, दूरदर्शी (तुवि-जाता) बलके लिये प्रसिद्ध अर्थात् सामर्थ्यवान् (उरु-क्षया) बड़े बड़े विशाल मंदिरोंमें रहें तथा महान् कामोंकी सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य अपने पास और बढ़ावें।

इन तीन मन्त्रोंमें कहा है कि, राजा लोग आपसमें

वर्ताने करें, निवृत्तता से रहें, सरल और निष्कण्ट बनना कार्य करें, बनना बल बड़ाई और बड़े बड़े हितके कार्य करते जायें। इन संश्लोक प्रत्येक पद हृत्पूर्य संदेग देता है। पाठक प्रत्येक पदका विचार योग्य समनपूर्वक मन्त्रका संदेग प्राप्त करें।

य'का कार्य सृष्टि है और 'वरुण का कार्य चन्द्रे है। न कार्य बल है। इनमें कविने दिव्य दृष्टिसे राजधर्म दिया है जो ऊपरके स्तुष्टीकरणमें दर्शाया है।

(३-१) अश्विनौ

पृथग्ना करिके द्वातमें तृतीय सूक्तका प्रथम त्रिक देवताका है। अश्विनौ देवता वेदमें औपधि-प्रयोग-कारणसे देवताकी कहा है। अश्विनौ देवतामें दो देव : वे सायसाय रहते हैं, कभी धृष्ट नहीं रहते।

तारकाङ्ग हैं जिनको अश्विनौ बोलते हैं और जो मध्य-पश्चाद् उदय होते हैं। ये अश्विनौ हैं ऐसा कहा जाना मध्यरात्रिके उपरान्त इनका उदय होता है, ऐसा जाना है। दो देव अश्विनौ हैं ऐसा कई मानते हैं, औपधि प्रयोग करतेवाला और दूसरा मन्त्रकर्म करने-है। ये दोनों मिलकर विक्रितका कार्य करते हैं।

जा हैं ऐसीभी कईयोंका मत है। परंतु दो तारकाङ्ग ही मत विशेष प्राप्त है। ये दोनों तारकाङ्ग सायसाय हैं, सायसाय उदयके प्राप्त होती हैं, मध्यरात्रिके उदय होती हैं। अतः इनका नाम अश्विनौ होना समीप है। इनके विषयमें विवरण देना लिखते हैं—

अथानौ द्युत्थाना देवताः। तास्तानश्विनौ प्रथ-
नागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यशुवाते
उर्वे, रत्नेनाग्नौ, ज्योतिर्गन्धः। अश्वैराश्विनौ
त्यौर्गवामः। तत् कायश्विनौ ? द्यावापृथिव्या-
विश्वेके, अहोरात्राविश्वेके, सूर्याचन्द्रमसा-
विश्वेके, राजानौ पुण्यहताविश्वेतिहासिकाः।
तयोः बाल ऊर्वमर्धपात्राद्, प्रकाशभावस्याद्,
विद्युन्मनसु, तनोभागे हि मध्यमः, ज्योतिर्भाग
आदित्यः।

किम् १२११२
'हर एतौके देवताओंका वर्णन करते हैं। इन एतौके-
देवताओंमें अश्विनौ प्रथम ऊर्ध्वके देव हैं। इनके
श्विनौ इसलिये कहा गया है कि ये सरल और निष्कण्ट हैं।

इनमेंसे एक रससे, जलसे, व्यापता है और दूसरा प्रकाशसे
व्यापता है। और्गवाम अथिका मत है कि अश्विदेवोंके पास
घोड़े थे इसलिये उनको अश्विनौ कहा गया। कौन भला
अश्विनौ हैं ? द्युलोक और भूलोक ऐसा कई कहते हैं, दिन
और रात्रि ऐसा कईयोंका मत है, सूर्य और चन्द्र ऐसा कई
मानते हैं, पुण्यकर्म करनेवाले ये दो राजा थे ऐसा ऐति-
हासिकोंका मत है। ऐसे अश्विनौके संबंधमें माना मत है।
इनका समय मध्यरात्रिके उपरान्तका समय है। जब प्रकाश
उत्पन्ने लगता है और मन्त्रकार कम होने लगता है, तब
अश्विदेवोंका समय है। मन्त्रकार सेवादिके कारण होता है,
इसलिये यह मध्यस्थानीय है और प्रकाश तो सूर्यसेही
होता है, इसलिये यह द्युस्थानीय है। इस तरह अश्विनौ
देवतामें प्रकाश और मन्त्रकारका समावेश होता है।

अश्विदेवोंके विषयमें इनने मतभेद हैं, तथापि इनका
उदय मध्यरात्रिके पश्चाद् है यह निश्चित है। ये दो तारकाङ्ग
हैं ऐसीभी कनेकवार कहा है। इनके वर्णनमें कविने जो
दिव्य ज्ञान देना, उसका विचार सब करना है—

१ पुह-भुजौ= विशाल बाहुवाले। बाहु हृष्टपुष्ट और
मुष्ट करने चाहिये।

२ शुभन्-पती= शुभ कर्मोंकी सुरक्षा करनेवाले। बीर
करते बाहुबलसे जनताके शुभ कर्मोंकी रक्षा करें और सर्वत्र
शुभ कर्म होने योग्य परिस्थिति निर्माण करें।

३ अश्वत्-पापी= हार्योति कति गौत्रणमे कार्य करनेवाले।
हार्योति, संतुलितोति जो कार्य करना हो वह कति गौत्र,
कति चरकके साथ दिया जावे।

४ पुह-इस्तता= बड़े बड़े कार्य करनेवाले। बड़े
बड़े कार्य करनेवाले मनुज बने।

५ मत्ता= नेता। नेता बने।

६ दत्ता= दायका दाता करनेवाले।

७ नास्तता= मन्त्रका पाठन करें।

८ द्यु-वर्तनी= मन्त्रादि मन्त्रोंके करनेवाले। न करने
हूय कवेय मन्त्रोंमें भी करते दते।

९ धिगदा= दुष्टोंके कार्य करनेवाले।

१० अश्विनौ= देवोंके साथ करनेवाले, सर्वत्र करने-
वाले, देवताएँ।

इन पदोंके विवरणमें अश्विदेव विस्तृतमें द्युत्थान है, द्युत्थान

करें, बहुत धन प्राप्त करें, बहुत भन्न प्राप्त करें और उग्र धन तथा भन्नके साथ हमारे पास आजायें, हमारी सुरक्षा करें और वह धन और भन्न हमें वांट दें। अन्य सूक्तों के वर्णनका विचार साधयाथ करनेसे इस सूक्त से यह भाव प्रकट होता है। यह धर्मियोंका कर्तव्यही है।

इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है वह यही है कि ये इन्द्र और वायु (सेनापति और सैनिक) यहां भन्नके साथ आजायें और उनके लिये तैयार किया हुआ गोमरस पीयें। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विजयी सैनिक विजय प्राप्त करके जय आते हैं, तब उनका सत्कार करनेके लिये स्थान स्थानपर सोमरस तैयार करके रक्ते रहें। वे भाव और उन रसोंका सेवन करें।

विजयी वीरोंका सत्कार इस तरह होता रहे, यह इसका आशय है।

(३-३) मित्रावरुणौ

मधुच्छन्दा क्रपिके दर्शनमें द्वितीय सूक्तका तीसरा त्रिक मित्र और वरुण देवताका है। मित्र और वरुण (सूर्य और चन्द्र) ये दो राजा हैं, इनके राज्यमें सभाके द्वारा राज्य चलाया जाता है। प्रजाजनही अपने लिये जैसा चाहिये वैसा राज्य चलाते हैं, अतः ऐसे दो राजाओंका आपसमें युद्ध नहीं होता। वे परस्पर मित्रताके साथ रहते हैं।

‘मित्र’का अर्थ मित्रभावसे यथावत करनेवाला, (मित्र) हित करके रक्षा करनेवाला है, ‘वरुण’का अर्थ श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। ये इनके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे दो राजा आपसमें लड़ते नहीं, परंतु परस्पर सहायक होकर एक-दूसरेका भला करते रहते हैं। सब राजा लोग ऐसे बनें और परस्पर न लड़ते हुए मित्रभावसे परस्पर सहायक बनें, यही वेदका संदेश इन मन्त्रोंद्वारा प्रकट हुआ है।

(पूतदक्ष मित्र) पवित्रताका बल मित्रके पास है और रिशादस वरुण) शत्रुका पूर्णताके साथ नाश करनेकी शक्ति वरुणके पास है। (रिश-अदस्) शत्रुको खा जानेका ल वरुणका है। ये बल राजाके पास रहने चाहिये। (रिश) जो शत्रु क्रमशः शनैः शनैः नष्ट करता है, उसका नाम ‘रिश’ है। जैसा जलके स्पर्शसे लोहेका नाश होना। इस तरह जो शत्रु शनैः शनैः नाश करता है, वह ‘रिश’ कहलाता है।

२. पूतदक्षः रिशादसः च पूतानीं विपिनं पवित्रताका बल और शत्रुनाशका सामर्थ्य ये दो स्नेहमयी वृद्धि को बढ़ाती हैं और कर्मवृत्तिकारी करती हैं। अर्थात् अपने अन्दर सामर्थ्य की वृद्धि परंतु उसका उपयोग पवित्रताके साथ करना चाहिये। उस पवित्र बलका उपयोग वापुसका नाश करने करना चाहिये। ऐसा किया जाए, तो बड़े बड़े कर्म सुसंपन्न हो सकते हैं।

३. कर्तानुभौ कृतस्पर्शः कर्तव्यं कर्तुं सरलताको बढ़ानेवाले, सरलताके साथ रहनेवाले मार्गसे ही बड़े बड़े कर्मोंको सुसंपन्न करते हैं। यहां का अर्थ न्याय, उचित, शुद्ध, शीघ्र, योग्य, सत्य यद्यपि यहां कृतका अर्थ मूल किया जाता है, कर्त और सत्यमें भी अन्तर है। जो सत्य है, जो सही है वैसा करना सत्य है, परंतु जो योग्य है वह कृत कहलाता है। जो सत्य है, न्याय, शुद्ध, उचित, योग्य, सरल और करने योग्य है, वह कृत है। सत्य हो, कृत है वा नहीं, यह देखना चाहिये और कृतवादी करना चाहिये।

ये मित्र और वरुण कृतका पालन करनेवाले हैं, कृतके साथ रहते हैं, इसलिये वे अपने शुद्ध अपने कार्य सुसंपन्न करते हैं। जहां तेटापन विलकुल नहीं है, जहां कुटिलता नहीं है, ऐसा सरल शुद्ध और योग्य इनका है। दूसरोंको धोखा देना या फंसाना इनके बाहर है। इसी तरह सरल मार्गसे वे अपने सब कार्य करते रहते हैं।

३. कर्त्री तुविजाता उरुक्षया अपसं द ज्ञानी विशेष सामर्थ्यसे युक्त हैं, विशाल स्थानमें और शुभ कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य धारण करनेवाले राजा लोग (कवि) ज्ञानी हों, सुविचारी हों, दूरदर्शी (तुवि-जाता) बलके लिये प्रसिद्ध अर्थात् सामर्थ्यवान् (उरु-क्षया) बड़े बड़े विशाल मंदिरोंमें रहें तथा महान् कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य अपने पास और बढ़ावें।

इन तीन मन्त्रोंमें कहा है कि, राजा लोग आपसमें

से इतना करें, मित्रतासे रहें, सरल और निष्कपट वस्त्र अपना कार्य करें, अपना बल बढ़ावें और बड़े बड़े ताके हितके कार्य करते जायें। इन मंत्रोंका प्रत्येक पद महत्त्वपूर्ण संदेश देता है। पाठक प्रत्येक पदका विचार के योग्य मननपूर्वक मन्त्रका संदेश प्राप्त करें। 'मित्र'का अर्थ सूर्य है और 'वह्म'का अर्थ चन्द्र है। 'त'का अर्थ जल है। इनमें कविने दिव्य दृष्टिसे राजधर्म लिया है जो ऊपरके स्पष्टीकरणमें दर्शाया है।

(३-१) अश्विनौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका प्रथम त्रिकोनौ देवताका है। अश्विनौ देवता वेदमें औषधि-प्रयोग-कारोग्य देनेवाली कही हैं। अश्विनौ देवतामें दो देव पर वे सायसाय रहते हैं, कभी पृथक् नहीं रहते। दो तारकाएँ हैं जिनको अश्विनौ बोलते हैं और जो मध्य-त्रके पश्चात् उदय होते हैं। ये अश्विनौ हैं ऐसा कहा जाता मध्यरात्रिके उपरान्त इनका उदय होता है, ऐसा का वर्णन है। दो वैत अश्विनौ हैं ऐसा कई मानते हैं, औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्रकर्म करने-वा है। ये दोनों मिलकर चिकित्साका कार्य करते हैं। राजा हैं ऐसानी कईयोंका मत है। परन्तु दो तारकाएँ यह मत विशेष ग्राह्य है। ये दोनों तारकाएँ सायसाय होती हैं, सायसाय उदयको प्राप्त होती हैं, मध्यरात्रिके पश्चात् उदय होती हैं। अतः इनका नाम अश्विनौ होना निवनीय है। इनके विषयमें निरन्तर ऐसा लिखते हैं—
अथातो सुस्थाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथ-
मागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्रुवाते
सर्वे, रसेनान्यो, ज्योतिषान्यः। अश्वैराश्विनौ
इत्यौर्णवामः। तत् कावश्विनौ ? थावापृथिव्या-
वित्येके, अहोरात्रावित्येके, सूर्याचन्द्रमसा-
वित्येके, राजानौ पुण्यकृतावित्येतिहासिकाः।
तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात्, प्रकाशीभावस्यानु,
विष्टम्भमनु, तमोभागो हि मध्यमः, ज्योतिर्भाग
आदित्यः। (निरुक्त १२।१।१)
'हम सुलोकके देवताओंका वर्णन करते हैं। इन सुलोक-
देवताओंमें अश्विनौ प्रथम आनेवाले देव हैं। इनको
अश्विनौ इसलिये कहा जाता है कि ये सबको व्यापते हैं।

इनमेंसे एक रससे, जलसे, व्यापता है और दूसरा प्रकाशसे व्यापता है। और्णवाम ऋषिका मत है कि अश्विदेवोंके पास घोड़े थे इसलिये उनको अश्विनौ कहा गया। कौन भला अश्विनौ हैं ? सुलोक और भूलोक ऐसा कई कहते हैं, दिन और रात्रि ऐसा कईयोंका मत है, सूर्य और चन्द्र ऐसा कई मानते हैं, पुण्यकर्म करनेवाले ये दो राजा थे ऐसा ऐति-
हासिकोंका मत है। ऐसे अश्विनौके संबंधमें नाना मत हैं। इनका समय मध्यरात्रिके उपरान्तका समय है। जब प्रकाश खुलने लगता है और अन्धकार कम होने लगता है, तब अश्विदेवोंका समय है। अन्धकार मेघादिके कारण होता है, इसलिये यह मध्यस्थानीय है और प्रकाश तो सूर्यसेही होता है, इसलिये वह सुस्थानीय है। इस तरह अश्विनौ देवतामें प्रकाश और अन्धकारका समावेश होता है।

अश्विदेवोंके विषयमें इतने मतभेद हैं, तथापि इनका उदय मध्यरात्रिके पश्चात् है यह निश्चित है। ये दो तारकाएँ हैं ऐसानी अनेकवार कहा है। इनके वर्णनमें कविने जो दिव्य ज्ञान देखा, उसका विचार सब करना है—

१ पुरु-भुजौ = विशाल बाहुवाले। बाहु हृष्टपुष्ट और सुदृढ करने चाहिये।

२ शुभस्-पती = शुभ कर्मोंकी सुरक्षा करनेवाले। वीर अपने बाहुबलसे जनताके शुभ कर्मोंकी रक्षा करें और सर्वत्र शुभ कर्म होने योग्य परिस्थिति निर्माण करें।

३ द्रवत्-पाणी = हाथोंसे क्षति निवृत्ततासे कार्य करनेवाले। हाथोंसे, अंगुलियोंसे जो कार्य करना हो यह क्षति शीघ्र, क्षति चपलताके साथ किया जावे।

४ पुरु-दंससा = अनेक बड़े बड़े कार्य करनेवाले। अनेक बड़े कार्य करनेवाले मनुज बने।

५ नरा = नेता। नेता बने।

६ दस्त्रा = शत्रुका नाश करनेवाले।

७ नासत्या = सत्यका पालन करें।

८ रुद्र-वर्तनी = भयानक मार्गसे जानेवाले। न डरते हुए कठिन मार्गसे भी जाने बड़े।

९ धिषण्या = दुष्टिके कार्य करनेवाले।

१० अश्विना = घोड़ोंकी पाम रखनेवाले, सर्वत्र व्यापने-वाले, वेगवान्।

इन पदोंके विचारसे अश्विदेव किनगुणोंमें युक्त हैं, इनका

करें, बहुत धन प्राप्त करें, बहुत अन्न प्राप्त करें और उग्र धन तथा अन्नके साथ हमारे पाम आजायें, हमारी सुरक्षा करें और वह धन और अन्न हमें बांट दें। अन्य सूक्तोंके वर्णनका विचार साथसाथ करनेसे हम सूक्तसे यह भाव प्रकट होता है। यह क्षत्रियोंका कर्तव्यही है।

इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है वह यही है कि वे इन्द्र और वायु (सेनापति और सैनिक) यहाँ अन्नके साथ आजायें और उनके लिये तैयार किया हुआ सोमरस पीयें। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विजयी सैनिक विजय प्राप्त करके जब आते हैं, तब उनका सत्कार करनेके लिये स्थान स्थानपर सोमरस तैयार करके रखे रहें। वे भाँटें और उन रसोंका सेवन करें।

विजयी वीरोंका सत्कार इस तरह होता रहे, यह हमका आशय है।

(३-३) मित्रावरुणौ

मधुच्छन्दा क्रमिके दर्शनमें द्वितीय सूक्तका तीसरा त्रिक मित्र और वरुण देवताका है। मित्र और वरुण (सूर्य और चन्द्र) ये दो राजा हैं, इनके राज्यमें सभाके द्वारा राज्य चलाया जाता है। प्रजाजनही अपने लिये जैसा चाहिये वैसा राज्य चलाते हैं, अतः ऐसे दो राजाओंका आपसमें युद्ध नहीं होता। वे परस्पर मित्रताके साथ रहते हैं।

'मित्र'का अर्थ मित्रभावसे वर्ताव करनेवाला, (मित्र) हित करके रक्षा करनेवाला है, 'वरुण'का अर्थ श्रेष्ठ, चरिष्ठ है। ये इनके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे दो राजा आपसमें लड़ते नहीं, परंतु परस्पर सहायक होकर एक-दूसरेका भला करते रहते हैं। सब राजा लोग ऐसे बनें और परस्पर न लड़ते हुए मित्रभावसे परस्पर सहायक बनें, यही वेदका संदेश इन मंत्रोंद्वारा प्रकट हुआ है।

(पूतदक्ष मित्रं) पवित्रताका बल मित्रके पास है और (रिशादसं वरुणं) शत्रुका पूर्णताके साथ नाश करनेकी शक्ति वरुणके पास है। (रिश-अदस्) शत्रुको खा जानेका बल वरुणका है। ये बल राजाके पास रहने चाहिये। (रिश) जो शत्रु क्रमशः शनैः शनैः नष्ट करता है, उसका नाम 'रिश' है। जैसा जलके स्पर्शसे लोहेका नाश होना। इस तरह जो शत्रु शनैः शनैः नाश करता है, वह 'रिश' कहलाता है।

२. पूतदक्षः विजातस्यः नृपुनानी विप्रेषः पवित्रताका बल जोर शत्रुनाशका सामर्थ्य ये दो स्मृतियोंकी तुलनाके बराबर हैं जो कर्मवृत्तियों करती हैं। अर्थात् अपने अन्दर सामर्थ्यकी वृद्धि परंतु उसका उपयोग पवित्रताके साथ करना चाहिये उस पवित्र बलका उपयोग शत्रुका नाश करने करना चाहिये। ऐसा किया जाय, जो बड़े बड़े कर्म सुसंपन्न हो सकते हैं।

३. कृताशुभौ कृतशुभौ क्रमेण नृपस्य कर्तुं सरलताको बढानेवाले, सरलताके साथ रहनेवाले, मार्गसिद्धि बड़े बड़े कर्मोंको सुसंपन्न करते हैं। यहाँ का अर्थ 'न्याय, उचित, शुद्ध, शीघ्र, योग्य, सत्य' यद्यपि यहाँ 'न्याय' अर्थ मूल दिया जाता है, मार्ग और सत्यमें भी अन्तर है। जो सत्य है, जो नैतिक है वैसा कहना सत्य है, परंतु जो योग्य है वह नैतिक होता है। जो सत्य है, न्याय, शुद्ध, उचित, योग्य सरल और करने योग्य है, यह श्रुत है। सत्य होना ही वा नहीं, यह देखना चाहिये और श्रुतसिद्धि करना चाहिये।

ये मित्र और वरुण श्रुतका पालन करनेवाले हैं श्रुतके साथ रहते हैं, इसलिये वे अपने शुद्ध पथके कार्य सुसंपन्न करते हैं। जहाँ तेटापन विलुप्त जहाँ कुटिलता नहीं है, ऐसा सरल शुद्ध और सत्य इनका है। दूसरोंको धोखा देना या कंसाना इनके बाहर है। इसी तरह सरल मार्गसे वे अपने सब करते रहते हैं।

३. कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं दक्षं आ ये ज्ञानी विशेष सामर्थ्यसे युक्त हैं, विशाल स्थानों और शुभ कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य धारण राजा लोग (कवि) ज्ञानी हों, सुविचारी हों, दूर (तुवि-जाता) बलके लिये प्रसिद्ध अर्थात् सामर्थ्य (उरु-क्षया) बड़े बड़े विशाल मंदिरोंमें रहें तथा महान् कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य अपने और बढ़ावें।

इन तीन मंत्रोंमें कहा है कि, राजा लोग अपने

यथाव करें, मित्रतासे रहें, सरल और निष्कपट
 अपना कार्य करें, अपना बल बढ़ावें और बड़े बड़े
 के हितके कार्य करते जायें। इन मंत्रोंका प्रत्येक पद
 महत्वपूर्ण संदेश देता है। पाठक प्रत्येक पदका विचार
 योग्य मननपूर्वक मन्त्रका संदेश प्राप्त करें।

‘नम्र’ का अर्थ सूर्य है और ‘वरुण’ का अर्थ चन्द्र है।
 का अर्थ जल है। इनमें कविने दिव्य दृष्टिसे राजधर्म
 रखा है जो ऊपरके स्पष्टीकरणमें दर्शाया है।

(३-१) अश्विनौ

उच्छन्दाः ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका प्रथम त्रिक
 ॥ देवताका है । अश्विनाँ देवता वेदमें औपधि-प्रयोग-
 सारोग्य देनेवाली कही है । अश्विनाँ देवतामें दो देव
 र ये साथसाथ रहते हैं, कभी पृथक् नहीं रहते ।

। तारकाएं हैं जिनको अश्विनौ बोलते हैं और जो मध्य-
हो पश्चान् उदय होते हैं। ये अश्विनौ हैं ऐसा कहा जाता
मध्यरात्रिके उपरान्त इनका उदय होता है, ऐसा
। वर्णन है। दो वेला अश्विनौ हैं ऐसा कई मानते हैं,
औरपि प्रयोग करनेवाला और दूसरा मन्त्रकर्म करने-
। है। ये दोनों मिलकर चिकित्साका कार्य करते हैं।

जाना हैं ऐसाभी कईजोका मत हैं। परंतु दो तारवाणें यह मत विशेष प्राप्ता हैं। ये दोनों तारवाणें, साधसाध हैं, साधसाध उदयको प्राप्त होती हैं, मध्यरात्रिमें प्र उदय होती हैं। अतः इनका नाम अक्षिणी होना लगीय हैं। इनके विषयमें निम्नप्रकार ऐसा लिखते हैं—

[illegible]

१. जहाँ जहाँ जायेंगे वहाँ जायेंगे, वहाँ जायेंगे
 जहाँ जहाँ जायेंगे वहाँ जायेंगे, वहाँ जायेंगे
 जहाँ जहाँ जायेंगे वहाँ जायेंगे, वहाँ जायेंगे

इनमेंसे एक रससे, जलसे, व्यापता है और दूसरा प्रकाशसे व्यापता है। जौगंवाभ ऋषिका मत है कि अधिदेवोंके पास घोड़े थे इसलिये उनको अधिनौ कहा गया। कौन भला अधिनौ हैं? ध्रुलोक और भूलोक ऐसा कई कहते हैं, दिन और रात्रि ऐसा कईयोंका मत है, सूर्य और चन्द्र ऐसा कई मानते हैं, पुण्यकर्म करनेवाले ये दो राजा थे ऐसा ऐतिहासिकोंका मत है। ऐसे अधिनौके संबंधमें नाना मत हैं। इनका समय मध्यरात्रिके उपरान्तका समय है। जब प्रकाश खुलने लगता है और अन्धकार कम होने लगता है, तब अधिदेवोंका समय है। अन्धकार मेघादिके कारण होता है, इसलिये वह मध्यस्थानीय है और प्रकाश तो सूर्यसेही होता है, इसलिये वह द्युस्थानीय है। इस तरह अधिनौ देवतामें प्रकाश और अन्धकारका समवेग होता है।

साधिवर्गोंके नियममें इनने मतभेद हैं, तथापि इनका उद्देश्य साम्यवाजिके पक्षान् है यह निश्चित है। ये दो तारकाएँ हैं ऐसीभी होनेका कारण है। इनके मतमें कविने जो दिव्य ज्ञान देखा, उसका विचार सत्य करना है—

१ पुरु-भुजो = विमान वायुवाहने । वायु मण्डल और
मरुत वाहने आदिसे ।

२ शुभसु-पत्नी = शुभ वसुधैव कुटुम्बकम् । श्री
 क्षपणे दाहयामहे जलपात्रे शुभ वसुधैव । इति । श्री
 शुभ वसु धीनि दाम्भ्यः परिमिश्रितं निर्यातं करो ।

३. प्रत्यक्ष-प्राप्तिः प्राप्तिरिति ज्ञानं प्राप्तिः कथं कथं प्राप्तिः।
प्राप्तिरिति, ज्ञानं प्राप्तिरिति ज्ञानं प्राप्तिः कथं कथं प्राप्तिः।
प्राप्तिः कथं कथं प्राप्तिः कथं कथं प्राप्तिः।

५ पुनः-इतिहास-एतेषां त्रिंशत् वर्षाणि । अत्र
एतेषां वर्षाणि चतुर्धा विभक्तानि ।

५ अङ्गुली-विंशतिः । विंशतिः ।

6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15.

1. 1944-1945

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840.

... ..

[illegible]

Phragmites australis, *Spartina patens*, *Spartina anglica*, *Cyperus tenuiflorus*, *Juncus roemerianus*

ज्ञान होता है और ये गुण अपने अन्दर बसाने चाहिये, इसकाभी ज्ञान उपासकको होना है। तथा—

११ यज्वरीः इषः चनस्यतम् = यज्ञके योग्य अन्नका सेवन करो। पवित्र अन्नका भोजन करो।

१२ शयीरथा धिया गिरः चननम् = अपनी तेजस्विनी एकाम्र बुद्धिसे दूसरोंका भाषण सुनो।

१३ युधाकवः वृक्तवर्हिणः सुताः आ यातम् = दूधके साथ मिलाये, तिनके निकाले अर्घ्यम् अर्घ्यी तरह छाने हुए, इन सोमरसोंका सेवन करनेके लिये आओ।

यहां पवित्र अन्नका सेवन करने, एकाम्र मनके साथ भाषण सुनने और रसपान करनेका वर्णन है। इन सब पदोंका और वचनोंका विचार तथा मनन पाठक करें और इनसे मिलनेवाला वेदका संदेश अपना लें।

(३-२) इन्द्र

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका दूसरा त्रिक इन्द्र देवताका है। इन्द्रके विषयमें पहिले कहा गया है। (पाठक ऋ० सं० १ सू० २ त्रिक २ देखें) यहां इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनमें निम्न लिखित पद महत्वपूर्ण हैं।

१ इन्द्र = (इन्द्र+इन्द्र) शत्रुका नाश करनेवाला वीर,

२ चित्र-भाजु = विशेष तेजस्वी,

३ हरि-वः = घोड़ोंकी पालना करनेवाला।

वीर तेजस्वी बने और अपने पास उत्तम घोड़े रखे, यह इन पदोंका भाव है। तथा—

४ धिया इपितः = बुद्धियोंद्वारा प्रार्थित, जिसकी प्रशंसा मनःपूर्वक की जाती है।

५ विप्रजूतः = विद्वानोंद्वारा प्रशंसित,

ये पद इन्द्रका वर्णन करते हैं। उपासक अपने अन्दर इन पदोंके भावोंको डालनेका यत्न करें। तेजस्वी बनना, प्रशंसित होने योग्य श्रेष्ठ बनना, आदि बातें यहां हैं।

अन्य वर्णन सोमके हैं। (अप्रीमिः तना पूतासः सुताः) अंगुलियोंसे निचोड़े, छाने गये ये सोमरस हैं। (नः सुते चनः दधिष्व) हमारे सोमयागमें अन्नका सेवन कर। इत्यादि अन्य वर्णन सहजहीसे समझमें आनेवाला है। अतः उसका विशेष स्पष्टीकरण करनेकी जरूरत नहीं है।

(३-३) विश्वे देवाः

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तके अन्दर तृतीय

त्रिक विषये देवा देवताका है। इसी त्रिके देवा देवताका जो महत्त्वपूर्ण मन्त्र है, उसका भी यही सूक्त (पृष्ठ १२ पर) दिया है। पाठक इस त्रिके विशेष मनन करें और मानवार्थोंका संज्ञा (१) सबकी सूत्रोंके लिये यत्न करना, (२) गर्वोंकी समाप्ति करना, (३) दान करना, (४) कार्य करना, सूत्रोंका पालन करना, (५) उत्तम कार्य करना, (६) धारणा या करना, (७) स्वयं कार्य करना, (८) होना न करना, (९) श्रमयापन हो कर लाना, ये त्रिकों के हैं। ये मनुष्योंको अपमाना चाहिये।

(३-४) सरस्वती

इसी दर्शनमें चतुर्थ त्रिक सरस्वती देवताका द्वितीय दर्शन है। इसका स्पष्टीकरण पूर्ण (पृष्ठ १२-१३ पर) पाठक देख सकते हैं। यहां ऋषिके मन्त्रोंका प्रथमानुवाक समाप्त होता है।

द्वितीय और तृतीय अनुवाक

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनके द्वितीय और तृतीय में मिलकर ८० मंत्र हैं, इनकी इन्द्र देवता मुख्य सूक्त ६१-१० में महत् देवता अधिक है। सब पदोंका स्पष्टीकरण प्रत्येक सूक्तके अर्थके साथ है। अतः यहां उनके संदेशोंके विषयमें अधिक आवश्यकता नहीं है।

सोम देवता

मधुच्छन्दा ऋषिके सोमदेवताके दस मंत्र नव प्रथम सूक्तसे लिये हैं। ये यहां इसलिये लाये हैं कि च्छन्दा ऋषिका संपूर्ण दर्शन पाठकोंके सामने आये। ये सब मंत्र १२० हैं। इतनाही मधुच्छन्दा तत्त्वदर्शन है। इन मंत्रोंके मननसे पाठक जाति विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा ऋषिके किस दर्शन करने प्रचार किया था।

शतर्चा अर्थात् सौ मंत्रवाले ऋषियोंमें ऋषिकी गणना है, क्योंकि इसके ११२ मंत्र यज्ञ इसके पुत्रके-जैता ऋषिके-आठ मंत्र हैं। स १२० मंत्र होते हैं।

यहां मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन समाप्त



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(२)

[काण्वदर्शनोंमें प्रथम विभाग]

मेधातिथि ऋषिका दर्शन

(मेधातिथिके मंत्रोंके समेत)

(चतुर्थ और पञ्चम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मण्डल, लौध (जि० सातारा)

संवत् २००२

ॐ नमः शिवाय

मुद्रक और प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि० घातारा)

| | |
|---------------------------------------|---|
| १. मित्रावरुणः | ४ |
| २. ब्रह्मरक्षसिः | ३ |
| ३. सद्यस्वसिः | ३ |
| ४. इन्द्रो भरतवान् | ३ |
| ५. पूषा | ३ |
| ६. द्यवापृथिवी | २ |
| ७. इन्द्रवज्र | २ |
| ८. इवशा | २ |
| ९. इन्द्रमहानत्पतिरसिः | १ |
| १०. " " दक्षिणा च | १ |
| ११. सद्यस्वसिर्भरतवो वः | १ |
| १२. देव्यः | १ |
| १३. इन्द्रमहानत्पतिरसिः | १ |
| १४. पृथिवी | १ |
| १५. वायुः | १ |
| १६. भरतः | १ |
| १७. इन्द्रः सद्यस्वसिः | १ |
| १८. तनुमन्त्र | १ |
| १९. भरतसिः | १ |
| २०. इन्द्रः | १ |
| २१. भरतः | १ |
| २२. देवदेवः | १ |
| २३. उपमन्यु | १ |
| २४. देव्यो हे वसिष्ठो प्रमोदस्यै | १ |
| २५. विष्णो देव्यः सद्यस्वसिर्भरतवो वः | १ |
| २६. वसुधसिः | १ |
| २७. सद्यस्वसिः | १ |

कुल संयुक्तम् ३३०

इत्यत्र कारण ये कव्यगोत्रके हैं और साथ साथ अनिवार्य हैं, तथा सं० ८१९ में एउही सूत्रके ये दोनों एकट्टे दृष्टा हैं । अन्वेषण कदा कदा और कव्य गोत्रके क्षयि अवस्था हैं, उनमें दो क्षयियोंकेही संग दृष्टा मिले हैं, शेष कव्य क्षयि और कव्य-गोत्रके क्षयि ये हैं-

काण्वक्षयि

१ (घोतपुत्र) 'कव्य' क्षयिके संग- क्र. ११२६-४३ १६

११५४ सं. सं. ५

१०१

काण्व गोत्रके क्षयि

| | | |
|--|----------|-----|
| १ उत्तम्य (कव्यपुत्र)के संग क्र. ११४४-५० | ८२ | |
| | ८१४९ | १० |
| | ८१५४ | ५ |
| | | १०७ |
| २ देवातिथिः ,, | क्र. ८१४ | २१ |
| ३ कव्यक्षयिः ,, | ५ | ३३ |
| ४ वसुधः ,, | ६ | ४८ |
| | ११ | १० |
| | | ५८ |
| ५ पुनर्वसुः ,, | ७ | ३६ |
| ६ सद्यस्वः ,, | ८ | ३३ |
| ७ वसुधः ,, | ९ | ३१ |
| ८ उपमन्युः (पौरो), | ८१११०-२ | ३ |
| | १० | ६ |
| | ४८ | १५ |
| | ६२ | १२ |
| | | ३५ |
| ९ भावः कव्यपुत्र | ८१३३ | १० |
| | ९४ | १२ |
| | ६५ | ३६ |
| १० वसुधः ,, | ८१३३ | ३३ |
| | १११०४ | ६ |
| | १०५ | ६ |
| | | ४५ |
| ११ वसुधः ,, | ८१३३ | ३३ |
| | १११०-४ | ६ |
| | १०५ | ६ |
| | | ४५ |

काण्व गोत्रके क्षयि

कि पुनर्वसु के संग में और उपमन्यु के संग मिले हैं ।

| | | | |
|--------------------------|---------|----|-----|
| १२ गोपूत और अध्वसूक्ति | ८१४-१५ | | |
| काण्वायनौ | | २८ | |
| १३ इरिम्बिठिः कण्वपुत्रः | ८१६-१८ | ४९ | |
| १४ सोमरिः | ८१९-२२ | ९९ | |
| | १०३ | १४ | ११३ |
| १५ नीपातिथिः | ८१४ | १५ | |
| १६ नाभाकः | ८१९-४२ | ३८ | |
| १७ त्रिकोकः | ८१४५ | ४२ | |
| १८ पुष्टिगुः | ८१५० | १० | |
| १९ ध्रुष्टिगुः | ५१ | १० | |
| २० आयुः | ५२ | १० | |
| २१ मेध्यः | ८१५३ | ८ | |
| | ५७-५८ | ७ | १५ |
| २२ मातरिक्षा | ८१५४ | ८ | |
| २३ कुशः | ५५ | ५ | |
| २४ पृषध्नः | ५६ | ५ | |
| २५ सुपर्णः | ८१५९ | ७ | |
| २६ कुरुसुतिः | ८१७६-७८ | ३३ | |
| २७ कुसीदी | ८१८१-८३ | २७ | |

इतने २७ ऋषि काण्व गोत्रके शेष रहे हैं। यहाँ इस पुस्तक में मेधातिथि और मेध्यातिथि ये दो ऋषि लिये गये हैं। अतः शेष २७ रहे हैं। इनके मंत्र ९१२ ऋग्वेदमें हैं। अतः इनका प्रकाशन कमसे कम तीन विभागोंमें किया जायगा। इस विभागमें ३२० मंत्र मेधातिथि-मेध्यातिथिके लिये हैं। इसी तरह और तीन विभागोंमें काण्वोंके सब मंत्र आ जायेंगे।

सोमप्रकरण

इन ३२० मंत्रोंमें सोमदेवताके २८ मंत्र हैं, परंतु करीब २०० अन्य मंत्रोंमें सोमरस-पानका विषय साक्षात् या परंपरासे आया है। ३२० मंत्रोंमें बहुत करके १०० मंत्रोंके करीब ऐसे मंत्र हैं कि, जिनमें सोमका कुछ भी विषय नहीं है, शेष २२० के करीब मंत्र ऐसे हैं कि, जिनमें सोमरसका कुछ न कुछ वर्णन है। अथवा तथा नवम मण्डलके जो मंत्र इस पुस्तकमें आये हैं, उनमें तो सबसे ही सोमका विषय है। अर्थात् मेधातिथि और मेध्यातिथिके ३२० मंत्रोंमें करीब करीब २२० मंत्रोंमें सोमका कुछ न कुछ वर्णन है। शेष करीब १०० मंत्र सोमके वर्णनके

बिना हैं। इसमें ऐसा हम कह सकते हैं कि वे सोमके वर्णनके लिये गाये गये हैं। इतना मेघ वेदोंमें है। इसी तरह वेदोंमें सर्वत्र है वा नहीं, बात है।

सोमके संबंधमें सोमके मंत्रोंका मनन करनेके प्रसंग किया है और इन ३२० मंत्रोंके मननसे यह स्पष्ट सोमरस नशा उत्पन्न करनेवाला नहीं है। इसका मंत्रोंमें अधिक होनेवाला है। अतः पाठकोंसे इतना है कि, वे इस विचारको यहीं समाप्त न समझे, ऋषियोंके मंत्रोंके साथ इस विचारकी तुलना करें अन्तमें अन्तिम निर्णयतक पहुंच जायें।

अर्थ करनेकी रीति

यहाँ हमने जो अर्थ करनेकी पद्धति उपयोगमें सरलसे सरल है। प्रथम मंत्र देकर उनका अर्थ जो साधारण संस्कृत जानते हैं, वे अन्वयसे ही निकाल सकते हैं। जो संस्कृत ठीक नहीं जानते, नीचे सरल शब्दार्थ अन्वयके अनुसार ही दिख मंत्रमें नहीं है और पूर्वापर संबंधसे अध्याहत लिंकसमें () दिये हैं। पाठक गोल कंफके अन्तर्गत शेष शब्दोंके साथ पढ़ेंगे, तो मंत्रका सरल अर्थ जायेंगे।

हमने यहाँ मंत्रके पदोंका खुला अर्थ, स्पष्ट अर्थ, ही दिया है। किसी तरह अलंकार, श्लेष या यौगिक का यत्न नहीं किया। क्योंकि जिन्होंने ऐसा अर्थ करने किया है, उनके अर्थ सूक्तके अन्दर बैठनेवाले नहीं हैं। प्रत्येक मंत्र फुटकर बताना योग्य नहीं। इसलिये हमने मंत्र इकट्ठे लिये हैं। जहाँ सूक्तके अन्दर अनेक देवताएँ हैं, वहाँ एक एक देवताके सब मंत्र इकट्ठे लिये हैं और देवताके मंत्रोंका विचार इकट्ठा किया है। इस तरह अर्थ समझनेमें आसानी होती है और खोजातानीकी संभव नहीं होती। इसलिये यही रीति हमने इस भाष्यमें अपना ली है।

सरल संस्कृत जाननेवाला सरल भाषासे जो अर्थ सकता है, वही व्यक्त अर्थ है। गूढ़ार्थ पीछेसे निष्कर्ष स्वयं निकाल सकता है। जब सरल अर्थका अच्छी तरह

तब विचार और मनन करनेवाले पाठक मंत्रोंके अन्दर अनुभव कर सकते हैं। वह अवस्था पाँचमे बड़े पश्चात् और वैदिक विचार-धाराका अधिक अभ्यास पश्चात् आनेवाली है।

मता इस समय सरल अर्थ जाननेकी अवस्थामें है। ये वह बिलकुल सरल अर्थ जनताके सामने रखा है। तरह जगत्के अन्दर सर्वसाधारण मानव पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारका, पशु, पक्षी, वृक्ष, पत्ति आदिको देखता है और जैसा स्थूल दृष्टिसे देखता है, स्थूल अनुभवसे इन पदार्थोंको समझ भी लेता है, उसी तरह सरल स्थूल अर्थ है। जब मानव अधिक मननशील है, जब वह अधिक विज्ञान प्राप्त करता है, तब पृथ्वीसे नाप्रकारके सूक्ष्म पदार्थ विज्ञानकी सहायतासे पृथक्करण होज कर लेता है और उनका उपयोग करके अनन्त सुख-न निर्माण करता है, वैसाही वह मनुष्य अधिक विचार इन्हीं मंत्रोंके अन्दर अधिक गुण तत्त्वोंका ज्ञान देखता है। जैसा योगी श्री अरविंद घोषजीने इन्हीं मंत्रोंमें सूक्ष्म-ज्ञान देखा है। वह अवस्था आगे सब पाठकोंको कभी न प्राप्त होगी।

अनुभवके बिना वैसा लेख लिखना योग्य नहीं। अथवा वेदका ऐसा अर्थ घड देगे, ऐसी पहिलेसेही प्रतिज्ञा करके लिखना भी ठीक नहीं है। इसलिये जिस सरल रीतिमें वेद लिखे जानेकी संभावना नहीं है अथवा कम है, वैसी सरल ही हमने यहां उपयोगमें लायी है। इतनी दक्षता लेनेपर संस्कृतके एक-एक शब्दके अनेक अर्थ होनेके कारण भी एक पदका अर्थ एक विचारक एक मानेगा और उसी अर्थ दूसरा विचारक वहां दूसराही मानेगा। इस तरह मतभेद होनेकी संभावना रहेगीही। हर एक भाष्यके विषयमें बात समानही है। इसलिये वह दोष किसी एकका माना जायगा। क्योंकि वह दोष सभी भाष्योंपर आना पड़ता है।

जैसा 'वाजः' पदके अर्थ- 'पक्ष (पक्षोंके), पंख, पर पंखके), बान्के पंखे लगाये पर, युद्ध, लड़ाई, शब्द, (वज्र)', धन, पके चावलोंका पिंड, अन्न, जल, प्रार्थनामंत्र, यज्ञ, अग्नि, शक्ति, सामर्थ्य, धन, गति, वेग, मांस (महोना)' कोशमें मिले हैं। वेदमंत्रोंमें 'युद्ध, अन्न, दल' ये अर्थ मुख्यतः

आने हैं। इनमें यहां इस फलाने मंत्रमें नहीं एक अर्थ योग्य है और दूसरा अयोग्य है, ऐसा निश्चयपूर्वक कहना प्रायः अशक्य है। ऐसा अनेक पदोंके विषयमें हो सकता है। इसलिये पदके अर्थके विषयमें मतभेद होगा। परंतु वह दोष अनिवार्य है।

कदाचित् २०-२५ वर्ष विचारपूर्वक वेदाध्ययन होनेके पश्चात् संभव है कि इस मंत्रमें इस पदका यही अर्थ है, ऐसा कहनेमें कोई समर्थ हो, तो उस समयकी बात और है। इसलिये वह मतभेद इस समय रहेंगे। तथापि हमने यावच्छक्य यत्न करके मतभेदके स्थान सरल अर्थ देकर दूर किये हैं।

मन्त्रोंसे बोध

'यदेवा अकुर्वस्तत्स्वरवाणि' (जो देवीने किया वैसा मैं कहूंगा) देवताओंका आचरण मानवोंके लिये मार्गदर्शक हो सकता है। यह नियम वैदिक ऋषि अनुभव करते थे। यही नियम हमने वेदमें देखा और वही अनुभव इस भाष्य-द्वारा पाठकोंके सामने, जैसा समझा, वैसा रखनेका यत्न इस सुबोध भाष्य द्वारा किया है।

मन्त्रका जो सरल अर्थ है, उसमें भी जो मंत्रभाग विशेष ध्यानमें रखने योग्य हैं, वे सूक्तार्थके बाद पृथक् करके दिये जायेंगे। वे स्वतंत्र रूपसे मानव-धर्मका बोध करतेही हैं। ये मंत्रभाग आगे अनेक सूक्तोंके अर्थके पश्चात् स्थान स्थानपर पाठक देख सकेंगे। ये मंत्र-भाग कण्ठस्थ करने योग्य हैं। स्मृतिशास्त्रके नियमोंके आधारही ये मंत्रभाग हैं। पाठक इनकी ओर इस दृष्टिसे देखें।

इसके अतिरिक्त हमने महत्त्वका मानवधर्मका भाग सूक्तोंमें देखा है, वह 'देवताका आदर्श स्वरूप' है। अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंमें ऋषि लोग अपनी अर्तोद्विज दृष्टिसे कुछ आदर्श देखते हैं, वह आदर्श वे देवताके वर्णनमें रखते हैं। उच्चतर मानव बननेका ही वह आदर्श है। इस दृष्टिसे हमने ये सूक्त देखे और इनमें जो 'आदर्श उच्चतम मानव' ऋषियोंने हमारे सम्मुख रखा, वह इस भाष्यके द्वारा जनताके सामने हमने रखा है।

अधिके सामने अग्नि केवल अंग नहीं है, इन्द्र केवल विदुषप्रकाश नहीं है, सूर्य केवल प्रकाश-गोलही नहीं है।

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति ।

अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० १।१६।४६)

‘एकही सत् है, वही अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य आदि रूपसे हमारे सामने है।’ यह ऋषियोंकी आत्मानुभवकी दृष्टि है। जो अग्नि पदसे केवल आग समझेंगे, वे यही अग्नि वाक्-पति कैसा है, वाणीरूपसे मुखमें कैसा रहता है, वह होता, पुरोहित और ऋत्विज् आदि कैसा है, वही वेदप्रकाशक कैसा है इन बातोंको जान नहीं सकेंगे। इसलिये वैदिक अग्नि केवल आग नहीं है। वह ऋषिके सम्मुख अतीन्द्रिय दृष्टिसे आयी एक आध्यात्मिक दैवी वस्तु है। पाठक देवताओंको ऐसा ही समझनेका यत्न करें। यह एकदम नहीं हो सकेगा, परंतु इसका अभ्यास करना पाठकोंके लिये आवश्यक है।

ऋषियोंने इन देवताओंमें मानवका उच्च आदर्श देखा है और वही वेदमें हमें इस समय मिल रहा है। देवता आदर्श गुणोंका पुञ्ज है, इसलिये देवता मानवके लिये आदर्श हो सकता है। अतः वेदमंत्रका अर्थ विशेष न होते हुए भी उन मंत्रोंमें जो देवताका आदर्श स्वरूप भक्तके सामने ऋषिने पेश किया है, उसमें मानवको ‘उच्चतम मानवका आदर्श’ दीप्त सकता है। मनुष्य यह देवताका आदर्श अपने सामने रखे और वह अपनेमें ढालनेका यत्न करे। यही अनुष्ठान ‘अनिमानव’ अथवा ‘पुरुषोत्तम’ किंवा नरका नारायण बननेके लिये वेदद्वारा सूचित किया गया है।

देवताके विशेषण

इसलिये मंत्रोंमें देवताके जो विशेषण आते हैं, उनको साथ

साथ इकट्ठे ध्यानमें धरनेसे मनुष्यके सामने एक ‘पुरुष’ खड़ा होता है, वही मनुष्योंका उत्तमम वैदिक है, मनुष्योंका वही ज्येष्ठ है, प्राप्त्य है और साथ ही लिये मंत्रके संपूर्ण अर्थकी अपेक्षा ‘देवताके विशेष जो ‘आदर्श पुरुष बनता है,’ वही विशेष और वही मानवके सामने वेदका दिव्य मानवका रूप इसीलिये हमने प्रत्येक सूक्तके अर्थके पश्चात् उसमें जहाँ पणोंको इकट्ठा करके पाठकोंके सामने रखा है। इसे सूक्तने मानवोंके सामने जो आदर्श रखा है, वह सामने खड़ा हो जायगा।

‘अग्नि’ ज्ञान-दाता, वक्ता, धनदाता, होता करनेवाला और आरोग्य-रक्षक है। यह ज्ञानी आदर्श पाठकोंके सामने है। ‘इन्द्र’ शूर वीर, शत्रुका पराभव करनेवाला, कभी पराभूत न होनेवाला कभी घेरा नहीं जाता, परंतु शत्रुको घेर कर उनका नाश है। यह क्षत्रियके लिये उत्तम आदर्श है। ‘यम’ ये दो राजे सभामें बैठते, आपसमें लड़ाई नहीं करते, हित करते और अपना बल सत्यमार्गकी वृद्धि करने करते हैं। ये आदर्श राजा हैं। इस तरह अन्यान्य विषयमें जानना योग्य है। ऐसा जाननेके लिये सब साधन इस सुबोध भाष्यमें स्पष्ट रूपसे दिये हैं। अतः पाठक इस पद्धतिसे वैदिक दिव्य आदर्श अपने सामने उसको अपने जीवनमें ढालेंगे और स्वयं उत्तमतर मानव का यत्न करेंगे।

आंध (जि. सातारा)

श्रावण शु. पूर्णिमा

सं. २००२

निवेदक

श्री० दा० सातवळेकर,

अध्यक्ष-स्वाध्याय-मंडल

इह आ वह, नः हविः यज्ञं च उप (आवह) ॥१०॥ नवीगता गायत्रेण स्तनानः मः (मं) वीरवतीं रविं इमं ॥११॥ हे अग्ने ! शुक्रेण शोचिषा, विश्वाभिः देवहूतिभिः, नः इमं म्योमं जुषस्व ॥१२॥

अर्थ- देवोंको बुलानेवाले, सर्वज्ञ अथवा सब धनोंसे युक्त, इस यज्ञके उत्तम प्रकार संपन्न करनेवाले, अग्नि रूपमें हम स्वीकार करते हैं ॥१॥ प्रजाओंके पालक, अन्न पहुंचानेवाले, सबको प्रिय, ऐसे तेजस्वी अग्नि की प्रशंसा (हम) करते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! (तू) प्रकट होते ही, आसन फैलानेवाले भक्तोंके पास, गद्गं, सब देवोंको ले आ (तू) सबके लिये देवोंको बुलानेवाला और प्रशंसनीय हो ॥३॥ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये (देवोंके पास) है, (तब आनेकी) इच्छा करनेवाले उन (सब देवोंको) जगा दो । (उनको गद्गं ले आओ और) हम सब देवोंके साथ बैठो ॥४॥ हे धीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! तू (हमारा) नाश करनेवाले क्रूर प्रत्येकको जला दो ॥५॥ कवि, गृहरक्षक, तरुण, अन्न पहुंचानेवाले, ज्वालास्पी मुग्गसे युक्त, अग्निको (दूसरे) द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥६॥ सत्य धर्मके पालनकर्ता, रोगोंके नाशक, ज्ञानी अग्निदेवकी इस हिंसाप्रति प्रशंसा करो ॥७॥ हे अग्निदेव ! जो अन्नोंका पति, तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है, उसका तू रक्षक बन ॥८॥ हे करनेवाले अग्ने ! जो हविरज्जवाला भक्त देवोंके संतोषके लिये, तुझ अग्नि की सेवा करता है, उसे सुख दे ॥९॥ हे पवित्रकर्ता अग्ने ! वह (तू) हमारे पास सब देवोंको यहां ले आ और हमारा अन्न और यज्ञ उनके समीप पहुंचा नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रसे प्रशंसित हुआ, वह (तू) वीरोंसे युक्त धन और अन्न हम सबके पास भरे दे हे अग्ने ! अपनी पवित्र दीप्तिले और सब देवताओंके स्तोत्रोंसे युक्त होकर हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥१२॥

आदर्श राजदूत

यहां मेधातिथि ऋषिने अग्निके अन्दर आदर्श राजदूतका भाव देखा है। एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाका संदेश वहांके कार्यकर्ताओंको पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो करता है, वह उत्तम राजदूत कहलाता है। ऐसा राजदूत 'अग्नि' है।

अग्निर्देवानां दूत आसीत्

उशनाः काव्योऽसुराणाम् । (तै. सं. २।५।८।७)

'अग्नि देवोंका दूत था और उशना काव्य असुरोंका दूत था।' ऐसा तैत्तिरीय संहितामें कहा है। एक यज्ञका राज्य भूमि पर है और दूसरा देवोंका राज्य है। यह दूत अग्नि यहांसे देवोंके पास जाता, उनको बुलाता और यज्ञमें उनको लाता है, उनको यज्ञमें यथास्थान बिठलाता और हविर्भाग यथायोग्य रीतिमें पहुंचाता है। यह इसका दूत-कर्म है।

जैसा अग्नि यज्ञमें दूतकर्म करता है, वैसा राजदूत राज्य-शासनरूप यज्ञमें दूत कर्म करे। क्योंकि जैसा कर्म देव करते हैं वैसा मनुष्योंको करना चाहिये। इसलिये दूतके गुण जो इस दूतमें वर्णन किये हैं, उनका विचार करना चाहिये। देखिये—

राजदूतके गुण

१ अग्नि-वह तेजस्वी हो, निस्तेज फीका या उदास न

हो। वह (अग्निः-अग्रणीः) अग्र भागतक अग्र करनेवाला हो, कार्यको अन्ततक पहुंचानेवाला हो, वह अथवा मुख्य हो। (अग्रति इति अग्निः) वह तेजस्वी हो, दलचल करनेवाला हो। जिस कार्यके करनेके लिये जाना आवश्यक हो वहांतक वह जाये और उस संपूर्ण रूपसे सिद्ध करे, ऐसा दूत हो।

२ होता-बुलानेवाला, पुकारनेवाला दूत हो, वह भाव उत्तम रीतिसे कहनेमें समर्थ हो।

३ विश्व-चेदः-सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त हो, भी उसके पास हो। ज्ञान और धनसे वह युक्त हो। राष्ट्रमें जाकर ज्ञानसे उनपर प्रभाव डाले और प्रभाव डाले और अपना कार्य करे।

४ यज्ञस्य सुकृतुः-कार्यको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाला दूत हो। (यज्ञः-देवपूजा करण-दानात्मकः) वह दूत भ्रष्टोंका सत्कार न ठन करे और सहायता करे तथा साधनोंसे अपना कार्य करे। (१)

५ विश्व-पतिः-अपने प्रजाजनोंका पालन करने उसका यही ध्येय सदा रहे कि अपनी प्रजाका उत्तम पालन हो।

[illegible]

इह आ वह, नः हविः यज्ञं च उप (आवह) ॥१०॥ नवीयया गायत्रेण स्वावानः सः (म्वं) वीर्यवीर्यं गीतं
॥११॥ हे अग्ने ! तुझे शोचिषा, विश्वानिः देवहूतिभिः, नः इमं म्योमं जुषस्व ॥१२॥

अर्थ- देवोंको बुलानेवाले, सर्वत्र अथवा सब धनोंसे युक्त, इस यज्ञके उत्तम प्रकार मंत्र करनेवाले, स्वयं हम स्वीकार करते हैं ॥१॥ प्रजाओंके पालक, अन्न पहुँचानेवाले, सबको प्रिय, ऐसे नेत्रस्वी अग्नि (हम) करते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! (तू) प्रकट होते ही, आसन फैलानेवाले मन्त्रके पात्र, यहाँ, सब देवोंको बुलाकर सबके लिये देवोंको बुलानेवाला और प्रशंसनीय हो ॥३॥ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये (देवोंके लिये) है, (तब आनेकी) इच्छा करनेवाले तन (सब देवोंको) जगा दो । (तुम्हारे यहाँ ले आओ और) इन सब देवोंके साथ घेरो ॥४॥ हे वीर्यवीर्य गीत करनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! तू (हमारा) नाम करनेवाले दूत प्रत्येकको जला दो ॥५॥ अग्नि, गृहस्थक, तपस्वि, अन्न पहुँचानेवाले, ज्वालारूपी मुखसे युक्त अग्नि (तुम्हारे) द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥६॥ सत्य धर्मके पालनकर्ता, रोगोंके नाशक, ज्ञानी अग्निदेवकी इस हिमालय प्रशंसा करो ॥७॥ हे अग्निदेव ! जो अश्वोंका पति, तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है, उसका तू रजक बन ॥८॥ करनेवाले अग्ने ! जो हविरक्षवाद्या मन्त्र देवोंके संतोषके लिये, तुझ अग्नि की सेवा करता है, उसे तुम दे ॥९॥ पवित्रकर्ता अग्ने ! वह (तू) हमारे पास सब देवोंको यहाँ ले आ और हमारा अन्न और यज्ञ उनके समस्त नवीन गायत्री छन्दके श्रोत्रसे प्रशंसित हुआ, वह (तू) वीर्यसे युक्त धन और अन्न इन सबके पास ला दे अग्ने ! अपनी पवित्र दीप्तिले और सब देवत्वानोंके श्रोत्रोंसे युक्त होकर हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥१०॥

आदर्श राजदूत

यहाँ मेधातिथि श्रुति अग्निके अन्दर आदर्श राजदूतका भव देता है। एक राज्यमें दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजका संदेश वहाँके कार्यकर्ताओंको पहुँचाता है और अपने राजका कार्य जो करता है, वह उत्तम राजदूत कहलाता है। ऐसा राजदूत 'अग्नि' है।

अग्निदेवताका दूत आग्नीव

उत्तमः काव्योऽसुरागाम् । (तै. सं. २।१।१।७)

'अग्नि देवोंका दूत था और उसका काव्य असुरोंका दूत था' ऐसा वैदिक संकेत है। एक यज्ञका राज्य भूमि-पति है और दूसरा देवोंका राज्य है। यह दूत अग्नि यहाँसे देवोंके पास जाता, उनके हुक्म और यज्ञमें उनको लाता है, उनके यज्ञमें अथर्वधर्म विद्यमान और हविर्भाग अथर्वधर्म में लिये पहुँचाता है। यह उसका दूत-कर्म है।

ऐसा अग्नि यज्ञमें दूतकर्म करता है, ऐसा राजदूत राज्य-पति यज्ञमें दूत कर्म करे। क्योंकि ऐसा कर्म देव करते हैं अग्निदेवोंका कर्म कहिये। इसलिये दूतके गुण जो दूत को जानिये, उनका विचार करना चाहिये। देखिये—

राजदूतके गुण

१ अग्नि- वह अग्नि है, जिसके श्रोत्रोंका या उदास न

हो। वह (अग्निः-अग्रणीः) अग्र सामर्थ्य करनेवाला हो, कार्यको अन्ततः पहुँचानेवाला हो, अथवा मुख्य हो। (अगति इति अग्निः) वह हो, हलचल करनेवाला हो। जिस कार्यके करनेके लिये जाना आवश्यक हो वहाँतक वह जाये और संपूर्ण करने सिद्ध करे, ऐसा दूत हो।

२ होता- बुलानेवाला, पुकारनेवाला दूत हो। भाव उत्तम रीतिसे कहनेमें समर्थ हो।

३ विश्व-वेदः- सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त हो। उसे सबके पास हो। ज्ञान और धनसे वह युक्त हो। राज्यमें जाकर ज्ञानसे उत्तम प्रभाव डाले और प्रभाव डाले और अन्तर् कार्य करे।

४ यज्ञस्य सुकतुः- कार्यको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाला दूत हो। (यज्ञः- देवपूजा करण-दानात्मकः) वह दूत देवोंका सन्तुष्ट करे और सहायता करे तथा साधनसे सन्तुष्ट करे। (१)

५ विश्व-पतिः- अपने प्रजापतिोंका पालन करने वाला यही ध्येय मद्रा रहे कि अपनी प्रजापति पालन हो।

१४ विनोद- नमो ब्रह्मे नमो नमो नमो नमो

[illegible]

व्यवाह- अल पहुंचानेवाला हो । अल उसके पास
12, अथवा जो पहुंचानेके लिये उसके पास दिया हो
13 को पहुंचाना हो वह ठीक उसको पहुंचा देवे ।

[रुप्रियः-] वह सबको प्रिय हो । (५)

[उपः-] प्रभोसके योग्य कर्म करनेवाला हो । (३)

वृत्ताह्वन- धी खानेवाला ।

दीदिवः- तेजस्वी ।

रिपतः रक्षस्विनः दह- हिंसक शत्रुओंका नाश
(५)

कथिः- ज्ञानी, विद्वान्, जो दूसरोंको न दाखनेवाला
14 को भी वह देखे और ठीक तरह जानकारी प्राप्त करे ।
15-दर्शी हो ।

गृहपतिः- अपने घरकी उत्तम रक्षा करनेवाला हो ।
पर, अपना देश, अपना राज्य इसकी रक्षा कैसा हो
है, इसका उत्तम ज्ञान उसको हो ।

गुप्ता- राजदूत तरण हो, अथवा तमालके समान बल-

विशेष रीतिसे जगावे । (४)

उत्तम राज-दूतके इतने उत्तम गुण यहां इस सूत्रमें बताने
किये हैं । जिस राजाके पास ऐसे उत्तम दूत होंगे वह निःसंदिग्ध
विजयी होगा । पाठक राजधर्मकी दृष्टिसे इस सूत्रके इन पदोंका
विचार करें ।

रोग-निवारण

अग्निका रोग-निवारक गुण इस सूत्रमें बताया है जो
आरोग्यकी दृष्टिसे देखने योग्य है—

१ अमीचिचातनः— अचचित अन्नका 'आम' पेटमें
बनता है, यही आम नामा रोगोंको उत्पन्न करता और घटाता
है । इसलिये रोगोंका नाम वेदमें 'अमीच' (अमीच
'अमीचान्' किंवा 'आमचान्') कहा है । अनेक रोग
इस आमसे उत्पन्न होते हैं, इस कारणसे लोग जर्म और आगे
पेटमें आमका संग्रह न होने दें, पेट स्वस्थ रहे और रोगों
मुक्त हों । रोगको उत्पन्न करने पर इस रोग-रोग भोजन का
सहस्रवर्ष का नाना विचार है ।

इह आ वह, नः हविः यज्ञं च उप (आवह) ॥१०॥ नवीनया गायत्रेण स्तवानः यः (त्वं) वीर्यवीरं रतिं ॥
॥११॥ हे अग्ने ! शुक्रेण शोचिषा, विश्वाभिः देवहूतिभिः, नः इमं सोमं जुगुप्स ॥१२॥

अर्थ- देवोंको बुलानेवाले, सर्वज्ञ अथवा सब धनोंसे युक्त, इस यज्ञके उत्तम प्रकार संपन्न करनेवाले, रूपमें हम स्वीकार करते हैं ॥१०॥ प्रजाओंके पालक, अन्न पहुंचानेवाले, सबको प्रिय, मेसे तेजस्वी अग्निकी (हम) करते हैं ॥११॥ हे अग्ने ! (तू) प्रकट होते ही, आसन फैलानेवाले भक्तके पास, यहाँ, सब देवोंको ले जा (सबके लिये देवोंको बुलानेवाला और प्रशंसनीय हो ॥१२॥ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये (देवोंके पास) है, (तब आनेकी) इच्छा करनेवाले उन (सब देवोंको) जगा दो । (उनको यहाँ ले आओ और) इस सब देवोंके साथ बैठो ॥१३॥ हे धीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! तू (हमारा) नाश करनेवाले प्रत्येकको जला दो ॥१४॥ कवि, गृहरक्षक, तरुण, अन्न पहुंचानेवाले, ज्वालारूपी मुखसे युक्त अग्नि (तूने) द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥१५॥ सत्य धर्मके पालनकर्ता, रोगोंके नाशक, ज्ञानी अग्निदेवकी इस हिंसादि प्रशंसा करो ॥१६॥ हे अग्निदेव ! जो अश्वोंका पति, तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है, उसका तू रक्षक बन ॥१७॥ करनेवाले अग्ने ! जो हविरजवाला भक्त देवोंके संतोषके लिये, तुझ अग्निकी सेवा करता है, उसे सुख दे ॥१८॥ पवित्रकर्ता अग्ने ! वह (तू) हमारे पास सब देवोंको यहाँ ले आ और हमारा अन्न और यज्ञ उनके समीप पहुंच नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रसे प्रशंसित हुआ, वह (तू) वीरोंसे युक्त धन और अन्न हम सबके पास ला ॥१९॥ हे अग्ने ! अपनी पवित्र दीप्तिसे और सब देवताओंके स्तोत्रोंसे युक्त होकर हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥२०॥

आदर्श राजदूत

यहाँ मेधातिथि ऋषिने अग्निने अन्दर आदर्श राजदूतका भाव देखा है। एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाका संदेश वहाँके कार्यकर्ताओंको पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो करता है, वह उत्तम राजदूत कहलाता है। ऐसा राजदूत ' अग्नि ' है।

अग्निर्दधानां दूत आसीत्

उशनाः काव्योऽसुराणाम् । (तै. सं. २।५।८।७)

' अग्नि देवोंका दूत था और उशना काव्य असुरोंका दूत था ।' ऐसा तैत्तिरीय संहितामें कहा है। एक यज्ञका राज्य भूमि-पर है और दूसरा देवोंका राज्य है। यह दूत अग्नि यहाँसे देवोंके पास जाता, उनको बुलाता और यज्ञमें उनको लाता है, उनको यज्ञमें यथास्थान विठलाता और हविर्भाग यथायोग्य रीतिसे पहुंचाता है। यह इसका दूत-कर्म है।

ऐसा अग्नि यज्ञमें दूतकर्म करता है, वैसा राजदूत राज्य-आसनपर यज्ञमें दूत कर्म करे। क्योंकि जैसा कर्म देव करते हैं वैसा मनुष्योंको करना चाहिये। इसलिये दूतके गुण जो इस यज्ञमें वर्णित किये हैं, उनका विचार करना चाहिये। देखिये—

राजदूतके गुण

१ अग्नि- वह तेजस्वी हो, निरतिज धीका या उदास न

हो। वह (अग्निः-अग्रणीः) अग्र भागतक करनेवाला हो, कार्यको अन्ततक पहुंचानेवाला हो, अथवा मुख्य हो। (अगति इति अग्निः) वा हो, हलचल करनेवाला हो। जिस कार्यके करनेके लिये जाना आवश्यक हो वहाँतक वह जाये और वहाँ संपूर्ण रूपसे सिद्ध करे, ऐसा दूत हो।

२ होता- बुलानेवाला, पुकारनेवाला दूत हो। भाव उत्तम रीतिसे कहनेमें समर्थ हो।

३ विश्व-वेदः- सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त हो भी उसके पास हो। ज्ञान और धनसे वह बुद्धि राष्ट्रमें जाकर ज्ञानसे उनपर प्रभाव डाले और प्रभाव डाले और अपना कार्य करे।

४ यज्ञस्य सुकतुः- कार्यको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाला दूत हो। (यज्ञः- देवपूजा-करण-दानात्मकः) वह दूत श्रेष्ठोंका सहायता करे और सहायता करे तथा साधनोंसे अन्न ले करे। (१)

५ विश्व-पतिः- अपने प्रजाजनोंका पालन करने उसका यही ध्येय सदा रहे कि अपनी प्रजाका उत्तम पालन हो।

दिन प्रत्येक घरमें हवन हो, नगरोंमें चार मार्ग मिलनेके स्थानों-पर हवन हो तथा देवताओंके मंदिरोंमें हवन हो । इस तरह होनेसे नगर आरोग्य-संपन्न हो सकेगा ।

२ रिपतः रक्षस्विनः दह- हिंसा करनेवाले राक्षसोंको जला दे । अर्थात् अग्नि हिंसक राक्षसोंको जला देता है । राक्षस और रक्षः (रक्षस्) ये पद जैसे बड़े क्रूरकर्मा मानवोंके वाचक हैं, वैसेही वेदमें रोगजन्तुओंके भी वाचक हैं । (रक्षन्ति एभ्यः) जिनसे मनुष्योंको बचना चाहिये, वे राक्षस या रक्षस् हैं । रक्षस् छद्मता-दर्शक पद है । सूक्ष्म कृमि ऐसा इनका अर्थ है । अग्नि अग्निके सूक्तोंमें राक्षस-वाचक अनेक पद आयेगे जिनका अर्थ रोगजन्तु होगा । जहां ये पद आयेगे वहां स्पर्शकरणमें बतया जायगा, यहां सूचना मात्र लिखा है । 'रिप्' का अर्थ हिंसा करना है, नाश तथा घातपात करना है । ये जन्तु रोग उत्पन्न करके बड़ा संहार करते हैं इसलिये इनको यहाँ 'रिपतः' (हिंसक) कहा है, जलानेसेही ये नष्ट होते हैं । अग्नि इनको जलाकर नष्ट कर देता है और सूर्य इनको अपने किरणोंसे नाश करता है । इसका वर्णन सूर्यके सूक्तोंमें आगे आनेवाला है । अग्नि रोग-बीजोंको किस तरह दूर करता है, इसका स्पर्शकरण यहां कहा है ।

३ पायकः- पवित्रता करनेवाला अग्नि है । अपवित्रतासे रोग-बीज बढ़ते हैं । अग्नि पवित्रता करता है, इस कारण वह रोगोंका निवारण करता है । पवित्रता करनेवाले सभी पदार्थ रोग-निवारक होते हैं ।

४ शुक्र-शोचिः- पवित्रता बढ़ानेवाले इसके किरण हैं, पवित्रता बढ़ाकर रोग दूर करते हैं, इस कारण ये वीर्यवर्धक अथवा वयवर्धक भी हैं । सूर्य भी 'शुक्र-शोचिः' है । 'शुक्र' पदका अर्थ 'पवित्र, बल, वीर्य, पराक्रम' है । पवित्र-तामें शिष्ट होनेवाले ये शुभ हैं ।

५ घृताहवनः- घीका हवन अग्निमें होता है । यहां घीका हवन है । वेदमें घीको छोटकर भैंस आदि किसी अन्यके घीका वर्णन नहीं है । इसलिये जहां वेदमें घीका वर्णन हो वहां घीके घृतकाही वह वर्णन है, ऐसा समझना चाहिये । सब घी विनश्वरक होता है, इसलिये अग्निमें घीका हवन होता है । यह सूक्ष्म रूपसे वायुके साथ मिलता है और वायुको जलित कर रोग-बीजोंको दूर करता है । घीके घृतमें यह विष दूर करनेका गुण निरूप्य है ।

६ यज्ञस्य सुक्रतुः- यज्ञका नियन्त्रक । गोपथ ब्राह्मणके वचनानुसार क्रतुसंधियोंमें रोगजननेवाले यज्ञोंका नियन्त्रकता ऐसा समझना चाहिये ।

७ हव्यवाह- हवन किये हुए वायुके घृतादिसे सूक्ष्म करके इतस्ततः वायुमें फैला देना इससे रोगोंको हटानेवाला अग्नि है ।

इस रीतिसे कई अन्य पद अग्निके गुणोंका उक्तका विचार पाठक अवश्य करें ।

नवीन स्तोत्र

'नवीयसा गायत्रेण स्तवानः' (मंत्र ११) गायत्री छंदके स्तोत्रमें स्तुति जिसकी की गयी है, इसमें गायत्री छन्दमें यह नवीन स्तोत्र किया गया, होता है । इस विषयमें 'मंत्रपति, मंत्रद्रष्टा' कृत्' ऐसे ऋषियोंके तीन वर्ग हैं । प्राचीन ऋषि मंत्रोंका संग्रह करके उनकी पठन-पाठनसे रक्षा 'मन्त्र-पति ऋषि' होते हैं । सनातन गुप्त इन तत्त्वज्ञानका दर्शन करनेवाले 'मन्त्रद्रष्टा ऋषि' । मंत्रोंकी रचना करनेवाले 'मन्त्रकृत् ऋषि' हैं । इस विषयमें तै० आरण्यकमें कहा है—

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।
मा मां ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः पातु
मासह ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् पातु
(तै० अ०)

'मन्त्रकृत् और मंत्रपति ऐसे जो ऋषि हैं, उनके हैं । मन्त्रकृत् और मंत्रपति ऋषि मेरा तिरस्कार नहीं मैं मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषियोंका तिरस्कार करूंगा ।'

यहां 'मन्त्रकृत् और मन्त्रपति' का उल्लेख है । पद निरूपणमें है । मन्त्रकृत् जो ऋषि होते हैं उनकी ही (कारीगर) कहा है । यह कारु पद वेद-मंत्रोंमें ही आता है । कारुका अर्थ है करनेवाला, निर्माण करने करनेवाला ।

मन्त्रपति और मन्त्रकृत् में भेद है । दोनों मन्त्र होते हैं । मन्त्रका अर्थ 'मनन करने योग्य ज्ञानका हस्त' मन्त्रपति ऋषि उन मन्त्रोंमें उस गुप्त तत्त्वज्ञानको देकर उन प्राचीन समयमें चले आये मंत्रोंका संग्रह करते हैं ।

दिन प्रत्येक घरमें हवन हो, नगरमें चार मार्ग मितनेके स्थानों-
पर हवन हो तथा देवताओंके मंदिरोंमें हवन हो । इस नष्ट
होनेसे नगर आरोग्य-संपन्न हो सकेगा ।

२ रिपतः रक्षस्विनः दह- हिंसा करनेवाले राज्योंके
जन्म दे । अर्थात् अग्नि हिंसक राक्षसोंको जला देता है ।
राक्षस और रक्षः (रक्षस्) ये पद जैसे गड़े फूरकया माननेके
वाचक हैं, वैसेही वेदमें रोगजन्तुओंके भी वाचक हैं । (रक्षन्ति
एभ्यः) जिनसे मनुष्योंको रचना चाहिये, वे राक्षस या रक्षम्
हैं । रक्षस् छुद्रता-दर्शक पद है । सूक्ष्म कृमि ऐसा इनका
अर्थ है । आगे अग्निके सूक्ष्मोंमें राक्षस-वाचक अनेक पद
आयेंगे जिनका अर्थ रोगजंतु होगा । जहां ये पद आयेंगे वहां
स्पष्टीकरणमें बताया जायगा, यहां सूचना मात्र लिया है । 'रिप'
का अर्थ हिंसा करना है, नाश तथा घातपात करना है । ये
जन्तु रोग उत्पन्न करके बड़ा संहार करते हैं इसलिये इनको
यहां 'रिपतः' (हिंसक) कहा है, जलानेसेही ये नष्ट होते
हैं । अग्नि इनको जलाकर नष्ट कर देता है और सूर्य इनको
अपने किरणोंसे नाश करता है । इसका वर्णन सूर्यके सूक्ष्मोंमें
आगे आनेवाला है । अग्नि रोग-बीजोंको किस तरह दूर करता
है, इसका स्पष्टीकरण यहां कहा है ।

३ पावकः- पवित्रता करनेवाला अग्नि है । अपवित्रतासे
रोग-बीज बढते हैं । अग्नि पवित्रता करता है, इस कारण वह
रोगोंका निवारण करता है । पवित्रता करनेवाले सभी पदार्थ
रोग-निवारक होते हैं ।

४ शुक्र-शोचिः- पवित्रता बढ़ानेवाले इसके किरण हैं,
पवित्रता बढ़ाकर रोग दूर करते हैं, इस कारण ये वीर्यवर्धक
अथवा बलवर्धक भी हैं । सूर्य भी 'शुक्र-शोचिः' है ।
'शुक्र' पदका अर्थ 'पवित्र, बल, वीर्य, पराक्रम' है । पवित्र-
तासे सिद्ध होनेवाले ये गुण हैं ।

५ घृताहवनः- घीका हवन अग्निमें होता है । यहां
गौका घृत है । वेदमें गौको छेड़कर भैंस आदि किसी अन्यके
घीका वर्णन नहीं है । इसलिये जहां वेदमें घीका वर्णन हो
वहां गौके घृतकाही वह वर्णन है, ऐसा समझना चाहिये । सब
घी विपनाशक होता है, इसलिये अग्निमें घीका हवन होता
है । यह सूक्ष्म रूपसे वायुके साथ फैलता है और वायुको
निर्विष या रोगघीज-रहित करता है । गौके घृतमें यह विष दूर
करनेका गुण विशेषही है ।

६ यजमान शुकृत्- यजमान (यजमानके)
योग्य ज्ञानके जन्मानुसार 'यजमान' के
जन्मवाले यजमानके निष्पन्न-जन्म ऐसा मानना है ।

७ हव्यपाद- हवन करने वाले हव्य (यजमानके)
पादोंके सूक्ष्म करके हव्यपाद वायुमें फैलता है ।
इससे रोगोंको हव्यपादवाला अग्नि है ।

इस सीमिमें बड़े अल्प पद अग्निके गुणोंका वर्णन
करके निवारण पाठक उपरान्त करें ।

नवीन स्तोत्र

'नवीयसा गायत्रेण स्तवानः' (मंत्र ११)
गायत्री छंदके स्तोत्रोंमें श्रुति जिनकी भी गयी है,
इसमें गायत्री छंदमें यह नवीन स्तोत्र किया गया,
होता है । इस निष्पत्ति 'मंत्रपति, मंत्रद्रष्टा'
श्रुत्' ऐसे ऋषियोंके तीन वर्ग हैं । प्राचीन कालमें
मंत्रोंका संग्रह करके उनही पठन-पाठनमें रक्ष
'मन्त्र-पति ऋषि' होते हैं । सनातन गुप्त
तत्त्वज्ञानका दर्शन करनेवाले 'मन्त्रद्रष्टा ऋषि'
मंत्रोंकी रचना करनेवाले 'मन्त्रकृत् ऋषि'
इस विषयमें तै० आरण्यकमें कहा है—

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।
मा मां ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परा दुः ।
माऽहं ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परा ॥

(तै० आ० १०)

'मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऐसे जो ऋषि हैं, उनके
हैं । मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषि मेरा तिरस्कार नहीं
में मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषिकोंका तिरस्कार
कहंगा ।'

यहां 'मन्त्रकृत् और मन्त्रपति' का उल्लेख है ।
पद निरुक्तमें है । मन्त्रकृत् जो ऋषि होते हैं उनको ही
(कारीगर) कहा है । यह कारु पद वेद-मंत्रोंमें
आता है । कारुका अर्थ है करनेवाला, निर्माण करने
करनेवाला ।

मन्त्रपति और मन्त्रकृत् में भेद है । दोनों मन्त्र
होते हैं । मन्त्रका अर्थ 'मनन करने योग्य ज्ञानका'
मन्त्रपति ऋषि उन मन्त्रोंमें इस गुप्त तत्त्वज्ञानको देख
उन प्राचीन समयसे चले आये मंत्रोंका संग्रह करते

इसलिये इसकी प्रशंसा (नर-आ-शंस) सभी मनुष्य करते । क्योंकि सब ज्ञानी जानते हैं कि इसके बिना विश्वमें कुछ । कार्य नहीं हो सकता । (मं. ३)

सुखतम रथ

जिससे अत्यंत सुख होता है ऐसे रथमें बैठकर यह अग्नि । व देवोंको इस यज्ञभूमिमें लाता है और (मनुहितः) मनु- । योंका हित करता है । इस विषयमें पूर्व सूक्तमें विशेष स्पष्टी- । रण किया है । (मं. ४)

अमृतका दर्शन

यहांही ' अमृतका दर्शन ' (अमृतस्य चक्षणं) । ीता है । यहां सब देवताओंके लिये (आनुषक्) साथ साथ । आसन फैलाये हैं । आंख नाक कान आदि इंद्रियोंमें आसनोपर । ये देव आकर बैठते हैं और यज्ञ करते हैं । इस यज्ञमेंही अमृत- । का साक्षात्कार होता है । इसलिये कहा है—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम् ।

(अथर्व १०।७।१७)

जो पुरुषमें ब्रह्म देखते हैं वेही परमेष्ठी प्रजापतिका दर्शन । करते हैं । यही अमृतका दर्शन है । यहां जो यज्ञ चलता है । उसका अन्तिम फल अमृतका साक्षात्कारही है । (मं. ५)

तीन देवियां

(इळा) मातृभूमि, (सरस्वती) मातृसंस्कृति, (गङ्गा- । भारती) मातृभाषा ये तीन देवियां उपासनाके योग्य हैं । ये । बड़ी सुख देनेवाली हैं । (इळा, इटा, इरा) अन्न देनेवाली । भूमीमाता यह प्रथम उपास्य है । इसकी भक्तिके लिये । ' मातृभूमि सूक्त ' (अथर्व १२।१ मं) है । उसका विचार । यहां पाठ्य करें । यह प्रधानका संबंध है । (सरस्-वती) । प्रवाहसे अनादि जो सम्भूता है वह भी रक्षा करने योग्य है । । यह मानवी जीवनका मार्ग बताती है । अनादिकालके साथ । संबंध जोड़नेवाली यही दिव्य भावना है जो अनंत कालमें एक- । ताका भाव निर्माण करती है । प्राचीनतम ऋषियोंके साथ हमारा । संबंध जोड़नेवाली यही सरस्वती है । जिततरह उत्पत्तिस्थानके । साथ समुद्रका संबंध नदी जोड़ती है, उसीतरह यह सम्भूता । फलके साथसाथ संबंध ऋषियोंसे जोड़ती है । यह बलका । संबंध है, तत्परी देवता गङ्गा है, इसीको अन्न अर्घ्यद्वारा । भारती कहा है । भारती नाम दार्पिका है । मातृभाषाही । भारती है । भूमि, गङ्गाका और माता इनके मनुष्यको मानवका । (मेधा०)

रहती है । इसलिये यज्ञके द्वारा इनकी सुरक्षा और उन्न । की जाती है । जिस कर्मसे इनकी अवनति होगी, वे व । करने नहीं चाहिये और जिससे इनकी उन्नति होगी वे व । करने चाहिये । यही कर्म यज्ञनामसे प्रसिद्ध हैं । (मं. ९)

विश्वरूप त्वष्टा

त्वष्टा कारीगरका नाम है ' विश्वरूप त्वष्टा ' है, जो म । कारीगर है वह विश्वरूप है । ' विश्वं विष्णुः ' विश्वही वि । है और जो विष्णु है वही विश्व है अर्थात् विश्वरूप है । । विश्वरूप देवकी ही सेवा करनी चाहिये ।

नगरोंमें तर्खाण आदि जो (त्वष्टा) कारीगर हैं उन । संमान करना योग्य है । यज्ञमें उनका सम्मान होता है । यज्ञका मंडप वह तैयार करता है, यज्ञपात्र वह बनाता । पर वह बनाता है । मानवी जीवनमें कारीगरोंका बड़ा । उपयोग है । ये कारीगर विश्वरूप अर्थात् नानारूप बनाते हैं । इसीलिये उनको सम्मानपूर्वक युलाना योग्य है । (मं. १०)

वनस्पतियोंसे अन्न

(वनस्पते । देवेभ्यः हविः अवसृज) हे औषधि । वनस्पतियों । देवोंके लिये अन्नका निर्माण करो । (पर्जन्या । अन्नसंभवः । गीता ३।१४) पर्जन्यसे अन्न उत्पन्न होता है । पर्जन्यसे औषधियां और (ओषधिभ्यो अन्नं) औषधियों । अन्न उत्पन्न होता है । यही अन्न देवोंको दिया जाता है । औ । पश्चात् यज्ञशेषका सेवन किया जाता है । इसी यज्ञशेष अन्न । ' अमृत ' कहते हैं । (मं. ११)

दाताको उत्साह

(दातुः चेतनं अस्तु) दाताके लिये उत्साह मि । अधिक धन करते रहनेका उत्साह मनुष्योंमें बढे । इसीसे प । वर्षोंकी दृष्टि होगी और मनुष्योंका दिन होगा । (मं. ११)

स्वाहा करो

(स्व-आ-हा-शानिः) जो अपना वस्तु है, उस । स्वकी आर्द्राके लिए स्पर्ध करके नाम ' स्वाहा शानिः ' है । इसका नाम यज्ञ है । यज्ञकी यह उत्पत्ति उत्पन्न पदार्थों । यज्ञही प्रोत्पन्न करने है । मनुष्यका जीवनही पदार्थोंके प्रोत्पन्न । यज्ञ है । और इस यज्ञमें ' स्वाहा ' ही शानि है । अन्न । मनुष्यको सुख प्रिया है । (मं. १२)

देवोंके दान का ही सुख है अन्न दान का ही सुख है ।

मंत्रोंके अर्थोंसे सूक्तका भाव स्पष्ट हो सकता है। अतः क मंत्रके स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है। प्रायः हर एक मंत्रके सूक्तमें देवताएं इसी क्रमसे होती हैं, और वर्णन पद भी ऐसेही रहते हैं।

अग्निका वर्णन

(पावकः) पवित्रता करनेवाला, (होतः) बुलानेवाला, या यज्ञने चाहिये।

हवन करनेवाला, (तनू-न-पात्) शरीरको न गिराने शरीरधारक, (कविः) ज्ञानी, (नराशंसः) मनुष्योंद्वारा सिद्ध, (मधुजिह्वः) मधुरभाषी, मीठी जवानवाला, (अन्न सिद्ध करनेवाला, (मनुः-हितः) मानवोंका हितकर्ता पद विचार करने योग्य है। ये गुण मानवोंको अपने

(३) हिंसाराहित कर्म

(अ. सं. १।१४) मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः (विश्वैर्देवैः सहितोऽग्निः) । गायत्री ।

| | | |
|--|-------------------------|----|
| ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये | । देवेभिर्याहि याक्षि च | १ |
| आ त्वा कण्वा अहूपत गृणन्ति विप्र ते धियः | । देवेभिरग्न आ गहि | २ |
| इन्द्रवायू बृहस्पति मित्राग्नि पूषणं भगम् | । आदित्यान् मारुतं गणम् | ३ |
| प्र वो भ्रियन्त इन्द्रवो मत्सरा मादयिष्णवः | । द्रप्ता मध्वश्चमूपदः | ४ |
| ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तवर्हिषः | । हविष्मन्तो अरंकृतः | ५ |
| घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः | । आ देवान्तसोमपीतये | ६ |
| तान् यजत्रां क्रतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि | । मध्वः सुजिह्व पायय | ७ |
| ये यजत्रा य ईक्ष्यास्ते ते पियन्तु जिह्वया | । मधोरग्ने वपदकृति | ८ |
| आर्को सूर्यस्य रोचनाद् विश्वादेवां उपवृधः | । विप्रो होतेह वक्षति | ९ |
| विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना | । पिवा मित्रस्य धामभिः | १० |
| त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि | । सेमं नो अध्वरं यज | ११ |
| युक्त्वा ह्यरुपी रथे हरितो देव रोहितः | । ताभिर्देवां इहा वह | १२ |

अन्वय — हे अग्ने ! एभिः विश्वेभिः देवेभिः सोमपीतये आयाहि । (अस्माकं) दुवः गिरः च (अग्ने) याक्षि च ॥१॥ हे विप्र अग्ने ! कण्वाः त्वा आ अहूपत । ते धियः गृणन्ति । देवेभिः आ गहि ॥२॥ (हे अग्ने) वायू बृहस्पति मित्राग्नि पूषणं भगं आदित्यान् मारुतं गणं (याक्षि) ॥३॥ चमूपदः मत्सराः मादयिष्णवः द्रप्ताः इन्द्रवः वः प्र भ्रियन्ते ॥४॥ हविष्मन्तः अरंकृताः वृक्तवर्हिषः अवस्यवः कण्वासः त्वां ईळते ॥५॥ (हे अग्ने) ये मनोयुजः वह्नयः त्वा वहन्ति, (तैः) सोमपीतये देवान् आ (वह) ॥६॥ हे अग्ने ! तान् यजत्रान् क्रतावृधः पत्नीवतः कृधि । हे सुजिह्व ! मध्वः पायय ॥७॥ हे अग्ने ! ये यजत्राः, ये ईक्ष्याः, ते ते वपदकृति मधोः जिह्वया ॥८॥ विप्रः होता उपवृधः विश्वान् देवान् सूर्यस्य रोचनाद् इह आर्को वक्षति ॥९॥ हे अग्ने ! (त्वं) विश्वेभिः (देवैः) इन्द्रेण, वायुना, मित्रस्य धामभिः सोम्यं मधु पिय ॥१०॥ हे अग्ने ! मनुर्हितः होता त्वं यज्ञेषु सीदसि । सः (त्वं) इमं अध्वरं यज ॥११॥ हे देव ! अरुपीः हरितः रोहितः रथे युक्त्वहि । ताभिः देवान् इहा आ वह ॥१२॥

अर्थ— हे अग्ने ! इन सब देवोंके साथ सोमपान करनेके लिये (यहां) आओ, (हमारी) पूजा (और प्रार्थना) शब्द (मनु लो । और इस) यज्ञकी पूर्णता करो ॥१॥ हे ज्ञानी अग्ने ! कण्व तुझे बुला रहे हैं । तेरी बुद्धिकी (

रहा है, यह अग्नि (शारीरिक उष्णता) यहाँका मुख्य याजक अग्नि है । इत्यादि सत्य वर्णन यहाँ है ऐसाही मानना योग्य है । मनुष्य जीवन एक महान् यज्ञ है और यह यज्ञ प्रत्यक्ष ही है ।

यज्ञमें देवगण

यहाँके यज्ञमें सब देवतागण यथास्थान विराजमान हैं (इन्द्र) मन है जो देवोंका राजा है, (वायु) मुख्य प्राण है, (बृहस्पति) वाणी और ज्ञान है, (मित्र) नेत्र है, (अग्नि) जाठर अग्नि, उष्णता और वाणीका प्रेरक शारीर अग्नि है, (पूषा) पोषक अन्नभाग, (भग) भाग्य, शोभा, ऐश्वर्य, (आदित्य) द्वादश महिने, कालके अवयव हैं, (मारुत गण) प्राण और उपप्राण, नाना जीवन शक्तियाँ (पत्नीवतः) इन की प्रेरक शक्तियाँ इस तरह ये सब देव यहाँ रहते हैं । हविष्यान्नका भोग करते हैं और आनन्द प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं । पाठकोंको मननद्वारा इन देवताओंको जानना योग्य है ।

सोमरस देवोंका अन्न

सोमरस ही देवोंका अन्न है । इस विषयमें कहा है—
अन्नं वै सोमः । (श. ३।९।१।८; ७।२।२।११)
एतद्वै देवानां परमं अन्नं यत्सोमः । (तै. ब्रा. १।३।३।२)
एतद्वै परमं अन्नाद्यं यत्सोमः । (कौ. १।३।७)
एष वै सोमो राजा देवानां अन्नं । (श. १।६।४।५)
' यह सोमरस देवोंका अन्न है । ' पूर्व आप्रीसूक्तमें (ऋ. १।१३।११ में) वनस्पतिसे अन्नकी प्रार्थना की है—
हे वनस्पते ! देवेभ्यो हविः अवसृज । (ऋ. १।१३।११)
इसका हेतु स्पष्ट है कि देवोंका अन्न वनस्पतिसे मिलता है ।
' ओपधिभ्योऽन्नं ' ऐसा तै. उपनिषद्ने भी कहा है । इस सबका आशय यही है कि वनस्पतिसे अन्न प्राप्त होता है । जो देवोंको देकर मानवोंको सेवन करने योग्य है ।

सोमके गुण

इस सूक्तमें सोमके निम्नलिखित गुण कहे गये हैं ।

१ इन्द्रुः— तेजस्वी रस

२ मत्सरः— आनन्द कर, मद कर

३ मादयिष्णुः— उत्साहवर्धक, मद बढ़ानेवाला

४ द्रप्सः— बूंद बूंद चूनेवाला, छानकर तैयार होनेवाला

५ मधुः— मधुर

६ चमूपद्— पात्रमें जो रखा जाता है

७ सोम्यं मधु— सोमवर्णीका मधुर रस

सोमवर्णीका रस निचाला और छाना जाता है, वह भरा जाता है । वह मधुर है और हर्ष तथा उत्साह वाला है । यही आयोंका मुख्य पेय था ।

घोडे

घोडे किस तरह पाले जाय और रथके साथ जोड़े घोडे कैसे हों, इस विषयमें इस सूक्तमें अच्छे निर्देश हैं ।

घृतपृष्ठाः— घी लगाये समान घोड़ोंकी पीठ तेजस्वी

मनोयुजः— दशारे मात्रसे वे जोते जाय और दशारेसेही चलते रहें, ऐसे शिक्षित घोडे हों,

३ चक्षयः— डोनेमें, भार डोनेमें समर्थ हों, अग्निके तेजस्वी हों । यह अग्निवाचक पद घोड़ोंके लिये प्रयुक्त हुआ

४ असुर्यी— चपल, लाल रंगवाला,

५ हरितः— तेज चलनेवाले पीले रंगवाले घोडे,

७ रोहितः— लाल रंगवाले ।

ऐसे घोडे रथको जोतनेके लिये उत्तम शिक्षित तैयार रहे । ' रथे रोहितः युक्ष्व ' (मं. १२) लाल रंगवाले घोडे जोतो, जो दशारेसे चलनेवाले हों । घोडे रथमें बैठनेवालेको सुख देंगे ।

इस रथमें अग्निके साथ सब देव बैठते थे और इन येही घोडे खींचकर लाते थे । इस सूक्तमें तृतीय मंत्रमें देव, वारह आदित्य और मरुद्गण ४९ गिनाये हैं, ५४ पार्श्वरक्षक १४ मिलकर ६३ होते हैं । अर्थात् ये ८१ कमसे कम ६८ देव तो हुए । इनको रथमें बिठलानेके रेलके बड़े डब्बेके समान बड़ा भारी रथ होगा और खींचनेके लिये कितने घोडे लगेंगे इसका पता नहीं । इस सूक्तमें वर्णित रथ इस शरीरको माननाही युक्तियुक्त क्योंकि यहाँ सब देवताएं हैं और इसको दस घोडे जोड़े और ये इस रथको खींचते भी हैं ।

ये घोडे उत्तम शिक्षित हों, तथा तेजस्वी और चपल हों, अपना कार्य करनेकी क्षमता भी इनमें हो ।

विप्र अग्नि

इस सूक्तमें अग्निको ' विप्र ' अर्थात् विशेष प्राज्ञ ज्ञानी कहा है । अग्निके मंत्रोंमें आदर्श ब्राह्मणके गुण देखते हैं ऐसा हमने मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें (पृष्ठ १५)

वही यहाँ इस पदसे स्पष्ट होता है। (सुजिह) ही जवानवाला, मोठा भापन करनेवाला, यह पद भी ही वर्णन करता है।

देवोंके लक्षण

शुक्तमें देवोंके लक्षण जो आये हैं वे विशेषही मनन रूप हैं—

जत्राः— सतत दक्ष करनेवाले, याजक। प्रशस्त कर्म हैं,

ख्याः— प्रशंसा करनेके लिये योग्य,

पर्युधः— उपःकालमें जागनेवाले, उपःकालमें उठकर कार्य शुरू करनेवाले,

हिता— दान करनेवाला, देवताओंको बुलानेवाला,

मनुर्हितः— मनुष्योंका हित करनेवाला, जनताका हित तत्पर,

कृतावृधः— सत्यमार्गके बढानेवाले,

गन्तीव्रतः— गृहस्थाश्रमी।

एक मनुष्योंको अपनाने योग्य हैं, मनुष्य उपःकालमें दान करें, जनताका हित करें, इसीलिये नाना प्रकारके हैं।

उपासकोंके लक्षण

शुक्तमें उपासकोंके भी लक्षण कहे हैं वे भी मननके हैं—

पाषाणः— सार्ध, दुःखमें प्रभूत, अपने दुःखको जानने, और उनको दूर करनेके शक्नुक, दुःखसे मुक्त होनेके

मार्गको जाननेवाले, ज्ञानी जन,

२ वृक्षत वह्निपः— आसन फैलाकर उपासना करनेके लिये तत्पर,

३ हविष्मन्तः— हविष्य अन्न तैयार करके उसका समर्पण करनेवाले,

४ अरंकृतः— अलंकृत हुए, सजे हुए, अपना कर्म पूर्ण रूपसे सिद्ध करनेवाले, सुंदर रीतिसे अपना कर्तव्य करनेवाले,

५ अवस्यवः— अपना संरक्षण करनेके इच्छुक, अपनी सुरक्षा करनेमें तत्पर,

ये उपासकोंके लक्षण भी बोधप्रद हैं। ये अपनाने योग्य हैं।

अध्वर

यहाँ 'अध्वर' नामक यज्ञका वर्णन है। अध्वर वह कर्म है कि जिसमें हिंसा, कुटिलता अथवा तेजापन बिलकुल नहीं होता। मनुष्यको ऐसे ही कर्म करने चाहिये। देवोंके सामने अकुटिल कर्म ही करना है।

देवोंके कार्य

तृतीय मंत्रमें कुछ देवोंके नाम गिनाये हैं। (इन्द्रः) शत्रु-नाश करनेवाला, (वायुः) गतिमान, प्रगति करनेवाला, (वृहस्पतिः) ज्ञानी वक्ता, (मित्रः) दिनकर्ता, (अग्निः) प्रकाश देनेवाला, मार्गदर्शक, (पूषा) पौष्ट्य करनेवाला, (भगः) ऐश्वर्यवान्, (आदित्यः) तेजवाला, धारणकर्ता, (मातृश्रवणः) संभवे रहनेवाला। मनुष्योंको इन गुणोंको अपनाना चाहिये। जिससे उनमें देववत्ता निश्चय होगा।

इस तरह सूक्तका मनन करते होय लेता उचित है।

(४) दुर्दम्य बल

(म. मं. १।१५) मेधातिथिः वाचयः। [प्रतिदैवतं कृतुनरितम्] १ इन्द्रः, २ भरतः, ३ अश्वः, ४ अग्निः,

५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० इन्द्रियोदाः, ११ अश्विनी, १२ अग्निः। वाचयः।

| | | |
|--|------------------------|---|
| इन्द्र सोमं पिब कृतुनाऽऽ त्वा विशन्विन्द्वः । | मन्तरासस्तदोक्तः । | १ |
| भरतः पिबत कृतुना पोषाद् यमं पुनर्तिन । | सूयं हि द्या मुदानवः । | २ |
| अग्नि यमं शृणीहि सो ग्नायो नेष्टः पिब कृतुना । | त्वं हि रन्तथा अग्नि । | ३ |
| अग्ने देवो ह्य ह्य सादया योनिषु विषु । | परि भूय पिब कृतुना । | ४ |
| मातृश्रवणं वाचयः पिब सोमसुर्द्वारु । | तयेति नरयमन्द्वम् । | ५ |

| | | |
|--|------------------------|----|
| युवं दक्षं धृतवत मित्रावरुण दूळभम् | । क्रतुना यज्ञमाशाये | ६ |
| द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे | । यज्ञेषु देवमीळते | ७ |
| द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे | । देवेषु ता वनामहे | ८ |
| द्रविणोदाः पिपीपति जुहोत प्र च तिष्ठत | । नेष्ट्रादुतुमिरिष्यत | ९ |
| यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे | । अथ स्मा नो ददिर्मव | १० |
| अश्विना पिवतं मधु दीद्यग्नी शुचित्रता | । क्रतुना यज्ञवाहसा | ११ |
| गार्हपत्येन सन्त्य क्रतुना यज्ञनीरसि | । देवान् देवयतं यज | १२ |

अन्वयः— हे इन्द्र ! क्रतुना सोम पिय । इन्द्रवः त्वा आ विशन्तु । तद्रोकसः मत्सराः ॥१॥ हे मरुतः ! क्रतुना पिवत । यज्ञं पुनीत । हे सुदानवः ! हि यूयं स्य ॥२॥ हे भ्रावः नेष्टः ! नः यज्ञं अभि गृणीहि । क्रतुना पिय । हि त्वं रत्नधाः असि ॥३॥ हे अग्ने ! देवान् इह आ वह । त्रिषु योनिषु सादय । परि भूय । क्रतुना पिय ॥४॥ इन्द्र ! ब्राह्मणात्, राधसः, क्रतून् अनु, सोमं पिय । हि तव इत् सख्यं अन्तृतम् ॥५॥ हे धृतवता मित्रावरुणा ! क्रतुना, दूळभं दक्षं यज्ञं आशाये ॥६॥ द्रविणसः ग्रावहस्तासः अध्वरे यज्ञेषु (च) द्रविणोदाः देवं ईळते ॥७॥ दानं नः वसूनि ददातु, यानि शृण्विरे, ता देवेषु वनामहे ॥८॥ द्रविणोदाः नेष्ट्रात् क्रतुभिः पिपीपति, (अतः हे पा-
इष्यत, जुहोत, च प्र तिष्ठत ॥९॥ हे द्रविणोदः । यत् क्रतुभिः त्वा तुरीयं यजामहे । अथ, नः ददिः मव स्मा ॥१०॥
हे दीद्यग्नी शुचित्रता क्रतुना यज्ञवाहसा अश्विना ! मधु पिवतम् ॥११॥ हे सन्त्य ! गार्हपत्येन क्रतुना यज्ञनीः
देवयते देवान् यज ॥१२॥

अर्थ— हे इन्द्र ! क्रतुके अनुकूल सोमरसका पान करो । ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों । वही घर इन
वर्धक सोमरसोंका है ॥१॥ हे मरुतो ! पोतुनामक पात्रसे क्रतुके साथ (सोमरस) पीओ ! हमारे यज्ञको पवित्र करो ।
उत्तम दान देनेवाले (मरुतो) ! तुम वैसेही (पवित्रता करनेवाले) हो ॥२॥ हे पत्नीसहित प्रगतिशील यात्रक !
यज्ञकी प्रशंसा कर । क्रतुके अनुसार (सोमरसका) पान कर । तू रत्नोंका धारणकर्ता है ॥३॥ हे अग्ने ! अपने साथ
को ले आ । तीनों स्थानोंपर (उनको) बिटला । (उनको) अलंकृत कर । और क्रतुके अनुसार (सोमरसका)
॥४॥ हे इन्द्र ! ब्राह्मणके पात्रसे, उसके पात्रसे, क्रतुके अनुसार, सोमरस पी । क्योंकि तेरी मित्रता अदृष्ट है
नियमोंके पालन करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम दोनों मिलकर, क्रतुके अनुसार, दुर्दमनीय बल बढ़ानेवाले
सिद्ध करते हैं ॥५॥ धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हाथमें सोम कूटनेके पत्थर लेकर यज्ञमें और प्रत्येक कर्ममें
देनेवाले देवकी स्तुति गाते हैं ॥६॥ धन देनेवाला देव हमें वे अनेक धन देवे, कि जिन (धनोंका) वर्णन हम सुनते
हैं । वे धन हम देवोंकोही (पुनः) अर्पण करेंगे ॥७॥ धन देनेवाला देव नेष्ट्रसंबंधी पात्रसे क्रतुके अनुसार (ई-
षीनेकी इच्छा करता है । (इसलिये हे यात्रको !) वहां जाओ, हवन करो, और पश्चात् (वहांसे) चले जाओ ।
हे धनके दाता देव ! जिस कारण हम क्रतुओंके अनुसार तुझे चतुर्थ भागका अर्पण करते हैं, उस कारण हमारे
धनका दान करनेवाला हो ॥८॥ हे तेजस्वी शुद्ध कर्म करनेवाले, क्रतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले अधिदेवो ! इस
सोमरसका पान करो ॥९॥ हे फलदाता देव ! तू गार्हपत्यके नियमोंके अनुसार क्रतुके अनुकूल रहकर यज्ञ
है, अतः देवत्व प्राप्तीकी इच्छा करनेवालेके लिये देवोंको हविर्भाग पहुंचा दे ॥१०॥

क्रतुओंके अनुकूल व्यवहार

इस सूक्तमें क्रतुके साथ रहकर कार्य करनेका मुख्य संदेश
है । ' क्रतुना पिय ' (मं. १, ३-४), ' क्रतुना पिवत '
(मं. २, ११), ' क्रतून् अनु पिय ' (मं. ५) ' क्रतुभिः

इष्यत ' (मं. ९), ' क्रतुभिः यजामहे ' (मं. ११)

' क्रतुना यज्ञनीः असि ' (मं. १२), ' क्रतुना यज्ञं

दक्षं यज्ञं आशाये ' (मं. ६) अर्थात् क्रतुके साथ

करो, क्रतुओंके अनुकूल रहपान करो, क्रतुओंके साथ

ऋषीके साथ यज्ञ करते हैं, ऋषीके अनुकूल यज्ञ चलानेवाला हो । ऋषीके अनुकूल रहनेसे दुर्दमनाय बल बढ़ानेवाला यज्ञ होता है ।

इनमें सबसे अन्तिम मन्त्रभाग बड़ा महत्त्वपूर्ण है ।

न दधनेवाला बल

‘दृळभं दक्षं’ दुर्दमनाय अर्थात् न दधनेवाला बल प्रप्तिके प्राप्त करना आवश्यक है । यह बल तब प्राप्त होगा, । मनुष्य ‘ऋषीना यज्ञं आशये’ ऋषीओंके अनुकूल नि कर्म करता रहेगा । यह महत्त्वपूर्ण संदेश इस सूक्तमें पा है । मनुष्य बल बढ़ाना तो चाहता है, पर ऋषीके अनुकूल नहीं दिनचर्या करना नहीं चाहता । अतः उसको सिद्धि नहीं लती ।

वर्षमें वसंत ग्रीष्म वर्षा शरत् हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु हैं, मानवी आयुष्यमें बाल, कुमार, युवा, परिहान, वृद्ध और जीर्ण ये छः ऋतु हैं । दिनमें भी उपःकाल, उदयकाल, प्यान्ध, अपराह्न, सायंकाल और रात्री ये ऋतु हैं । इस तरह ऋतु स्थानस्थानपर काल विभागके अन्दर विद्यमान हैं । नके अनुकूल अपना कार्य करना चाहिये । खानपान, पहल्लो, आचर व्यवहार, आराम और विश्राम ऋषीके अनुसार करनेसेही मनुष्य उन्नत हो सकता है । इसका बल बढ़ाना होगा तो उसके योग्य ऋषीचर्यासेही बढ़ सकता है । अतः न दधनेवाला बल बढ़ाना है यह ध्यानमें धारण करके ऋषीके अनुसार अपना आचार करना मनुष्यके लिये योग्य है ।

इस सूक्तमें ‘सोमपान’ का विषय है इसलिये वह ऋषीके अनुसार पीना ऐसा कहा है । अर्थात् सोमरस दूध, दही, सतू, राहद आदिके साथ पीया जाता है । जिस ऋषीमें जैसा पीना योग्य होगा, वैसा पीना चाहिये जिससे वह बल बढ़ाकर दित करेगा । अन्यथा वैसा लाभ नहीं होगा ।

इस सूक्तमें सर्वत्र ऋषीके अनुसार सोम पीनेकाही उल्लेख है ऐसा भी नहीं है, देखिये—

ऋषीभिः हृष्यत, प्रतिष्ठत । (मं. ९)

ऋषीभिः यजामहे । (मं. १०)

ऋषीना यज्ञनीः अस्ति । (मं. १२)

ऋषीओंके अनुकूल चलो, रहो । ऋषीओंके अनुसार यज्ञ

करते हैं । ऋषीके अनुसार यज्ञ चलानेवाला हो । इत्यादि वचन मनुष्यको सर्वसामान्य आचार व्यवहारकी सूचना दे रहे हैं मनुष्यको अदम्य बल प्राप्त करना है वह ऐसे ही आचारसे प्राप्त होगा ।

इस सूक्तमें ‘दृष्ट, महत्, त्वष्टा, अग्नि, मित्र, वरुण, द्रवि णोदा, अध्विनी’ इन देवताओंका वर्णन है ।

देवताके गुण

इस सूक्तमें देवताओंके कुछ गुण दिये हैं वे मनन करने योग्य हैं—

१ सुदानवः (सु-दानुः)= उत्तम दान करनेवाला, देव योग्य दान सत्पात्रमें देनेवाला ।-

प्रायः देव दाता होते हैं, पर यहां (सु-दानु) उत्तम दाता होनेका वर्णन है । केवल दातृत्वकी अपेक्षा उत्तम दातृत्व निःसंदेह प्रशंसाके योग्य है ।

२ रत्नधा-रत्नोंका धारण करना । यह पद अग्निमें (१।१।१ में) मंत्रमें अग्निका विशेषण आया है । वह ‘रत्न-धा-तम’ पद है । यहां ‘रत्न-धा’ है ।

३ अस्तृतं सख्यं-अदृष्ट मित्रता । देवोंके साथ एकत्र मित्रता हुई तो वह अदृष्ट रहती है ।

४ दृळभं दक्षं-अदम्य बलका धारण करना ।

५ द्रविणोदा-धनका दान करना । ये गुण मनुष्योंके अपनाने योग्य हैं ।

ऋषीजोंके नाम

इस सूक्तमें ‘ब्राह्मण’ (५), ‘नेष्टा’ (३,९) और ‘पोतृ’ (२) ये ऋषीजोंके नाम आये हैं । ब्राह्मणका अर्थ यहां ‘ब्राह्मणात् शंसीः’ नामक ऋषिज है । यहां द्वितीया मंत्रमें ‘पोत्र’ पद है वह ‘पोतृ’ नामक ऋषिजका स्था है । पवित्रता करना इसका कार्य है यह ब्रह्माका सहायक है ।

सोम कूटनेके पत्थर

इस सूक्तमें ‘ग्राव-हस्तासः’ (मं. ७) पद है । पत्थर हाथमें लिये ऋषिज सोमको कूटते और उसका रस निकालते हैं । सोमका रस निकालनेका साधन यह है । आगे इसका वर्णन बहुत अनेकानेवाला है ।

| | | |
|--|------------------------|----|
| युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् | । ऋतुना यज्ञमाशाथे | ६ |
| द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे | । यज्ञेषु देवमीळते | ७ |
| द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे | । देवेषु ता वनामहे | ८ |
| द्रविणोदाः पिपीपति जुहोत प्र च तिष्ठत | । नेष्ट्रादृतुमिरिष्यत | ९ |
| यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे | । अध स्मा नो ददिर्भव | १० |
| अश्विना पिवतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता | । ऋतुना यज्ञवाहसा | ११ |
| गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि | । देवान् देवयते यज | १२ |

अन्वयः— हे इन्द्र ! ऋतुना सोम पिव । इन्द्रवः त्वा आ विशान्तु । तदोक्तः सत्सराः ॥१॥ हे मरुतः ! ऋतुना पिवत । यज्ञं पुनीत । हे सुदानवः ! हि यूयं स्य ॥२॥ हे भ्रातः नेष्टः ! नः यज्ञं अभि गृणीहि । ऋतुना पिव । हि त्वं रत्नधा अग्नि ॥३॥ हे अग्ने ! देवान् इह आ वह । त्रिषु योनिषु सादय । परि भूय । ऋतुना पिव इन्द्र ! प्रायगात्र, राधमः, ऋतून् अनु, सोमं पिव । हि तव इत् सख्यं अस्तुतम् ॥५॥ हे धृतव्रता मित्रावरुणा ! ऋतुना, दूळभं दक्षं यज्ञं आशाथे ॥६॥ द्रविणसः ग्रावहस्तासः अध्वरे यज्ञेषु (च) द्रविणोदाः देवं ईळते ॥७॥ नः वसूनि ददातु, यानि शृण्विरे, ना देवेषु वनामहे ॥८॥ द्रविणोदाः नेष्ट्रात् ऋतुभिः पिपीपति, (अतः हे इन्द्र, जुहोत, च प्र तिष्ठत ॥९॥ हे द्रविणोदः । यत् ऋतुभिः त्वा तुरीयं यजामहे । अध, नः ददिः भव आ ! हे दीद्यग्नी शुचिव्रता ऋतुना यज्ञवाहसा आशिता ! मधु पिवतम् ॥११॥ हे सन्त्य ! गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः देवयो देवान् यज ॥१२॥

अर्थ— हे इन्द्र ! ऋतुके अनुकूल सोमरसका पान करो । ये सोमरस तरे अन्दर प्रविष्ट हों । वही घर इन वर्षा सोमरसोंका है ॥१॥ हे मरुतो ! पोटुनामक पात्रसे ऋतुके साथ (सोमरस) पीओ ! हमारे यज्ञको पवित्र करो । उपासना दान देनेवाले (मरुतो) ! तुम धर्मही (पवित्रता करनेवाले) हो ॥२॥ हे पत्नीसहित प्रगतिशील यात्रक ! भर्त्सना प्रयोग कर । ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान कर । तू रत्नोंका धारणकर्ता है ॥३॥ हे अग्ने ! अपने साथ वसूनि आ । योनि स्थानोंपर (उनको) विटला । (उनको) अलंकृत कर । और ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान कर । हे इन्द्र ! प्रायगात्रे पामसे, उमके पात्रसे, ऋतुके अनुसार, सोमरस पी । क्योंकि तेरी मित्रता अदृष्ट है । द्रविणोदा पात्रन करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम दोनों मिलकर, ऋतुके अनुसार, दुर्दमनीय यल बढ़ानेवाले देवसे देवही स्पर्धि करते हैं ॥७॥ धन देनेवाला देव हमें वे अनेक धन देवे, कि जिन (धनोंका) वर्णन हम सुनने से । वे हम देवोंही (पुनः) अर्पण करेंगे ॥८॥ धन देनेवाला देव नेष्ट्रसंबंधी पात्रसे ऋतुके अनुसार (पिपीपति) द्रव्य करता है । (इन्द्रिय हे यात्रको !) वहां जाओ, हवन करो, और पश्वान् (वहंसि) चले जाओ । हमें दान दे । जिस कारण हम ऋतुओंके अनुसार तुंज चतुर्थ भागका अर्पण करते हैं, उम कारण हमारे सोमरस हम करनेवाला है ॥९॥ हे दीद्यग्नी शुद्ध कर्म करनेवाले, ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले अश्विदेवो ! मधु पिवतम् ॥११॥ हे सन्त्य देव ! तू गार्हपत्यके नियमोंके अनुसार ऋतुके अनुकूल रहकर यज्ञ कर । देवान् प्रत्येकी इच्छा करनेवालेके लिये देवोंको इविभाग पट्टका दे ॥१२॥

ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार

१. ऋतुके साथ यज्ञ करने के लिये सुबोध संदेश
२. ऋतुना पिव (सं. १, २, ३), 'ऋतुना पिवत'
३. 'ऋतुना अनु पिव' (सं. ५) 'ऋतुभिः

इष्यत' (सं. १), 'ऋतुभिः यजामहे' (सं. ११)
'ऋतुना यज्ञनीः अग्नि' (सं. १२), 'ऋतुना
दक्षं यज्ञं आशाथे' (सं. ६) अर्थात् ऋतुके साथ
करो, ऋतुओंके अनुकूल रसपान करो, ऋतुओंके साथ

तुओंके साथ यज्ञ करते हैं, ऋतुके अनुकूल यज्ञ चलानेवाला हो। ऋतुके अनुकूल रहनेसे दुर्दमनाय बल बढ़ानेवाला यज्ञ गा है।

इनमें सबसे अन्तिम मन्त्रभाग बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

न दबनेवाला बल

‘दुलभं दक्षं’ दुर्दमनाय अर्थात् न दबनेवाला बल मनुष्यको प्राप्त करना आवश्यक है। यह बल तब प्राप्त होगा, जब मनुष्य ‘ऋतुना यज्ञं आशाधे’ ऋतुओंके अनुकूल यज्ञ करने करता रहेगा। यह महत्त्वपूर्ण संदेश इस सूक्तने दिया है। मनुष्य बल बढ़ाना तो चाहता है, पर ऋतुके अनुकूल यज्ञ नही दिनचर्या करना नहीं चाहता। अतः उसको सिद्धि नहीं मिलती।

वर्षमें वसंत श्रौष्ठ्य वर्षा शरत् हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु हैं, मानवी सायुष्यमें बाल, कुमार, युवा, परिहान, वृद्ध और जर्ण ये छः ऋतु हैं। दिनमें भी उषःकाल, उदयकाल, मध्याह्न, अपराह्न, सायंकाल और रात्रि ये ऋतु हैं। इस तरह ऋतु स्थानस्थानपर काल विभागके अन्दर विद्यमान हैं। ऋतुके अनुकूल अपना कार्य करना चाहिये। खानपान, पहनेल्ले, आचार व्यवहार, आराम और विश्राम ऋतुके अनुसार करनेसेही मनुष्य उन्नत हो सकता है। इसका बल बढ़ाना होगा तो उसके योग्य ऋतुचर्यासेही बढ़ सकता है। अतः न दबनेवाला बल बढ़ाना है यह ध्यानमें धारण करके ऋतुके अनुसार अपना आचार करना मनुष्यके लिये योग्य है।

इस सूक्तमें ‘सोमपान’ का विषय है इसलिये वह ऋतुके अनुसार पीना ऐसा कहा है। अर्थात् सोमरस दूध, दही, ससू, गृहद आदिके साथ पीया जाता है। जिस ऋतुमें जैसा पीना योग्य होगा, वैसा पीना चाहिये जिससे वह बल बढ़ाकर हित लेंगे। अन्यथा वैसा लाभ नहीं होगा।

इस सूक्तमें सर्वत्र ऋतुके अनुसार सोम पानिकही उल्लेख है ऐसा भी नहीं है, देखिये—

ऋतुभिः हृष्यत, प्रतिष्ठत । (मं. ९)

ऋतुभिः यजानहे । (मं. १०)

ऋतुना यज्ञनीः अस्ति । (मं. १२)

ऋतुओंके अनुकूल चलो, रहो। ऋतुओंके अनुसार यज्ञ

करते हैं। ऋतुके अनुसार यज्ञ चलानेवाला हो। इत्यादि वचन मनुष्यको सर्वसामान्य आचार व्यवहारकी सूचना दे रहे हैं। मनुष्यको अदम्य बल प्राप्त करना है वह ऐसे ही आचारसे प्राप्त होगा।

इस सूक्तमें ‘इन्द्र, मरुत, त्वष्टा, अग्नि, मित्र, वरुण, द्रविणोदा, अध्विनी’ इन देवताओंका वर्णन है।

देवताके गुण

इस सूक्तमें देवताओंके कुछ गुण दिये हैं वे मनन करने योग्य हैं—

१ सुदानवः (सु-दानुः) = उत्तम दान करनेवाला, देने योग्य दान सत्पात्रमें देनेवाला।

प्रायः देव दाता होते हैं, पर यहां (सु-दानु) उत्तम दाता होनेका वर्णन है। केवल दातृत्वकी अपेक्षा उत्तम दातृत्व निःसंदेह प्रशंसाके योग्य है।

२ रत्नधा- रत्नोंका धारण करना। यह पद अग्निके (१।१।१ में) मंत्रमें अग्निका विशेषण आया है। वहां ‘रत्न- धा- तम’ पद है। यहां ‘रत्न- धा’ है।

३ अस्तृतं सख्यं- अद्वैत मित्रता। देवोंके साथ एकवार मित्रता हुई तो वह अद्वैत रहती है।

४ दुलभं दक्षं- अदम्य बलका धारण करना।

५ द्रविणोदा- धनका दान करना। ये गुण मनुष्योंको अपनाने योग्य हैं।

ऋत्विजोंके नाम

इस सूक्तमें ‘ब्राह्मण’ (५), ‘नेष्टा’ (३, ९) और ‘पोतृ’ (२) ये ऋत्विजोंके नाम आये हैं। ब्राह्मणका अर्थ यहां ‘ब्राह्मणात् शंसीः’ नामक ऋत्विज है। यहां द्वितीय मंत्रमें ‘पोत्र’ पद है वह ‘पोतृ’ नामक ऋत्विजका स्थान है। पवित्रता करना इसका कार्य है यह ब्रह्माका सहायक है।

सोम कूटनेके पत्थर

इस सूक्तमें ‘प्राव-हस्तासः’ (मं. ७) पद है। पत्थर हाथमें लिये ऋत्विज सोमको कूटते और उसका रस निकालते हैं। सोमका रस निकालनेका साधन यह है। आगे इसका वर्णन बहुत आनेवाला है।

गार्हपत्य

‘गार्हपत्य’ (मं. १२) पद यहां है । गृहपति धर्मका यह बोधक है । गृहस्थही यज्ञका अधिकारी है । अतः ‘गन्तव्यः’ (मं. ६) धर्मपत्नीके साथ नेष्टा नामक ऋत्विजका वर्णन देखने योग्य है । यहां यज्ञमें आनेवाले देवर्मा धर्मपत्नीयोंके साथ

रहनेवाले हैं, यद्यपि हरएक यज्ञमें वे अपनी पत्नियोंके ऐसी बात नहीं हैं, तथापि वे गृहस्थी हैं । ऋ (गन्तव्यः) धर्मपत्नीवालेही होते हैं । यज्ञमानकी पत्नी यज्ञमंडपमें ही रहती हैं । इस तरह यह वैदिक गृहस्थियोंका मार्ग है । यह बात वेदका विचार करने अवश्य स्मरण रखनी चाहिये ।

(५) भरपूर गौर्वें चाहिये

(अ० मं. १।१६) मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

| | | |
|--|-------------------------|---|
| आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये | । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः | १ |
| इमा धाना घृतस्तुवो हरी इहोप वक्षतः | । इन्द्रं सुखतमे रथे | २ |
| इन्द्रं प्रातर्हवामहे इन्द्रं प्रयत्यध्वरे | । इन्द्रं सोमस्य पीतये | ३ |
| उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः | । सुते हि त्वा हवामहे | ४ |
| सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् | । गौरो न वृषितः पिव | ५ |
| इमे सोमास इन्द्रवः सुतासो अधि वहिषि | । तां इन्द्र सहसे पिव | ६ |
| अयं ते स्तोमो अग्निषो हृदिस्पृगस्तु शंतमः | । अथा सोमं सुतं पिव | ७ |
| विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति | । वृत्रहा सोमपीतये | ८ |
| सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो | । स्त्वाम त्वा स्वाध्यः | ९ |

अन्वयः— हे इन्द्र ! वृषणं त्वा त्वा सूरचक्षसः हरयः सोमपीतये आ वहन्तु ॥१॥ हरी इमाः घृतस्तुवः सुखतमे रथे इन्द्रं इह उप वक्षतः ॥२॥ प्रातः इन्द्रं हवामहे । अध्वरे प्रयति इन्द्रं । सोमस्य पीतये इन्द्रं (हवामहे) हे इन्द्र ! केशिभिः हरिभिः नः सुतं उप आ गहि । हि त्वा सुते हवामहे ॥३॥ सः (त्वं) नः इमं स्तोमं आ गहि सुतं सवनं उप । वृषितः गौरः न पिव ॥५॥ इमे सुतासः इन्द्रवः सोमासः वहिषि अधि । हे इन्द्र ! तान् सहसे पिव अयं स्तोमः अग्निषो, ते हृदिस्पृक् शंतमः अस्तु । अथ सुतं सोमं पिव ॥७॥ वृत्रहा इन्द्रः मदाय, सोमपीतये, सवनं इत् गच्छति ॥८॥ हे शतक्रतो ! सः (त्वं) नः इमं कामं गोभिः अश्वैः आ पृण । स्वाध्यः त्वा स्त्वाम ॥९॥

अर्थ— हे इन्द्र ! तुझे सामर्थ्यवान्को सूर्यके समान तेजस्वी घोड़े सोमपानके लिये ले आवें ॥१॥ (ये) दोहों इन घीसे भीगे भूने धान्यके साथ उत्तम रथमें इन्द्रको बिठलाकर यहां (यज्ञके) पास ले आवें ॥२॥ प्रातःकाल प्रदोषा हम करते हैं । यज्ञके प्रारंभ होनेपर (मध्यदिनमें हम) इन्द्रकी स्तुति करते हैं । और करनेके समय (शामके समय भी हम) इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! बालोंवाले घोड़ोंसे तुम हमारे पास आओ । क्योंकि तुम्हें सोमयाग शुरू होनेपर ही बुलाते हैं ॥४॥ वह तुम हमारे इस (अग्नि -) सोम यागके आओ । यह सोमरस (तैयार हुआ है उसके) पास (आओ) । और प्यासे गौर मृगके समान (इस रसको) ये निचोढ़कर रखे रसाले सोमरस दूधोंपर रखे हैं । हे इन्द्र ! उनका बल बढ़ानेके लिये पान करो ॥६॥ यह यज्ञ मुख्य है, (वह) तेरे लिये हृदयस्पर्शी तथा आनन्ददायी हो । और इस निचोड़े सोमरसको पीओ ॥७॥ यह वध करनेवाला इन्द्र, अपना उत्साह बढ़ानेके लिये, सोमपानके उद्देश्यसे, सभी सोमयागके सवनोंमें जाता है ॥८॥ सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! वह (तुम) हमारी इस कामनाको गौओं और घोड़ोंसे पूर्ण करो । उत्तम ध्यानसे तुम्हारी हम करते हैं ॥९॥

दिनमें तीनवार उपासना

इन्द्रकी तीनवार उपासना इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें कही है।

इन्द्रं प्रातः हवामहे (प्रातःसवने) ।

इन्द्रं सध्वरे प्रयति (माध्यंदिनसवने हवामहे) ।

इन्द्रं सोमस्य पीतये (तृतीयसवने हवामहे) ।

यज्ञमें प्रातःसवन प्रातःकालमें होता है, मध्यदिनमें माध्यं-
दिनसवन होता है, और शामको सायंसवन होता है । और
।मको सोमरसका पान करते हैं । इन तीनों सवनोंमें इन्द्रकी
।ति प्रार्थना उपासना होती है । यज्ञके तीन सवनोंके साथ
।ती तीनवार उपासना करनेका तत्त्व संबंधित है ।

उपासककी इच्छा

(गोभिः अभ्यैः नः कामं आ पूण । सं. ९) गौवें
।र घोड़े पर्याप्त संख्यमें देकर हमारी कामना परिपूर्ण करो ।
।नारे घरोंमें पर्याप्त गौवें और घोड़े रहें । घरकी पूर्णता
।ओंसे होती है । घरमें दूध देनेवाली गौवें रहीं तो वृक्षसे सब
।नुष्य हृष्टपुष्ट रहते हैं ।

इन्द्रके गुण

यहां इन्द्रके कुछ गुणोंका वर्णन है वह देखिये—

१ इन्द्रः— शत्रुका नाश करनेवाला, तेजस्वी वीर,

२ वृषणः— बलवान्, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, श्रेष्ठ

करनेवाला,

३ वृत्रहा— शत्रु नामक असुरका वध करनेवाला वीर,
घेर कर लड़नेवाले घातक शत्रुका नाश करनेवाला,

४ शतक्रतुः— सैकड़ों शुभकर्म करनेवाला वीर,

५ सूरचक्षसः हरयः वहन्ति— सूर्यके समान चमकने-
वाले घोड़े (इसके रथमें जोते रहते हैं जो इसको इधर उधर)
ले जाते हैं । (यहां कमसे कम तीन या चार घोड़े जाते हैं ऐसा
वर्णन है ।)

६ इन्द्रं सुखतमे रथे हरी वक्षतः— इन्द्रको अत्यंत
सुखदायी रथमें बिठलाकर उसकी दो घोड़े यहां लाते हैं ।
(यहां दो घोड़े जोते रहते हैं ऐसा वर्णन है । रथ भी अत्यंत
सुंदर और अत्यंत सुखदायी है ।)

७ केशिभिः हरिभिः आ गहि— उत्तम अयालवाले
घोड़ोंको (रथके साथ जोतकर यहां) आओ । (यहां भी तीन
या चार घोड़ोंका उल्लेख है ।) यहां घोड़ोंकी सुंदर अयालका
वर्णन है ।

८ सहसे तान् पिय— बल बढ़ानेके लिये वह इन्द्र
सोमरसको पीता है । सोमपानसे बल उत्साह और वीर्य
बढ़ता है ।

यहां इन्द्रके गुण, घोड़ोंका वर्णन और सोमका वर्णन है ।

पाठक इसका मनन करें ।

(६) दो उत्तम सम्राट्

(प्र. सं. १।१७) मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । गायत्री, ४-५ पादनिवृत्त (५ इमीपदी वा) गायत्री ।

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे
गन्तारा दि स्थोऽवसे हर्षं विप्रस्य मावतः
शत्रुभामं तर्पयेधामिन्द्रावरुण राय आ
मुवाकु दि शचीनां मुवाकु सुमतीनाम्
इन्द्रः सरस्वतायां वरुणः शंखानाम्
तयोरिदयसा वयं सनेम नि च धीमहि
इन्द्रावरुण यामहं हवे विश्वाय राधसे
इन्द्रावरुण नू नु वां तिपासन्तापि धीमहि
म यामहेतु सुहृतिविश्वारुण वां हवे

। ता नो मृत्वात ईदृशे १
। धर्तारा चरणीनाम् २
। ता वां नेदिष्टनीमदे ३
। भूयान् वाजदाताम् ४
। शत्रुभवंशुकथयः ५
। स्वदुत प्रवेचनम् ६
। अस्तान्तु जिह्वुपन्थनम् ७
। अस्तान्ते रान् यच्छनम् ८
। यानुधाय सधन्तुनिम ९

अन्वयः- अहं इन्द्रावरुणयोः सम्राजोः अयः आ वृणे । ईदमे वा नः सुकानः ॥१॥ चर्पणीनां धर्षणं विप्रस्य अवसे हवं गन्तारा हि स्य ॥२॥ हे इन्द्रावरुणा ! अनुकामं रायः आ तर्पयेथां । रा नां नेदिष्ठं ईदमे च शचीनां युवाकु । सुमतीनां युवाकु । नाजदानां (सुग्याः) भूगम ॥३॥ इन्द्रः सधस्त्रदानां क्रतुः वरुणः शंस्यानां भवति ॥४॥ तयोः अवसा इत् वयं (धनं) सनेम, निधीमहि च । उत प्ररेचनं स्यात् ॥५॥ हे इन्द्रावरुणा ! च चित्राय राघसे हुवे । अस्मान् सु जिग्युषः कृतम् ॥६॥ हे इन्द्रावरुणा ! भीतु नां विभागन्भीतु, अगम्यं तमं न यच्छतम् ॥७॥ हे इन्द्रावरुणा ! यां सधस्तुतिं हुण, यां कृषाने, रा सुष्टुतिः नां प्र अभोतु ॥८॥

अर्थ- मैं इन्द्र और वरुण नामक दोनों सम्राटोंसे अपनी सुरक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ । स्थितिमें वे दोनों हमें सुखी करेंगे ॥१॥ (ये दोनों सम्राट्) मानवोंका धारणपोषण करनेवाले हैं । तुम जैसे सुरक्षा करनेके लिये पुकारके स्थानतक जानेवाले होओ ॥२॥ हे इन्द्र और वरुण ! हमारे मनोरथके अनुसार धन वृत्त करो । तुम दोनोंका हमारे समीप रहना ही हम चाहते हैं ॥३॥ शक्तियोंकी संघटना हुई है । और एकता हुई है । अन्न दान करनेवालोंमें (हम सुग्य) वनं ॥४॥ इन्द्र सहस्रों दाताओंमें (सुग्य) कार्यकर्ता है वरुण (सहस्रों) प्रशंसनीयोंमें (सुग्य) प्रशंसित होने योग्य हैं ॥५॥ उनकी सुरक्षासे (सुरक्षित हुए) हम प्राप्त करना और संग्रह करना चाहते हैं । चाहे उससे भी अधिक धन (हमारे पास) हो ॥६॥ हे इन्द्र और वरुण ! दोनोंकी मैं अद्भुत सिद्धिके लिये प्रार्थना करता हूँ । (तुम दोनों) हमें उत्तम विजयी बनाओ ॥७॥ हे इन्द्र और (हमारी) बुद्धियाँ तुम्हारा हि कार्य कर रही हैं, इसलिये हमें सुख देओ ॥८॥ हे इन्द्र और वरुण ! जिसको हम करते हैं, जिसको तुम बढ़ाते हैं, वही उत्तम स्तुति (हमसे) तुम्हें प्राप्त हो ॥९॥

दो प्रशंसनीय सम्राट्

इस सूक्तमें प्रशंसनीय उत्तम दो सम्राटोंका वर्णन है । ये क्या करते हैं सो देखिये-

१ चर्पणीनां धर्तारौ- जनताका धारणपोषण करते हैं चर्पणीका अर्थ किसान खेती करनेवाले ऐसा है । सब किसानोंका उत्तम धारणपोषण ये करते हैं । प्रजाजनोंकी उन्नतिके लिये ही यत्न करते हैं । (मं. २)

२ सु जिग्युषः कृतं- अपने प्रजाजनोंको ये उत्तम विजयी करते हैं । अर्थात् ये उनको ऐसी सुशिक्षा देते हैं, कि जिससे इनके प्रजाजन सब कार्य व्यवहारमें उत्तम विजय पाते हैं । (मं. ७)

३ शचीनां युवाकु- (प्रजाजनोंकी) सब शक्तियोंकी संघटना करते हैं । (मं. ४)

४ सुमतीनां युवाकु- (प्रजाजनोंके) उत्तम विचारोंकी एकता करते हैं अर्थात् आपसका संघर्ष बढ़ने नहीं देते । (मं. ४)

५ तयोः अवसा सनेम, निधीमहि, प्ररेचनं स्यात्- उनकी सुरक्षापूर्ण आयोजनासे प्रजाका धन बढ़ता है, प्रजाके पास धनसंग्रह होता है और उनके पास जितना धन चाहिये

उससे भी अधिक धन उनके पास हो जाता है । (मं. १)

६ नः मृळात (१), अस्मभ्यं दामं यच्छतं- हम प्रजाजनोंको (ये सम्राट्) सुखी करें, और कभी ऐसा आचरण न करें कि जिसे प्रजा दुःखी हो-

७ विप्रस्य अवसे गन्तारौ- ज्ञानीकी सुरक्षा लिये ये तत्पर रहें । कभी ज्ञानीको कष्ट न दें । (मं. २)

८ अनुकामं तर्पयेथां- प्रजाजनोंको यथेष्ट रहें । (मं. ३)

इस तरह ये दोनों सम्राट् अपने राज्यके सुख बढ़ाते रहते हैं । ये आदर्श सम्राट् हैं इसलिये यहां ऐसा किया है ।

९ इन्द्रः सहस्त्रदातां क्रतुः- इन्द्र सहस्रों दाताओंसे भी अधिक उत्तम दानकर्ता है ।

१० वरुणः शंस्यानां उक्थ्यः- वरुण प्रशंस्य योग्य राजाओंमें अधिक प्रशंसा करने योग्य है ।

वैदिक अनुशासनके अनुसार सम्राट् कैसे हों, यह यहाँ बताया है । ऐसे सम्राट् हुए तो मानव अधिक सकते हैं ।

पञ्चम अनुवाक

(७) सदसस्पति

(क. मं. १।१८) मेधातिथिः काण्वः । १-३ ब्रह्मणस्पतिः, ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च, ५ ब्रह्मणस्पतिः
सोम इन्द्रो दक्षिणा च, ६-८ सदसस्पतिः, ९ सदसस्पतिर्नराशंसो वा । गायत्री ।

| | |
|---|---------------------------|
| सोमानं स्वरणं कुणुहि ब्रह्मणस्पते | । कक्षीवन्तं य औशिशजः १ |
| यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः | । स नः सिपक्नु यस्तुरः २ |
| मा नः शंसो वररूपो धूर्तिः प्रणह्यत्यस्य | । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ३ |
| स वा वीरो न रिप्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः | । सोमो हिनोति मर्त्यम् ४ |
| त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् | । दक्षिणा पात्वंहसः ५ |
| सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् | । सनि मेधामयासिपम् ६ |
| यस्माद्धते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन | । स धीनां योगमिन्वति ७ |
| वाद्यज्ञोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कुणोत्यध्वरम् | । होत्रा देवेषु गच्छति ८ |
| नराशंसं सुष्टुष्टमनपद्यं सप्रथस्तमम् | । दिवो न सन्नमज्जसम् ९ |

बन्धवः— हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानं स्वरणं कुणुहि । यः औशिशजः, (तं) कक्षीवन्तं (इव) ॥१॥ यः रेवान्, यः
वहा, वसुवित्, पुष्टिवर्धनः, यः तुरः, सः नः सिपक्नु ॥२॥ हे ब्रह्मणस्पते ! वररूपः मर्त्यस्यः धूर्तिः शंसः नः मा । नः
॥३॥ यं नत्वं इन्द्रः ब्रह्मणस्पतिः सोमः च हिनोति, सः वा वीरः न रिप्यति ॥४॥ हे ब्रह्मणस्पते ! त्वं तं मर्त्यं अंहसः
(हि), सोमः, इन्द्रः, दक्षिणा च पातु ॥५॥ सुष्टुतं इन्द्रस्य प्रियं काम्यं सनि सदसस्पतिं मेधां अयासिपम् ॥६॥
॥७॥ ऋते, विपश्चितः चन यज्ञः, न सिध्यति, सः (सदसस्पतिः) धीनां योगं इन्वति ॥८॥ वाक् हविष्कृतिं ऋद्धोति,
तं प्राञ्चं कुणोति, होत्रा देवेषु गच्छति ॥९॥ दिवो न सन्नमज्जसं, सुष्टुष्टमं सप्रथस्तमं नराशंसं अपश्यन् ॥१॥

वर्धः— हे ब्रह्मणस्पते ! सोमयाग करनेवालेको उत्तम प्रगतिसंपन्न करो । जैसा उरिक्पुत्र कक्षीवान् (उन्नत
त गया था वैसाही इसको करो) ॥१॥ जो (ब्रह्मणस्पति) सम्पत्तिमान, जो रोगोंका नाश करनेवाला, धनदाता और
वर्धक तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाला है, वही हमारे ऊपर कृपा करता रहे ॥२॥ हे ब्रह्मणस्पते ! घातपात करनेवाले
की धूर्तकी निंदा हमारेतक न पहुँचे । इससे हमारी सुरक्षा करो ॥३॥ जिस मनुष्यको इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और
न बड़ा देते हैं, वह वीर निःसंदेह नष्ट नहीं होता ॥४॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम उस मानवको पाते (पचाओ),
ही सोम, इन्द्र और दक्षिणा उसको दवा देवे ॥५॥ मैं वाधर्षकारक, इन्द्रके प्रिय मित्र वादरणीय और धनदाता
स्पति (सभाके अध्यक्ष) के पास मेधा बुद्धिको मांगता हूँ ॥६॥ जिसके बिना ज्ञानीका भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता,
सदसस्पति हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥७॥ हवि तैयार करनेवालेकी वह उन्नति करता है, हिनारहित यज्ञको
जा है, हमारी प्रशंसा करनेवाली वाणीको देवोंतक पहुँचा देता है ॥८॥ घुल्लेकके समान तेउस्वी, प्रतानशाली और
रेव तथा मानवोंद्वारा सुश्रुजित सदसस्पतिकी मैंने देखा है ॥९॥

सभाका अध्यक्ष

'सदसस्पति' (सदसः-पति) का अर्थ सभाका अध्यक्ष
। सभाका प्रधान, परिचरक प्रमुख सदसस्पति कहलाता
। इस सभाके अध्यक्षने कौनसे शुभ हो, इस विषयमें इस
रिक्तका कथन बिकार करने योग्य है—

१ ब्रह्मणस्पतिः— (ब्रह्मणः पति)— शत्रुका पति अर्थात्
वह सभापति ज्ञानी हो, विद्वान्मनुष्य अथवा विद्वान् हो ।
(मं. १, ३-५)

२ रेवान्— वह धनवान् हो, (मं. २)

३ वसुवित्— धनदा मनुष्य अर्थात् धनवान् हो,

बुद्धियोंका योग

सः धीतां योगं इन्वति । ७) वह बुद्धियोंका योग करता है । सबकी बुद्धियोंका योग ईश्वरके साथही होना है । क्योंकि वही सबकी बुद्धियोंको प्रेरणा करनेवाला है । बुद्धिका योग परमात्माके साथ होगा, तभी तो वह

साक्षात्कारमें प्रत्यक्ष होगा । परमात्माका साक्षात्कार विश्वरूपमेंही होगा जैसा सभापतिना साक्षात्कार सभामें होता है ।

पाठक इस तरह विचार करके इस सूक्तसे परमात्माका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे । सभापतिके कर्तव्य भी इसी सूक्तसे ज्ञात होंगे ।

(८) वीरोंकी साथ

(क. मं. १।१९) मेधातिथिः काण्वः । अग्निर्मरुतश्च । गायत्री ।

| | | |
|---|---------------------|---|
| प्रति त्वं चारुमध्वरं गोपीधाय प्र हूयसे | । मरुद्भिरग्न आ गहि | १ |
| नहि देवो न मर्त्यो महस्तत्र क्रतुं परः | । मरुद्भिरग्न आ गहि | २ |
| ये महो रजसो विदुर्विधे देवासो अद्भुहः | । मरुद्भिरग्न आ गहि | ३ |
| य उग्रा अर्कमानृचुरनापृष्टास ओजसा | । मरुद्भिरग्न आ गहि | ४ |
| ये शुभ्रा घोरवर्षसः सुक्षत्रासो रिशादसः | । मरुद्भिरग्न आ गहि | ५ |
| ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते | । मरुद्भिरग्न आ गहि | ६ |
| य ईह्रयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् | । मरुद्भिरग्न आ गहि | ७ |
| आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा | । मरुद्भिरग्न आ गहि | ८ |
| अमि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु | । मरुद्भिरग्न आ गहि | ९ |

अन्वयः- हे अग्ने ! त्वं चारुं मध्वरं प्रति गोपीधाय प्रहूयसे ॥ १ ॥ नहि देवः, न मर्त्यः, महः तव क्रतुं परः (वति) ॥ २ ॥ ये अद्भुहः विधे देवासः महः रजसः विदुः ॥ ३ ॥ ये ओजसा अनापृष्टासः उग्राः अर्कं मानृचुः ॥ ४ ॥ शुभ्रा घोरवर्षसः सुक्षत्रासः रिशादसः ॥ ५ ॥ ये देवासः नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते ॥ ६ ॥ ये पर्वतान् ईह्रयन्ति, द्रं अर्णवं तिरः (कुर्वन्ति) ॥ ७ ॥ ये रश्मिभिः आ तन्वन्ति, ओजसा समुद्रं तिरः (कुर्वन्ति) ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! पूर्व-पीतये त्वा सोम्यं मधु अमि सृजामि । (अतः तैः) मरुद्भिः आ गहि ॥ ९ ॥

अर्थ- हे अग्ने ! उस सुन्दर हिसारहित यज्ञके प्रति तुम्हें सोमरसका पान करनेके लिये बुलाते हैं ॥ १ ॥ ना ही कोई और न कोई मर्त्य (ऐसा है कि जो) तुम्हारे महात्मान्धर्मे लिये यज्ञसे बढ़कर (कुछ कर्म कर सकता हो) ॥ २ ॥ द्रोह न करनेवाले सब देव (अर्थात् मरुद्भिरग्न) हैं, वे इस यज्ञे अन्तरिक्षको जानते हैं ॥ ३ ॥ जो अपने विशाल बलके लिये अजय उग्र वीर हैं और जो प्रकाशके स्थानतक पहुंचते हैं ॥ ४ ॥ जो गौर वर्णवाले, बड़े शरीरवाले, उत्तम पराक्रमी शत्रुका नाश करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ जो ये (मरुद्भिरग्न) देव सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हुए सुलोकमें रहते हैं ॥ ६ ॥ जो पर्वत जैसे ाँकोंको उग्राद देते हैं और जलराशिको लुप्त करके उनके परे फेंक देते हैं ॥ ७ ॥ जो किरणोंसे व्यापने हैं और जो बलसे उदको भी लुप्त मानते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे प्रथम रसपानके लिये यह मधुर सोमरस मैं अर्पण करता हूँ, अतः इस (पूर्वोक्त वर्णन किये) मरुद्भोंके साथ आओ ॥ ९ ॥

वीरोंके साथ रहो

इस सूक्तमें प्रथम वीरोंका वर्णन है । जो गौरवर्णवाले, उनके शरीर अजय हैं, जो क्षात्रकर्ममें अद्वितीय हैं और शत्रुका नाश करनेमें प्रवीण हैं, (५) जो बलवान् होनेके

कारण अजय हैं, जिनपर शत्रुका आक्रमण नहीं हो सकता, जो बड़े उग्र शरीर हैं, जो तेजस्वी होनेसे सूर्यके समान प्रकाशी हैं, (४) जो स्वयं विमलका द्यौः सभी वही बनते, और जो सब विशाल स्थानको व्यापक जानते हैं (३), जो

पर्वतोंको भी उखाड़ दे सकते और समुद्रको भी लांघ देते हैं (७), जो तेजसे अथवा अपने प्रभावसे सर्वत्र व्यापते हैं और अपने बलसे समुद्रको भी तुच्छ समझते हैं (८) ऐसे ये मरुद्गिर हैं।

अग्निवीर ऐसा है कि जिसके बराबर कार्य करनेवाला न कोई देवोंमें है और नाही मर्त्योंमें है। ऐसा यह वीर पूर्वोक्त वीरोंके साथ इस यज्ञमें आजाय और मधुर सोमरस पिये। हम ऐसे वीरोंको बुलाते हैं और उनका सत्कार करते हैं।

यहां मंत्रके पूर्वार्धमें वीरोंका वर्णन है और सब मंत्रोंका उत्तरार्ध एकही है। इसलिये हमने अन्तमें एकही बार उत्तरार्ध-

का अर्थ किया है। प्रत्येक मंत्रमें पाठक उसका पाठक पूर्वार्धका मनन करे और जाने कि, वीर गुणोंका उत्कर्ष होना चाहिये। ये गुण क्षत्रिय वीर और अपने देशका (अ-द्रुहः) द्रोह न करते हुए, अतः ताका अधिकसे अधिक उत्कर्ष करे।

ये मरुद् वायुही हैं। अतः वायुके वर्णनसे यहां वर्णन किया गया है। वायु अन्तरिक्षमें रहता है वह अन्तरिक्षको जानता है (मं. ३), इस तरह पाठक विचारपूर्वक जान सकते हैं।

(९) दिव्य कारीगर

(क्र. सं. १।२०) मेधातिथिः काण्वः । ऋभवः । गायत्री ।

| | | |
|---|---------------------------|---|
| अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया | । अकारि रत्नघातमः | १ |
| य इन्द्राय वचोयुजा ततश्चूर्मनसा हरी | । शमीभिर्यज्ञमाशत | २ |
| तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् | । तक्षन् धेनुं सवर्दुघाम् | ३ |
| युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः | । ऋभवो विष्टयक्रत | ४ |
| सं वो मदासो अगमतेन्द्रेण च मरुत्वता | । आदित्येभिश्च राजभिः | ५ |
| उत त्वं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् | । अकर्त चतुरः पुनः | ६ |
| ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते | । एकमेकं सुशस्तिभिः | ७ |
| अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया | । भागं देवेषु यक्षियम् | ८ |

अन्वयः— विप्रेभिः आसया अयं रत्नघातमः स्तोमः जन्मने देवाय अकारि ॥ १ ॥ ये इन्द्राय वचोयुजा हरी ततश्चूर्मनसा (ते) शमीभिः यज्ञं आशत ॥ २ ॥ नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं तक्षन्, धेनुं सवर्दुघां तक्षन् ॥ ३ ॥ ऋजूयवः विष्टी ऋभवः पितरा पुनः युवाना अक्रत ॥ ४ ॥ (हे ऋभवः) वः मदासः मरुत्वता इन्द्रेण, च आदित्यैः च सं अगमत ॥ ५ ॥ उत देवस्य त्वष्टुः निष्कृतं नवं त्वं चमसं, (तं एकं) पुनः चतुरः अकर्त ॥ ६ ॥ ते सुशस्तिभिः नः सुन्वते एकं एकं त्रिः साप्तानि रत्नानि आ धत्तन ॥ ७ ॥ वह्नयः सुकृत्यया देवेषु यक्षियं भागं अभजन्त (च) ॥ ८ ॥

अर्थ— ज्ञानियोंने अपने सुखसे इस रत्नोंको देनेवाले स्तोत्रका, दिव्य जन्मको प्राप्त होनेवाले ऋग्वेदोंके (पाठ) किया ॥१॥ जिन्होंने इन्द्रके लिये शब्दके दृशारेसे चलनेवाले दो घोड़े चतुराईसे बनाये (सिखाये); वे (ऋग्वेद शमीके (चमसादिके साथ) यज्ञमें आते हैं ॥२॥ अग्निदेवोंके लिये (उन्होंने) उत्तम गतिमान् सुखदायी रथ किया और गौको उत्तम दुधारू बना दिया ॥३॥ सत्य विचारवाले, सरल स्वभाव, चारों ओर जानेवाले ऋग्वेदोंने मातापिताको पुनः जवान बना दिया ॥४॥ (हे ऋग्वेदों!) आपको आनन्द देनेवाला सोमरस मरुतोंके साथ इन्द्रके चमकनेवाले आदित्योंके साथ आपको दिया जाता है ॥५॥ त्वष्टाके द्वारा बनाया यह नयाही चमस था, (ऋग्वेदोंने एकहीको) चार प्रकारका बना दिया ॥६॥ वे (आप) स्तुतियोंसे (प्रशंसित होकर) हमारे सोमयाग करने के लिये प्रत्येकके लिये दृढीय रत्नोंको धारण कराओ ॥७॥ अग्निके समान तेजस्वी (ऋग्वेदोंने) अपने कर्मोंसे देवोंमें (न्याय प्राप्त करके) यज्ञका हविर्भाग प्राप्त किया और उसका सेवन भी किया ॥८॥

दिव्य कारीगर

इस सूक्तमें ऋभु नामक दिव्य कारीगरोंका वर्णन है। इनकी रीगरी इस सूक्तमें इस तरह वर्णन की गई है—

१ इन्हेंके लिये उत्तम शिक्षित घोड़े इन्होंने दिये थे जो इशारे जसे जैसे चाहे वैसे चलते थे। अर्थात् अव्यवस्थामें ऋभुदेव प्रवीण थे।

आग्निदेवोंके लिये इन्होंने उत्तम रथ बनाया, जो बैठने-लिये बड़ा सुख देनेवाला था और चारों ओर अच्छी चलाया जा सकता था। इससे सिद्ध है कि ऋभुदेव के काम तथा लोहेके काममें प्रवीण थे।

इन्होंने धेनुको अच्छी दुधारू बना दिया था। अर्थात् दुधारू बनानेकी विद्या ऋभुदेव जानते थे।

वृद्धोंको तरुण बनाया। इससे सिद्ध है कि ये जीवन विद्या औषधिप्रयोगमें प्रवीण थे और वृद्धोंको तरुण बनानेकी जानते थे।

एक चमसके चार चमस बनाये। संभव है कि जैसा त्वष्टा ने बनाया था वैसीही इन्होंने चार बनाये होंगे।

इनके पास सात प्रकारके रत्न थे। जो उत्तम मध्यम; भेदोंसे इसी तरहके हो सकते हैं।

ऋभुदेवोंकी कथा

ऋभुदेवोंके संबंधमें ऐतरेय ब्राह्मणमें निम्नलिखित कथा दी है—

ऋभवो वै देवेषु तपसा सोमपीथं अभ्यजयस्त्वैन्यः
रातःसवने वाचि कल्पयंस्तानामिर्वसुभिः प्रातःसवना-
इमुदत...तृतीये सवने वाचि कल्पयंस्तान् विश्वे देवा
मनोनुद्यन्त, नेह पात्यन्ति, नेहेति, स प्रजापतिरप्रवीत्
सवितार, तव वा इमेऽन्ते वासास्त्वनेवैभिः सं पितृस्वेति।
स तपेत्प्रमवीत्सविता तान्वां त्वनुमयतः परिपिबेति
...मनुष्यगन्धात्...॥ (ऐ. ब्रा. ३।६)

“ऋभुदेव प्रारंभमें मनुष्य थे। तप करके वे देवत्वको
हुए। प्रजापति और उसके साथ अपनी संमति रखने-
वाले देव, इन देवोंने ऋभुदेवोंको प्रातःसवनमें देवोंकी पंक्तिमें
जाकर सोमपान करनेका पत्र दिया। परंतु वाठों वसु-
नें उनकी अपनी पंक्तिमें बैठने नहीं दिया। पश्चात् मार्घ-
व सवनमें स्वारह रथोंने उनकी अपनी पंक्तिमें बैठने नहीं

दिया, इसी तरह प्रजापतिने ऋभुओंको आदित्योंकी पंक्तिमें
बिठलानेका पत्र तृतीय सवनमें दिया, पर सभी देवोंने उनकी
अपनी पंक्तिमें बिठलानेसे इन्कार किया। (नेह पात्यन्ति,
नेहेति) ये ऋभु यहां बैठकर सोमपान नहीं करेंगे, कदापि यह
यात नहीं होगी, ऐसा सब देवोंने कहा। तब प्रजापति सवि-
ताके पास गया और उन्होंने उससे कहा कि हे सविता। ये तेरे
साथ रहनेवाले और अच्छे कार्य करनेवाले हैं, अतः तू अपने
साथ इनको बिठलाकर सोमपान करो और इनको करने दो। सवि-
ताने कहा कि इन ऋभुओंको (मनुष्य-गन्धात्) मनुष्योंका वू
आ रही है, इसलिये ये देवोंमें कैसे बैठ सकते हैं ? पर यदि हे
प्रजापते ! तुम स्वयं इनके साथ बैठकर सोमपान करोगे, तो मैं
भी वैसा करूंगा। और एक बार यह प्रथा चल पड़ी तो चलती
रहेगी। प्रजापतिने वैसा किया, तबसे ऋभु देवत्वको प्राप्त हुए।”

यह कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें है। इसमें यदि कुछ अलंकार
होंगे, तो उसका अन्वेषण करना चाहिये। ऋ. १।११०।४ में
कहा है—

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाधतो मर्तांसः सन्तो
नष्टतत्त्वमानशुः। सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः
संवत्सरे समष्ट्यन्त धीविभिः ॥ (ऋ. १।११०।४)

‘शान्तिपूर्वक शीघ्र कार्य करनेमें कुशल और शमी ऐसे ये
ऋभु प्रथम मर्त्य होनेपर भी देवत्वको प्राप्त हुए। ये सुधन्वाके पुत्र
सूर्यके समान तेजस्वी ऋभुदेव सांवत्सरिक यज्ञमें अपनी कर्म
कुशलताके कारण संमिलित हो गये।’

अंगिराके पुत्र सुधन्वा, और सुधन्वाके पुत्र ऋभु, विभु
और वाज ये तीन थे। इनमेंसे ऋभु बड़े कारीगर थे इसलिये
उनकी कारीगरीके कारण इनको देवोंमें शामिल किया गया था।
देव नामक जातोंका एक दिग्विजयी राष्ट्र था, उस राष्ट्रमें
मानवजातीके लोगोंको बसनेका अधिकार नहीं था। कभी कभी
आवश्यकता पड़नेपर कई मानवजातीके लोगोंको उसमें जाकर
बसनेका अधिकार मिलता था। इसी तरह ऋभुओंको मिला
था। ऋभु उत्तम कारीगर थे, उत्तम रथ बनाते थे, उत्तम
शस्त्र बनाते थे, गौओंको अधिक दूध देनेवाली बनाते थे, वृद्धोंको
जवान बनानेकी औषधिप्रयोगना ये जानते थे। देवजातीके लिये
ऐसे कुशल कारीगरोंकी जरूरत थी अतः प्रजापतिने उन ऋभु-
ओंको अपनी देवजातीमें लेनेका पत्र दिया। प्रथम देवोंने
इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, परंतु पश्चात् प्रजापतिने

प्रस्ताव देवोंने मान लिया और ऋमुओंकी गणना देवोंमें होने लगी ।

आजकल अमेरिकामें भारतवासियोंको स्थायी रूपसे रहनेकी आज्ञा नहीं है । पर अब इस महायुद्धके कारण भारतीयोंको आज्ञा देनेका विचार वहां करने लगे हैं । इसी तरह यह ऋमुओंकी बात दीख रही है ।

संभव है कि यह आलंकारिकही घटना हो । आलंकारिक होनेपर भी उससे यह बोध मिलता है कि जो जाती अपने राष्ट्रके हितके लिये उपयोगी है, ऐसा सिद्ध हो जाय, उस जातीको अपने राष्ट्रका अंग मानकर रहनेका अधिकार देना योग्य है । पर यह अधिकार देनेके लिये सब राष्ट्रवासी जातियोंके प्रतिनिधियोंकी संमति लेनी चाहिये, जैसीकी पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मणके वचनमें प्रजापति (राष्ट्रके अध्यक्ष) ने देवराष्ट्रकी

प्रातिनिधिक देवसभाके सामने यह प्रस्ताव रखा कि सबकी प्रथम प्रतिकूलता होनेपर भी आगे उनकी युक्तिसे प्राप्त की और पश्चात् ऋमुओंको देवोंमें शामिल किया ।

इससे बड़ा भारी राष्ट्रीय संघटनाका बोध मिलता है । पाठक अवश्य विचार करें ।

इस सूक्तमें भी ' देवेषु यज्ञियं भागं ऋभवः यन्त, अभजन्त च । (मं. ८) ऐसा कहा है । प्रथम देवोंमें बैठकर यज्ञका हविर्भाग लेनेका अधिकार तब वह उनको मिला और पश्चात् वे उस भागका सेवन करते

प्रथम मण्डलके ११० वे सूक्तके साथ पाठक इसका करें, इसका एक मंत्र ऊपर दिया है ।

(१०) वीरोंकी प्रशंसा

(क. मं. १।२१) मेधातिथिः काण्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

| | | |
|---|----------------------------|---|
| इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरिस्तोममुद्मसि | । ता सोमं सोमपातमा | १ |
| ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः | । ता गायत्रेषु गायत | २ |
| ता मित्रस्य प्रशस्तये इन्द्राग्नी ता हवामहे | । सोमपा सोमपीतये | ३ |
| उप्रा मन्ता हवामहे उपेदं सवनें सुतम् | । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् | ४ |
| ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रश्न उज्जतम् | । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः | ५ |
| तेन मन्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे | । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् | ६ |

ध्यान्यः— इह इन्द्राग्नी उप ह्वये । तयोः इत् स्तोमं उद्मसि । ता सोमपातमा सोमं (पिबतां) ॥ १ ॥ ता इन्द्राग्नी यज्ञेषु प्रशंसत । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥ मित्रस्य प्रशस्तये, ता सोमपा ता इन्द्राग्नी सोमपीतये हवामहे । इह सवनें उप उप्रा मन्ता हवामहे । इन्द्राग्नी इह आ गच्छताम् ॥ ४ ॥ ता महान्ता सदसस्पती इन्द्राग्नी रश्न उज्जतम् । अत्रिणः अप्रजाः सन्तु ॥ ५ ॥ हे इन्द्राग्नी ! प्रचेतुने पदे तेन मन्येन अधि जागृतम् । (नः) शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

अर्थ— इस यज्ञमें इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूँ । उनकी हि स्तुति करना चाहता हूँ । वे सोमपात करने लगे ॥ १ ॥ हे सन्तु ! उन इन्द्र और अग्निकी यज्ञोंमें प्रशंसा करो । गायत्री छन्दमें उनके काव्यों को ॥ २ ॥ मित्रकी प्रशंसा करनेके समान, उन सोमपात करनेवाले इन्द्र और अग्निको सोमपातके लिये ही हम हवामहे । इन्द्राग्नी इह आ गच्छताम् ॥ ४ ॥ वे इन्द्र और अग्नि यहाँ आ जायें ॥ ४ ॥ वे इन्द्र और अग्नि महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रश्न उज्जतम् । अत्रिणः अप्रजाः सन्तु ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और अग्नि ! चित्र प्रकाशसे उज्जल हुए स्थानमें उम्मी मन्त्रके साथ तुम जागते रहो । और प्रशस्त करो ॥ ६ ॥

(११) वेगवान् रथ

(अ. मं. १।२२) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

(२१।१-४) अश्विनौ देवता

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये १
 या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे २
 या वां कशा मधुमत्यश्विना स्रुतावती । तथा यज्ञं मिमिक्षतम् ३
 नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ४

अन्वयः— प्रातर्युजौ वि बोधय । अश्विनौ इह अस्य सोमस्य पीतये आ गच्छताम् ॥१॥ या उमा अश्विना रथितमा दिविस्पृशा देवा ता हवामहे ॥२॥ हे अश्विनौ ! वां या कशा मधुमती स्रुतावती तथा सह यज्ञं मिमिक्षतम् हे अश्विनौ ! सोमिनः गृहं, यत्र रथेन गच्छथः, वां दूरके न अस्ति ॥३॥

अर्थ— प्रातःकालके समयमें जागनेवाले अश्विदेवोंको जगाओ । वे अश्विदेव इस यज्ञमें इस सोमरसका पान लिये पधारें ॥१॥ ये दोनों अश्विदेव सुंदर रथसे युक्त हैं, वे सबसे श्रेष्ठ रथी हैं, और वे अपने रथसे आकाशमें करते हैं, इन दोनों देवोंको हम बुलाते हैं ॥२॥ हे अश्विदेवो ! तुम्हारी जो मीठा सुंदर शब्द करनेवाली चावूक साथ यज्ञमें आओ ॥३॥ हे अश्विदेवो ! सोमयाग करनेवालेके घरके पास अपने रथसे तुम जाते हो, वह (तुम्हें बिलकुल) दूर नहीं है ॥४॥

चावूक

अश्विदेवोंकी चावूक (मधुमती स्रुतावती) मीठा और सुंदर शब्द करती है । उत्तम चावूकका एक मान्तीका शब्द होता

है । इस चावूकके शब्दसे अश्विदेव आ रहे हैं ऐसा मानते हैं । इनका रथ वेगवान् होनेसे इनके लिये कोई रुकावट नहीं है । जहां इनको पहुंचना होगा, वहां पहुंचते हैं ।

(२१।५-८) सविता देवता

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ५
 अपां नपातमघसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युदमसि ६
 विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ७
 सखाय आ नि पीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ८

अन्वयः— हिरण्यपाणिं सवितारं ऊतये उप ह्वये । सः देवता पदं चेत्ता ॥५॥ अपां नपातं सवितारं उप स्तुहि व्रतानि उदमसि ॥६॥ वसोः चित्रस्य राधसः विभक्तारं नृचक्षसं सवितारं हवामहे ॥७॥ हे सखायः ! आ नि पीदत सविता नु स्तोम्यः । राधांसि दाता शुम्भति ॥८॥

अर्थ— सुवर्णके समान किरणोंवाले सविताको अपनी सुरक्षा करनेके लिये मैं बुलाता हूं । वही देवता आकाशका बोध कर देता है ॥५॥ जलोंको न प्रवाहित करनेवाले सविताकी स्तुति करो । इसके लिये हम व्रतोंका पालन चाहते हैं ॥६॥ निवासके कारणीभूत नाना प्रकारके धनोंके दाता, मनुष्योंके लिये प्रकाशके प्रदाता, सूर्य देवका हन करने हैं ॥७॥ हे मित्रो ! आ कर बैठ जाओ । हम सबके लिये यह सविता स्तुति करने योग्य है । सिद्धिपूर्वक (सूर्य देव अब) प्रकाशित हो रहे हैं ॥८॥

सबका प्रसविता सविता

‘सविता वै सर्वस्य प्रसविता’ (श. ब्रा.) सविता सब विश्वका प्रसव करनेवाला है। जिस तरह स्त्री अन्दरसे संतानोंको प्रसवती है उसी तरह यह सूर्यदेव अन्दरसे सब सृष्टीकी उत्पत्ति करता है।

सूर्य (सविता)

सूर्य मालिका

ध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, वरुण और प्रजापति)

वृक्ष, कामेकोट

मनुष्य

(क्षेत्र, लाल, पीत, भूरे और कृष्ण वर्णवाले मानव)

उस तरह यह सविता सब सृष्टीका प्रसव अपने अन्दरसे है। परमप्रेम सूर्य, और सूर्यसे सब सृष्टी होती है। अपने अन्दरसे प्रसव करनेका तत्त्व पाठक स्मरण रखें।

अबसे सवितारं उप) अपनी सुरक्षाके लिये सविता उपासना करो। गर्भही सब रोगबीजोंको दूर करता है, आरोग्य बढ़ाता है। सूर्य दीर्घायु करनेवाला है।

(तस्य व्रतानि उद्गमसि) सूर्यके व्रतोंका पालन करना है। सूर्यसे आरोग्य प्राप्त करनेके जो नियम हैं उनको जानकर आचारमें लाना चाहिये।

(नृ-चक्षः) यह सूर्य मनुष्योंके लिये नेत्र जैसा है, सब लोगोंके लिये वह प्रकाश बताता है।

संपत्तिका विभाजन

संपत्तिका संग्रह एकके पास होना उचित नहीं है। इससे गरीब पीसे जाते हैं। इसलिये संपत्तिका बंटवारा योग्य रीतिसे समाजमें होना उचित है।

‘वसोः विभक्ता सविता’ (मं. ७) मानवोंके निवासके लिये जो आवश्यक है वह वसु कहलाता है। उसीका नाम धन या संपत्ति है। इस धनका विशेष भाग करके उसका बंटवारा यथायोग्य रीतिसे करना चाहिये। जिस तरह सूर्यकी संपत्ति ‘प्रकाश’ है, उसका सब वस्तुमात्रपर वह बंटवारा करता है। जब सूर्य प्रकाशता है तब पृथ्वी, जल, पर्वत, वृक्ष, मानव आदीपर वह समानतया प्रकाशता है और सबको प्रकाशित करता है।

इसी तरह राजा अपने राष्ट्रमें संपत्तिका विभाजन यथायोग्य रीतिसे करे तथा कगवे और सबको सुखी करे।

यह ‘वसु-विभाग’ वेदमें अनेक सूक्तोंमें आया है। वदों इसका संपूर्ण अर्थ पाठक विचारपूर्वक देखें और मननमें जानें।

(२२।९-१५), ९-१० क्षति, ११-१५ देव्यः।

अग्नि और देवपत्नियों

| | | |
|---|---------------------------|----|
| अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुदातीरुप | । त्वष्टारं सोमपीतये | ९ |
| आ शा अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् | । वरुत्री धिरणां वह | १० |
| अभि नो देवीरयसा महः शर्मणा नृपतीः | । अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् | ११ |
| इहेन्द्राणीमुप हव्ये यरुणानां स्वस्तये | । अग्रायां सोमपीतये | १२ |
| मही धीः पृथिवी च न इमं यज्ञं निमिक्षताम् | । पिपृतां नो भरीमभिः | १३ |
| तयोरिदं पृतपत् पयो विप्रा रिहन्ति धीनिभिः | । गन्धर्वस्व ध्रुवे पदे | १४ |
| स्थोता पृथिवि भवानुक्षरा निवेदानी | । यच्छा नः शर्म सप्रथः | १५ |

अन्वयः— हे अग्ने ! उदातीः देवानां पत्नीः इह उप का वह । (तया) त्वष्टारं सोमपीतये (उप का वह) १०। हे आः अग्ने इह का वह । हे यविष्ठ ! अबसे होत्रां भारती, वरुत्री, धिरणां (का वह) ११। हे अग्ने ! अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् १२। हे इहेन्द्राणीं यरुणानां अग्रायां स्वस्तये सोमपीतये उप हव्ये १३। हे पृथिवी च नः इमं यज्ञं निमिक्षताम् । भरीमभिः नः पिपृताम् १४। गन्धर्वस्व ध्रुवे पदे स्थोताः इह यच्छा नः यः धीनिभिः रिहन्ति १५। हे पृथिवी ! स्थोता, अनुक्षरा, निवेदानी अग्ने ! सप्रथः शर्म नः सप्रथः १५।

अर्थ- हे भगो ! इधर जानेकी इच्छा करनेवाली देवोंकी पत्नियोंको नहीं ले जाओ। क्या हमको यो मन लिये यहां ले आओ। हे भगो ! देवपत्नियोंको हमारी सुरक्षा करनेके लिये यहां ले आओ। हे भगो ! हमें लिये देवोंको बुलानेवाली, भरणपोषण करनेवाली, सुरक्षा करनेवाली पुत्तियों यहां ले आओ ॥१०॥ जिनके शरीर आविच्छिन्न हैं और जो मनुष्योंका पालन करती हैं, वे देवपत्नियों हमारी सुरक्षा करने के लिये मनुष्यता हमारे यज्ञमें) आ जायें ॥११॥ यहां इन्द्रपत्नी, वरुणपत्नी और अग्निपत्नीको हमारी सुरक्षा के लिये और उनके योगदान बुलाता हूँ ॥१२॥ महान् पुलोक और बड़ी पृथ्वी हमारे इस यज्ञके लिये (जनम समये जलसे) भिन्न करें। हमें पूर्ण करें ॥१३॥ गन्धर्व लोकके भुवः स्थानमें (भारी अन्नरिजमें) इन दोनों - (पृथ्वी और भारीके मध्यमें) समान जल, ज्ञानी लोक अपने कर्मों और पुत्तियोंके बन्धने प्राप्त करते हैं ॥१४॥ हे पृथ्वी ! तू स्वर्गपत्नी, और हमारा निवास करनेवाली बनो। और हमें विस्तृत सुख दो ॥१५॥

देवियोंका स्तोत्र

इस २२ वें सूक्तमें तृतीय सूक्त देवियोंको है। इसमें (भारती) भापा, (धिपणा) बुद्धि, (इन्द्राणी) इन्द्र पत्नी [श्रुता], (वरुणानी) वरुणपत्नी [रक्षिकता], (भर्याणी) अग्निपत्नी, यौः, मातृभूमि इनका वर्णन है। ये देवपत्नियों कौसी हैं सो देवो—

१ उशती:- (हमारी सुरक्षा करनेकी) इच्छा करती है,

२ अघः- हमारी रक्षा करती हैं,

३ भारती- भरणपोषण करनेवाली,

४ वरुणी- सुरक्षा करनेवाली,

५ धिपणा- बुद्धिमती, विदुषी,

६ नृपत्नी- मनुष्योंकी पालना करनेवाली,

७ अचिच्छिन्न-पत्रा:- जिनके उड़नेके विमान अटूट हैं, सुरक्षित यन्त्रसाधनोंसे युक्त,

८ मिमिक्षतां- उत्तम वृष्टि करें, जिससे उत्तम धान्य निर्माण हो,

९ भरीमन्- पोषण करनेवाला धान्य आदिक पदार्थ,

१० घृतवत् पयः- घी जैसा जल, उत्तम पाचक और पोषण परिशुद्ध जल,

११ स्योना- सुखदायी,

१२ अनृक्षरा- (अन्-रक्षरा) कण्टक रहित, (अ-नृ-क्षरा) जहाँ रहनेसे मनुष्योंको क्षीणता नहीं आती ऐसा रहनेका स्थान हो,

१३ निवेशिनी- रहनेके लिये सुरक्षा दे।

देवियोंके ये शुभ गुण हैं। इनसे हमारी उन्नति बढ़ेगी। मानवत्वियों क्या करें यह भी इन पदोंके मन्त्रों आशयका है। देवियोंका जैसा आचरण करती हैं वे मानव स्त्रियों यही करें। मानव स्त्रियोंके अनुकूल मन्त्र पदोंमें भी यही देखा जा सकता है। जैसा—

मनुष्यकी स्त्रियों (उशतीः) भलाई करनेकी (अघः वरुणी) घरवालोंकी सुरक्षा करें, (भारती) पोषण करें, (धिपणा) सुबुद्ध हों, (नृपत्नी) कुटुंबके पालना करें, (मिमिक्षतां) स्नेहयुक्त आचरण करें, (अचिच्छिन्न-पत्रा) लोगोंका पालनपोषण करें, (भरीमन्) पालनपोषण (घृतवत् पयः) घी और जल दें, (स्योना) सुख (अनृक्षरा) घर निष्कण्टक करें, घरमें कोई क्षीण न व्यवहार करें, (निवेशिनी) सब लोग सुरक्षित प्रबंध करें।

देवपत्नीयोंके सूक्त मानवपत्नीयोंके कर्तव्योंकी निरूपण करते हैं।

मातृभूमिका राष्ट्रगीत

पंद्रहवीं मंत्र वैदिक राष्ट्रगीत है। यह संघर्ष में जैसा बोलनेके लिये है 'हे मातृभूमे ! हमारे लिये युद्ध यिनी, कण्टकरहित (शत्रुरहित) होकर उत्तम रीतिसे निवास करनेवाली हो। और विस्तृत सुख हमें प्रदान अर्थात् तुम्हारे ऊपर हम सुखसे रहें।'।

(१२।१६-१२) विष्णुः

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्

। पृथिव्याः सप्त धामभिः १६

। समूहमस्य पांसुरे १७

ग्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुगोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् १८
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा १९
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिविव चक्षुराततम् २०
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् २१

अन्वयः- विष्णुः सप्त धामभिः यतः पृथिव्याः वि चक्रमे, अतः नः देवाः अवन्तु ॥१६॥ विष्णुः इदं वि चक्रमे ।
॥ पदं नि दधे । अस्व पांसुरे तसूडन् ॥१७॥ अदाभ्यः गोपाः विष्णुः, धर्माणि धारयन्, अतः ग्रीणि पदा वि चक्रमे ॥१८॥
गोः कर्माणि पश्यत । यतः व्रतानि पस्पशे । (सः) इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९॥ विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि आततं
तुः इव, सूरयः सदा पश्यन्ति ॥२०॥ विष्णोः यत् परमं पदं (अस्ति), तत् विपन्यवः जागृवांसः विप्रासः सं इन्धते ॥२१॥

वर्ध- विष्णुने सातों धामोंसे जिल पृथ्वीपर विक्रम किया, यहांसे हमारी सब देव सुरक्षा करें ॥१६॥ विष्णुने यह
क्रम किया । उन्होंने तीन प्रकारसे अपने पद रखे थे । पर इसका एक पद धूली प्रदेशमें (अन्तरिक्षमें) गुप्त हुआ
॥१७॥ न दबनेवाला, सत्रका रक्षक विष्णु, सब धर्मोंका धारण करता हुआ, यहांसे तीन पद रखनेका विक्रम करता है
॥१८॥ विष्णुके ये कर्म देखो । उनसे ही हम अपने व्रतोंको किया करते हैं । (वह विष्णु) इन्द्रका सुयोग्य मित्र है ॥१९॥
विष्णुका वह परम स्थान पु लोकमें कैले हुए प्रकारके समान, ज्ञानी सदा देखते हैं ॥२०॥ विष्णुका वह पद है कि जो
जड़शाल, जाग्रत रहनेवाले ज्ञानी सत्य प्रकाशित हुआ देखते हैं ॥२१॥

विष्णु, व्यापक देव

विष्णु (वेदेषु इति) जो सब विश्वको व्यापता है, वह
व्यापक देव विष्णु कहलाता है । यह व्यापक देव सात धामोंसे
पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश,
स्मावा और महत्त्व के सात धाम हैं जहां यह व्यापक प्रभु
पना विक्रम दिखाता है । इसका पराक्रम यहां सतत चलता
रहा है । सब नक्षत्रादि तेजोमय, तथा अग्न्यादि देव इसी
व्यापक प्रभुकी गरिमामें अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ
ए हैं । उन व्यापक देवका सामर्थ्य लेकर ये सब देव (देवाः
अवन्तु) हमारी सुरक्षा करें । (१६)

यह व्यापक प्रभु ही यह सब, जो हम विश्वमें दिखाई देता
है, वह सब पराक्रम करता है । जो यहां दीख रहा है वह
सब उसका पराक्रम अथवा उसका सामर्थ्य है । नाविक,
प्राक् और तमस ऐसे तीन स्थानोंमें तीन पद उन्होंने रखे
हैं । सुलोक नाविक, अन्तरिक्ष लोक राजन और भूलोक
तमोऽसु प्रधात है, यहां इनके तीन पद कार्य करते हैं । इनमें
सबसे अन्तरिक्षमें दो इनका कार्य है वह गुप्त है । सुलोक
प्रधात है, भूलोक ही भूगुप्त कार्य करते हैं अतः ये
दो लोक रहस्य दीप्त रहे हैं । पर अथवा अन्तरिक्ष लोकका
सुगुप्त है, सुलोक ही व्यापक रहता है, पर इन

कर्मों दीखती है । इस तरह सबके स्थानमें होनेवाला उसका
कार्य दीखता नहीं । (१७)

यह व्यापक प्रभु किसी कदापि दबनेवाला नहीं है । यही
नमकी सुरक्षा करता है और यही सबमें व्यापक है, अतः
प्रत्येक वस्तुमें विद्यमान है । ये सब कार्य यही करता है । भूमि,
अन्तरिक्ष और सुलोकमें जो इनके तीन पद कार्य कर रहे हैं
उनको देखो और उसका सामर्थ्य जानो (१८)

इस व्यापक प्रभुके ये सब कार्य देखो । ये कार्य सब विश्वमें
सतत चल रहे हैं । इनके व्यापक कार्यके आश्रय मनुष्यके
कार्य होते हैं । उनके बिना कर्मोंका आश्रय करेही मनुष्य
अपने कार्य करता है । जैसे उनके आश्रय मनुष्य अपने अन्न
पकाना है, उसके बीजसे वह बोनी करता है इत्यादि ।
यह इन्द्रका योग्य मित्र है । (व्यापक प्रभु जीवित मित्र
है ।) (१९)

इस व्यापक प्रभुका वह परम स्थान है जो आकाशमें जिस
प्रकारित हुए सूर्यको मान्य देखते हैं, उसी तरह ज्ञानी लोग
सब कामें देखते हैं । प्रत्येक वस्तुमें ये उसने कार्यको स्वरूपको
मान्य करा देखते हैं । (२०)

व्यापक प्रभुका वह स्थान है कि जो कर्मशाल, जगत्पति
इसी तरह प्रकाशित अग्नि मनुष्य कार्य प्रकाशित करने

देखते हैं । (२१)

इस तरह इस सूक्तमें व्यापक प्रभुका वर्णन है । इसका पाठक मनन करें ।

विष्णु-सूर्य

इस सूक्तके 'विष्णु' पदसे 'सूर्य' अर्थ लेकर कई विचारक इस सूक्तका अर्थ करते हैं । सूर्य अपने किरणोंसे सब विश्व व्यापता है यही विष्णुपन है । सूर्य दक्षिणायनसे उत्तरायणतक जो पृथ्वीके विभागोंपर न्यूनाधिक प्रकाश डालता है वे सात भाग यहांके सात स्थान हैं । भूमध्य रेखा एक स्थान है, इसके नीचे तीन और ऊपर तीन मिलकर ये सात भूविभाग होते हैं । ये सूर्यके आक्रमणसे न्यूनाधिक प्रकाशसे युक्त होते हैं ।

उत्तरीय ध्रुवमें उत्तरायणमें सूर्योदय होकर वह सूर्य सतत छः मासतक ऊपरही ऊपर चारों ओर प्रदक्षिणा करनेके समान इर्दगिर्द घूमता रहता है । यहां दस बजेतक जितनी ऊंचाईपर सूर्य आता है उतनी ऊंचाईपर वह तीन महिनोंमें आता है और फिर नीचे उतरने लगता है, ये ही उसके तीन आक्रमण हैं । पहिला पीत, दूसरा लाल और तीसरा श्वेत । भूविभाग सात होते हैं और आकाशमें तीन विभाग होते हैं । यहां 'सप्त धाम' का अर्थ सात छन्द ऐसा सायनाचार्य करते हैं । कईयोंकी ऐसीही संमति है ।

यहां सात छन्दोंका संबंध इस तरह है गायत्री २४, अण्डिक् २८, अनुष्टुप् ३२, बृहती ३६, पंक्ति ४०, त्रिष्टुप्

४४, और जगती ४८ अक्षरोंवाले ये सात छन्द हैं । प्र छंदोंके कुल अक्षर २५२ होते हैं, एक दिनेके लिये एक माना जाय तो इनके करीब साठे आठ महिने होते हैं । प्रकाशके महिने वहां उत्तरीय ध्रुवके पासके हैं । छः मास दर्शन और उपा और अन्तके पूर्वका संधि प्रकाश इतनेही दिन वहां प्रकाशके होते हैं । इसमें आश्चर्यकी है कि प्रथम गायत्री मंत्रका ध्यान होता है, ठीक गावकी अक्षर होते हैं, उतनाही समय सूर्यविंबको ऊपर आनेमें है । इसी तरह सातों छंदोंकी अक्षरोंकी गणना और दिनोंकी गणना समान है । इसलिये सातों छंदोद्गात विक्रम वर्णन किया है । अन्य वर्णन भी इसी तरह है ।

इस उत्तरीय ध्रुवमें इन्द्र नाम उस प्रकाशका है कि न होते हुए विलक्षण प्रकाश विद्युत्प्रकाश जैसा रहता है । इन्द्र सूर्यको ऊपर लाता और आकाशमें चढाता है ऐसी वेदमंत्रोंमें है । देखो—

इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आ सूर्य रोहयद्वि॥ (क्र.)

'इन्द्रने सुदीर्घ प्रकाश करनेके लिये सूर्यको ध्रुवके चढाया ।' यह इन्द्र और विष्णुकी मित्रता है ।

इस तरह ये विद्वान् सूर्यपर यह सूक्त घटाते हैं । विष्णु है ही वेदमें । ये अनेक अर्थ होनेपर भी इस परमात्मा, सर्वव्यापक प्रभुपरक अर्थ मारा नहीं जाता । वेदका मुख्य ध्येय वही है ।

(१२) दो क्षत्रिय

(क्र. मं. १।२३) मेधातिथिः काण्वः । १-१८ गायत्री, १९ पुरउल्लिक्, २१ प्रतिष्ठा, २०, २२-२४ अनुष्टुप्

(२३।१-३) वायुः, इन्द्रवायू

| | | | |
|---|---|---------------------------|---|
| तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे | । | वायो तान् प्रस्थितान् पिव | १ |
| उमा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे | । | अस्य सोमस्य पीतये | २ |
| इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये | । | सहस्राक्षा धियस्पती | ३ |

अन्वयः—हे वायो ! इमे सोमामः सुताः । तीव्राः आशीर्वन्तः । आ गहि । प्रस्थितान् तान् पिव ॥१॥
उमा देवा इन्द्रवायू अन्य सोमस्य पीतये हवामहे ॥२॥ सहस्राक्षा धियः पती मनोजुवा इन्द्रवायू विप्राः उतये

अर्थ- हे वायो ! ये सोमरस निचोड़े हैं । ये तीखे (हैं अतः इनमें) दुग्धादि मिलाये हैं । यहाँ आनो । और रखे इन (रसोंको) पीओ ॥१॥ सुलोकोको स्पर्श करनेवाले इन दोनों इन्द्र और वायु देवोंको इस सोमरसके पान के लिये हम बुलाते हैं ॥२॥ सहस्रों आंखोंवाले, बुद्धिके अधिपती, मन जैसे वेगवान ये इन्द्र और वायु हैं, इनको भी लोग अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ॥३॥

सोमरस

सोमरस (तीव्रः) तीखा रहता है । इसलिये केवल सोमरस पान करना अशक्य है । अतः उसके अन्दर जल, दही, सनू आदि (आशीर्) मिलाया जाता है इसीको आशीर्-वन्तः) मिलाया हुआ रस कहते हैं । 'गवाशिर-आशीर, दध्याशिर' आदि पद इसीके वाचक आगे देंगे । जो वस्तु मिलायी जाती है उसको 'आशीर्' कहते हैं । 'गवाशिर' गौका दूध मिलाया सोमरस, 'दध्याशिर' गौका दही मिलाया सोमरस, 'गवाशिर' गौका आटा मिलाया सोमरस इत्यादि । सोमरस बड़ा तीखा होनेके कारण उसे ऐसे पदार्थ मिलावनेही आवश्यक हैं । सहृद भी मिलाते हैं ।

दो क्षत्रिय

इन्द्र और वायु ये दो क्षत्रियदेव हैं । ये किस तरह आचरण करते हैं देखिये-

१ दिविस्पृशौ- अन्तरिक्षमें, आकाशमें (विमान आदि

वाहनोसे) संचार करते हैं ।

२ सहस्राक्षौ- (सहस्र-अक्षौ) हजारों आंखोंसे देखते हैं । अर्थात् ये सहस्रों गुणधर रखते हैं और अपने तथा शत्रु-देशका ग्यार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं । राज्यव्यवहारके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है ।

३ मनोजुवौ- (मनः-जुवौ) मनके समान वेगवान् । शीघ्र गतिवाले वाहनोसे युक्त हैं ।

४ धियः पती- बुद्धियोंके स्वामी । प्रजाके विचार जिनके साथ रहते हैं, प्रजाके विचारोंके स्वामी, प्रजाके कर्मोंके स्वामी । प्रजाके विचार और कर्म जिनके अनुकूल रहते हैं ।

५ विप्राः ऊतये हवन्ते- ज्ञानालोग सुरक्षाके लिये जिनको बुलाते हैं । अर्थात् राष्ट्रके ज्ञानी लोगोंका भी जिनपर पूर्ण विश्वास है ।

राजा तथा राजपुरुष इन गुणधर्मोंसे युक्त रहने चाहिये । ऐसे गुण जिनमें होंगे वे राजा प्रजाके लिये अनुकूलही होंगे और प्रजा उनके विरुद्ध कुछ कार्यवाही कदापि करेगीही नहीं ।

(२३।४-६) मित्रावरुणौ

| | | |
|---|-----------------------|---|
| मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये | । जज्ञाना पूतदक्षसा | ४ |
| ऋतेन यावृतावृथावृतस्य ज्योतिषस्पती | । ता मित्रावरुणा हुवे | ५ |
| वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः | । करतां नः सुराधसः | ६ |

अन्वयः- वयं मित्रं वरुणं च सोमपीतये हवामहे । (उभौ) जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४॥ यौ ऋतेन ऋतावृथौ, ऋतस्य ज्योतिषः पती, ता मित्रावरुणा हुवे ॥५॥ वरुणः प्राविता भुवन् । मित्रः विश्वाभिः जतिभिः (प्राविता भुवन्) । (तां) सुराधसः करताम् ॥६॥

अर्थ- इन मित्रको और वरुणको सोमपानके लिये बुलाते हैं । (वे दोनों) बड़े ज्ञानी और पवित्रकार्यके लिये अपने दलका उपयोग करनेवाले हैं ॥४॥ जो सरलतासे सन्मार्गकी वृद्धि करनेवाले और सन्मार्गकी ज्योतीके पालनकर्ता हैं, उन मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूँ ॥५॥ वरुण हमारी विशेष सुरक्षा करता है । मित्र भी सब सुरक्षाके साधनोंसे हमारी सुरक्षा करता है । (वे दोनों) हमें उत्तम धनोसे युक्त करें ॥६॥

दो मित्र राजा

इस सूक्तमें दो मित्र राजाओंका उल्लेख है । मित्र और वरुण ये दो राजा हैं, इनका वर्णन अ. १।१।७-९ में है ।

(देखो 'मनुष्यन्दा' ऋषिका दर्शन पृ. ९-१० और ३८-३९) ये दोनों राजा ऐसे हैं कि जो परस्पर मित्रभावसे आचरण करते और कभी झेद नहीं करते । अब इनका वर्णन इस सूक्तमें देखिये-

१ ज्ञानो— वे ज्ञानी हैं, विद्यावान् हैं, प्रबुद्ध हैं ।

२ पूत-दक्षसौ— पवित्र कार्य करनेके लिये ही अपने बलका ये उपयोग करते हैं, कभी अपने बलका उपयोग दुष्ट कार्यमें नहीं करते ।

३ क्रतेन क्रतावृधौ— सरल मार्गसे ही सत्य मार्गकी शुद्धि करते हैं, सन्मार्गसे अभिशुद्धि करनेके लिये भी तेड़े मार्ग का अवलंब नहीं करते । जो उच्चतिका साधन करना हो वह सीधे मार्गसे ही करते हैं ।

४ क्रतस्य ज्योतिषः पती— सत्यकी ज्योती पालन करते हैं सत्य एक प्रकारकी ज्योती है उसका पालन ये अग्रण्ड करते

रहते हैं ।

५ विश्वाभिः ऊतिभिः प्राविता— ऊतिभिः प्राविता की मुरक्षा करनेके साधनोंमें हमारी मुरक्षा ये करते हैं प्रत्येक देव यही करता है ।

६ सुरावसः नः कर्ता— उत्तम सिद्धि देने के कर देवें । 'राधस्' का अर्थ सिद्धि है । 'सुरावस' उत्तम सिद्धि है । जो कार्य करना है उसमें उत्तम सिद्धि देते हैं ।

दो राजा लोग इस तरह अपने राज्यमें वर्तव्य हैं, भी मित्र भावसे रहें और प्रजाकी उन्नतिकी साधन करें

(२१।७-९) मरुत्वान् इन्द्र

मरुत्वन्तं हवामहे इन्द्रमा सोमपीतये

१ सजूर्गणेन तृम्पतु

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्वणा देवासः पूपरातयः

२ विश्वे मम श्रुता हवम्

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा

३ मा नो दुःशंस ईशत

अन्वयः— मरुत्वन्तं इन्द्रं सोमपीतये आ हवामहे । (सः) गणेन सजुः तृम्पतु ॥७॥ हे विश्वे देवासः ! पूपरातयः मरुद्वणाः ! मम हवं श्रुतम् ॥८॥ हे सुदानवः ! सहसा युजा इन्द्रेण वृत्रं हवम् । दुःशंसः नः मा ईशत ॥९॥

अर्थ— मरुत्वोंके साथ इन्द्रको हम सोमपानके लिये बुलाते हैं । (वह) मरुद्वणके साथ तृप्त हों ॥७॥ हे (मरुद्वणों) ! तुम्हारे अन्दर इन्द्र श्रेष्ठ है, पूपाके समान तुम्हारे दान हैं, ऐसे मरुतो ! मेरी प्रार्थना सुनो ॥८॥ दाता (मरुतो !) बलवान् और अपने साथी इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका वध करो । कोई दुष्ट हमारा स्वार्थ न बढे ॥९॥

दुष्टके आधीन न होना

(दुःशंसः नः मा ईशत) कोई दुष्ट शत्रु हमारा मालिक न बन बैठे । यह इस सूक्तमें मुख्य संदेश है । सब मिलकर

शत्रुका नाश करें और शत्रुका ऐसा नाश हो जाने कि वह न बैठे और कदापि हमारे ऊपर स्वामित्व न करे । ईशत— स्वामित्वका स्वीकार किसीको भी करना नहीं चाहिये ।

(२३।१०-१२) विश्वे देवाः मरुतः

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये

१ उग्रा हि पृथिमातरः

१०

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया

२ यच्छुभं याथना नरः

११

हस्कारान् विद्युतस्पर्शस्तो जाता अवन्तु नः

३ मरुतो मृलयन्तु नः

१२

अन्वयः— मरुतः विश्वान् देवान् सोमपीतये हवामहे । हि उग्राः पृथिमातरः ॥१०॥ जयतां इव, मरुतो मृलयन्तु नः ॥१२॥ हस्कारान् विद्युतः अतः परिजाताः मरुतः नः अवन्तु, मृलयन्तु ॥१२॥

अर्थ— सब मरुत देवोंको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं । वे बड़े शूरवीर हैं और भूमिको माता मानते हैं । लोगोंकी तरह, मरुतोंका शब्द वही वीरताके साथ होता रहता है, जब वे शुभ कार्यके लिये लागे बढते हैं । हस्ते विद्युत, तन्यतुर्मरुत इन्द्रकी हमारी रक्षा करें और हमें सुख देवें ॥१२॥

मातृभूमिके वीर

का 'विश्वे देव' पद 'मरुतो' के वर्णन करनेके लिये आया (पृथिवी-मातरः) भूमिको अपनी माता मानते हैं, उस भूमिके लिये बलिदान होते हैं। (शुभं यायन) ये

जब शुभ कार्य करनेके लिये जाते हैं, तब उनके संपर्कका बड़ा शब्द होता है। ये बिजलीसे उत्पन्न हुए वीरोंके समान तेजस्वी वीर हैं। वे सबकी रक्षा करके सबको सुखी करें।

(१३।१३-१५) पूषा

आ पूषश्चित्रवर्हिपमाघृणे धरुणं दिवः । आज्ञा नष्टं यथा पशुम् १३
पूषा राजानमाघृणिरपगृह्णं गुहा हितम् । अविन्दश्चित्रवर्हिपम् १४
उतो स मह्यमिन्दुभिः पद् युक्तौ अनुसेविषत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् १५

अन्वयः— हे माघृणे अज पूषन् ! चित्रवर्हिपं धरुणं (सोमं) दिवः आ (हर)। यथा नष्टं पशुम् आ ॥१३॥ पूषा अपगृह्णं, गुहा हितं, चित्रवर्हिपं राजानं अविन्दत् ॥१४॥ उतो स मह्यं इन्दुभिः युक्तान् पद अनुसेविषत्, यवं न चर्कृषत् ॥१५॥

अर्थ— हे दीक्षितम् श्रीव्रगन्ता पूषा देव ! तुम विचित्र कलगीवाले धारक शक्ति (बढ़ानेवाले सोम)को सुलोकसे ले । जिस तरह तुम हुण्ड पशुको (हृदकर लाते हैं) ॥१३॥ तेजस्वी पूषाने छिपे हुण्ड, गुहामें रहनेवाले, विचित्र गुर्रवाले राजाको प्राप्त किया ॥१४॥ और उसने मेरे लिये सोमोंसे युक्त छः (ऋग्वंशोंको) बार बार लाया, जिस तरह जान बल्लोंसे बारबार खेत कसता है ॥१५॥

सोमको दूढ़ना

उ मंत्रमें सोमका वर्णन देखने योग्य है—

चित्रवर्हिः— विचित्र गुर्रवाला सोमका पींधा होता है। तरह मोरके किरपर तुरी या कलगी होता है, उस तरह गुर्रवाला पींधा है।

धरुणः— यह स्थिर रहनेवाला पींधा है। जलशुक्त जरा कठिन स्थानपर यह उगता है।

दिवः आ— गुले-बसे, पर्वतकी सीढ़ीमें, पर्वतके लंछेमें स्थानमें यह सोम लाया जाता है। आठ दम हजार हात परवा सोम उसमें समझा जाता है। जहाँ हिमालयके से मिलर होते हैं, वहाँ स्थान उसमें सोमका है। यही य है।

यथा नष्टं पशुं (आहरति)— जैसे अरण्यमें शुभ पशुको हितकर लाया जाता है, प्रयत्नसे प्राप्त किया जाता है। उस तरह इसकी संघर्षपर आकर विशेष प्रयत्नसे ही वह सोमको प्राप्त किया जाता है। इसके पद लगाना है कि सोमको मरुहृदिमें प्राप्त होनेवाला नहीं है और सोमका समग्र यह मिलना कठिन हुई है।

अपगृह्णः— यही परे हुए गुहा में है। यह (हृदकर)

आसानीसे नहीं मिलता।

६ गुहा हितः— गुहामें रहता है, शुभ जगह मिलता है, जहाँ जाना मुश्किल है, ऐसे स्थानपर रहता है।

७ राजा— (राज-वंश) सोम कीर्तिमान है, प्रशस्तता है। राजाके समय प्रकाशता है, अपना दमका रंग भगवता है (यह बात अन्वेष्टनीय है)।

८ इन्दुः— (इन्दु-देवर्षि) प्रकाशनेवाला है। राजाके समय समवता है। सोमः देनेवाला सोम है। (ये अर्थ अंगीकार्य हैं)।

९ इन्दुभिः पद— सोमोंके साथ छः ऋग्वंश मिलते हैं। उही ऋग्वंशोंसे सोम मिलता है।

इस सूत्रमें सोमकी दूढ़ना वर्णित है। इसमें सोमके विषयमें पद लगाना संभव है। यह मिलना कठिन है, यह सोम मिलना होता है।

बैलोंने खन

गोभिर्यवं न चर्कृषत्— नौ सोमोंके दूढ़ना सोमका जला है। नौ सोमोंके दूढ़ना सोमका जला है। नौ सोमोंके दूढ़ना सोमका जला है। नौ सोमोंके दूढ़ना सोमका जला है।

य कने चिदभिधायः पुग जयभ्य पावदः । गंधाना गंधी मयया पृथग्भूमिभ्यां विदं पृ
मा भूम निष्प्रयाहवेन्द्र त्वदगणादय । ननानि न प्रजतिभ्यपदितो दृष्टेययो भग्नमति
भग्नमहीदनाशयोऽनुयासस्य वृत्रहन् । मरुत्तु ने महता जग मयमान् स्तोमं सुदीर्घ
यदि स्तोमं गम श्रवदस्मात्तमिन्द्रमिन्द्रवः । निगः पवित्रं मरुत्तुं स पाजयो मरुत्तु तुष्टात्
आ त्वरथ सधस्तुतिं चायातुः सगपुरा गति । उगस्तुनिर्मोनां प्र न्यायनया ने गमि सुगु
सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमस्तु भावन । मय्या नम्य नासयन्त इत्यो गिभुशानशनाया
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादभि । अया नर्वस्य नन्ना मिग ममा जाना सुकृता
इन्द्राय तु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् । शक एणं पीपयादिवया चिया दिवनां न गाय
मा त्वा सोमस्य गवदया सदा याचयहं गिरा । भूर्णि ममं न सवनेषु नुक्तं क ईशानं न यो
मदेनेपितं मदसुयमुयेण शवसा । विद्वेषां तनूतारं मदस्युतं मंद हि म्या ददानि नः
शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुणं । स सुन्यते न स्तुनते न रावने विश्वगतां अप्रितः
एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा । सरो न प्रास्यदूरं सपीतिभिग सोमभिरुक्त सिद्धम्
आ त्वा सहस्रमा शते युक्ता रथे हिरण्यये । ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वातन्तु सोमपीतये
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या । दितिपृष्ठा वहतां मध्या अन्धसो विश्वक्षणस्य पीतये
पिया त्वरथ गिर्वणः सुतस्य पूर्वपादय । परिष्कृतस्य रसिन इयमास्तुतिश्चासमंदाय पत्यते
य एको अस्ति दंसना महौ उग्रो अभि व्रतैः । गमत्स क्षिप्री न स योपदा गमद्वयं न परि
त्वं पुरं चरिण्यं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् । त्वं भा अनु चरो अथ छिता यदिन्द्र हव्यो भुवः
मम त्वा सूर उदिते मम मध्यदिने दिवः । मम प्रपित्वे अपिदावरे वसवा स्तोमासो अयुत्सत
स्तुहि स्तुहीदेते या ते महिष्टासो मयोनाम् । निन्दितादयः प्रपथी परमज्या मयस्य मध्यातिथे
आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् । उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति यादः पशुः
य ऋज्रा महौ मामहे सह त्वचा हिरण्यया । एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासंगस्य सनद्रथः
अथ ग्रायोगिरति दासदन्यानासंगो अग्रे दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश महौ रुशन्तो नळादय सरसो निरतिष्ठन्
अन्वस्य स्थूरं ददशे पुरस्तादनस्य ऊरुवरम्यमाणः । शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमयं भोजनं

अन्वयः—[प्रगाथो घौरः काण्वः]— हे सखायः ! अन्यत् चित् मा विदांसत । मा रिपयन्त । वृषभं
स्रोत । सुते सुहुः उक्था शंसत च ॥१॥ अवकक्षिणं वृषभं, यथा अजुरं गां वृषभं न, चर्पणी-सहं, विद्वेपिणं,
उभयकंदं, मंहिष्टं, उभयात्रिनं (स्रोत) ॥२॥

[मेधातिथि—मेधातिथि काण्वौ]— इमे जनाः यत् चित् हि उतये त्वा नाना हवन्ते । हे इन्द्र ! अस्माकं
ते विश्वा अहा च वर्धनं भृत ॥३॥ हे मववन् ! विपश्चितः अर्थः जनानां विपः वितूर्यन्ते । (अस्मान्) उपक्रमन् ।
नेदिष्टं वाजं उतये (अग्नय्यं) आ भर ॥४॥ हे अद्रिवः ! त्वां महे च शुल्काय न परा देयाम् । हे वज्रिवः !
साय, अयुताय च न (देयां), हे शतामघ ! न (देयां) ॥५॥ हे इन्द्र ! मे पितुः (त्वं) वस्यान् असि । उत
यातुः (त्वं वस्यान् असि) । हे वसो ! मे माता (त्वं) च समा वसुत्वनाय राधसे उदयतः ॥६॥ क इयय !
असि ? पुरा चित् हि ते मनः । हे युधम ! खजकृन् (असि) । हे पुरंदर ! अलपिं । गायत्राः प्र अगासिपुः ॥७॥
(इन्द्राय) गायत्रं प्र अर्चत । यः पुरंदरः (सः) वायातुः । याभिः काण्वस्य बर्हिः आसदं उपयासन्, (ताभिः)
पुरः भिनन् ॥८॥ ये ते दशम्विनः, ये शतिनः, (ये) सहस्रिणः सन्ति, ये ते वृषणः अध्यासः रघुदुवः (सन्ति)
नः त्वयं आ गहि ॥९॥ अथ सयदुघां सुदुघां उरुधारां धेनुं अलंकृतं गायत्रवेपसं इन्द्रं अन्यां इयं तु आ हुवे ॥१०॥

तु तदन्, (तन्) वंक् वातस्य पर्णिना शतक्रतुः वार्जुनेयं कुत्सं बहन् । असृत्तं गंधर्वं त्सरन् ॥११॥ यः अभिक्षिपः
 त् जन्मभ्यो वातृदः संधिं संधाता मववा पुरुषसुः विहृतं पुनः इष्कर्ता (भवति) ॥१२॥ हे इन्द्र ! त्वन् निष्टयाः
 भूम । क्षणाः इव (मा भूम) । प्र-जहितानि वनानि न (मा भूम) । हे अद्रिवः ! दुरोपसः अमन्महि ॥१३॥
 त् ! कनामयः अनुप्रासः च इन् अमन्महि इन् । हे शूर ! सकृन् महता राधसा ते सु स्तोमं अनुमुदीमहि ॥१४॥
 इन्द्रः) मम स्तोमं यदि ध्रुवन्, (तं) इन्द्रं अस्माकं पवित्रं तिरः समृवांसः आशवः तुभ्यावृधः इन्द्रवः मदन्तु ।
 चावातुः सख्युः सधस्तुतिं जय तु वा वा गहि । मवोनां उपस्तुतिः त्वा प्र जवतु । अथ ते सुष्टुतिं वरिम ॥१५॥
 तः स्तोमं स्तोत । हि पुनं ईं अन्पु आ धावत । गम्या वसा इव वासयन्त इन् नरः वक्षणाभ्यः निः धुक्षन् ॥१६॥
 तः, अथ वा दिवः, बृहत् रोचनान् अथि, अया तन्वा मम गिरा वर्धस्व । हे सुक्रतो ! जाता वा पृण ॥१७॥ इन्द्राय
 मं वरेण्यं स्तोमं तु स्तोत । शक्रः विश्वया धिया हिन्वानं वाजयुं पुनं न पीपयन् ॥१८॥ त्वा सवनेषु सोमस्य गल्दया
 हं सदा याचन्, ना सुकृधन् । भूर्णि सुगं न, कः ईगानं न याचिपन् ॥२०॥ मदेन इषितं, मदे उग्रं, उग्रेण शवसा,
 तत्पतारं मदप्युतं (पुत्रं) नः मदे ददाति स्त हि ॥२१॥ शैवारे पुरु वार्या देवः मर्ताय दाशुपे रासते । सः विश्वमर्तः
 तः सुन्वते च स्तुवते च (रासते) ॥२२॥ हे इन्द्र ! वा याहि । हे देव ! चित्रेण राधसा मत्स्व । सपीतिभिः
 तः उरु स्फिरं उदरं सरः न वा प्राप्ति ॥२३॥ हे इन्द्र ! त्वा शतं सहस्रं हिरण्यये रथे युक्ताः, ब्रह्मयुजः, वैशिनः
 सोमपीतये वा वा बहन्तु ॥२४॥ हिरण्यये रथे मयूरोप्या गितिष्टा हरी मध्वः अन्धसः विवक्षणस्य पीतये त्वा
 त्नाम् ॥२५॥ हे गिर्वणः ! पूर्वया इय, अस्य सुतस्य पिव तु । परिहृतस्य रमिनः इयं क्षामुतिः चासुः मदाय पत्नये
 यः पुत्रः दंयता महान् उग्रः व्रतः क्षभि क्षन्ति । म दिश्री वा गमन् । म न योपन् । हयं आ गमन्, न परि वर्तति
 हे इन्द्र ! त्वं शुण्डस्य चरिण्यं पुरं वर्यः मं विणक् । अथ त्वं भाः अनु चरः । यन् द्विता ह्ययः भुवः ॥२८॥ सूरं
 मम स्तोमायः त्वा वा अवृमन्त । दिवः मध्यं दिने मम, हे वयो ! प्रपिये क्षपितये मम (स्तोमायः वा अवृमन्त) ॥२९॥
 [क्षामन्नः शायोगिः]- हे मेधातिथि ! त्वहि स्तुहि इन् । एते य मयोनां ते मपम्य मंगिष्टायः । निदिताभः प्रपयी
 याः ॥३०॥ वनन्वतः अक्षान् अहं यन् अदया रथे क्षामहम् । उत वामस्य वसुनः चित्रेति । यः पात्रः पशुः अश्वि
 । य कज्रा हिरण्यया त्वया सह मलं ममहे । एष धामेगम्य न्यनद्वयः विश्वानि मंभगा अभि क्षन्तु ॥३१॥ हे भगो !
 शायोगिः क्षामेगः दत्ताभिः सहस्रैः अन्यान् क्षानि दासन् । अथ उक्षणः गतोतः ददा, नद्याः इय मरमः, मलं निः
 त् ॥३३॥

[राधसी आद्रिस्त्री क्षपिवा]- अयं पुरस्तात् अन्धसः रथुर उरुः अय रंभगाः । अभिचक्ष्य राधसी नारी आह,
 ! सुभद्रं भोजनं विभर्षि ॥३४॥

अर्थ— [एतं प्रापिका पुत्र, जो बन्धवा दत्तव पुत्र हुआ था, वह प्रगाथ क्षपि बन्धा है]- हे मित्रो ! दम्भे
 । (उपतापी) प्रगाथा न वने । और क्षपि तुम्हें मन् गोही । बन्धान् इन्द्रकी ही स्तुति दोगे । स्तोमपात्रमं वाग्वा
 दये) वाग्प ही माओ ॥१॥ गीये उत्तरका लहनेवाला, महाबली, जैसी तमम गाव (उपकार करनेवाली) या तमम
 बलिह होते हैं वेने (उपकार करने और) बलिह दातृ-मैत्रिबीने जीवनेवाला, दातृका देव करनेवाला, प्रेमाने सेवा
 योग्य, (दातृबीका मित्र और मित्रोपर अनुमत् इने) दोलीकी (यन्त्रयोग्य सीतिले) करनेवाला, बडा उत्तम, सीतिले
 रथे लोलीने (यथायोग्य) आचरण करनेवाला (जो इन्द्र है, उसीका बन्धव मानने वने) ।

[मेधातिथि और मेधातिथि से बन्धव गोतमें उत्पन्न हुए क्षपि वाग्प माने हैं]- हे सब लोग अद्वय सुश्रुतों नि-
 ली गता प्रगाथसे इच्छि करने हैं । हे इन्द्र ! हमारा यह भोज ही तुम्हारा मदा मय दितिले (यथा) चरित
 वाला हो । ३३। हे भगवाह ! (तुम्हारे उपकारके) क्षमती लोग दत्तकी मित्रिनी पूर करने हैं । (क्षम दम्भे वाग्प
) क्षमो । और बहुत प्रगाथका स्वामिण्य अथ हमारी सुश्रुतों निने (हमारे पास) मन् हो । ३४। हे सर्वका बन्ध-
 व और ! तुम्हें बडे भरी भुष्टकी भी है मन् देवेता । हे बन्धवों दम्भ ! मे मरुत क्षे, क्षुपुत इने भी । ३५।

कक्षी ' ऊपरसे नीचे उतर कर लड़नेवाला, पर्वतसे उतर कर लड़नेवाला (मं. २ में) कहा है ।

वाज्रिवः- वज्रधारी,

शतामघ- सैकड़ों प्रकारके धन पास रखनेवाला, (मं. ५)

वसुत्वनाय राधसे छद्मन्- लोगोंका निवास सुखसे युक्त करनेके लिये आवश्यक सिद्धियाँ देनेवाला, जो सुखसे बसानेवाला, (मं. ६)

युध्मः- युद्ध करनेमें अत्यंत कुशल,

खंजकृत्- हलचल, कान्ति, युद्ध करनेवाला,

पुरंदरः- (पुरं+दरः)- शत्रुके, नगरोंका, शत्रुके का विनाश करनेवाला । यहाँ भूमिदुर्गका भाव ' पुर ' से चाहिये । क्योंकि पुरीके चारों ओर दुर्ग होता था, इतनाही परंतु पुरीके चारों ओर दुर्गकी सात दीवारें होती थीं । सात दिवारोंका भेदन करनेपर शत्रु अन्दर आ सकता ऐसी शत्रुकी पुरियोंका विनाश करनेवाला इन्द्र था । इससे कि शत्रु कोई अनाडी नहीं थे ऐसा साफ प्रतीत होता है ।

यत्र अदि असुर ऐसी नगरियोंमें बसते थे कि जिन रियोंकी जनसंख्या कालोंमें सुरक्षित रहती थी और इन्द्रको बलोंको तोड़ना आवश्यक था । शत्रुको परास्त करनेकी ऐसी मैदानी करनी चाहिये, यही बोध इससे मिलता है । (मं. ७)

घज्री पुरः भिनत्- दान्नधारी वीर शत्रुके अनेक को, भूमिदुर्गमें रहे नगरोंका छिन्नभिन्न करता है । सब साधनोंसे जो नगरियाँ परिपूर्ण होती हैं (पूर्यते इति पुरः) के ' पुरि ' कहते हैं । ऐसे शत्रुके नगरोंको और उनके पत्नी संरक्षक दुर्गोंका तोड़ना चाहिये । (मं. ८)

ते वृषणः रघुदुवः अश्वासः- इन्द्रके घोड़े अत्यंत बल और बलवान् थे और ये दसों, सैकड़ों और सहस्रों थे । शान्विनः, शान्विनः, सहस्रिणः सन्तिः) । (मं. ९)

धेनुः (इन्द्रः)- ऐसी गौ दूधक्षी अब देती है जो इन्द्र अनेक प्रकारके (रमं) अब प्रजाको देकर पोषण देता है । (मं. १०)

शतक्रतुः- सैकड़ों कर्म कुशलताके साथ करनेवाला,

वंहः वातस्य पणिना अस्मृत् तस्मरत्- तेही के अपने वातस्य वायुदेवसे अगम्य वा अजेय शत्रुको भी मार देता है । (मं. ११)

२७ संधि संधाता- जोड़ोंको जोड़ देता है । पांवों और हाथोंके संधि उखड़ जाते हैं, उनको ठीक योग्य रीतिसे यथास्थान जोड़नेकी विद्या जानता है । दर्शको जोड़नेकी विद्याको जाननेवाला । वारोंको इष्ट अवश्य चाहिये ।

२८ विहृतं पुनः इष्कर्ता- दूटे अवयवको, दूटे फिर से यथायोग्य जोड़नेवाला,

२९ अभिश्रिष्टपः क्रते- जोड़नेके साधन न होने पर पूर्वोक्त दोनों कार्य करनेवाला । (मं. १२)

३० पुरुवसुः- बहुत धन पास रखनेवाला । धनमें चलाया जाता है, इसलिये इन्द्र अपने पास बहुतही धन है । (मं. १२)

३१ वृत्र-हा- शत्रुका नाश करनेवाला,

३२ सुक्रतुः- उत्तम कर्म करनेवाला, कुशलसे करनेवाला । (मं. १८)

३३ शक्रः- समर्थ, सामर्थ्ययुक्त, शक्तिमान् (मं. १८)

३४ भूर्णिः- भरण पोषण करनेवाला ।

३५ ईशानः- प्रभु, स्वामी, अधिपति । (मं. १९)

३६ शेवारे दाशुपे पुरु वार्या रासते- सूर्यके लिये पर्याप्त धन देता है, उदार पुरुषोंकी सहायता है । (मं. २२)

३७ हिरण्यये रथे युक्ताः केशिनः वहन्ति- रथमें संयुक्त हुए घोड़े (इन्द्रको जहाँ जाना हो वहाँ) हैं । (मं. २४)

३८ मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी हिरण्यं वहतां- मयूरके पंखोंके तुरें लगाये श्वेत पीठवाले हैं सुवर्ण रथमें (बैठनेवाले इन्द्रको) डोले हैं । (मं. २५)

३९ गिर्वणः- प्रशंसनीय,

४० दंसना महान् उग्रः- बड़े कर्म करने वाला शूर,

४१ वतैः आभि अस्ति- अपने नियमोंके अनुसार हमला करके उसको परास्त करता है ।

४२ शिप्रि- शिरपर शिरस्त्राण-लोहेका कवच-भार है । (मं. २७)

४३ शुष्णस्य चरिण्यं पुरं वर्धः सं पिण्ड- शत्रुके घूमनेवाले कोलेका मारक-शस्त्रोंसे चूर्ण करता है ।

रिण्यु पूः) हिलनेवाली नगरिका उल्लेख है। हिलनेवाला, चलावमान दुर्ग। शत्रुके इन कीलोंका इन्द्र नाश करता अन्यत्र (आयसीः पूः) लोहेके कीलोंका वर्णन है। लोहेके धे, हिलने और एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेवाले ये के काले हैं। ये आजकलके टैंक (Tanks) जैसे प्रतीत हैं। इनका नाश अपने शस्त्रोंसे इन्द्र करता है।

४४ द्विता- दोनों प्रकारके लोगोंका हितकर्ता। धनी, न आदि दो प्रकारके लोग जनतामें होते हैं, उनका हित करता है। (मंत्र २ में उभयंकर और उभयावी ये इसी अर्थके साथ विचार करने योग्य हैं।)

४५ निदिताश्वः- जिसके पास अत्यंत उत्तम घोड़े होनेके कारण दूसरोंके घोड़ोंकी आपसी आप निंदा जिसके कारण होती म घोड़ोंसे युक्त। इसका अर्थ हीन घोड़ोंवाला ऐसा यह बात स्मरण रहे।

प्रपथी- उत्तम मार्गसे जानेवाला,

परमज्या- उत्तम धनुष्यकी डोरी जिसके धनुष्यपर। (मं. ३०)

तने इन्द्रका वर्णन करनेवाले पद हैं। ये वीरोंका वर्णन। राष्ट्रमें वीर कैसे हों इसका ज्ञान इन पदोंके मननसे ता है। हर एक पाठकको इन गुणोंका मनन करके इनमेंसे अपनेमें आसकते हैं, उनको अपनाता चाहिये। जदिष्णु अन्दरके तरुणोंको तो ये गुण अपनाने चाहिये। पूर्वोक्त अर्थ पढ़ते समय इन पदोंका यह आशय पाठक ध्यानमें करेंगे, तो मंत्रोंसे अच्छा बोध उनके मनमें उतर है।

मातिथि और मेघातिथि इन दोनों ऋषिजने यह आदर्श रूप जनताके सामने रखा है। यही वीर दुवाका वैदिक है।

पुत्र कैसा हो ?

व कैश उत्पन्न हो, इस विषयमें वेदमंत्रोंमें बारंबार अनेक निर्देश आते हैं। उनके साथ इस सूक्तके निम्नलिखित उनके निर्देश ध्यानमें रखने योग्य हैं-

पहिले यह स्मरण रखना चाहिये कि जो इन्द्रका आदर्श ध्यानमें 'आदर्श वीर पुरुष' के रूपसे रखा है, वैसाही निर्माण होना चाहिये। इसी तरह अग्न्याग्नि देवताओंके

७ (मेघा०)

रूपोंमें जो आदर्श बताया है, वैसा पुत्र उत्पन्न करना वैदिक धर्मियोंके सामने आदर्श रूपमें सदा रहताही है। तथापि इस सूक्तमें निम्नलिखित गुण पुत्रके अन्दर हो ऐसा विशेष रूपसे कहा है—

१ मदेन इषितः- अनन्दसे इच्छा करने योग्य, जिसके गुणोंसे आनन्द होगा, ऐसे गुणोंवाला,

२ मदः- आनन्द देनेवाला,

३ उग्रः- उग्र शूर वीर, प्रभावी, पराक्रमी,

४ उग्रेण शवसा युक्तः- प्रभावी बलसे युक्त, विशेष शक्तिमान्,

५ विश्वेषां तरुतारं- सब शत्रुओंका नाश करनेवाला, शत्रुओंके पार ले जानेवाला, शत्रुओंसे पार करनेवाला,

६ मदच्युतं- शत्रुओंके गर्वका नाश करनेवाला, शत्रुको परास्त करतेवाला। (मं. २१)

ऐसा पुत्र इन्द्रकी उपासनासे मिलता है, ऐसा २१ वें मंत्रमें कहा है। इन्द्रके पूर्वोक्त गुणोंका मनन जो स्त्री और पुरुष करेंगे उनकी ऐसा पुत्र होगा इसमें कोई आश्चर्यही नहीं है। वैदिकधर्मी स्त्रीपुरुष अपना पुत्र इन गुणोंसे युक्त हो, ऐसा मनका निर्धार करें, मनमें यह बात सदा रखें।

धूमनेवाले कीले

इस सूक्तके २८ वें मंत्रमें 'चरिण्यु पूः' (धूमनेवाला कीला) वर्णनमें आया है। ये कीले लोहेके होते थे, ऐसा अन्यत्र वर्णन है।

हत्वी दत्त्यून् पुर आयसीर्नि तारीत्। (ऋ. २।२.०।८)
इन्द्रने शत्रुओंका पराभव किया और उन लोहेके कीलोंको तोड़ दिया। 'शतं पूर्भिणायसीभिः नि पाहि।' (ऋ. ७।३।७) सैकड़ों लोहेके कीलोंसे मेरा संरक्षण करो ऐसे मंत्रोंमें सैकड़ों लोहेके कीलोंका वर्णन है। यदि ये लोहेके कीले धूमनेवाले होंगे, तो निःसंदेह रथ जैसेही होंगे। आवश्यकता-नुसार छोटे अथवा बड़े भी हो सकते हैं। ये युद्धोंमें तोड़े जाते हैं, और सैकड़ोंकी संख्यामें रहते हैं और सैकड़ों तोड़े भी जाते हैं।

आजकलके टैंक (Tanks) जैसे ये प्रतीत हो रहे हैं। 'आयसीः पूः' का अर्थ लोहेका कीला, पथरका कीला, ऐसा दो प्रकारका है, पर जो धूमनेवाला होगा वह तो लोहेका होनाही सुनिश्चित है।

तरह धोयी जाती है। जितनी अधिक धोयी जाय उतनी क अच्छी समझी जाती है। पर इससे यह सिद्ध नहीं हो पा कि सोम भंगके समान नशा बढानेवाला है। केवल क उत्साह बढाता होगा। चाय, कॉफी ये पेय केवल उत्साह हैं, इसलिये ये नशा करते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता, तरह सोमके विषयमें समझना योग्य है देखिये—

१. परिष्कृतस्य रसिनः आसुतिः चारु मदाय ते—अनेक संस्कार किये सोमरसका शुद्ध (आमव) पानेसे आनंद देता है। यहां 'मद' पद है। इसके आनंद, प्रह और उन्माद (नशा) ऐसे अर्थ हैं। हमारे मतसे यहां प्रह रूप आनन्द अर्थ लेना योग्य है। मद्यका नशा वा भंगका नशा यहां अपेक्षित नहीं है। जबतक नशा के होश होनेका स्पष्ट वर्णन न हो, तबतक हमें 'मद' अर्थ आनंद और उत्साहवादी करना उचित है।

पितासे माताकी अधिक योग्यता

इष्ट मन्त्रमें पिता और माताकी तुलना इन्द्रके साथ की है। मन्त्र ऐसा है—

मे पितुः (त्वं) वस्यान् असि ।

मे माता (त्वं) च समौ । (मं. ६)

मेरे पितासे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है, पर मेरी माताके साथ इन्द्र भी है। 'इससे पितासे माताकी योग्यता अधिक है यह होता है। पितासे इन्द्र श्रेष्ठ है और माताके बराबर है, पितासे माता अधिक श्रेष्ठ है। (अमुजतः आतुः गान्। मं. ६) स्वयं भोग न भोगते हुए पालन करने-भाईसे भी माता और इन्द्र श्रेष्ठ है, इसमें संदेह ही नहीं है, जो भाई भोजन भी न देता हो उस की योग्यता तो सब से निम्न ही है।

अस्थि जोड़ना

अस्थि और रंधिको दवायोग्य रीतिसे जोड़नेकी विद्याका त मंत्र १२ में स्पष्ट है। (Bone setter) रीति जोड़ने विद्या वैदिक समयमें उच्च स्थितिमें थी, यह बात इस से स्पष्ट प्रतीत होती है। बिना साधनोंके रंधिको जोड़ा रंधिको दवायोग्य संतुष्ट किया जाता था, यह बात यहां से है।

सोमकी तीन जातियाँ

(मदिन्तमः) अत्यंत आनन्द बढानेवाला सोम, (मदः) आनंद देनेवाला, ऐसे प्रयोग वेदमें सोमके विषयमें मिलते हैं। 'मदः, मदिन्तरः, मदिन्तमः' ये पद सोमके 'मद' में तीन प्रकार हैं इसकी सिद्धता करते हैं। केवल 'मदिन्तमः' पदही तीन प्रकारोंका बोधक है। इसलिए सोममें कमसे कम तीन प्रकारके सोम तो अवश्यही होंगे, अथवा तीन प्रकारके संस्कार करनेसे उसमें तीन भेद होते होंगे। आधुनिक वैद्यक ग्रंथोंमें २४ भेद सोमके कहे हैं। पर यहां 'मदिन्तम' पदसे आनन्दवर्धक होनेमें जो न्यूनता वा अधिकता है उससे उत्पन्न हुए ये भेद हैं।

इन्द्रके घोड़े

इन्द्रके रथकी दो घोड़े (हरी) जाते जाते थे (मं. २५)। परंतु सहस्रो घोड़े उनके पास होनेका वर्णन मंत्र २४ में है। इन्द्रके पास अश्वशालामें सहस्रो घोड़े होंगे। परंतु एक समयमें उनके रथकी दोही घोड़े जाते जाते होंगे। रथकी एक, दो, तीन, चार, पांच और सात तक घोड़े जाते जानकी संभावना है। चार तक घोड़े आजभी जाते हैं।

इन्द्रका मोल

पयस मंत्रमें 'शुल्क लेकर भी इन्द्रकी मैं नहीं दूंगा' ऐसा एक भक्तका वचन है। देखिये—

त्वां महे शुल्काय न परा देयाम् ।

शताय, सप्तमाय, अयुताय, च न परा देयाम् ।

(मं. ५)

'हे इन्द्र ! तुझे मैं बड़े मूल्यने भी नहीं दूंगा, नहीं बेचूंगा। सौ, सहाय और दस सहस्र मूल्य मिलनेपर भी मैं नहीं दूँ करूँगा, नहीं बेचूँगा।' इस मंत्रमें 'शुल्काय न परा देयां' ऐसे पद हैं। मूल्यके लिये भी नहीं दूँगा, दमर' अर्थ बेचना ही प्रतीत होता है। इस पर साधन भगवद् देम है।

महे महते शुल्काय मूल्याय न परा देयाम् ।

न विप्र्रीणानि । (स. भा. ५५ ८।१.५)

'बड़ा मूल्य मिलनेपर भी मैं तुझे नहीं बेचूँगा' (I would not sell thee for a mighty price (विप्र्री, विप्र्रीणानि) परा वा 'धन' का अर्थ बेचना है और देन 'प्राप्त' करना भी है। शुल्क लेकर इन्द्रकी दूँ करनेपर भगवद् दमर' है।

कितनी भी धनकी लालच मिला, तो भी मैं इन्द्रकी भक्ति नहीं छोड़ूंगा, यह आशय हमारे मतसे यहां स्पष्ट है । कितना भी धन मिले, परंतु मैं इन्द्रकीहि भक्ति करूंगा । यह भक्ति की दृढता यहां बतायी है ।

परंतु कई लोग यहां ' इन्द्रको बेचने ' की कल्पना करते हैं । इन्द्रकी मूर्तियां थीं, ऐसा इनका मत है और वे मूर्तियां कुछ द्रव्य लेकर बेची जाती थी, ऐसा इस मंत्रसे ये मानते हैं ।

मंत्रोंके शब्दोंसे यह भाव उपकृत सकता है, इसमें संदेह नहीं है । ' शुल्काय न परा देयां ' मूल्य मिलनेपर भी मैं नहीं बेचूंगा । ' शुल्क ' का अर्थ वस्तुमूल्य है । यदि यह बात मानी जायगी, तो देवताओंकी मूर्तियां थीं और उनकी पूजा और उनके जलूस होते थे, ऐसा मानना पड़ेगा । इस मतकी पुष्टिके लिये इन्द्रका रथमें बैठना, वस्त्र पहनना, यज्ञस्थानपर जाना, आदि मंत्रोंका वर्णन उत्सव मूर्तिके जलूस जैसा मानना पड़ेगा । अमिके रथमें बैठकर अन्य देव आते हैं, यह भी वर्णन जलूसका होगा । क्योंकि देवताओंकी छोटी छोटी मूर्तियां होंगी, तोही रथमें सब देवोंका बैठना संभव है ।

हमारे मतसे यह वर्णन आध्यात्मिक है । शरीररूपी रथमें सब देवताएं बैठींही हैं । पाठक योग्य और आयोग्यका विचार करें, इसलिये सब मत यहां पाठकोंके सम्मुख रखे हैं ।

इस सूक्तके ऋषि

इस सूक्तके ऋषि निम्न लिखित हैं—

मंत्र १-२ घोर ऋषिका पुत्र प्रगाथ ऋषि, जो कण्वका

दशक पुत्र बन गया था ।

मं० ३-२९ कण्व गोत्रमें उत्पन्न मेधातिथि और

मं० ३०-३३ प्रायोगीस पुत्र आसंग राजपुत्र

मं० ३४ आंगिरा ऋषिकी कन्या आसंगकी माता

स्त्री ऋषिका ।

' मेधातिथि ' ऋषिका नाम मं० ३० में आया है ।

' प्रायोगि आसंग ' नाम मं० ३३ में आया है ।

' आसंग ' का नाम मं० ३२ में भी है ।

' शश्वती ' का नाम मंत्र ३४ में है ।

' कण्व ' का नाम मंत्र ८ में है ।

हीन मानव

मंत्र १३ में ' निष्ठ्याः ' और ' अरणाः ' वे .. अन्त्यज हीन लोगोंके वाचक पद हैं । जो नीचे बैठनेकारी वह ' नि-स्थ्य ' (निष्ठ्य) और जो अधोगतिके हैं वह ' अरण ' है ।

आसंगकी कथा

इस सूक्तका ३४ वां मंत्र देखने योग्य है । शश्वती धर्मपत्नी है । आसंग प्रायोग राजाका राजपुत्र है । पुरुषत्व नष्ट हुआ था, अनेक उपायोंसे वह उबरकर हुआ । यह भाव इस मंत्रमें है, ऐसा कईयोंका कथन है । स्त्री बना था, वह किर पुरुष बना, ऐसा कईयोंका मत (देखो ऋ. ८।३३।१९)

(१४) वीरका काव्य

(क. मं. ८।२) १-४० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः, ४१-४२ मेधातिथिः काण्वः ।

इन्द्रः, ४१-४२ विभिन्दुः । गायत्री, २८ अनुष्टुप् ।

इदं वसो सुतमन्धः पिवा सुपूर्णमुदरम्
नृभिर्धृतः सुतो अश्वैरव्यो वारैः परिपूतः
तं ते यवं यथा गोभिः खादुमकर्म श्रीणन्तः
इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः
न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृपा उरुव्यचसम्

। अनाभयिन्नरिमा ते
। अश्वो न निको नदीषु
। इन्द्र त्वास्मिन्सधमादे
। अन्तर्देवान्मर्त्याश्च
। अपस्पृण्वते सुहार्दम्

१
२
३
४
५

| | | |
|--|----------------------------|----|
| गोभिर्द्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न वा मृगयन्ते | । अभितसरन्ति धेनुभिः | ६ |
| त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य | । स्वे क्षये सुतपात्रः | ७ |
| त्रयः कोशास्तः श्रोतन्ति तिस्रश्चम्वरः सुपूर्णाः | । समाने आधि भार्मन् | ८ |
| शुचिरसि पुरनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः | । दध्मा मन्दिष्ठः शूरस्य | ९ |
| इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा तस्मे सुतासः | । शुक्रा आशिरं याचन्ते | १० |
| तां आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि | । रेवन्तं हि त्वा शृणोमि | ११ |
| हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् | । ऊर्ध्वं नश्रा जरन्ते | १२ |
| रेवां इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः | । प्रेदु हरिवः धृतस्य | १३ |
| उक्थं च न शस्यमानमगोररिरा चिकेत | । न गायत्रं गीयमानं | १४ |
| मा न इन्द्र पीयल्लवे मा शर्धते परा दाः | । शिक्षा शचीवः शचीभिः | १५ |
| वयमु त्वा तदिदृथा इन्द्र त्वायन्तः सखायः | । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते | १६ |
| न धेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ | । तवेदु स्तोमं चिकेत | १७ |
| इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति | । यन्ति प्रमादमतन्द्राः | १८ |
| ओ पु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्यरस्मान् | । महाँइव युवजानिः | १९ |
| मो एवँध दुर्हणावान्त्सायं वरदारे अस्वत् | । अश्वीरइव जामाता | २० |
| विन्ना ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् | । त्रिपु जातस्य मनांसि | २१ |
| आ तू पिञ्च कण्वमन्तं न प्रा विञ्च शवसानात् | । यशस्तरं शतमूतेः | २२ |
| ज्येष्ठेन सौतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय | । भरा पिबन्नर्याय | २३ |
| यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः | । वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् | २४ |
| पत्यंपन्यमित्तोतार आ धावत मधाय | । सोमं वीराय शूराय | २५ |
| पाता वृत्रहा सुतमा प्रा गमन्नारे अस्वत् | । नि यमते शतमूतिः | २६ |
| एह हरी ब्रह्मयुजा शम्भा वक्षतः सखायम् | । गीर्भिः धृतं निर्वणसम् | २७ |

त्वादवः सोमा वा याहि ध्रीताः सोमा आ याहि ।

शिप्रिन्नृपीवः शचीवो नायमच्छा सधमादयम् २८

| | | |
|--|-------------------------|----|
| स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय | । इन्द्र कारिणं वृधन्तः | २९ |
| गिरश्च यास्ते निर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि | । सत्रा दधिरे शवांसि | ३० |
| पयेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः | । सनादमृको दयते | ३१ |
| हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः | । महान्महीभिः शचीभिः | ३२ |
| यस्मिन्विश्वार्धर्षणय उत च्यौता अयांसि च | । अनु धेन्मन्दी मघोनः | ३३ |
| एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे | । वाजदावा मघोनाम् | ३४ |
| प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाधिषमवति | । इनो वसु स हि वोढ्हा | ३५ |
| सनिता विशो अर्वाङ्गिहन्ता वृत्रं नृभिः शूरः | । सत्योऽविता विधन्तम् | ३६ |
| यजध्वेनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा | । यो भूत्सोमैः सत्यमहा | ३७ |
| गाधध्वसं सत्याति धवस्कामं पुरुमानम् | । वण्दास्तो गान वाजिनम् | ३८ |
| य कृते चिदास्पदेभ्यो दास्तसा नुन्यः शचीवान् | । ये अस्मिन्नाममधियन् | ३९ |
| इथा धीयन्तमद्रिचः काप्वं मेभ्यानिधिम् | । मेघो भूतोऽभि दस्यः | ४० |

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्
उत सु त्वे पयोवृद्धा माकी रणस्य नन्त्या

। अष्टा परा सहस्रा ३१
। जनित्वनाय मामहे ३२

अन्वयः— [मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्च आक्षिप्तः]— ते वयो ! इदं अन्तः सुतं सुपूर्णं उदरं पिब ।

ते ररिम ॥१॥ नदीषु निक्तः अश्वः न, नृभिः भूतः, अश्वैः सुतः, वन्यः चारैः परिभूतः ॥२॥ हे इन्द्र ! ते कं, गोभिः श्रीणन्तः स्वाहुं अकर्म, अस्मिन् सधमादे त्वा (पान् आह्वयामः) ॥३॥ इन्द्रः इत् एकः मर्यात् देवत इन्द्रः विश्वायुः सोमपाः सुतपाः ॥४॥ उरुव्यचसं सुहादं ये शुक्रः न अप स्पृण्वते, दुराजीः न, वृषाः न ॥५॥ अन्ये इं गोभिः मृगयन्ते, घाः मृगं न, (ये च) धेनुभिः अभियसरन्ति ॥६॥ सुतपामः देवस्य इन्द्रस्य स्वे ध्वे सुतासः सन्तु ॥७॥ त्रयः कौशासः चोतन्ति । तिस्रः चम्बः सुपूर्णाः, समाने भामेनू अधि ॥८॥ (हे सोम !) असि, पुरुनिष्ठाः, मध्यतः क्षीरैः दध्ना (च) आदीर्तः, दूरस्य मन्दिष्टः (भव) ॥९॥ हे इन्द्र ! ते इमे सोमः सुतासः शुक्राः अस्मे आक्षिप्तं याचन्ते ॥१०॥ हे इन्द्र ! तान् आक्षिप्तं श्रीणीहि । पुरोक्षातं इमं सोमं (हे सोम !) रेवन्तं शृणोमि ॥११॥ सुरायां दुर्मदासः न युध्यन्ते, पीतासः ह्यसु (युध्यन्ते) . नम्रा, उधः न जरन्ते ॥१२॥ हे रेवतः स्तोता रेवान् इत् स्यात् । त्वावतः मघोनः श्रुतस्य प्र इत् उ (स्यात्) ॥१३॥ अगोः अरिः, शस्यमान आ चिकेत । गीयमानं गायत्रं न ॥१४॥ हे इन्द्र ! पीयत्नवे नः मा परा दाः । शर्पते (च) मा (परा दाः) हे शचीभिः शिक्ष ॥१५॥ हे इन्द्र ! त्वायन्तः वयं सखायः तदिदं कणाः उक्थेभिः त्वा जरन्ते ॥१६॥ हे वज्रि ! तव नविष्टौ अन्यत् न व इं आ पपन । तव इत् उ स्तोमं चिकेत ॥१७॥ देवाः सुन्वन्तं दृच्छन्ति, स्वप्नाय न अतन्द्राः प्रमादं यन्ति ॥१८॥ वाजेभिः अस्मान् अभि सु प्र ओ याहि । मा दृणीयाः । युवजानिः महान् इव ॥१९॥ पावान् अस्मद् आरे (आगच्छतु) । सायं सु मो करत् । अश्वीरः जामाता इव ॥२०॥ अस्य वीरस्य भूरिदासी विभ्र हि । त्रिषु जातस्य मनोसि (विभ्र) ॥२१॥ कण्वमन्तं तु मा सिंच । शवसानात् शतमूतेः यशस्तरं न व वि हे सोतः ! वीराय नर्याय शक्राय इन्द्राय ज्येष्ठेन सोमं भर पिबत् ॥२३॥ यः अव्यधिषु वेदिष्टः जरितृभ्यः स्तोत्रं वन्तं गोमन्तं वाजं (ददाति) ॥२४॥ हे सोतारः ! मघाय वीराय दूराय पन्यं पन्यं इत् आं धावत ॥२५॥ वृत्रहा आ गमत् व । अस्मत् आरे शतमूतिः नियमते ॥२६॥ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी इह गीभिः श्रुतं निर्वाणसं वक्षतः ॥२७॥ हे शिमिन् ! हे ऋषिबः शचीवः ! सोमाः स्वादवः । आ याहि । सोमाः श्रीताः आ याहि । न सधमादं अच्छ ॥२८॥ हे इन्द्र ! कारणं वृधन्तः स्तुतः, याः (स्तुतयः) च, त्वा महे राधसे नृन्माय वर्धन्ति गिर्वाहः । ते गिरः याः च उक्था तुभ्यं च तानि सत्रा शवांसि दधिरे ॥३०॥ एषः एव तुविकृमिः इत्, एकः सनात् अमृक्तः वाजान् दयते ॥३१॥ इन्द्रः दक्षिणेन वृत्रं हन्ता, पुरु पुरुहूतः महीभिः शचीभिः महान् ॥३२॥ चर्पणयः यस्मिन्, उत च्यौत्ना ज्रयांसि, मघोनः अनुमंदी व इत् च ॥३३॥ एषः इन्द्रः एतानि विश्वा चकार । वाजदावा यः अति शृण्वे ॥३४॥ प्रभर्ता गव्यन्तं रथं यं अपाकात् चित् अवति, स इतः वसु वोक्छा हि ॥३५॥ अर्वन्निः सनिता, दूरः नृभिः वृत्रं हन्ता, सत्यः विधन्तं अविता ॥३६॥ हे प्रियमेधाः ! सत्राचा मनसा एनं इन्द्रं सोमैः सत्यमद्वा भूत् ॥३७॥ हे कण्वासः ! गायश्रवसं सत्यं श्रवस्कामं पुरुस्मानं वाजिनं गात ॥३८॥ पदेभ्यः कृते यः शचीवान् सखा नृभ्यः गाः दान्, ये अस्मिन् कामं अश्रियन् ॥३९॥ हे आद्रिचः ! इत्या धीवन्तं काण्वं मेधातिथिं भूतः अभि यन् अयः ॥४०॥

[मेधातिथिः काण्वः]— हे विभिन्दो ! अस्मै चत्वारि अयुता शिक्ष, परः अष्ट सहस्रा ददत् ॥४१॥ उत सु त्वे माकी रणस्य नन्त्या जनित्वनाय मामहे ॥४२॥

अर्थ— [कण्वपुत्र मेधातिथि और अक्षिरापुत्र प्रियमेध ये दो ऋषि]— हे सबके निवास करानेवाले वीर ! इस पेट भरकर पान करो । हे न डरनेवाले वीर । तुम्हें (हम सोमरस) देते हैं ॥१॥ नदियोंमें नहाये नेत्राश्रोंद्वारा धोया गया, पन्थरोंसे (कूटकर) निचोड़ा, मेढीके बालों (के बने कम्बलसे) छाना यह सोम ।

द हुआ है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये इस (सोमको), जौ की तरह, गौओंका (दूध) मिलाकर मीठा बनाया है, लिये) इस साथ (साथ बैठकर) पान करनेके स्थानमें (रसपानके लिये तुम्हें बुलाता हूँ) ॥३॥ इन्द्र ही सबेला में और देवोंके मध्यमें प्रभु है, जो सब आयु भर प्रथम सोमपान करनेका अर्थात् सोमरसका अधिकारी है ॥४॥ व्यापक उत्तम हृदयवाले जिस (इन्द्र) को वीर्यवर्धक (सोम कभी) अप्रसन्न नहीं करता, दुर्लभ (पदार्थों) को कर किया सोम और पुरोडाश भी उसको कभी अप्रसन्न नहीं करते ॥५॥ जो हमसे भिन्न लोग हैं, वे इस (इन्द्र) को (का दूध मिलाये सोमरस) के साथ दृढ़ते हैं, जैसे व्याध हिरनको दृढ़ते हैं, (तथा और कोई) गौओंके (दूध पर उसके पास) जाते हैं ॥६॥ सोमरसका पान करनेवाले इन्द्र देवके अपने स्थानमें ये तीनों सोमरस (प्रातः दोपहर सायंकाल) निचोड़कर (तैयार हुए ये उनके लिये ही) हों ॥७॥ ये तीन कोश (सोमरसको) सब रहे हैं । तीन (सोमरससे) भरपूर भरे हैं, (यह सब) सन्तान पान-स्थानमें (तैयार रक्ता है) ॥८॥ (यह सोमरस) पवित्र कि पात्रोंमें रखा है और इसके बीचमें दूध और दही मिला दिया है । (यह रस) शूरको आनन्द देनेवाला (हो) है इन्द्र ! तुम्हारे लिये ये सोमरस तीव्र हैं, रस निकालनेपर शुद्ध किये (ये रस) हमारे पाससे दूध आदि मिलाने की प्रेरणा करते हैं ॥९॥ हे इन्द्र ! उन (सोमरसोंमें) दूध आदि मिलाओ । पुरोडाश और इस सोमको (साथ) मिलाकर सेवन करो । दू धनसंपन्न (है ऐसा मैं) सुनता हूँ ॥१०॥ सुरापान करनेपर जिस तरह दुष्ट नशासे (हुए) लोग जगत्में लड़ते हैं, उसी तरह ये सोमरस (पीनेवालेके) हृदय-स्थानोंमें (ही) युद्ध करते हैं, अर्थात् दबाते हैं, वतः) स्तोता लोग, गौके स्तनोंके समान, (तेरी सोमपानके बाद) प्रशंसा करते हैं, ॥११॥ हे उत्तम से युक्त वीर ! धनवान्की प्रशंसा करनेवाला धनवान् ही हो जाता है । (इसी नियमके अनुसार) तुम्हारे जैसे दू और बहुशुक्का (मित्र तुम्हारे जैसा ही होगा) यह निःसंदेह ही है ॥१२॥ अमक्तका शत्रु (इन्द्र है जो) गाया गला काव्य जानता ही है, तथा गाया जानेवाला गायत्र गान तत्काल ही (जानता है) ॥१३॥ हे इन्द्र ! घातक ! पास हमें न छोड़ना । हितकरके हाथमें भी (हमें न देना) । हे समर्थ वीर ! अपनी शक्तियोंसे (हमें योग्य) बता कर ॥१४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रीतिकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे मित्र तुम्हारीहि कामना करते हुए कण्व गोत्रमें । हम ऋषि स्तोत्रोंसे तुम्हारा ही यज्ञ गाते हैं ॥१५॥ हे वज्रधारी वीर ! कर्मप्रवीण तुम्हारे जैसेके यज्ञमें हम दूसरे (स्तोत्र) को नहीं कहेंगे । केवल तुम्हारे ही स्तोत्रको हम जानते हैं ॥१६॥ देवता कर्मशील मानवको ही चाहते सुस्तको चाहते नहीं । बालस्वरहित (कर्मशील मनुष्य) विदोष मानन्दको प्राप्त करते हैं ॥१७॥ अज्ञोंके साथ हमारे कामो । संकोच न करो । जिस तरह तरुण स्त्रीका पति बड़ा वीर (तरुणके पास जाता है, वैसे ही तुम निःसंकोच हो ते पास कामो) ॥१८॥ शत्रुओंको क्षत होनेवाला वीर हमारे पास (आवे । बुलानेपर) सायंकाल न करे । जिस निर्धन दामाद (समग्र नहीं खाता, बैठा न करे) ॥१९॥ इस वीरकी बहुत धन देनेवाली उत्तम बुद्धिको हम ते हैं । तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध (इस वीरके) मनोभावोंको (हम जानते हैं) ॥२०॥ कण्व जिसकी (भक्ति करते हैं, वीरके लिये) सोमरस दो । दलवान् और सैकड़ों प्रकारोंसे रक्षा करनेवाले (इन्द्रसे) अधिक यशस्वी वीरको हम ते ही नहीं ॥२१॥ हे सोमरस निकालनेवाले ! वीर, मानवोंके हितकारी, समर्थ इन्द्रके लिये प्रथम सोम दो, वह न पीवे ॥२२॥ जो कष्ट न देनेवालोंमें (अच्छे मानवोंको) जानता है, तथा वह उपालना और प्रार्थना करनेवालोंको में और गौओंसे युक्त ब्रह्म (देता है) ॥२३॥ हे सोमरस निचोड़नेवालो ! आनन्दित होनेवाले शूर वीर (इन्द्र) के । स्तुतियोग्य सोमरस बारंबार दो ॥२४॥ सोमका रक्षक और वृत्रका नाशक (इन्द्र) यहां आ जावे । ते पास (आकर) सैकड़ों रीतियोंसे सुरक्षा करनेवाले (इन्द्र) शत्रुओंको अपने अधीन करे ॥२५॥ कि साथ जाते जानेवाले सुखदायी दोनों धोड़े चर्हीं मंत्रोंद्वारा प्रशंसित मित्र इन्द्रको ले आवें ॥२६॥ मेरुस्थानधारी वीर ! हे ऋषियोंके साथ रहनेवाले शक्तिवाले वीर (इन्द्र) ! ये सोमरस मधुर हैं । कामो । सोम दूध आदिमें मिलाये हैं । कामो । कभी यह (स्तोता) साथ साथ रसपान करनेके स्थानमें मनीष (रह कर स्तुति पाते हैं) ॥२७॥ हे इन्द्र ! (तुम जैसे) कारीगरके घनका वर्धन करनेवाले ये स्तोता और उनकी स्तुतियाँ, तुम्हें

मझे भजने लिये और बलने लिये मराने हैं ॥३२॥ हे मृग-प्राण वीर ! तुझसे लिये जो रसोत्तम चरु ॥
ही उन (प्रमत्तनीय तथा मृगदन्तेरी) मांस मृदनेवाले बलीको प्राण्य करने दे ॥३३॥ वन (इन्द्र)
कमोको करनेवाला है, वह एकही वनवासी और मराने समर्थ है, वही बलीको देना दे ॥३४॥ इन्द्रने लिये
वृत्रका वध किया है, वह अनेक स्थानोंपर बहुत बार वृत्रका नाश है । वह मराने क्षत्रियोंके प्राण्य करनेकी
॥३२॥ सारी प्रजाएं जिसके अधीन रहती हैं, जिसमें सब मानवों ने जोर दिया है, वही भजना
(सरकारमें) अनुमोदन करता है ॥३३॥ इन्द्रा इन्द्रने ने मांस (वध) करने दे । वही मराने
और वही समस्त विभुत है ॥३४॥ (मरका) भक्षण योग्य करनेवाला (वन इन्द्र) मोर्छोंकी इच्छा
(भक्षक) जो अपवित्र वस्तुसे भी बचता है, वह (मरका) मराने भजने दोकर (भक्षक) देना है
ज्ञानी, घोड़ोंसे (जहाँ चाहिये वहाँ) जानेवाला, शूर, वीरोंके साथ (मृदनेवाला), वृत्रका वध करनेवाला,
(इन्द्र) कर्म करनेवालोंका संरक्षक है ॥३५॥ हे विमोह करि ! एकत्र मनसे दण्ड इन्द्रके लिये वध करो
रस (प्राप्त करके) सत्य भानन्द देनेवाला होता है ॥३६॥ हे कर्ण ! मायाओंमें जिसका मन वर्णन किया
रक्षक, यदाके इच्छुक, अनेक स्थानोंमें रहनेवाले, बलवान् इन्द्रका (काय) साथी ॥३७॥ सर्वत्र विद्वान्
जिस सामर्थ्यवान् मित्र (इन्द्रने) मनुष्योंको (द्रष्टव्य उनकी) गीतें वापस कर दी, उन लोगोंने उसी
सब कामनाओंको प्राप्त किया ॥३९॥ हे पर्यन्त पर (के कीलेमें) मृदनेवाले वीर ! इस तरह बुद्धिमान् कर्म
तिथिके पास मेपके रूपसे आगे हो कर गया था ॥४०॥

[कण्वका पुत्र मेधातिथि ऋषि]- हे विभिन्दु ! (हे राजन् !) दण्ड (कृषि) की तुझने आश्रीय हस्तर
पश्चात् आठ हजार और दिया ॥४१॥ अतः उन (गीमें) वृषकी वृद्धि करनेवाली, (जन) निर्माण करने
बढानेवाली (दोनों धावा-पृथिवीकी) प्रजजनने लिये हम ग्रन्थना करने हैं ॥४२॥

इन्द्रका सामर्थ्य

इस सूक्तमें पुनः इन्द्रके प्रचण्ड सामर्थ्यका वर्णन किया है,
पाठक इसका अर्थ विचार करें—

- १ वसु- सबका निवास करनेवाला,
- २ अनाभय- (अन्-आ-भयिन्) निर्मय, भयरहित,
(मंत्र १)
- ३ मर्त्यान् देवान् अन्तः इन्द्रः- मानवों और देवोंका
प्रभु,
- ४ विश्वायुः- सब आयु, सब मानव जिसमें हैं, सर्वदा,
(मं. ४)
- ५ उरुव्यचाः- अत्यन्त व्यापक, विशेष विस्तार, सर्वत्र
व्यापक (मं. ५)
- ६ सुहार्दः- उत्तम हृदयवाला, मनसे कोमल, सहायभूति
रखनेवाला, (मं. ५)
- ७ शुचिः- पवित्र, (मं. ९)
- ८ हरिवः- घोड़े जिसके पास हैं, (मं. १३)
- ९ अगोः अरिः- ज्ञानहीनका शत्रु, प्रगति न करनेवालेका

शत्रु, (मं. १४)

- १० शर्चीयः- सामर्थ्यवान्, (मं. १५)
- ११ दुर्धनावान्- जिसका हमला भयंकर होता
(रमनेवाला), (मं. २१)
- १२ भुरिदायरीं नुमति- बड़े दान क
(मं. २१)
- १३ शयसानः- बलवान्,
- १४ शतः ऊतिः- सैकड़ों सामर्थ्योंसे संरक्षण
(मं. २२)
- १५ वीरः- शूर वीर,
- १६ नर्यः- मानवोंका हित करनेवाला, जनता
करनेकी इच्छावाला,
- १७ शत्रुः- समर्थ, सामर्थ्यवान्, (मं. २३)
- १८ मयः वीरः शूरः- आनन्दित शूर वीर ।
का अर्थ आनन्द देनेवाला अथवा आनन्दयुक्त है ।
लिया जाय तो ' मय ' (शराव) अर्थ होगा
वनेगा । पाठक इस अर्थका स्मरण रखें । (मं. २४)
- १९ पाता- संरक्षण करनेवाला,

सोमरस पीया नहीं जाता, क्योंकि वह गडा तीखा रहता है । यह हृदयमें उत्साह उत्पन्न करता है ।

क्या सोमपानसे नशा होती है ?

इस सूक्तसे पता चलता है कि पेटभर पीनेसेभी नशा नहीं होती । सोमरस पेटभर पीयाही जाता था । पेटभर जो रस पीया जाता था, वह नशा करनेवाला नहीं हो सकता । इस निष्पत्ति में वेदका मंत्रही देखिये—

(१) हृत्सु पीतासो युध्यन्ते

(२) दुर्मदासो न सुरायाम् ।

(३) ऊर्ध्वं नम्रा जरन्ते ॥ (ऋ. ८।२।१२)

१ (पीतासः) पीये हुए सोमरस (हृत्सु) हृदय-स्थानोंमें (युध्यन्ते) स्पर्धा करते हैं, हलचल करते हैं, उत्साह उत्पन्न करते हैं । यह हृदय-स्थानमें होनेवाला विचारोंका युद्ध है, इसको (सुमदासः) उत्तम आनन्द और उत्साहका संवर्धन कह सकते हैं ।

२ (सुरायां) सुरा पीकर (दुर्मदासः) दुष्ट नशासे भ्रान्त बने हुए लोग (न) जैसे जगत्में आपसमें परस्पर लड़ते हैं, [वैसा सोमपानसे नहीं होता, क्योंकि सोमरस हृदयस्थानमेंही विचारोंका युद्ध करते रहते हैं ।]

३ (न-म्राः) स्त्रियोंके साथ संबंध न रखनेवाले ब्रह्मचारी, अथवा (नम्राः—नजति इति) उपासक भक्त स्तोता (ऊर्ध्वः न) जिस तरह गौके दूधकी (जरन्ते) प्रशंसा करते हैं, [वैसे ही वे सोमरसकी तथा सोमरस पीनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं ।]

यहां सोमरस पेटभर पीनेसे मनमें उत्साहकी ऊर्मियां खलबली मचाते हैं, विचारोंमें युद्ध उत्पन्न करते हैं, यह सब विचार के क्षेत्रमेंही होता है, ऐसा कहा है । इसके विरुद्ध सुरापानकी स्थिति है । सुरापानसे ' दुर्मद ' (बुरी नशा) उत्पन्न होती है और उस बेहोशीमें जगत्में युद्ध होते हैं । सुरापानका युद्ध नशाका, ' दुर्मद ' अवस्थाका जगत्के बाह्य क्षेत्रमें है, और सोमपानसे होनेवाला युद्ध उत्तम उत्साहपूर्ण अवस्थामें होनेवाला हृदयके विचारोंके क्षेत्रमें है, यह दोनोंका भेद ध्यानमें धारण करना चाहिये । अब सुरापान और सोमपानके परिणामका विचार करना आवश्यक है—

सुरापानं

रम्यतः

सोमपानं

गुणितं

गुणितः

शुचिः

शुक्तः

मद्यः

मदः

मन्दितमः

सुरापान से मनुष्य ' दुर्मद ' होता है, दुष्ट-गुणत नशासे बेहोश होता है । इससे जो दुष्कृत्य हो सकें उनकी कल्पना पाठक कर सकते हैं ।

सोमपान से सुरार्थ उत्तम हृदय बनता है, गुणित उत्तम होती है, ' शुचिः ' शुचिता आती है, वीर्य यदि होती है, ' मद, मद्य मन्दितम ' आनन्द और विलक्षण स्फूर्ति होती है । इसके पीनेसे इन्द्रके पूर्व स्थानोंमें वर्णन किये हैं, वे शरीरमें संवर्धित होते हैं । एकही हाथसे शस्त्र फेंककर युद्धका वध करता है (मं. १) । सोमरस पेटभर पीया जाता है (मं. १) । वह प्रान्तों को करनेवाला एक उत्तम अन्न है, सुरा कदापि अन्न नहीं सकता । सोमपानसे शरीरका भरण पोषण हो सकता है । सुरापानसे नहीं होता । सोमपानसे संकटों कर्म करनेकी उत्पत्ति होती है, सुरापानसे बेहोशी और गलितगति होती है । पेटभर सोमपान करनेपर भी मनुष्य बेहोश नहीं परंतु उत्साहसे अपना कार्य ठीक तरह कर सकता है । तरह सोमपान और सुरापानके परिणाम परस्परविनिर्मुक्त । सोमपानकी ऋषिमुनि स्तुति करते हैं, वेदमें सर्वत्र प्रशंसा है, वैसी सुरापानकी कहीं भी प्रशंसा नहीं है ।

' मद ' के अर्थे कोशमें ये हैं—(१) मतवालापन, उन्माद, नशा, बेहोशी । (२) हाथीके गण्डस्थलसे रस । (३) प्रेम, प्रीति, गर्व, आनन्द, हर्ष, उत्साह । (४) कस्तूरी । (५) (पुरुषका) वीर्य । (६) मद्य, सोम । (७) वस्तु । (८) नदी, जल-प्रवाह । इन अर्थोंमें ' मद ' है । ' सुरा ' का परिणाम ' उन्मत्तता, उन्माद, नशा, बेहोशी ' है और ' सोम ' का परिणाम ' प्रेम, संतुष्टि और उत्साह ' है । पूर्वोक्त विवरणका तात्पर्य यह है ।

सोमरसके लिये ' आसुति ' कहा है । यदि इससे ' आसव ' माना जा सकता है, तब तो इसमें नशेके धर्म नहीं के बराबरही होना संभव है, क्योंकि सोमरस

वार निकाला जाता है और तीन बारही पीया जाता है। ये नशा उत्पन्न होनेवाली सदानसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु नहीं उत्पन्न हो सकती। यहां प्रश्न उत्पन्न हो सकता है। रावके समान नशावाली वस्तु इसमें न हो, पर भंग जैसी या नहीं? इस विषयमें बात यह है कि, वैसी भी नहीं, के भंग पीनेसे भी मनुष्य कर्तृत्ववान् नहीं होता, पर यहां शानसे कर्तृत्ववान् होता है। अतः सोमपानमें भंगके समान उत्पन्न नहीं होता।

‘मद, मद्य, प्रमद, संमद, मर्दितम’ इन पदोंमें ‘मद’ है और ‘दुर्मद’ में भी ‘मद’ है। मदका दुर्मद सुरा है। मद सुरा नहीं है, वह आनंद और उत्साहका है। पेटभर सोमरस पीनेपर भी ‘दुर्मद’ अवस्था नहीं, जो सुरापानसे और भंगपानसे होती है। यह बात ठीक समझमें आनेसे सोमपानकी निर्दोषता सिद्ध हो सकती है। ‘दुर्मद’ अवस्था सुरापानसे होती है, ऐसा कहा है और ‘मद’ ‘मर्दितम’ अवस्था आती है। ‘सु’ और ‘दुर’ इतनी फर्क है।

| | |
|---------|---------|
| सोम | सुरा |
| सुमद | दुर्मद |
| सुमति | दुर्मति |
| सुहार्द | दुहार्द |

नमें जमीन आसमानका अन्तर है। ‘सुमद, सुमति, सुहार्द’ इसके साथी हैं और ‘दुर्मद, दुर्मति, दुहार्द’ ये सुराके हैं। पेटभर सोमरस पीनेपर भी सुमति नहीं रहती और ई स्थिर रहता है, यह सोमरसकी महिमा है। सुराकी ते दुर्मतिसे स्पष्ट हो जाती है। जो लोग कहते हैं कि सोम-ने वैसाही नशा होती है जैसी सुरासे, उनको अपने पेश करने चाहिये। वीर इन्द्र दिनमें तीनवार पेटभर रस पीता है और बेहोशीका चिह्न उस पर दीखता नहीं। वह सुमतिपूर्वक सब कार्य करता रहता है। यह सोमका गुण है। इसीलिये सोमपान स्तुतिके योग्य माना गया है। ‘यद देगमेसेरी नशा की कल्पना जो करेंगे, वे फेंकेगें। कि सुमद-दुर्मदमें ‘मद’ है, पर ‘सुमद’ उपादेय है और ‘मद’ हान्य है।

यहां यही कहना योग्य नहीं है कि, जैसी शराब थोड़ी से बहुत बिगाड़ नहीं होता, परंतु अधिक लेनेसे सुबसान

होता है, वैसाही सोमरसका होगा। सोममें ‘दुर्मद’ होनेकी संभावनाही नहीं है। सोमरस तो पेटभर पीया जाता है, गौओंको खिलाया जाता है, पेटकी दोनों बाजूएं बाहरसे पूरी भरी दीखनेपर भी ‘दुर्मद’ अवस्था नहीं होती, यह सोमरसकी विशेषता है। सोमरस पेटभर पीनेपर भी सुमति स्थिर रहती है।

सोमरस अन्न होनेसे केवल सोमरस पीकर भी मनुष्य जीवित रह सकता है, वैसी केवल सुरा पीनेसेही मनुष्य जीवित नहीं रह सकेगा। केवल निरा सोमरस बहुत तीखा होनेके कारण पीना अशक्य है वैसीही सुरामी सर्वसाधारणके लिये केवल पीना अशक्य है। परंतु जो नशावान हैं, वेही केवल सुरा पी सकते हैं। सुरामें आम्लत्व रहता है, अतः उसमें दूध फट जायगा। सोममें वैसा नहीं होता। सोममें मिलाया दूध फटना नहीं, इसलिये सोमरसमें सुरापान नहीं है। और भंग जैसी मस्तिष्क बिगड़नेकी भी संभावना नहीं है। पेटभर भंग पीनेवालेके मस्तिष्क बिगड़े दीखते हैं। सोमरससे वैसा बिगाड़ नहीं होता।

सोमरसका विचार और आगे होगा। जैसे जैसे सूक्त हमारे सामने आ जायेंगे, वैसा वैसा सोमरसका स्वरूप हमारे सामने खुलता जायगा। अतः इस विषयमें हम जो विचार करेंगे, वह वेद मंत्रके प्रतीक सामने रखकरही करेंगे वैसा इस समय तक किया है।

दरिद्री दामाद

(अ-श्रीरः जामाता) निर्धन दामादका उदाहरण मंत्र २० में आया है। ‘जिसका हमला बड़ा भयानक होता है, वह वीर इन्द्र शीघ्र हमारे पास आ जावे, निर्धन दामादके समान वह बुलाया जानेपर भी सायंकाल करके न आवे।’ (मं. २०) ऐसा इस मंत्रका भाव है, श्रीमान् समुदायमें निर्धन दामाद दिनेक समय जाना नहीं चाहता। किसी उत्सवके समय जिस समय बहुत धनी लोगोंकी उपस्थिति होती है, उस समय निर्धन दामाद आना भी नहीं चाहता। वह लज्जित होता हुआ रात्रिके अंधेरेमें, छिप छिपके बुलावा आता है और एक घोर बैठता है। यह निर्धन दामादका जीवन बहुतही सुगर्ह, शर्मिले लोगोंको लज्जित है कि वे ऐसे निर्धन न हों। अपने वीर बने और सुकपूर्वक समुदायमें दिनेक समय जाने अतिशय शर्म

सोमरस पीया नहीं जाता, क्योंकि वह मद्य पीया नहीं दे।
यह हृदयमें उत्साह उत्पन्न करता है।

दुर्मदासः
सुमदासः

सोमरसः
सुमरः
सुमासः
सुमासः
सुमासः
सुमासः
सुमासः

क्या सोमपानसे नशा होती है ?

इस सूत्रमें पता चलता है कि पेटभर पीनेमेंही नशा नहीं होता। सोमरस पेटभर पीयाही जाता था। पेटभर जो मद्य पीया जाता था, वह नशा करनेवाला नहीं हो सकता। इस विषय में वेदना मंत्रही देखिये—

(१) हस्तु पीनामो सुष्यन्ते

(२) दुर्मदासो न सुरापाम्।

(३) ऊधर्नं नशा जरन्ते ॥ (अ. ८।२।१२)

१ (पीतासः) पीये हुए सोमरस (हस्तु) हृदय-स्थानोंमें (सुष्यन्ते) रप्रां करते हैं, हलचल करते हैं, उत्साह उत्पन्न करते हैं। यह हृदय-स्थानमें होनेवाला विचारोंका युद्ध है, इसको (सुमदासः) उत्तम आनन्द और उत्साहका संवर्धन कह सकते हैं।

२ (सुरायां) सुरा पीकर (दुर्मदासः) दुष्ट नशामें भ्रान्त बने हुए लोग (न) जैसे जगत्में आपसमें परस्पर लड़ते हैं, [वैसा सोमपानसे नहीं होता, क्योंकि सोमरस हृदयस्थानमें ही विचारोंका युद्ध करते रहते हैं]।

३ (न-माः) स्त्रियोंके साथ संबंध न रखनेवाले मन्त्राचार्य, अथवा (नमाः—नजति इति) उपासक भक्त रतोंता (ऊधः न) जिस तरह गौके दूधकी (जरन्ते) प्रशंसा करते हैं, [वैसी ही वे सोमरसकी तथा सोमरस पीनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं]।

यहां सोमरस पेटभर पीनेसे मनमें उत्साहकी कर्मियां खलवली मचाते हैं, विचारोंमें युद्ध उत्पन्न करते हैं, यह सब विचार के क्षेत्रमेंही होता है, ऐसा कहा है। इसके विरुद्ध सुरापानकी स्थिति है। सुरापानसे 'दुर्मद' (दुरी नशा) उत्पन्न होती है और उस बेहोशीमें जगत्में युद्ध होते हैं। सुरापानका युद्ध नशाका, 'दुर्मद' अवस्थाका जगत्के बाह्य क्षेत्रमें है, और सोमपानसे होनेवाला युद्ध उत्तम उत्साहपूर्ण अवस्थामें होनेवाला हृदयके विचारोंके क्षेत्रमें है, यह दोनोंका भेद ध्यानमें धारण करना चाहिये। अब सुरापान और सोमपानके परिणामका विचार करना आवश्यक है—

सुरापान से मनमें 'दुर्मद' होता है, जो युद्ध नशामें बेहोश होता है। इसमें जो सुरापान पीनेकी कल्पना पादक कर सकते हैं।

सोमपान से मनमें उत्तम उत्साह बनता है, जो नशा नहीं होता है, 'सुमरः' श्रुतिमें पायी है। यही कवि होना है, 'भद्र', 'मन्त्र' 'मन्त्रिणम्' आदि और विचारोंमें रहती होती है। इसके पीछे इसके पूरे स्थानोंमें वृत्ति किये हैं, वे शरीरमें संवर्धन होते हैं। एकही हाथमें अन्न पककर पचना तथा करना है (सोमरस पेटभर पीया जाता है (मं. १)। वह नशा करनेवाला एक उत्तम अवस्था है, सुरा कदापि अन्न नहीं सकता। सोमपानमें शरीरका भरण पोषण हो सकता। सुरापानमें नहीं होता। सोमपानसे शरीरकी कर्म करने उत्पन्न होती है, सुरापानमें बेहोशी और भ्रान्त होती है। पेटभर सोमपान करनेपर भी मनुष्य बेहोश नहीं परंतु उत्साहमें अपना कार्य ठीक तरह कर सकता है। तरह सोमपान और सुरापानके परिणाम परस्पर सोमपानकी श्रुतिमें स्तुति करते हैं, वेदमें सर्वप्रशंसा है, वैसी सुरापानकी कहीं भी प्रशंसा नहीं है।

'मद' के अर्थ कोशमें ये हैं—(१) मतवालापन, उत्साह, नशा, बेहोशी। (२) हाथीके गण्डस्थकके रस। (३) प्रेम, प्रीति, गर्व, आनंद, हर्ष, उत्साह। (४) कस्तूरी। (५) (पुरुषका) वीर्य। (६) मद्य, सोम। (७) वस्तु। (८) नदी, जल-प्रवाह। इन अर्थोंमें 'मद' है। 'सुरा' का परिणाम 'उन्मत्तता, उन्माद, बेहोशी' हैं और 'सोम' का परिणाम 'प्रेम और उत्साह' हैं। पृथक् विवरणका तात्पर्य यह है।

सोमरसके लिये 'आमुति' कहा है। यदि इसे 'आसव' माना जा सकता है, तब तो इसमें नशेके धर्म नहींके बराबरही होना संभव है, क्योंकि सोमरस

बार निकाला जाता है और तीन बारही पीया जाता है। ये नशा उत्पन्न होनेवाली सटानसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु नहीं उत्पन्न हो सकती। यहां प्रद्वन उत्पन्न हो सकता है। रावके समान नशावाली वस्तु इसमें न हो, पर भंग जैसी या नहीं? इस विषयमें बात यह है कि, वैसी भी नहीं, के भंग पीनेसे भी मनुष्य कर्तृत्ववान् नहीं होता, पर यहां मानसे कर्तृत्ववान् होता है। अतः सोमपानमें भंगके समान उत्पन्न नहीं होता।

मद, मद्य, प्रमद, संमद, मर्दितम' इन पदोंमें 'मद' है और 'दुर्मद' में भी 'मद' है। मदका दुर्मद सुरा है। मद सुरा नहीं है, वह आनंद और उत्साहका है। पेटभर सोमरस पीनेपर भी 'दुर्मद' अवस्था नहीं। जो सुरापानसे और भंगपानसे होती है। यह बात ठीक समझमें आनेसे सोमपानकी निर्दोषता सिद्ध हो सकती है। 'दुर्मद' अवस्था सुरापानसे होती है, ऐसा कहा है और 'मर्दितम' अवस्था आती है। 'सु' और 'दुर्' इतनी फर्क है।

| | |
|---------|---------|
| सोम | सुरा |
| सुमद | दुर्मद |
| सुमति | दुर्मति |
| सुहार्द | दुहार्द |

में जमीन आसमानका अन्तर है। 'सुमद, सुमति, सुहार्द' के साथी हैं और 'दुर्मद, दुर्मति, दुहार्द' ये सुराके हैं। पेटभर सोमरस पीनेपर भी सुमति नहीं दृष्टी और स्थिर रहता है, यह सोमरसकी मरिमा है। सुराकी दुर्मतिसे स्पष्ट हो जाती है। जो लोग कहते हैं कि सोम-वैसीही नशा होती है जैसी सुरासे, उनको अपने पेश करने चाहिये। बीर इन्द्र दिनमें तीनवार पेटभर पीता है और बेहोशीका चिह्न उस पर दीखता नहीं। सुमतिपूर्वक सब कार्य करता रहता है। यह सोमका मर्द है। इसलिये सोमपान स्तुतिके योग्य माना गया है। पर देखनेसेही नशा की कल्पना जो करेंगे, वे फँसेंगे। सुमद-दुर्मदमें 'मद' है, पर 'सुमद' उपादेश है और 'दुर्मद' है।

तो पदभी बचना योग्य नहीं है कि, जैसी शराब पीनेसे बहुत बिगाड नहीं होता, परंतु अधिक जेसेस सुखसाध

होता है, वैसाही सोमरसका होगा। सोममें 'दुर्मद' होनेकी संभावनाही नहीं है। सोमरस तो पेटभर पीया जाता है, गौशोंको खिलाया जाता है, पेटकी दोनों यात्राएं बाहरसे पूरी भरीं दीखनेपर भी 'दुर्मद' अवस्था नहीं होती, यह सोमरसकी विशेषता है। सोमरस पेटभर पीनेपर भी सुमति स्थिर रहती है।

सोमरस अन्न होनेसे केवल सोमरस पीकर भी मनुष्य जीवित रह सकता है, वैसी केवल सुरा पीनेसेही मनुष्य जीवित नहीं रह सकेगा। केवल निरा सोमरस बहुत तीखा होनेके कारण पीना अशक्य है वैसीही सुराभी सर्वसाधारणके लिये केवल पीना अशक्य है। परंतु जो नशावाज हैं, वेही केवल सुरा पी सकते हैं। सुरामें आम्लत्व रहता है, अतः उसमें दूध फट जायगा। सोममें वैसा नहीं होता। सोममें मिलाया दूध फटता नहीं, इसलिये सोमरसमें सुरापान नहीं है। और भंग जैसी मस्तिष्क बिगडनेकी भी संभावना नहीं है। पेटभर भंग पीनेवालेके मस्तिष्क बिगडे दीखते हैं। सोमरससे वैसा बिगाड नहीं होता।

सोमरसका विचार और आगे होगा। जैसे जैसे सूक्ष्म हमारे सामने आ जायेंगे, वैसा वैसा सोमरसका स्वरूप हमारे सामने खुलता जायगा। अतः इस विषयमें हम जो विचार करेंगे, वह वेद मंत्रके प्रतीक सामने रखकरही करेंगे जैसा इस सनयनक किया है।

दरिद्री दामाद

(अ-श्रीरः जामाता) निर्धन दामादका उदाहरण मंत्र २० में आया है। 'जिसका हमला बड़ा भयानक होता है, वह वरि इन्द्र शीघ्र हमारे पास आ जावे, निर्धन दामादके समान वह बुलाया जानेपर भी सार्यकाल करके न आवे।' (मं. २०) ऐसा इस मंत्रका भाव है, श्रीमान् समुदायमें निर्धन दामाद दिनेके समय जाना नहीं चाहता। किसी उत्सवके समय मित्र समय बहुत धनी लोगोंकी उपस्थिति होती है, उस समय निर्धन दामाद आना भी नहीं चाहता। वह लज्जित होता हुआ शत्रुके अंधेरेमें, छिप छिपके चुपचाप आता है और दूसरोंको बैठता है। यह निर्धन दामाद जो जीवन बहुत ही दुःख है, दुर्मतिसे लोगोंको लज्जित है कि वे ऐसे निर्धन न बनें। सनयन पर वे और सुमदपूर्वक समुदायमें दिनेके समय उत्सव उपस्थित होकर रहें।

र अठतालीस हजारका जो दान है वह किस चीजका है इच्छुक है ।

ठीक पता नहीं लगता ।

उपासनासे ' हम ' और ' अन्य ' ये भेद यहां माने हैं ।

विभिन्न लोग

प्रस्मत् अन्ये गोभिः इं मृगयन्ते) हमसे भिन्न जो

लोग हैं वे भी इस इन्द्रको गोओंका दूध निकालकर उनको

करनेके लिये हंडते हैं (मं. ६) । यहां हमने भिन्न दूसरे

वे हैं कि जो इन्द्रकी उपासना करनेवाले नहीं हैं, पर

किसीकी भक्ति करते हैं, परंतु इन्द्रके पास भी आनेके

' अगोः अरिः ' (मं. १४) उपासना न करनेवालेका

शत्रु इन्द्र है, अर्थात् भक्त या उपासकका वह मित्र या सखा है ।

' तव इत् स्तोमं चिकेत ' (मं. १७) - हे इन्द्र ! तेराही

स्तोत्र हम जानते हैं, किसी दूसरे देवका स्तोत्र हम जानतेही

नहीं, इतनी एकाग्रतासे हम तुम्हारी उपासना करते हैं । यह

एकप्र उपासनाका वर्णन है ।

(१५) प्रभुका महत्त्व

(क. मं. ८, सू. ३) १-२४ मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः, २१-२४ पाकस्थामा कौरवाणः । प्रगाधः=(विषमा
दृहती, सना सतोदृहती), २१ सनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ वृहती ।

या सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः । आपिर्नो योधि सधमायो वृधेदस्मां अवन्तु ते धियः १

याम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये । अस्त्राञ्चित्राभिरयतादभिष्टिभिरा नः सुस्तेषु यामय २

मा उ त्वा पुरुचसो गिरो वर्धन्तु या मम । पादकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूपत ३

यं सहस्रमृषिभिः सहस्रयुतः समुद्रइव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विपराज्ये ४

न्द्रमिद्वेवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं समीकि वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ५

इन्द्रो मदा रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रे द विभवा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्द्रवः ६

भि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः । समीचीनास जभवः समस्वरन् ददा गृणन्त पूर्यम् ७

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अथा तमस्य महिमानमापदोऽनु ध्रुवन्ति पूर्वथा ८

त्वा यामि सुवीर्यं तद्गच्छ पूर्वचित्तये । येना यतिभ्यो नृगवे धने दिते येन प्रस्कण्वमाधिथ ९

येना समुद्रमरुजो महीरपलादिन्द्र वृष्णि ते शवः ।

सत्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुवक्रदे १०

गधी न इन्द्र यत्त्वा रयि यामि सुवीर्यम् । शग्धि वाजाय प्रथमं सिंहासनं शग्धि स्नोमाय पूर्य ११

शग्धी नो अस्य यत्त पौरमादिथ धिय इन्द्र सिंहासनः ।

शग्धि यथा रुशमं श्पावकं रुपनिन्द्र प्रायः स्वर्गरम् १२

रुपयो अतस्तीतां तुगे गृणीत मर्त्यः । नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गपन्न आनशुः १३

यदु स्तुवन्त क्रतयन्त देवत क्रयिः को विप्र ओहते ।

यदा हवं मघवादिन्द्र स्तुवन्तः यदु स्तुवन् वा गमः १४

उ दु त्ये मधुनसत्ता गिरः स्तोमास इने । सत्राजिनो धनसा अधिनोतयो वाजयन्तो ग्याह्य १५

कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः । इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो
युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरीं इन्द्र परावतः । अर्वाचीनो मघवन्सोमपीतय उग्र ऋग्नेभिरा गहि
इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेघसातये ।

स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम्

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः । निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गाः ॥ १० ॥
निरस्यो रुचुर्निर सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः । निरन्तरिक्षादधमो महामर्हि कृपे तदिभ्र
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः । विश्वेषां न्मना शोभिष्टमुपेव दिवि धावमानम्
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् । अदाद्रायो विबोधनम्

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः । अस्तं वयो न तुभ्यम्

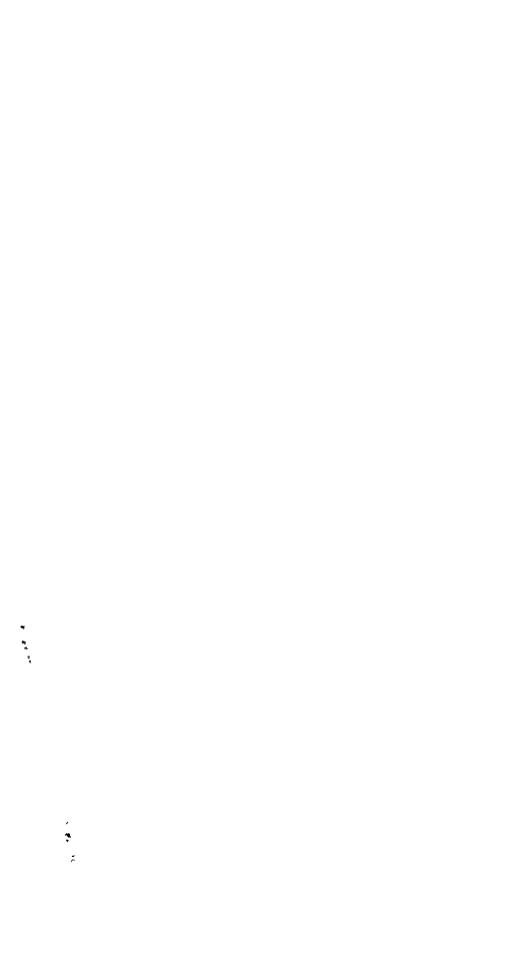
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् । तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं

अन्वयः— हे इन्द्र ! नः रसिनः गोमतः सुतस्य पितृ, मत्स्य (च) । सधमायः आपिः नः दृष्टे
अस्मान् अवन्तु ॥१॥ ते सुमतौ वयं वाजिनः भूयाम । अभिमातये नः मा सतः । चित्राभिः अभिष्टिभिः अस्मा
नः सुसुप्तु आ यामय ॥२॥ हे पुरुवसो ! मम याः इमाः गिरः (ताः) स्वा उ वर्धन्तु । (तथा)
विपश्चितः स्तोमैः अभि अनूपत ॥३॥ अयं (इन्द्रः) ऋषिभिः सहस्रं सहस्रकृतः समुद्र इव पप्रये । अस्य सप्तः
महिभा यज्ञेषु विप्राज्ये गृणे ॥४॥ देवतातये इन्द्रं इत्, अध्वरे प्रयति इन्द्रं, समीके वनिनः इन्द्रं, धनस्य
इन्द्रं हवामहे ॥५॥ इन्द्रः शवः महा रोदसी पप्रथत्, इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्, इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे,
इन्द्रवः इन्द्रे (येमिरे) ॥६॥ हे इन्द्र ! आयवः स्तोमेभिः स्वा पूर्वपीतये अभि (स्तुवन्ति) । समीचीनासः
अस्वरन्, मद्राः पूर्वं गृणन्त ॥७॥ अस्य इत् सुतस्य विष्णवि मदे वृणयं शवः इन्द्रः वावृधे, अस्य तं महिमानं
पूर्व्या अयं अनु स्तुवन्ति ॥८॥ तन् सुवीर्यं स्वा यामि । तन् ब्रह्म पूर्वचित्तये (स्वा यामि) । धने हिते यतिन
येन, येन (च) प्रस्कण्ये आविथ ॥९॥ हे इन्द्र ! समुद्रं महीः अपः असृजः । ते यन् शवः वृष्णि । अस्य सः
न मेनगे, ये शोणीः अनुयक्रे ॥१०॥ हे इन्द्र ! यन् सुवीर्यं रयिं स्वा यामि (तन्) नः शग्धि । (तथा)
वाजाय प्रथमं दधि । हे पूर्वं ! स्तोमाय शग्धि ॥११॥ हे इन्द्र ! धियः सिपासतः नः अस्य (तन् धनं)
ह पापं आविथ । हे इन्द्र ! (तथा) शग्धि, यथा रुदामं श्यावकं कृपं (आविथ), तथा स्वर्णं प्र आवः ॥१२॥
शुभः मर्यः तव्यः कन् गृणीत ? नु स्वः गृणन्तः अस्य इन्द्रियं महिमानं नहि आनशुः ॥१३॥ हे इन्द्र ! स्तुवन्तः
देवता प्रत्ययन्तः, ऋषिः विप्रः कः ओहते ? हे मघवन् इन्द्र ! कदा सुन्वतः हवं जा गमः ? कन् उ स्तुवतः (॥१४॥
॥१५॥ ये मधुमन्ममाः गिरः स्तोमायः उन् उ ईरते । सत्राजितः धनसाः अक्षितोत्तयः वाजयन्तः रथाः इवः ॥१६॥
इव, मृगोः भृगवः इव धीनं विश्वं इत् आनशुः । प्रियमेधायः आयवः स्तोमेभिः इन्द्रं महयन्तः अस्वरन् ॥१७॥ हे
इन्द्र ! हरी युक्ष्वा हि । हे मघवन् ! उग्रः सोमपीतये ऋग्नेभिः परावतः अर्वाचीनः आ गहि ॥१८॥ हे इन्द्र ! इ
रिप्रयः विद्या मेघमातये ते वावशुः हि । हे मघवन् ! गिर्वणः सः त्वं नः हवं, वेनः न, शृणुधि ॥१९॥ हे इन्द्र !
तुनीभ्यः धनुभ्यः निः अस्फुरः । मायिनः अर्बुदस्य मृगयस्य पर्वतस्य गाः निः आजः ॥२०॥ हे इन्द्र ! महां भर्ता
मिथुन निः अयमः, कन् पश्य कृपे । अग्रयः निः रुचुः । सूर्यः निः उ । इन्द्रियः रसः सोमः निः ॥२०॥ इन्द्र
(च) मे मे दुरः कौरयाणः पाकस्थामा (अदात्), विश्वेषां न्मना शोभिष्ट दिवि उप धावमानं इव ॥२१॥ पाक
मुद्रं कक्ष्यप्राम् । रोहितं, मयः विबोधनं अदात् ॥२२॥ यस्मै धुरं अन्ये दश वह्नयः प्रति वहन्ति । अस्तं वयः तुभ्यम्
(अन्ये) अस्मा पितुः तन्, वायः ओजोदाः अभ्यञ्जनं दातारं, पाकस्थामानं तुरीयं भोजं इत् अन्नवम् ॥२४॥

अर्थः— हे इन्द्र ! हमने स्तोमों से गोदुग्धमिश्रित आने हुए सोमरसको पीओ और आनन्दित हो जाओ । मरु
देवों ने हमारे मघवन् नामकी बुद्धि (कर्मेन्द्रियमें) मोहो । वेरी बुद्धियाँ हमारी मुरझा करें ॥१॥ वेरी सुनी

| | |
|---|--------------------------|
| उत नः पितृणा भव संस्मरणो अतिविश्रुतः । | मन्वस्यस्युति मे पण्य १ |
| उत नो गोमनस्त्विति हिरण्यवतः पवित्रः । | वृत्ताति सं योमवि १ |
| वृषदुक्तं हवामहे वृषदुक्तं हवामहे । | मन्वस्यस्युति मे पण्य ११ |
| यः संस्थे निवृत्तमनुमारीं कृणोति वृत्ता । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| स नः प्राजपिता प्राजपितां वृत्तामहे । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| यो रायोरेवनिमोहान्स्तुपायः सुवतः सत्ता । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| आयन्तारं महि स्थिरं वृत्तासु वृत्तामहे । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| नाकिरस्य शचीनां नियन्ता सुवतानाम् । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| न नूनं वृत्तामहे प्राजपितामहे सुवतानाम् । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| पण्य इदुप गायत पण्य उक्तामहे वृत्तामहे । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| पण्य आ वृत्तामहे सत्तामहे वृत्तामहे । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| वि पू चर स्वधा अनु कृषीनामन्वाहुः । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| पिय स्वधैनवानामुत यस्तुष्ट्ये सत्ता । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| अतीहि मन्युपाविणं सुवतांसमुपावणे । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| इहि तित्रः परावत इहि पञ्च जनां अति । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| सूर्यो रश्मि यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| अध्वर्यवा तु हि पिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| य उद्गः फलिगं भिनश्यद्विसन्धूरयामृजत् । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| अहन्वृषदुक्तामहे और्णवाभमहोशुवम् । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| प्र व उग्राय निष्टुरेऽपाळ्हाय प्रसक्षिणे । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| यो विश्वान्यमि वृता सोमस्य मदे अन्धसः । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| इह त्वा सधमाया हरी हिरण्यकेदया । | वृत्ताति सं योमवि ११ |
| अवाञ्छं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेघस्तुता हरी । | वृत्ताति सं योमवि ११ |

अन्वयः— हे कणाः ! कजीपिणः इन्द्रस्य सोमस्य मदे कृतानि गायया प्र वीचन ॥१॥ यः उग्रः (क) रिणन् सुविन्दं अनर्शनि पितुं अहीशुवं दासं वधीत् ॥२॥ हे इन्द्र ! वृहत् अयुंदस्य वृष्णां विष्टपं नि निर । कृपे ॥३॥ वः श्रुताय कृतये धृष्ट सुदिप्रं प्रति हुवे । तृणां न निरेः अधि ॥४॥ हे शूर ! सः (लं) अश्वस्य व्रजं सोम्येभ्यः, पुरं न, वि दर्शसि ॥५॥ मे सुते उक्थे वा यदि शरणः, चनः दधते, (तहिं) आराव आ गहि ॥६॥ हे गिर्वणः ! इन्द्र ! ते अपि वयं य न्योतारः ससि । हे सोमपाः ! त्वं नः जिन्व ॥७॥ हे मधवः शरणः अविक्षितं पितुं नः आ भर । ते वसु भूरि ॥८॥ उत नः गोमतः हिरण्यवतः अश्विनः कृधि । इत्यानिः सं ॥९॥ कृतये सुप्र-करत्नं, अवसे साधु कृष्वन्तं, वृषदुक्तं हवामहे ॥१०॥ यः संस्थे शतक्रतुः, वृषहा, आव ई इन्द्रो जरितृन्मः पुरुवसुः ॥११॥ सः शक्रः नः चित् आ शक्रत् । इन्द्रः दानवान् विश्वामिः कतिनिः अन्तरानः ॥१२॥ रायः अवनिः महात् सुपायः सुवतः सत्ता, तं इन्द्रं अमि प्र गायत ॥१३॥ आयन्तारं महि वृत्तासु स्थिरं, कोजला भूरः ईशानं (अमि प्र गायत) ॥१४॥ अस्य सुवतानां शचीनां नियन्ता नकिः । न दाव इति वत्ता नकिः । सुवतां प्राजपितां वृत्तां वृत्तां वृत्तां न नूनं अस्ति । अग्रता सोमः न पपे ॥१५॥ पण्ये इत् उप गायत, पण्ये उक्तामहे वृत्तामहे इत् वृत्ता कृष्वन्तं ॥१६॥ यः वाजी शता सहस्रा आ वृदिरव, (सः अयं) इन्द्रः अयुतः पण्यः यज्वनः वृषः इन्द्र ! अतु आहुवः कृषीनां स्वधाः अतु सु वि चर, सुवतां पिय ॥१७॥ हे इन्द्र ! स्व-धैनवानां, उत यः तुष्ट्ये वृत्तामहे



बला वीर उत्तम है । (मं. ५)

५ विभूतद्युम्नः, च्यवनः, पुरुस्तुतः— बहुत धननाला, शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला, अनेकोंद्वारा प्रशंसित वीर उत्तम है । (मं. ६)

६ धृषितः अवृतः— शत्रुओंपर जोरदार हमला करनेवाला, परंतु शत्रुओंसे कभी घेरा नहीं जाता, ऐसा बड़ा पराक्रमी वीर प्रशंसाके योग्य है । (मं. ६)

७ ओजसा पुरः विभिनत्ति— अपने बलसे शत्रुके काले तोड़ देता है । (मं. ७)

८ मृगः पुरुत्रा चरथं दधे— (शत्रुको) हंडनेवाला वीर चारों ओर भ्रमण करता है । (मं. ८)

९ नकिः नियमत्— कोई (शत्रु इस वीरको अपने) शासनमें नहीं रख सकता । (मं. ८) अर्थात् यह कभी परास्त नहीं होता ।

१० ओजसा महान् (भूत्वा) चरसि— निज बलके कारण बड़ा होकर विचरता है । (मं. ८)

११ उग्रः अनिष्टुतः स्थिरः रणाय संस्कृतः— उग्र प्रचण्ड वीर पराजित न होता हुआ, युद्धमें स्थिर रहता है, यह युद्धकी शिक्षा लेकर (सब शस्त्रास्त्रोंसे) सुसज्जित हुआ होता है । (मं. ९) यहाँका ' संस्कृतः युद्धाय ' ये पद बड़े महत्वके हैं । युद्ध-शिक्षा लेकर जो उत्तीर्ण होता है, वह ' रणाय संस्कृतः ' है । इस तरह युद्धकी शिक्षा दी जाती थी, यह इससे प्रतीत होता है । युद्धके संस्कारोंसे वीरोंको युक्त करना चाहिये, यह बात यहाँ स्पष्ट होती है ।

१२ ' सत्य वली वीर ' वे हैं कि जिसके रथ, घोड़े, लगाम, चाबूक, आदि सब युद्ध साहित्य उत्तम और श्रेष्ठ बलसे युक्त हो, किसीमें किसी तरहकी न्यूनता न हो । और जो अपने देशमें और दूर देशमें भी बलवान् सिद्ध हो सकते हैं । (मं. १०-११)

१३ जो ' सच्चा वीर ' है वह किसी दूसरेकी पराधीनतामें नहीं रहता । (मं. १६)

१४ वृष्णः धूः उत्तरा— बलवान्की धुरा सदा ऊपर रहती है । (मं. १८)

स्त्रियोंके विषयमें

इस सूक्तमें स्त्रियोंके विषयमें आदेश आये हैं—

१ स्त्रियाः मनः अशास्यं— स्त्रियोंके मनमें रसना कठिन है । स्त्रियोंके मनपर काबू करना ... (मं. १७)

२ स्त्रियाः क्रतुः रघुः— स्त्रियोंके कर्म हटें ! उनका सामर्थ्य कम होता है, उनकी बुद्धि छोटी है । (मं. १७)

३ हे स्त्री ! (अधः पश्यस्व) नीचेकी ओर देखी रह । (मा उपरि) ऊपर न देखो । (पादो हर) पांव पासपास रखकर चलो । (ते कथं दृशन्) तेरे शरीरके गात्र किसीको न दीखें, विधे और पिंडरीयाँ ढंकी रहें अर्थात् सब शरीर कपड़े-रहे । (मं. १९)

इस तरह इस सूक्तमें वचन हैं, जो स्मरण रखें

स्त्रीका पुरुष बनाना

इस सूक्तके अन्तिम मंत्रमें (ब्रह्मा स्त्रीं ब्रह्माका कार्य करनेवाला पुरुष स्त्री बनी थी, ऐसा कहाँ औंध नगरीमें ' कुमारी गोदावरी ' नामकी एक थी । उसकी एक तरुणके साथ शादी हो चुकी । तब मेल होनेसे पता लगा कि श्रीमती गोदावरीके पुरुष स्त्रीके समान नहीं हैं । अन्तमें डाक्टरोंने शस्त्रप्रयोगसे भाग काटकर फेंक दिया, तब पता लगा कि वह बलवान् पुरुष है । तब उस पुरुषकी शादी किसी दूसरी उमा प्रथम विवाह रह हुआ । यह परिवार अबतक जीवित बालवच्चोंके साथ आनंदमें है ।

जन्मके १८ वर्षतक स्त्री रही हुई मानवीका इस १८ हुआ । उक्त मंत्रमें पहिले पुरुष था, उसकी स्त्री बन पश्चात् वह पुरुष बना होगा । यह कैसा हुआ इतना लगाना चाहिये । (क्र. ८।१।३४ मंत्र देखो, वहाँ पुरुषकी प्राप्ति होनेका विधान है ।)

यहाँ मेधातिथिका दर्शन समाप्त हुआ ।

(११)

(क. मं. ९, सू. ४१) १-६ मेधातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

| | | | |
|--|---|--------------------------|---|
| प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेपा अयासो अकमुः | । | प्रान्तः कृष्णामप त्वचम् | १ |
| सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् | । | साक्षांसो दस्युमव्रतम् | २ |
| शृण्वे वृष्टेरिव खनः पवमानस्य शुष्मिणः | । | चरन्ति त्रिमुतो दिवि | ३ |
| आ पवस्व महीमिपं गोमदिन्दो हिरण्यवत् | । | अश्वानवाजवत्सुतः | ४ |
| स पवस्व विचर्पण आ मही रोदसी पृण | । | उपाः सूर्यो न रश्मिभिः | ५ |
| परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः | । | सरा रसेन विष्टपम् | ६ |

अन्वयः— ये (सोमाः) गावः न, भूर्णयः स्वेपाः अयासः कृष्णां त्वचं अपव्रताः प्र अकमुः ॥१॥
अव्रतं दस्युं साक्षांसः, दुराव्यं अति मनामहे ॥२॥ पवमानस्य शुष्मिणः खनः वृष्टेः इव शृण्वे, दिवि
हे इन्दो ! सुतः गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वाजवत् मही इपं आ पवस्व ॥४॥ हे निनर्पणे ! सूर्यः रश्मिभिः
(त्वं) पवस्व, मही रोदसी आ पृण ॥५॥ हे सोम ! नः शर्मयन्त्या धारया, सरा विष्टपं इव, विश्वतः परि ल

अर्थ— जो (सोमरस) गायोंके समान, वनमें जानेवाले तेजस्वी और गतिशील हैं, वे (अपनी) कर्मा
गाश करते हुए, आगे बढ़ते हैं ॥३॥ उत्तम कर्मोंके सेतु जैसे, तथा व्रतपालन न करनेवाले दुष्टोंको दवानेवाले
शत्रुको परास्त करनेवाले (इस सोमकी) हम प्रशंसा करते हैं ॥२॥ सोमरस निकालनेके समय बलवर्धक
शब्द मैं, वृष्टिके शब्दके समान, सुनता हूँ । अन्तरिक्षमें इसकी दीप्तिर्यो विचर रही हैं ॥३॥ हे सोम ! रस
गावों, सुवर्ण, घोड़ों और बलोंसे युक्त बड़ा सामर्थ्यवान् अश्व (हमारे पास) भेजो ॥४॥ हे विशेष देवनेवाले
जैसा सूर्य किरणोंसे उपाओंको (भर देता है), वैसे ही तुम प्रवाहित होकर धावा-पृथिवीको पूर्ण करो ॥५॥
हमें सुख बढ़ानेवाली धारासे, नदी भूमिको भर देती है वैसे, चारों ओरसे पूरित करो ॥६॥

(२०)

(क. मं. ९, सू. ४२) १-६ मेधातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

| | | | |
|---|---|-----------------------|---|
| जनयत्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् | । | वसानो गा अपो हरिः | १ |
| एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि | । | धारया पवते सुतः | २ |
| वावृधानाय त्वयै पवन्ते वाजसातये | । | सोमाः सहस्रपाजसः | ३ |
| दुहानः प्रक्षमिप्यः पवित्रे परि पिच्यते | । | क्रन्दन्देवां अजीजनत् | ४ |
| अभि विश्वानि वार्याभि देवां क्रतावृधः | । | सोमः पुनानो अर्षति | ५ |
| गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः | । | पवस्व बृहतीरिपः | ६ |

अन्वयः— (अयं) हरिः, दिवः रोचना जनयन्, अप्सु सूर्यं जनयन्, गाः अपः वसानः (पवते) ॥१॥
सुतः, प्रत्नेन मन्मना देवेभ्य धारया परि पवते ॥२॥ सहस्रपाजसः सोमाः, वावृधानाय त्वयै वाजसातये, पवन्ते ॥
इत् पयः दुहानः पवित्रे परिपिच्यते । क्रन्दन् देवान् अजीजनत् ॥४॥ सोमः पुनानो विश्वानि वार्या, अभि
क्रतावृधः देवान् अभि अर्षति ॥५॥ हे सोम ! सुतः (त्वं) नः गोमत् वीरवत् अश्ववत् वाजवत् बृहतीः इपः पव

सोमवल्लीको कूटना

की पत्थरोंसे कूटी जाती है। इस विषयमें निम्नलिखित देखने योग्य हैं—

गां त्वचं अपघ्नन्तः (सोमाः) - ऊपरकी काली नास करके (प्रकट होनेवाले रोमरसके प्रवाह)। रसका छिलका जो हरिद्वर्णका होता है, उसपर कृष्ण- रंगी छाया होगी। इस छिलकेके दूर होनेपर अन्दरसे रस आता है। (कई अनुवादकोंने काली त्वचावाले, केके दुष्ट राक्षस ऐसा 'कृष्णां त्वचं' का अर्थ किया है। यह भ्रम प्रतीत होता है। श्वेत वर्णके लोग शुद्धाचारी होने लिये रंगके लोग मूर्ख और दुराचारी ऐसा कहना कठिन है। यहाँ तो 'कृष्णां त्वचं' पद है। त्वचाका अर्थ त्वचा है। कृष्णपद नीला, काला, गहरा हरा आदि रंगोंके लिये होता है। इसलिये यहाँ सोमवल्लीके ऊपरके गहरे हरे रसका यह पद है ऐसा हमारा मत है।)

जो 'प्राचाणौ' देवताही है जो सोम कूटनेके पत्थरोंकी है। सोमपर ये पत्थर नाचते हैं ऐसे वर्णन मंत्रोंमें है। सोमके कूटनेकी कल्पना हो सकती है। इस तरह कूटने पर सोमका चूरा किया जाता है जिसपर पानीका छिड़काव रस निचोटा जाता है।

सोममें जलका मिलान

सोमवल्ली जरासी सुष्पसी बनी है, जल मिलानेसेही उससे निकलता है। सोमके चूर्णमें जल मिलानेका उद्देश निम्नलिखित मंत्रोंमें है—

अपः वसिष्ठः— जलका वस पढ़ना। जल सोमके साथ मिलाया जाता है। (मं. २।३)

१ त्वा महीः आपः सिन्धवः अर्पन्ति— हे सोम! पानी बड़े जलप्रवाह, नदीयों प्राप होती है। सोममें नदियोंका मिलाया जाता है। (मं. २।४)

२ ससुद्रो अप्सु ममृजे— यहाँ ससुद्र नाम सोमरसका ससुर जलोमें डुब होता है, अप्सु सोमरस जलोमें मिलाया जाता है। (ससुद्र-मं० ३२-२) जिसमें एकत्र अपने सारवर्षक रस है उसका नाम ससुर है। 'ससुर जलोमें डुब जाता है' यह एक भ्रमका विशेष लक्षण है, अर्थात् सोमवल्ली

यह बात दीखती है। पर उक्त अर्थसे यह सुसंगत है।

४ हरिः अपः वसानः— सोम जलोमें वसता है। सोम- रस जलके साथ मिलाया जाता है। (मं. ४२।१) जहाँ बहुत जल हो वहाँ सोम उगता है ऐसा इसका अर्थ प्रतीत होता है, पर वैसा इसका अर्थ नहीं है, क्योंकि हिमाच्छादित शिखरपर यह पौधा उगता है, वहाँ जल कमही रहता है और यह सोमका पौधा सुष्पका भी रहा है, जल मिलानेसेही उससे रस निकलता है। इससे सोमके साथ जल मिलानेकी बात स्पष्ट हो जाती है।

सोमरसमें दूध

सोमरस बड़ा तीखा रहता है, इसलिये उसमें जल, तथा दूध मिलानेके बादही वह पीया जाता है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखो—

१ गोभिः वासयिष्यसे— गौओंसे आच्छादित किया जाता है अर्थात् सोमरसमें दूध इतना मिलाया जाता है कि जिससे सोमरसका हरा रंग लुप्त होकर उसको दूधका रंग आता है। यहाँ 'गौ' का अर्थ गौका दूध है। (मं. २।४)

२ हरिः गाः वसानः— हरे रंगका सोम गौओंमें वसता है, गौदुग्धमें मिलाया जाता है। (मं. ४२।१)

३ पयः दुहानः पवित्रे परिपिच्यते— दूध जिसके लिये दुहा जाता है ऐसा सोम पवित्र छाननीपर सींचा जाता है। जलसे तर्प किया जाता है। (मं. ४३।४)

४ यः हर्यतः (सोमः) मदाय गोभिः मृज्यते— जो सोमरस आनंद बढ़ानेके लिये गौओं (के दूध)के साथ मृदु किया जाता है। सोमरसमें दूध मिलाकर भी छाना जाता है। (मं. ४३।१)

इस तरह जल मिलानेका और गौका दूध मिलानेका वर्णन वेदमंत्रोंमें है।

रस छाननेकी छाननी

सोमवल्लीका रस निकलने है और उसको छानने है। छाननेके लिये मैरीके बालोंकी कम्पल जैसी छाननी होती है। यह तीन गुणा किया केवलही समझिये। इसमें रस छाना जाता है। कूटे गये सोमवल्लीका चूरा दोनो हाथोंमें पकटा जाता है, दम संकुचिमें और दोनो हाथोंमें अलग तरह दबाकर रस निकलने है, यह रस उक्त छाननीमें छाना जाता है, क्योंकि सोमवल्ली अनेक निम्ने उमने गर्ने है ये दूर उमने

सूक्तमें ऋषिनाम

मं० ९ सू० ४३ में 'मेध्यातिथिः' ऋषिनाम है ।
(विप्रस्य मेध्यातिथेः गीर्भिः परिष्कृतः सोमः)
ज्ञानी मेध्यातिथिकी स्तुतिपूर्वमें सुगंधित हुआ सोमरस है, ऐसा
यहां वर्णन है । स्वयं मेध्यातिथिक स्तोत्रमें उस सोमरसपर
विशेष संस्कार हुए हैं । इस तरह यह रस विशेष शुद्ध किया
गया है । यह इसका तात्पर्य है ।

इन दोनों ऋषियोंके नाम निम्न लिखित मंत्रोंमें आये हैं—

(ऋषिः सध्वंस काण्वः)

याभिः कण्वं मेध्यातिथिं (आवतं) (ऋ. ८।८।२०)

(ऋषिः कण्वो घौरः)

यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्तृप्तं । (ऋ. १।३६।१०)

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व इधे० । (ऋ. १।३६।११)

अग्निः प्रावन्...मेध्यातिथिं । (ऋ. १।३६।१७)

(ऋषिः प्रगाथो घौरः काण्वः)

मघस्य मेध्यातिथेः । (ऋ. ८।१।३०)

(ऋषिः मेधातिथिः काण्वः)

इत्या धीवन्तं अदिवः कण्वं मेध्यातिथिं ।

(ऋ. ८।२।४०)

(ऋषिः मेध्यातिथिः काण्वः)

पाहि गायान्वसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।

(ऋ. ८।३।१४)

(ऋषिः प्रस्कण्वः काण्वः)

यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं । (ऋ. ८।४।१९)

(ऋषिः श्रुष्टिगुः काण्वः)

मघवन् मेध्यातिथौ (सुतं पिब) । (ऋ. ८।५।११)

(ऋषिः मेध्यातिथिः काण्वः)

सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ।

(ऋ. ९।४।३१)

(ऋषिः भृमारः)

यौ मेध्यातिथिमवतो । (अथर्व. ४।२९।६)

ऋग्वेदके सभी मंत्र काण्व गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंके हैं ।
कोई तो 'आपने पूर्वज मेधातिथि अथवा मेध्यातिथिकी रक्षा की
थी, वैसी मेरी रक्षा करो,' ऐसी प्रार्थना करता है ।

मघवेदमें भी पुरातन इस ऋषिनाम का
उल्लेख मिलता है । सोम के नामसे ही वे
भी कहे जाते हैं । हमारे विचारके विपरीत पुरातन
मेध्यातिथिके स्तोत्रों का नाम यह सोम ऋषिनाम
सुगंधित रस है । ये सब मंत्र ऋषिनाम से
बड़े जगदीश्वरी हैं ।

इन सोम-सूक्तोंमें तो सोम का वर्णन है,
आतीं हा पता लगता है—

अन्नरिक्ष और सुलोकमें

सोम सुलोकमें रहता है । भूमि, अन्नरिक्ष
लोक हैं । भूमि यह पृथ्वी का पृष्ठभाग है,
का वायुस्थान है । मेघ हिमालयके शिखरों
हैं, यहाँ तक अन्नांश समक्षिय । जहाँ
सुख होता है, वहाँसे सुलोक सुख होता है ।
पर्वतों उतम सोम मिलता है । अन्यत्र नदी
सर्वत्र मिलते हैं । पर सबसे श्रेष्ठ सोमवत्
यहाँकी पहाड़ोंके शिखरपर होती है । इस विषयमें

१ दिव्यः धरुणः— सुस्थानको सोम पर्वत

२ 'इन्दु' पद चन्द्रमावाचक है । चन्द्र
सोमके वाचक हैं । चन्द्रमा अन्नरिक्षस्थानकी रक्षा
रिक्षमें रहनेका अर्थही पर्वत-शिखरपर रहता है ।

३ वनस्पतियां पृथ्वीपर रहती हैं । सोम मौजवान्
है, इसलिये वह पर्वत-शिखरपर रहता है ।

इस तरह इसका पर्वत-शिखरपर रहना म
मौजवान् पर्वतके शिखरपर यह पौधा होता है,
कहा है—

सोमस्य मौजवत्तस्य भक्षः । (ऋ. १०।३१)

(सायणः) सुजयति पर्वते जातो मौजवत्

तत्र हि उत्तमः सोमो जायते ।

भक्षः पानं... मादयति ।

मौजवान् पर्वत पर उत्तम सोम होता है ।
समझा जाता है । वह पीनेसे अधिक उत्साह
मद अधिक आता है । मौजवान् पर्वत हिमालय
इस तरह सोमके निवासस्थानके विषयमें अल्प

सोमवल्लीकी कूटना

वही पत्थरोंसे कूटी जाती है। इस विषयमें निम्नलिखित ग देखने योग्य हैं—

कृष्णां त्वचं अपचन्तः (सोमः)— ऊपरकी काली को नाश करके (प्रकट होनेवाले सोमरसके प्रवाह) । ऊपरका छिलका जो हरिद्वर्णका होता है, उसपर कृष्ण-भी छाया होगी । इस छिलकेके दूर होनेपर अन्दरसे रस आता है । (कई अनुवादोंने काली त्वचावाले, रंगके दुष्ट राक्षस ऐसा ' कृष्णां त्वचं ' का अर्थ किया है यह भ्रम प्रतीत होता है । श्वेत वर्णके लोग शुद्धाचारी होनेके लिये रंगके लोग क्रूर और दुराचारी ऐसा कहना कठिन और यहां तो ' कृष्णां त्वचं ' पद है । त्वचाका अर्थ त्वचा है । कृष्णपद नीला, काला, गहरा हरा आदि रंगोंके लिये प्रयुक्त होता है । इसलिये यहां सोमवर्णके ऊपरके गहरे हरे रंगके लिये कृष्ण पद है ऐसा हमारा मत है ।)

यहां ' प्राचाणौ ' देवताही हैं जो सोम कूटनेके पत्थरोंकी बात है । सोमपर ये पत्थर नाचते हैं ऐसे वर्णन मंत्रोंमें है । सोमके कूटनेकी कल्पना हो सकती है । इस तरह कूटकर सोमका चूरा किया जाता है जिसपर पानीका छिटकाव रस निकोटा जाता है ।

सोममें जलका मिलान

सोमवर्णी जरासी चुष्कसी वही है, जल मिलानेसेही उससे निकलता है । सोमके चूर्णमें जल मिलानेका उद्देश्य निम्न-लेख मंत्रोंमें है—

१ अपः वसिष्ठः— जलका यज्ञ पढ़ना । जल सोमके साथ मिलाया । (मं. २।३)

२ त्या महीः आपः सिन्धवः अर्पन्ति— हे सोम । पास बड़े जलप्रवाह, नदीयों प्राप्त होती हैं । सोममें नदियोंका मिलाया जाता है । (मं. २।४)

३ समुद्रो अप्सु मनुजे— यहां समुद्र नाम सोमरसका । समुद्र जलमें शुद्ध होता है, अर्थात् सोमरस जलमें मिलाया और छाया जाता है । (समुद्र-सं-उप-२) जिसमें एकत्र आये कारवर्षक रस है उसका नाम समुद्र है । ' समुद्र जलमें शुद्ध किया जाता है ' यह एक भाषाका विशेषलेख है, असेमझकी

यह बात दीखती है । पर उक्त अर्थसे यह सुसंगत है ।

४ हरिः अयः वसानः— सोम जलमें वसता है । सोम-रस जलके साथ मिलाया जाता है । (मं. ४२।१) जहां बहुत जल हो वहां सोम उगता है ऐसा इसका अर्थ प्रतीत होता है, पर वैसा इसका अर्थ नहीं है, क्योंकि हिमाच्छादित शिखरपर यह पौधा उगता है, वही जल कमही रहता है और यह सोमका पौधा चुष्कसा भी रहा है, जल मिलानेसेही उससे रस निकलता है । इससे सोमके साथ जल मिलानेकी बात स्पष्ट हो जाती है ।

सोमरसमें दूध

सोमरस बड़ा तीखा रहता है, इसलिये उसमें जल, तथा दूध मिलानेके बादही वह पीया जाता है । इस विषयमें निम्न-लिखित मंत्रभाग देखो—

१ गोभिः वासपिष्यसे— गौओंसे आच्छादित किया जाता है अर्थात् सोमरसमें दूध इतना मिलाया जाता है कि जिससे सोमरसका हरा रंग लुप्त होकर उसको दूधका रंग आता है । यहां ' गौ ' का अर्थ गौका दूध है । (मं. २।४)

२ हरिः गाः वसानः— हरे रंगका सोम गौओंमें वसता है, गोदुग्धमें मिलाया जाता है । (मं. ४२।१)

३ पयः दुहानः पवित्रे परिपिच्यते— दूध जिसके लिये दुहा जाता है ऐसा सोम पवित्र छाननीपर सींचा जाता है । जलसे तरा किया जाता है । (मं. ४२।४)

४ यः हर्यतः (सोमः) मदाय गोभिः मृज्यते— जो सोमरस आनंद बटानेके लिये गौओं (के दूध) के साथ शुद्ध किया जाता है । सोमरसमें दूध मिलाकर भी छाना जाता है । (मं. ४२।१)

इस तरह जल मिलानेका और गौका दूध मिलानेका वर्णन वेदमंत्रोंमें है ।

रस छाननेकी छाननी

सोमवर्णीका रस निकालने है और उसको छानने है । छाननेके लिये मैदीके बालोंकी कम्बल वैसी छाननी होती है । यह तीन गुणा किया कंबलही समझिये । इसमें रस छाना जाता है । कूटे गये सोमवर्णका चूर्ण दोनों हाथोंमें पकाम जाता है, दम अंगुलियों और दोनों हाथोंमें अच्छी तरह दबाकर रस निकालने है, यह रस उबक छाननेमें छाया जाता है, क्योंकि सोमवर्णके अनेक किस्मके उसमें रहते हैं ये दूध परनेके

२; ४१-४३]

मेधातिथि ऋषिका दर्शन

मः- विशेष रीतिसे स्तंभक गुण सोममें है, चौर्यको करता है। शौनका अवष्टंभ करता है। (क्या करनेवाला कहा जाय ? इसका विचार वैद्योंको करना

हरिः- सोमका रंग हरा है।

दर्शतः- सोमका रंग दर्शनीय मनोरम है।

सूर्येण सं रोचते- सूर्य-प्रकाशसे अधिक चमकता है।

मदाय शुम्भसे- आनन्दके लिये शोभता है। सोमरस

वर्धक है। (मं. २।७)

ओजसा (युक्तः)- सोमरस ओजससे युक्त है।

का यह रस ओज बढ़ानेवाला है। (मं. २।७)

घृष्टिः- घर्षण सहन करनेवाला, जो अच्छा कूटा जा

है। शत्रुको कूटकर विनष्ट करनेका यत्न बढ़ानेवाला।

ध्वः धारया पवस्व- मधुर रसकी धारासे छाना

मिलानेसे रसमें मधुरता आती है।

तेजस्वी (मं. ४।११)

त्सः- गतिशील, प्रवाही,

र्णः- वन, भूमि, वनमें तत्पल होनेवाला,

वितः- उत्तम रीतिसे प्राप्त, शोभन, सुविधायुक्त,

में उपयोगी।

पुतः दिवि चरन्ति- दसवीं किरणें लोकोत्तक

यह चमकता है। (मं. ४।१३)

द्वयो रदिमभिः उवाः न रोदसी आ पूण- सूर्य

दोनों अपने किरणोंसे भर देता है, वैसा सोम दोनों

शब्दोंसे तेजसे भर देवे, चमकता रहे। (मं. ४।१५)

विश्वरूपिणः- विशेष रीतिमान, विशेष देखनेवाला,

शर्मयन्त्या धारया परि सर- सुख देनेवाली

धारा। सोमरस सुख देता है। (मं. ४।१६)

जयम् रोचना दिवाः- सोम लोकोत्तक तेज बढ़ाता

प्रकाशमान है। (मं. ४।१७)

सहस्रपातयः- सहस्र प्रकारसे बरकटनेवाला

है। (मं. ४।१८)

सोमः वायसातये मृदेये पवन्ते- सोमरस वायु

में घुसकर पवन होकर फैलने लगता है। (मं. ४।१९)

सोमके ये गुण हैं। यह बल बढ़ाता है, उत्साह बढ़ाता है। शक्ति बढ़नेसे शारीरिक सुख भी मिलता है। यहाँ कई लोग 'मद' का अर्थ उन्माद, बेहोशी, अथवा नशा मानते हैं और सोम नशा लाता है, ऐसा समझते हैं। पर यहाँ नशा उत्पन्न होनेका समयही नहीं है। सवेर, दोपहर और शाम ऐसा तीनवार सोमका सवन होता है। सवनका अर्थ रस निकालना है। तीनवार रस निकालते हैं और देवताओंको तीनवार अर्पण करते हैं और तीनवार पीते हैं। इसमें नशा उत्पन्न करनेके लिये सजान होनेकी संभावनाही नहीं है। भंगके समान यह स्वयं न सड़ते हुए नशा करता है, ऐसाभी कई मानते हैं। पर 'सुकुतु' (उत्तम कर्म करनेवाला) यह इसका वर्णन विशेष स्पष्टताके साथ बता रहा है कि मस्तिष्क बिगड़नेसे होनेवाला दुष्कर्म इसमें नहीं होता। इसीलिये यह 'सुकुतु' है। इस कारण नशाकी कल्पना असंगत प्रतीत होती है।

सोमसे प्राप्त दान

सोम निम्नलिखित पदार्थ देता है--

१ गोवः- गौवें देता है। सोमरस निनीउनेताके पादुधारु गौवें अवश्य चाहिये। क्योंकि उसमें गौता दूध अति प्रमाण मिलाना आवश्यक होता है। (मं. २।१०)

२ नृपाः- वीर पुत्र देता है। क्योंकि सोमरसमें शक्ति होती है, जिससे वीर संतान उत्पन्न होती है।

३ अभ्यसाः- सोम पीने देता है। क्योंकि सोम रसना स्वभाविक है।

४ वाजसाः- वन और पक्ष देता है। सोम रस है। (मं. २।१०)

५ गोमन् विरूपयन् सभायन् वाजयन्

आ पवस्व- सोम, वृद्ध, पीने और बचने लायक हो। (मं. ४।१८)

६ सोमन् दीमन् सभायन् वाजयन्

पवस्व- सोम, वीर पुत्र, पीने और बचने लायक हो। (मं. ४।१८)

७ सोम ! सत्त्वयस्ते सुविदं म

मेन ! इन्द्रो वरुणो वसुधेव कुर्वतः स्वर्गं ।

मेधातिथि ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

| भूमिका | ३ | जमिका वर्णन | १८ |
|-----------------------------|----|-------------------------|----|
| गार मंत्रसंख्या | " | (३) हिंसारहित कर्म | " |
| " " | " | मंत्रोंमें कण्वोंका नाम | १९ |
| गोत्रके ऋषि | ४ | देवोंके साथ जाना | " |
| करण | " | यज्ञमें देवगण | २० |
| करनेकी रीति | ५ | सोमरस देवोंका जल | " |
| लि घोष | ६ | सोमके गुण | १ |
| गोके विशेषण | " | घोटे | २१ |
| धातिथि ऋषिका दर्शन | ७ | विप्र जमि | " |
| प्रथम मण्डल, चतुर्थ अनुवाक | ८ | देवोंके लक्षण | " |
| (१) आदर्श दूत | ९ | उपासकोंके लक्षण | " |
| श्री राजदूत | " | ज-ध्वर | " |
| दूतके गुण | " | देवोंके कार्य | " |
| निवारण | १० | (४) दुर्दम्य यल | " |
| स्रोत्र | ११ | ऋतुजोंके अनुकूल व्यवहार | " |
| के साथ रहनेवाला धन | १२ | न दबनेवाला बल | " |
| जन्मनाम | १३ | देवताके गुण | " |
| ति जमि | " | ऋत्विजोंके नाम | " |
| पालक | " | सोम कूटनेके पथर | " |
| (२) यज्ञकी तैयारी | १४ | गार्हपत्य | " |
| गोमुख | " | (५) भरपूर गौवें चाहिये | " |
| आजोंका कर्म | १५ | दिनमें तीनवार उपासना | " |
| सोमनयका वर्णन | १६ | उपासककी इच्छा | " |
| गोका खोलना | " | इन्द्रके गुण | " |
| श्री दिव्य होतानोंको डुलाना | " | (६) दो उत्तम सम्राट | " |
| इसको प्रदीप्त करना | " | (७) सदसरूपति | " |
| तेको न गिरानेवाला | " | सनाका अथवा | " |
| अवत रा | " | ईश्वरही सनापति है | " |
| इसका दर्शन | १७ | उमिरुद्र कसीवान | " |
| न देवियों | " | बुद्धियोंका योग | " |
| अथवा स्वप्न | " | (८) वीरोंकी साथ | " |
| अथवा योद्धा | " | वीरोंके साथ रहो | " |
| ताको उल्लाह | " | (९) दिव्य कारीगर | " |
| ताको करो | " | ऋतुदेवोंकी कथा | " |

(१०) वीरोंकी प्रशंसा

वीरोंके काव्यका गान
दुष्टोंका सुधार
अहिंसा, सत्य और ज्ञान

(११) वेगवान रथ

अश्विनौ देवता, चावूक
सविता देवता
सबका प्रसविता सविता
संपत्तिका विभाजन
अग्नि और देवपत्नियों
देवियोंका स्तोत्र
मातृभूमिका राष्ट्रगीत
विष्णुः
विष्णु, व्यापक देव
" सूर्य

(१२) दो क्षत्रिय

सोमरस, दो क्षत्रिय
मित्रावरुणौ
दो मित्र राजा
मरुत्वान् इन्द्र
दुष्टके अधीन न होना
विश्वे देवा मरुतः
मातृभूमिके वीर
पूपा
सोमको हूँदना
वैलोंसे खेत
आपः, अग्निः
जलचिकित्सा

अष्टम मण्डल

(१३) आदर्श वीर

इन्द्रके गुणोंका वर्णन
आदर्श वीर
पुत्र कैसा हो ?
धूमनेवाले कीले
दिनमें चारवार उपासना
तीन पुत्र, सोमपान
पितासे माताकी अधिक योग्यता
अन्य जोड़ना
सोमकी तीन जातियाँ

३३

"

"

३४

"

"

३५

"

"

३६

"

"

३७

३८

"

३९

"

"

४०

"

"

४१

"

"

"

४२

"

४३

"

४४

"

४५

"

४६

४७

४८

४९

५०

५१

५२

इन्द्रके पोदे, इन्द्रका मोल

इस मूलके ऋषि

हीन मानन, जायजती कथा

(१४) वीरका काव्य

इन्द्रका सामर्थ्य

सोमरसपान

क्या सोमपानसे नंगा होगी ?

सोम और सुरा

दरिद्री दामाद

घोटोंको भोना, कर्मण्य और मुक्त

इंधर= इन्द्र, पर्यंतवाला इन्द्र

मूलमें ऋषिनाम, यज्ञ दान

विभिन्न लोग

(१५) प्रभुका महत्त्व

इन्द्रः इंधर

स्मरण करनेयोग्य मन्त्रभाग

पंडितोंका राज्य

ऋषिनाम और अन्यनाम

(१६) वीरकी शक्ति

स्मरण रखनेयोग्य मन्त्रभाग

शत्रुके नाम, ऋषिनाम

मन्त्र करना

(१७) सत्यवली वीर

स्मरण रखनेयोग्य मन्त्रभाग

स्त्रियोंके विषयमें

स्त्रीका पुरुष बनना

नवम मण्डल

(१८-२१) सोमदेवता

सोमरसका पान

मूलमें ऋषिनाम

अन्तरिक्ष और ध्रुलोकमें निवास

सोमवल्लीको कूटना

सोममें जलका मिलान

" दूधका "

रस छाननेकी छाननी

सोमकी देवता प्राप्ति

सोमके गुणधर्म

सोमसे प्राप्त दान

मनुष्यके लिये बोध

विषयसूची



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य (३)

शुनःशेष ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका पद्य अनुवाक)

लेखक
महाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
राष्ट्रिय स्वाध्याय-मण्डल, लौघ (जि० सातारा)

संवत् २००२

२००२

मूल्य १) रु०

शुनःशेष ऋषिका तत्त्वज्ञान

पुस्तक संख्या २४

सुनारिपकी बापा
सुनारिपकी बापा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

नाम बहुत पाँछे हुआ है। सूक्त गानेके समय वह 'शुनःशेष' ही था।

यह कथा असत्य है

यह कथा काल्पनिक और असत्य है। इस कथाके असत्य

वह अपने पुत्रके संरक्षण करनेके लिये देनेके लिये तैयार हुआ। सत्य-प्रतिज्ञा पौराणिक कथा इससे शतगुणा अधिक अच्छी है। इन सूक्तमें कोई संबंध दीखता नहीं है।

इस तरह विचार करनेपर यह कथा

लक्षाब्द सर्ग ६१-६२ में, विष्णुपुराण ४।७ में, महाभारत
सप्त पर्व ३ में, देवी भागवत ७।१४-१७ में, श्रीमद्भाग-
वत १७.१६ में, महाभारत शान्तिपर्व २९४, हरिवंश १।२७,
अथ १० इतने स्थानोंमें यह कथा है। ऐतरेय ब्राह्मण ७।३
। सांख्यायन श्रौतसूत्रमें १५।२०-२१; १६।११,२ यह
है। इतने स्थानोंमें यह कथा होनेसे इस कथाके लिए
महत्त्व प्राप्त हुआ है।

परीद भुवने दीर्घ राज्ञिक पूर्वं अस्त हेनिवाल सूर्यपर यह
ऐसा कार्योका मत है। गौर्वेके मोलमें पुत्रका विक्रय
वर्ष सूर्यकिरणोंकी संख्या कम होना है। इसादि बातें
ट सकती हैं।

शरीरमें रोहितकी कथा

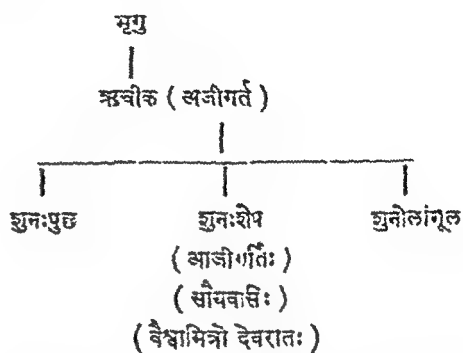
शरीरमें रोहितकी कथा कई घटाते हैं। रोहित पद 'लोहित' है और यह 'रक्त, रुधिर, खून' का वाचक है। शरीरमें सर्वत्र दौरा होता है और उसमें लोह (लोह-इत) रहता है। एग उसको लोहित कहते हैं। यह रोहित हरिश्चन्द्रका पुत्र तिव 'हरित्-चन्द्र' हरे रंगसे युक्त बने रक्तके परिवर्तनसे बनता है। शरीरमें धुनकर आया रक्त हरे रंगका है, यही 'हरित्-चन्द्र' है। इसमें शुद्ध वायु मिलनेसे लाल रंगका बनता है। यही हरित्-चन्द्रका (हरिश्चन्द्रका) बनता है, शरीरमें यह घटना बनती है। हर एक रक्तके हरे रंगका पुन बनता है और वह फेफड़ोंमें पुनः शुद्ध लालरंगका बन जाता है। प्रत्येक दौरमें खनका यह होता रहता है।

‘सरोहितके लिए अजीमर्त पुत्रका कुर्बान होना यहाँ विवा-
ह है। ‘अजी-मर्त’ यह ‘अ-जीम-मर्त’ है, जहाँ अन्वित
रहता है, वह अजीम हुए अलका गया, पेहरा है। हम
अलका पकना और रसना रस होता रहता है। यह रसही
अलका अथवा अजीम-मर्तका पुत्र है। इस अलरसका एक
अल रसके रूपमें परिचित होता जाता है, यहाँ अजी-
पुत्रही सरोहितके इन्धके लिए कुर्बान अथवा बलिदान है।
यह तरह यह क्या मूल रूपमें सार्वभौम घटनाएँ रही
हैं। घटक रसना भी दिखत करें।

शुनःशेषका गोत्र

सुखं सुखं सुखं सुखं । सुखं सुखं सुखं

पुत्र शुनःशेष है । श्रवकिका ही प्रायः नाम अजीमर्त है ।
 इस शुनःशेषके भाई शुनःपुच्छ और शुनोलांगूल थे । इसका
 वंश ऐसा है-



विश्वामित्रने इसे दत्तक पुत्र माना इसलिये इसका गोत्र 'वैश्वामित्र' हुआ अतः इसका नाम ऐसा लगता है- 'आजीगर्तिः शुनःशेषः, स कुत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः' अर्थात् अजीगर्तका पुत्र शुनःशेष था, वही दत्तक होनेके कारण विश्वामित्रका पुत्र देवरात हुआ ।

शूनःशेषका मंत्रोंमें उल्लेख

‘ हुनःशर ’ नाम वेद मंत्रों में आया है, देखिये वे मंत्र ये हैं—

१ शूनःरोपो यमस्तु गृहीतः सो अस्मान् राजा
वरणो सुमोक्तु । (क. १२२।१२) = बंधनमें पड़े शूनः-
रोपने जिसकी प्रार्थना की थी, वह राजा वरुण हम सबकी
बंधनसे मुक्त करे ।

१ शून्यः शेषो द्यत् नृभीतः त्रिष्वदित्यं द्रुपदेषु
 वल्लः ॥ (क. १२.११३) - नील स्वर्णमै बंधा दुव्या शून्यः शेष
 अदित्यो प्रथमा करणे तथा ।

[illegible]

क्रमेदमें इसका नाम आता है यह मंत्र यह है—

शुनश्चित् शेषं निदितं सहस्रान् यूपान् युग्मौ अश-
मिष्ट हि यः । पवास्यदशो वि सुमुग्ध पाशान्
शेतः चिकित्त्व इह तू निपय । (अ. ५।२।७)

‘बंधनमें पड़े शुनःशेषको, हे अग्ने ! तुमने सहस्रोंमेंसे एक
यूपसे छुड़ा लिया था, निःसन्देह उगमे बड़े ही कष्ट राखे थे ।
इसी तरह बंधनोंसे हम सबको मुक्त करो ।’

यहां दिया मंत्र अग्निगोत्रके कुमार ऋषिका अथवा जनगो-
त्रीय ऋषि ऋषिका है । यहां ‘सहस्रात् यूपात्’ कहा है । इसके
अनेक अर्थ संभवनीय हैं । (१) सहस्रों यूगों, (२) सहस्र-
रूपवाले यूपसे, (३) सहस्रवार बंधे यूपसे, (४) सहस्र प्रकारके
बंधे यूपसे इ० कोई भी अर्थ लिया जाय, तो सहस्रवार बंधन
होनेकी ध्वनि इससे निकलती है । ‘अनेकजन्मसंसिद्धः’
(गी. ६।४५), ‘बहूनां जन्मनां अन्ते ज्ञानवान् मां
प्रपद्यते ।’ (गीता ७।१९) अनेक जन्मोंके तपसे शिद्धिको
प्राप्त होता है । अर्थात् अनेक जन्मतक बंधनका अनुभव करता
है, उन बंधनोंके निवारणका यत्न करता है और पश्चात् बन्धन
से मुक्त होता है । यह भाव ‘सहस्र यूप’ पदोंमें स्पष्ट
दीखता है । ‘यूप’ बंधनका चिन्ह है और वह सहस्रगुणित या
सहस्र प्रकारका है । इस रीतिसे शुनःशेषके बंधन सहस्रों थे,
केवल वह एक ही यूपको और हरिश्चन्द्रके यज्ञमें बंधा गया था,
ऐसी बात नहीं है ।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मादिति शुनःशेषो वा
एतामाजीगर्तिः वरुण-गृहीतोऽपश्यत् ।

तया वै स वरुणपाशादमुच्यत वरुणपाशमे-
चैतया प्रमुञ्चते ।

(काठक सं. १९।१।२७)

‘उदुत्तमं’ यह मंत्र अजीगर्त शुनःशेष ऋषिने देखा । इस
मंत्रके पाठसे वरुणपाशसे उसकी मुक्तता हुई । जो इस मंत्रका
पाठ करेगा वह पाशसे मुक्त होगा ।’ इसके अतिरिक्त चारों
वेदोंके मंत्रोंमें शुनःशेषका नाम नहीं है ।

अथर्ववेदमें शुनःशेषके

क्रमेदमें, बन्दी युक्तोंके गोरोसे मंत्र अथर्ववेदमें
वे नीचे दिए हैं और उनका पाठभेद भी बताते हैं ।

क्रमेदमंत्र
(शुनःशेष ऋषिः)

अथर्ववेदमें
(शुनःशेष ऋषिः)

उदुत्तमं (अ. १।२४।१५)

६।२।११-३ (२)

७।८३।१-२ (२)

उदुत्तमं, १

४ (२)

१।२०।१७-९

२०।२४।१-२

१।२०।४-६

२०।४५।१-३

१।२९।१-७

२०।७४।१-७

१।३०।१३-१५

२०।१३।१-३

अथर्ववेदमें २३ मंत्र शुनःशेषके हैं । इनमेंसे १
के हैं । सो ६ मंत्र इस समय अथर्ववेदमें नहीं
क्रमेदमें नहीं है उन ६ मंत्रोंका अर्थ इस
दिया है । अथर्ववेदके मंत्रोंसे तो यह बात अतिरिक्त
कि ये सूक्त शुनःशेषके यूपसे छुटकारेका
प्रत्युत (अथर्व० ६।२५) गण्डमालासे विज्ञा
बताते हैं और (अथर्व० ७।८३) सर्व साधारण
स्वप्ने तथा नाना प्रकारके अन्याय कष्ट दूर
सोच रहे हैं । तथा सामुदायिक उपासना द्वारा
गमनका मार्ग बताते हैं । केवल शुनःशेषके ही
तिका यहां विषय नहीं है, प्रत्युत सर्व सामान्य
बन्धनोंकी निवृत्तिका विचार इन मंत्रोंमें है, अतः
विचार सर्व सामान्य दृष्टीसेही करना चाहिये ।
पाठक इन सूक्तोंका विचार इस दृष्टीसे करेंगे
सर्व साधारण बन्धन-निवृत्तिका मार्ग जानकर
लाम उठावेंगे ।

निवेदक

१५ फाल्गुन सं. २००२

अपीपाद दामोदर

अध्यक्ष स्वाध्याय मण्डल
औध (जि. सातारा)



शुनःशेष ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदमें पष्ठ अनुवाक

(१) नामस्मरण

(१२४) ऋजीगतिः शुनःशेषः स ह्यग्रिमो वैश्वामित्रो देवगणः । १ कः (प्रतापतिः); २ ऋषिः, ३-५ स्तुतिः, ५ भक्तो वा, ६-१५ वरुणः । १, २, ६-१५ त्रिष्टुप्, २-५ धादधी ।

वरुण नूनं वतमस्यामृतानां मनामहे पार देवरय नाम ।
 सो नो भगा अदितये पुनर्दात् पितरं न एषोयं मानरं वा
 अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे पार देवरय नाम ।
 स नो भगा अदितये पुनर्दात् पितरं न एषोयं मानरं वा
 क्षमि त्वा देव सवितरीदानं वार्धाणाम् । सदायन् भगवन् नो
 यमिषि त इत्या भगः सदाभानः पुरा निदः । अतोऽहं नो देवे
 भगभक्तारय ते पयमुदरोम तदायसा । सुधांते राय वारणे
 नाह ते धर्म न सता न मनुं पदरवतामी एतदन्व वापुः ।
 नेमा आपो अतिमिषं वरुन्तीर्ते ये वातस्य प्रमितनयनम्
 सद्यो राजा वरुणो वतस्योर्ध्वं रूपं ददते पुनर्दाः ।
 नीलोत्तमः सूर्यपरि ह्यस्य एषामस्मै अन्तर्निहितः वन्द्यः स्तुः
 एवं हि राजा वरुणरव्यार सूर्यो वन्द्योऽन्तर्निहितः ।
 वरुणे पारा प्रविधातये वरुणरव्यार वरुणरव्यार हिम्
 मानं ते वापुः निपजः सद्यःसुधीं तमीमं सुमित्रो वन्दुः ।
 वातस्य हरे निष्कन्ति एतयोः सन्ति चिन्ता न सुकल्पनम्
 क्षमी य वरुण निरिक्तस्य स्या तत्तं वरुणे ह्य विदुः विदुः
 अयमस्मि वरुणस्य मन्त्रि पितावरुणस्य मन्त्रि
 त्वा त्वा यमि प्रताप वरुणरव्यार वरुणरव्यार वरुणरव्यार
 वरुणरव्यार वरुणरव्यार वरुणरव्यार वरुणरव्यार वरुणरव्यार

शुनःशेष ऋषिका दर्शन

ते दत्तं सहस्रं निपजः । ते शुनतिः उर्वी
निर्गतिं पराचैः दूरे बाधस्व । कृतं चित्त
प्र मुमुक्षि ॥ ९ ॥
प्रसाः उवा निदितातः, ये नक्तं ददो, दिवा
ईदुः । वरुणस्य इतानि नदवधानि, विचाकदाव
नक्तं पठि ॥ १० ॥

एव । इहणा वन्दमानः तव स्वा यामि, यजमानः
तव जायास्ते । नदवधानः बोधि । हे उरुशंस! नः
मा प्रमोदीः ॥ ११ ॥

हे नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः य (वरुण) नहृण,
मा वरुणः नान्मान् मुमोक्षु ॥ १२ ॥

हे नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव
नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव
नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव

हे नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव
नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव
नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव

हे नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव
नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव
नक्तं, तव दिवा, महां बाहुः । हृदः कयं केतः
दि च्छे, गृभीतः शुनःशेषः नदवधं नहृण, एनं कव

हे राजन् ! तेरे पास सैंकड़ों और हजारों सौधभिनी हैं । तेरी
शुमति बड़ी गम्भीर है । दुर्गति को नीचे सुख करके दूर प्रतिद-
धमें रखो । किये हुए पापसे हमें सुख करो ॥९॥
ये नक्षत्र (सप्तऋषि) ऊपर (आकाशमें उच भागमें) रखे हैं,
ये राजाके समय दीखते हैं, (पर ये) दिनमें कहां भन्न जाते हैं,
वरुण राजाके नियम सद्भूत हैं, विशेष वनकता हुआ वन्दना
रात्रिमें आता है ॥१०॥

हे वरुण देव ! मन्त्रके अनुसार (तुम्हें) वन्दन करता हुआ
(मैं) वही (दीर्घ आहु) तुम्हारे पास मागता हूँ, (जो) वन
करनेवाला दक्षिण (के वर्ण) से कहता है, निरादर न करना
हुआ (तुम हमारी इस प्रार्थनाको) समझो । हे बहुत प्राण
प्रशंसित हुए देव । हमारी आहुको मत घटाओ ॥११॥
वही निक्षयमे राजमें, (सौर) वही दिनमें (शान्तिमे) मुझे
बधा या, (मैरा) हृदय (—मनमें रहनेवाला) नक्षत्र भी नहीं
बढ़ रहा है, (जि) वन्दनमें पड़े शुनःशेषने जिम (वह) देव,
प्रार्थना की थी, वही राज वरुण हम सबको सुख करें ॥१२॥
नीच मन्त्रमें करते, (आप) वन्दनमें पड़े राजःशेषने प्रा-
ण (वरुण) देवकी प्रार्थना की थी कि राजा नक्षत्र वनेवाला
वरुण हमसे पक्षीकी सील देने लेंगे हमको सुख करें ॥१३॥
हे वरुण ! तेरे कोषको । हम सबमें समान शक्ति प्राप्त
है । दक्षिणकोने हुए (दिने) दक्षिण में । तुम्हारे कोष
दूर (होने हैं) । हे उरुशंस ! तुम्हारे कोष में, निरुण
राजः ! (वहा) हमारे कोष में वरुण वरुण, निरुण
हूँ (हमारे) हे वरुण हे निरुण वरुण हे निरुण वरुण
हे वरुण ! (हमारे) वरुण वरुण वरुण वरुण वरुण
निरुण वरुण । (हमारे) वरुण वरुण (वरुण)
निरुण वरुण । (हमारे) वरुण वरुण वरुण वरुण
वरुण । हे वरुण ! वरुण वरुण वरुण वरुण वरुण
(वरुण वरुण) वरुण वरुण वरुण (वरुण वरुण)
वरुण वरुण

इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र

इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र

इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र
इन्द्रके सुन्दर नामकी मन्त्र

ये कर्म हैं। मातापिताको देखनेका मतलब है जन्म धारण करना, दीर्घ आयु प्राप्त करना और ऐश्वर्यके शिखरपर पहुँचकर बड़े कार्योंका प्रारंभ करना, ये सब कार्य प्रत्येक व्यक्तिके करनेके हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रीतिसे जन्मती है, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र-रूपसे दीर्घ आयु चाहती है और ऐश्वर्यके शिखरपर चढ़कर बड़े बड़े पुरुषार्थ करके पराक्रम करना भी व्यक्तिकी बुद्धिसे बनने-वाले कार्य हैं।

इस सूक्तमें केवल तीन ही निर्देश व्यक्तिके हैं, और ग्यारह निर्देश संघके लिये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूक्त एक व्यक्तिके मुक्त होनेके लिये नहीं है, परंतु सामाजिक बंधन निश्चय के लिये हैं। सामाजिक जीवनका विचार करनेमें भी कुछ कार्य व्यक्तिके करनेके होते हैं, अर्थात् शिक्षा पाना, शरीर पोषण करना, स्नानादि करना, योगसाधन करना इत्यादि। व्यक्तिके स्वास्थ्यके लिये इनकी आवश्यकता रहती है, अतः ये कर्म करके व्यक्ति सामाजिक कार्य करनेके लिये समर्थ बने। समर्थ बनकर सामाजिक कार्य करके विश्व सेवा करे।

सामाजिक उन्नतिके लिये (१) सब मिलकर ईश्वरके पवित्र नामोंका मनन करें और उससे अपने कर्तव्योंका बोध प्राप्त करें, (२) सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नतिकी साधना करें, (३) मिल-कर बल करके भाग्य प्राप्त करें, ऐश्वर्यकी वृद्धि करें, (४) अपने सामाजिक पाप दूर करें, समाजके दोष दूर करें, (५) धर्म नियमोंमें रहें (६) यज्ञ करें। इस तरहके नानाविध कार्य मनुष्य करें। ये कार्य संघद्वारा ही हो सकते हैं, क्योंकि सब समाज-की उन्नतिके साथ इनका संबंध है। 'अस्मान् सुमोक्तु' (मं. ३२) हम सबकी बंधनमे मुक्तता करे इस मंत्रसे वैदिक मुक्ति संघमुक्ति है, वैयक्तिक मुक्ति नहीं है, इस बातका पता लगता है। समाजका समाज सुधारना चाहिये, तब ही इस भूमि-पर सर्वोत्तम स्थापित हो सकता है। यह व्यर्थ है जो इस समाजके उन्नति के लिये धन-दौलत धोपित किया है।

ईश्वरका स्वरूप

अग्नि, वरुण, सविता, आदित्य, अमृतानां प्रथमः, अमृतं विदुः, अमृतं, प्रथमः, देव इत्येव नाम इस सूक्तमें मिलते हैं। अमृतं अमृत है। कई लोग इनमें विभिन्न देवोंका जिक्र किया है, जैसे अमृतं अमृत है, परंतु हमारे मतमें वह अमृत अमृत ही है। अमृतं प्रथम मंत्रमें ही 'अनेक

अमर देवोंमें किस एक मुख्य देवके ऐसा प्रश्न पूछा है और द्वितीय मंत्रमें सबसे मुख्य अग्नि देवके नामका हम मन्त्र है। अतः आगे तृतीय मंत्रसे 'सविता' आदि देवके वाचक मानना योग्य है। क्योंकि एक मनन करनेकी प्रतिज्ञा द्वितीय मंत्रमें करके मंत्रसेही दूसरे देवकी भक्ति करनेका कोई दीखता है। एकही देवकी भक्ति करनेकी देवोंकी नहीं। अतः सब नाम उसी एक ही युक्तियुक्त और पूर्वापर संबंधके अनुकूल है। माना है।

कई विद्वान् पृथक् पृथक् देवोंकी भक्ति मंत्रोंमें देखते हैं, और अग्निको छोड़कर वरुणके बाद आदित्यकी, ऐसी कल्पना करते हैं। प्रथम तो प्रारंभिक दोनों मंत्रोंके विधानसे और 'एक, सत् है जिसको शानीजन अग्नि, वरुण कहते हैं' (ऋ. १.१६४।४६) ऐसा जो वेदोंमें सत्तावाद कहा है, उस वैदिक सिद्धांतके भी लिये इस सूक्तमें जो अग्नि, वरुण, सूर्य, सविता हैं, वे एक मूल मुख्य आत्मतत्त्वके वाचक हैं, अनेक नामोंका मनन इस सूक्तमें किया गया है। युक्तियुक्त है। इसके गुणधर्म ये हैं—

१ सदा-अचन- वह सदा सबकी सुरक्षा करता है, अचन अचन है।

२ सविता (प्रसविता) - वह अपने अन्तर्गत प्रसव करता है,

३ देवः - वह प्रकाशमान है, सब सुखोंका दाता है,

४ सः (यः) भगः दधे- वह सब देवोंका दाता है,

५ चार्याणां ईशः - सब श्रेष्ठ धर्मोंका स्वामी है,

६ भगभक्तः - धनका बंटवारा योग्य करता है, (५)

७ वरुणः - वरिष्ठ देव, श्रेष्ठ प्रभु है,

८ पूत-दक्षः - पवित्र कार्योंमेंही अपने बल प्रयत्न करता है,

९ राजा - वह सब विद्वत्का राजा है,

१० ईश्वरके बल, पराक्रम और उत्तमत्व से सबका, और न कोई लांघ सकता है। (६)

खरने एक इस बिना आधार आकाशमें टांग दिया है,
तात्पर्य नीचे फैली हैं, इनकी जड़े ऊपर हैं, और सब
रूप फैलाये हैं। (७) गीतामें 'सर्वमूलं अधः-
ज्ञा जित्वा वर्गन (स. १५ में) किया है वैताही
दीखता है।]

रिवरने सूर्यके लिये विस्तृत मार्ग बनाया है, अन्तरिक्षमें न उत्पन्न किया है और यही सबके अन्तःकरणोंके दूर करता है। (८)

ईश्वरने सहस्रों रोगनिवारक औषधियाँ निर्माण की हैं ।
 गुणमति सबपर समान है । यहाँ सबको आपत्तिको
 सकता है और पापने दवा सकता है । (९)

ईश्वरने ये नक्षत्र आकाशमें बड़े कंचे स्थानपर रखे
 प्रीति दीखते हैं, पर दिनमें दीखते नहीं। इसके निय-
 तोंई लांघ नहीं सकता। इसीकी योजनामें चमकता
 नक्षत्र राश्रीमें प्रकाशित होता है। (१०)

ईश्वरके पास हम दीर्घ आयु मांगते हैं । (११)

तः अस्मान् मुमुक्षु- तब यही कहते हैं कि
मुहम सचको बंधनसे मुक्त करनेवाला है। (१२)

विद्वान्- वह ज्ञाता है,

स्वदृष्टि- न दबनेवाला, जिसपर किसी दूसरेवा
र नहीं चलता.

यद्वर्णः पादान् विमुक्तोऽपि - प्रभु पादोत्तरे तमे

२. एनं त्वय सुख्यात्- २४ (जीव) को सुखा करे,
३. एनदे, (१३)

१. साधुरः (साधुः) - जीवनरसि, देवता, शिवजी
रसिने सब रसों में हार है। ईश्वर, साधर,

प्रश्न:- विधि मंत्री, (१४)

१. सादित्य- (अ-रिति) अस्मात्, अस्मात्, अस्मात्,
२. (अस्मात्) ओ सस्मि पठ्य सस्मि ह, सस्मि
३.

४) तब मैंने अलग-अलग: स्थान- प्रकृति विज्ञान के
प्रकार के प्रयोगों के द्वारा निष्कर्ष निकाला है। (१५)

[illegible]

मनन करना चाहिये। यह मनन मनुष्यकी उन्नति करनेके लिये उत्तम मार्ग दर्शन कर सकता है।

एकके अनेक नाम

इस सूक्तमें एक प्रभुके अनेक नाम हैं यह बात सूचित की देखिये—

१ प्रथम और द्वितीय मंत्रमें बनेक 'देवोंमें किसी एक देवके नामका मनन' करनेकी इच्छा प्रकट हुई है ।

२ वागिके मंत्रोंमें मननाय देवका वर्गन अनेक नामोंसे किया है। इससे सिद्ध होता है कि वे नाम एकही देवके हैं जिसकी उपासना करनी है।

३ तृतीय मंत्रमें 'साविता और ईश' के नाम उली एक प्रभुके आये हैं, ये दो देवोंके नहीं हैं, पर एक ही देवके ये दो नाम हैं।

४ सप्तम मंत्रमें 'पूतदक्ष, राजा, वरुण' ये तीन नाम प्रभुके लिये ही हैं। राजा और वरुण ये नाम आगेके मंत्रोंमें भी आवे हैं।

५ तेरावें मंत्रमें वादित्य, विद्वान्, अदग्ध, राजा, वरुण, ये उर्लाके नाम हैं ।

६ चौदहवें मंत्रमें 'वसुध' नाम ईश्वरके भिये ही है। इस तरह यह सूत्र, बड़ेक नाममें एक ही देवताका वर्णन होना है, यह बात स्पष्ट रूपसे बतलाता है।

तीन पात्रा

पंखों से निकल उठना, मध्यम और अवम ऐसे तीन पात्र हैं, उनके लीला कालें ऐसी समुदाय बनती हैं। हास्य समुदाय तीन पात्रों से बना है, जैसे कि बंधन बनकर हैं। निरुद्धा अविद्या और देवता से तीन पात्र समुदाय हैं। उच्च मध्यम उच्च कालों निरुद्धा हास्य है, उच्च पात्र कालों उच्च प्रमाणा कालों अविद्या हास्य है, और उच्च कालों देवता हास्य है।

इस भी बात का ध्यान रखें कि यदि कोई व्यक्ति को कुछ देना हो तो उसे दान के रूप में ही देना चाहिए। इससे वह अपने कर्मों से बचता है और दूसरों को भी शिक्षा मिलती है।

मनुष्यके लिये बोध

इस सूक्तसे मनुष्यके लिये प्रतिदिनके आचारविचारके लिये बड़ा बोध मिल सकता है। इसका थोड़ासा नमूना यहां देते हैं—

१ अमृतानां कस्य देवस्य चारु नाम मनामहे—
अमर देवोंमें जो अधिक सुख देनेवाला है, उसके अनंत नामोंमें जो नाम मंगलकारक है उसीका मनन करना योग्य है। अर्थात् जो नाशवान् हैं, अमंगल हैं, हीन हैं उनके नाम या वृत्तका कदापि मनन करना योग्य नहीं है। जो सबसे अधिक (कः) सुखदायी है उसीका नाम मननके लिये लेना योग्य है। नाम अनंत हैं, पर उनमें जो (चारु) सुंदर, रमणीय, मंगल हैं उनका ही आलंबन करना चाहिये। (मं १, २)

२ अदितये पुनः दातु-अखंडित, सर्वतंत्र स्वतंत्र शक्ति-की सिद्धिके लिये पुनः पुनः दान दो, आत्मसमर्पण करते रहो। [जीव अंश है अतः वह एक 'खण्ड' है, अल्प है। उसको अखण्ड, पूर्ण बनाना है। नरका नारायण होना है, इसलिये खण्डभावका समर्पण ही एकमात्र साधन है।](१-२)

३ सदा-भवन्- सदा निर्मलेंकी सुरक्षा करते रहो (३)

४ देवः-(दानात्) दान करते रहो, (३)

५ अ-द्वेषः- द्वेष न करो,

६ पुरा निदः- निन्दा न करो, (४)

७ भगवत्- अपनी संपत्तिको वस्त्रात्रमें बांटो,

८ भवसा उद्दाम- अपने बलसे उन्नतिको प्राप्त करो,

९ रायः मूर्ध्नि आरभे- ऐश्वर्यके शिखरपर चढ़ो और

वहां अनेक शुभ कर्मोंकी आरंभ करो, (५)

१० क्षत्रं सहः मनुं न आपुः- क्षम और उत्साह इतना बढ़ाओ कि जिसको

११ पूतदक्षः- पवित्र कर्मोंमें

१२ हृदया-विधः अपबक्ता-इसके

माँवोंका निषेध करो, (८)

१३ सुमतिः उर्वी गभीरा- उम्मा और गंभीर रहे (९)

१४ निर्ऋति दूरे बाधस्व- अपनी हटा दो, ऐसा प्रबंध करो कि कभी तुम्हारी दुर्गति

१५ आयुः मा प्रमोषीः- जिससे आयु ऐसा कोई कार्य न करो, (११)

१६ हृदः केतः वि चष्टे- अपने कहना है वह देखो, अपना हृदयका ज्ञान मां सुनो, (१२)

१७ विद्वान् अदब्धः- ज्ञानी बनो, किसी नीचे न दब जाओ, (१३)

१८ पाशान् सुमोक्तु- अपने पाशों को नोसि सुक्त हो जाओ (१३)

इस तरह इस सूक्तमें मानवधर्मका बोध पद और वाक्य हैं। 'देवता' जैसा करता है वैसा इस सूक्तको ध्यानमें धारण करके सूक्तका मनन मंत्रोंसे तथा मंत्रके अवयवोंसे मानव धर्मका बंधु सकता है। अब आगेका सूक्त देखो—

(२) विश्वका सम्राट्

(ऋ. १. २. ५) आजीगतिः शुनःशेषः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। वरुणः। गायत्री।

यच्चिद्वि ते विदो यथा प्र देव वरुण ब्रतम्
मा नो यथाय ह्यन्यं जिहीष्मानस्य रीरधः
वि मृत्तीकाय ते मनो रथीरधं न संदितम्
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति यस्य इष्टये
कदा अत्रस्थियं नग्मा यरुण करामहे
तस्मिन् सम्राजमानादे घनन्ता न प्र युच्छतः
वेद मा रीनां पदमन्नाश्चिरेण पतन्ताम्

। मिनीमसि, पविष्यि
। मा ह्युणानस्य मय्ये
। गीर्भिर्धरण सीमदि
। ययो न यसतीरुप
। मृत्तीकायां रुचक्षसम्
। धृतयताय दागुये
। वेद नायः समुद्रियः

शुनःशेषश्रविका दर्शन

, सू. २५]

वेद मासो घृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ।
 वेद वातस्य वर्तनिमुनेः श्वस्य बृहत् ।
 नि पसाद घृतव्रतो वरुणः पस्त्या रेखा
 सतो विश्वान्यद्रुता चिकित्वां अग्निं पश्यति ।
 स नो विश्वाहा सुक्रतुपादित्यः सुपथा करत् ।
 विश्वद् द्रष्टुं हिरण्यं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
 न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुहाणो जनानाम् ।
 उत यो मातुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
 पता मे यन्ति घातयो गावो न गन्धूतीरु ।
 सं नु वोवावहै पुनर्यतो मे मघ्वाभृतम् ।
 ददौ नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमग्निं क्षमि ।
 इमं मे वरुण धुषी हवमघा च नृळ्य ।
 त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च न्मक्ष राजसि ।
 उदुचनं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं घृत ।

वेदा य उपजायते ८
 वेदा ये अध्यासते ९
 साम्राज्याय सुक्रतुः १०
 कृतानि या च कर्त्वा ११
 प्र ण आयुं पि तारिषत् १२
 परि स्पशो नि येदिरे १३
 न देवमभिमातयः १४
 अस्माकमुदरेष्वा १५
 इच्छन्तीरुचक्षसम् १६
 होतेव क्षदसे प्रियम् १७
 पता जुपत मे गिरः १८
 त्वामवस्युरा चके १९
 स यामनि प्रति धुषि २०
 अवाधमानि जीवसे २१

वेदा— हे वरुण देव ! क्या दिशः, ते यद् चिद्
 परि परि प्र निनीनति ॥ १ ॥

विद्यालय हलदे दधाय नः मा तीरिषः । हृणानस्य
 मा (तीरिषः) ॥ २ ॥

वरुण ! तदीः संदितं कथं न सुवीचय ते मनः गीर्भिः
 मिदि ॥ ३ ॥

वाः बालीः उप (परतिभिः मे विमन्यतः दस्युरप्ये हि
 तसि, ॥ ४ ॥

प्रदिपं नं दस्युस्तं वरुणं ब्रह्म सुवीचय मा वरात-
 ॥ ५ ॥

अर्थ— हे वरुण देव ! जैसे अन्य मनुष्य (प्रमाद करते हैं,
 वेदों) तेरे जो भी नियम (हैं, उनके करनेमें) प्रति दिन (हम
 भी) प्रमाद करते ही हैं ॥ १ ॥
 (तेरा) निरादर करनेवालेका बप करनेके लिए (अगर
 ठगवे तेरे) दस्युके समाने हमको मरू छडा रखा । (तथा)
 दुष्ट हुए (तेरे) शत्रुके समाने (हमें) मरू (छडा रखा) ॥ २ ॥
 हे वरुण ! जिस प्रकार रथों और जाने वके हुए घोड़ोंको
 (बानत करता है, उस तरह) मुझ देनेवाले तेरे मनको
 होशियारता हम दिलमें प्रकट करते हैं ॥ ३ ॥
 जिस तरह पर्य करने घोड़ोंको और (दौड़ने में, उप
 तरह) मेरे दिलमें वरुण की बुद्धिमें धनकी प्रशंसा मिले हुए
 हुए ही हैं ॥ ४ ॥
 परमेश्वर वरुण होमपूजन में दिलमें इडा बरानेको हम
 एवं हर सुक्रतमिले दिलें बुलवते ॥ ५ ॥
 प्र वरुण करनेवाले वरुणके दिले (सुखी) इच्छा करते
 होते (दे मित्र और वरुण) हमन मरुके रथ (होमपूजन)
 चढ़ाने हैं, (दे हमें वरुण) हम नही
 क्षम्येहमे वरुणके परिदोष
 वरुण की) वरुणके वरुण वरुण
 मरुके हैं ॥ ६ ॥
 निजमुद्रा वरुणके वरुण
 वरुण वरुणके वरुण
 वरुण वरुणके वरुण

समाप्त

उरोः ऋष्यस्य बृहत्तः वातस्य चर्तर्नि वेद । ये सध्यासते
(तान्) वेद ॥ ९ ॥

धृतमवः सुकृतुः वरुणः पस्यासु साम्राज्याय आ नि
ससाद ॥ १० ॥

अतः विश्वानि अमुता चिकित्वान्, या कृतानि, (या) च
कर्त्वा, अग्नि पश्यति ॥ ११ ॥

सुकृतुः सः आदित्यः विश्वाहा नः सुपथा करत् । नः
आयूँपि प्र तारिपत् ॥ १२ ॥

हिरण्ययं द्रौपि विभ्रत् वरुणः निर्णिजं वस्त । स्पशः परि
नियेदिरे ॥ १३ ॥

दिप्सवः यं न दिप्सन्ति । जनानां बृहणः (यं) न
(द्रुहन्ति) । अग्निमातयः देवं न (दिप्सन्ति) ॥ १४ ॥

उत यः मातुषेयु यशः आ चक्रे । अस्मामि आ (चक्रे)
अस्माकं उदरेषु आ (चक्रे) ॥ १५ ॥

उत्तमक्षसं हृष्टन्तीः मे भीतयः, गावः न गम्यतीः अनु,
परा यान्ति ॥ १६ ॥

यतः मे मधु आमृतं, होता इव मियं क्षदसे, पुनः तु
मं बोधावह ॥ १७ ॥

विश्वदर्शतं दर्शं तु । अग्नि रयं अग्नि दर्शम् । पृता मे
गिरः क्षपत् ॥ १८ ॥

हे वरुण ! हमें मे हवं श्रुति । अथ मृळय च । अन्वस्युः
त्वां आ चक्रे ॥ १९ ॥

हे मेखिर ! त्वं दिवः च गमः च विश्वस्य राजसि । सः
(त्वं) यामन्ति प्रति श्रुचि ॥ २० ॥

नः उत्तमं पाशं दत्तं सुमुखि, मध्यमं वि श्रुत, जीवसे
अथ (वृत्) ॥ २१ ॥

विशाल महान और बड़े वायुके मार्गके
है तथा जो अधिष्ठाता होते हैं (उत्तम मी)

नियमके अनुसार चलनेवाले, उत्तम च
देव प्रजाओंमें साम्राज्यके लिये आकर बैठे हैं ।

इस लिये सब अमुत कर्मोंको (करनेके लिये)
(यह वरुण देव), जो किया है, (और के)
(उस सबको) पूर्णतासे देखते हैं ॥ ११ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले वे अदिति पुत्र (वत्)
हमें सुपथसे चलनेवाले करे । और हमारी अनु

सुवर्णमय चोरा धारण करनेवाले वरुण देव
तेजस्वी वज्र धारण करता है । उसके दूत (मित्र)
ठहरे हैं ॥ १३ ॥

घातक दुष्ट लोग जिसकी दुष्टता नहीं करते
करनेवाले जिसका नहीं द्रोह करते । शत्रु
(पीडा देते) ॥ १४ ॥

और जिन्होंने मनुष्योंमें यश फैलाया है ।
कुछ) किया है । हमारे पेटोंमें मी (सुंदर)
की है ॥ १५ ॥

उस सर्वसाक्षी (प्रभुकी) इच्छा करनेवाले
गौवें गोचर भूमिके पास जानेके समान, (उन)
तक जाती हैं ॥ १६ ॥

जो मैंने यह मधु भरकर लाया है, हवत्त
मिय (मधुर रसका तुम) मक्षण करो । फिर
कर बातें करेंगे ॥ १७ ॥

विश्वरूपमें दर्शनीय (देवकी) निःसंदेह मैं
भूमिपर उसके रथकी मैंने देखा है । ये मेरी
स्वीकार की हैं ॥ १८ ॥

हे वरुण । मेरी यह प्रार्थना सुनो । आज
सुरक्षार्थी इच्छा करनेवाला मैं तुम्हारी स्तुति क

हे बुद्धिसे प्रकाशित होनेवाले देव । तुम
और सब विद्वपर राज्य करता है । वह (तुम)
के पथान् उसका उत्तर दो ॥ २० ॥

हमारे उत्तम पाशको खुला करो, हमारे
ठीला करो और दीर्घ जीवनके लिये मेरे स
बोल दो ॥ २१ ॥

मो! मेरे प्रमादोंकी क्षमा करो

मो ! मेरे प्रमादोंकी क्षमा प्रार्थना की है, कि 'वह सूँके पहिले दो मंत्रोंमें प्रभुसे प्रार्थना की है, कि 'वह हमारे प्रमादोंकी हमें क्षमा करें।' क्योंकि हम मानव हैं, कितनी भी सावधानी रखी तो भी प्रमाद हमसे होता है, कितनी भी सावधानी रखी तो भी प्रमाद हमसे होता है, ऐसी अवस्थामें यदि प्रत्येक प्रमादके लिये कठोर दण्ड हो, तो फिर वध आदि दण्डसे ही प्रभुको मज्जूर हुआ, तो फिर प्रभुही पाना मनुष्योंके लिये सर्वथा असंभवही है। यदि प्रभुही न होते हुए कठोर दण्ड देनेवाला क्रोधी हुआ, तो कितनी शरण जायें ? इसलिये इस सूँके प्रारंभिक प्रभुकी ऐसी प्रार्थना की है कि वह हमपर दया करे, और हमारे अपराधोंकी हमें अपनी अगाध कृपासे क्षमा करे। उनकी सहलाँ आँखोंके सामने हम कहाँ छिप जायें ? उनकी दयाकी हि शरण लेते हैं।

हम प्रभुकी दयाकी हि शरण लेते हैं।
 हम मन्त्रोंमें जो विनम्रभाव है वह प्रभुभक्तिके लिये
 आवश्यक है। अतः इस विनम्रभावसे उपासक भक्त
 प्रतिदिन ऐसी प्रार्थना करें कि, 'हे प्रभो ! जैसे सब वन्य
 संसार प्रमाद करते रहते हैं, वैसे हमारे हाथसे भी
 न, अपने प्रमाद होते रहते हैं, इसलिये हमारे प्रत्येक
 किये हुए कर्ममें हीकर हमें दृष्ट न करो। दयाकी
 हमारे ऊपर रहो।' (१०)२

तेरी दयाका आश्रय

जैसे प्रभो ! जैसे सब वन्य

तेरी दयाका आश्रय

तेरी दयाका आश्रय

मेरे तीसरे मन्त्रमें कहा है कि "हे प्रभो! जैसे थके घोड़े-
गा मात्तक दवा करके उसको विश्राम देता है, उस प्रकार
अंतरमें प्रलब्ध और दुःखी हुमा हूं, इसलिये तुम्हारी
करता हूँ कि स्वामीकी तरह तूम मुझपर दया करो और
स्वप्नी बहुत दयासे सुली करो। मेरे योग्य कर्म न भी
आपि तूम अपनी दया प्रकट करके मुझे सुली करो। मैं
ही प्रार्थना ही कर सकता हूँ।" प्रजादशील होनेके कारण
मुझे यद्गर्भ रोगों की ऐसी निद्रा नहीं है, तथापि तुम्हारी
ही मैं पात्र बना गूणा, श्री मेरी प्रार्थना है। (मं.३)

होने लगे हैं, ऐसा नहीं है।
 ही मैं पात्र बना गूंगा, वही मेरी प्राथना है।
 ये मेमका काटच दूर है जिस तरफ वहाँ दिनभर
 उधर पूज्य बन कर दानकी विधानके लिये कानने कानने
 के ही और ही लगे हैं, और वही विधान पाते हैं, वही
 मेरी दुखियों और मेरी विचारधाराएँ इस विधान इधर
 और पूज्य रही हैं, परंतु फिर दानकी और दानक सुखकी
 हींसे दुन्दरे ही काटचमें कानी है और वही दानक सुख

(पुनः)

और आनन्द पाती है।' (मं. ४) इस मंत्रका कथन कितना हृदयस्पर्शी है इसका अनुभव पाठक करें।

र आनन्द पाती है। (मं. ५)
हृदयस्पर्शी है इसका अनुभव पाठक करें।
पांचवे मंत्रमें हृदयकी उत्कट इच्छा यह प्रकट हुई है कि
‘ जो प्रभु सबकी सुरक्षितता करनेका, सामर्थ्य रखता है, जो
विश्वका नेता और संचालक है, जो चारों ओर विशाल दृष्टिसे
सबकी गथातप्य रीतिसे देखता है, जो सबसे श्रेष्ठ है, उस सुख-
दायी प्रभुकी हम सब मिलकर कब उपासना करेंगे? ’ कब वह
हमारे सामने साक्षात् दर्शन देगा? हम आतुर हुए हैं उसकी
भक्ति करनेके लिये, अतः चाहते हैं कि उसके साक्षात्कारका
समय शीघ्र प्राप्त हो और हम उस प्रभुकी आनन्दकी प्राप्ति होने-
तक अथेच्छ उपासना करें। (मं. ५)

यह शीघ्र प्राप्त हो और हमें उचित
तक यथेच्छ उपासना करें। (मं. ५)
'ये मित्र और वरुण ऐसे हैं कि जो व्रती और दाता पुरुषकी
उपासना करते हैं, वे कभी अपने भक्तों त्याग करते नहीं।' (मं. ६) यह दृढविश्वास इस मंत्रमें व्यक्त हुआ है। भक्तों के
प्रयत्न व्यर्थ कभी नहीं जायेंगे यह विश्वास यहां व्यक्त हुआ है।
हर एक उपासकके अन्तःकरणमें ऐसे विश्वास अवश्य होना
चाहिये।

प्रभु सर्वज्ञ है

हय । प्रभु सर्वज्ञ ह

आगे के तीन संज्ञों में प्रभु की सर्वज्ञता का उतम वर्णन है- 'वह प्रभु आकाश में उड़नेवाले पक्षियों की गति जानता है, कौनसा पक्षी कहाँ से उड़ा है और कहाँ जायगा वह सब उसको पता है, उसमें शतशततः घुलनेवाली नौकाएँ किस गतिसे घूम रही हैं, उनमें से कौनसी नौका अपने स्थानको ठीक तरह पहुंचेगी और कौनसी नहीं वह सब उस प्रभुको पता है । वर्षके बाढ़ महीनों में और (तीसरे वर्ष आनेवाले) तेरहवें पुरुषोत्तम मासमें क्या उत्पन्न होता है और उससे प्रजा की उन्नति कैसी होती है वह सब उस प्रभुको पता है । बारों और संचार करनेवाले महान् सर्व प्राण वाइकी गति कैसी होती है वह भी उसको पता है और इन सबपर जिनकी निम्ननी है उन सब अधिष्ठाता देवताओं को भी यथोक्त ज्ञान उस प्रभुको है । ' (७-९) इस तरह हर प्रभु सर्वज्ञ है ।

विश्वयापी साम्राज्य

प्रमुका विश्वव्यापी साम्राज्य

अपना साम्राज्य चलाता है। वहाँ रहकर विश्वमें क्या हो रहा है, क्या किया गया है और क्या करना चाहिये इसका यथा-योग्य निरीक्षण करता है। वहाँ उत्तम कार्य करनेवाला प्रभु सबको बंधनसे छुटकारा करा देनेके लिये सब मानवोंको उत्तम मार्गसे चलावे और सबसे उत्तम कर्म होनेके लिये उनको दीर्घ आयुभी देवे।' (मं. १०-१२) यहाँ प्रभुके अनुल सामर्थ्यका भी वर्णन है, और उनको सहायताकी भी प्रार्थना है।

सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन

'उस प्रभुके ऊपर सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन है, मानो वह प्रभु जरतारीके कपड़े पहनकर और ऊपर बैसाही दुपट्टा लेकर खड़ा है। इसके दूत चागों और संपूर्ण विश्वमें उसीका कार्य करनेके लिये घूम रहे हैं। वे हम सबके चालचलनको देख रहे हैं। कोई दुष्ट शत्रु या द्रोही इस प्रभुको क्षीणतरह कष्ट नहीं दे सकता इतना इसका सामर्थ्य है।' (मं. १३-१४)

'उस प्रभुनेही मानवोंमें कर्तव्योंको यथास्वी किया है। वह जो करता है वह कभी अधूरा नहीं करता, जो करता है वह यथायोग्य, यथातथ्य परिपूर्ण करता है अतः उसमें कभी त्रुटि नहीं होती। मनुष्यके पेटमेंही देखिये उसने कैसी उत्तम रचना की है कि जिससे सत्रय अन्नसे अन्नरही अन्नरसे शरीरका संगठन होता रहता है। ऐसाही सब विश्वभरमें हो रहा है।' (१५)

'जहाँ जहाँ घामशी भूमिके घाम दौड़नी हुई जाती है, वैसी ही मेरी दृष्टिही इसी प्रभुके घाम दौड़ रही है। इस प्रभुको आग करनेके लिये जो भी मधुरतायुक्त रस सुने मिला है वह सब मैंने उसको अर्पण करनेके लिये इकट्ठा करके रखा है। इसका वह स्वीकार करे और पश्चात् उस प्रभुसे मेरा दिव्य योग्यता कायस्थान होता रहे।' (मं. १६-१७)

हृत्कारका आक्षान्तकार

अग्रे किन्हीं अनेककी बात है कि— 'मैंने उस विश्वत्पते में निहित होनेके प्रभुका साक्षात् दर्शन किया है। ऐसा दृष्ट्यापन न हो रहा है, यथा-यथा है, वैसाही वह प्रभु मेरे मनुष्य स्वभाव में। वह अब मेरी प्रार्थना सुने। हे प्रभो ! मेरी प्रार्थना सुने ! आर्यो मुझे सुनो करो ! अर्यों सुनो होनेके लिये मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ। अतः हे प्रभु मुझे आनन्दमय कराओ। हे सुविप्रश्रवण प्रभो ! तुम्हारा सब उस जगत्में दृष्ट्यापन करने का प्रयत्न है। वह हमारी प्रार्थनाओंका प्रकाश करते रहती

पूर्वता करे और हमें पूर्ण ज्ञानसे (मं. १८-२०)

बंधका नाश

'हे प्रभो ! ऊपरके उत्तम मन्त्रों के साथ धिक्के करो और मुझे मुक्त करो।' (मं. २१) यह मुक्त अर्थात् हृदयस्थी है और मुक्त मरपुर मरा है। पठक इसका वर्णन करते हैं जो आशय ऊपर दिया है उनका मत को। अपने मनको खोल प्रोत मर दे।

आदर्श पुण्य

इस मन्त्रानुसार आदर्श पुण्य करने की बातें पद ये हैं—

- १ मृच्छाङ्कः—जनोंको सुख देनेवाला, (मं. १)
- २ क्षत्रधारीः—पराक्रमसे जोमानेकता, दृढ़ता, शक्ति जिसमें अत्यधिक है,
- ३ नरः—नेता, समानको चलानेवाला,
- ४ ऊरु-चक्षुः—विस्तृत दृष्टिसे देखनेवाला, सर्व दृष्टा, (मं. ५)
- ५ धृत-व्रतः—व्रतोंको धारण करनेवाला, करनेवाला, (मं. ६, १०)
- ६ सुक्रतुः—उत्तम कर्म करनेवाला, कर्मों

करनेवाला, ७ पत्न्यासु नि पत्नाद—कन्या प्रप्रेष (मं. १०)

८ कृतानि कर्त्तव्या अभिपश्यति—कर्मों को करना है, इसको ठीक तरह देखनेवाला (मं. १)

९ आदित्यः (अदितेः अयं)—जन्मने रहता है, (आ-दाता) सबोंका जो स्वकार करता है, जो दिन करता है,

१० विश्वाहा नः सुपथा करतु—सब मार्गों से ले जाता है।

११ आयुषि प्र तारिषन्—दीर्घ आयु (मं. १२)

१२ दिक्पथः दुहाणः अस्मिन्मयः दन्ति—दृष्ट आनन्द और दीर्घी जिसको किसी दादराने

शुनःशेष ऋषिका दर्शन

शुनःशेष ऋषिका दर्शन
शुनःशेष ऋषिका दर्शन
शुनःशेष ऋषिका दर्शन

शुनःशेष ऋषिका दर्शन
शुनःशेष ऋषिका दर्शन
शुनःशेष ऋषिका दर्शन

तीन पाश

तीन पाश
तीन पाश
तीन पाश

बहुवचनके प्रयोग

बहुवचनके प्रयोग बहुत है, देखिये--
जैसे भी बहुवचनके प्रयोग बहुत है, देखिये--
जैसे भी बहुवचनके प्रयोग बहुत है, देखिये--

(३) प्रिय प्रजापति

(ऋ. १।२६) आजीर्णः शुनःशेषः स इन्द्रियो वैश्वानिन्द्रो देवराजः । क्षत्रिः । गायत्री ।
(ऋ. १।२६) आजीर्णः शुनःशेषः स इन्द्रियो वैश्वानिन्द्रो देवराजः । क्षत्रिः । गायत्री ।

वसिष्ठा हि नियेष्य यज्ञाः पूजां पते
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मनमिः
आ हि यमा मृत्यो पितापियंजनाय
आ नो यहाँ रिशदन्तो यरुणा मित्रो अर्यमा
पूर्व होतास्त्व नो नन्दस्त्व सत्यस्त्व च
यन्त्रिचरि सत्यता तना देवदेवं यजामहे
प्रियो नो अस्तु विश्वहितोऽसौ मन्द्रो वरेण्यः

नमो नो अध्वरं यज्ञ
अग्ने दिविमता यज्ञः
सखा सत्ये वरेण्यः
सद्वन्तु मनुषो यथा
इमा उ पु धृषी मित्रः
मे इत्येत दधिः
प्रियाः स्वर्गदो वयम्

१
२
३
४
५
६
७

स्वप्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः
अथा न उभयेषामममृत मर्त्यानाम्
विश्वेमिरने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः

। स्वप्नयो मनामहे
। मिथः सन्तु प्रशस्तयः
। चनो वाः सहसा यज्ञः

अन्वयः— हे मियेध्य ऊर्जा पते ! वस्त्राणि वसिष्य हि ।
सः नः इमं अध्वरं यज ॥ १ ॥

हे सदा यविष्ठ अग्ने ! नः वरेण्यः होता मन्माभिः
दिविस्मता वचः नि (सीद) ॥ २ ॥

वरेण्यः पिता सूनवे, आपिः आपये, सखा सख्ये आ
यजति स्म ॥ ३ ॥

रिशादसः वरुणः मित्रः अर्यमा नः बर्हिः आ सीदन्तु,
यया मनुषः ॥ ४ ॥

हे पूर्यः होतः ! नः मत्स्य सख्यस्य च मन्दस्व । इमाः
गिरः उ सु शुभि ॥ ५ ॥

यत् त्वि हि शश्वता तना देवदेवं यजामहे, (तत्)
हविः त्वे इत् हूयते ॥ ६ ॥

विश्वपतिः, होता, मन्द्रः, वरेण्यः, नः प्रियः अस्तु । वयं
स्वप्नयः प्रियाः (भूयास्म) ॥ ७ ॥

स्वप्नयः देवासः नः वार्यं दधिरे । स्वप्नयः च मनामहे ॥ ८ ॥

हे अनृत ! अय मर्त्यानां नः उभयेषां मिथः प्रशस्तयः
मन्तु ॥ ९ ॥

हे मह्यः यज्ञो अग्ने ! विश्वेभिः अग्निभिः इमं यज्ञं इदं
वचः वनः वाः ॥ १० ॥

अर्य—हे पवित्र और बल्लेके स्वर्ग !
वह (तू) हमारे इस यज्ञका यजन को !
हे सदा तदग्य अग्नि देव ! (तू) हमारे
तू हमारे) मन्ताय दिव्य वचन (इन्नेके लिखे)
यहाँ) बैठो ॥ १ ॥

अथ पिता अपने पुत्रके, बन्धु करने अपने
अपने मित्रको (वंसा यह अग्निदेव होने)
शत्रुनाशक वरुण मित्र और अर्यमा हमारे
मनुष्य बैठते हैं (अथवा जैसे मनुके यज्ञके बैठते)
हे प्राचीन होता ! हमारे इस मित्रवत्ने (होते)
(और हमारा) यह मायन उत्तम रतिने (होते)
जिस तरह शाश्वत कालमें और मन्तन गतिने
हम यजन करते आये हैं, (वही) हवि तुम्हें दिये
प्रजाओंका पालक, हवनकर्ता, अग्निदेव
अग्नि हमारे प्रिय हो। हम भी उत्तम अग्निदेव
प्रिय वने ॥ ७ ॥

उत्तम अग्निसे युक्त देवोंने हमारे लिये को
रखा है । (इसलिये हम) उत्तम अग्निसे युक्त
नामका) मनन करते हैं ॥ ८ ॥
हे अनर देव ! (तुम अनर हो) और हम
हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त मानन होते हैं
हे बल्लेके साथ प्रकट होनेवाले अग्निदेव,
यहाँ इस यज्ञका और इस स्तोत्रका (स्तीकार
पर्याप्त) अक्षका प्रदान करो ॥ ९ ॥

प्रिय प्रभुकी उपासना

सब वस्तुओंसे प्रभुही अर्पण प्रिय है इसलिये मन्त्रजन उसकी
उप उपासना करो—

हे सबसे अर्पण पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो !
तुम अपने प्रकाशकी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो जाओ और हम
जिस वस्त्रका अर्पण कर रहे हैं उसको यथायोग्य गीतसे संवद
करो ! ! हे प्रभो ! तुम सदा तदग्य हो, (वाच्य और वार्थक्य
के अन्वयान्) तुम्हारे लिये नहीं है, तुमही हमारे अष्ट महावृद्ध हो,

इसलिये आओ, यहाँ विराजमान होकर हम
(२) जैसा पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सखा
अपने भाईको हर प्रकारकी मदद पहुँचाता
मित्रका सदा हित ही करता है, वैसीही (३)
और मित्र हैं अतः उस भावसे हम सबकी
जैसे मनुष्य (अपने मित्रके घरमें जाकर बस
ही) तुम मित्रभावसे आकर हमारे यहाँ बैठ
यक वने) । (४) तुम सनातन यजन

स्वप्नयो दि नानि देवायो नानि नानि

अथ न उभयेषाममृतममृतममृतम

विश्वेभिरग्ने नमिभिर्मिभिर्मं नमभिः नमः

। स्वप्नयो नमः

। मित्रः स्वप्न यज्ञका

। स्वप्न यज्ञका

अन्ययः- हे मित्रेण कर्ता पने ! स्वप्नयि नमिभिः दि ।
सः नः इमं अथरे यज्ञ ॥ १ ॥

हे सदा यविष्ठ नाने ! नः स्वप्नयः होता स्वप्नभिः
दिविस्मता यचः नि (सीद) ॥ २ ॥

वरुण्यः पिता मनुष्ये, भायिः भायदे, मन्ता मन्ते भा
यजति स्म ॥ ३ ॥

रिनादसः वरुणः मित्रः अयमा नः नमिः भा मीरुत,
यथा मनुष्यः ॥ ४ ॥

हे पूर्व्यः होतः ! नः अस्य साम्यस्य च मन्त्रस्य । इमाः
गिरः उ सु शुधि ॥ ५ ॥

यत् चित् दि नदवता तना देवदेवं यजामहे, (गन्)
हविः स्वे इव हूयते ॥ ६ ॥

विश्वपतिः, होता, मन्त्रः, वरुण्यः, नः मित्रः अमृत । ययं
स्वप्नयः प्रियाः (भूयात्स) ॥ ७ ॥

स्वप्नयः देवातः नः वार्यं दधिरे । स्वप्नयः च मनानहे ॥ ८ ॥

हे अमृत ! अथ मर्त्यानां नः उभयेषां मित्रः प्रदास्त्रयः
सन्तु ॥ ९ ॥

हे सहस्रः यहो अग्ने । विश्वेभिः नमिभिः इमं यज्ञं इदं
यचः चतः वाः ॥ १० ॥

यज्ञी दे पतिव मोन कर्ता स्वप्नयः

यज्ञ (१) स्वप्नयः यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

हे सदा यविष्ठ नाने देव ! (२) स्वप्न

यज्ञका (३) स्वप्नयः दिव्य यज्ञका (४) स्वप्नयः

यज्ञी देव ॥ ११ ॥

यज्ञ पिता यज्ञी पुत्रः, यज्ञ यज्ञ

यज्ञी (यज्ञी) यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञका यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञका यज्ञी देव (यज्ञका यज्ञी यज्ञी देव)

हे यज्ञी देव ! इमाः यज्ञ यज्ञ यज्ञ

(और इमाः) यज्ञ भायन उत्तम यज्ञी

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ

प्रिय प्रभुकी उपासना

सब वस्तुओंसे प्रभुही अत्यंत प्रिय है इसलिये मनुज उसकी
इस तरह प्रार्थना करें—

‘हे सबसे अत्यंत पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो !
तुम अपने प्रकाशस्वरूपी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो जाओ और हम
जिस यज्ञका प्रारंभ कर रहे हैं उसकी यथायोग्य रीतिसे संपन्न
करो । (१) हे प्रभो ! तुम सदा तरुण हो, (वात्य और वार्षिक्य
ये अवस्थाएं तुम्हारे लिये नहीं हैं, तुमही हमारे श्रेष्ठ सहायक हो,

इसलिये आओ, यहां विराजमान होकर हमारा

(२) जैसा पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सहायता

अपने माईको हर प्रकारकी मदद पहुंचाता है,

मित्रका सदा दित ही करता है, वैसाही (तुम

और मित्र हैं अतः उस भावसे हम सबकी सहायता

जैसे मनुष्य (अपने मित्रके घरमें जाकर वहां प्रेमसे

ही) तुम मित्रभावसे आकर हमारे वहां बैठो (जैसा

यज्ञ बनो) । (४) तुम सनातन यज्ञका हो।

७ रिशादस (रिश-अदस) — शत्रुका नाश करने वाला,
(मं. ४)

८ विशपतिः (विश-पतिः) — प्रजापालक, प्रजारक्षक,

९ मन्द्रः — आनंदित, प्रसन्नचित्त,

१० प्रियः — सवको प्रिय, (मं. ७)

११ सतसः गतुः — कभी प्रसन्न
ही न बन दिनाभिलाष, (मं. १०)

मे शुभ शुभ धारण करनेवाला की
आदर्श पुरुष इस धारण में पाठकों के अनुमानों

(४) श्रेष्ठ देवकी भक्ति

(क. १२७) आजीमर्तिः शुनःशेषः स कृत्रिमो वैश्यामित्रो देवरातः । १-१२ अग्निः, १३ देवाः १-१२ गान्धर्वः

अश्वं नत्वा चारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः

हमसू पु त्वमस्माकं सन्निं गायत्रं नग्यांसम्

आ नो भज परमेष्वा वाजेपु मध्यमेपु

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ

यमग्ने पुंसु मर्त्यमवा वाजेपु यं जुनाः

नकिरस्थ सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्

स वाजं विश्वचर्षणिरवर्द्धिरस्तु तरुता

जराबोध तद् विविद्धि विशेविशे यज्ञियाय

स नो महौ अनिमनो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः

स रेवौ इव विशपतिर्देव्यः केतुः शृणोतु नः

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।

यजाम देवान् यदि शक्नुवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः

। सम्राजन्तमध्वराणाम्

। मीढौ अस्माकं वभूयात्

। पाहि सद्मिद् विश्वायुः

। अग्ने देवेषु प्र वोचः

। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य

। सद्यो दाशुपे क्षरसि

। स यन्ता शश्वतीरियः

। वाजो अस्ति श्रवाय्यः

। विप्रेभिरस्तु सनिता

। स्तोमं रुद्राय दृशीकम्

। धिये वाजाय हिन्वतु

। उक्थैरग्निर्वृद्धद्भुतः

अन्वयः— वारवन्तं अश्वं न अध्वराणां सम्राजन्तं अग्निं
नमोभिः वन्दध्या ॥ १ ॥

शवसा सूनुः, पृथुप्रगामा, सः घा नः सुशेवः, अस्माकं
मीढान् वभूयात् ॥ २ ॥

विश्वायुः स दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् नः,
सद्मिद् इत्, नि पाहि ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! त्वं अस्माकं हमं उ सु सन्निं, नग्यांसं गायत्रं
देवेषु प्रवोचः ॥ ४ ॥

परमेपु वाजेपु नः आ भज । मध्यमेपु आ (भज) ।
अन्तमस्य वस्वः शिक्ष ॥ ५ ॥

अर्थ— बालोंवाले-अयालवाले सुंदर घोड़ोंके समान
युक्त यज्ञकर्मको निभानेवाले, (ज्वालाओंसे) प्रदीप
हम नमस्कारोंसे सुपूजित करते हैं ॥ १ ॥

बलके लियेहि उत्पन्न हुए, सर्वत्र गमन करनेवाले
निश्चयसे हमारे लिये सुखसे सेवा करनेयोग्य, तथा

सुख देनेवाले हों ॥ २ ॥

हे संपूर्ण आयुके प्रदाता ! वह (तुम) दूरसे
मनुष्यसे हम सबकी, सदाके लिये सुरक्षा करो ॥ ३ ॥

हे अग्निदेव ! तुम हमारे इस दानकी, और
छन्दके स्तोत्र की बात देवोंसे कहो ॥ ४ ॥

उच्च कोटीके बल हमें दो । मध्यम कोटीके (बल
तथा) पाससे मिलनेवाले धन भी हमें प्रदान करो

प्रार्थना सुमें । (१२) बालक, तरुण, बड़े और उम्र को भी पुरुष हैं (वे सब इसी प्रभुके रूप हैं,) अतः उनको नमन करते हैं । जहांतक हमारी शक्ति रहेगी तबतक उन सब देवों के लिये 'हम यज्ञ करते रहेंगे, इसमें हमसे प्रती न हो ।' (१३)

इस तरह पाठक उपासना करें । यह सूक्त उपासनेके विधि बड़ाही अच्छा है । और इगम विश्वरूप प्रभुकी भक्ति उत्तम रीतिसे करनेकी विधि बतायी है । प्रारंभ अग्निके नामसे करके अन्तिम मंत्रमें छोटे बड़े सभी रूपोंमें प्रकट होनेवाले 'प्रभुकी उपासना कही है ।

विश्वरूपकी उपासना

(अर्भक) बालक, (युवा) तरुण, (मयान्) बड़े और (आशीन) वृद्ध इन चार अवस्थाओंमें सब प्राणी रहते हैं । प्रभु इन चार अवस्थाओंमें रहनेवाले प्राणियोंके रूपमें इस विश्वमें हैं । यहाँ अग्नि अथवा रुद्र इन रूपोंमें प्रकट हुआ है ऐसा कहा है । यह मंत्र यहाँ अग्नि सूक्तमें है । रुद्र सूक्तमें इसका रूप विभिन्न है, देखिये—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय
चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च
नमो जघन्याय च बुध्न्याय च॥ (वा. यजु. १६।३२)

'ज्येष्ठ, कनिष्ठ, पूर्वज, अपरज, मध्यम, अपगल्भ, जघन्य, बुध्न्य इन सब रुद्र रूपोंके लिये नमन है ।' यहाँ आठ पद हैं, परंतु तात्पर्य एकही है । जितने भी रूप दिखाई देते हैं वे सबके सब रुद्र देवताके रूप हैं । यहाँ अग्निके हैं, अग्नि और रुद्र एकही देवके दो नाम हैं, अग्निके उद्देश्यसे उपनिषदमें कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो
बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं
प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ उ. २।५।१९)

'अग्नि जैसा भुवनमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें उसके आकारवाला होकर रहा है, वैसा एकही सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है जो प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है ।' अग्नि सब पदार्थोंमें है, और सबके रूपोंका धारण करके रहता है, वैसा ही सर्वभूतान्तरात्मा है । रुद्र भी वैसाही है । यही बात इस तेरहवें मंत्रमें कही है । छोटे, बड़े, जवान, बालक और वृद्धमें संपूर्ण जगत् समाया है । यह सब एकही देवताका रूप है । जिसके साथ मनुष्यका संबंध आता है वह बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, जीर्ण, पूर्वज, वंशज आदिमेंसे कोई एक अवश्य

होता है । उनमेंसे प्रत्येक प्रभुका रूप है और वह समानके योग्य है । अतः जिसीके साथ आत्मा प्रभुके साथ व्यवहार करनेके समान पदमें नाहिने । ऐसा व्यवहार करनाही जीवनमार्ग है जो कर्मोंसे वेदों तक हो सकते हैं ।

तेरहवें मंत्रका अन्तर्गम कहना है कि—
'शक्ति है तबतक हम इस प्रभुके विभूतपत्नीमें आते हैं, हममें मनुष्यवर्णिया रहे इस प्रभुकी उपासना हमसे किमीतरह कोई कुरी न हो ।' अर्थात् हमें योग्य भेदा होनी रहे ।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष वर्णन किया है—
है—

१ अध्वराणां सघ्राद- अहुतिज कर्त्तक-
रहित कर्मोंसे प्रकाशमान (मं. १)

२ शवसा सूनुः- बलसे उत्पन्न होनेवाला,
प्रकट होनेवाला, बलके प्रचण्ड कार्य करनेके लिये

३ पृथु-प्रगामा- विशेष गतिशील, हस्त
सर्वत्र गमन करनेवाला,

४ सुशेवः- सेवा करनेयोग्य,

५ मीद्वान्- सुखदायी, इष्ट सुख देनेवाला, (मं. २)

६ विश्वायुः- पूर्णायु, पूर्ण आयुतक कार्य करने

७ अघायोः पाहि- पापीसे बचानेवाला, (मं. ३)

८ परमेपु मध्यमेपु वाजेपु भजक-
मध्यम ऐसे सब बल बढ़ानेवाला,

९ अन्तमस्य वस्वः शिक्षक- पाठिका (मं. ४)

१० पृत्स्तु अवाः- युद्धोंमें सुरक्षा करनेवाला,

११ इपः यन्ता- धनों और अश्वोंका निरन्तर

१२ अस्य पर्येता नकिः- इसको घेरनेवाला है,

१३ श्रवाय्य वाजः- यशस्वी बलसे युद्ध,

१४ विश्वचर्पणिः- सब मानवोंका हितकारी,

१५ तरुता- संकटोंसे पार करनेवाला,

१६ विप्रेभिः सानिता- ज्ञानियोंके साथ (मं. ५)

इतमं निम्नलिखित प्रयोग बहुवचनमं है—

इतने प्रयोग इस सूक्तमें बहुवचनमें हैं। इससे बहुत मान-
बोके हितका संबंध इस सूक्तके साथ है, किसी एक व्यक्तिक
हितका नहीं, यह स्पष्ट है। एकवचनके प्रयोग इस सूक्तमें नहीं
हैं। अर्थात् किसी एक मनुष्यके बंधनकी निवृत्ति करनेका दवां
उद्देश नहीं है, परंतु मानवसमूहके सुखका विचार यहां है।

यस्य नारी वनस्पतं वनस्पतं च विजृम्भते ॥ ३ ॥

यस्य मन्त्रां, रश्मीन् वमिषान् हव, विजृम्भते ॥ ४ ॥

हे उत्कृष्टलक ! यस्य चित्तं दिग्गं गृहेगृहे सुगमं, हव,
जगतां ह्य गुरुभिरः, सुमत्तमं वद ॥ ५ ॥

हे वनस्पते ! उत ते अग्निं ह्य वतः नि नानि रश्मि । हे
उत्कृष्टलक ! अग्नौ ह्यग्निं पातये सोमं सुनु ॥ ६ ॥

आ यज्ञी, वाजसातमा, ता दि, अन्धार्तिं वधमा हरी
हव, उचा विजृम्भते ॥ ७ ॥

अथ वनस्पती ता क्रव्येभिः सोमृभिः कर्त्वा ह्यग्निं
मधुमत् नः सुतम् ॥ ८ ॥

चम्योः शिष्टं उच भर । सोमं पवित्रे आ गृह्य । सोः
त्वचि अग्निं नि धेहि ॥ ९ ॥

यज्ञकी तैयारी करना

नारी (वनस्पति की) पाती पर सोम
विजृम्भित है ॥ ३ ॥

नारी वनस्पति वतः, वनस्पति पदों पर
रश्मीं वमिषान् विजृम्भते वनस्पति का हव
हे वनस्पति ! पवित्र पात्यों में सुगम हव
(लवण) पतियों में जो सोम के दोषों को
हव ॥ ५ ॥

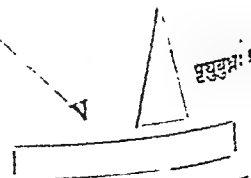
हे वनस्पति ! तुम्हारे सामने वतु वनस्पति
यस्य वनस्पति पतियों में सोम का रश्मि विजृम्भित
यज्ञी, वाजसातमा, ता दि, अन्धार्तिं वधमा हरी
यस्य वतः हव, उचा विजृम्भते ॥ ७ ॥

आग्नौ ह्यग्निं पातये (ये दोनों) कलक
अग्निं वाजसातमा (ये सोम के दोषों को हव)
हव, उचा विजृम्भते ॥ ७ ॥

सोमों पात्यों में अग्नि पर उठाओ । हे
ऊपर रखो, सोम पर रखो ॥ ९ ॥

इस कार्यके लिये (नारी अपत्यवत् उपरान्त
(मं. ३) यजमान पत्नी अपने हाथों को बालों
हैं जिसमें (मन्त्रों विजृम्भते । मं. ४) नदी
बांधा जाता है और इस रस्सीको आगे की
मथा जाता है और मकलन ऊपर आता है ।
उत्तम सुमधुर भी बनता है । यह यजमान
कलके निकाले दूधसे आज भी बनता है, वह
और स्वादु होता है । यह यज्ञमें वर्ता जाता है
सोम कूटनेके लिये (सोमवे पृथुवुधः
मं. १)

सोम



सोमरस निकालनेके लिये बड़े मूलबाल
होता है । ऐसे पत्थरसे सोम कूटा जाता है
आधिपचण्या कृता । मं. २) दो जोषोंके

होते हैं । इनपर सोमको रखते हैं और कूटते हैं ।
 उनके शब्दभी एक भांतीका शब्द होता है, इसका
 नेके शब्दसे वेदमें किया गया है । 'बोखल और
 योग तो घरघरमें किया जाता है ।' (५) पर
 म कूटनेके लिये तथा चावल स्वच्छ करनेके लिये
 है । सोम कूटनेके लिये नीचे पत्थरका अथवा लक-
 अथवा बोखल रखते हैं उसपर कूटा करते हैं ।
 कटीतरह कूटा जानेपर उससे हाथोंसे और अंगुलि-
 कर रस निकालते हैं, और उस रसको (पवित्रे
 सृज । मं. ९) छाननीपर पर रखते और छानते
 रसको (चम्प्योः आ भर । मं. ९) कलशोंमें
 है । सोमरसपान करनेपर भी जो (उच्छिष्टं
 र । मं. ९) अवशिष्ट रहता है उसको भी कल-
 शमें डालते हैं ।

यहकी तैयारीका वर्णन है, जो पाठक विचारपूर्वक
 ले ।

गोचर्म

इसके नवम मंत्रमें 'गोचर्म' पर सोम रसो ऐसा
 बहुत विज्ञानीने इसका अर्थ गौके चर्मसेपर ऐसा अर्थ
 पर गौके चर्मपर यह सब रहना कठीन है ऐसा
 ना है । गौका वध करके उसका चर्म पाए बरना
 । प्रतीत होता है यद्यपि गौके चर्ममें 'श-क्या'=
 १) । 'श-दीना' = (दुष्टों के लिये अगौरव,
 मित्र नहीं जाता), 'श-दिनि' = (जिसमें कष्ट नहीं

जाता) ये नाम हैं । ये नाम गौके अवधता सिद्ध करते हैं ।
 मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्त
 (अथर्व. ७।१।५)

'मूड याजकही कुत्तेके मांससे और गौके टुकड़े करके उनसे
 हवन करते हैं ।' ऐसा कहनेसे गौके वधका निषेधही वेदने
 किया है । यहां कई कईगे कि मृतगौका चर्म लिया जाय तो
 क्या हर्ज है । पर एक तो मृत पशुका चर्म अविश्व है वह सोम
 जैसे पवित्र वस्तुके यजनके स्थानमें लेना अयोग्यही है, यहाँमें
 भी वह नहीं लाया जायगा, फिर सोमके रखनेके लिये उभय
 उपयोग तो कठिनही प्रतीत होता है और जोवित गौका वध
 तो वेदके मंत्रोंने निषिद्धही माना है फिर इसका विचार कैसा
 किया जाय यह एक विचारणीय समस्या है ।

'गोचर्म' का अर्थ 'कोशमें मौ गायोंके रहनेके लिये जितना
 स्थान आवश्यक है उनका स्थान' ऐसा दिया है । ऐसे निश्चय
 स्थानपर गौको रक्षना, कूटना, छानना और अनेक गरि-
 जोका रहना हो सकता है । इनलिे ऐने विशेष लगे नीं
 स्थानपर सोमरस मिश्रणके भी व्यवस्था की जाती थी ऐसा मानना
 योग्य है । देखो—

दशहस्तेन घंसन दशघंसान् समंततः ।

पञ्च चाभ्यधिशान् दधान् पेतद् गोचर्मं गोचरान्तं
 (अथर्व. ७।१।५)

१० पंजाबमें मूडका नाम गौके है । इसका वर्णन
 भाषिने कि जिस की चर्मका कोश रक्षना करके लाया है ।
 गौका चर्म है या उक्त वर्णन । मूड है, यजक है ।

(६) गौवें और घोड़े

(अ. १।२९) वाजसनेयिः शुभाशेषः स हविर्गो वधामिदो देवताः । इन्द्रः । अग्निः ।

यथैति सत्य सोमपा यथाशस्ता इव स्मरि ।

आ हू न इन्द्र शंस्य गोचरान्तेषु शुक्तिषु सरावेषु हविर्गोव

विप्रिन् पाजानां पेत दधान् सत्य दंसना

आ हू न इन्द्र शंस्य गोचरान्तेषु शुक्तिषु सरावेषु हविर्गोव

नि धावणा निधुरता सरावान्तेषु पेत

आ हू न इन्द्र शंस्य गोचरान्तेषु शुक्तिषु सरावेषु हविर्गोव

सरावेषु पाजानां पेत दधान् सत्य दंसना

आ हू न इन्द्र शंस्य गोचरान्तेषु शुक्तिषु सरावेषु हविर्गोव

समिन्द्र गर्दभं मृण जुवन्तं पापयामुया ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वद्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुषीमघ
पताति कुण्डृणाच्या दूरं घातो वनादधि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वद्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुषीमघ
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाद्वयम् ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वद्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुषीमघ

अन्वयः— हे सत्य सोमपाः । यत् चित् हि, अनाशस्ता
इव स्मसि । हे तुषीमघ, इन्द्र ! सहस्रेषु शुभिषु गोषु
अश्वेषु नः आ शंसय ॥ १ ॥

हे शचीवः शिप्रिन् वाजानां पते । तव वसना (सर्वदा
यतंते) ॥ २ ॥

मिथूदृणा निष्पापय, अजुष्यमाने सस्ताम् ॥ ३ ॥

दे शूर । त्या भरातयः ससन्तु । रातयः बोधन्तु ॥ ४ ॥

दे इन्द्र ! असुया पापया जुवन्तं गर्दभं सं मृण ॥ ५ ॥

यातः कुण्डृणाच्या वनात् अभि दूरं पताति ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि । कृकदाधं जम्भया ॥ ७ ॥

अर्थ— हे सत्य स्वरूप सोमपान करनेवाले
हो, हम बहुत प्रशंसित जैसे नहीं हैं (वह सत्य
है बहुधनवाले इन्द्र । उत्तम सहस्रों गाँवों और
(ऐसा) हमें आशीर्वाद दो ॥ १ ॥

हे सामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणभारी और
इन्द्र । तेरे कर्म (अद्भुत हैं) ॥ २ ॥
(दोनों दुर्गतियों) परस्परकी और ताकती
वे कभी न जागती हुई बेहोश पड़ी रहें (
चपद्रव न हो) ॥ ३ ॥

हे शूर वीर । हमारे शत्रु सोये रहें और
रहें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! इस पाप विचारमयी वाणीसे बोले
रूप) गधिका वध करो ॥ ५ ॥

विध्वंस करनेवाला भ्रंशवात दूरके वनमें चला
आक्रोश करनेवाले सब शत्रुओंका नाश करो ।
कोंका संहार करो । हे बहु धनवाले इन्द्र ! सर्वोत्तम
और घोड़े हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ७ ॥

गाँवों और घोड़े हमें मिलें

हमें गाँवों और घोड़े मिलें यह इच्छा इस सूक्तमें मुख्य
है । इस सूक्तके सभी मंत्रोंमें 'नः आ शंसय' हमें आशी-
र्वाद मिले, यह बहुवचनमें प्रयोग है, इसलिये केवल किसी एक
की भलाईकी इच्छा इधमें नहीं है अपितु सबकी भलाईकी इच्छा
इसमें स्पष्ट है ।

आदर्श वीर पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष बताया है वह वीर निम्न-
लिखित गुणोंसे युक्त है—

१ सत्यः— सत्यका पालन करनेवाला, जिसका
मय है,

२ तुषी-मघः— बहुत धनोसे युक्त, (१)

३ शचीवः— सामर्थ्यवान्,

४ शिप्रिन्— शिरस्त्राण और कवच धारण करनेवाला

५ वाजानां पतिः— बलों, अश्वों और धनोदायक

६ शूरः— शूरवीर, (४)

ये गुण जिसमें विराजते हैं ऐसे वीरकी कल्पना
कर सकते हैं, यह वीर इस सूक्तका आदर्श पुरुष है ।

(७) उत्तम रथ

१।१०) आजीगतिः शुनःशेषः स ऋषिसो वैश्वामित्रो देवरातः । १-१६ इन्द्रः, १७-१९ सधिनो, २०-२२ उषाः । १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिष्कृतायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।

| | | |
|--|---------------------------|----|
| आ च इन्द्रं किंवि यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् | । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः | १ |
| शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् | । पटु निस्सं न रीयते | २ |
| सं यन्मदाय शुष्मिण पना ह्यस्योदरे | । समुद्रो न व्यचो दधे | ३ |
| भयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् | । वचस्तश्चिन्न ओहसे | ४ |
| स्तोत्रं राधानां पते निर्वहो वीर यस्य ते | । विभूतिरस्तु स्रुता | ५ |
| ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो | । समन्येषु ब्रवावहै | ६ |
| योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे | । सखाय इन्द्रसूतये | ७ |
| आ घा गमघदि भवत् सहस्रिणीभिरुतिभिः | । वाजेभिरुप नो हवम् | ८ |
| अनु प्रहस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् | । यं ते पूर्वं पिता हुवे | ९ |
| तं त्वा वयं विश्ववाराऽऽशास्महे पुरुहूत | । सखे वसो जरितृभ्यः | १० |
| अस्मार्क शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाताम् | । सखे वञ्जित्सखीनाम् | ११ |
| तथा तदस्तु सोमपाः सखे वञ्जिन् तथा कृणु | । यथा त उश्मसीष्टये | १२ |
| रेवतीर्नः सधमाद् इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः | । क्षुमन्तो याभिर्मदेम | १३ |
| आ य त्वावान्मनासः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः | । ऋणोरक्षं न चक्रयोः | १४ |
| आ यद् हुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् | । ऋणोरक्षं न चशीभिः | १५ |
| शश्वदिन्द्रः पोमुधद्विर्जिगाय नानदद्विः शश्वसद्विर्धनानि । | | |
| स नो हिरण्यरथं वंसनावान्स नः सनिता सनये स नोऽदात् | | १६ |
| आदिवनावश्वावत्येषा यातं शवीरया | । गोमद् दक्षा हिरण्यवत् | १७ |
| समानयोजनो हि वां रथो दक्षावमर्त्यः | । समुद्रे बश्विनेयते | १८ |
| म्यश्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमधुः | । परि ग्रामन्यदीयते | १९ |
| कस्त उपः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये | । कं नक्षसे विभावरि | २० |
| वयं हि ते अमन्मद्यान्तादा पराकात् | । अश्वे न चित्रे अरुषि | २१ |
| त्वं ह्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः | । अस्मे रयि नि धारय | २२ |

यः- वाजयन्तः (वयं) यः शतक्रतुं मंहिष्ठं इन्द्रं,
वि, आ सिञ्चे ॥ १ ॥

शीनां शतं वा, समाशिरां सहस्रं वा, निस्सं न, आ
व्रते ॥ २ ॥

अर्थ— सामर्थ्यको इच्छा करनेवाले (हम) तुम्हारे
(कन्यापते) स्थि सैकड़ों पराक्रम करनेवाले महावृ इन्द्रको,
जैसे दौड़को (पानीसे भरते हैं वैसे सोमरससे) भर देने
हैं ॥ १ ॥

जो शुद्ध सोमरसोंके सैकड़ों, तथा दुग्धमिश्रित रसोंके सैकड़ों
प्रदाहोंके पास, जल निम्न स्थानोंके पास जाता है (उग्र तरङ्ग)
जाता है ॥ २ ॥

शश्वत् पोमुयन्निः नानदन्निः शाश्वतन्निः धनानि
। दंस्नावाद् सः सनिता नः सनये हिरण्यरथं
। १६ ॥

धिर्नो ! सश्वत्त्वा शवीरया ह्वा सा यातम् । हे
गोमत् हिरण्यवत् (कस्मत् गृधं कस्तु) ॥ १७ ॥

जौ ! वां रथः समानयोजनः संमर्त्यः हि समुद्रे
। १८ ॥

यत्प मूर्धनि चक्रं नि येमधुः, अन्यत् परि घाम् ॥ १९ ॥

प्रिये कमर्त्यं विभावरि उपः ! भुजे मर्तः कः ? कं
॥ २० ॥

देवे चित्रे वरुणि ! ना कन्तात् आ पराकात् वयं ते
महि ॥ २१ ॥

देवः दुहितः ! त्येभिः वाजेभिः त्वं आ गहि, कस्मे
धारय ॥ २२ ॥

इन्द्र हमेशा फरफराते, हिनहिनाते तथा जोरसे श्वास लेते हुए
(घोड़ोंके द्वारा) धनोंको जीतता है । कर्मकुशल उस दाता
(इन्द्र) ने हमारे उपयोगके लिये सोनेका रथ दिया है ॥ १६ ॥

हे आश्वि देवो ! अनेक घोड़ोंसे युक्त शांति देनेवाले अनेक
साथ आओ । हे शत्रुनाशको ! हमारे घरमें गाये और सुवर्ण
होवे ॥ १७ ॥

हे शत्रुनाशको ! तुम दोनोंका एक साथ जीतनेवाला विनाश-
रहित रथ है, जो समुद्रमें भी जाता है ॥ १८ ॥

(तुमने अपने रथका) पर्वतके शिखरके मूलमें एक चक्र
रखा है और दूसरा घुलोकमें रखा है ॥ १९ ॥

हे स्तुतिप्रिय अपर शोभावानी उषा देवी ! तुम्हें भोजन
देनेवाला मानव कान है ? किसे तुम प्राप्त होना चाहती
है ॥ २० ॥

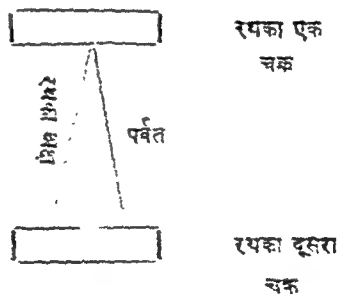
हे अश्वयुक्त विचित्र प्रकाशवाली उषा देवी ! दूरसे या पास
से हम तुम्हें नहीं जान सकते ॥ २१ ॥

हे घुलोककी पुत्री ! उन बलोंके साथ तुम आओ, और हमें
धन प्रदान करो ॥ २२ ॥

आश्विदेवोंका रथ

सूक्तके मंत्र १७-१९ तकके तीन मंत्रोंमें आश्विदेवोंके
वर्णन है । यह रथ दोनों आश्विनीकुमारोंके लिये
न-योजनः) एकही समय जोड़ा जाता है । अर्थात्
होते ही दोनों आश्विदेव उसमें इकट्ठे हो बैठते हैं । यह
सुद्रे ईयते) समुद्रमें भी जाता है । भूमिपर तो
? और यह (कमर्त्यः) अमर होनेसे आकाशमें भी
जाता है, अर्थात् जल, स्थल और आकाशमें इनका रथ
। एकही बहान विमान जैसा आकाशमें जाय, रथ
पर भी चले और नीचके समान समुद्रमें भी जाय,
न्द्रे उत्तम कारीगरोंके बनाया रथ होगा ।

एका एक चक्र (अन्यत् परि घां) आकाशमें
रखा है और दूसरा (अन्यत् मूर्धनि) पर्वत
धूमता है । यहाँ मूर्ध पदका अर्थ मूल या जड़
। जाय तो यह वर्णन उत्तरीय ध्रुवके पासका वर्णन
आश्विदेवोंका यह द्विक रथ है ।



ऐसा रथ घूम रहा है । ऐसी कल्पना की जाय तो यह
कल्पना उत्तरीय ध्रुवके पास ही दीख सकती है । यहाँ इस
भरतभूमिमें प्रतारता और नक्षत्र पूर्वसे उदय होकर आकाश
मध्यतक ऊपर चढ़ते हैं और पश्चात् पश्चिममें अस्त होने हैं ।
उत्तरीय ध्रुवमें ये सब प्रतारता और नक्षत्र प्रदक्षिण गतिसे
पर्वतके इर्दगिर्द घूमनेके समान चक्र गतिके घूमते हैं अर्थात्
देखनेवालेके प्रदक्षिण करते हैं । अतः वहाँ रथचक्रों उच्च
गति और पर्वतकी कल्पना कार्य हो सकता है ।

यहाँ अचकन एकही है वह ' मूर्ध ' पदकी है । मूर्धका
अर्थ ' मूल, जड़ ' ऐसा करनेवाला ही चक्र चक्रेन्द्रि

ती है। पर मूर्धाका अर्थ मस्तक या शिखर है। यह अर्थ नेत्र पर्वत शिखरपर एक चक्र और छुल्लोके दूसरा चक्र मत्ता है ऐसा अर्थ होगा (ऐसा अर्थ लेनेपर भी यह चक्र-द्रुवमग उत्तरीय ध्रुवके स्थानपरही दीखनेवाला होगा। किसी अन्य स्थानपर छुल्लोक शिखरपर चक्रवत् भ्रमण करनेवाला दीखना ही है, उत्तरीय ध्रुवपरही यह संभवनीय है।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तने निम्नलिखित आदर्श गुणोंसे युक्त पुरुष पाठकोंके समक्ष रखा है—

- १ शतक्रतुः— सैकड़ों पराक्रम करनेवाला,
- २ मंहिष्ठः— महान्, प्रभावी, (मं. १)
- ३ इन्द्रमहि— सामर्थ्यवान्, (मं. ३)
- ४ गार्ग्यानां पतिः— गार्ग्या स्वामी, गिद्धियोंका स्वामी (मं. ५)

५ सहस्रिर्जीमिः ऊतिमिः वाजेमिः ब मन्— सहस्रों प्रकरके संरक्षक बनके साथ रहने आता है, (मं. ८)

६ नरः— नेता, (मं. ९)

७ विश्वचारः— विश्वमें भ्रष्ट, (मं. १०)

८ धृष्णुः— शत्रुपर विजय पानेवाला, (मं. ११)

शेष विशेषण पहिले कर्द्धार आगये हैं। इस गुणधर्मोंसे युक्त वीर आदर्श करके इस सूक्तने सामने रखा है।

इस सूक्तके अन्य उपदेश स्पष्ट हैं इसलिये उनसे चर्चा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

नवम मंत्रमें कहा है कि 'मेरे पिता तुम्हें बुला अतः मैं भी तुम्हें बुला रहा हूं।' यदि यह अर्थ ठीक तो इस सूक्तकी रचनाका संबंध शुनःशोपके पासही है।

{ नवमं मण्डलं }

(८) सोमरस

(अ. २. १) गार्ग्यापतिः शुनःशोपः, यः कृत्रिमो वैश्यामित्रो देवराजः। पयमानः सोमः। गावत्री।

| | | |
|---------------------------------------|-----------------------|----|
| यस्य वैश्याः शमस्यः पयोनीयस्य वीर्यनि | । अभि द्रोणान्यासदम् | १ |
| यस्य वैश्याः विषा कुतोऽपि जगामि धायति | । पयमानो अदाभ्यः | २ |
| यस्य वैश्याः विषागुमिः पयः | । हरियांजाय मृज्यते | ३ |
| यस्य विषा | । पयमानः सिपासति | ४ |
| यस्य वै | । आविष्करोति ययनुम् | ५ |
| यस्य | । यधद्रजानि दागुये | ६ |
| | । पयमानः कनिप्रदम् | ७ |
| | । पयमानः स्वल्परः | ८ |
| | । हरिः पयित्रे अर्यति | ९ |
| | । धारया पयमे सुतः | १० |

अर्थ— यह अयस (गोम) देव कृत्रिमो वैश्यामित्रो देवराजः पयमानः सोमः, गावत्री, यजमान, जाने है ॥ १ ॥

यस्य (गोम) देव अविष्करोति (विषोका) जगामि, यदे पयान्, य ययान् दृष्टो आगे ययकर, कुशिल (इयया ययके, ययान) गोपना है ॥ २ ॥

१. देवः पवमानः विपन्युभिः क्रतायुभिः हरिः वाजाय
॥ ३ ॥

२. पवमानः शूरः विश्वानि वार्या सत्त्वभिः यन् इव
सति ॥ ४ ॥

३. पवमानः देवः रथयति, दशस्यति, चन्वन्तुं क्षावि-
ति ॥ ५ ॥

४. भूमिपुतः पुष देवः दाशुपे रत्नानि दधत् अपः वि
॥ ६ ॥

५. पवमानः पुषः कनिकदत्, रजांसि तिरः दिवं वि
ति ॥ ७ ॥

६. पवमानः स्वध्वरः, अस्पृतः, रजांसि तिरः, दिवं वि
त्सरत् ॥ ८ ॥

७. हरिः देवः प्रलेन जन्मना देवेभ्यः सुतः पवित्रे
ते ॥ ९ ॥

८. पुषः उषुव्रतः, जज्ञानः, इषः जनयन् सुतः धारया
॥ १० ॥

यह (सोम) देव छाना जानेके बाद ज्ञानी और यज्ञके लिये
जिनकी आयु लगी है ऐसे लोगोंके साथ घोंडेके समान युद्ध कर-
नेके लिये सिद्ध किया जाता है ॥ ३ ॥

यह छाना जानेवाला शूर (सोमरस) सब धनोंको, अपने
सामर्थ्यके साथ आगे बढता हुआ, बांटनेकी इच्छा करता
है ॥ ४ ॥

यह छाना गया सोमदेव रथकी तरह आगे बढता है, इष्ट
वस्तुको देता है और आशीर्वाद देता है ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंद्वारा प्रशंसित यह सोम देव दाताको अनेक रत्न देता
हुआ जन्ममें गोते लगाता है ॥ ६ ॥

धारासे छाना जानेवाला यह (सोम) शब्द करता हुआ,
अन्तरिक्षके स्थानोंको लांघकर धूलोकमें दौडता है ॥ ७ ॥

यह छाना हुआ (सोमरस) उत्तम अकुटिल यज्ञ करता
हुआ, पराभूत न होकर, अन्तरिक्षके लोकोंको लांघकर, धूलोक-
पर चढता है ॥ ८ ॥

यह हरे वर्णका दिव्य (सोम) पुरातन विधिसे देवोंके
लिये निचोड़ा जाकर छाननीके ऊपर चढता है ॥ ९ ॥

यह वह अनेक कर्मोंको करनेवाला, ज्ञान बढानेवाला, अन्न
देनेवाला, सोमरस धारासे छाना जाता है ॥ १० ॥

सोमरस

१. सूक्त सोमरसके प्रकरणोंके साथ पढ़ा जाना योग्य है ।
सोमरस (द्रोणानि) पात्रोंमें भरा जाता है (मं. १),
(विषा छतः) अंगुलियोंसे निचोड़ा जाता है (मं. २),
तिरः) यह हरे रंगका सोम है, वह घोंडेके समान बारबार
जुन्यते) धोया जाता है (मं. ३), यह (पवमानः)
जाता है, शुद्ध किया जाता है (मं. ४), यह (वि
त्ते) जन्ममें बारबार शुद्ध किया जाता है (मं. ६),
धारासे नीचे छाननीसे उतरता है (मं. ७), यह छाना
के लिये (पवित्रे अर्पति) छाननीपर चढता है (मं. ९),
तार सोमरस तैयार करनेकी रीति इस सूक्तके वर्णनमें
मिलती है । यह इस पुराणका उत्साह बढाता है, इसलिये निर-
क्षत विरोधन उसके लिये कार्य हो सकते हैं ।

वीर सोम

सोमरस वीरताकी उत्साहित करता है, सोम पदोंके पराजय
पर उत्साह बढता है और शौर्यके कार्यवीर लोग करते हैं देखिये—
५ (छन्दः)

१ अदाभ्यः—न दध जानेवाला वीर (मं. २)

२ द्रांसि अति धावति—कुटिल शत्रुओंको परास्त
करके आगे बढता है, (मं. २)

३ विपन्युभिः क्रतायुभिः वाजाय मृन्यते—विशेष
पराक्रमके कर्म करनेवाले सत्यके लिये ही जिनकी आयु लगती
है, ऐसे वीर बल बढानेके लिये इसे शुद्ध करते हैं । (मं. ३)

४ शूरः वार्या सत्त्वभिः यन्—यह शूर उत्तम धनोंको
अपने बलोंसे प्राप्त करता है । (मं. ४)

५ रथयति—रथसे हमला करता है, (मं. ५)

६ दाशुपे रत्नानि दधत्—दाताकी रत्न देता है, (मं. ६)

७ स्वध्वरः—उत्तम अकुटिलतायुक्त कर्म करता है (मं. ७)

८ अस्पृतः—कभी पराभूत नहीं होता, (मं. ८)

९ पुटव्रतः—अनेक कर्मोंको करता है, (मं. ९)

१० जज्ञानः—ज्ञानी है ।

इस तरह इसके वीर होनेका, शौर्य गुणकी उन्नति का
नेका वर्णन इस सूक्तमें है । पठक इसका मन्त्र पढ़े ।

(९)

शुनःशेष ऋषिके अथर्ववेदमें आये मंत्र

(अथर्व. ६।२५।१-३) गण्डमाला विनाशन

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥
 सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥
 नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अधि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

अर्थ— जो पांच और पचास पीडाएं (मन्या अभि संयन्ति) गलेके चारों ओर मिलकर होती हैं ॥ १ ॥ जो सत्तर पीडाएं (ग्रैव्या अभि संयन्ति) कण्ठके भागमें मिलकर होती हैं ॥ २ ॥ जो नौ और नव्वे पीडाएं स्कंधदेशमें मिलती हैं, (ताः) वह सब (नश्यन्तु) नष्ट हों, दूर हों, (अपचितां वाका इव) अपरिपक्व मनुष्योंके भाषण हैं, अथवा कृमियोंके शब्द जैसे क्षणभरमें विनष्ट होते हैं अथवा गण्डमाला की बाधा जैसी दूर होती है ॥ ३ ॥

‘अपचित’ का अर्थ ‘अपरिपक्व, अनाड़ी, कृमि जो शरीरमें काटनेसे सूजन होती है और गण्डमाला’ है। यहाँ गला, गर्दन कण्ठभाग और स्कंधदेशमें होनेवाले फोड़े फुन्सी आदिके दूर करनेकी प्रार्थना है। विशेष कर गण्डमालाके दूर करनेका विषय

मुख्य है। गण्डमाला दूर करनेके लिये इसका पाठ किया है। ऋषि इस सूक्तमें रोग दूर करनेकी प्रार्थना करता है। शुनःशेषके बन्धन ढीले करनेकी बात गहाँ नहीं है।

(१०)

(अथर्व. ७।८३।१-४)

अप्सु ते राजेन वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः । ततो धृतवतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१॥
 धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः । यदापो अध्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च ॥२॥ उदुत्तमं वरुण ॥३॥ (अ. १।२४।१५)

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
 दुष्पण्यं दुरितं नि त्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥

अर्थ— हे वरुण राजन् ! (ते हिरण्ययः गृहः अप्सु) तुम्हारा सुवर्णमय घर जलोंमें बनाया है। वहाँसे निवर्तित होनेवाला राजा सब धामोंको मुक्त करे ॥१॥

हे राजा वरुण ! प्रत्येक स्थानसे तथा इससे (नः मुख) हम सबको मुक्त करो । ‘ हे अदृषणीय जलो ! हे वरुण ! (यत् ऊचिम) जो हमने आपकी प्रार्थना की, इससे, हे वरुण ! (नः मुख) हम सबको मुक्त करो ॥२॥

(उदुत्तमं का अर्थ अ. १।२४।१५ स्थानपर, इस पुस्तकके प्रथम सूक्तमें पृ० ९ देखो) ॥३॥

हे वरुण ! (कस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च) हम सबसे सब पाशोंको दूर करो । (ये उत्तमाः अधमाः ये वारुणाः) उत्तम, और जो वरुणसंबंधी पाश हैं वे दूर हों, तथा (दुष्पण्यं) दुष्ट स्वप्न और (दुरितं) पाप (कस्मत् निव) हमसे (सुकृतस्य लोकं गच्छेम) और हम निर्दोष होकर पुण्यलोकको पहुँचेंगे ॥४॥

स सूक्तमें (१) सर्वा धामानि मुञ्चतु-सब धर्मोंको करो, (२) धान्नोधान्नो नः मुञ्च-प्रत्येक धामसे मुक्त करो, (३) यत् ऊचिम-जो हम प्रार्थना कर चुके, अस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च-हम सबसे सब को दूर करो, (४) सुहृतस्य लोकं गच्छेम-पुण्यलोक में सब प्राप्त होंगे। इन मंत्रोंमें ब्रह्मोंके मुक्त होनेकी ही है। हम सब अलग अलग (धान्नोधान्नः) स्थानोंमें रहते हैं पृथक् पृथक् (धामानि) घरोंमें रहते हैं, इकट्ठे होकर (ऊचिम) ना करते हैं, हम सबको सब प्रकारके (सर्वान् पाशान् अस्मत्) पाशोंसे पृथक् करो जिससे हम सब पुण्यलोकको प्राप्त । ये सब मंत्र सामुदायिक उपासनाका महत्त्व बता रहे हैं। लोग मिलकर प्रार्थना करें और सब मिलकर मुक्त हों। सामुदायिक मुक्ति है। सबका सब समाज उच्च आचार-

विचारसे परिशुद्ध होता हुआ मुक्त हो सकता है। यह विचार विशेषतया यहां बताया है।

उत्तम अधम पाशोंका स्वरूप तो पहिले बताया जा चुका है। यहां मध्यम पाशोंकी 'बाह्य' कहा है, यह विशेष है। इस सूक्तमें दुष्ट स्वप्न और पाप दूर होनेकी बात विशेष है। पुण्यलोकमें पहुँचनेकी बात भी मननीय है। यदि शुनःशेष धामों ही अरना छुटकारा चाहनेवाला मान जाय, तो दुष्ट स्वप्नसे भी पापसे दूर होकर पुण्यलोकको प्राप्त होनेकी जो बात है, वह यूपसे छुटकारा पानेके साथ संबंध नहीं रख सकती। इसलिये शुनःशेषकी जो कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें मिली है वह विश्वास रखने योग्य प्रतीत नहीं होती और शुनःशेष ऋषिके सूक्तमें जो 'बन्धनसे निवृत्ति' का विचार है वह सर्व साधारण मानवोंके बंधनसे मुक्तता काही विचार है इसमें संदेह नहीं है।

(११)

ऐतरेय ब्राह्मणमें शुनःशेषकी कथा

ऐतरेय ब्राह्मणमें जो शुनःशेषकी कथा मिली है वह निम्नलिखित स्थानमें दी है, साथ अनुवाद भी दिया है—

मूल कथा

१ हरिश्चन्द्रो ह वैधस पेक्षवाकोऽपुत्र आस ।
२ ह शतं जाया बभूवुः । तासु पुत्रं न लेभे ।
३ ह पर्वत नारदौ गृध्र ऊपतुः । स ह नारदं
४ ... किं स्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आ चक्ष्व
५ ऐति ।

६ पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ।
७ पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते । तज्जाया
८ भा भयति यदस्यां जायते पुनः ।

९ वैवाक्ष्येतालुपयश्च तेजः समभरन्महत् । देवा
१० पानमुपयन् एषा वो जननी पुनः ॥

११ मातृस्य लोकोऽस्ति

१२ अर्धेनमुपाच दरुणं राजानमुप धाय, पुत्रो मे
१३ भवति, तेन या यजेति, तथेति ।

अनुवाद

१ हरिश्चन्द्र राजा । इसका पुत्र नहीं हुआ ।
२ राजाका पुत्र था, वह पुत्रहीन था । उनकी गीनियां थीं ।
३ पर उसे एक भी लीते पुत्र न हुआ । उसके घरमें पर्वत
४ और नारद ये दो ऋषि वास कर रहे थे । उन राजाके लपटने
५ पूछा कि इस प्राप्तिसे क्या लाभ होने है वे मुझे बताते ।

६ पति वीर्यरूपसे गर्भस्थकीमें प्रविष्ट होता है । यहाँ
७ गया होकर दूसरे ऋग्निमें जनम लेता है । इसकी माता
८ नाम 'जाया' है ।

९ देवी और ऋषियोंके इस लीने ब्रह्मजन्म के लक्षण
१० रखे हैं । देवोंके मातृकोते कहा कि यह पुत्र हीन
११ पुत्रहीन ही फिर जन्मी, माताके दुर्ग है । (यहाँ विद्वानों
१२ की लीने देवोंके पुत्रत्वमें उल्लेख है ।)

३ पुत्रहीनके लीने यह लक्षण है ।
४ यह एक ऋषिके इस राजाके पुत्र के लक्षण
५ इसका कहते हैं, एक होनेका उल्लेख है ।
६ यह है देवों के लक्षण

५ तस्य पुत्रो जज्ञे, रोहितो नाम तं होवाचाऽजनि वै पुत्रो, यजस्व माऽनेवेति ।

६ स होवाच... निर्दशोऽन्वस्त्वथ त्वा यजा इति, तथेति ।

७ निर्दशो न्वभूद्यजस्व मानेनेति । स होवाच... दन्ता न्वस्य जायन्तां, अथ त्वा यजा इति, तथेति ।

८ तस्य दन्ताः पुनर्जक्षिरे, तं होवाचाकृत वा अस्य पुनर्दन्ता, यजस्व मानेनेति, स होवाच, यदा वै क्षत्रियः साक्षाहुको भवति, अथ स मेध्यो भवति, ... अथ त्वा यजा इति ।

९ स सन्नाहं प्रापत्तं होवाच, सन्नाहं नु प्राप्नोद्यजस्व माऽनेनेति । स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामेन्वयामास, ततायं वै मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति । स ह नेत्युक्त्वा धनुरादाधारण्यमुपातस्यौ, स न्वन्सरमरण्ये चचार ।

१० अथ दैक्ष्याकं वरुणो जग्राह, तस्य होदरं जंघं, नहु ह रोहितः शुथाच, सोऽरण्याद्ग्राममेयाय, नमिन्द्रः उवाच । नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति... चरयेति ।

११ गोऽजीगर्तं सौवयसिं ऋषिं अशनया परीत-मरण्य उपेयाय । तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः । ... मध्यमे धुनःशेषे तस्य ह शतं दत्त्वा, स तमादाय गोऽरण्याद्ग्राममेयाय स पितरमेत्योवाच तत हन्ता-हमनेनान्मानं निष्क्रीणा इति । स वरुणं राजान-मुपसमाशानेन त्वा यजा इति । तथेति भ्यान्वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति ।

१२ सौवयसिर्महामपरं शतं दत्त, हममेनं नियो-क्ष्यामि । ... मध्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसि-ष्यामि । ... धुनःशेषे ईडां चक्रेऽमानुषमित्रं वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपश्रवामीति । 'कस्य नृते' ३० ।

५ उसे पुत्र हुआ, उसका नाम रोहित था, अ राजासे कहा, कि पुत्र हुआ, अब उससे मेरा यज

६ राजाने कहा है देव ! अमी तो इस दिन भी नहीं हुए, उतने तो होने दो । बाद वम ठीक है ऐसा वरुणने कहा ।

७ इस दिन हो गये हैं अब इससे मेरा यज वरुणने कहा, तब राजाने कहा कि इसे दांत के पश्चात् यज्ञ करेंगे । ठीक ऐसा उसने कहा ।

८ उस पुत्रके (पहिले दांत आये, गिरे, पश्चात् दांत आये, तब वरुणने यज्ञ करनेके लिये क राजाने कहा कि जब क्षत्रिय कबच धारण करने तब पवित्र होता है, तब यज्ञ करेंगे ।

९ जब वह पुत्र कबच धारण करने लगा तब कहा कि अब यज्ञ करो । तब उसने अपने पुत्रके और कहा कि हे पुत्र ! इस वरुणकी कृपासे तुम्हें हुआ है, इसलिये इसके लिये तेरा यजन करना है । ' नहीं ' करके कहा और धनुष्य लेकर वनमें गए और वहां एक वर्षतक धूमता रहा ॥

१० तब हरिश्चन्द्रको वरुणने उदर रोग किया, वह कर रोहित अरण्यसे घर आया, तब इन्द्रने उसे ह विनायके देख्य नहीं मिलता, ... इसलिये धूमने लगे छः वर्ष अरण्यमें रहा ।)

११ वह राजपुत्र सुयवसका पुत्र अजीगर्त ऋषि दुःखी है ऐसा देखकर उसके पास गया । उसके हाथ थे । ... बीचके धुनःशेषको १०० गाँव देकर खीर उसे लेकर वह वनसे घर आया और पितासे बोला यह ब्राह्मणपुत्र खीर दे कर लाया है, वह राजा वरुण जाकर बोला कि इससे तेरा यजन करेंगे । ठीक वरुणने कहा और कहा कि क्षत्रियसे ब्राह्मण का रहता है ।

१२ अजीगर्तने कहा कि यदि तुमने खीर दोगे तो मैं इसको यूपके साथ बांधूंगा । ... गाँव दोगे तो मैं इसका हवन करूंगा । धुनःशेष कि ये पशुके समान मेरा यज्ञों वच हो कर रहे हैं, देवताकी ही उपासना करूंगा । ' कस्य नृते ' ३० । उपासनाके मंत्र हैं ।

तब प्रार्थना करते करते शुनःशेषके बंधे पाश खुल
गैर उसके पिता भी उदर रोगसे मुक्त हुए । देवोंके
शुनःशेष बच गया, इसलिये इसका नाम 'देवरात' रखा
गया । उस वृद्धमें इकट्ठे हुए ऋषि विचार करने लगे कि
'किसका पुत्र होगा ? तब शुनःशेष विश्वामित्रकी गोदमें
; तब अजीर्णर्त ऋषि कहने लगा कि 'यह मेरा पुत्र है'
श्वामित्र- नहीं, देवोंने यह मुझे दिया है इसलिये यह
है ।

जीर्णर्त- (अपने पुत्रसे) हे प्रिय पुत्र ! तू अब मेरे
ले कर चल, तेरी माता तेरा स्वागत करेगी ।

शेष- हे अजीर्णर्त ! हे पिता ! अबतक तो तुमने
मेरे मेरे गलेपर छुरी चलानेका कार्य किया और अब
ते हो । देवताओंकी दयासे मैं जीवित रहा, इसलिये
मेरा नहीं बलिगा ।

ऐसा कहकर शुनःशेषने अंगिरस गोत्रका त्याग करके विश्वामित्र गोत्रका स्वीकार किया । विश्वामित्रने उसका स्वीकार किया । विश्वामित्रके १०० पुत्र थे । पहिले ५० पुत्रोंने इसे अपना भाई माननेसे इन्कार किया । तब विश्वामित्रने उन्हें शाप दिया । (तानु न्याजहारान्ताम्बः प्रजा भक्षी-
ष्टेति त एतेऽन्धाः पुण्ड्राः शवराः पुलिन्दा मूर्तिवा
इत्युदन्त्या यद्वो भवन्ति वैश्वामित्रा दन्त्युनां
भूयिष्ठाः) कि जो तुम मेरी आज्ञा नहीं मानते वे तुम नीच
दस्तु बनेगे । वे ही वे आन्ध्र पुलिन्द, शबर आदि हैं । वे सब
दस्तु ये ही विश्वामित्र पुत्र शापसे त्रष्ट हुए हैं ।

मधुच्छन्दा आदि विश्वामित्र पुत्रोंने शुनःशेषको अपना बड़ा
भाई मान लिया और पिताकी आज्ञा मान ली । इसलिये मधुच्छ-
न्दा आदि ऋषि बने । यह कथा ऐ. ब्रा. ७।३।१३-१८ में है ।

इस कथाका विचार भूमिकामें हुआ है ।

(७) उत्तम रथ

अश्विदेवोंका रथ

आदर्श पुरुष

नवम मण्डल, तृतीय अनुवाक

(८) सोमरस

सोमरस

वीर सोम

(९-१०) शुनःशेष ऋषिके अथर्ववेदमें आये मंत्र

(११) पेतरेय ब्राह्मणमें शुनःशेषकी कथा



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(४)

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन
(उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मंत्रोंके समेत)
(ऋग्वेदका सप्तम अनुवाक)



लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
रुप्यहा स्वाध्याय-मण्डल, लौध (जि० सातारा)

संवत् २००३

२००३

मूल्य १) ५०

मुद्रक और प्रकाशक- दशरथ श्रीपाद साठवडेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, बीप (जि. धारवाड)

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदके सप्तम अनुवाकमें हिरण्यस्तूपके ७१ मंत्र हैं, नवम लमें २० हैं और दशम मंडलमें उसके पुत्र अर्चन ऋषिके न है। सब मिलकर ९१ मंत्र इसके दर्शनमें हैं। इनका ऐसा है—

ऋग्वेद-प्रथम मण्डल

प्रथम अनुवाक

| हिरण्यस्तूप ऋषिः | देवता | मंत्रसंख्या |
|------------------|------------|-------------|
| सूक्त ३१ | आग्निः | १८ |
| ३२ | इन्द्रः १५ | |
| ३३ | ” १५ | २० |
| ३४ | अश्विनी | १२ |
| ३५ | सविता | ११ |
| | | <hr/> ७१ |

नवम मण्डल

| सूक्त ४ | पवमानः सोमः | १० |
|---------|-------------|----------|
| ६९ | ” ” | १० |
| | | <hr/> २० |

दशम मण्डल

अर्चन हिरण्यस्तूपः

| सूक्त १४९ | सविता ५ | ५ |
|-----------|---------|--------------------------|
| | | <hr/> कुलमन्त्रसंख्या ९६ |

देवतानुक्रमसे मन्त्रसंख्या इस तरह होती है—

| | |
|-----------------|----|
| १ इन्द्रः | १० |
| १ सोमः | २० |
| १ अग्निः | १८ |
| ४ सविता | १६ |
| ५ अश्विनी | १२ |
| कुलमन्त्रसंख्या | ९६ |

पांच देवताओंके मंत्र इस ऋषिके दर्शनमें आये हैं। हिरण्य-स्तूपका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मणमें इस तरह आता है—

‘इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचमिति सूक्तं शंसति ।
तस्मा एतात्प्रियं इन्द्रस्य सूक्तं निष्कैवल्यं
हिरण्यस्तूपं, एतेन वै सूक्तेन हिरण्यस्तूप
आङ्गिरस इन्द्रस्य प्रियं धाम उपागच्छस्व,
स परमं लोकमजयत् ।’

(ऐ. ब्रा. १।२४)

अग्निदेवतानां, हिरण्यस्तूप ऋषीणां, धृहती
छन्दसां ॥ (श. ब्रा. १।६।१।२)

‘इन्द्रस्य नु वीर्याणि’ यह सूक्त (ऋ. १।३२) है। यह इन्द्रका बड़ा प्रिय काव्य है, यह अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हिरण्य-स्तूप ऋषिका है। इस सूक्तके पाठसे उसने इन्द्रका प्रिय धाम प्राप्त किया, और उससे भी श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया। इस तरह हिरण्यस्तूप ऋषिका यह (ऋ. १।३२ वां) सूक्त है ऐसा ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा है। शतपथमें ऋषियोंमें हिरण्यस्तूप ऋषि प्रशंसित हुआ है ऐसा कहा है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें येही इस ऋषिके नामके उल्लेख हैं। निम्नलिखित मंत्रमें इस ऋषिका नाम आता है—

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाऽऽङ्गिरसो जुहो
वाजे अस्मिन् । एवा त्वार्चसवसे घन्दमानः
सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ।

(ऋ. ९०।१४।५५)

‘(मेरे पिता) अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हुए हिरण्यस्तूप ऋषिने सविता देवका जैसा कव्यमान किया था वैसा ही मैं (उसका पुत्र) अर्चन ऋषि अर्चन उपागच्छ कर रहा हूँ।’

यहां अर्चन ऋषिने अर्चना नाम जैसा कहा है वैसा ही अर्चने पिताका और अर्चने गोत्रका भी नाम कहा है। इसके अतिरिक्त मंत्र और ब्राह्मण-ग्रंथोंमें इस ऋषिका नाम इतनी भी नहीं है।



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

(उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मंत्रोंके समेत)

[ऋग्वेदका सप्तम अनुवाक]

(१) सबका परम पिता परमात्मा

(ऋ. १।३१) हिरण्यस्तूप आह्निरसः । अग्निः । जगती; ८, १६, १८ त्रिष्टुप् ।

| | |
|---|---|
| त्वमग्ने प्रथमो अह्निरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा । | |
| तव व्रते कवयो विघ्ननापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः | १ |
| त्वमग्ने प्रथमो अह्निरस्तमः कविर्देवानां परि भूयासि व्रतम् । | |
| विभुर्विद्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायये | २ |
| त्वमग्ने प्रथमो मातरिद्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते । | |
| अरेजेतां रोदसी होतृव्येऽसग्नोभारिमयजो महो वसो | ३ |
| त्वमग्ने मनवे घामवाशयः पुरुवरसे सुकृते सुकृत्तरः । | |
| भ्वाग्नेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः | ४ |
| त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवासि ध्रुवाय्यः । | |
| य आगृर्ति परि वेदा वपदृष्टतिमेकायुरग्ने विश आविवाससि | ५ |
| त्वमग्ने घृजितवर्तनि नरं सफमन् पिपार्षि विदधे दिचर्षणे । | |
| यः शूरसाता परितफ्म्ये धने दग्नेभिध्वित् समृता हंसि भूयसः | ६ |
| त्वं तमग्ने अमृतत्वं उत्तमे मर्ते दधासि ध्रुवसे दिवेदिवे । | |
| यस्तातृपाण उभयाय जन्मने मयः कृणोपि प्रय आ च सूरये | ७ |
| त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारं कृणुदि स्तवानः । | |
| ऋभ्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः | ८ |
| त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवथ जागृविः । | |
| तनूहृद् बोधि प्रमतिश्च कारये त्वं कल्प्याण वसु विश्वमोपिये | ९ |

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पिताऽसि नस्त्वं वयस्कृन् तव जामयो वयम् ।
 सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति घतणामदाभ्य
 त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्वपतिम् ।
 इलामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यन् पुत्रो ममकस्य जायते
 त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मर्द्यो नो रक्ष तन्वन्न वन्द्य ।
 प्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते
 त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिपङ्काय चतुरक्ष इध्यसे ।
 यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन् मन्त्रं मनसा वनोपि तम्
 त्वमग्ने उरुशंसाय वाचते स्पार्हं यद् रेङ्गणः परमं वनोपि तत् ।
 आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्ति प्र दिशो विदुष्टः
 त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
 स्वादुक्ष्वा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः
 इमामग्ने शरणि मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
 आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भूमिरस्यृपिकृन् मर्त्यानाम्
 मनुष्वदग्ने अहिरस्वदह्निरो ययातिवत् सद्ने पूर्ववच्छुचे ।
 अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय वर्हिपि याक्षि च प्रियम्
 एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृषस्व शक्ती वा यत् ते चक्रमा विदा वा ।
 उत प्र णेप्यभि वस्यो अस्मान्त्वं नः सृज सुमत्या वाजवत्या

अन्वयः— हे अग्ने ! त्वं प्रथमः अहिरा ऋषिः, देवानां
 देवः, शिवः सत्ता अमवः । तव व्रते कवयः, विश्वना-अपसः
 आजन्-ऋषयः मरुतः अजायन्त ॥ १ ॥

हे अग्ने ! त्वं प्रथमः अहिरस्त्वमः कविः देवानां व्रतं
 परि भूपसि । विद्वत्सु सुवनाय विभुः, मेघिनः, द्विमाता,
 जायवे कविषा चित् शायुः ॥ २ ॥

हे अग्ने ! त्वं प्रथमः, सुष्ठुया विवस्वते मातरिद्वने
 जाविः भव । हे वसो ! रोदसी अरेजेताम् । होतृव्यै भारं
 असन्नोः । मरुः अयजः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! तुम पहिले अहिरा ऋषि दे
 देव और शुभ मित्र थे । तुम्हारा ही कार्य अने
 कार्य पदति जाननेवाले मरुद्गण तेजस्वी सृज
 थे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तुम पहिले अहिरसोमि मुख्य कवि
 कार्य सुशोभित करते हो । तुम सब भुवनों में वि
 मान और द्विज-रूप (दो माताओं से उत्पन्न,
 माता और दूसरी सरस्वती विश्वामाता, इनके
 मनुष्यमात्रके (हितके) लिये कई प्रकारसे सर्वत्र
 हो ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तुम (विद्यमान) पहिले हो, वसन्त ऋतु
 लताके साथ सूर्य और वायुके लिये (सामर्थ्य) प्र
 प्रकट हुए हो । हे सबके निवास कर्ता देव ! (तुम्हारे
 कर भयसे) ध्रुवोक्त और पृथिवी भी कांप रहने
 होताके वरण करनेके समय तुम ही (सब वस्तु
 हो । (और तुमने) महीनीय (देवी) के लिये
 है ॥ ३ ॥

अग्ने ! त्वं मनवे द्यां अवाशयः । सुकृते पुरुरवसे

। यत् पित्रोः स्वात्रेण परि मुच्यसे, (तत्) त्वा
जनयन्, पुनः अपरं वा (जनयन्) ॥ ४ ॥

अग्ने ! त्वं वृषभः पुष्टिर्वर्धनः उद्यतसुचे अवाच्यः

। यः वषट्कृतिं आहुतिं परि वेद, (सः त्वं)
विशः अग्ने आविवातसि ॥ ५ ॥

अपने अग्ने ! त्वं हृजन्-वर्तनिं नरं सक्मन् विदधे

। यः परितक्म्ये धने शूरसाता दग्नेभिः चित् समृत्ता
हंसि ॥ ६ ॥

अग्ने ! त्वं सं नरं दिवेदिवे भवसे उत्तमे समृतत्वे

। यः उभयाय जन्मने तातृपाणः, (तस्मै) सुर्ये
यः च वा हृजोवि ॥ ७ ॥

अग्ने ! स्ववानः त्वं नः धनानां सनये यशसं कारं

। नवेनं कर्त्तुं कर्म ऋष्याम् । हे द्यावापृथिवी !
। अ भवतम् ॥ ८ ॥

अनद्य अग्ने ! देवेषु जागृविः, त्वं पित्रोः उपत्ये नः

। आ बोधि । हे कल्याण ! कारये प्रमतिः, त्वं विश्वं
। ऊरिवे ॥ ९ ॥

अग्ने ! त्वं प्रमतिः, त्वं नः पिता असि । त्वं वषट्कृत्

। अ जामयः । हे अदाम्य ! सुवीरं दत्तपां त्वा शक्तिनः
। यः शयः सं सं यन्ति ॥ १० ॥

अग्ने ! देवाः आद्ये प्रथमं आहुं मनुष्यस्य दिदरति

। मनुष्यस्य शासनी इवां कष्टयन् । यत् मनकस्य
पुनः जायते ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! तुमने मनुष्यमात्रके हितके लिये घुलोकको निना-
दित (शब्दमय) किया । पुण्य कर्म करनेवाले पुरुरवाके लिये
तुमने अधिक शुभ कर्म किया था । जब मातापिताओंसे शीघ्र-
ही तुम मुक्त (दूर) हुए, (तब) तुम्हें पूर्व (ब्रह्मचर्य आश्रममें
पहिले) ले गये, पश्चात् दूसरे (गृहस्थ आश्रममें) ले गये थे ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तुम बड़ा बलिष्ठ और (सबका) पोषण करनेवाला
हो । तुम यज्ञ करनेवालेके लिये स्तुति करने योग्य हो । जो
वषट्कारपूर्वक आहुति देना जानता है (उसके लिये तुम)
संपूर्ण आयु देते हो और सब प्रजाओंमें प्रथम स्थानमें उसको
निवास कराते हो ॥ ५ ॥

हे विज्ञानवान् अग्ने ! तुम दुराचारमें रहनेवाले मनुष्यको भी
(अपने) साथ रहनेपर युद्धमें बचाते हो । जो (यह तुम)
चारों ओरसे छिड़नेवाले और जहाँ केवल शत्रुका ही काम है
ऐसे घोर युद्धमें अल्पसंख्य और वीरताहीन मानवोंसे युद्धके लिये
मिले हुए बहुसंख्य शत्रुओंका भी वध करते हो ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तुम उस (भक्त) मनुष्यको प्रतिदिन यशस्वी बनाते
हुए उत्तम समरपदपर चढ़ाते हो । जो (द्विजत्व सिद्धिके)
देनों जन्मोंमें (यशस्वी होनेके लिये) पिपासु रहता है, (उस)
ज्ञानाके लिये तुम समृद्धि और श्रेय देते हो ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! (तुम्हारी) स्तुति करनेपर तुम हमारे लिये धन
दान यश और कारीगरी प्राप्त करा दो । (हम) नूतन कर्मसे
(पूर्व) कर्मकी वृद्धि करेंगे । हे द्यावा-पृथिवी ! देवोंकी शक्तियोंके
(साथ) हमारी सुरक्षा करो ॥ ८ ॥

हे निर्दोष अग्ने ! तुम सब देवोंमें जागरूक (अर्थात् सारथ)
हो, तुम हमारे मातापिताओंके समीपमें हमारे शरीर निर्माण
करते हो । हे कल्याण करनेवाले ! कारीगरके लिये विशेष वृद्धि
देकर, तुम (उसको) सब धन देता है ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! तुम विशेष बुद्धिमान हो, तुम हमारे पिता हो, तुम
हमें आयु देता है, हम तेरे बन्धु हैं । हे न दग्नेवाले देव !
उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले और निदमोंका पालन करनेवाले
तुम्हारे पास सैकड़ों और सरसों धन पहुँचते हैं ॥ १० ॥

हे अग्ने ! देवोंने मानवके लिये सब प्रथम आयु (री,)
पश्चात् उरुने) मानवोंके लिये प्रजापालक राजा निर्माण
किया । तब मनुष्योंके शासन (व्यवस्था) के लिये (धर्म) निर्दिष्ट
भी निर्माण किया । जैसे पितृसे ममत्व (और)
पुत्रता जन्म होता है (वैसे आत्मा-यन्त्रके राजा प्रजाका पुनश्च
पालन करे) ॥ ११ ॥

अतिष्ठन्तीनां अनिवेशमानानां काष्ठानां मध्ये वृत्रस्य
निष्पन्नं शरीरं निहितं, आपः वि चरन्ति । इन्द्रशत्रुः दीर्घं
तमः आशयत् ॥ १० ॥

पणिना गावः इव, दासपत्नीः अहिगोपाः आपः निरुद्धाः
अतिष्ठन् । अपां यत् विलं अपिहितं आसीत्, तत् वृत्रं
जघन्वान्, अप ववार ॥ ११ ॥

सृष्टे यत् एकः देवः त्वा प्रत्यहन्, तत् अदस्यः वारः
अभवः । गाः अजयः । हे शूर इन्द्र ! सोमं अजयः । सप्त
सिन्धून् सर्तवे भव असृजः ॥ १२ ॥

अस्मै विद्युत् न सिपेध । तन्यतुः, यां मिहं अकिरत्,
न (सिपेध) । द्वादुर्नि च (न सिपेध) । इन्द्रः च अहिः च
यत् युयुधाते, वत मघवा अपरीभ्यः वि जिग्ये ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! जघ्नुषः ते हृदि यत् भीः अगच्छत्, अहेः
यातारं कं अपश्यः ? यत् नव च नवतिं च जघन्तीः रजांसि,
भीतः ज्येनः न, अतरः ॥ १४ ॥

वज्रबाहुः इन्द्रः यातः अवसितस्य, शमस्य शृङ्गिणः च,
राजा । स इत् व चर्पणीनां राजा क्षयति । अरान् नेमिः न,
ताः परि बभूव ॥ १५ ॥

शिर न रहनेवाले और विधाम न करनेवाले
भीतमें वृत्रका शरीर छिपकर पड़ा रहा था ।
जलप्रवाह नल रहे थे । इन्द्रके शत्रु (वृत्र) ने बड़ा
फैला दिया था ॥ १० ॥

पणी नामक (असुर) ने जैसी गौवें (गुरावों)
तरीह दास (वृत्र) के द्वारा पालित और अहिना
जलप्रवाह रुके पड़े थे (अर्थात् शिर हो गये थे)
जो द्वार बन्द था, वह वृत्रके वधके पश्चात्, बन्द
(अर्थात् जलप्रवाह बहने लगे) ॥ ११ ॥

(इन्द्रके) वज्रपर जब एक अद्वितीय युद्धकृत्य
मानो तुमपरही प्रहार किया, तब घोंडेकी पूँछके पक्ष
उसका) निवारण किया । और गौओंको प्राप्त कि
वीर इन्द्र ! सोमको (तुमने) प्राप्त किया और
ओंके प्रवाहोंको गतिमान् करके खुला छोड़ दिया ।

(जब इन्द्र युद्ध करने लगा तब) इस (इन्द्रके)
प्रतिबंध न कर सकी, मेघगर्जना और जो हिमहिम
भी उसका प्रतिबंध) न (कर सकी) । गिरनेकी
(इस इन्द्रको न रोक सकी) । इन्द्र और अहि
करते थे, उस समय धनवान् (इन्द्र) ने तन्यत्
कपट प्रयोगोंको भी) जीत लिया ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! (वृत्रका) वध करते समय तुम्हारे
भय उत्पन्न हो जाता, (तब तुमने) अहिना
लिये किस दूसरे (वीर) को देखा होता ?
छोड़कर दूसरा कोई वीर मिलना संभवही नहीं था ।
तो नौ और नव्वे जल-प्रवाहोंको, अन्तरिक्षमें
की तरह, पार कर दिया ॥ १४ ॥

वज्रबाहु इन्द्र जङ्गम और स्थावरों, शान्त और
वालों) का राजा है । वही मनुष्योंका भी राजा
रहा है । आरोंको जिस तरह चक्रकी नेमि (धार
उस तरह) वे सब (उसके) चारों ओर रहते हैं
वही सबका धारण करता है) ॥ १५ ॥

ईश्वर-स्वरूपका विचार

इस सूक्तका अन्तिम मंत्र ईश्वरस्वरूपकी स्पष्ट कल्पना दे
रहा है । इस मन्त्रमें निम्नलिखित चार कल्पनाएँ स्पष्ट हैं—

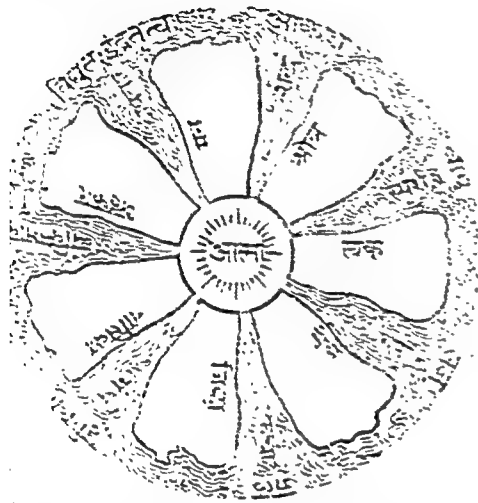
१. इन्द्रः यातः अवसितस्य राजा— इन्द्र जंगम और

स्थावरोंका राजा है ।

२. वज्रबाहुः शमस्य च शृङ्गिणः राजा—
इन्द्र शान्त और क्रूरों, सींगवालों अथवा
राजा है ।

सः चर्पणीनां राजा क्षयति - वह सब प्रजाओंका होकर रहता है ।

ताः (प्रजाः), वरान् नेमिः न, (सः) परि
[- वे प्रजाजन, चक्रके आरे चक्री नेमिके चारों ओर
हैं वैसे, उनके चारों ओर रहते हैं । (मं. १)



परमात्मा नाभी । चार वर्ण और निपाद चण्डाल
के आरे और ब्रह्माण्ड चक्र । यहाँका चित्र पिण्डका है ।
चक्री नेमि ईश्वर है और उस प्रभुके आधारपर सब विश्व
है, जिस तरह चक्रनेमिके आधारसे चक्रके आरे रहते हैं ।
एक ईश्वरका कल्पना यहाँ स्पष्ट हुई है । दूसरा उदाहरण
के आधारसे वृक्षकी शाखाएँ रहती हैं, यह वेदने अन्यत्र
है । स्थवर-जंगम, सान्त-क्षुर, सींगवाले-सींगसे रहित वे
इन्द्र हैं । इससे विभिन्न अन्य इन्द्रोंका भी कल्पना यहाँ
कर सकते हैं, जट-चेतन, प्राणी-अप्राणी, पशु-पक्षी,
मनुष्य-देव, राजा-प्रजा, धनी-निधन, शक्ती-अशक्ती,
वैभव-दुःख इत्यादि अनेक इन्द्र इस विश्वमें हैं । इन सबका
इन्द्र है, सर्वोच्च प्रभु है । सबका बालक और अधिपति
एक ईश्वर है । सब मानवोंका वही प्रभु है, इसलिये सबको
एक प्रभुकी उपासना करना योग्य है ।

इस स्थलमें विद्वत् प्रकार रूपमें इस प्रभुका साक्षात्कार
होता है और आश्रयार्थका उपदेश दिया है । देखिये-

आश्रयार्थ

॥ परंते सिधियायं कर्ति अहम् - परंपर रहनेवाले

अहि नामक शत्रुका वध इन्द्रने किया, पर्वतपरके दुर्गका आश्रय
करके यह अहि रहता था, उसपर हमला करके इन्द्रने उस
शत्रुका पराभव किया और उसका वध भी किया । (मं. २)

२ अहीनां प्रथमजां एनं अहम् - अहि नामक शत्रुके
अनेक बार लड़नेके लिये आये थे, उनमें जो प्रमुख मुखिया
वार था, उसका वध इन्द्रने किया, जिससे बाकी रहे सबोंका
पराभव हुआ । यहाँ प्रथम मुखियाका वध करना चाहिये, यह
युद्धनीतिकी बात प्रकट हो रही है । (मं. ३, ४)

३ मायिनां मायाः अमिनाः - कपटी शत्रुओंके सब
कपटपूर्ण षड्यन्त्रोंका इन्द्रने नाश किया । इससे स्पष्ट हो
जाता है कि, स्वयं सावध रहकर शत्रुकी कपट युक्तियोंकी
जानना चाहिये और उनका नाश करना चाहिये अथवा उनको
विकल करना चाहिये । (मं. ४)

४ शत्रुं न विवित्से - एक भी शत्रु किसी स्थानपर न देखे,
ऐसी स्थिति आनेतक युद्ध करके शत्रुका नाश करना चाहिये ।
(मं. ४)

५ दासपत्नीः अहिगोपाः आपः निरुद्धाः आसन् ।
वृत्रं जघन्वान्, अपां विलं निहितं आसीत्, तत्
वप ववार - शत्रुने जलप्रवाहोंपर अपना कब्जा किया था,
सब जलप्रवाह रोक रखे थे । इन्द्रने वृत्रका वध किया और
जो जलोंका द्वार बंद किया था, उसे खोलकर सबके दिनोंके
लिये जलप्रवाह खुले किये । (मं. ११)

शत्रुकी युद्धनीति यह रहती है कि जलस्थान अपने अधि-
कारमें रखना और प्रतिपक्षीको जल न देनेसे तंग करना । इस
कारण इन्द्रकी नीति यह रहती है कि शत्रुवारोंको परास्त करके
उन जलप्रवाहोंको सबके लिये खुला करना ।

६ नव च नवति च अयन्तीः रजांसि अतरः - नौ
और नव्वे जलप्रवाहों और प्रदेशोंको प्राप्त किया और उसके भी
परे चला गया । यह इन्द्रका पराक्रम है । इतनी नदियाँ और
इतने सींचके प्रदेश इन्द्रने शत्रुसे मुक्त किये और अपने अधिपत्य
में लाये । (मं. १४)

७ त्वष्टा अस्मै स्वयं वक्षं तत्तत् - त्वष्टाके इस इन्द्र
के लिये (स्वयं-स्वयं) तत्तत् शक्तिसे जो शत्रुका वध करना है
ऐसा वक्ष मैंपर करके दिये । (मं. २) देवकी शक्तिसे
उत्पन्न है कि वे अपने देवोंके लिये शत्रुका विनाश करने

सहायता देवें, जिससे अपने वीरोंको उभोजना मिले और शत्रु परास्त हो जाय।

८ मधवा सायकं वज्रं आ अदस्- इन्द्रने अपने पाग बहुत धन इकट्ठा किया, उससे उसको शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए। (मं. ३) और उन शस्त्रास्त्रोंसे उसने शत्रुका पराभव किया।

९ दुर्मदः अयोध्या (इन्द्रं) आ जुह्वे-घमण्डी और अपने को अजिंक्य समझनेवाले शत्रुने इन्द्रको लड़नेके लिये आह्वान दिया। उस शत्रुने यह समझा था कि अपनी शक्ति अधिक है और इन्द्रकी कम है, इस घमण्डमें वह था और उसने आह्वान दिया था। (मं. ६)

१० वृत्रतरं वृत्रं अहन्- वृत्र नामक शत्रु (वृत्रतरः) चारों ओरसे घेरकर रहा था। उसका विचार था कि इन्द्रकी सेनाको चारों ओरसे घेरकर मारना, परंतु यह कपट इन्द्रने जान लिया और उसीका वध किया। (मं. ५)

११ अस्य वधानां समृतिं न अतारीत्- इन्द्रके द्वारा हुए अनेक आघातोंको वह वृत्र न सह सका। शत्रुपर ऐसे ही हमले करने चाहिये। (मं. ६)

१२ विद्युत्, तन्यतुः, मिहं, ह्रादुनिः अस्मै न सिपेय- बिजलियाँ, मेघगर्जनाएँ, बड़ी वृष्टि, बर्फकी वर्षा, बिजलियोंका गिरना आदि आपत्तियाँ इन्द्रको न रोक सकीं। इन्द्र जिस समय शत्रुपर हमला करने लगा था, उस समय ये विघ्न होने लगे थे, पर इन्द्रका हमला होता रहा। शत्रु परास्त होने तक इन्द्रने विघ्नोंकी पूर्वाह्न न करते हुए हमला किया और अन्तमें विजय पाया। (मं. १३)

१३ यत् जघ्नुवः हृदि भीः अगच्छत्, अहेः यातारं कं अपद्यः ?- जब इस हमला करनेवाले इन्द्रके हृदयमें भय उत्पन्न होता, तो उस युद्धके समय कौन दूसरा सहायक मिलता ? अर्थात् कोई नहीं। इस कारण न डरते हुए हमला चढ़ाते रहना चाहिये। (मं. १४)

१४ इन्द्रः महता वधेन वृत्रं व्यसं अहन्, अहिः पृथिव्याः उपपृक् शयते- इन्द्रने अपने बड़े प्रभावी घमण्डसे वृत्रके हाथ काट दिये और उसका वध किया, तत्पश्चात् वह वृत्र पृथ्वीके ऊपर गिर पड़ा। (मं. ५) यहाँ वृत्र और अहि ये एकके ही वाचक दो पद हैं।

१५ इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपियं- वृत्र जो इन्द्रका शत्रु था, वह मरकर जब गिरा, तब उससे पृथ्वी चूर्ण हुई। (मं. ६)

१६ अयात् आहस्तः वृत्रः इन्द्रं पात्रं दूट जानेपर भी सेनाके साथ वृत्र युद्ध में। (मं. ७)

१७ अस्य सानां अधि वज्रं आ पुनश्चा व्यस्तः अशयत्- वृत्रके विरक्त प्रहार किया, तब वह बहुत जगह घायल होकर भूमिपर गिर गया। (मं. ७)

१८ वधिः वृष्णः प्रतिमानं पौरुषशक्तिसंपन्न वीरसे स्पर्धा करे, वैसी शक्ति साथ की। (मं. ७)

१९ वृत्रः महिना पर्यतिष्ठत्, अहिः शीः चभूय- वृत्र अपनी शक्तिसे जिनके विरक्त उनकेही पांवोंके तले अब वह गिर पड़ा है। (मं. ८)

२० सूः उत्तरा, पुत्रः अधरः आसीत्, वधः जभार- माता ऊपर और पुत्र नीचे पक्ष अपने पुत्रकी सुरक्षा करनेकी इच्छासे उत्तरा पक्ष पुत्र बचे और उसके बदले में मर जाऊँगी, ऐसी थी, पर इन्द्रने नीचेसे वज्र फेंककर वृत्रको मार दिया।

इस तरह इस सूक्तमें युद्धनीतिका उपदेश है, मंत्रार्थ देखकर तथा आगे पीछेके मंत्रभागोंकी समझ जान सकते हैं। यहाँ कुछ मंत्रभाग नमूनेके इससे अधिक विवरण करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं

अलंकार

यह कथा आलंकारिक है। वृत्र, अहि आदि पक्ष हैं ऐसा भाष्यकार, निरुक्तकार और निर्घट्टकारक समयतक सब ऐसा ही मानते आये हैं। पर नहीं होता। इसके कारण यहाँ देते हैं—

१ घां उपसं सूर्यं जतयन्, शत्रुं तावीरं तसे किल (मं. ४)- छलोकमें उपा चमक उठी, हुआ, इसके बाद एक भी शत्रु न रहा। सूर्यका शत्रुका न होना, यदि मेघरूप शत्रु वृत्र, अहि आदि ऐसा माना जाय तो, मेघरूप शत्रुका नाश होना संभव सूर्य उदय होनेसे मेघ पिघलते नहीं। सूर्य प्रकटित मेघ आकाशमें रहते हैं। अतः अहि वृत्ररूप शत्रु चाहिये कि जो सूर्य आते ही विनष्ट होता जाय और न बहता जाय। मेघसे तो ऐसा नहीं होता। पहलाना

हरणोंसे पिघलना संभव है। त्रिणोंसे पहाड़ों और भूमिपर बर्फ पिघलता है, यह हम देखते हैं। वैसे मेघ सूर्य आनेसे प्रकाशसे पिघलते नहीं हैं, इसलिये सूर्यका उपवन या होना और शत्रुका नाश होना, मेघके विषयमें सत्य नहीं रहते बर्फके विषयमें सत्य है।

अहिं अहन्. अपः ततर्द्, पर्वतानां वक्षणाः प्र
नित् (मं. १) अहिको मारा, पानी बहाया, पर्वतोंसे नदियां
। पर्वतोंपरका बर्फ पिघलनेसे सिंधु, गंगा आदि नदियोंका
बड़ा पूर आकर भरपूर भरना, प्रत्यक्ष दोखता है।

पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन्। आपः समुद्रं
तनुः (मं. २)-पर्वत पर रहे अहिको मारा और जल
तक बहता गया। पर्वतपरका बर्फ पिघलनेसे नदियोंमें महा-
प्रागया, जिससे पानी समुद्रतक पहुंचा। गंगा आदि नदियों
क पिघलनेसे ही गर्मियोंके दिनोंमें महापूर आते हैं।

अहिः पृथिव्याः उप पृक् शयते (मं. ५)-अहि
पर लेटता हुआ सोता है। पृथ्वीपर अहि अथवा वृत्रका
शाना, उसको बर्फ की दशामें स्वीकार करनेसे ही, हो सकता
। मेघ बर्षा मेघ-दशामें पृथ्वीपर सोता नहीं। इस लिये अहि
का वृत्र ये पद बर्फके वाचक मानना युक्तियुक्त है। बर्फ तो
और भी गिरता है और भूमिपर भी। वहां सूर्य-किरणोंसे
मिलता है और उसके पानीसे नदियां महापूरसे भरपूर भरती
समुद्रतक जाती हैं।

इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिपे (मं. ६)-इन्द्रशत्रु
नदियोंको तोड़ देता है। इन्द्र-शत्रु सूर्य-किरणोंका शत्रु यह
लाजिये। सूर्यके प्रकट होनेसे वह पिघलकर पानीका महा-
प्रागया, उससे नदियोंके तीर टूट गये और नदियां बटकर बहने
। वृत्रको मेघ माननेकी अवस्था हिम-बर्फ-माननेसे यह
युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

अनुया शयानं आपः अतिपन्ति (मं. ८)-इस
के साथ सोनेवाले (इस वृत्र परसे) जल-प्रवाह लांघकर आने
यहां 'अनुया शयानं' ये पद वृत्र पृथ्वीके साथ सोया
या यह भाव स्पष्ट बताते हैं। मेघकी अपेक्षा हिमकाटका
ही पृथ्वीपर सोया पड़ा रहता है और पानी भी उसके पूरा
गिरा, विशेष कर सूर्य-किरणोंसे पानीके प्रवाह उसके बहने
हैं, यह बात स्पष्ट है।

६ (हिरण्य.)

७ काष्ठानां मध्ये वृत्रस्य शरीरं निण्यं निहितं,
आपः विचरन्ति, इन्द्रशत्रुः दीर्घं तमः आशयत्
(मं. १०)—प्रवाहोंके बीचमें वृत्रका शरीर छिपा पड़ा,
उससे जल-प्रवाह बहने लगे, इन्द्र शत्रु इस वृत्रने बड़ा दीर्घ
अन्धकार छा दिया। जल-प्रवाहोंमें वृत्रका शरीर छिपा पड़ा
यह बात वृत्रके बर्फ होनेसेही ठीक सिद्ध हो सकती है। क्यों
कि पृथ्वीपरका बर्फ पिघलने लगा और भूमिपर महा पूर आया
तो बीचमें बर्फके ऊपरसे भी जल-प्रवाहोंका बहना स्वाभाविक
है। मेघके विषयमें यह नहीं हो सकता। 'वृत्र' आवरकको
कहते हैं। यह बर्फ भूमिपर गिरनेसे वह भूमिपर आच्छादनसा
पड़ता है, इसलिये भूमि तथा पहाड़ोंपर गिरनेवाले बर्फको वृत्र
नम आवरक होनेसे ठीक प्रतीत होता है। 'अही' (अ-ही) उसको कहते हैं कि जो कम न हो, अर्थात् हिम-कालमें बर्फ
गिरता जाता है और वह बढ़ता जाता है, इसलिये उसको यह
नाम है। यह दीर्घ अन्धेरा पृथ्वीपर फैलाता है। दीर्घ अन्धेरा
मेघ नहीं फैलाते, दिनके समय मेघ आनेसे सूर्य-दर्शन नहीं होता
पर अन्धेरा नहीं होता। बर्फका गिरना और दीर्घ रात्रिके अन्धे-
रेका होना यह बात उत्तरीय ध्रुव प्रदेशमेंही होनेवाली है। दीर्घ
अन्धेरा मेघोंसे नहीं होता, न प्रतिदिनकी रात्रिका होता है, दीर्घ
तम तो वही है जो छः मासकी प्रदीर्घ रात्रि उत्तरीय ध्रुवमें होती
है, उसमें होता है। वेदमें 'दीर्घं तमः' इसी प्रदीर्घ रात्रिके
अन्धेरेको कहा है। रात्रिका प्रारंभ, (दीर्घं तमः) प्रदीर्घ
अन्धकारका प्रारंभ, बर्फ गिरनेका प्रारंभ, उम बर्फसे भूमिका
(वृत्र) आवरण होना, वह बर्फका आच्छादन (अ-हि) कम
न होना, इस समय विस्तृतप्रकाश (इन्द्र) का होना, छः मासोंके
बाद आकाशमें उपका होना, अनेक उपाओंके बाद सूर्यका
आना, इन्द्रके द्वारा सूर्यको ऊपर आकाशमें चढ़ाना, सूर्य आने-
पर बर्फ (वृत्र) का नाश होनेका प्रारंभ होना, पश्चात् जल-
प्रवाहोंके महापूरोंसे नदियोंका भरना इत्यादि सब बातें उसी
उत्तरीय प्रदेशमें प्रत्यक्ष देखनेवाली हैं। प्रतिवर्ष वैमोशी होनेके
कारण ये घटनाएं स्मृतिमान भी हैं। यह वर्णन ऐमाही प्रतिवर्ष
होता रहेगा। इसलिये इस स्मृतिमान घटनापर बिदे बर्फ मानने
के लिये स्मृतिमान दोष देने इसमें संदेह नहीं है।

८ आपः निरुद्धाः आगन्, वपां पितं अपिपिन्ति
आसीत्, तन् वृक् जघन्यान् शर दधार (मं. ११)—
जल-प्रवाह रुके थे, जलोका द्वार (बरना) बंद था, वह

वृत्रका वध करके खोल दिया गया। सब जानते हैं कि 'वर्क' ही जलके प्रवाहित रूपकी प्रतिबंधक स्थितिका नाम है। मेघमें भांप रहती है, जल नहीं। परंतु वर्कमें रुका हुआ जलही रहता है। सूर्य-किरण लगतेही यही रुका, जमा हुआ, जल पिघलकर बहने लगता है। इसलिये वृत्र-वध और जल-प्रवाह साथही साथ होनेवाली बात है।

इस तरह इन्द्र × वृत्र-युद्ध किरण × वर्क-युद्धही है। सूर्य-किरणसे वर्कका वध निःसंदेह होताही है। मेघोंके साथ यह घटना हमेशाही होगी, ऐसी बात नहीं है। निरुक्तकारने 'पर्वत' का भी अर्थ 'मेघ' किया है, पर पर्वतका अर्थ 'वर्कच्छादित पर्वत' समझनेपर वहाँ सूर्य-किरणोंसे वृत्रनाश होना और पर्वतोंसे नदियोंका बहना प्रत्यक्ष दीख सकता है। इसलिये 'पर्वत' पदका अर्थ 'मेघ' करनेकी अपेक्षा वर्कच्छादित पर्वत-शिखर करना युक्ति युक्त है।

९ वृत्रं जघन्वान् (मं. ११) सोमं अजयः—गा अजयः सप्त सिन्धून् सर्तवे अव अरुजः (मं. १२)—वृत्र का वध किया, सोमादि वनस्पतियों प्राप्त कीं, गीवें प्राप्त कीं, और सातों सिन्धु नदियोंका जल प्रवाहित कर दिया, सातों नदियों

महाभूतसे भर कर बहने लगीं। वृत्र-वध वनस्पतिगीवोंकी प्राप्ति होनेका वर्णन पूर्ववर्णित रहता है, वह पिघलनेपर वृत्रोंकी सोमवनस्पति संभन है। वर्कके पिघलनेसे सप्त सिन्धुओंका प्रवाह प्रसिद्ध है और प्रत्यक्ष दीखनेवाला वस्तुकार है। सोमवली वर्कानी शिखरोंपर होती है, १५००० वर्क-स्थानमें ही उत्कृष्ट सोम उगता है। वह वर्कच्छादित होता है, वर्क पिघलनेपर सोम मित्र के रूपमें वृत्रवध इस तरह सत्य है, मेघ-रूपमें प्रत्यक्ष नहीं है।

इस तरह मूकके सचके सब वर्णन वर्कके रूपमें वैसे मेघके रूपमें सचके सब घटते नहीं, इसलिये मानना योग्य है। इसका विचार आगे भी होगा। अनुसंधान रखें।

वेदका धर्म रूपकालंकारसे प्रकट होता है। वह सूक्तसे प्रकट हुआ है, वह सनातन उपदेश है। वीरके गुण भी वर्णन किये हैं। पाठक इनको मंत्र

(३) युद्धविद्या

(अ. १।३३) हिरण्यस्तूप आक्षिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमर्ति वावृधाति ।
 अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ।
 उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसति पतामि ।
 इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरकैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ।
 नि सर्वसेन इषुधौरसक्त समर्थो गा अजति यस्य वष्टि ।
 चोष्क्यमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदाधि प्रवृद्ध
 वधीर्हि दस्यु धनिनं धनेनैकश्चरन्नुपशाकोभिरिन्द्र ।
 धनोरधि विपुणक्ते व्यायन्त्यज्जानः सनकाः प्रेतिमीयुः
 परा चिच्छीर्षा वधृजुस्त इन्द्राऽयज्जानो यज्जामिः स्पर्धमानाः
 प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरघ्रतां अधमो रोदस्योः
 अयुयुत्सधनवधस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
 धृपायुधो न वध्रयो निरघ्राः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन्
 त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
 अवादहो दिव आ दस्युमुष्ठा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः

१

२

३

४

५

६

७

| | |
|--|----|
| चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः । | |
| न हिन्द्वानासास्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण | ८ |
| परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् । | |
| अमन्यमानौ अभि मन्यमानैर्निर्वहामिरधमो दस्युमिन्द्र | ९ |
| न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् । | |
| युजं वज्रं वृषभश्चक इन्द्रो निजोतिषा तमसो गा अदुक्षत् | १० |
| अनु स्वधामक्षरत्नापो अस्याऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् । | |
| सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्त्रभि यून् | ११ |
| न्याविध्यदिलीविशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुण्णमिन्द्रः । | |
| यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् | १२ |
| अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् । | |
| सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः | १३ |
| आवः कुत्समिन्द्र यासिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् । | |
| शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृपाहाय तस्थौ | १४ |
| आवः शमं वृषभं तुग्न्यासु क्षेत्रजेषु मघवाञ्छ्रियं गाम् । | |
| ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छन्नयतामधरा वेदनाकः | १५ |

अन्वयः— आ हत गन्धन्तः (वयं) इन्द्रं उप अयाम ।

पुणः (इन्द्रः) अस्माकं प्रमतिं सु ववृधाति ! आव
य रायः तवां परं केतं नः कुविद् आवर्जते ॥ १ ॥

पुण्यां वसति इयेनः न (सं) धनदां अप्रवीतं इन्द्रं
उपमेभिः अर्कैः नमस्त्यन् उप इव पतानि । यः स्तोतृभ्यः
मद् हव्यः अस्ति ॥ २ ॥

सर्वसेनः इषुधीन् नि अतस्त, अयः यस्य वष्टि गाः सं
प्रति । हे प्रवृद्ध इन्द्र ! भूरि धामं शोष्यमानाः, अस्मत्
धि पणिः सा भूः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! उप शाकेभिः एकः चरन् धनिनं दस्युं धनेन
धीः हि । धनोः अधि दिपुणः ते दि आपन् । अक्षयनः
प्रकाः प्रदति ईदुः ॥ ४ ॥

अर्थ— आवो ! गायें प्राप्त करनेकी इच्छासे (हम) इन्द्र
के पास जायेंगे । जिसका कभी पराजय नहीं होता (ऐसा यह
इन्द्र) हमारी युद्धि उत्तम रीतिसे बढायेगा । निःसंदेह इसकी
(भाकि) धनी और गायोंकी प्रातिका श्रेष्ठ ज्ञान हमें प्रदान
करेगी ॥ १ ॥

जैसा इयेन पक्षी अपने रहनेके फोसलेके पास बैठता है, वैसा
(उस) धनदाता और अपराजित इन्द्रके पास, मैं उपामनाके
योग्य स्तोत्रोक्ति नमन करता हुआ, जा पहुँचता हूँ, यह (इन्द्र)
भक्तोंके लिये युद्धके समय (सहायार्थ) दुलाने योग्य है ॥ २ ॥

सब सेनाओंके (सेनापति इन्द्र हैं, वे) तर्कियोंको (अपने
पीठपर) धारण करते हैं, वे स्वामी (इन्द्र) जिसको (देना)
चाहते हैं उसके पास गायें भेजते हैं । हे श्रेष्ठ इन्द्र ! हमें बहुत
श्रेष्ठ धन देनेकी इच्छा करने हुए हमारे साथ यनिया जैसा व्यव-
हार न करना ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! एकदिली वीरोंके साथ हमका करने हुए भू-
(अग्नये तुम) अग्नेयने ही बढाई करके धनी बन्यो (द्रव्य
अग्ने) प्रचण्ड बज्जते वध किया । तब (तुमने) धनदाता
ही उपर विशेष न्याय होनेके लिये आने, हे सब सहाई करने
लगे । (अग्नेय अग्नेयदे) तब न आनेलगे अग्नय से
होई मत हुए ॥ ४ ॥

३ ! अयज्वनः यज्वभिः रपर्धमानाः ते शीर्षा परा-
जुः । हे हरिचः स्यातः उग्र ! यत् दिनः रोदग्गोः
नेः प्र अधमः ॥ ५ ॥

अस्य सेनां अयुयुत्सन्, नवग्याः क्षितयः अग्या-
वृषायुधः वध्रयः न निरघ्राः चितगन्तः, इन्द्रान्
आयन् ॥ ६ ॥

३ ! त्वं रुदतः जक्षतः च एतान् रजसः पारे अयो-
स्त्युं दिवः आ उष्ठा अव अददः मुन्वतः स्तुवतः
आवः ॥ ७ ॥

येन मणिना शुम्भमानाः पृथिव्या परिणहं चक्रा-
न्वानासः ते इन्द्रे न तितिरुः । स्पशः सूर्येण परि-
ः ॥ ८ ॥

३ ! यत् उभे रोदसी महिना विश्वतः स्त्रीं परि
अवुभाजीः । हे इन्द्र ! असम्यमानान् अभि सम्यमानैः ब्रह्मभिः
दस्त्युं निः अधमः ॥ ९ ॥

ये दिवः पृथिव्याः अन्तं न आपुः । धनदां मायाभिः न
पर्यभूवन् । वृषभः इन्द्रः वज्रं युजं चक्रे । ज्योतिषा तमसः
गाः निः अधुक्षत् ॥ १० ॥

आपः अस्य स्वधां अनु अक्षरन् । नाच्यानां मध्ये आ
अवर्धत । इन्द्रः सग्रीचीनेन मनसा तं ओजिष्ठेन इन्मना
अभि धून् अहन् ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! स्वर्ग गज न करनेवाले (वेदु) -
स्वर्ग करनेके कारण अपना गिर घुमा कर दू-
धोनों में मोचनेवाले, युद्धमें क्षिर उग्र वीर-
युद्धोंके अन्तर्दिष्ट और युद्धमें धर्मजननीत दुर्ग-
हे ॥ ५ ॥

निर्दोष (इन्द्र) की सेनाके साथ युद्ध करनेकी-
शत्रुओंने) की, नव नवीन गतिसे मानवोंने (उ-
ग्र शत्रुपर) चढ़ाई की । गलिष्ठ शत्रु युद्धमें
करनेमें जो गति) नष्टकरती होती है, वैसीही,
होकर (उनकी ही गयी और वे अपनी निर्वन्ता
इन्द्रसे दूर भागते गये ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुमने रोनेवाले या हंसनेवाले इन
लोकके परे युद्ध करके (भगा दिया) । इस युद्ध
को धुलोकमें लाँच कर (नीचे लाकर) अच्छी
दिया और सोम-याजकों तथा स्तोताओंकी स्तुति
रक्षा की ॥ ७ ॥

सुवर्णों और रत्नोंसे (अपने आपको) जो
पृथ्वीके ऊपर अपना प्रभाव (शत्रुओंने) जमाया
बढतेही जाते थे, (पर) वे इन्द्रके साथ (युद्धमें)
सके । (अन्तमें शत्रुके) अनुचारोंको सूर्यके द्वारा
पडा ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! जब दोनों धु और भू लोकोंका अ-
चारों ओरसे सब प्रकार (तुमने) उपभोग लिया,
न माननेवालोंको (अर्थात् नास्तिकोंकी भी)
(नास्तिकोंके) द्वारा ज्ञान (पूर्वक की गयी
नाओं) से शत्रुको परास्त किया ॥ ९ ॥

जो धु लोकसे पृथ्वीतकके (आवकाशका) अ-
माण न जान सके । जो धनदाता (इन्द्र) का क-
भी पराभव न कर सके । (तब) बलवान् इन्द्रने वज्र
पकड़ लिया और प्रकाश द्वारा अन्धकारमेंसे गो-
(कर प्राप्त करके, उसने उनका) दोहन किया ॥

जल-प्रवाह इसके अचके अनुसार (खेतमेंसे)
(परं धु वृज) नौकाओंद्वारा प्रवेश करने योग्य (नदि-
बढ रहा था । इन्द्रने धैर्ययुक्त मनसे उस (शत्रु-
वान् घातक (वज्र) से कुछ एक दिनोंकी (अवधि-
दिया ॥ ११ ॥

-दिदास्य दृष्ट्वा इन्द्रः नि निविध्यत् । शृङ्गिणं शुष्पं
नत् । हे मघवन् । यावत् तरः, यावत् क्षोजः पृतन्तुं
(ग) मघधीः ॥ १२ ॥

। निष्पः शत्रून् क्षमि क्षजिगात् । तिग्मेन वृषभेण
रः वि क्षमेव । इन्द्रः वज्रेण सं क्षज्जत् । शासदानः
ति प्र क्षतिरत् ॥ १३ ॥

न्द्र ! यस्मिन् चाकन् कुत्सं क्षावः । युध्यन्तं वृषभं
र क्षावः । शफच्युतः रेणुः गां नक्षत । धैत्रेयः नृम-
त् तर्था ॥ १४ ॥

मघवन् ! क्षेप्रजं ये शर्मं वृषभं तुग्यासु गां धिन्धं
क्षत्र ज्योक् चिद् तस्थिवांसः भवान्, शत्रूयतां
वेदना क्षवः ॥ १५ ॥

भूमिपर सोनेवाले (वृत्र) के सुदृढ (सैन्यों वा किल्लों) का
इन्द्रने वेध किया । और सींगवाले शोषक (वृत्र) को छिन्नभिन्न
किया । हे धनवान् इन्द्र ! (तुम्हारा) जितना वेग और जितना
बल था, (उतनेसे तुमने) सेनाको साथ रखकर लड़नेवाले शत्रु का
वज्रसे वध किया ॥ १२ ॥

इस (इन्द्र) का वज्र शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करने लगा ।
तीक्ष्ण और बलशाली वज्रसे (उस इन्द्रने शत्रुके) नगरोंके तोड़
डाला । इन्द्रने वज्रसे (शत्रुपर) मन्दक् प्रहार किया । (तब)
शत्रुनाशक (इन्द्रने) अपनी उत्तम विशाल दुष्टि पकड़ की ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! जिसमें (तुमने अपनी हृषा) रखी, उस हृषाकी
(तुमने) सुरक्षा की । युध्यमान बलवान् दशघुकी (भी तुमने)
रक्षा की । (उस समय तुम्हारे घोड़ोंके) नुरोंसे उड़ी धूँधी
धूलोक तक फैल गयी थी । धैत्रेय भी सब मःनवाँमें अधिक
समर्थ होनेके लिये (तुम्हारी हृषासे) ऊपर उठ गया ॥ १४ ॥

हे धनवान् इन्द्र ! क्षेप्र-पक्षिके युद्धमें शर्मन वाचान् परंतु
जलप्रवाहोंमें दूबनेवाले क्षिप्रकी (तुमने) रक्षा की । कदां बहुत
समय तक ठहरे हुए (हमारे शत्रु हमसे युद्ध) कर रहे थे, उन
शत्रुओंको न के गिराकर (तुमने) ही दुःख दिया ॥ १५ ॥

मंत्र-भागोंमें युद्धनीतिका बहुत वर्णन है । पाठक इन मंत्रोंका विचार करके युद्धनीतिका ज्ञान प्राप्त करें ।

वृत्रका स्वरूप

सूक्तमें वृत्रका स्वरूप बतानेवाला यह वाक्य है—

नाभ्यानां मध्ये आ अवर्धत (मं. ११)— नदि-
चर्म (वृत्र) बढ रहा था । अर्थात् यह वृत्र मेघ नहीं
होता, क्योंकि नदियोंमें मेघ नहीं होता, नदियोंमें बर्फ

होता है । सर्दिके दिनोमें कई नदियोंके जल बर्फ बनकर सख्त
पत्थर जैसे होते हैं । रुसमें ऐसी नदियाँ बहुत हैं, जिनके जल-
प्रवाह भूमि जैसे सख्त होते हैं । और उसपरसे मनुष्य तथा
यान भी जा सकते हैं । यही नदियोंमें वृत्रका बढना है । इससे
स्पष्ट होता है कि वृत्र मेघ नहीं है, परंतु बर्फ है ।

यह सूक्त युद्धविषयक ज्ञान अति स्पष्ट रूपसे देता है, इस
लिये छात्र विद्याका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इसका विशेष मनन
होना योग्य है । शेष बातें मंत्रोंके अर्थमेंही स्पष्ट हैं ।

(४) आरोग्य और दीर्घायु

(अ. १।३४) हिरण्यस्तूप आह्निरसः । आश्विनौ । जगती; ९,१२ । त्रिष्टुप् ।

- अश्विन् नो अघा भवतं नवेदसा विभुर्वा याम उत रातिरश्विना ।
युषोर्हि यन्त्रं हिम्येव पाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः १
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कमितास आरभे त्रिनक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा २
समाने अहन् त्रिरवधगोहना त्रिरथ यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिपो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुपसद्य पिन्वतम् ३
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अधरेव पिन्वतम् ४
त्रिर्नो रथि वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुताषतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस् त्रिष्ठं वां सूरं दुहिता रदद् रथम् ५
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिर दत्तमङ्गयः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभरूपती ६
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशापतम् ।
तिष्ठो नासत्या रथ्या परायत आत्मेव वातः स्वस्तराणि गच्छन्तम् ७
त्रिराश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस् त्रय आतावारिधा दधिप्लुतम् ।
तिष्ठः पृथिवीरपरि प्रधा दिवो नाकं रक्षेधे पुमिरनुभिर्हितम् ८
ए१ श्री कृष्ण त्रिदुतो रथस्य ए१ त्रयो वन्धुरो ये सर्वाङ्गाः ।
ए१ योनां पाजिनो रासभस्य येन यतं नासत्योपवाधः ९
आ नासत्या गच्छन्तं ए१ यते ए१ निर्मध्यः पिदतं मधुपेभिरासभिः ।
युषोर्हि पूर्वं सदितोपसो रथमूलाय चिपं घृतवन्तमिप्यति १०
आ नासत्या त्रिभिरैवादर्शरिद् देवेभिर्यातं मधुपेभ्यश्चिनाः ।
मातृस्तारिष्ठं नी रपांसि मूहन्तं सेषन्तं देवो भवतं सचाहृदा ११
आ तो अश्विना त्रिदुता रथेनाऽर्धाऽर्धं रथि वहतं सुवीरम् ।
ए१ यन्ता यामपसे जोहृतीनि ए१ ये य तो भवन्तं दाहृताम् १२

अन्वयः—हे ननेदसा अश्विना! त्रिः त्रिन् त्रय नः भवतम्।
चां यामः विभुः उत रातिः (विभुः)। युनोः गन्त्रं दि, नासयः
दिभ्या इव । मनीषिभिः अभ्यायंसेन्या भवतम् ॥ १ ॥

मधुवाहने रथं पचयः त्रयः । इत् त्रिणे सोमस्य नेनो
अनु विदुः । स्कम्भासः त्रयः स्कभितासः आरभे । हे
अश्विना ! नक्तं त्रिः याभः, दिवा त्रिः उ ॥ २ ॥

हे अश्विना । युवं समाने अहन् त्रिः अन्नगमोहना
(भवतं) । अद्य यज्ञं मधुना त्रिः मिमिक्षतम् । दोषाः
उपसः च वाजवतीः ह्यः त्रिः अस्मभ्यं पिन्वतम् ॥ ३ ॥

हे अश्विना ! युवं त्रिः वर्तिः यातं । अनुवते जने त्रिः
(गच्छतं) । सुप्राच्ये त्रिः । त्रेधा इव शिक्षतम् । नान्यं त्रिः
वहतम् । अस्मे, अक्षरा इव, वृक्षः त्रिः पिन्वतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विना । युवं नः रथिं त्रिः वहतम् । देवताता त्रिः
उत धियः त्रिः अचतम् । लौभगतं त्रिः, उत श्रवांसि नः
त्रिः (वहतं) । चां त्रिंलं रथं सूर्ये दुदित्ता आरुहत् ॥ ५ ॥

हे अश्विना । नः दिव्यानि भेषजा त्रिः, पार्थिवानि त्रिः,
अन्नयः उ त्रिः दत्तम् । शंयोः ओमानं ममकाय सुनवे
(ददम्) । हे शुभस्पती ! त्रिधातु शर्म वहतम् ॥ ६ ॥

हे अश्विना । दिवे दिवे यजता नः पृथिवीं परि त्रिधातुः
त्रिः अशायतम् । हे रथ्या नासत्या ! परावतः तिस्रः, स्वस-
राणि आत्मा इव, गच्छतम् ॥ ७ ॥

हे अश्विनाः सप्त मातृभिः सिन्धुभिः त्रिः, आहावा त्रयः,
त्रेधा हविः कृतम् । तिस्रः पृथिवीः उपरि प्रवा दिवा शुभिः
अक्तुभिः दितं नाकं रक्षये ॥ ८ ॥

अश्वि—हे जानी आश्विदेवो ! तीन बार आपका
यागो । आपका मार्ग यम है और (आत्मा)
यम है) । तुम दोनोंका संबंध, दिन और राति
सुखिमानोंके याग भिक्षा संबंध रखनेवाले हो जाओ ॥

सुम्हारे मधुर अन्न लगेवाले रथमें नक्त लौ
मनने योग्यता नेनाके (याग निनाद संबंध इके
जाना या । उस (रथमें) तीन सुम्भ आपरके भि
दे अश्विदेवो ! (इस रथसे तुम दोनों) रात्रिमें त-
दिनमें तीन बार जाते हैं ॥ २ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम एकही दिनमें तीन बार पाके
(हो) । आज यमारे यज्ञपर मधुर रसकी तीन बार
रात्रिमें और उपाके (पश्चात् आनेवाले दिनमें)
तीन बार हमारा पोषण करो ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम तीन बार निवासस्थानके
अनुकुल कार्य करनेवाले मनुष्यके पास तीनबार
क्षाके लिये तीन बार जाओ । तीन बार शिक्षा दो ।
वाला फल (हमें) तीन बार लेते आओ । हमें, जने
अन्न भी तीन बार दो ॥ ४ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम हमारे लिये धन तीन बार के
देवताओंके यज्ञमें तीन बार आओ और हमारी
सुरक्षा तीन बार करो । सौभाग्य तीन बार दो और
तीन बार (दो) । तुम्हारे तीन चक्रवाले रथपर
चढ़ी है ॥ ५ ॥

हे अश्विदेवो ! हमें दिव्य औषधि तीन बार दो ।
औषधि तीन बार दो और जलोंसे (अन्तरिक्षसे)
दो । शंयुकी (जैसी) सुरक्षा (की थी वैसी)
लिये (सुरक्षा दो) । हे शुभके रक्षको ! तीन धातुओं
सुरक्षासे हमें) सुख दो ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो ! प्रतिदिन यज्ञ करनेवाले हम जने
पृथ्वीपर तीन धातुओंकी शक्ति लेते हुए तीन बार
विश्राम करो । हे रथी वीरो ! हे सत्य-पात्रको ।
तीन बार, शरीरोंमें आत्मा घुसनेके समान, आओ ॥ ७ ॥

हे अश्विदेवो ! माताओंके समान सात नदियों
तीन (पात्र भर दिये हैं, यहाँ) रस पात्र तीन हैं, तीन
का हवि किया है । तीन पृथ्वी (के भागों) पर दिनमें
दिनों और रात्रियोंसे रखे सूर्यकी सुरक्षा तुमने की थी ॥

नासत्या ! त्रिवृतः रथस्य त्री चक्राः क ? ये सनीळाः
त्रयः क ? वाजिनः रातमस्य योगः कदा ? येन
पयायः ॥ ९ ॥

नासत्या ! सागच्छतं, हविः हूयते । (युवां) मधु-
कासभिः मध्वः पिबतम् । सविता उपसः पूर्वं युवोः
धृतवन्तं रथं कृताय इज्यति हि ॥ १० ॥

नासत्या अश्विना ! त्रिभिः एकादशैः देवेभिः मधु-
ह्व आ यातम् । सायुः प्र तारिष्टं, रपांसि नि मृक्षतं,
सेधतं, सचायुवा भवतम् ॥ ११ ॥

अश्विना ! त्रिवृता रथेन नः सर्वाङ्गं सुवीरं रथिं
पुतम् । धृषन्ता, जवते वां जोहवीमि । वाजसातौ
ध्वे च भवतम् ॥ १२ ॥

हे सत्यके रक्षको ! तुम्हारे त्रिकोणाकृति रथके तीन चक्र
कहाँ हैं ? जो बैठनेकी अच्छी बंधी बैठकें तीन हैं, वे कहाँ हैं ?
बलवान् गर्दभको जोड़ना कब होगा, जिससे तुम इस यज्ञमें
आते हो ? ॥ ९ ॥

हे सत्यके पालको ! आओ, (यहाँ) हवन किया जाता है ।
(तुम दोनों) मधुर रस पीनेवाले (अपने) मुखोंसे इस मधुर
रसका पान करो । सविताने उपाके पूर्वहि तुम्हारे सुन्दर घोसे
भरपूर भरे रथको सत्यके मार्गसे प्रेरित किया है ॥ १० ॥

हे सत्यके रक्षक अश्विदेवो ! तीन बार ग्यारह (अर्थात्)
तीससे देवोंके साथ मधुर रसका पान करनेके लिये यहाँ आओ ।
हमारी आयुको बढ़ाओ, दोषोंको दूर करो, द्वेषियोंको रोक दो
और (तुम) हमारे साथ रहो ॥ ११ ॥

हे अश्विदेवो ! त्रिकोण रथसे हमारे पास उत्तम वीरोंसे युक्त
धन ले आओ । (तुम) सुनो, हमारी सुरक्षाके लिये हम तुम्हारी
प्रार्थना करते हैं । बलकी वृद्धिके लिये किये हमारे (प्रयत्नमें)
हमारी वृद्धि करनेके लिये (बलवान्) हो जाओ ॥ १२ ॥

औषधि-प्रयोग

अश्विदेवोंके औषधि प्रयोगोंके विषयमें सब जानते हैं । इस
तके ग्यारहवें मंत्रमें जो बातें कही हैं उनका विचार कीजिये,
जैसे सूक्तके मुख्य विषयका पता लग जायगा । ग्यारहवें मंत्र-
विचारणीय विभाग ये हैं—

१. आयुः प्र तारिष्टं—हमारी आयुको विशेष बढ़ाओ,

२. रपांसि नि मृक्षतं—दोषों, पापों और पापोंको नि-
शुद्ध करके दूर करो । 'रपम्' = दोष, पाप, घाव । 'मृक्षतं'
= दूर करो । शुद्धता करके दोषोंको, पापोंको और पापोंको दूर
करो ।

३. जेपः सेधतं—जेप करनेवाले देरियोंको दूर भगा दो,
जो करने योग्य लोगोंका प्रतिबंध करो, रोग आनेके पूर्व ही उनका
निर्धन करो ।

४. त्रिभिः एकादशैः देवेभिः आ यातं—तीन देवोंके
साथ आओ ।

यहाँ दोष आयुको प्राप्त करना, उसके लिये शरीरको दोष-
रहित अर्थात् शुद्ध करना, मनको निरापन्न बनाना और मन
की शुद्धता से शरीरको शुद्धता करके ठीक करना आदि हैं । इन्हीं
कारणोंसे होता है । 'रपः' ये दोष हीन हैं, दोषों और

शरीरके दोषोंकी बता रहे हैं । पाप मनका दोष है, पापभाव-
युक्त मनमें शरीर दोषयुक्त बनता है और रोग होते हैं,
जिससे आयुकी क्षीणता होती है । इसलिए यदि दोष आयु
चाहिये, तो मन शुद्ध रहना चाहिये अर्थात् मन निरापन्न बनाना
चाहिये । शरीरके दोष दो हैं, एक आन्तरिक मन की शरीरके
अन्तर्भागमें संक्षिप्त होकर अन्तर और बाह्य रोग उत्पन्न करने
हैं और दूसरे शरीरपर होनेवाले घाव आदि हैं । ये दोनों स-
च्छता तथा पवित्रता करनेसे दूर होते हैं । 'रपः' परके लोगों
आपोंके साथ अन्तर्भाव इस तरह संबंध है और दूर संबंध
ध्यानमें धारण करनेसे ही सूक्ष्मता की प्रेरणा मिलता है, उसका
ज्ञान हो सकता है ।

आयुको बढ़ा देने का काम आदि है । आयुको बढ़ाने में
सुप्त आयु १०० वर्षोंकी है, पर वह निरामयकी आयु है ।
'सुविप्रोक्तं कर्त्तापि जिज्ञासितम्' (इति स्मृतः)
(या. य. १००, ई. २. २) = वर्षों की आयु बढ़ाने की
विधि करनेकी इच्छा कटुता करे । आयु बढ़ाने पूर्व कई
कारणों से उत्पन्न कष्टोंकी दूर करना चाहिये । आयु बढ़ाने
का काम और इस तरह का कष्टपूर्व विचार करने से ही उत्पन्न
उत्पन्न कष्टोंकी दूर करना है । इनके बाद ही आयु की

शुभ कर्म करते हुए जीवित रहनेकी इच्छा कर सकता है। १००+२०=१२० एक सौ बीस वर्षोंकी आयु इस तरह सर्व-साधारण नागरिक की है। आजकलकी जन्मपत्रिकाएँ १२० वर्षोंकी आयु मानकर ही की जाती हैं। 'आयुः प्र तारिपं' में आयु की 'प्रकर्षसे वृद्धि करनेकी' जो बात मंत्रमें कही है वह सिद्ध करती है कि पुरुषार्थ प्रयत्नसे मानवकी आयु १२० वर्षों से भी अधिक बढ़ाई जा सकती है। इसी कार्यके लिये इस मंत्रमें शारीरिक और मानसिक दोषोंको दूर करनेका उपाय लिखा है।

तैत्तिरीय देवोंके साथ अधिदेवोंका आना आरोग्यके लिये अत्यंत उपयोगी है। तैत्तिरीय देवोंकी सहायतासे ही औषधि-प्रयोग किये जाते हैं। मृत्तिकाचिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्नि-सूर्य-विद्युच्चिकित्सा, औषधिचिकित्सा, वायुचिकित्सा, प्राणायामचिकित्सा इनमें तैत्तिरीय देवोंका ही उपयोग किया जाता है। औषधियोंको तैयार करनेमें कई देवताओंका उपयोग किया जाता है। इस तरह विचार करनेसे सहज ही से पता लग सकता है कि इन तैत्तिरीय देवताओंकी सहायतासे ही मानवको दीर्घ जीवन प्राप्त करनेकी संभावना है।

यह सब विचार करने योग्य विषय है और इसका परिणाम सुखपूर्ण दीर्घायु ही है। 'द्वेषोंको रोकने' का भाव यह है कि प्रथम अपने मनके विद्वेषके भाव दूर करना, समाजके द्वेषणीय शत्रुओंको दूर करना, तथा द्वेष करने योग्य जो अनिष्ट परिस्थिति है उसको पूर्णतया दूर करना चाहिये। दीर्घ आयु होनेके लिये समाज भी उत्तम सुसंस्कृत और निर्दोष होना आवश्यक है। यह सब पाठक मनन करके जान सकते हैं।

छठे मंत्रमें औषधोंका उल्लेख है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, जल और आकाशमें औषधियाँ रहती हैं, (पार्थिवानि, अद्भ्यः, दिव्यानि भेषजा दत्तं। (मं. ६) पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाली, जलमें उत्पन्न होनेवाली और आकाशमें उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ अनेक हैं। पृथ्वीपर वृक्ष वनस्पतियाँ तथा खनिज पदार्थ औषधमें बनें जाते हैं। जलमें, पर्वतपर तथा आकाशमें वायु सूँघे आदि पदार्थ हैं। इनमें दैवी सामर्थ्य है जिससे रोग दूर होते हैं।

'१. 'शयोः ओमानं' इसी छठे मंत्रमें कहा है। 'ओमानं' = रक्षण, संरक्षण, 'शो' = कल्याण, सुख, शान्ति और 'यु' = विपन्न करना और संतुलन करना, अर्थात् विपरीत भावोंसे विपन्न और अतुल्य भावोंसे संतुलन करना। रक्षणका यही अर्थ

है। दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये जिनसे मेल होना चाहिये, मेल करना और जिनसे वियुक्त होना योग्य है उनके और शान्तिमुख प्राप्त करना। यह एक बड़ा भाव।

६ 'त्रिधातु शर्म वहतं' (मं. ६) = पित्त, वात ये तीन धातु हैं, स्वास्थ्य और इनकी समताकी स्थापना करना आवश्यक है। 'शर्म' या सुख है। वह प्राप्त करना चाहिये। कर्तव्य है कि वे शरीरके तीनों धातुओंका वैषम्य साम्य स्थापन करें।

७ अच्य-गोहना (मं. ३) = निंदा करनेमें आदि परिस्थिति है, उसका नाश करनेवाले ये देव हैं। दिक् परिस्थिति अत्यंत निंदनीय है, इसीलिये उसको दूर चाहिये।

८ 'वाजवतीः इपः अस्मभ्यं पिन्वतं' (मं. ४) = वलवर्धक अन्न देकर हम सबको दृष्ट-पुष्ट को। वलवर्धक होते हैं और कई वलनाशक होते हैं। अन्न अन्नकोही सेवन करना चाहिये और क्षीणता करनेको दूर रहना चाहिये।

९ 'पृक्षः त्रिः पिन्वतं' (मं. ४) = अन्न को दो। रोगीको थोड़ा थोड़ा अन्न तीन बार देकर चाहिये।

१० रयिः, धियः, सौभाग्यं, श्रवांसि वरतं = धन, बुद्धियाँ, सौभाग्य और यश हमें दे दो। ये सब मनुष्यको चाहिये। इन्हींसे मानवी जीवनकी सफलता होती है।

११ मध्वः पिबतं (मं. १०) = मधुर रसका फलोंके तथा सोमादि वनस्पतियोंके मधुर रसका पान करो। रस रोगनिवारक, उत्साहवर्धक और बलवर्धक है।

१२ सुवीरं रयिं आ वहतं (मं. १२) = जिसके साथ रहते हैं, ऐसा धन हमें ले आओ। धन भी चाहिये और उसकी सुरक्षा करनेके लिये वीरता चाहिये।

इस सूक्तके ये निर्देश मनन करनेयोग्य हैं। वे काव्यमय हैं, जो मननद्वारा पाठक अच्छी तरह जान सकते हैं।

वितः ! ये ते पन्थाः पूर्यासः अरेणवः अन्तरिक्षे
सुगेभिः तेभिः पथिभिः अथ नः रक्ष च, हे देव ! नः
! च ॥ ११ ॥

हे सविता देव ! जो तुम्हारे मार्ग पहिलेसे निश्चित हुए,
धूलिरहित और अन्तरिक्षमें उत्तम निर्माण किये हैं, उत्तम
जानेयोग्य उन मार्गोंसे आज हमारी सुरक्षा करो औ देव !
हमें आशीर्वाद दो ॥ ११ ॥

विना धूलिके मार्ग

उक्तमें विना धूलिके मार्गोंका उल्लेख है। ये (पन्थाः
अरेणवः) मार्ग पहिलेसे बने हैं और धूलिरहित हैं।
हताः) उत्तम रीतिसे बनाये हैं, कुशलतासे बनाये हैं।
पथिभिः) ये मार्ग चलनेके लिये सुगम हैं, चलने-
कीसी तरह कष्ट नहीं होते। (प्रवता) चढाईका मार्ग
द्वता) उतराईका मार्ग ऐसे दो भेद हैं। इस वर्णनसे पता
है कि इस सूक्तमें उत्तमसे उत्तम मार्गोंकी कल्पना है।
उत्तम हों, उनपर सुवर्णकी सजावट हो, उत्तम घोड़े
पैं और ऐसे रथ धूलिरहित मार्गसे चलते रहें, यह
देक समयका यहां दीख रहा है। ऐसे रथोंमें वीर
ग करें और राक्षसों और यातना देनेवाले दुष्टोंका नाश
नताका सुख बढावें। (मं. १०)

सूर्यका प्रभाव

सूर्यदेवका प्रभाव इस सूक्तमें वर्णन किया है, वह देखने
है—

स्वस्ति. उति । (मं. १)— कल्याण और सुरक्षा
साधन सूर्यदेव करता है, (सु-अस्ति) उत्तम अस्तित्व
सर्वथा सूर्यकिरणोंपर निर्भर है। यहांका प्राणिमात्रका
अस्तित्व सूर्यकिरणोंके कारणही होता है। सूर्यकिरण सब
जीवोंका हृदाते और प्राणियोंको सुख होनेयोग्य वायु निर्माण
है।

अमृतं मर्त्यं च निवेशयन् (मं. २)— अमर और
ऐसे दो पदार्थ इस विश्वमें हैं, इन दोनोंका निवास सर्वथा
सूर्यके किरणोंपर निर्भर है। बरसातके दिनोंमें जब एक दो
तक सूर्यकिरण नहीं मिलते, उन दिनोंमें मानवोंका
स्थिति बिगड़ता है, रोग बढ़ते हैं, मृत्युसंख्या विशेष रीतिसे
जाता है। इसका विचार करनेसे सूर्यकिरणोंके साथ आरोग्य
कितना घनिष्ठ संबंध है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सविता देवः विश्वा दुरिता अपवाधमानः ।
१) सूर्यदेव सब दुरितोंका नाश तथा प्रतिबंध करता है।

(दुःइतं) जो रोगबीज बाहरसे शरीरके अन्दर या मनके
अन्दर घुसता है उसको दुरित कहते हैं। सूर्यकिरणोंसे इन सब
का नाश होता है।

४ तविषीं दधानः (मं. ४)— सूर्यही बल धारण करता
है। सब बलोंका आधार सूर्यही है।

५ अमीवां अपवाधते । (मं. ५)— रोगबीजोंको दूर
करता है। सूर्यसे ही सब रोगबीज दूर होते हैं। (अम-वान्)
अपचित अतको 'आम' कहते हैं, इस आमसे जो होता है, वह
'आमवान्' अथवा 'अमीव' कहलाता है। इन रोगबीजोंका
नाश सूर्य करता है। सूर्यसे पचनशक्ति बढती है और रोग-
बीज सूर्यकिरणोंसे दूर होते हैं।

६ रक्ष (मं. ११)— सूर्यदेव उक्त प्रकार रोगबीज दूर
करने, बल बढाने, दुरित दूर करने और सबका सुखसे निवास
करने द्वारा सबकी सुरक्षा करता है।

इस रीतिसे प्राणिमात्रपर तथा संपूर्ण विश्वपर अर्थात् मर्त्य
और अमर वस्तुजातपर सूर्यका प्रभाव है। सूर्यके कारणही सब
का निवास सुखसे होता है।

तीन ध्रुलोक

आकाशका नाम ध्रुलोक है। क्योंकि आकाश सदा-सर्वदा
प्रकाशयुक्त रहता है। इस ध्रुलोकके तीन विभाग हैं। दो
विभाग (द्वा सचितुः उपस्थे) सूर्यके पास रहते हैं और
(एका यमस्य भुवने विरापाद् । मं. ६) एक विभाग
यमके भुवनमें (वीर-साह) वीरोंके रहनेका स्थान है। अर्थात्
वीर मरनेके बाद वहां जा कर रहते हैं। वह यम-लोक नामसे
प्रसिद्ध है। परंतु उस लोकमें यह एक ऐसा स्थान है कि जिसमें
केवल वीरोंके जीवही रहते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि
यमके भुवनमें जैसा वीरोंके लिये उत्तम स्थान होगा, वैसा दूसरे
जीवोंके लिये भी स्थान होगा ही।

उत्तरीय पृथ्वी आकाशके तीन विभाग माने तो पहिले दो
ही विभागोंमें पूर्ण रहता है, तीसरे मध्य विभागमें सूर्य आताही

देवः सविता प्रवता याति, उद्वता याति, यजतः शुभ्रा-
भ्यां हरिभ्यां याति । सविता देवः विश्वा दुरिता अपवाध-
मानः परावतः आ याति ॥ ३ ॥

अभिवृत्तं, कृशनेः विश्वरूपं, हिरण्यशम्यं बृहन्तं रथं,
यजतः चित्रभानुः, कृष्णा रजांसि तविर्षी दधानः सविता
आ अस्थात् ॥ ४ ॥

इयावाः शितिपादः, हिरण्यप्रउगं रथं बृहन्तः, जनान् वि
अव्यत् । शश्वत् विश्वा भुवनानि विशः दैव्यस्य सवितुः
उपस्थे तस्थुः ॥ ५ ॥

धावः तिस्रः, द्वा सवितुः उपस्था, एका यमस्य भुवने
विरापाट् । रथ्यं आर्णि न, अमृता अधि तस्थुः । यः तत्
चिकेतत् उ, (सः) इह ब्रवीतु ॥ ६ ॥

गभीरवेपाः, असुरः, सुनीथः, सुपर्णः, अन्तरिक्षाणि वि
अव्यत् । सुनीथः सूर्यः इदानीं क ? कः चिकेत ? अस्य
रश्मिः कतमां थां आ ततान ? ॥ ७ ॥

पृथिव्याः अष्टौ ककुभः, योजना धन्व त्रिः, सप्त सिन्धू
(सविता) त्रि अव्यत् । हिरण्याक्षः सविता देवः, दाशुषे
वार्पाणि रत्ना दधत्, आ गान् ॥ ८ ॥

हिरण्यपाणिः त्रिचर्पणिः सविता उभे धावापृथिवी अन्तः
दैवने । अर्मावां अप वाधते, सूर्यं वेत्ति, कृष्णेन रजसा थां
अभि क्रणोति ॥ ९ ॥

हिरण्यदन्तः असुरः सुनीथः सुमृलीकः स्ववान् अर्वाह
वान् । देवः प्रविदोर्षं मृगानः, रक्षसः यानुधानान् अपसेधन्,
अव्यत् ॥ १० ॥

सविता देव (प्रथम) ऊंचाईके मल्लि-
जाते हैं, (और पश्चात्) अधोगामी मल्लि
हुए) चलते हैं । पूजाके योग्य (ये सूर्यदेव)
गमन करते हैं । ये सविता देव सब पापोंको
देशसे आते हैं ॥ ३ ॥

सतत गतिशील, सुवर्णादिके कारण, सुवर्ण-
सुवर्णकी रस्सीयोंसे (किरणोंसे) युक्त बड़े रथ,
विचित्र किरणोंवाले और अन्धकारका नाश
धारण अपने बलसे करनेवाले सविता देव चरते हैं
सूर्यके घोड़े-सफेद पैरोंवाले (हैं, वे) सुवर्ण
ढोते (हैं, जो) मानवोंके लिये प्रकाश देते हैं ।
भुवन और सब प्रजाजन दिव्य सविता देवके
होते हैं ॥ ५ ॥

तीन दिव्य लोक हैं, (उनमेंसे) दो (देव)
देवके पास हैं और तीसरा लोक यमके भुवन-
रहनेका स्थान देता है । रथके अक्षमें रहनेवाली
(सब) अमर (देव सूर्यपर) अधिष्ठित हैं । जो
है, (वह) यहां आकर कहे ॥ ६ ॥

गम्भीर गतिसे युक्त, प्राणशक्तिको दाता,
दर्शक, उत्तम प्रकाश देनेवाला (सूर्यदेव)
लोकोंको प्रकाशित करता है । इस समय
कहां है ? कौन जानता है ? उस (सूर्य)
धुलोकमें फैला होगा ? ॥ ७ ॥

पृथ्वीकी आठों दिशाएं, (परस्पर) संयुक्त
लोक और सात सिन्धु (नदियां) सविता देवके
की हैं । सुवर्णके समान तेजस्वी किरणवाला वह
दाताके लिये स्वीकार करनेयोग्य रत्नोंको देता हुआ
आया है ॥ ८ ॥

सुवर्णके समान किरणवाला सर्वत्र संचार करनेवाला
देव दोनों धावापृथिवीके बीचमें संचार करता है,
दूर करता है, (इसीकी) सूर्य कहते हैं, प्रकाश-दीप्त
लोकसे धुलोक तक प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

सुवर्ण जैसे किरणवाला, प्राणशक्तिको दाता,
सुख-दाता, निज शक्तिके संपन्न (सविता देव)
यह (सविता) देव प्रत्येक रात्रिमें खुले
राक्षसों और यातना देनेवालोंको दूर करता
आवे ॥ १० ॥

वितः ! ये ते पन्थाः पूर्व्यासः अरेणवः अन्तरिक्षे
सुगेभिः तेभिः पथिभिः अद्य नः रक्ष च, हे देव! नः
हे च ॥ ११ ॥

हे सविता देव ! जो तुम्हारे मार्ग पहिलेसे निश्चित हुए,
धूलिरहित और अन्तरिक्षमें उत्तम निर्माण किये हैं, उत्तम
जानेयोग्य उन मार्गोंसे आज हमारी सुरक्षा करो औ देव !
हमें आशीर्वाद दो ॥ ११ ॥

विना धूलिके मार्ग

सूक्तमें विना धूलिके मार्गोंका उल्लेख है। ये (पन्थाः
अरेणवः) मार्ग पहिलेसे बने हैं और धूलिरहित हैं।
कृताः) उत्तम रीतिसे बनाये हैं, कुशलतासे बनाये हैं।
पथिभिः) ये मार्ग चलनेके लिये सुगम हैं, चलने-
किसी तरह कष्ट नहीं होते। (प्रवता) चढाईका मार्ग
द्वता) उतराईका मार्ग ऐसे दो भेद हैं। इस वर्णनसे पता
है कि इस सूक्तमें उत्तमसे उत्तम मार्गोंकी कल्पना है।
उत्तम हों, उनपर सुवर्णकी सजावट हो, उत्तम घोड़े
पैयें और ऐसे रथ धूलिरहित मार्गोंसे चलते रहें, यह
देक समयका यहाँ दीख रहा है। ऐसे रथोंमें वीर
ग करें और राक्षसों और यातना देनेवाले दुष्टोंका नाश
करना ताका सुख बढ़ावें। (मं. १०)

सूर्यका प्रभाव

सूर्यदेवका प्रभाव इस सूक्तमें वर्णन किया है, वह देखने
है—

स्वस्ति. ऊति। (मं. १)— कल्याण और सुरक्षा
साधन सूर्यदेव करता है, (सु-अस्ति) उत्तम अस्तित्व
सर्वथा सूर्यकिरणोंपर निर्भर है। यहाँका प्राणिमात्रका
त्व सूर्यकिरणोंके कारणही होता है। सूर्यकिरण सब
जीवोंको दृष्टाते और प्राणियोंको मुख होनेयोग्य वायु निर्माण
है।

अमृतं मर्त्यं च निवेशयन् (मं. २)— अमर और
ऐसे दो पदार्थ इस विश्वमें हैं, इन दोनोंका निवास सर्वथा
विके किरणोंपर निर्भर है। बरसातके दिनोंमें जब एक दो
तक सूर्यकिरण नहीं मिलते, उन दिनोंमें मानवोंका
अवस्था बिगड़ता है, रोग बढ़ते हैं, मृत्युमेंयका विशेष संनिधि
आती है। इसका विचार करतेमें सूर्यकिरणोंसे लाभ करनेयोग्य
विचना पतित संदेह है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

१ सविता देवः पिभ्या दुरिता अपवाधनातः।
२ सूर्यदेव सब दुरितोंका नाश तथा प्रतिबंध करता है।

(दुःश्तं) जो रोगबीज बाहरसे शरीरके अन्दर या मनके
अन्दर घुसता है उसको दुरित कहते हैं। सूर्यकिरणोंसे इन सब
का नाश होता है।

४ तविर्षी दधानः (मं. ४)— सूर्यही बल धारण करता
है। सब बलोंका आधार सूर्यही है।

५ अमीवां अपवाधते। (मं. ५)— रोगबीजोंको दूर
करता है। सूर्यसे ही सब रोगबीज दूर होते हैं। (अम-वान्)
अपचित अन्नको 'आम' कहते हैं, इस आमसे जो होता है, वह
'आमवान्' अथवा 'अमीव' कहलाता है। इन रोगबीजोंका
नाश सूर्य करता है। सूर्यमें पचनशक्ति बढती है और रोग-
बीज सूर्यकिरणोंसे दूर होते हैं।

६ रक्ष (मं. ११)— सूर्यदेव उक्त प्रकार रोगबीज दूर
करने, बल बढाने, दुरित दूर करने और सबका सुखसे निवास
करने द्वारा सबकी सुरक्षा करता है।

इस रीतिसे प्राणिमात्रपर तथा संतुर्ग विद्वपर अर्थात् मर्त्य
और अमर वस्तुजातपर सूर्यका प्रभाव है। सूर्यके कारणही सब
का निवास सुखसे होता है।

तीन दुलोक

आकाशका नाम दुलोक है। क्योंकि आकाश महा-मार्गोंका
प्रकाशयुक्त रहता है। इन दुलोकके तीन विभाग हैं। दो
विभाग (द्वा सवितुः उपस्थे) सूर्यके पाम रहते हैं और
(एका यमस्य भुवने वितापाद् । मं. ६) एक विभाग
यमके भुवने (वीर-साह) वीरोंके रहनेका स्थान है। अर्थात्
वीर मरनेके बाद वहाँ जा कर रहते हैं। वह यमलोक नामसे
प्रसिद्ध है। परंतु उस लोकमें यह एक ऐसा स्थान है कि जिनमें
केवल वीरोंके जीवते रहते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि
यमके भुवनेमें जैसा वीरोंके लिये उत्तम स्थान होगा, वैसा दूसरे
जीवोंके लिये भी स्थान होगा ही।

उपस्थे यमके भुवनेमें तीन विभाग माने जाते हैं। दो
विभागोंमें सूर्य रहता है, दोस्तरे यम विभागमें सूर्य का

(ऋक्म मण्डल)

(६) सोमरस

(अ. १।४) हिरण्यस्तूप आह्निरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

| | | |
|---|--------------------|----|
| सना च सोम जेपि च पवमान महि ध्रुवः । | अथा नो वस्यसस्काधि | १ |
| सना ज्योतिः सना स्वर्विंश्वा च सोम सौभगा । | अथा नो वस्यसस्काधि | २ |
| सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि | अथा नो वस्यसस्काधि | ३ |
| पर्वीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे | अथा नो वस्यसस्काधि | ४ |
| त्वं सूर्ये न वा भज तव क्रत्वा तवोतिभिः | अथा नो वस्यसस्काधि | ५ |
| तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योत्पद्येम सूर्यम् | अथा नो वस्यसस्काधि | ६ |
| अभ्यर्प स्वायुध सोम द्विर्हंसं रायिम् | अथा नो वस्यसस्काधि | ७ |
| अभ्यर्पानपच्युतो रायिं समत्सु सासहिः | अथा नो वस्यसस्काधि | ८ |
| त्वां यक्षैर्वीवृधन्पवमान विधर्मणि | अथा नो वस्यसस्काधि | ९ |
| रायिं नक्षित्रमाश्विनमिन्द्रो विश्वायुमा भर | अथा नो वस्यसस्काधि | १० |

रयः— हे महिध्रुवः पवमान ! सन च । जेपि च । अथ
तः कृधि ॥ १ ॥

तेन ! ज्योतिः सन । स्वः सन । विश्वा सौभगा च
॥ १० ॥ २ ॥

सोम ! दक्षं सन । उत क्रतुं सन । मृधः अप जहि ॥ ३ ॥

पर्वीतारः ! इन्द्राय पातवे सोमं पुनीतन । ० ॥ ४ ॥

तव क्रत्वा तव जतिभिः नः सूर्ये वा भज । ० ॥ ५ ॥

व क्रत्वा, तव जतिभिः सूर्यं ज्योक् पद्येम । ० ॥ ६ ॥

स्वायुध सोम ! द्विर्हंसं रायिं क्षानि क्षर्प ॥ ७ ॥

समत्सु अपच्युतः सासहिः रायिं क्षानि क्षर्प ॥ ८ ॥

पवमान ! त्वां यक्षैः विधर्मणि क्षवीवृधन् ॥ ९ ॥

इन्द्रो ! क्षिप्रं क्षदिवनं दिदवां रायिं नः वा भर ॥ १० ॥

अर्थ— हे महान् यशस्वी सोम ! प्रेम करो, विजय करो
और हमें यशसे युक्त करो ॥ १ ॥

हे सोम ! हमें ज्योति दो । प्रकाशका प्रदान करो । और
सब प्रकारके सौभाग्य हमें दो ॥ १० ॥ २ ॥

हे सोम ! हमें बल दो और कर्म करनेकी शक्ति दो । हिंस-
क्रोका नाश करो ॥ ३ ॥

हे सोमरस निकालनेवाले ! इन्द्रके पीनेके लिये सोमका रस
निकालो ॥ ४ ॥

तुम अपने कर्मों और सुरक्षाओंसे हमें सूर्यकी प्राप्ति
कराओ ॥ ५ ॥

तुम्हारे कर्मों और सुरक्षाओंसे चिरकालतक हम सूर्यका
दर्शन करेंगे ॥ ६ ॥

हे उत्तम शत्रुवाले सोम ! दोनों शक्तिदोने युक्त धनकी
हमपर रटि करो ॥ ७ ॥

युद्धोंमें परास्त न होते हुए, शत्रुको परास्त करके हमें धन
प्रदान करो ॥ ८ ॥

हे सोम ! तुम्हें अनेक यक्षोंके द्वारा अनेक कर्मों (पापक
लेग) संबोधित करते हैं ॥ ९ ॥

हे सोम ! नाना प्रकारके लक्ष्मणोंसे युक्त, संपूर्ण आहुतक रहने-
वाला धन हमें दो और हमें यशसे युक्त करो ॥ १० ॥

बोध

यह सोमका सूक्त है । इसमें निम्नलिखित बोध मिलता है—
 (मं. १) सन—प्रेम करो, पूजा करो, भक्ति करो, प्राप्त करो,
 समान करो, दान दो । जेषि—विजय प्राप्त करो । नः वस्यसः
 कृधि—हमें धनयुक्त, यशस्वी, कीर्तिमान् और अज्ञसे
 युक्त करो । (मं. २) ज्योतिः सन—प्रकाश बताओ,
 मार्ग बताओ, सन्मार्ग दर्शाओ । स्वः सन—आत्मिक प्रकाश
 दो, आत्मतेज बँटाओ । विश्वा सौमगा सन—सब
 सौभाग्य, सब मंगल प्रदान करो । (मं. ३) दक्षं सन—
 हमें बल दो, शक्ति दो । ऋतुं सन—प्रशस्त कर्म करनेकी

शक्ति दो । मृधः अप जहि—घातक शत्रुओं
 हमारे शत्रुओंको दूर करो । (मं. ५) कृत्वा जतिभिः
 भज—कर्मप्रवीणता और सुरक्षासे हमारी उन्नति को
 द्विवर्द्धसं रायि आभि अर्प—दो प्रकारकी
 आत्मिक और भौतिक शक्तियोंसे युक्त धन हमें देने
 सच्चा सुख देता है । (मं. ८) समत्सु अपच्युतः
 समरोंमें स्थिर रहकर लड़नेकी शक्ति तथा शत्रुसे
 की शक्ति हमें चाहिये । (मं. १०) विश्वायुं रायि
 संपूर्ण आयु देनेवाला धन हमें चाहिये ।

इस सूक्तमें ये वाक्य बड़े बोधप्रद हैं । पाठक
 इन वाक्योंसे उचित बोध प्राप्त करें ।

(७) सोमरस

(अ. १।६९) हिरण्यस्तूप आहिरसः । पवमानः सोमः । जगती, ९-१० त्रिष्टुप् ।

इपुने धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरूप सज्युधनि ।
 उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते
 उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
 पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्पति
 अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रुतीते नसीरदितेर्कृतं यते ।
 हरिरप्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते
 उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरूप यन्ति निष्कृतम् ।
 अत्यक्रीडतुर्न वारमव्ययमत्कं न निष्कृतं परि सोमो अव्यत
 प्रमृतेन कशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
 दिवस्पृष्टं वर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम्
 मूर्यस्यैव रश्मयो द्रावयितवो मन्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
 तन्तुं तनं परि गर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन
 मिन्धोर्गन्ध प्रवणं निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
 नो नो निवेदो द्विपदे चतुष्पदेऽस्मै वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः
 आ नः पयस्य वसुमद्विरण्यवदश्वावद्दोमद्यवमत्सुचीर्यम् ।
 मूर्ये हि सोम पितरं मम स्थन दिवो मूर्धनिः प्रस्थिता वयस्कृतः
 पने सोमाः पयमानास्य इन्द्रं तथा इव प्र ययुः स्नातिमच्छ ।
 मृतः पयिप्रमनि वन्यव्यं द्विर्वी ययि हरितो वृष्टिमच्छ
 इन्द्रविन्द्राय वृद्धे पयस्य सुमूर्च्छाकां अनवयो रिशादाः ।
 अन्धं वन्द्यानि वृष्टे वसुनि देवर्थायापृथिवी प्रावतं नः

नव्यः— ह्युः धन्वन् न, (क्षस्मिन्) मतिः प्रति
मातुः ऊधनि वत्सः न, (इन्द्रे) उप सजि । उरु-
ह्य सग्रे सायतो दुहे । अस्य प्रतेषु तपि सोमः
॥ १ ॥

मतिः उपो पृथ्यते । मधु सिच्यते । मन्द्राजनी आसनि
चोदते । पवमानः मधुमान् द्रव्यः वारं वर्पति, प्रव्रतां
स्तनिः ॥ २ ॥

धुयुः अच्ये त्वचि परि पवते । अदितेः नक्षीः कृतं यते
ते । हरिः, यजतः, संयतः, मदः अक्रान् । दृग्ना
तानः, महिपः न, शोभते ॥ ३ ॥

पक्षा निमाति, धेनवः प्रति यन्ति । देवस्य निष्कृतं देवीः
यन्ति । (सोमः) कर्तुं न क्ययं वारं वति अक्रमीव ।
॥ निवतं कर्त्तुं न, परि क्ययत ॥ ४ ॥

मनस्यः हरिः निर्गिजानः कन्वतेन रसाता यासता परि
॥ दिवः छुष्टं बर्हणा निर्गिजे कृत । चन्द्रोः उपस्तरणं
स्तपम् ॥ ५ ॥

सूर्यस्य ह्य रसयः, द्रावयितव्यः, मन्त्रराजः प्रनुषः
तवः सर्गातः ततं तनुं सावः परि ईरते । इन्द्राद् भूते
एन धाम न पवते ॥ ६ ॥

ह्यपक्रुताः क्षामयः मदासः, निवधोः ह्य प्रयते, निर्गि
हं क्षामत । हे सोम ! तः निवेधो निवेधे चन्द्रादे रं, कन्वते
तः ह्यपः क्षामत ॥ ७ ॥

हे सोम ! (१६) प्रनुषश्च रितस्त्वया क्षामयश्च सोमश्च
इन्द्र सुवर्षः तः सा रसयः । सूर्यं हि दिवः सूर्योः
क्षामत, द्रावयश्च मन निवधो ह्यपः । २ ।

५ (रितम्)

अर्थ— वाग धनुषपर जैसा (रसते हैं, उस तरह इस
इन्द्रमें हमारी) बुद्धि रखी जाती है । जिस तरह माता के स्तनों-
का जोर बल्ला (जाना है वैसे ही हम इन्द्रकी ओर) जाते हैं ।
बहुत दूध देनेवाली (गौ) जैसी (बल्ला के) अग्रभागमें जाती
और उसको दूध देती है (वैसाही इन्द्र हमें इष्ट सुख देता है ।)
इस (इन्द्र) के सभी कर्मोंमें सोम दिया ही जाता है ॥ १ ॥

(हमारी) बुद्धि (इन्द्रकी) ओर (स्तुति करनेके लिये) जा
रहा है । सोम सींचा जाता है । मधुर रसका आस्वाद लेनेवाली
(जिह्वा) मुखके बीचमें (रसपानके लिये) प्रेरित हो रहा है ।
छाना जानेवाला मीठा सोमरस वालोंकी छाननीपर जाता है, जैसे
आघात करनेवाले योद्धाओंके शस्त्र (परस्पर संपर्कित होते हैं) ॥ २ ॥

तीकी प्राप्तिके लिये उत्सुक हुआ (वर जैसा बधूके पास जाता
है, वैसाही सोम) मेढीकी (बालोंसे बनी) छानन परसे छाना जाता
है । पृथ्वीकी नातियों (सौपाथियों) चक्षुके पास जानेवालेके लिये दूध-
कर टीली की जा रहों हैं । हरिद्वर्ण, पूज्य, इकट्ठा किया, आनन्द-
वर्धक सोम आक्रमण कर रहा है । जो पौरुषसे तेजस्वी और
भैरवेके समान बलिष्ठ (वारंके समान) शोभता है ॥ ३ ॥

बलिष्ठ (मेन) शब्द कर रहा है, (उसके साथ) गौयें जाती
हैं । देवके सजाये स्थानपर देखीयों जाती है । (सोमरस) श्वेत
रंगवाले मेढीके बालोंसे बनी छाननीकी संपर्क रहा है । सोम,
स्वच्छ द्रव्यके समान, (दुग्धसे) उठा जाता है ॥ ४ ॥

क्षामर और हरे रंगका (सोमरस) क्षीरित होता हुआ,
अहिमित्र तेजस्वी (इन्द्ररूप) वागमें आनन्दित होता है । (उस
सोमके) सुतोवक इन्द्रमन अपने दुर्गेके स्तरण दिया था । और
वाग्रीपर रसनेका आनन्दान्न तेजस्वी बना दिया था । ५ ॥

सूर्यके विरुद्धे समान, मन्त्रधीन, अन्तरात्मा और
(इन्द्रकी) ज्ञान तन्त्रिके, प्रवर्ही और तपि मने (सोमरस) के
हृद (चक्षुके) चारों ओर फैलते हैं । क्योंकि इन्द्रकी होशियारी
और दुर्गरे स्थानोंके देवकी पहुँचने ॥ ६ ॥

व्यवर्धक सोमके विरुद्धे समान रस मन्त्रों के समान
(वागधनुषकी) रसना, निवधो है, रस द्रव्य है । वागधनुष
परमेश्वर है । हे सोम ! तन्वो वारं (वागधनुष और इन्द्रादे रं)
हृद विरुद्धे । हमने वागधनुष पर ही रसमन्त्रोंका रस दिया था ।

हे सोम ! तुमकी प्राप्ति के लिये, हरि, यजत, संयत, मदः
आक्रमण करने के लिये हमने सोमकी प्राप्ति के लिये
आक्रमण करने के लिये हमने सोमकी प्राप्ति के लिये

या सोमरससे निद्रा आती है ?

मुपः आशवः— विशेष निद्रा करनेवाले ये सोमरस पानाचार्य कहते हैं कि 'प्रमुपः' का अर्थ (शत्रूणां धितारः हन्तारः) 'शत्रुओंकी मारनेवाले अर्थात् हनन करनेवाले' ऐसा यहाँ है। शत्रुकोही मारनेका मुप है, अथवा जो पीता है उसको निद्रा करनेका मुप इसमें ही विचार करना चाहिये। यदि सोमरसपानके पश्चात् को निद्रा आयेगी, तो वीर शत्रुका पराभव सोमरस-प्राप्त नहीं कर सकेंगे। परंतु वेदमंत्रोंमें अनेक स्थानों-पर है कि सोम पीनेसे बल और उत्साह बढ़ता है और पानके बाद वीर शत्रुका पराभव करते हैं। इसलिये पानसे नींद नहीं आ सकेगी। इसी कारण 'प्र-मुपः' 'शत्रुको मारनेवाला' करना योग्य है। वीर सोमरस-पाने हैं, उससे उत्साहित होने हैं, शत्रुसे बहुत लड़ते हैं, शत्रु वध करके उसको स्थायी नींदमें लुप्तते हैं। इस-सोमरसपानसे निद्रा, सुस्ती अपना वैहोशी नहीं आती, उत्साह और आनंद बढ़ता है।

ह, इस सूक्तमें उपनाएं तथा अन्योन्य वर्णन बड़ा मनो-और बोधप्रद है।

सोम लाना, २ सोमका धोना, ३ सोमको कूटना, ४ सोमने छानना, ५ उसमें दूध मिलाना, ६ सोमपानसे बल-प्राप्ति और शत्रुका नाश होना, ये बातें इस सूक्तमें हैं।

उक्षा निमाति, घेनवः प्रति यन्ति। (मं. ४)—
उत्साह करता है, गाँवें नाप जाती हैं। इसका अर्थ सोम के समय दूध करना हुआ नीचेके वर्तनमें उतरता है और गाँवोंका दूध मिलाया जाता है, ऐसा है।

२ हरिः रुशता वाससा परि व्यत। (मं. ५)— हरे रंगवालेपर श्वेत वस्त्र पहनाया जाता है, अर्थात् हरे सोमरसमें श्वेत दूध मिलाया जाता है।

(ऐसे आलंकारिक प्रयोग इस सूक्तमें बहुत हैं। पाठक उनका अर्थ इस तरह समझें ।)

३ दिवः पृष्ठं वर्हणा निर्णिजे कृत। (मं. ५)— बुलोक के पीठको सोम अपने तुर्रसे सुशीभित या स्वच्छ करता है। अथवा बुलोकके पृष्ठभागको वह अपने ओड़नेके लिये करता है। सोमवालि हिमालयके शिखरपर होती है। उस वादिको मोरके तुर्रके समान तुर्र आते हैं, मानो वे बुलोकको सुंदर बनाते, स्वच्छ साफसुधरा करते, अथवा बुलोककोही ओड़ लेते हैं। यह भी एक आलंकारिक वर्णन है।

४ छाननीसे सोमरसकी धाराएं नीचे उतरती है इसकी (वृष्टि अच्छ) वृष्टिकी उपमा दी है। (मं. ८) छाननीसे उतरने-वाली धाराएं वृष्टिकी धाराएं हैं, सोम कूटा हुआ जो छाननीपर रख जाता है, वह मेघ है और नीचेका पात्र पृथ्वी है। इस तरह मेघकी उपमा सोमके लिये सार्थ होती है।

५ 'कुष्ठयः' पद ७ वें मंत्रमें है। वह मानवोंके समुदाय का सूचक है। समूह-रूपसेही मानव अमर है, व्यक्ति-रूपमें मर्त्य है। 'आर्य' जाति सदा जीवित रहेगी, पर एक व्यक्ति मरेगी।

६ सोमके लिये बलवर्धक अर्थमें मंदिरकी उरना दी है। (मं. ३) बड़ा अन्न होनेका अर्थ (महा-इप्) ने भी यह पद है। सोमरस पान बल बढ़ानेवाला अन्न है, यह प्रसिद्ध ही है।

यहां सोमके दोनों सूक्तोंका विवरण समाप्त होता है।

(दशम स्कन्ध)

(८) सविता देव

(प्र. १०१४९) अनेन हिरण्यस्तूपः । सविता । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता ग्रामदंहन् ।
 अश्वमिवाधुक्षुनिमन्तरिक्षमन्ते यदं सविता समुद्रम्
 यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
 अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो आवापृथिवी अप्रयेताम्
 पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
 सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गर्भमान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म
 गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
 पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विद्ववारः
 हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
 एवा त्वार्चनवसे चन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम्

अन्वयः— सविता यन्त्रैः पृथिवीं अरम्णात् । सविता
 अस्कम्भने धां अदंहत् । अश्वं इव, अतूतं धुनि अन्तरिक्षं
 यदं समुद्रं अधुक्षत् ॥ १ ॥

यत्र स्कभितः समुद्रः वि औनत् । हे अपां नपात् । तस्य
 (स्थानं) सविता वेद । अतः भूः, अतः उत्थितं रजः आः,
 अतः आवापृथिवी अप्रयेताम् ॥ २ ॥

अमर्त्यस्य भुवनस्य भूना अन्यत् इदं यजत्रं पश्चा अम-
 यन् । हे अंग ! सः सुपर्णः गरुमान् सवितुः पूर्वः जातः ।
 अस्य धर्मं अनु उ ॥ ३ ॥

गावः इव ग्रामं, यूयुधिः इव अश्वान्, सुमनाः दुहाना
 वाश्रा इव दान्यं, पतिः इव जायां, विद्ववारः दिवः धर्ता
 सविता नः नि ण्तु ॥ ४ ॥

अर्थ—सविता ने यन्त्रों से पृथ्वी को मुक्ते मुक्ते
 उसी सविता ने विना स्तम्भों का आधार दिये धुने को
 ऊपर) मुड्ड रखा है । (दिनदिननेवाने) पीछे
 यमान होनेवाले अन्तरिक्ष में गतिहीन अवस्थान से
 दुह लिया (अन्तरिक्ष में मेघका दोहन करके मनु
 जहासे स्तम्भिन हुआ मसुड (मेघ) जल की दृष्टि
 हे जल को न गिरनेवाले (अथवा हे जल के पीछे)
 उसका स्थान सविता देव जानता है । उस (पति)
 उससे ऊपर फैला अन्तरिक्ष और उससे धुने धुने
 पदार्थ) फैले है ॥ २ ॥

अमर्त्य भुवन के बनने के नंतर दूसरा यह धर्म
 यज्ञसाधन) पीछे से उत्पन्न हुआ । हे प्रिय ! वह दुहा
 (किरणवाला) महा सामर्थ्यवान् (यथाश्र प्रकाश)
 ही उत्पन्न हुआ था । इस (सविता) के धर्म के अनु
 प्रकाशता रहा ॥ ३ ॥

गौं जैसी (ग्राम को उत्सुकता से) ग्राम की ओर
 बोझा वार जैसी घोड़ों के पास (जाती हैं), वत्स न
 देने की इच्छा करती हुई, हम्मारव करनेवाली घेड
 के पास (जाती है), पति जैसा स्वामी के पास (जा
 ही) अथवा धेवनीय धुलोकका आधार सविता देव
 था जाय ॥ ४ ॥

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

विषयसूची

| विषय | पृष्ठोंक |
|---|----------|
| हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन (भूमिका) | ३ |
| सूक्तचार मन्त्रसंख्या | ३ |
| देवतावार मंत्रसंख्या | " |
| 'हिरण्यस्तूप' का वेद-मंत्रमें उल्लेख | " |
| " " ऐतरेय ब्राह्मणमें | " |
| सूर्यका आकर्षण | ४ |
| हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन | ५ |
| (उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मन्त्रोंके समेत) | " |
| प्रथम मण्डल, सप्तम अनुवाक | " |
| (१) सत्रका परम पिता परमात्मा | " |
| परम पिताका यशगान | ९ |
| सूक्तका कर्तृत्व | ११ |
| आदर्श मानव | " |
| (२) क्षात्रधर्म | १२ |
| ईश्वर-स्वरूपका विचार | १४ |
| प्रजारूप और आत्मरूप नामि (पिण्ड-ब्रह्माण्ड-चित्र) | १५ |
| क्षात्रधर्म | " |
| अलंकार | १६ |
| वृत्र कौन है ? मेव या यके ? | " |
| (३) युद्धविद्या | १८ |
| युद्धकी नीति | २१ |
| वृत्रका स्वरूप | २३ |

विषयसूचा

(४) आरोग्य और दीर्घायु

| | |
|------------------|----|
| सौपधि-प्रयोग | २३ |
| १२० वर्षोंकी आयु | २५ |
| त्रिधातु | " |
| बलवर्धक सज्ञ | " |

(५) सविता-देव

| | |
|---------------------------|----|
| विना धूलिके मार्ग | २७ |
| सूर्यका प्रभाव | २९ |
| समृत और मर्त्य | " |
| रोगबीजोंका नाश | " |
| तीन धुलोक | " |
| प्रद्यौ, पीलुनती, उदन्वती | " |
| सूर्यकी गति | ३० |
| रथ और स्थिर | " |

नवम मण्डल, (प्रथम अनुवाक) (६) सोमरत्न

| | |
|------------------------------|----|
| योध | ३१ |
| नवम मण्डल, (चतुर्थ अनुवाक) | " |
| (७) सोमरत्न | ३२ |

| | |
|---------------------------------|----|
| सोमका काव्य | ३४ |
| क्या सोमरत्नसे निद्रा जाती है ? | ३५ |
| समूहरूपसे जगत् मानव | " |

दशम मण्डल, (एकादश अनुवाक) (८) सविता-देव

| | |
|--------------------------|----|
| सर्चन् कापका सुक्त | ३६ |
| भूमि, अन्तरिक्ष और धुलोक | " |
| | ३७ |

काण्व-दर्शन

१ प्रथम विभाग = मेधातिथिका दर्शन
२ द्वितीय " कण्व " "

मुद्रक और प्रकाशक

व० श्री० सातवलेकर, B. A., भारतमुद्रणालय, औंध (सातारा)

अथर्ववेदमें—

| | |
|-----------------|----------|
| सरस्वान् | २ |
| श्येनः | २ |
| सोमाश्वौ | २ |
| ईष्यापनयनं | २ |
| आपः | १ |
| वाक् | १ |
| इन्द्रः विष्णुः | १ |
| | <hr/> ११ |

१०८

ऋषिनामों तथा राजाओंके नामोंका मंत्रोंमें उल्लेख इनके सूक्तोंमें निम्नलिखित प्रकार आया है—

[ऋ. १।३६के] मंत्र १० में 'मेध्यातिथिः काण्वः' तथा मंत्र ११ और १७ में भी मेध्यातिथिके नाम हैं। इसके अतिरिक्त धनस्पृत (मं. १०); उपस्तुत (मं. १० और १७); तुर्वशा, यदु, उग्रदेव, नववास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वाति (मं. १८) ये नाम भी इसी सूक्तमें हैं। ये नाम ऋग्वेदके सूक्तमें हैं। अब प्रस्कण्वके सूक्तोंमें ऋषिनाम देखिये—

ऋ. १।४९ के मंत्र २ में प्रस्कण्वका नाम आया है। इसके अतिरिक्त प्रियमेघ, अत्रि, विरूप, अंगिराः ये नाम भी इसी मंत्रमें हैं। 'प्रियमेघ' का नाम पुनः मं. ४ में आया है। इसी सूक्तके ५ वें मंत्रमें ऋषिने अपने गोत्रका नाम 'कण्व' कहा है।

ऋ. १।४६ के नवम मंत्रमें 'कण्वासः' पद है, यह इसका गोत्रनाम है। ऋ. १।४७ के मंत्र २ में 'कण्वासः' पद है। यही पद मंत्र ४;५; १० में भी है।

ऋ. १।८९ के मंत्र ४ में 'कण्वाः' पद है, यह ऋषिका गोत्रनाम है। ऋ. ८।४९ के मंत्र ५ और १३ में 'कण्व' नाम है। इसी सूक्तके मं. ९ और १० में 'मेध्यातिथि, नीपातिथि, कण्व, प्रसदस्यु, पक्व, दशत्रज, गारायं, कज्जिश्वा' ये नाम हैं।

इस तरह कण्व और प्रस्कण्व तथा अन्य ऋषियोंके तथा राजाओंके नाम इन सूक्तोंमें आये हैं।

सूक्तोंके विषय

इन सूक्तोंमें अश्विको बडाना, अश्विको संगठन करना, शियेकी छेद, अश्वत्रियोंकी बडाना, शत्रुका पराभव करना, शत्रुको बडाना, अश्विको संगठन करना, शत्रुका परा

नाश करना, जलचिकित्सासे रोग दूर करना, करना, ३३ देव, यज्ञ, सूर्य चित्रमें गोरोपन, अनेक विषय हैं। राज्यका बल बढ़ाने के लिये कता रहती है।

इससे प्रतीत होता है कि कण्व ऋषि शासनसे घनिष्ठ संबंध है। कण्व ऋषिने निम्नलिखित इतिहास मिलता है—

घोरपुत्र कण्व

प्रथम कण्व

कण्व शब्दको नीलकण्ठ ऋषि 'घुबन' कहते हैं। बृहदेवतामें कण्वके विषयमें जो उल्लेख उसमें लिखा है कि, घोराना ऋषिके कण्व का पुत्र थे। जब कि ये दोनों पुत्र जन्मने लगे तो प्रगायक द्वारा कण्वपत्नीके संबंधमें कुछ अतिशय हुआ। कण्व प्रगायको शाप देनेके लिये बृहदुक्त थे। उनके लक्ष्मी नांगर कण्व और कण्वकी मातापिता मान लिया। आगे चलकर कण्व और इन्द्रोंने मिलकर ऋग्वेदके अष्टम मण्डलको रचवा संभव है कि कण्वका कुल यदु और तुर्वशा करता होगा। ऋग्वेदमें कण्वकुलोत्पन्न देवताओंका उल्लेख करता हुआ दिखाई देता है कि 'तेरो ह्वासे यदु ये सुखी हो गये हुवे सुते दिखाई दें।'—

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम ॥

(ऋ. १०)

कई ग्रंथोंमें तथा ऋग्वेदमें इस पुरातन ऋषिको किया हुआ पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

भुवत्कण्वे वृषा शुम्नाहुतः क्रन्ददशो ॥

(ऋ. १०)

यामस्य कण्वो ब्रुहद्वत्प्रपीनाम् ॥

(अथर्व. १०)

कण्वः कक्षीवान् पुष्मीदो अगस्त्यः ॥

(अथर्व. १०)

यामस्य कण्वोऽब्रुहद्वत्प्रपीनाम् ॥

(ऋ. २)

कण्वो हैतानृतुप्रेषान्दर्श ॥ (शाल्व. १०)

कण्व स्वयं सूक्तग्रा भी थे। ऋग्वेदके नवम मंत्र में ४३ तक आठ सूक्त घोरपुत्र कण्वके नामसे उद्धृत

करके आर्यधर्ममें प्रविष्ट करा लिया। इन दो सहस्रकी योजना आपने वैश्योंमें की। पृथुनामक कश्यपका सेवक कण्वका कृपापात्र ब्रह्मक्षत्रियपद देकर कण्वने उसे राजपुत्र नगर दे

सरस्वत्याक्षया कण्वो मिश्रदेशमुप

सरस्वत्याक्षया कण्वो मिश्रदेशमुप

म्लेंछान्संस्कृतमाभाष्य तदा .

वर्शकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महो

प्रस्कण्व

भागवतमतानुसार यह मेधातिथिका पुत्र है।

प्रस्कण्वादिक द्विजत्वको प्राप्त हुवे ।

तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्याः।

(भा.

प्रस्कण्व काण्व

यह ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके चवालीससे लेकर
सूक्तोंका तथा अष्टम मण्डलके उनपचासवे सूक्त
शांखायन श्रौतसूत्रमें कहा है कि इसने शुभप्र
सातरिश्चन् इनसे द्रव्य पाया था ।

यहां तीन कण्वों और दो प्रस्कण्वोंका उल्लेख
कण्व निःसन्देह आधुनिक है। हमारे मतसे पहिले
सूक्ष्मद्रष्टा ऋषि है, दूसरा और तीसरा ये दोनों
प्रस्कण्व ऋषिके विषयमें कोई ऐसे भिन्न चरित्र ०

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'कण्व' अनेक रूप
सूक्तद्रष्टा एकही ऋषि है। जिस कण्व ऋषिके मत
वह सूक्तद्रष्टा कण्व है। इसके इतिहासके विषय
खोज करनेकी आवश्यकता है।

प्रत्येक ऋषिके मंत्रोंमें अमि, इन्द्र, अश्विनी, देवताओंके मंत्र हैं। पाठक इनमें ऐसी तुलना ऋषिके मंत्रोंमें एक देवताके वर्णनमें जो विशेषण वर्णनमें और अन्य ऋषिके मंत्रोंमें क्या भेद है! स्फुरणही मंत्र हैं, यह स्फुरण कदनेमानसेही अध्यात्मभावसे-आत्मिक सृष्टिसि-सिद्ध है। देवता उसके अविकारमें, प्रत्येकके स्फुरणमें, भाव व्यक्त किया हेरफेर हैं। जितना सूक्ष्म अध्ययन किया जावे विषयमें इस समय थोड़ाही होगा।

स्वाध्याय-मण्डल
ऑथ (जि. सावारा)
वैशाख सं० २००३

निवेदनार्थ
श्री० रा०

याजयामास तं कण्वो दक्षवद्भूरिदक्षिणम् ॥

(म. आ. १०१४)

इस यज्ञमें भरतजीने आपको (म. आ. १०१।४)
जाम्बूनद सुवर्णका दान किया। एक सहस्र पद्म भार शुद्ध

सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ।
जाम्बूनदस्य शङ्खस्य च ।

जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः ॥

(म. द्रो. ६८.११)

(म. द्रो. ६८.११)
संभव है कि भरतजीके इस यज्ञमें आप उपस्थित हों या आपके पुत्र। इन्हींने दुर्योधनको मातलिकी कथा सुनाई। परन्तु उस बोधप्रद कथाको सुनकर भी जब उसने न माना, तब आपने उसे ध्याप दिया कि तेरी मृत्यु जांच दृष्टनेसे हो जायगी। यस्माद्भुम्ह तावयस्मि ते।

यस्माद्भूतं ताडयसि ऊरौ मृत्युर्भविष्यति ॥

(म. उ. १०५.४३)

(म. उ. १०५.४३)
 काव्य विचार क्रिया जाय तो यह कण्व भी मूल कण्वका
 रस्य रंजन होगा।

तृतीय कण्व

पुत्र । कलियुगारंभके बाद सहस्र वर्षोंसे आप भरत-
जनन पा चुके । देवद्व्या आर्यावर्तसे आपका विवाह
कामाख्या, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री,
त्रिवेदी, पट्टेय, चतुर्वेदी ये सब आपके पुत्रोंके उप नाम
आपने आपकी महुर प्रवचनश्रीमंदि द्वारा मिश्रदेशवासी
वन्देज्जीसे वध करा लिया । और उन्हें शुद्धिविधि



| | |
|--|---|
| देवाससत्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते । | |
| विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः | ३ |
| मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि । | |
| त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत | ५ |
| त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठय विश्वमा हूयते हविः । | |
| स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं याक्षि देवान्सुवीर्यां | ६ |
| तं धेमित्या नमस्विन उप स्वराजमासते । | |
| होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वीसो अति त्रिधः | ७ |
| प्रन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे । | |
| भुवत् ऋण्ये वृषा युम्याहुतः क्रन्दद्भ्यो गविष्ठिषु | ८ |
| सं सीदस्व महौ असि शोचस्व देववीतमः । | |
| वि धूममग्ने अरुपं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् | ९ |

हे अग्ने ! वरुणः मित्रः अर्यमा देवासः त्वा प्रत्नं दूतं सं
जयते । यः मर्त्यः ते ददाश, सः त्वया विश्वं धनं जयति ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (त्वं) मन्द्रः होता वितां गृहपतिः दूतः
मि । त्वे विश्वा व्रता संगतानि, यानि देवाः ध्रुवा अकृ-
ण्वत ॥ ५ ॥

हे यविष्ठय अग्ने ! सुभगे त्वे इत् विश्वं हविः आ हूयते ।

स त्वं नो सुमना, अद्य उत अपरं सुवीर्यां देवान्
तं धेमिष्या ॥ ६ ॥

होत्राभिः मनुषः स्वराजं तं उप आसते । त्रिधः
प्रन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ॥ ७ ॥

भुवत् ऋण्ये वृषा, रोदसी अपः क्षयाय उरु चक्रिरे ।
अहो वृषाः क्रण्ये वृषा, (यथा) गविष्ठिषु अश्वः
८ ॥

सं सीदस्व, महौ असि । देव-वीतमः शोचस्व । हे
अग्ने ! अरुपं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! वरुण मित्र और अर्यमा ये देव तुम
दूतको प्रकाशित करते हैं । जो मानव तुम्हारे लिये
है, वह तुम्हारी (सहायतासे) सब धन जित
करता है ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! (तुम) हर्षवर्धक दाता प्रजाजनक के लिये
(और देवोंके) दूत हो । तुम्हारे अन्दर वे सब व्रत
हैं, कि जो ये देव दृढतापूर्वक करते हैं ॥ ५ ॥

हे युवक अग्ने ! उत्तम भाग्यसंपन्न ऐसे तुम्हारे
सब प्रकारका हवि अर्पण किया जाता है । वह तुम हमें
आनन्द-चित्त होकर, आज (और वंशेशी) इजो के
प्रभावशाली देवोंका अर्चन करो ॥ ६ ॥

नमस्कार करनेवाले उपासक स्वयंप्रकाशी इस
की इस तरह उपासना करते हैं । शत्रुओंको नष्ट करने
करनेवाले मनुष्य हवन करनेवालोंके द्वारा अग्निसे
करते हैं ॥ ७ ॥

प्रकार करनेवाले वीरोंने वृषका वध किया और अ-
गलोंके रहनेके लिये बहुत विस्तृत किया है । अग्ने
प्रकाशित (अग्नि) आहुतियों प्राप्त करके ऋण्ये (अग्ने)
दाता) ध्रुवा, (जैसा) गौओंको प्रादिके बुद्धिसे
वाग्ध घोडा (यशदायी होता है) ॥ ८ ॥

(हे देव) पैठ जाओ, तुम धरे हो, देवोंकी समता
प्रकाशित होओ । हे यविष्ठ और प्रशस्त अग्ने ! अरुपं
नैव धूम उत्पन्न करो ॥ ९ ॥

यं त्वा देवास्तो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेघ्यातिथिर्धनहृतं यं वृषा यमुपस्तुतः १०
यमग्निं मेघ्यातिथिः कण्व ईच क्रतादधि ।
तस्य प्रयो दीदियुस्तमिमा क्रचस्तमग्निं वर्धयामसि ११
रायस्पूर्धिं स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महौ असि - १२
ऊर्ध्व ऊ पु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदग्निभिर्वाघग्निर्विहयामहे १३
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहस्तो नि केतुना विभ्यं समत्रिणं दह ।
कृषी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः १४
पाहि नो अग्ने रक्षतः पाहि धूर्तराण्यः ।
पाहि रीपत उत वा जिघांसतो मृहङ्गानो यविष्ठथ १५

हव्यवाहन ! मनवे देवास्तः यजिष्ठं यं त्वा इह दधुः ।
येतिथिः कण्वः यं (त्वां) धनहृतं (दधे); वृषा यं
उपस्तुतः यं (त्वां) दधे ॥ १० ॥

प्यातिथिः कण्वः क्रताद् अधि यं अग्निं ईधे, तस्य
प्र दीदियुः, तं इमा क्रचः (वर्धयन्ति, वर्धे) तं अग्निं
वर्धयामसि ॥ ११ ॥

हे स्व-भावा ! रायः पूर्धिं । हे अग्ने ! देवेषु ते आर्प्यं
स्व हि । त्वं श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि । सः (त्वं) नः
मृळ, महौ असि ॥ १२ ॥

नः ऊतये ऊर्ध्वः सु तिष्ठ, सविता देवः न । ऊर्ध्वः वाजस्य
मिमा, यद् अग्निभिः वाघग्निः विहयामहे ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वः केतुना नः बहस्तः नि पाहि । विभ्यं अत्रिणं सं दह ।
कृषी जीवसे नः ऊर्ध्वाञ्च कृषि । नः दुवः देवेषु
पाहि ॥ १४ ॥

हे इहकृतो यविष्ठ अग्ने ! नः रक्षतः पाहि । अ-राण्यः
ही पाहि । तिरपत उत वा जिघांसतः पाहि ॥ १५ ॥

हे हव्य पशुंचानेवाले (अग्ने) ! मानवोंके (दितके) लिये
सब देवोंने यजनीय ऐसे तुनको यज्ञ (इस यज्ञमें) धारण
किया है । मेघ्यातिथि कण्वने धन देनेवाले तुम्हें (धारण किया
है), यलको बडानेवाले (वारने और) उपस्तुतने भी तुम्हें
धारण किया है ॥ १० ॥

मेघ्यातिथि कण्वने मूर्ध्ने (उत्तम करके) इस अग्निको
धारण किया है, वसके किरण बनकने लगे हैं, उस (अग्निको
दध) ये क्रचाएँ (बडती हैं, हम भी) उनी अग्निको
बडते हैं ॥ ११ ॥

हे अपनी धारक एतिथाले (अग्ने) ! (हमें) धन
भरपूर दो । हे अग्ने ! देवोंने तेरो निःकंदर निग्रहाई । तुम
प्रशंसनीय बतके प्रकशक हो । बड़ (तुम) हमें सुखी करो,
तुम बडे हो ॥ १२ ॥

हमारा सुरक्षाके लिये उध होकर ठहरो, जैसा मूर्ध्ने देव (उध
स्वात्मने) है । उध होकर वसके दाता (अग्ने) !, अब तु-अर्ध-
इत वाजस्यके साथ (हम तुम्हें) उजा रहे हैं ॥ १३ ॥

कृषी होकर राजसे हमें पालने बचाओ । कृषी पशुओं
(रीपकों) को बडा दो । (हमारे) अग्नि और रीप
अग्निके लिये हम उध बढाओ । (यह) हमारे अग्नि
देविक पशुओं ॥ १४ ॥

हे मरुदेवस्तो यविष्ठ अग्ने ! हमें रक्षक बचाओ ।
अ-राण्य मूर्ध्ने बचाओ । तिरपे और जिघांसते हमें उध
रखो ॥ १५ ॥

| | |
|--|----|
| घनेव विष्वाग्निं जहाराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मभुक् । | |
| यो मर्त्यः शिशीति अत्यक्तुभिर्मानः स रिपुरीशत | १६ |
| अग्निर्वन्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् । | |
| अग्निः प्राचन्मित्रो मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् | १७ |
| अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे । | |
| अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति वस्यवे सहः | १८ |
| नि त्वामग्ने मनुर्वधे ज्योतिर्जनाय शश्वते । | |
| दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः | १९ |
| त्वेपासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये । | |
| रक्षस्विनः सदमिद् यातुमावतो विश्वं समग्रिणं वद | २० |

हे तपुर्जम्भ ! अराव्णः विष्वक्, घना इव, वि जहि। यः
अस्म-भुक्, यः मर्त्यः अत्यक्तुभिः अति शिशीते, सः रिपुः नः
मा ईशत ॥ १६ ॥

अग्निः सुवीर्यं वन्ने । अग्निः कण्वाय सौभगं; अग्निः
मित्रा प्र आवत् । उत अग्निः मेध्यातिथिं, उपस्तुतं साता
(प्र आवत्) ॥ १७ ॥

अग्निना तुर्वशं यदुं उग्रादेवं हवामहे । वस्यवे सहः अग्निः
नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति नयत् ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! ज्योतिः त्वां शश्वते जनाय मनुः नि वधे । ऋत-
जातः उक्षितः कण्वे दीदेथ । यं कृष्टयः नमस्यन्ति ॥ १९ ॥

अग्नेः अर्चयोः त्वेपासः अमवन्तः भीमासः प्रति-इतये न
(शक्त्याः) । रक्षस्विनः यातु-मावतः सदं इत्वं सं वद ।
विश्वं अग्रिणं सं वद ॥ २० ॥

शक्तियोंका संगठन करनेवाला अग्नि

इत सूक्तमें शक्तियोंका संगठन करनेका अमिका गुणधर्म
विशेष प्रमुखतासे वर्णन किया है। प्रथम शरीरमें देखिये, शरीर
में गर्मा यह अमिका गुण रहनेतक ही जीवनका होना संभव
है । गर्मा चली गयी, शरीर ठण्डा हो गया, तो जीवन समाप्त
हो जाता है। शरीर यह एक उत्तम संगठन ही है, वैदिक

हे अपनी गर्मासि (रोगबीजोंके) नाश करनेवाले !
को चारों ओरसे, गदासे (नाश करनेके) समान, विश्व
जो हमारा द्रोह करता है, जो रात्रियोंमें (जागता हुआ)
नाशका प्रयत्न करता है, वह शत्रु हमपर कमी
करे ॥ १६ ॥

अग्नि उत्तम वीर्य देता है । अग्निने कम्बको उत्पन्न
दिया, अग्निने हमारे मित्रोंका बचाव किया है ।
अग्निने मेध्यातिथि और उपस्तुतका विनाश
(बचाव किया) ॥ १७ ॥

अग्निके साथ हम तुर्वश, यदु और उग्रादेवोंका,
दुष्टोंका दमन करनेका बल (देनेवाले) अग्निदेव
बृहद्रथ और तुर्वीतिको ठीक रीतिसे चलाते हैं ॥ १८ ॥
हे अग्ने ! ज्योतिस्वरूप तुमको शान्ति का
हितके लिये मनुने स्थापन किया । यज्ञमें प्रकट
(यज्ञमें) तृप्त होकर (तुमने) कम्बको दया दिया ।
जिसको सब मनुष्य नमन करते हैं ॥ १९ ॥

अग्निको ज्वालाएँ प्रकाशित, बलशाली,
उनका विरोध नहीं (किया जा सकता) । राक्षसों और
देनेवालोंको जला दो । सर्व भक्षकोंको जला दो ॥ २० ॥

दृष्टिसे देखा जाय, तो यहां तैत्तिरीय देवताओंको
संगठन ही हुआ है, परस्पर विरुद्ध गुणधर्मवाली देवताएँ
जल और अमिका परस्पर विरोध प्रसिद्ध है। जल
करता है और अग्नि, सूर्य तथा वायु जलको उखाड़
हैं । इस तरह इनका परस्पर विरोध है। वनस्पति और
भी विरोध है, अग्नि वनस्पतियोंको खा जाता है और

यु अग्निको साथ करता है। इस तरह वायु और मेघका भी स्पर्श है, वायु मेघोंको तितरबितर करता है और इच्छा करता है। ऐसे ये देव परस्परका विद्वेष करते हैं, पर इस रीतके संगठनमें ये परस्परकी सहायता कर रहे हैं ॥ शरीरमें भी—अग्नि-रहतेक ही ये सब देवतायें संगठनमें रहती हैं। माँ बली गयी तो यह संगठन हूट जाता है, इसलिये अग्नि संगठन करनेवाला है।

राष्ट्रमें भी अग्निसे होनेवाले यज्ञ जनताका संगठन करते हैं। जलूय, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम आदि अनेकविध यज्ञ जनताका संगठन करते हैं, नरमेधमें सब जातियोंके मानवोंका संगठन होता है। अग्निसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे जनताका संगठन होता है, इसलिये अग्निको संगठनका देव माना है वह योग्य है। अग्नि सब देवोंके पास पहुँचता है, उनको एकत्रित करता है, यज्ञके लिये उनको निमंत्रण देता है और अपने स्वरपर बिठलाकर यज्ञस्थानमें लाता है और उनको संगठित उनसे यज्ञ कराता है। पाठक इस लूकमें अग्निके इस वर्णन देख सकते हैं।

जनताका संगठन भी इसी रीतिसे करना चाहिये। किसी पूर्ण कार्यका जोष, विचारोंकी भाग, सद्भावनाकी गनी में उत्पन्न करना चाहिये। और नाना जातियों और नाना विनक्त-हुई जनताको संगठित करना चाहिये। यज्ञके जनताके संगठनका यह विधि है। इस तरह विचार करने निम्नद्वारा व्यक्तिमें, राष्ट्रमें और विश्वमें शक्तियोंका संगठन तरह होता है, इसका ज्ञान पाठक प्राप्त कर सकते हैं।

देवत्वकी प्राप्ति

देवयतीनां पुरुषां विशां यद्वं अग्निं वचोभिः प्र ई-देवत्वकी प्राप्ति करनेकी इच्छावाली, सब उच्चति-साधन भरपूर ऐसी प्रजाओंके सामर्थ्यका संवर्धन करनेवाले नये इन प्रणाला करते हैं। इसमें प्रत्येक पदका महत्त्व है इसलिये इन पदोंका महत्त्व प्रथम देखिये—

१ देवयती—अपने अन्दर देवत्व स्थापित हो और बड़े बड़े, ऐसी इच्छा करनेवाली प्रजाका यह नाम है। मनुष्य में राष्ट्र-मानव, पशु-मानव, जन-मानव, नर-मानव, देवत्व ऐसे भेद हैं। इन नामोंसे ही इनके लक्षणोंका ज्ञान हो जाता है। मनुष्यको अपने अन्दरके राष्ट्रजन या पशुजनका स करके अपने अन्दर देवभाव स्थापन करना चाहिये।

इसीलिये धर्म है। अर्थात् इस तरह मानवोंमें राष्ट्र और देव ऐसे दो विभेद रहते हैं। इस मंत्रमें देव मानवोंका ही विचार किया है। सब मानवोंका संगठन नहीं हो सकेगा, परन्तु जो अपने अन्दर देवत्वका विकास करना चाहते हैं, उनका ही संगठन हो सकता है। और जो मानवोंका संगठन करना चाहते हैं, उनको सबसे प्रथम देवत्वकी प्राप्तिके इच्छुक कौन हैं और कौन राष्ट्रजनके लोग हैं, इनका विवेक करना चाहिये। समान विचारोंका संगठन होगा। कनसे कन अपने विरोधी भावोंको दबाना और सर्वसाधारणके दितके कार्य करनेकी इच्छा करना इतना तो आवश्यक है। अर्थात् अपने अन्दर देवभाव उत्पन्न करना यह मानवका पहिला साध्य है। भगवद्गीतामें १६ वे अध्यायमें प्रारंभमेंही देवों संपत्तिके लक्षण दिये हैं। ब्राह्मी स्थिति भी जो गीतामें कही वह यहाँ पाठक देखें।

३ पुरुः— पुरु, पूः (नगर), पुरी (नगरी), पुव (नागरिक), पूवः, पौराः (नागरी जनता), इन सबमें 'पुरु' पद है। इसका यौगिक अर्थ 'परिपूर्ण, सब कुछ साधनोंसे, उच्चतिके साधनोंसे भरपूर भरेहुए' यह है। जिस नगरोंमें उच्चतिके और उपयोगके सब साधन भरपूर रहते हैं, वह 'पुरु, पूः, पुरी' है; और जिन लोगोंके पास वे साधन भरपूर रहते हैं उनका नाम 'पुरु, पूवः, पौराः' है। इस मंत्रमें 'पुरु' पद है, इसका भी यही अर्थ है, इनकी संगठना होनी चाहिये। उच्चतिके और सुखके सब साधन नगरमें संग्रहित करना और उनका उपयोग सबको करनेका अवसर मिलना, यह नागरिकों का कर्तव्य है।

४ विश्, विद्— प्रजा, जनता, जो प्रचार करके स्थायी रूपसे एक स्थानपर रहती है। खेती-बाड़ी, व्यापार-व्यवहार, लेवदेन करनेवाली जनता। इनका संगठन करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यापार-व्यवहारके कार्याकर्ताओंका संगठन करके पश्चात् सब संघोंका संगठन करना योग्य है। इसीका नाम 'गण-व्यवस्था' है। गण, व्रात, संघ, गणनंजल, गणनशान्जल ये इनके छोटे बड़े गणोंके नाम हैं। इनके मुखियाको गणेश, गणपति, गणपति, गणनंजलेश, गणनशान्जलेश आदि नाम हैं। इससे छोटे बड़े संगठनको संस्थाओंका बोध हो सकता है।

५ देवयतीनां पुरुषां विशां (यनः) — अपने अन्दर देवत्वका संवर्धन करनेवाले साधनसंपन्न प्रजावर्गोंके यनोंका रचना करना संगठनका साध्य है। इसमें छोटे मोटे संघ होने

६ यद्वाः अग्निः— सामर्थ्य बढ़ानेवाला शक्तिरूप आग्नि । इसको जनतामें प्रज्वलित करना चाहिये। व्यक्तिमें यह उत्साह-रूप है, जनतामें यज्ञस्थलमें प्रदीप्त होनेवाला है। 'यद्वा' का अर्थ— 'बड़ा, महान्, समर्थ, शक्तिमान्, फूर्तीला, प्रयत्नशील, कार्यतत्पर, सतत प्रयत्नशील' यह है।

७ प्र ईमहे— पूर्वोक्त मानवोंके सतत प्रयत्न करनेके उत्साह-रूप अग्निही हम प्रशंसा करते हैं। अर्थात् इसकी प्रशंसा होना योग्य है। 'प्र-ई' का अर्थ 'प्रगति,' उच्च गति, उत्कर्षकी ओर जाना है। पूर्वोक्त प्रकारके मानवोंकी प्रगति उनके सतत यत्न करनेके उत्साहसे निःसन्देह होगी।

८ अन्ये सौ ईल्लते— दूसरे भी इसकी स्तुति गाते हैं। क्योंकि यह प्रशंसा योग्य है। 'ईल्ल, ईड्, ईर्' ये धातु सदा अन्नके साथ संबन्ध रखते हैं। 'इला, इरा, इडा' ये पद वेदमें भूमिके और अन्नके वाचक हैं। भूमिसे ही अन्न होता है और अन्न उसीको मिलता है जो कि पूर्वोक्त प्रकार उत्साहसे कार्य करते हैं। (मं. १)

९ जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे— लोग बलवर्धक अग्निको अपने अन्दर धारण करते हैं। 'सहः, सहस्' का अर्थ है 'कष्ट सहन करनेका बल'। जिसके पास कष्ट सहन करनेकी शक्ति होगी वही प्रयत्नसे उन्नतिको प्राप्त होगा। जिसमें परिश्रम नहीं है वह कुछभी कर नहीं सकता।

१० सुमनाः अविता भव— उत्तम मनवाला संरक्षक हो। राजाकी कार्य करनेवाला उत्तम मनवाला चाहिये, नहीं तो उसी बुद्धिमान् मनवाला हुआ तो रक्षण करनेके स्थानपर भयानक क्षति और रक्षकका राक्षस बनेगा। (मं. २)

११ दातारं विश्ववेदसं दूतं वृणीमहे— दाता, सब अन्तर्गत ऐसे दूतका हम स्वीकार करते हैं। दूत दाता हो और वह अन्तर्गत जाना, समझदार हो। राजदूतके भी येही लक्षण हैं।

१२ मद् सतः प्रचयः विचरन्ति, मानयः दिवि स्तुवन्ति— जो मद्गता सक्रिय होते हैं, उनका तेज चारों ओर फैलता है और उनका प्रकाश आकाशतक पहुँचता है। मद्गता अर्थात् वह मदिता है। (मं. ३)

१३ यः ददात, सः विश्वं वनं जयति— जो दान देता है, वह सब अन्तर्गत अन्तर्गत करता है। जो अपने स्वयंके अन्तर्गत अन्तर्गत करता है, वह सर्वत्र विजय पाता है। (मं. ४)

१४ देवाः यानि भुवा अकृष्यत, तां त्वे संगतानि— सब अन्य देव जो स्वर्ग में उन सब व्रतोंका संबंध तुम्हारे पास पहुँचता है कोई कार्य नहीं है, जो कि मुख्य देवकी शक्ति हो। 'सर्वदेव-नमस्कारः' केशव प्रति सब देवोंको किया नमस्कार विष्णुको पहुँचता है।

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते भद्रयानि तेऽपि मामेव कौन्तेय

'अन्य देवताओंके उद्देश्यसे किया हुआ यजन होता है।' इन वचनोंके सद्यः यह (मं. ५)

१५ सुमनाः सुवीर्या यग्नि— उत्तम मन पराक्रमी वीरोंका पूजन करो। जो उत्तम पराक्रमी ही सत्कार करना चाहिये। (मं. ६)

१६ नमस्विनः स्वराजं उपासते— (पाश रखनेवाले अपने तेजसे चमकनेवाले वीर हैं। यहाँ 'नमस्-विन्' का अर्थ 'अन्न-दा' है। १७ क्षिचः अतितितृप्यः— और हिंसा करनेवाले शत्रुओंका पराजित करने। (मं. ७)

१८ प्रन्तः वृत्रं अतरन्— प्रहार करनेवाले औरसे घेरनेवाले शत्रुका पराभव किया।

१९ रोदसी क्षयाय उरु चक्रिरे— वृषी और में (मनुष्योंके) रहनेके लिये बहुत स्थान बनाया। का कार्य है। मानवोंको उचित है कि वे अपने विस्तृत स्थान बनावें। अपना निवास अतिशुद्ध होने दें। (मं. ८)

२० स्व-धा-यः रायः पूर्धि— अपनी धार (हमें) घनसे भरपूर भर दें। मनुष्य धन धनादि कमावे।

२१ देवेषु आप्यं— दिव्य विष्णुओंमें (मनुष्य मित्रता रखे। देवोंके साथ मित्रता करनेवाले मनुष्य करे। मनुष्यमें देवत्वकी देवी-पुत्रीका विना देवोंकी मित्रता होना अशुभ है।

भृत्यस्य वाजस्य राजसि- प्रशंसीय बलसे
बनो। ऐसे भ्रष्ट पराक्रम करो कि जिससे तुम्हारी
चारों ओर फैले। (मं. १२)

३ नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ- हमारी सुरक्षाके लिये उच्च
स्वयं उच्च बनकर हमारी रक्षा करो। स्वयं उच्च बनना
पश्चात् दूसरोंकी सुरक्षाका यत्न करना मनुष्यको योग्य
(मं. १३)

४ केतुना नः अहंसः निपाहि- ज्ञान देकर हमें
बचाओ। मनुष्य ज्ञानसे ही पापसे अपनी सुरक्षा कर
सकता है।

५ विश्वं अत्रिणं सं दह- सब भकोसनेवालोंका नाश
कर दो। सब रोगबीजोंको अग्निकी ज्वालासे जला दो।
रैन=खानेवाला, भकोसनेवाला, रक्त खानेवाला कृमि, रोग
व, राक्षस।

६ चरधाय जीवसे नः ऊर्ध्वान् रुधि-
उत्तम चाल चलन और दीर्घ जीवनके लिये हम सबको उत्तम
आओ। उत्तम भ्रष्ट बननेसे उत्तम आचार होगा और दीर्घ
जीवन प्राप्त होगा। (मं. १४)

७ रक्षसः अरावणः धूर्तः रिपतः जिघांसतः नः
पाहि- राक्षसों, कंजूसों, धूर्तों, घातकों और हिसकोषे हमें
बचाओ। ये पद रोगबीजोंके भी वाचक हैं। (मं. १५)

८ अरावणः विष्वक् विजहि- कंजूसोंको चारों
ओरसे दूर करो।

९ यः अस्मभ्यक् मर्त्यः अकतुभिः अति शिशीते
नः रिपुः नः मा ईशत- जो द्रोह करनेवाला हमारा शत्रु
हो तो आगता हुआ हमारे घातपातका विचार करता हो,
इसका शासन हमारे ऊपर न हो। अर्थात् ऐसे शत्रुका सर्वतो-
रि नाश हो जाय। (मं. १६)

१० सुवीर्यं वने, सौभगं (द्वाति), मिश्राणि
मायत- बड़ उत्तम पराक्रम करता है, सौभाग्य देता है और
मिश्राणी सुरक्षा करता है। (मं. १७)

इस तरह मानवधर्मका सर्व सामान्य बोध करनेवाले मनुष्य-
भाव इस सूक्तमें विशेष स्मरण रखनेयोग्य है। पंडित उच्च
परीक्षिते इत्यत्र परमे, तो उसकी वृत्ता देखतेके वर्तन कालमें जो
होनेको मानवधर्मका उद्देश्य है उसका प्राप्त करने, पण्डित, इत्यादि
को बोध हो सकता है।

ऋषियोंके नाम

इस सूक्तमें निम्नलिखित ऋषियोंके नाम आये हैं-

१ मेध्यातिथिः कण्वः (त्वां) दधे। — कण्व गोत्रके
मेध्यातिथि ऋषिने अमिकी उपासनाविधिका स्वीकार किया
है। (मं. १०)

२ मेध्यातिथिः कण्वः क्रुतात् अधि अग्नि ईधे-
कण्वगोत्रके मेध्यातिथि ऋषिने यज्ञमें अमिकी प्रदोष किया।
' तं इमाः ऋचः ' उसका वर्णन ये ऋचाएं करती हैं।
यहां इस सूक्तकी ऋचाओंका निर्देश है अथवा दूसरे मंत्रोंका
निर्देश है इसकी खोज होनेयोग्य है। (मं. ११)

३ अग्निः कण्वाय सौभगं, मेध्यातिथिं प्रावत्- अग्नि
ने कण्वको सौभाग्य दिया, मेध्यातिथिकी सुरक्षा की। (मं. १७)

यह सूक्त घोरपुत्र कण्व ऋषिका है। मेधातिथि और
मेध्यातिथि ये दोनों ऋषि कण्वगोत्रके हैं, जिनके नामोंमेंसे
मेध्यातिथिका नाम इस सूक्तमें पूर्वोक्त मंत्रोंमें आया है। इसके
अतिरिक्त धनस्पृत् (मं. १०), उपस्तुत् (मं. १०; १७),
तुर्वश, यदु, उप्रदेव, नववात्स्य, वृहद्रथ, तुर्वीति
(मं. १८) ये नाम भी आये हैं। इनमें तुर्वश आदि नाम
राजाओंके होंगे। यदु और तुर्वश वेदमंत्रोंमें बहुत बार आये
हैं। कई भाष्यकार इन पदोंको गुणबोधक मानते हैं। जैसे
(तुर्व-वश) त्वरासे शत्रुको परा करनेका, (वृहद्रथ)
बड़े रथवाला, (नव-वात्स्य) नवसे परमे करनेवाला इत्य
तरह इनके गुणबोधक अर्थ होते हैं।

रोगबीजोंका नाश करना

इस सूक्तमें कहा है कि जने रोगबीजोंका नाश करता है।

१ विश्वं अत्रिणं सं दह- सब रोगबीजोंका नाश
कर दो। ' अत्रिण् ' वह विनाशक है, कि जो अत्राये भूत
और मांसको खा जाता है और अत्रिणको दह करवा दे।
(मं. १३; २०)

२ रक्षसः पाहि- राक्षसोंके बचाओ। यहाँ रक्षस पर
शत्रु रोगबीजोंका बोधक है, ये रोग करनेवाले कृमि हैं। (मं. १५)

३ रक्षस्विनः शत्रु-मायतः सं दह- राक्षसोंके
रक्षकोंके बचाओ, जिनके शत्रुने मानव को बचाया है, उसे
ये रोगबीजोंके दह दो।

कण्वगोत्रके इस ऋषिकाके नाम कण्व गोत्रके ऋषि
हैं। इस ऋषिके कण्व गोत्रके ऋषि हैं।

| | |
|---|----|
| येषामज्मेषु पृथिवी जुजुषाँ इव विश्वपतिः । भिया यामेषु रेजते | ८ |
| स्थिरं हि जानमेपां वयो मातुर्निरेतेव । यत् सीमनु द्विता शवः | ९ |
| उदु स्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्तत । वाश्वा अभिभु यातवे | १० |
| त्यं चिद् वा दीर्यं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र व्यावयन्ति यामभिः | ११ |
| मरुतो यद् वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरौरचुच्यवीतन | १२ |
| यद् यान्ति मरुतः सं ह भुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् | १३ |
| प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो पु मादयाध्वै | १४ |
| अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेपाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे | १५ |

ये यामेषु नज्मेषु पृथिवी, जुजुषाँ इव विश्वपतिः,
रेजते ॥ ८ ॥

ये जानं स्थिरं हि, मातुः वयः निः एतवे यत् शवः
उदु ॥ ९ ॥

गिरः सूनवः अज्मेषु काष्ठाः, वाश्वाः अभि-भु यातवे,
उदु अत्तत ॥ १० ॥

त्यं चिद् वा दीर्यं पृथुं अ-मृध्रं मिहः न-पातं यामभिः
व्यावयन्ति ॥ ११ ॥

मरुतः ! यद् ह वः बलं जनान् अचुच्यवीतन,
यद् अचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

यद् ह मरुतः यान्ति अध्वन् वा सं भुवते ह, एपां कः
शृणोति ? ॥ १३ ॥

शीभः शीभं प्र यात, कण्वेषु वः दुवः सन्ति, तत्रो
मादयाध्वै ॥ १४ ॥

वः मदाय अस्ति हि स्म, विश्वं चिद् आयुः जीवसे,
वः स्मसि स्म ॥ १५ ॥

मरुत् देवोंका गण

‘मरुत्’ (मरु-ज्व) मरुतेतक उठकर लड़नेवाले बड़े
सी बोर है। ये समुद्रमंथे रहते हैं। सब मिलकर एक ही बड़े
सी बोर में रहते हैं। साथ साथ शत्रुपर हमला करते हैं, सबका
पक्ष एक जैसा रहता है, जानपन समान होता है, सबके

जिनके आक्रमणोंके अवसरपर और चढाईके समयमें यह
भूमि, दुर्बल राजाके समान, भयसे कांपने लगती है ॥ ८ ॥
इनकी जन्मभूमि स्थिर है। जैसे मातासे पक्षी दूर जानेका
यत्न करते हैं, (तो भी माताके पास उनका मन रहता है,)
उसी तरह इनका बल सदैव दोनों (मातृभूमि और विजय-
स्थानमें) विभक्तसा हो जाता है ॥ ९ ॥

उन बाणोंके पुत्र (वक्ता मरुतोंने) शत्रुपर करनेके आक्रमणोंमें
अपनी (अन्तिम) सीमाएं ही पकड़ लीं हैं, जैसा कि गौओंको
घुटनेतकके पानीमें जाना सुगम होता है, उसी तरह (वे सुग-
मतासे चारों ओर) पहुंचते हैं ॥ १० ॥

उस बड़े लंबेचौड़े, फैले हुए, विनष्ट न होनेवाले, जल श्रृष्टि न
करनेवाले भेषोंको (भी अपने) हमलोंसे (वे) हिला देते हैं ॥ ११ ॥
हे मरुतों ! जो सचमुच गुम्हारा बल लोगोंको हिला देता है,
वह पर्वतोंको भी कंपाता है ॥ १२ ॥

जिस समय सचमुच मरुत् संचार करते हैं, तब वे मार्गमें ही
मिलकर बोलते हैं, इनका शब्द (कौन दूसरा) सुनता है ?
(कोई नहीं ।) ॥ १३ ॥

तत्र गतिसे वेगपूर्वक चलो, कबोंके मध्यमें आपका सत्कार
(होनेवाला) है। वहां तुम नली भान्ति तृप्त होवो ॥ १४ ॥

गुम्हारी तृप्तिके लिये (यह हमारा अर्पण) है, सुखपूर्वक संपूर्ण
आयु बितानेके लिये हम इनके (अनुयायी होकर) रहेंगे ॥ १५ ॥

पास शक्रास्र समान रहते हैं। इनकी कतार सारोंकी मिलकर
एक होती है, प्रत्येक कतारके दोनों ओर दो बोर रहते हैं। इनकी
‘पार्श्व-रक्षक’ अर्थात् दोनों बाहुओंसे होनेवाले हमलोंसे
बचानेवाले बोर कहते हैं। इस तरह १+५+१=७ की बोरोंकी
एक कतार होती है, ऐसी इनकी ७ कतारें होती हैं। अर्थात् ७
कतारोंमें मिलकर (७x७=) ४९ दैनिक होते हैं। इसके

संख्याके अनुसार संघके नाम होते हैं—

१ शर्ध— ७वीरोंका एकी पंक्ति, २ पार्श्वरक्षक, मिलकर ९ वीर हुए। ($1+7+1=$) 9×7 कतारें=६३ वीरोंका एक शर्ध होता है। इसमें ($7 \times 7=$) ४९ सैनिक और ($7 \times २=$) १४ पार्श्वरक्षक मिलकर ६३ वीर रहते हैं। इसका नाम 'शर्ध' है।

२ वात— ($६३ \times 7=$) ४४१ सैनिकोंका एक वात कहलाता है।

३ गण— ($६३ \times १४=$) ८८२ सैनिकोंका, अथवा १४ वातोंका एक गण कहलाता है।

४ महागण— ($६३ \times ६३=$) ३९६९ सैनिकोंका महागण कहलाता है।

इस तरह वातोंके विविध अनुपातोंमें इनके अनेक छोटे मोटे सैनिक विभाग होते हैं। इससे भी 'महागणमंडल' आदि अनेक विभागोंके नाम हैं।

शस्त्रास्त्र

इनके शस्त्रास्त्र ये हैं। शृष्टि=माला, वाशी=कुल्हाड़ा, ये शस्त्र और अजि—गणवेश भी सबका समानही रहता है। अन्यत्र अन्य शस्त्रोंका भी वर्णन है। तलवार, वज्र आदि भी य वर्तते थे और लोहेके शिरस्त्राण भी ये वर्तते थे।

बल

मर्तोंका बल संघके कारण है। समूहमें रहना, समूहमें जाना, समूहमें खड़ा करना आदिके कारण जो इनका संगठन है उसका यह बल है। इस सूक्तका मंत्रवार आशय ऐसा है—

१ अपि क्षत्रियो कहता है कि मर्तोंके काव्यका गान करो क्योंकि उनका बल संघसे उत्पन्न हुआ है तथा ये आपसमें कभी लड़ते नहीं, रथोंमें बैठकर वीरताको प्रकट करते हैं। अर्थात् इनके काव्यका गान करनेसे मानवोंमें संगठनका बल बढ़ेगा, खेतोंमें खेति बढनेसे शान्ति आनन्दयुक्त बनेगी, और उधसे उत्पन्न बढेगा। इसलिये मर्तोंके काव्यका गान करना वीरताको बढानेवाला है।

२ ये वीर भाड़े, बर्चिदा, कुल्हाड़े तथा अपना अन्य पोषाख समन्वयनही धारण करते हैं और जब बाहर आते हैं, तब सबके साथ साथ प्रगट होते हैं। ये कभी लड़के नहीं रहते। स्वयं सबही रहना सद्गता सांघिक होता है।

३ ये हाथोंमें तालूक लेकर आने हैं। उस समय इनके कोडोंका शब्द दूरे है। युद्धके समय तो इनकी वीरता विकसित है।

४ वीरोंके संघका बल बढानेके लिये, वज्र लिये और प्रतापका सामर्थ्य ग्रहीत करनेके लिये काव्योंका गान करते जाओ। वीरोंके शब्द क्लेश वीरता बढ जाती है। यह है वीरोंके शब्दका महत्त्व।

५ गाँके दूध आदि गोरसमें एक बढाव संघमें रहनेसे और एक बल बढता है। पशु पानेसे बढता है और दूसरा सांघिक जानने से सब प्रकारके बलकी वृद्धि करनी चाहिये। वीरों करना चाहिये कि जिससे शक्ति नाशही हो सके।

६ ये वीर भूमि और आकाशको हिता के लिये समान होनेके कारण इनमें कोई भी छोटा या बड़ा इनमें एक भी वीर ऐसा नहीं है कि जो शत्रुके न होगा।

७ इनका हमला शत्रुपर होने लगा, तो किसीके आश्रममें जाकर रहते हैं, क्योंकि ये भी उखाड़ देते हैं। अर्थात् इनके हमलेसे शत्रु होते हैं।

८ इनके हमलोंके समय भूमि भी काँ मारियल पालकके समान सभी भयभीत होते हैं।

९ इनका जन्मस्थान सुस्थिर है, पर ये दूर दूर नके लिये दौड़ते हैं। जिस तरह पशुओं के छोटे बच्चे दूर जाते हैं तो भी अपनी मातापर उनका भय वैसाही ये वीर दूर हमलेके लिये गये तो भी उनका ध्यान रहताही है।

१० ये बड़े वक्ता हैं, ये अपने पराक्रममें प्रशंसा करते हैं। जिस तरह घुटने जितने पालोंमें गाँव दूरे तरह सर्वत्र ये वीर घूमते हैं और पराक्रम करते रहते हैं।

११ ये (वायुरूपमें) बड़े मारी मेवोंको दिये जाते हैं। वैशेही ये वीर शत्रु कितना भी प्रबल हुआ, तो उखाड़ही देते हैं।

१२ जो उनका बल शत्रुओंको हटाता है वही भी लांघता है।

जब कतारोंमें मार्गपरसे चलते हैं, तब वे छोटी आवाजसे बोलते हैं, कि इस समय सरा आदमी सुन नहीं सकता । दो वीर आप-लगे तो तीसरा सुन नहीं सकता ।

शीघ्र आगे बढ़ो, उपासकोंको आशीर्वाद दो, नपर तृप्त हो जाओ ।

स्तुति करनेके लियेही हम उनके लिये यह अर्पण

कर रहे हैं । हमें दीर्घ आयु प्राप्त हो और इस आयुमें हम इन वीरोंके ही होकर रहेंगे ।

यह है इस सूक्तका आशय । मरुतोंका काव्य वीरता बढानेवाला है । ' आशुभिः शीघ्रं प्रयात ' अथवा ' शीघ्रं प्रयात ' (Quick march) शीघ्र गतिसे या शीघ्र गतिवाले वाहनोंसे आगे बढ़ो ' अथवा 'शीघ्रतासे बढ़ो' यह सैनिकीय आदेश यहाँ है ।

(३) वीर-काव्य

(ऋ. १। ३८) कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री ।

| | |
|---|---|
| कञ्ज नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तवर्हिपः । | १ |
| क नूनं कद् वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः । क वो गावो न रण्यन्ति | २ |
| क वः सुम्ना नव्यांसि मस्तः क सुविता । कोरे विश्वानि सौभगा | ३ |
| यद् यूयं पृथिनमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् | ४ |
| मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्य गाडुप | ५ |
| मो पु णः परापरा निर्कतिर्दुर्हणा वधीत् । पदीष्ट तृणया सह | ६ |

हे कध-प्रियः वृक्त-वर्हिपः ! पिता पुत्रं न, ह नूनं दधिध्वे ? ॥ १ ॥

कः कद् अर्थम् ? दिवः गन्त, न पृथिव्याः, वः रण्यन्ति ॥ २ ॥

वः नव्यांसि सुम्ना कः सुविता कः विश्वानि ॥ ३ ॥

तरः ! यूयं यद् मर्तासः स्यातन, वः स्तोता ॥ ४ ॥

से न, वः जरिता अ-जोष्यः मा भूत्, यमस्य) उप गाड ॥ ५ ॥

दुर्हणा निर्कतिः नः नो तु वधीत्, तृणया ॥ ६ ॥

(कण्व)

अर्थ- हे स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले और आसनोपर विराजमान मरुतों ! पिता पुत्रको जैसे अपने हाथोंसे (उठाता है, उस तरह तुम हमें) कब भला उठाओगे ? ॥ १ ॥

(भला तुम) किधर (जाओगे) ? तुम्हारा उद्देश्य क्या है ? तुम भलेही गुलोकसे प्रस्थान करो, लेकिन इस भूलोकसे कभी न चले जाओ । आपकी गाँवें भला कहाँ नहीं रम्भाती हैं ? ॥ २ ॥

हे मरुत् वीरो ! तुम्हारी नवीन सुख बढानेवाली (आयो-जनाएँ) कहाँ हैं ? तुम्हारी सुविधाएँ कहां हैं ? तुम्हारे सभी सौभाग्य कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥

हे मातृभूमिके वीरो ! तुम यद्यपि मरण-धर्मशाल हो, तथापि तुम्हारा स्तोता भक्त निःसन्देह अमर होगा ॥ ४ ॥

दिरन जैसा तृणको (असेवनीय नहीं समझता), वैसा ही तुम्हारी स्तुति करनेवाला भक्त तुम्हारे लिये अम्रिय न होये, और वैसेही बड़ यमके मार्गसे भी न चला जाये (उमकी अर-नृत्यु न होने पावे) ॥ ५ ॥

पराकाष्ठाकी, हत्येके लिये कठिन दुर्हणा नो इनारा नाश न करे, तृण्यके साथही उस दुर्हणाको विनाश हो जाए ॥ ६ ॥

सत्यं त्वेषा अमरन्तो भन्वन्ति रा रुद्रियातः । मिहं कृण्वन्त्यानाम्
 वाधेय विद्युन्मिमाते वत्सं न माना सिगकि । यद्वां वृष्टिरसजि
 दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पज्जेन्योत्वाहेन । यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति
 अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सप्त पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः
 मरुता वीलुपाणिभिश्चिवा रोधस्वतीस्तु । यातेमग्निद्रयामभिः
 स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास पयाम् । सुसंस्कृता अभीशवः
 अच्छा चदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्नि मित्रं न दर्शतम्
 मिमीहि श्लोकमास्ये पज्जेन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्त्यम्
 वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमार्किणम् । अस्मे वृद्धा असजिदि

धन्वन् चित्, त्वेषाः अमरन्तः रुद्रियातः, अ-वाता
 मिहं आ कृण्वन्ति, सत्यम् ॥ ७ ॥
 यत् पृषां वृष्टिः असजि, वाधा इव, विद्युन् मिमाति,
 माता वत्सं न, सिसक्ति ॥ ८ ॥

यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति उद-वाहेन पज्जेन्येन दिवा चित्
 तमः कृण्वन्ति ॥ ९ ॥
 मरुतां स्वनात् अधः पार्थिवं विश्वं सप्त आ (अरेजत),
 मानुषाः प्र अरेजन्त ॥ १० ॥

है मरुतः ! वीलुपाणिभिः चिवाः रोधस्वतीः अनु अ-सिद्र-
 यामभिः यात ईम् ॥ ११ ॥
 पृषां वः रथाः, नेमयः, अश्वासः, अभीशवः, स्थिराः
 सुसंस्कृताः सन्तु ॥ १२ ॥

ब्रह्मणः पतिं अग्निं, दर्शतं मित्रं न, जरायै तना गिरा
 अच्छा चद ॥ १३ ॥
 आस्ये श्लोकं मिमीहि, पज्जेन्यः इव ततनः, गायत्रं
 उक्त्यं गाय ॥ १४ ॥

त्वेषं पनस्युं अर्किणं मारुतं गणं वन्दस्व, इह अस्मे वृद्धाः
 असन् ॥ १५ ॥

मर्त्य और अमर

यूयं मर्तासः स्यातन, वः स्तोता अमृतः स्यात् ।
 (मं. ४)

मरुत् स्वयं मर्त्य हैं, पर उनके पराक्रम ऐसे हैं कि उनके
 पराक्रमों के कान्योंका गायन करनेवाले अमर हो जायें। यह चतुर्थ
 मंत्रमें कहा है। ऋग्वेदोंके विषयमें भी वेदमन्त्रमें ऐसाही कहा

मह देशमें भी तेजस्वी और बलिष्ठ मरु
 अमरगामें भी वृष्टि करते हैं, वह सब है ॥ ७ ॥

जब इन (मरुतोंको सदायतासे) वृष्टि होती है
 वाली गौके समान, बिजली वगैरा शब्द कारों

वाल ह (को अपने पाय रखने)के समान (मिमीहि)
 (ये वीर) जब भूमि को भिगाते हैं, तब ब्रह्म

दिनके समयमें भी अन्धेरा किया जाता है ॥ ९ ॥

मरुतोंकी गर्जनासे नोचेवाला पृथ्वीकी चूर्ण
 लगता है और मानव भी कांप उठते हैं ॥ १० ॥

है मरुत् वीरों ! बलवाले बाहुओंके साथ
 तयोंपरसे बिना थकावट तुम गमन करते हो ॥ ११ ॥

ये तुम्हारे रथ, रथके आरे, घोड़े, लगान वनी
 शुभसंस्कारवाले हों ॥ १२ ॥

ज्ञानके पति अग्निके विषयमें, सुन्दर मित्रके ज्ञान
 करनेके लिये सतत अपनी वाणीसे (स्तुतिके वाक्य) -

मुखमें ही प्रथम श्लोकको (अमरोंके प्रमाणसे)
 उसका पज्जेन्यके समान फैलाव करो और गायत्री

काव्यका गायन करो ॥ १४ ॥

तेजस्वी, स्तुतियोग्य, पूज्य मरुतोंके दलका वन्द
 यहां हमारे वृद्ध हमारे समीप ही रहें ॥ १५ ॥

है—

मर्तासः सन्तो अमृतत्वं आनशुः ॥

(श्र. १।१।१।१)

(सायनभाष्य) एवं कर्माणि कृत्वा मर्तासो मनुष्या
 सन्तः अमृतत्वं देवत्वं आनशुः आनशिरे । कृतैः
 लेभिरे ॥

स्थिरा वः सन्वायुधा पराणुदे वीक्ष् उत प्रतिष्कभे ।
 युष्माकमस्तु तविपी पनीयसी मा मय्यस्य मायिनः २
 परा ह यत् स्थिरं ह्य नरो वर्तयथा शुन ।
 वि याथन वनिनः पृथिव्या आशाः पर्वतानाम् १
 नहि वः शत्रुर्विविदे अधि यवि न भूम्यां रिशादसः ।
 युष्माकमस्तु तविपी तना युजा रुद्रासो नू चित् तना ४
 प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
 प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वथा विशा ५
 उपो रथेषु पृथ्वीर्युग्धं प्रष्टिवहति रोहितः ।
 आ वो यामाय पृथिवी चित् भ्रोक्वोभयन्त मानुषाः ३
 आ वो मधू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
 गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्या कण्वाय विभ्युषे ७

वः आयुधा पराणुदे स्थिरा, उत प्रतिष्कभे वीक्ष् सन्तु,

युष्माकं तविपी पनीयसी अस्तु, मायिनः मय्यस्य मा ॥२॥

हे नरः ! यत् स्थिरं परा हव, शुन वर्तयथ, पृथिव्याः

वनिनः वि याथन, पर्वतानां आशाः वि (याथन) ह ॥३॥

हे रिशादसः ! अधि यवि वः शत्रु नहि विविदे, भूम्यां

न, हे रुद्रासः ! युष्माकं युजा आष्टपे तविपी नू चित् तना
 अस्तु ॥ ४ ॥

हे देवासः मरुतः ! दुर्मदा इव, पर्वतान् प्र वेपयन्ति,

वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति, सर्वथा विशा प्रो आरत ॥५॥

रथेषु पृथ्वीः उपो अयुग्धं, रोहितः प्रष्टिः वहति, वः

यामाय पृथिवी चित् आ भ्रोक्व, मानुषा अबीभयन्त ॥६॥

हे रुद्राः ! तनाय कं मधु वः अवः आ वृणीमहे,

यथा पुरा विभ्युषे कण्वाय नूनं गन्त, इत्या अवसा नः

(गन्त) ॥ ७ ॥

तुम्हारे दीगार शत्रुको रुद्रासो वि विविदे
 और (शत्रुको) पानीय करनेके लिये रखके
 तुम्हारी शक्ति परीक्षणके दो । पर कष्टी शत्रु
 न (बडे) ॥ २ ॥

हे नेता नीरों ! जब तुम सुस्थिर शत्रुको भी उड़ा
 के होते दो, बलिष्ठ शत्रुको भी दिला देते दो, पृथ्वीके
 भी नाश करते दो, तब तुम पर्वतोंके चारों ओर हो
 ही निम्न हो जाते दो ॥ ३ ॥

हे शत्रुघ्न विनाश करनेवाले वीरों ! युद्धमें मैं
 लिये शत्रु नदी है, भूमिपर भी नदी है । हे शत्रुको
 वारों ! तुम्हारे साथ रहनेसे शत्रुपर हमला करनेकी
 शीघ्रही बड़ जाय ॥ ४ ॥

हे देववीर मरुतों ! शक्तिके कारण मतवाले होनेके
 तुम्हारे वीर पर्वतोंको दिला देते हैं, वृक्षोंके उखाड़
 ऐसे शक्तिवाले तुम सब जनताको प्रगति करनेके लिये
 होओ ॥ ५ ॥

तुम अपने रथोंमें बच्चोंवाली हिरनियां जोड़ते हो और
 रंगवाला बड़ा हिरन पुराको खींचता है । तुम्हारे बने
 भूमि (पर) सुनाई देता है, (जिससे) मानव भयभीत होते

हे शत्रुघ्न कलनेवाले वीरों ! हमारे बालबच्चों
 होनेके लिये शीघ्रही तुम्हारा संरक्षण हमें मिल
 वर हम चाहते हैं । जैसे पहिले भयभीत कबू
 शीघ्र जा चुके थे, वैसेही हमारे पास अपनी रक्षा के
 साथ आओ ॥ ७ ॥

युष्मेपितो मरुतो मर्त्येपित आ यो नो अम्भ ईषते ।
 वितं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरुतिभिः
 अत्तामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
 अत्तामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः
 अत्ताम्योजो विभृथा सुदानवोऽत्तामि धूतयः शवः ।
 ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इपुं न सृजत द्विषम्

८

९

१०

हे नरुत ! तू मर्त्य-इषितः नः आ
 वे, तं शवसा वि युयोत, शवसा वि (युयोत), युष्माभिः
 निभिः वि (युयोत) ॥८॥
 हे प्रयज्यवः प्रचेतसः मरुतः ! कण्वं अत्तामि हि दद,
 निभिः ऊतिभिः, विद्युतः वृष्टिं न, नः आ गन्त ॥९॥
 सुदानवः ! अत्तामि ओजः, अत्तामि शवः, विभृथ,
) धूतयः मरुतः ! ऋषि-द्विषे परि-मन्यवे, इपुं न, द्विषं
 व ॥१०॥

हे नरुतः ! तू मरुतः ! तू मर्त्य-इषितः नः आ
 वे, तं शवसा वि युयोत, शवसा वि (युयोत), युष्माभिः
 निभिः वि (युयोत) ॥८॥

हे प्रयज्यवः प्रचेतसः मरुतः ! कण्वं अत्तामि हि दद,
 निभिः ऊतिभिः, विद्युतः वृष्टिं न, नः आ गन्त ॥९॥

सुदानवः ! अत्तामि ओजः, अत्तामि शवः, विभृथ,
) धूतयः मरुतः ! ऋषि-द्विषे परि-मन्यवे, इपुं न, द्विषं
 व ॥१०॥

हे वोर मरुतों ! जो घातपात करनेवाला इषिधार तुमने
 फेंका अथवा किसी मानवने फेंका हमपर गिरता हो, तो उसे
 अपने दलसे हटा दो, अपने सामर्थ्यसे उसे दूर करो, तुम्हारी
 संरक्षक योजनाद्वारा उसे विनष्ट करो ॥ ८ ॥

हे पूजनीय और ज्ञानी मरुतों ! कण्वको जैसा तुमने संपूर्ण
 रूपसे आश्रय दिया था, वैसेही संपूर्ण संरक्षक शक्तियोंके
 साथ, विजलियां वृष्टिके साथ जातों हैं वैसे, तुम हमारे पास
 आओ ॥ ९ ॥

हे उत्तम दाताओं ! तुम संपूर्ण बल और सामर्थ्य धारण
 करते हो । हे शत्रुको हटानेवाले वीरों ! ऋषिगोंका द्वेष करनेवाले
 कोधी शत्रुको विनष्ट करनेके लिये बाणके समान, दूसरे शत्रुको
 ही उसपर छोड़ दो ॥ १० ॥

शत्रुपर शत्रुको ही छोड़ना

'परिमन्यवे, इपुं न, द्विषं सृजत ।' (मं. १०) दुष्ट
 का नाश करनेके लिये, जैसे बाण उसपर छोड़ते हो, वैसेही
 शत्रुको उसपर छोड़ दो । अपने एक शत्रुपर अपने
 शत्रुको छोड़ना, जिससे आसक्ति लड़ते हुए दोनों शत्रु
 दूसरेके आपातवैही मर जायेंगे और उन पास ही अपना
 रूप होगा । अतः यह शत्रुका नाश करनेकी युक्ति बड़ी
 खो है ।

(धृतराजः) जैसा वयु इषोंको कंपाता है, उस तरह शत्रुको
 जैसा वोर होने चाहिये । जिसके अपने शत्रु काय उठें, वे
 मरे हैं । (मं. १, १०)

(अनुषा स्थिरा वीर) वीरोंके अनुषा सुदृढ़ और अमर्त्य-
 होते, शत्रुके अधिक सामर्थ्यवाद ही । शत्रुके अनुषाके भी
 अधिक न हो । (तस्मिन् एवमेव) उसी भी प्रतीकत्व से,
 जिसके वीर) शत्रुका प्रतीकत्व करनेका सामर्थ्य विशेषता
 होती है । पर ऐसा सामर्थ्य (मायेका भा) कभी शत्रुके
 ही नहीं न हो । अतः सामर्थ्य से शत्रु काय उठे शत्रुका

सामर्थ्य कभी न बड़े । (मं. २)

(स्थिरं परा दत्त, गुरु वर्तय) स्थिर शत्रुको उखाड़कर
 दूर फेंक देते, और बलिष्ठ शत्रुको भी हटा देते हैं वे वीर हैं ।
 (परां वीरोंका वर्तय बताय) है, परा शत्रुको सारन रखनेयोग्य
 है ।) (मं. ३)

(रिप-अदवः) शत्रुको खानेवाले वीर ही, शत्रुका संपूर्ण
 नाश करनेका सामर्थ्य बड़ा है । (पराजः) शत्रुको हलाने से वे
 वीर हैं । (आदि तथैव) तथा अस्तु) शत्रुपर इनका धरनेही
 शक्ति बहुतही बड़ी बन । वीरोंकी ऐसा करना योग्य है ।
 (मं. ४)

(सर्वथा विहाय आरत) वीर सब प्रजावर्गके साथ रहे
 और उनकी प्रजावर्गके लिये बल करने योग्य । (मं. ५)

(यः वाजान ननुषा अवीरमन्) अनेक इनकीके बलन
 मनुष्य करते हैं । अवीर वीर शत्रुपर ऐसा इनका रहे विविध ही
 देवदत्त सब लय भवनीय हो बड़ी । (मं. ६)

(यः कण्वः, न शवसा ओजसा वि युयोत) जो कण्वनाश
 करे, उसको शवसे वीर न बननेके दृष्टि से । (मं. ७)

(अ-सामि ओजः शनः च विभूय) यज्ञा गानकी ओर १३ । मन्त्र इव ओर गानकी शक्तिविशेषों की शरवीर धारण करें और सब को उन्नत कर देंगे । (मं. १५) । नारे हो दें । मन्त्र इव को गाना ।

(५) क्षात्रबलका संवर्धन

(क. १।४०) कण्ठो घोरः । ब्रह्मणस्पतिः । प्रगायः= विप्रगाय पुण्यः, समाः सतोपुण्यः ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशुर्मया सखा त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपयूते धने दिते । सुवीर्यं मरुत आ स्वश्यं वृधोत यो व प्राचके प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पक्षिराघसं देवा यज्ञं नयन्तु नः यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः । तस्मा इत्थां सुवीरामा यजामहे । प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्त्यम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चकिरे तमिद्वोचेमा विदयेषु संभुवं मन्त्रं देवा अनेदसम् । इमां च वाचं प्रतिहर्षथा नरो विश्वेद्व वामा वो अश्रवत् ।

अन्वयः— हे ब्रह्मणस्पते ! उत्तिष्ठ, देवयन्तः (यज्ञं) स्वा ईमहे । सुदानवः मरुतः उप प्र यन्तु । हे इन्द्र ! सखा प्राशुः भव ॥ १ ॥

हे सहसः पुत्र ! मर्त्यः दिते धने त्वां इव उपयूते दि । हे मरुतः ! यः वः आचके, (सः) स्वश्यं सुवीर्यं आ दधाति ॥ २ ॥

ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु । सूनृता देवी प्र एतु । देवाः नर्यं पक्षिराघसं वीरं यज्ञं नः अच्छ नयन्तु ॥ ३ ॥

यः वाघते सूनरं वसु ददाति, सः अक्षिति श्रवः धत्ते । तस्मै सुवीरां सुप्रवृत्तिं अनेदसं इत्थां आ यजामहे ॥ ४ ॥

ब्रह्मणस्पतिः उक्त्यं मन्त्रं नूनं प्र वदति, यस्मिन् (मन्त्रे) इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चकिरे ॥ ५ ॥

हे देवाः ! तं इव संभुवं अनेदसं मन्त्रं विदयेषु वोचेम । हे नरः ! इमां वाचं प्रतिहर्षथा च । विश्वा इव वामा वः अश्रवत् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे ज्ञानके स्वामिन् ! उठो । देवत्वके वाले (हम) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । उत्तम वीर साथ साथ रक्षक (कर्तारमें) यज्ञ आ जावे । सयके साथ रक्षक इस सोमरसका पान कर ॥ १ ॥ हे यज्ञके लिये उत्पन्न होनेवाले वीर ! मनुष्य जनेपर तुम्हें ही सहायतार्थ बुलाता है । हे मरुतों ! गुण गाता है, (वह) उत्तम घोड़ोंसे युक्त और वृद्ध वाला धन पाता है ॥ २ ॥

ज्ञानी (ब्रह्मणस्पति) हमारे पास आ जावे । भी आवे । सब देव मनुष्योंके लिये दितकारी, पक्षियों योत्रय, उत्तम यज्ञ करनेवाले वीरको हमारे पास ले जाओ यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है, वह अन्न करता है । उसके हितार्थ हम उत्तम वीरोंसे पुण्य, हनन करनेवाली, अपराजित मातृभूमि (इन्द्र) प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मणस्पति पवित्र मंत्रका अवश्य ही उच्चारण कर जिस (मंत्र) में इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा देवोंने घर बनाये हैं ॥ ५ ॥

हे देवों ! उस सुखदायी अविनाशी मंत्रको हम बोलते हैं । हे नेता लोगों ! इस (मंत्ररूप) वाचके प्रशंसा करोगे, तो सभी सुख तुम्हें मिलेंगे ॥ ६ ॥

देवयन्तमश्ववज्जनं को वृक्तवर्हिषम् । प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थिताऽन्तर्वावत् क्षयं दधे ७
 उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित् सुक्षितिं दधे ।
 नास्य वर्ता न तरुता महाधने नाभे अस्ति वज्रिणः ८

वयन्तं जनं कः अश्ववत् ? वृक्तवर्हिषं कः (अश्ववत्) ?

नू पस्त्याभिः प्रप्र अस्थित । अन्तर्वावत् क्षयं

॥ ७ ॥

ब्रह्मणस्पतिः) क्षत्रं उप पृञ्चीत । राजभिः (शत्रून्)

। भये चित् सुक्षितिं दधे । वज्रिणः अस्य महाधने न

अस्ति, न तरुता, न अभे (अपि अस्ति) ॥ ८ ॥

देवत्वकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके पास (ब्रह्मणस्पतिको छोड़कर) कौन भला दूसरा आवेगा ? आसन फैलानेवाले उपासकके पास कौन (दूसरा आवेगा) ? दाता अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है । संतानोंवाले घरका आश्रय करते हैं ॥ ७ ॥

(ब्रह्मणस्पति) क्षात्रबलको संचय करता है । इस वज्र-धारीके साथ होनेवाले बड़े युद्धमें (कोई भी) इसका निवारण करनेवाला, पराजय करनेवाला नहीं है । और छोटे युद्धमें भी कोई नहीं है ॥ ८ ॥

क्षात्रधर्म

सूक्तका मुख्य उपदेश यह है कि (क्षत्रं उप पृञ्चीत) प्रकृतिको संगठित करो, उसे संप्रहित करके बढ़ाओ, क्षात्र-धर्म संवर्धन करो । यह क्षात्रशाक्ति इतनी बड़े कि जिससे

स्य वज्रिणः महाधने अभे [वा] वर्ता तरुता स्ति) इस शूर वीरके साथ होनेवाले बड़े अथवा छोटे में इसको परास्त करनेवाले कोई न रहे । यह है क्षात्र-वीर पराकाष्ठा । यह वीर अपने (राजभिः शत्रून् हन्ति) लिकोंको साथ लेकर शत्रुओंपर हमला करता है, और विनष्ट कर देता है । सबको काट देता है । (मं. ८) ये

(सहस्रः पुत्रः) बलके कार्यके लियेही उत्पन्न हुए हैं । बलसे होनेवाला हरएक कार्य ये आनंदसे करते हैं । स्य धने हिते तं इत् उपपृते) मनुष्य युद्ध छिड़ने पर उस वीरको ही अपनी सहायतार्थ गुलाते हैं । उसकी प्रभाव प्रभाव अन्य मनुष्योंपर रहता है । (सः स्य सुवीर्यं आदधीत) वह अपने पास उत्तम घोड़े हैं और वह वीर्यवान् पराक्रम करनेवाला शूर वीर भी है । (मं. २)

स शूरव्य उद्देश्य यही होता है कि वह (नर्य=नरेभ्यः हितं) मानवोंका हित करनेके लिये तत्पर रहे, (वीरं वीरयति) शत्रुओंको अपनी वीरतासे शूर करे, (यशं) यश्वन न करे बराने, भेदोंका संस्कार करे, मध्यमोद्यम संगठन करे और हीनदीन हों उनकी सहायता करे । यही धर्म बत करता

है । ऐसा पवित्र कार्य करनेसे वह (पांक्ति-राधसं) पंक्तिी सम्यक् सिद्धि करे, इसके आगमनसे पंक्तिी शोभा बड़े । पांक्तिका यश बढ़ानेवाला यह हो । ऐसा वीर पुत्र ईश्वरकी कृपासे हमें मिले, यही सबकी इच्छा रहनी चाहिये । (मं. २)

इसी वीरके लिये (सुवीरां सुप्रवृत्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे । मं. ४) सुवीर प्रसवनेवाली, शत्रुओंका नाश करनेवाली, कभी पराजित न हुई जो अन्नदात्री (मातृभूमि है, उसकी) हम प्रार्थना करते हैं । मातृभूमिके लिये हम अपने सर्व-स्वका यज्ञ करते हैं ।

‘इळा’ के अर्थ ‘वाणी, गौ, भूमि, अन्न’ आदि अनेक हैं ।

ज्ञानी राष्ट्रमें वीरताका क्षात्रतेज बढ़ानेका कार्य करे । वही ‘ब्रह्मणः-पति’ है । ज्ञानका पति, ज्ञानका स्वामी, ज्ञानका देव, ज्ञानीही है । (ब्रह्मणस्पते उत्तिष्ठ । मं. १) दे ज्ञानी उठो और राष्ट्रमें क्षात्रशक्तिको जगाओ । जो देवत्वका भाव अपने अन्दर बढ़ानेके इच्छुक हैं, उनकी संगठना की जाय । उत्तम दान अर्थात् आत्मसमर्पण करनेवाले वीर (उत्तम वन्दु) धर्मपर आकर प्रगति करनेके लिये आगे बढ़ें । वही वीरता बढ़ानेवाला महामंत्र है ।

(ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु । मं. ३) ज्ञानी राष्ट्रकी प्रगति करे । (एतुता देवो प्र एतु) स्वर्ग-की प्रगति हो । स्वर्ग-लोकां उल्लस्य करके अपने स्वदेशपर करने रहे ।

स्वर्ग पराजयके लिये मानवधर्म सेट हो सकता है ।

(यः वसु ददाति सः अक्षिति श्रव यत्ते । मं. ४) विनाशसे वचनेवाला रहता है, इसलिये जो धनका दान करता है वह अक्षय यश कमाता है । राष्ट्रके उत्थानमें इस दानका महत्त्व अत्यधिक है ।

(ब्रह्मणस्पतिः मंत्रं वदति । मं. ५) यह ज्ञानी एक गुप्त मंत्र बोलता है, वह मंत्र (शंभुवं अनेहसं मंत्रं विद्ध्येषु वोचेम । मं. ६) सबका कल्याण करनेवाला, पराभव और

इस तरह राष्ट्रमें ज्ञानी क्षात्रवृत्तिको क्षत्रिय वीर उन्नत हों । इसीसे राष्ट्रका उत्थान इस सूक्तके एक एक पदका विशेष मनन से उत्तम सूक्त है ।

(६) शत्रुका निवारण

(ऋ. १।४१) वरुणो घौरः । वरुणमित्रार्यमणः, ४-६ आदित्याः । गायत्री ।

ये रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित् स दभ्यते जनः १
ये वायुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिपः । अरिष्टः सर्व एधते २
मि तुमां वि द्विपः पुरो झान्ति राजान एषाम् । नयन्ति दुरिता तिरः ३
गुणः पन्था अनुशर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वा ४
ये यत्नं नपथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशात् ५
स त्वं मर्त्यो वसु धिथ्यं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ६

वरुणो घौरः । वरुणः मित्रः अर्यमा (देवाः)

ये वायुतेव, ये वायु नू चित् दभ्यते ? ॥ १ ॥

ये वायुतेव इति मित्रवि, (वे) मर्त्यं रिपः

ये वायुतेव, ये वायु अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥

मि तुमां वि द्विपः पुरो झान्ति, द्विपः

ये वायुतेव, ये वायु अरिष्टः सर्व एधते ॥ ३ ॥

गुणः पन्था अनुशर, गुणः अनुशरः । नयन्ति

ये वायुतेव, ये वायु अरिष्टः सर्व एधते ॥ ४ ॥

ये यत्नं नपथा नर, ये यत्नं नपथा नर । प्र वः स धीतये नशात्

ये वायुतेव, ये वायु अरिष्टः सर्व एधते ॥ ५ ॥

स त्वं मर्त्यो वसु धिथ्यं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः

ये वायुतेव, ये वायु अरिष्टः सर्व एधते ॥ ६ ॥

अर्थ— उत्तम ज्ञानी वरुण, मित्र, अर्यमा

गुरक्षा करते हैं, उस मानवको घौर भला

है ? ॥ १ ॥

(ये देव) जिसका अपने वायुबलसे

पोषण करते हैं और (जिस) मानवको

बचाते हैं, (वह) सब प्रकारसे अशुभित शीघ्र

है ॥ २ ॥

राजा (के समान ये देव) शत्रुओंके नशे

नाश करते हैं, इस करनेवालोंका भी नाश अपने

परे पदुनते हैं ॥ ३ ॥

दे अशुभित पुत्री ! त्वय मागंये नयन्ति

गुणम और कष्टकरिण होता है । इनके

होना आच कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

देनता, अशुभित पुत्री ! जिस वरुण

पूजान से, वह (वरु) मागंये नयन्ति

होता है ॥ ५ ॥

है अनुशर मित्र न होता हुआ एक बार

है, नयन्ति करता है, और मागंये नयन्ति

है, नयन्ति ॥ ६ ॥

कथा राधाम तत्रायः स्तोमं निव्रत्यार्यग्नः । महि प्सरो वरुणस्य
माधो धन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुत्तरिद् व आ विवासे
चतुरदिचद् ददमानाद् विभीयादा निधातोः । न दुष्काय स्पृहयेत्

७
८
९

यः ! निव्रत्य तर्पणः वरुणस्य महि प्सरः स्तोमं
मानं ? ॥ ७ ॥

तं धन्तं वः ना प्रति वोचे, शपन्तं ना (प्रति
मुनैः इत् वः ना विवासे ॥ ८ ॥

य न स्पृहयेत् । चतुरः ददमानात् ना निधातोः
॥ ९ ॥

हे मित्रो ! निव्र, अर्चना और वरुणके महत्त्वके अनुस्य
स्तोत्र हम किस तरह सिद्ध करेंगे ? ॥ ७ ॥

देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकता जो नाश करता है, आपसे (हम
कहते हैं कि) उससे हमारा भाग्य भी न होवे, (उन्नी
तरह) गाली देनेवालेके साथ भी (न भाग्य होवे) । शुभ
संकल्पोंके द्वाराही आपको हम वृत्त करेंगे ॥ ८ ॥

दुष्ट भाग्य करनेकी इच्छा कोई न करे । चारों-पुत्रपार्थिवोंका
जो धारण करता है, उससे विरोध करनेवालेसे मनुष्य उरे ॥ ९ ॥

शत्रुका निवारण

निवारण करना चाहिये । शत्रुके निवारण करनेका
धन ' ज्ञान और विज्ञान ' है इसलिये कहा है, कि
ततः यं रक्षन्ति, स जनः न दभ्यते । नं. १)
ग विषकी सुरक्षा करते हैं, वह मनुष्य दबाया नहीं
जाता । जिसके पीछे ज्ञानकी शक्ति है, वह मनुष्य पराधीन
नहीं । यह ज्ञानका महत्त्व है । यहाँ कहा है कि केवल
सुख नहीं है, परंतु ज्ञानपूर्वक ज्ञानविज्ञानद्वारा
सुरक्षा सुख है ।

चेतसः यं पिप्रति, रियः पान्ति, सः वारिष्टः
नं. २) ज्ञानी जिसकी पालना करते हैं, ज्ञानी
विशेषक शत्रुओंसे बचाते हैं, वह विनाशके प्राप्त नहीं
होताही नहीं, अपि तु वह बटला जाता है । पूर्व मंत्रके
ततः ' (ज्ञानी) यह पद इस मंत्रमें तथा अगले
वेना योग्य है । ज्ञानी जिसकी पोषणा करते हैं और
हिंस्रकेसे सुरक्षित रखते हैं, वह न केवल विनष्ट
नहीं, परंतु वह वृद्धिगत होता है । ज्ञानीकी सहायतासे
नहीं है ।

पचेतसः राजानः एषां (शत्रूणां) पुरः दुर्गा
न्ते, (एषां) द्विषः विजन्ति, दुरिता तिरः नयन्ति
() ज्ञानी क्षत्रिय वीर राजपुत्र इनके शत्रुओंके नगरों
केलोंके तोड़ देते हैं, इनके विदेशक वैरलोचन नाश
हैं और इनके पानेसे बचाकर दूर पड़ुका देते हैं ।

३ (क्व)

इस तरह सब प्रकारसे ज्ञानियोंकी सहायता लाभकारी होती
है । यहाँ शत्रुके किलों दुर्गों और नगरियोंका नाश करके
शत्रुसे बचानेका कार्य विज्ञानियोंको करना चाहिये, ऐसा स्पष्ट
सूचित किया है । द्वेषियों और पापोंको सदाके लिये दूर करना
चाहिये ।

(कृतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः च । नं. ४)
सब मार्गसे जानेवालेके लिये इस विधमें सुगम और कष्टक-
रहित मार्ग मिलता है । एक बार सब मार्गसे जानिका निश्चय
करना चाहिये । यह हो जाय तो अनेक मार्ग सरल है ।
(अत्र अवखादः नास्ति । नं. ४) इसके लिये अवश्य
निय भोजन कभी नहीं मिलेगा । सदा उत्तमोत्तम भोजनही
इसकी मिलतः रहेगा । क्योंकि जो सन्मार्गसे जाता है, उसका
विनाश कभी नहीं होगा । यह दशतिके लिये ही अगले
मंत्रमें कहा है कि (यं क्रजुना पथा नयथ, सः (कथं)
प्र नशत् । नं. ५) जिसकी सरल मार्गसे चलाया जाता है
वह (कैसे) विनष्ट होगा ! अर्थात् उच्च विनाश कभी
नहीं होगा । (सः अस्तुतः विश्वं वसु त्मना लोकं च
गच्छति । नं. ६) वह कभी विनष्ट नहीं होता, वह सब
धन प्राप्त करता है और उत्तम औरच संतान भी प्राप्त
करता है ।

सुरक्षाका पथ

सर्वोच्च सुरक्षाका जो मार्ग कहा है, उसका योग्यता स्पष्ट है ।
वह ऐसा है—

(देवयन्तं घ्नन्तं मा प्रतिघोचे । मं. ८) देवत्व की पापिता अनुष्ठान करनेवाले का जो नाश करता है वैसे दुष्ट के शाप बोलना भी नहीं चाहिये । उसके पहचाने पर भी उसके शाप बोलना नहीं चाहिये । साथ ऐसे दुष्टों को ई व्यवहार कभी करना नहीं चाहिये, इतनाही नहीं, परन्तु यह आकर बोलने लगे तो उत्तरतक नहीं देना चाहिये । उसपर संपूर्ण बहिष्कार डालना चाहिये । (शपन्तं मा प्रतिघोचे । मं. ८) शाप मालीगलीन देनेवाले से भी बोलना नहीं चाहिये । तथा (सु-सैः आ विवासे । मं. ८) उत्तम मनके शुभ संकल्पोंसे ही ईश्वर की सेवा करने रहना चाहिये । दूसरोंने माली दी तो उसका जवाब मालीसे नहीं देना चाहिये । यह एक आचारका उत्तम नियम है । इसी तरह (दुष्कृताय न स्पृहयेत् । मं. ९) दुष्ट भाषण करनेवाले को अपने सम्मुख उपस्थित भी नहीं होने देना चाहिये । बुरा भाषण करनेवाले को अपने सम्मुख नहीं चाहना चाहिये । (चतुरः करैः ।

द्विमानात् आ निधातोः निर्माणात् पुत्राये करने का सामर्थ्य धारण करनेवाले है, इसमें करना चाहिये, क्योंकि यह इतना ही पता नहीं है । इसलिये इसके संकल्प आचार का यह पद है ।

इस तरहके जो मुनीय हैं, उनके (सामर्थ्य) कथा राधाः । मं. ७) बड़े बल का होने और केशा मां ! क्योंकि वही कार्य करीर (चतुरः=चरितः) प्रेष्ठ वीर, (मित्रः) करनेवाला वीर, (अर्थमा) प्रेष्ठ वीर है इसनाला, ये (देवाः) देववीर हैं । ये (प्रचेतस) गेही सबकी गुरक्षा करते हैं । मानवोंको उचित इन मुनीयों की धारणा करें और अपनेमें देवत्व करें ।

(७) बटमारका नाश

(क. १।४२) कण्वो घोरः । पूषाः । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुः
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि
अप त्वं परिपन्थिनं सुपीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि चतुरेज
त्वं तस्य द्रयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम्
आ तत् ते दक्ष मन्तुमः पूषन्नघो वृणीमहे । येन पितृनचोदयः

अन्वयः— हे विमुचो नपात् पूषन् ! (अस्मान्) अध्वनः सं तिर । अंहः वि (तिर) । हे देव ! नः पुरः प्र सक्ष्वा ॥ १ ॥
हे पूषन् ! यः अधः वृकः दुःशेवः नः आदिदेशति, तं पथः अप जहि स्म ॥ २ ॥
त्वं परिपन्थिनं सुपीवाणं हुरश्चितं सुतेः दूरं अधि अप अज ॥ ३ ॥
त्वं कस्य चित् तस्य द्रयाविनः अघशंसस्य तपुषि पदा अभि तिष्ठ ॥ ४ ॥
हे मन्तुमः दक्ष पूषन् ! ते तत् अवः आ वृणीमहे, येन पितृन् अचोदयः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे मुक्त करनेवाले पूषा ! (मं) पहुंचा दो । (हमें) पापके परे (का) आगे बढाओ ॥ १ ॥
हे पूषा ! जो कोई पापी, क्रूर और सेवाके लोभ आदेश करता हो, उसको मार्गसे दूर करो ॥ २ ॥
उस बटमार चोर कपटीको मार्गसे दूर करो ॥ ३ ॥
तू किसी भी उस दुर्गं पापीके शरीरपर अपने प्रकोप खडा रह ॥ ४ ॥
हे शत्रुका दमन करनेवाले ज्ञानी पूषा ! रक्षा-सामर्थ्य हम चाहते हैं कि जिससे तुमने पितृको दिया था ॥ ५ ॥

| | |
|--|----|
| अथा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुपणा कृधि | ६ |
| आते नः सञ्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषञ्जिह कर्तुं विदः | ७ |
| अभि स्यवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषञ्जिह कर्तुं विदः | ८ |
| शग्धि पूधि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषञ्जिह कर्तुं विदः | ९ |
| न पूषणं मेधामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि वसूनीमहे | १० |

विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम ! अथ नः धनानि
कृधि ॥ ६ ॥

अतः नः अति नय, नः सुगा सुपथा कृणु । हे पूषन् !
तुं विदः ॥ ७ ॥

पून् ! सुपवसं (नः) अभि नय । अध्वने नवज्वारः
वतु) । हे पूषन् ॥ ८ ॥

एन । शग्धि, पूधि, प्र यंसि, शिशीहि । उदरं
॥ ९ ॥

एन न मेधामसि । सूक्तैः अभि गृणीमसि ! दसम्
इमहे ॥ १० ॥

हे विश्वने यौमान्यपुक्कन और सुवर्गके अर्ककारोंसे पुक्कन ।
अब हमें धनोंको और उत्तम बातोंसे (अर्ग) करो ॥ ६ ॥
आधा करनेवाले दुष्टोंसे हमें पर ले लो । हमें उगम
उत्तम मार्गसे ले चलो । हे पूषन् ! तुम्हें बढ़ाके कर्तव्यका ज्ञान
है ॥ ७ ॥

हे पूषन् ! उत्तम जीवले देशमें (हमें) ले चलो । मार्ग-
में नवीन संसार न (होने पावे) । हे पूषन् ! तुम्हें वृद्धि
कर्तव्यका पता है ॥ ८ ॥

हे पूषन् ! हमें सामर्थ्यवान् इमान्से, (हमें धनधान्यसे)
संभल करो, (हमें) संरक्षेताव् करो, (हमें) तेजस्वी
करो, (हमारे) पेटको भर दो । हे पूषन् ! तुम्हें वृद्धि
कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ९ ॥

हम दूसरों भुक्त नहीं सकते । सूक्तोंसे उनको तृप्ति करते
हैं । दसवीं प्रतीति । हम चाहते हैं ॥ १० ॥

वेदकी आज्ञाएँ

१. सूक्तमें अनेक 'आज्ञाएँ' हैं । यद्यपि 'पूषा' देवताके
पक्षे ही ये प्रार्थनाएँ हैं, तथापि मानवोंका सर्वसामान्य धर्म
लेके लिये और मानवोंको विशेष आदेश देनेके लिये भी
प्रार्थनाओंका उपयोग आदेशोंके समान किया जा सकता
बढ़ी नयी बात यहाँ बताती है । ऐसी स्थितिमें 'पूषा'
अर्थ 'अपना पोषण करनेवाला' होगा । देखिये, इस
नाओंका रूपान्तर मानवधर्मकी आज्ञाओंमें किस तरह हो
ला दे—

१ पूषन् = जो पुष्टि चाहता है, पुष्टि करता है ।

२ विमुच्यन्-पात् = विमुक्त होनेकी आयेजानसे न
निवाला । अपने मुक्तकी, बंधननिवृत्तिकी आयेजानसे दत्त-
न करनेवाला ।

३ अप्यनः सं तिर- इस मार्गसे तैरकर परे पहुँच जा :
। तैर सके पर हो जा । अपने पक्षसे दुश्मन परे हो जा ।
पक्ष पर कर । अपना उधाँवका मार्ग निश्चिन्त कर ।

४ अंष्टः वि तिर- सन्निविष्ट हो तैरकर पाय हो जा ।
पायने शुरू हो । सन्निविष्ट होनेकी आज्ञा ।

५ पुरः प्र सख्य- अपने पक्ष, अपने पक्ष (१)

६ यः अधः पुक्तः दुःशेषः अविद्विषति न यः
अप जहि— जो नदी हूँ मैं के समान दुःख-सह्य हूँ,
उसके समान हूँ मैं, उ-के समान हूँ मैं, दुःखी हूँ मैं
रेहनेममें अधः= अ-पुक्तः= अ-पुक्त, अ-पुक्त, अ-पुक्त
दुःशेषः= अ-शेष होने के लिये । न. २

७ परिपन्थिने सु गीयामं दुःखिं धृतिः दुःखं नयि
अप जज्ज— बन्धन से मुक्त होकर अपने मार्गसे दुःख
विनष्ट करो । परिपन्थिनी— अ-पुक्त, अ-पुक्त, अ-पुक्त
सु गीयामः= सु गीयामः= सु गीयामः, सु गीयामः
जुलूस करती लोचनें बंधन से मुक्त होकर अपने मार्गसे
अप करके न. ३ धृतिः = न. ३ । न. ३

८ इत्यपि नः अवरोसस्य नपुंषि नः अभि निष्ट-
दुष्टि पर करके न. ४ करने पर करके न. ४ । (न. ४)

९ पितृन् अचोदय— रक्षकों को (गतकर्ममें) भरित करो।
पिता = जनक, उत्पन्नक, संरक्षक। (मं. ५)

१० धनानि सुपथा कृषि— धनों को धन करनेयोग्य
करो। सुपथाधन सबको सुवसे प्राप्त करें। (मं. ६)

११ सद्यतः अति नय— धापा करनेवाले दुर्गों को दूर
हटा दो। (मं. ७)

१२ सुगा सुपथा कृणु— सुवसे जानेयोग्य उत्तम मार्ग
तैयार करो।

१३ इह कर्तुं विद्— यहांके कर्तव्यको जानो। (मं. ७)

१४ सुयवसे नय— उत्तम धान्यवाले प्रदेशोंके प्रति ले
जा। जो भूमि उपजाऊ नहीं है, वहां न जा। (मं. ८)

१५ अध्वने नवज्वारः न भवतु— मार्गमें नया ज्वर,
नया कष्ट, नया संताप न हो। (मं. ८)

१६ शग्धि, पूर्धि, प्र यंसि, शिशीहि, उदरं प्राप्ति-
समर्थ बनो, पूर्ण करो (अधूरा न छोड़ो), संपन्न बनो, तेजस्वी
बनो, उदर भर दो। शक् = समर्थ बनना, शक्तिका संपादन
करना; पृ = भरपूर भरना, समाधान प्राप्त करना, परिपूर्ण

होना: प्र-यम् = देना, भोग्य करना, स्थापना
करना, गन्तव्य पारा को तीरा करना,
प्रस्थापित करना। (मं. ९)

१७ पूर्णं न मेधामसि = योग्यपूर्ण
(मं. १०)

इस तरह मूल प्राप्ति-वाच्योंके दो कर्म
बनने हैं। 'इह पिता' इमें जन दो' इमें पुत्र
करता है और भव मांगता है। पर इधोंने 'अ-
ज्ञान करो' यह अज्ञानको आज्ञा भी है। तथा
अस्मान् सुपथा राये नय) इमें उत्तम
पथ ले जाओ, इसमें प्रभुको प्राप्ति भी है, एवं
राये नय) धन प्राप्त करनेके लिये उत्तम न
कभी बुरे मार्गसे न जाओ; यह आदेश भी
जनताके लिये है। इस तरह प्रार्थना होते हुए भी
टुकड़े अनेक प्रकारसे मनुष्यको धर्मका उद्देश्य
पाठक इसका अधिक मनन करें और इस तरह
बोध जानें।

(८) जलचिकित्सक

(क. १।४३) कण्वो घोरः। रुद्रः, ३ रुद्रः मित्रावरुणौ च, ७-९ सोमः। गायत्री, ९ ब्रह्मपु।

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे
यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम्
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा चिन्धे सजोपसः
गाथपतिं मेघपतिं रुद्रं जलापभेपजम् । तच्छंभोः सुन्नमीमहे

अन्वयः— प्रचेतसे मीळुष्टमाय तव्यसे रुद्राय हृदे
कद् शंतमं वोचेम ? ॥१॥

अदितिः नः रुद्रियं यथा करत्, यथा पश्वे नृभ्यः गवे,
यथा तोकाय (करत्) ॥२॥

मित्रः वरुणः नः यथा चिकेतति, रुद्रः यथा चिकेतति,
सजोपसः चिन्धे (देवाः चिकेतन्ति) ॥३॥

गाथपतिं मेघपतिं जलापभेपजं रुद्रं शंभोः तत् सुन्नं
इमहे ॥४॥

अर्थ— विशेष ज्ञानी, अलंत सुखदायी महान्
हृदयसे क्व (हम) शान्तिपाठकके स्तोत्र बोलें !
अदिति हमारे लिये (रोग दूर करनेका चिकित्सक)
जैसा करे, वैसाही पशु, मानव, गाय और बालकके
करे ॥ २ ॥

मित्र और वरुण हमारे लिये (हित करना) ईश्वर
है, रुद्र जैसा जानता है, (वैसाही) सब जानते हैं ॥ ३ ॥

गाथाओंके स्वामी, यज्ञोंके प्रभु जलचिकित्सक रुद्र
(हम) शान्ति (की प्राप्ति और अनिष्टको दूर)
मिलनेवाला) वह सुख हम प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

| | | |
|--|-------------------------|---|
| यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते | । श्रेष्ठो देवानां वसुः | ५ |
| शं नः करत्यर्वते सुगं मेपाय मेष्ये | । नृभ्यो नारिभ्यो गवे | ६ |
| अस्मे सोम श्रियमाधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । | महि श्रवस्तुविनृम्णम् | ७ |
| मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त | । आ न इन्दो वाजे भज | ८ |
| यास्ते प्रजा अमृतस्य परसिन् धामन्तृतस्य । | | |
| मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः | | ९ |

शुक्रः इव सूर्यः, हिरण्यं इव रोचते, (सः) देवानां वसुः ॥५॥

शर्वते मेपाय मेन्ये नृभ्यः नारिभ्यः गवे सुगं शं ॥६॥

सोम ! नृणां शतस्य महि तुविनृम्णं भवः श्रियं अस्मे, नि धेहि ॥७॥

मपरिबाधः नः मा जुहुरन्त, मारातयः मा । हे इन्दो ! मा भज ॥८॥

सोम ! परसिन् धामन् क्रतस्य अमृतस्य ते याः ॥
मूर्धा नाभा सोम वेनः वेद ॥९॥

जो सामर्थ्यवान् होनेसे सूर्यके समान तथा सुवर्णके समान प्रकाशता है, (वह) देवोंमें वैभववान् है ॥ ५ ॥

हमारे घोड़े, मेढे, मेडी, प्ररुषों, नारियों और गौके लिये वह (रुद्र देव) सुख प्रदान करता है ॥ ६ ॥

हे सोम ! (हमें) सैकड़ों मानकोंके लिये पर्याप्त होनेवाला महान् तेजस्वी अन्न (बल या धन) देदो ॥ ७ ॥

सोममें विघ्न करनेवाले शत्रु हमारा घातपात न करें । दुष्ट कंजूस भी (हमें) न (सतावे) । हे सोम ! हमारा बल बड़ाओ ॥ ८ ॥

हे सोम ! श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले, सत्य और अमृतसे युक्त, ऐसे तेरी पूजा करनेवाली यह प्रजा उच्च स्थानमें अपनेही घरमें विराजे ॥ ९ ॥

वैद्यके लक्षण

रुद्र देवताके अनेक रूप हैं, जो रुद्रसूक्तमें वर्णन किये गये हैं 'वैद्य' भी एक रूप है जिसका वर्णन इस सूक्तमें रुद्र नाम प्रभुका है और प्रभु विश्वरूप है और उस विश्व-वैद्य भी एक है । यहाँका वैद्य, (जलाप-भेषजः) जल-वैद्य है । जलं= जल, उदक, पानी; अपः= सेवन करना, पीना; भेषजः= जलके प्रयोग करनेद्वारा वैद्य रोगोंको दूर करता है, वह (जलाप-भेषजः) जलचिकित्सा वैद्य है । इसका वर्णन यहाँ है । इसका और वर्णन यहाँ—

१ प्रचेताः— विशेष ज्ञानी, प्रबुद्ध, ज्ञानविज्ञानवान्,
२ मीलहुष्टमः— अत्यंत सुख देनेवाला, रोग दूर करके सुख दानेवाला,

३ तप्यस्— बल बढ़ानेवाला, आयु बढ़ानेवाला, शक्ति देनेवाला, रोग दूर करके सामर्थ्यशी बूढ़ी करनेवाला,

४ रुद्रः (रुद्र-रः)— रोगके कारणका नाश करनेवाला, रोग दूर करनेवाला । (मं. १)

६ अदितिः (अदनात् अदितिः)— खानपानका प्रबंध करनेवाली रुग्णपरिचारिका । खाने, पीने, दवा देने आदिका प्रबंध करनेवाली देवमाता ऐती देवी ।

७ अदितिः रुद्रियं करतु— खानपान यथायोग्य रीतिसे यथासमय करनेवाली जो होती है, वही रोग दूर करनेका औषध सचनुच करती है । क्योंकि पथ्यकी सुस्थवस्थासे ही रोग दूर होते हैं । (मं. २)

८ मनुष्य, पशु, गायें, बालक ये इन सबके लिये यह खानपानका पथ्य आवश्यक है । (मं. २)

९ मित्र (सूर्य), वह्म (जलदेव), रुद्र तथा सव अन्य देव रोग दूर करते हैं । सूर्यकिरणोंने, औषधिके रसोंसे, जलसे, विद्युत्से, इस तरह सब अन्य देवोंके सामर्थ्यसे रोग दूर होते हैं । मानवी जीवन सुखमय करना यह सब इन देवोंके सामर्थ्यपरही पूर्णतया अवलंबित है । (मं. ३)

१० गाधपतिः— वैद्य गाधाओंको खाने, पूर्वकालके लोगोंके अनुभव गाधानोंके लिये रहते हैं । उनको जानना चाहिये । (मं. ४)

११ मेघपतिः— (मिथ्-मेघ्-संगमने) औषधियोंके परस्पर मेलमिलाप, अनेक औषधियोंका मिश्रण करनेका नाम 'मेघ' है। किन् औषधियोंका मेल करनेसे क्या लाभ होते हैं, वह जाननेवाला वैद्य चादिये। इसीका नाम 'संगति-करण' है, जो यज्ञका विषय है।

१२ जलाप-भेयजः = जलचिकित्सक।

१३ शंभ्योः सुम्नं = शान्ति देनेवाले, रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम 'शं' है और रोग बीज तथा अनिष्ट भवको दूर करनेका नाम 'सु' है। इसीसे 'सु-मनः' (सु-म्नं) मुख होता है। प्रसन्न मन होता है। वैद्यका यज्ञ करनेवाला है। (मं. ४)

१४ सूर्यः शुक्लः— सूर्य शीतल होता है।

१५ शिरस्य रोचते = शिरसि तेजस्विता पड़नेवाला है।

१६ हेमनां रम्यः— देखाओमें जो मूल मत्स्य हैं, ये रम्य नदियोंका नाम देखाते हैं। (मं. ५)

१७ अग्नेः शिरसि, अग्नेः शिरसि, अग्नेः शिरसि, अग्नेः शिरसि (के शिरसि अग्नेः शिरसि) अग्नेः शिरसि (के शिरसि अग्नेः शिरसि) (मं. २:६)

१८ अग्नेः शिरसि (के शिरसि अग्नेः शिरसि) अग्नेः शिरसि (के शिरसि अग्नेः शिरसि) (मं. २:६)

नेवाला अन्न देती हैं। यहाँ वनस्पतियोंके

(हे सोम ! तुवि-नृमणं श्रवः अस्मे ति के

तू विशेष सामर्थ्य बढानेवाला अन्न हमें दे।

तिसे उत्पन्न ही है। तुवि-नृ-मनः (नं) अ

में उत्पन्न करनेवाला (श्रवः) अन्न, वा 'श्रवः' श्र

सिक सामर्थ्यका वाचक है। तिसका मन बढ़ने

भी समर्थ होता है। (मं. ७)

१९ सोम-परिवाधः— सोमादि वनस्प

वाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं वे अन्नको के

जुहुरन्त) हमें प्रतिबंध न करें अपितु वनस्प

प्रमाणमें मिलती रहें। (अ-रातयः मा) के

विघ्न न करें। इस तरह औषधियोंसे हम बीमार

बने। (मं. ८)

२० हे इन्द्रो ! नः वाजे आ भज-अन्न

बल बढावे। अर्थात् यह रस बल बढाता है। (मं. ९)

२१ ऋतस्य अमृतस्य वेदः— यही वेदमन्त्र

अमृत्युको दूर करनेवाला है, वह वेदमन्त्र के

इस तरह वैद्यकीय ज्ञान इस मूलमें है। (मं. १०)

जानें।

द्विता व्यूर्ण्वन्मृतस्य धाम स्वर्दिदे भुवनानि प्रथन्त ।
 धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्च इन्दुम् १
 पारि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
 देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूपु नव्यः २
 श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
 श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ४
 इषमूर्जमभ्यर्षार्थं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
 विश्वानि हि सुपहा तानि तुभ्यं पवमान वाधसे सोम शत्रून् ५

मृतस्य धाम द्विता व्यूर्ण्वन्! स्वर्दिदे भुवनानि प्रथन्त ।
 : ऋतायन्तीः इन्दुं पिन्वानाः गावः न स्वसरे अभि
 भे ॥२॥

कविः काव्या यत् परि भरते, शूरः न रथः विश्वा
 नानि (परि याति) । देवेषु यशः, मर्ताय भूषन्, दक्षाय
 : , पुरुभूपु नव्यः (भवति) ॥३॥

श्रिये जातः, श्रिये आ निः इयाय, जरितृभ्यः श्रियं वयः
 णाति । श्रियं वसानाः अमृतत्वं जायन् । मितद्रौ समिथा
 मा भवन्ति ॥४॥

हे सोम ! इषं ऊर्जं अभि अर्प । अश्वं गां उरु ज्योतिः
 कृणुहि । देवान् मत्सि । तुभ्यं तानि विश्वानि हि सुपहा । हे
 पवमान सोम ! शत्रून् वाधसे ॥५॥

अमृतके स्थानको (सोम) दोनों ओरसे खुला करता है ।
 आत्मज्ञानी (सोम) के लिये सब भुवन विस्तृत होते हैं । सरल-
 भावसे चलनेवाली (कविकी) बुद्धियाँ, सोमरसको (दुग्ध आदिसे
 मिला कर) बघाती हुई, गौवें जैसी अपनी गोशालामें शब्द
 करती हैं, (वैसी काव्यगानका शब्द करती हैं) ॥ २ ॥

कवि (को स्फूर्ति देनेवाला सोम) काव्योंमें जैसा सब ओरसे
 भरा रहता है, वैसा शूरका रथ सब भुवनोंमें (भ्रमण करता
 है । यह सोम) देवोंमें यश, मनुष्यके लिये भूषण और दक्षके
 लिये संपत्ति (देता हुआ), बहुतसी भूमियोंमें नया (होता है,
 उत्पन्न होता है) ॥ ३ ॥

संपत्ति (बढाने) के लिये जो उत्पन्न हुआ है, संपत्ति (बढाने)
 के लिये जो प्रकट हुआ है, वह (सोम) स्तोताओंके लिये
 दीर्घायु देता है । संपत्तिको प्राप्त करते हुए (उपासक), अमृत-
 त्वको-पहुंचते हैं । (इस) सोमके प्रभावमें युद्ध सत्य (यशस्वी)
 होते हैं ॥ ४ ॥

हे सोम ! अश्व और बल (हमें) दो । घोड़े, गौवें तथा महान्
 तेज (हमारे लिये) कर दो । देवोंको तृप्त करो । तुम्हारे लिये
 वे सभी (राक्षस) पराजय करनेयोग्य हैं । हे छाने जानेवाले
 सोम ! (तू सारे) शत्रुओंको पराभूत करो ॥ ५ ॥

सोम, सोमरस और अन्न

यह सोमका लक्षण है । हर एक ऋषिका प्रायः कुछ न कुछ
 ऋष्य सोमपर है । (अपः वृणानः । नं. १) यह सोम
 लक्ष्मी वरता है, जलको अपने अन्दर स्वीकारता है । अर्थात्
 ल सोमरसमें मिलाया जाता है । यह सोम (इषं ऊर्जं ।
 . ५) अन्न और बल देता है अर्थात् सोमरस यह एक बल
 देनेवाला अन्न है । इससे (मत्सि) तृप्ति होती है और आनन्द
 प उत्साह बढता है, जिससे ' विश्वा रक्षांसि सुपहा ।

शत्रून् वाधसे (नं. ५)' सब राक्षसों और सब शत्रुओंको
 पराभव किया जाता है । अर्थात् वीर सोम पीते हैं, उससे उनका
 उत्साह बढता है, जिससे उनके शत्रु परास्त होते हैं ।

यह सोम (धिये) सोना, ऐश्वर्य और यश बढानेके लिये
 उत्पन्न हुआ है, वह (वयः) दीर्घायु देनेवाला अन्न है । इस-
 लिये इसके उत्साहसे (सत्या समिथा भवन्ति । नं. ४)
 युद्ध यशस्वी होते हैं, कभी पराभव नहीं होता । सोम पीकर
 वीर उसके भागी होते हैं ।

११ मेथपतिः— (मिथ्-मेथ्-संगमने) औषधियोंके परस्पर मेलमिलाप, अनेक औषधियोंका मिश्रण करनेका नाम 'मेथ' है। किन् औषधियोंका मेल करनेसे क्या लाभ होते हैं, यह जाननेवाला वैद्य चाहिये। इसीका नाम 'संगति-करण' है, जो यज्ञका विषय है।

१२ जलाप-भेषजः = जलचिकित्सक।

१३ शं+योः सुम्नं = शान्ति देनेवाले, रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम 'शं' है और रोग बीज तथा अनिष्ट भावको दूर करनेका नाम 'यु' है। इसीसे 'सु-मनः' (सु-म्नं) 'सुख होता है। प्रसन्न मन होता है। वैद्यका यही कर्तव्य है। (मं. ४)

१४ सूर्यः शुक्रः— सूर्य वीर्यवर्धक है।

१५ हिरण्यं रोचते = सुवर्ण तेजस्विता बढ़ानेवाला है।

१६ देवानां वसुः— देवताओंमें जो मूल सत्त्व हैं, ये सब मनुष्योंको लाभ देनेवाले हैं। (मं. ५)

१७ घोडे, मेघ, मेघी, पुरुष, स्त्रियाँ, गायें आदिको (के रोग दूर होकर इनको इनसे ही) सुख मिलता है। (मं. २; ६)

१८ सोम (आदि औषधियाँ) सैकड़ों मानवोंको पुष्टि कर-

नेवाला अन्न देती हैं। यहाँ वनस्पतियोंके अन्न (हे सोम ! तुवि-नृम्णं श्रवः अस्मे निषे) तू विशेष सामर्थ्य बढ़ानेवाला अन्न हमें दे। तू तू विशेष उत्पन्न ही है। तुवि-नृ-मनः (त्रं) श्रुत में उत्पन्न करनेवाला (श्रवः) अन्न, यहाँ 'त्रः' श्रुत शक्ति सामर्थ्यका वाचक है। जिसका मन समर्थ है, भी समर्थ होता है। (मं. ७)

१९ सोम-परिवाधः— सोमादि वनस्पति वाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं वे मानवोंके शत्रु (जुहुरन्त) हमें प्रतिबंध न करें अर्थात् वनस्पति प्रमाणमें मिलती रहें। (अ-रातया मा) कष्ट न विज्ञ न करें। इस तरह औषधियोंसे हम दीर्घायु बनें। (मं. ८)

२० हे इन्द्रो ! नः वाजे वा भज-सोम बल बढ़ावे। अर्थात् यह रस बल बढ़ाता है। (मं. ९)

२१ ऋतस्य अमृतस्य वेनः— यही सोमरस अपमृत्युको दूर करनेवाला है, वह सेवनके योग्य है।

इस तरह वैद्यकीय ज्ञान इस सूक्तमें है। वह जानें।

(नमः मण्डल)

(९) सोम

(ऋ. १।९४) कण्वो घौरः । पयमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

अथि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशाः ।

अपो वृणानः पयने कवीयन्वजं न पशुवर्धनाय मन्म

१

अन्वजः— वाजिनी इव शुभः, सूर्ये न विशाः, यत्

अपः वृणानः कवीयन्वजं न पशुवर्धनाय मन्म

२४ न. १२४ न. १२४

अथि— ओजस्विनी सेनाके समान शुभ पूर्व (मं. १) मे ज्ञेये प्रजापति (१४) ते हैं, ये (मं. १५) (कविओंकी) बुद्धियाँ स्पर्धा करती हैं। (मं. १६) मिलता हुआ (और) कविओंकी (दायक) करता हुआ, (सोम) पशुवर्धन करनेवाले पशुवर्धनाय मन्म (निर्माण करता है) ॥ १ ॥

| | |
|--|---|
| द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम त्वदिदे भुवनानि प्रथन्त । | |
| धियः पिन्वानाः स्वसरे न गावः ऋतायन्तीरभि वावश्च इन्दुम् | १ |
| परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा । | |
| देवेषु यशो मर्ताय भूपन्दक्षाय रायः पुबभूषु नव्यः | २ |
| श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति । | |
| श्रियं वसानाः अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिधा मितद्रौ | ३ |
| इषमूर्जमभ्यर्षीर्ध्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् । | |
| विश्वानि हि सुपहा तानि तुभ्यं पवमान वाधसे सोम शत्रून् | ४ |

तस्य धाम द्विता व्यूर्ण्वन् ! त्वदिदे भुवनानि प्रथन्त ।

ऋतायन्तीः इन्दुं पिन्वानाः गावः न स्वसरे अभि
॥२॥

कविः काव्या यत् परि भरते, शूरः न रथः विश्वा
ने (परि याति) । देवेषु यशः, मर्ताय भूषन्, दक्षाय
पुबभूषु नव्यः (भवति) ॥३॥

ये जातः, श्रिये आ निः इयाय, जरितृभ्यः श्रियं वयः
। श्रियं वसानाः अमृतत्वं प्राप्नुवन् । मितद्रौ समिधा
भवन्ति ॥४॥

सोम ! इषं ऊर्जं अभि अर्षं । अश्वं गां उरु ज्योतिः
। देवान् मत्सि । तुभ्यं तानि विश्वानि हि सुपहा । हे
न सोम ! शत्रून् वाधसे ॥५॥

अमृतके स्थानको (सोम) दोनों ओरसे सुला करता है ।
आत्मज्ञानी (सोम) के लिये सब भुवन विस्तृत होते हैं । सरल-
भावसे चलनेवाली (कविकी) बुद्धियाँ, सोमरसको (दुग्ध आदिसे
मिला कर) बडाती हुई, गौवें जैसी अपनी गोशालामें शब्द
करती हैं, (वैसी काव्यगानका शब्द करती हैं) ॥ २ ॥

कवि (को स्फूर्ति देनेवाला सोम) काव्योंमें जैसा सब ओरसे
भरा रहता है, वैसा शूरका रथ सब भुवनमें (भ्रमण करता
है । यह सोम) देवोंमें यश, मनुष्यके लिये भूषण और दक्षके
लिये संपत्ति (देता हुआ), बहुतसी भूमियोंमें नया (होता है,
उत्पन्न होता है) ॥ ३ ॥

संपत्ति (पढाने) के लिये जो उत्पन्न हुआ है, संपत्ति (बडाने)
के लिये जो प्रकट हुआ है, वह (सोम) स्तोत्राओंके लिये
दीर्घायु देता है । संपत्तिको प्राप्त करते हुए (उपासक) अमृत-
त्वको पहुँचते हैं । (इस) सोमके प्रभावमें युद्ध सत्य (यशस्वी)
होते हैं ॥ ४ ॥

हे सोम ! अश्व और बल (हमें) दो । घोड़े, गौवें तथा महान्
तेज (हमारे लिये) कर दो । देवोंको वृत्त करो । तुम्हारे लिये
वे सभी (राक्षस) पराजय करनेयोग्य हैं । हे छाने जानेवाले
सोम ! (तु सारे) शत्रुओंको पराभूत करो ॥ ५ ॥

सोम, सोमरस और अन्न

सोमका लक्षण है । हर एक श्रृणिका प्रायः कुछ न कुछ
सोमपर है । (अपः वृणानः । नं. १) यह सोम
वरता है, जलको अपने अन्दर स्वीकारता है । अर्थात्
सोमरसमें मिलाया जाता है । यह सोम (इषं ऊर्जं ।
) अश्व और बल देता है अर्थात् सोमरस यह एक बल
वाला अन्न है । इससे (मत्सि) वृषि होती है और अनन्द
उत्पाद बडता है, जिससे ' विश्वा रक्षांसि सुपहा ।

शत्रून् वाधसे (नं. ५) सब राक्षसों और सब शत्रुओंका
पराभव किया जाता है । अर्थात् वीर सोम पीते हैं, उसके उनका
उत्साह बडता है, जिससे उनके शत्रु परास्त होते हैं ।

यह सोम (ध्रिये) सोना, ऐश्वर्य और यश बडानेके लिये
उत्पन्न हुआ है, वह (वयः) दीर्घायु देनेवाला अन्न है । इस-
लिये इसके उत्पादसे (सत्या समिधा भवन्ति । नं. ४)
युद्ध यशस्वी होते हैं, कर्मा पराभव नहीं होता । सोम पीकर
वीर यशसे भागी होते हैं ।

यह सोम (कवीयन्) काव्यकी स्फूर्ति देता है, इस रस-को पीकर कविकी स्फूर्ति बढ़ती है और वे काव्य करते हैं। यह सोम कविकी स्फूर्ति देनेके कारण कविही है, क्योंकि यदि वह कवि न हो तो दूसरोंको काव्यकी स्फूर्ति कैसे देगा ? इसी तरह करें।

अथर्ववेदमें कण्व-ऋषि

अथर्ववेदमें कण्वऋषि रोगजन्तुओंकी खोज करने और उनके नाशका उपाय ढूँढनेवाले दीखते हैं। कृमिनाशमें विद्याका स्थान बड़ा श्रेष्ठ है। अथर्ववेदमें कण्वके ३ सूक्त हैं—

| | | |
|---------------|----------|---------|
| अथर्व काण्ड २ | सूक्त ३१ | मंत्र ५ |
| „ „ ५ | „ ३२ | ६ |
| „ „ ५ | „ २३ | १३ |

कुल मंत्रसंख्या २४ हैं

तीनों सूक्त कृमिनाशकाही विचार कर रहे हैं। इनका अर्थ देखिये —

(१०) क्रिमिजम्भनम्

(अथर्व. २।३१) कण्वः । मधी, चन्द्रमाः । अनुष्टुप्; २, ४ उपरिष्ठाद्विराड् वृद्धी; ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य या मधी द्यपक्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।

तया गिनयि सं क्रिमीन्दृपदा खल्वौ इव

दृष्टमदृष्टमवृहमथो कुरुवमवृहम् ।

अगण इरसर्वान्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि

अगण इन्द्रन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।

शिथानां शिथानि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरच्छिपातै

अन्यान्त्यं शीथेण्यमथो पाप्यं क्रिमीन् ।

अन्यन्त्यं व्यधरे क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोपधीषु पशुष्वन्तः ।

ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वे तद्वन्मि जानिम क्रिमीणाम्

५

पर्वतोंपर, जो वनोंमें और औपधियोंपर रहते हैं | घुसते हैं, उन सब रोगक्रिमियोंका मैं नाश करता हूँ जो पशुओं और जलोंमें होते हैं, जो हमारे शरीरोंमें ॥ ५ ॥

क्रिमियोंकी उत्पत्ति

गोत्यादिक क्रिमियोंकी उत्पत्ति 'पर्वत, वन, औपधि, पशु' जलके बीचमें होती है' ऐसा यहां कहा है, अर्थात् यदि धानोंकी पूर्णतासे स्वच्छता की जाय तो रोगक्रिमि उत्पन्न हों होंगे ऐसी यहां सूचना मिलती है । ये क्रिमी उत्पन्न :-

अस्माकं तन्वं आविविशुः । (मं. ५)

हमारे शरीरमें घुसते हैं और हमें पीडा देते हैं, इसीलिये 'नाशका उपाय हूँकर निकालना चाहिये' उक्त स्थानोंमें । ठ न हो ऐसा प्रबंध करना चाहिये । ये मानवी शरीरमें, पतलियोंमें, आतोंमें तथा अन्यन्य स्थानोंमें उत्पन्न हैं, अथवा घुसकर व्याप्त उत्पन्न करते हैं ।

इनके नाशका उपाय

'वचा' यह एक वनस्पति है । इसको 'वच' बोलते हैं । इसकी वृ (गन्ध) बड़ी उत्पन्न होती है । क्रिमिनाशक औपधियोंमें यह बड़े महत्त्वकी औपधि है । इसका चूरण, इसका धूप, इसके तुकड़ोंकी माला, घोलकर पीनेसे तथा अन्य प्रकारके सेवनसे क्रिमी दूर होते हैं ।

'इन्द्र-शिला' (इन्द्रस्व मही इषत् ।) इन्द्रका बड़ा पत्थर । यह क्या वस्तु है, अभीतक समझमें नहीं आया । 'मनःशिला' जैसा कोई पदार्थ होगा । मनःशिला विनाशक है । इसी तरह यह कोई औपधि वस्तु होगी । यह वस्तु खोज करनेयोग्य है ।

(११) क्रिमिनाशनम्

(अथर्व. २।३२) कण्वः । आदित्यः । अनुष्टुप्, १ त्रिपादुरिगनाद्यधो, ६ अनुष्टुप्चतुष्टुमिह ।

उद्यमादित्यः क्रिमीन्हन्तु निघ्रोचन्हन्तु रदिमभिः । ये अन्तः क्रिमयो गधि १
विभ्यरूपं चतुरक्षं क्रिमि सारङ्गमर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्ठीरपि वृश्चानि यच्छिरः २
अत्रिवद्धः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्रमदग्निवत् । अगस्त्यस्य मज्जणा सं पितृभ्यर्हं क्रिमिन् ३
हतो राजा क्रिमीणामुत्तैषां स्थपतिर्हवः । हतो हतनाता क्रिमिर्हन्ताना हनन्वता ४
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः । अथो ये धुलका इव सर्वे ते क्रिमयो हनाः ५
प्र ते शृणामि शृङ्ग याभ्यां पितुदायसि । निनमि ते कुसुम्भे यस्ते विपश्चानः ६

अर्थ-उदय होता हुआ सूर्य क्रिमियोंका नाश करे, ऊपरकी ओर हुआ सूर्य अपने चिरपीले, अमरपौत्र नाश करे । जो मेघ क्रिमि हैं ॥ १ ॥

अथर्व ऋष्याने, चार जातियाँ, सौर्य और श्वेत यज्ञ-विधि है । इषवी हविष्योंकी और तिर्यो तीर्यता है । अत्रि, इन्द्र, अमरपौत्रके समान मैं क्रिमियोंकी नाश करूँगा । अमरपौत्र विधिसे मैं अमरपौत्र नाश करता हूँ । ॥ ६ ॥

क्रिमियोंकी नाश करे, उनही स्थानों पर उदय होता है । क्रिमियोंके नाश करने की इच्छा करने के लिये ।

इस विधिसे क्रिमि हनने के लिये । अथर्व ऋष्याने ।

अमरपौत्र विधि, अमरपौत्र विधि । अमरपौत्र विधि ।

सूर्य-किरणका प्रभाव

सूर्य किरणका प्रभाव ऐसा है कि जिससे सब प्रकारके रोग- जन्तु विनष्ट होते हैं। यह प्रथम मंत्रकी बातही यहाँ मुख्य है। सूर्यकिरण पहुँचते हैं। जहाँ सूर्यकिरण पहुँचते हैं वहाँ रोग-जन्तु, अतः घर ऐसे बनाने चाहिये कि, कि

(१२) किमिदम्

(अथर्व. ५।२३) कण्वः । इन्द्रः । अनुष्टुप्, १३ विराट् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती । ओतां म इन्द्रश्चाग्निश्च किमि जम्भयतामिति । अस्येन्द्र कुमारस्य किमीन्धनपते जहि । हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम यो अक्षयौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति । दतां यो मध्यं गच्छति तं किमि जम्भयतामिति । सूरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ । यभुश्च यभुर्कणश्च गृध्रः क्रोकश्च ते हताः । ये किमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिवाहवः । ये के च विश्वरूपास्तान्किमीन्जम्भयतामिति । उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा । दृष्टांश्च अन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन्किमीन्ध येचापासः कक्कपास एजत्काः शिपवित्तुकाः । दृष्टश्च हन्यतां किमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् । हतां येचापः किमीणां हता नदनिमोत । सर्वांश्च मग्मपाकरं द्यदा खल्वौ इव त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं किमि सारङ्गमर्जुनम् । गृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः । अत्त्रिवद्वः किमयो हन्मि कण्ववज्जमदाग्निवत् । अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनम्यहं किमीन्ध हतो राजा किमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः । हतो हतमाता किमिर्हतभ्राता हतस्वसा हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः । अथो ये शुल्लका इव सर्वे ते किमयो हताः सर्वेषां च किमीणां सर्वासां च किमीणाम् । भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ।

अर्थ— द्यावापृथिवी, देवी सरस्वती, इन्द्र, अग्नि ये सब परस्पर मिले जुले हैं, ये मिलकर किमियोंका नाश करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! इस कुमारके किमियोंका नाश कर । मेरे पासके उग्र गंधि वचासे सब शत्रुभूत किमि विनष्ट हुए हैं ॥ २ ॥

जो किमि आंस नाक और दांतोंमें घूमता है उसका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

दो समान रूपवाले, दो विभिन्न रूपवाले, दो काले और दो लाल, एक भूरा और दूसरा भूरे कानवाला, गंध और भेड़ियेके समान जो किमि हैं, वे मारे गये हैं ॥ ४ ॥

जो श्वेतकोखवाले, जो काले काली भुजावाले, जो अनेक रंगरूपवाले रोग किमी हैं, उनका नाश करते हैं ॥ ५ ॥

यह सूर्य आगे उदयको प्राप्त हो रहा है, जो सबको देखने-वाला और अदृष्ट दोषको दूर करनेवाला है, वह सब दृष्ट तथा अदृष्ट किमियोंका नाश करे ॥ ६ ॥

येचाप, कक्कप, एजत्क, शिपवित्तुक ये किमि वा अदृष्ट हों, ये सब नाश करनेयोग्य हैं ॥ ७ ॥

जिस तरह पत्थरोंसे चनोंको पीसते हैं, उस प्रकार किमियोंका नाश करना चाहिये ॥ ८ ॥

तीन सिरोंवाले, तीन कुदानवाले सारंग और के नाश करता हूँ । इसको पशुलियों और सिरको

अग्नि, कण्व, जमदाग्निके समान, अगस्त्यकी नाश मैं करता हूँ । (अथर्व २।३२।३, ४, ५ का

येही वे मंत्र हैं । अर्थ पूर्वस्थान पृष्ठ ३३ पर देखा । (१) सब किमियोंका सिर पत्थरसे तोड़ देता हूँ और जला देता हूँ ॥ १३ ॥

रोगाकिमियोंका नाश

सूर्यकिरणसे रोगाकिमियोंका नाश होता है यह स्पष्ट है । किमियोंके वर्णन आदि तथा उनके उपशान्त करनेके विषय हैं । -

कण्व ऋषिके मंत्र समाप्त ।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल)

प्रस्कण्व ऋषिके मन्त्र

(१३) सुवीर्य चाहिये

(१३४) प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १-२ अग्निः, अधिनौ, उपाध्व । प्रगाथः= विषमा वृहत्; सनाः सतोवृहत् ।

अने विवस्वदुपसध्वित्रं राधो अमर्त्य ।

आ दाशुपे जातवेदो बहा त्वमद्या देवाँ उपर्बुधः

१

जुष्टो हि दूतो अस्ति हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरध्वभ्यामुपसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत्

२

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।

धूमकेतुं भाक्तजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम्

३

ध्रेष्टं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुपे ।

देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीले व्युष्टिषु

४

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।

अग्ने त्रातारममृतं निवेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन

५

सुशंसो योधि गृणते यविष्ठय मधुजिह्वः स्वाहुतः ।

प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवते नमस्या दैव्यं जनम्

६

अर्थः— हे अनर्त्य जातवेदः अग्ने! त्वं उपसः विवस्वत्
 भिः दाशुपे आ बह, अद्य उपर्बुधः देवान् (आ
 १ ॥

अग्ने! जुष्टः दूतः हव्यवाहनः अध्वराणां रथीः अस्ति
 ध्वभ्यां उपसा सजूरः सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे
 २ ॥

दूतं वसुं पुरुप्रियं धूमकेतुं भाक्तजीकं व्युष्टिषु
 अध्वरश्रियं अग्निं वृणीमहे ॥ ३ ॥

ध्रेष्टु देवान् अच्छ यातवे ध्रेष्टं यविष्ठं अतिथिं स्वाहुतं
 जनाय जुष्टं जातवेदसं अग्निं ह्ये ॥ ४ ॥

अमृत विश्वस्य भोजन हव्यवाहन निवेध्य अग्ने! त्रातारं
 यविष्ठं त्वां अहं स्तविष्यामि ॥ ५ ॥

सुशंस ! गृणते सुशंसः मधुजिह्वः स्वाहुतः योधि ।
 यत्न शोवते आयुः प्रतिरन् दैव्यं जनं नमस्य ॥ ६ ॥

अर्थ— हे अनर ज्ञानी अग्निदेव ! तुम उपाके साथ
 अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देनेके लिये ला दो, आज
 उपःकालमें जागनेवाले देवोंको (यज्ञ ले आओ) ॥ १ ॥

हे अग्ने ! (तुम देवोंके द्वारा) सेवित दूत हव्य लानेवाला
 और हितारहित कर्मोंको निमानेवाला हो । अधिदेवों और
 उपाके साथ उत्तम वीर्य बढानेवाला बड़ा धन हमें ला दो ॥ २ ॥

आज (हम) धूमकेतु करनेवाले सबके निवास देव, नमके
 प्रिय, धूमही जिसका बिन्दु है, ऐसे ज्ञानभूमि अर्चक,
 उपःकालमें आहितक यहकर्मके कर्ता (है हम) अग्निदा
 हम स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

उपःकालमें देवोंको प्राप्त करनेके लिये, बहुत मर्यादा
 मान, उत्तम रीतिसे कुलमें गये, ज्ञान मनुष्यके लिये मेवाके
 योग्य, सर्वज्ञ अग्निही मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

हे अनर, सबको भोजन देनेवाले, हमको अनुभूतिके लिये
 अग्निदेव ! (तुम) सबके तारक, अनर हुन दो, ज्ञान मनुष्य
 मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ५ ॥

हे ज्ञान ! स्तुतिस्वीष्टे तुम स्तुति अग्निदेव है, आज
 यज्ञानेवाला तुम उत्तम वीर्य देनेके यत्न (हमारे ज्ञान
 को) नमस्स करो । मधुजिह्वी रहे आहुति देने मधु मनुष्य
 हुआ लिये नमस्स करो सम्भव दो ॥ ६ ॥

| | |
|---|----|
| होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते । | |
| स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् | १ |
| सवितारमुपसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः । | |
| कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर | ८ |
| पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि । | |
| उपवुंघ आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वदंशः | ९ |
| अग्ने पूर्वा अनूपसो विभावसो दीदेय विश्वदर्शतः । | |
| असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः | १० |
| नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् । | |
| मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् | ११ |
| यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरा यासि दूत्यम् । | |
| सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेध्राजन्ते अर्चयः | १२ |
| शुधि श्रुत्कर्णं वह्निमिदं देवैः अर्चयः सयावभिः । | |
| आ सीदन्तु वहिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् | १३ |

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत
अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥ ७ ॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उपसं अश्विना भगं
अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा
इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपवुंघः
स्वदंशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उपसः अनु दीदेय ।
ग्रामेषु अविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥ १० ॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं
मृत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि,
सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः
आजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्णं अग्ने ! शुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः)
सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरं वहिषि आ सीदन्तु ॥ १३ ॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमसे ज्ञान
करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये
(तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौड़ते हुए ले आओ ।
हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता ! रात्रिके नैवेद्य
सविता, उषा, दोनों अध्विदेवों, भग और अश्वि
आओ) । सोमका रस निचालकर ये कर्म करनेवाले
हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्मोंका
नेवाला हो । उपःकालमें जागनेवाले आलसियों
सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनान् देवों
पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो ।
मनुष्योंमें अप्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यको तरह तुम्हें पकड़
होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करके
करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय ! जब यज्ञके पुरोहित करके
दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रचलन
वाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती हैं ।

हे सुनेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) तुम लो । निम्न
तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके ज्ञान
देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३ ॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिवतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विन्यामुपसा सज्जः

१४

दानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु ।

वरुणः अधिभ्यां उपसा सज्जः सोमं पिवतु ॥१४॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत वीर इस स्तोत्रको सुनें । व्रतपालन करनेवाला वरुण अधि-
देवोंके और उषाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उषःकालमें जागनेवाले देव

स स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उषःकालमें जाग-
ने कहा है—

१ उपवृधः देवाः (१;९) —उषःकालमें जागनेवाले,

२ व्युष्टिषु देवान् यातवे (४) — विशेष प्रातः उषः-
कालमें देवोंको बुलाना चाहिये,

३ क्षपः व्युष्टिषु उपसं सवितारं अश्विना भगं
न आ वह (८) — रात्री रहनेके समयही प्रातः की उषा-
काल उषा, सविता, अश्विदेव, भग और अश्विनको बुलाओ,

४ प्रातर्यावाणः देवाः (१३) — प्रातःकालमें उठकर
करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं ।

इस तरह अनेक बार वर्णन वेदमंत्रोंमें होता है । इससे
स्पष्ट होता है कि देव बड़ी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी
गूँधी है, तब उठते हैं और अपने कार्यमें लगते हैं । इसीका
ब्रह्मसंहिता में (क्षपः व्युष्टिषु) रात्रीके अवशिष्ट
काल उषःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली
आ रही परिपाटी है । आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं
होना चाहिये कि जो उषःकालमें सोया रहता हो । ब्रह्मसंहितामें
ऐसेकी स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित
है ।

धन कैसा हो ?

धन अथ आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश
हैं—

१ विवस्वत् चित्रं राधः (१) — तेजस्वी धन हो,
जो निवासका हेतु बने, सिद्धितक पहुंचावे और तेजस्विता
लावावे,

२ सुवीर्यं वृहत् ध्रुवः अस्मे घेहि (२) — उत्तमवीर्य,
आकाशमें और पराक्रम बढ़ानेवाला धन, अन्न और यज्ञ हमें
देवे,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रम-
की शक्ति कम करे और यज्ञमें बाधक हो ।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये ।- कर्म ऐसे करने चाहिये कि
जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तैदापन न हो,
इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं—

१ अध्वरः (अ+ध्वरः) — अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित
कर्म, कुटिलतारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तैदापन या कपट
नहीं है । (मं. २;३;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः)
मार्ग चतानेवाला, सम्मार्गदर्शक है । अध्वरका अर्थ यज्ञ है,
परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती ।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार
इस तरह है—

१ उपवृधः— उषःकालमें उठनेवाले, (१)

२ जुष्टः— प्रीतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)

३ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे
रहित कर्मोंको करनेवाला,

४ वसुः— मनुष्योंका निवास सुखमय करनेवाला, (३)

५ पुरुप्रियः— बहुतोंको प्रिय,

६ भा-ऋजीकः— प्रभासे युक्त, तेजस्वी,

७ मियेध्यः— पवित्र, (५)

८ व्राता— संरक्षक,

९ मधुजिह्वः— मीठा भाषण करनेवाला, मधुरभाषी (६)

१० दैव्यः— दिव्यभावयुक्त,

११ विश्ववेदाः— सब जाननेवाला, (७)

१२ जातवेदाः— जो बना है उसको समझ जानने-
वाला (४)

१३ प्रचेताः— विशेष ज्ञानी, मननशील (८;११)

१४ स्वर्द्धन्— आत्मज्ञानी । (१)

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विन्यामुपसा सज्जः

१४

पानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु ।

वरुणः अश्विन्यां उपसा सज्जः सोमं पिबन्तु ॥ १४ ॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत वीर इस स्तोत्रको सुनें । व्रतपालन करनेवाला वरुण अधि-
देवोंके और उपाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उपःकालमें जागनेवाले देव

य स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उपःकालमें जाग-
कहा है—

उपर्युधः देवाः (१;९) —उपःकालमें जागनेवाले,

व्युष्टिषु देवान् यातवे (४) — विशेष प्रातः उपः-
में देवोंको बुलाना चाहिये,

क्षपः व्युष्टिषु उपसं सवितारं अश्विना भगं
न आ वह (८) — रात्रि रहनेके समयही प्रातः की उपा-
उपा, सविता, अश्विदेव, भग और अग्निको बुलाओ,

प्रातर्यावाणः देवाः (१३) — प्रातःकालमें उठकर
करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं ।

इस तरह अनेक बार वर्णन वेदनत्रोंमें होता है । इससे
होता है कि देव बड़ी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी
है, तब उठते हैं और अपने कार्योंमें लगते हैं । इसीका
प्राप्ति-मुहूर्त है । (क्षपः व्युष्टिषु) रात्रिके अन्तिम
के उपःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली
गी परिपाटी है । आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं
चाहिये कि जो उपःकालमें सोया रहता हो । ब्राह्मणमुहूर्तमें
नेकी स्तुतिवाँकी आशा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित

धन कैसा हो ?

धन अन्न आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश
हैं—

विषस्वन् चित्रं राधः (१) — तेजस्वी धन हो,
निपातका हेतु बने, सिद्धिक पटुंवाले और तेजस्विता
वाले,

सुवीर्यं वृहत् ध्रुवः अस्मे धेहि (२) — उत्तम वीर्य,
अनर्थ और पराक्रम बटानेवाला धन, अन्न और यश हमें
दे,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रम-
की शक्ति कम करे और यशमें बाधक हो ।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये । कर्म ऐसे करने चाहिये कि
जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तैडापन न हो,
इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं—

१ अध्वरः (अध्वरः) — अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित
कर्म, कुटिलारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तैडापन या कपट
नहीं है । (मं. २;३;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः)
मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है । अध्वरका अर्थ यश है,
परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती ।

देवताओंके लक्षण

इस मूलमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार
इस तरह है—

१ उपर्युधः— उपःकालमें उठनेवाले, (१)

२ जुष्टः— प्रीतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)

३ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपट आदिके
रहित कर्मोंको करनेवाला,

४ वसुः— मनुष्योंका निजस्त सुखमय करनेवाला, (३)

५ पुरुप्रियः— बहुतोंसे प्रिय,

६ भा-कजीकः— प्रभासे बुरा, तेजस्वी,

७ मियेध्यः— पवित्र, (५)

८ व्राता— संरक्षक,

९ मधुजिह्वः— मोटा भाषन करनेवाला, मधुरभाषी (६)

१० दैव्यः— दिव्यभावयुक्त,

११ विश्ववेदाः— सब जाननेवाला, (७)

१२ जातवेदाः— जो क्या है उसको बताने-
वाला (४)

१३ प्रचेनाः— विशेष करने, मनन करने (८; ११)

१४ स्वईशू— आत्मशक्ति (९)

| | |
|--|----|
| होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विदा इन्धते । | |
| स आ वह पुनरुत प्रचेतसोऽग्ने देवान् इह द्रवन् | ३ |
| सवितारमुपसमन्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः । | |
| कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर | ४ |
| पतिराध्वराणामग्ने दूता विदामसि । | |
| उपबुध आ वह सोमपीतये देवां अय स्वर्दशः | ५ |
| अग्ने पूर्वा अनूपसो विभावसो दीदेय विश्वदर्शतः । | |
| असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः | १० |
| नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतास्मृत्विजम् । | |
| मनुष्यद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् | ११ |
| यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरौ यासि दूत्यम् । | |
| सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भोजन्ते अर्चयः | १२ |
| श्रुधि श्रुत्कर्णं वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । | |
| आ सीदन्तु वर्हिषि मित्रो अयंमा प्रातर्वाचाणो अध्वरम् | १३ |

होतारं विश्ववेदसं त्वा विदाः सं इन्धते हि । हे पुरुदूत
अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवन् आ वह ॥ ३ ॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उपसं अधिना भगं
अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा
इन्धते ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपबुधः
स्वर्दशः देवान् अयं सोमपीतये आ वह ॥ ५ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उपसः अनु दीदेय ।
ग्रामेषु अविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥ १० ॥

हे अग्ने देव ! मनुष्यत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतां
स्मृत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः । यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि,
सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः
भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्णं अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अयंमा प्रातर्वाचाणः (तैः)
सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरं वर्हिषि आ सीदन्तु ॥ १३ ॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमसे सब
करती हैं । हे बटुओं द्वारा हवन लिये गये आ
(तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दीजते हुए ले आओ ।
हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता । रात्रिके नैवेद्य
सविता, उषा, दोनों अग्निदेवों, नग और अन्तेके
आओ) । सोमका रस निकालकर ये हवन करनेवाले
हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक अन्न-
नेवाला हो । उपःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी
सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ५ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विधमं दर्शनाय ऐशः
पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम प्राणोंके रसक हो ।
मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यको तरह तुम्हें अर्चते
होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अनर इत करके बलि
करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय ! जब यज्ञके पुरोहित अग्ने देवों
दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रचलन
वाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती हैं ।

हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन लो । त्वं
तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके नैवेद्य
(देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३ ॥

शृण्वन्तु स्तोमं भरतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिवतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विन्यामुपसा सजूः

१४

दानवः ऋग्निजिह्वाः ऋतावृधः भरतः स्तोमं शृण्वन्तु ।

वरुणः अश्विन्यां उपसा सजूः सोमं पिवतु ॥ १४ ॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले भरत वीर इस स्तोत्रको सुनें । व्रतपालन करनेवाला वरुण अधि-
देवोंके और उपाके साथ नोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उपःकालमें जागनेवाले देव

उपःस्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उपःकालमें जाग-
ना कहा है—

उपर्वुधः देवाः (१; ९) — उपःकालमें जागनेवाले,
व्युष्टिपु देवान् यातवे (४) — विशेष प्रातः उपः-
में देवोंको बुलाना चाहिये,

क्षपः व्युष्टिपु उपसं सवितारं अश्विना भगं
त आ वह (८) — रात्री रहनेके समयही प्रातः की उपा-
उपा, सविता, अदिवदेव, भग और अग्निको बुलाओ,
प्रातर्याचाणः देवाः (१३) — प्रातःकालमें उठकर
करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं ।

इस तरह अनेक बार वर्णन वेदमंत्रोंमें होता है । इससे
होता है कि देव बड़ी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी
है, तब उठते हैं और अपने कार्योंमें लगते हैं । इसीका
ब्राह्म-मुहूर्त है । (क्षपः व्युष्टिपु) रात्रीके अवशिष्ट
कि उपःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली
गयी परिपाटी है । आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं
होना चाहिये कि जो उपःकालमें सोया रहता हो । ब्राह्ममुहूर्तमें
नेकी स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित

धन कैसा हो ?

धन अन्न आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश
हैं—

१ पियस्यत् चित्रं राधः (१) — तेजस्वी धन हो,
निजावसा हेतु बने, सिद्धिकर पहुंचाये और तेजस्विता
प्राये,

२ सुयोर्यं वृहत् ध्रुवः अस्मे घेहि (२) — उत्तम वीर्य,
अर्थ और पराक्रम बढ़ानेवाला धन, अन्न और यज्ञ हमें
प्राये,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रम-
की शक्ति कम करे और यशमें बाधक हो ।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये । कर्म ऐसे करने चाहिये कि
जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तेजापन न हो,
इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखनेयोग्य हैं—

१ अध्वरः (अ+ध्वरः) — अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित
कर्म, कुटिलारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तेजापन या कपट
नहीं है । (मं. २; ३; ८; १३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः)
मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है । अध्वरका अर्थ यज्ञ है,
परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती ।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार
इस तरह है—

१ उपर्वुधः— उपःकालमें उठनेवाले, (१)

२ जुष्टः— शीतसे सेवा करनेयोग्य, (२)

३ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे
रहित कर्मोंको करनेवाला,

४ वसुः— मनुष्योंच निवास सुखमय करनेवाला, (३)

५ पुरुप्रियः— बहुतोंसे प्रिय,

६ भा-ऋजीकः— प्रभासे युक्त, तेजस्वी,

७ नियध्वः— पवित्र, (५)

८ व्राता— संरक्षक,

९ मधुजिह्वः— मीठा भाषन करनेवाला, मधुरभाषी (६)

१० दैव्यः— दिव्यभावयुक्त,

११ विश्ववेदाः— सब जाननेवाला, (७)

१२ जातवेदाः— जो क्या है उससे बताने जानने-
वाला (४)

१३ प्रचेताः— विशेष ज्ञानों, मननयोग (५; ११)

१४ स्वर्दशुः— आत्मज्ञानो. (९)

होतारं विश्वेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवा इह द्रवत् ॥ ७ ॥

सवितारमुपसमन्विना भगमाग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।

उपवृध आ वह सोमपीतये देवा अय स्वईशः

अग्ने पूर्वा अनूपसो विभावसो दीदेय विश्वदर्शतः ।

असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।

मनुष्यद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम्

यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरा यासि दूत्यम् ।

सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेभ्राजन्ते अर्चयः

श्रुधि श्रुत्कर्णं वद्धिभिर्देवैरेवे सयावभिः ।

आ सीदन्तु वर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम्

होतारं विश्वेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत
अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥ ७ ॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उपसं अन्विना भगं
अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा
इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपवृधः
स्वईशः देवान् अय सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उपसः अनु दीदेय ।
ग्रामेषु अविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥ १० ॥

हे अग्ने देव ! मनुष्यत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं
मृत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि,
सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः
भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्णं अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः)
सयावभिः वद्धिभिः देवैः अध्वरं वर्हिषि आ सीदन्तु ॥ १३ ॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमसे सब
करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये
(तुम) ज्ञानी देवोंकी यहाँ दौडते हुए ले आओ ॥
हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता । रात्रिके नन्त-
सविता, उषा, दोनों अश्विदेवों, भग और अग्निसे
आओ) । सोमका रस निकालकर ये कन्व हविष
हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्मोंका
नेवाला हो । उपःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी
सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा
पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो ।
मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुम्हें यज्ञ
होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करके यहाँ
करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीयों जब यज्ञके पुरोहित करके देवों
दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रवाह जल
वाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती-
हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन लो । मित्र,
तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके साथ
देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३ ॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिवतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुपसा सजूः

१४

।। नवः ऋग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु ।

।। वरुणः अश्विभ्यां उपसा सजूः सोमं पिवतु ॥ १४ ॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें । व्रतपालन करनेवाला वरुण अश्वि-देवोंके और उपाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उषःकालमें जागनेवाले देव

। स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उषःकालमें जाग-कहा है-

उपर्युधः देवाः (१;९) -उषःकालमें जागनेवाले, व्युष्टिपु देवान् यातवे (४)- विशेष प्रातः उषः-देवोंको बुलाना चाहिये,

क्षपः व्युष्टिपु उपसं सवितारं अश्विना भगं आ वह (८)- रात्री रहनेके समयही प्रातः की उपा-उपा, सविता, अश्विदेव, भग और अग्निको बुलाओ,

। प्रातर्यावाणः देवाः (१३)- प्रातःकालमें उठकर करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं ।

। इस तरह अनेक बार वर्णन वेदग्रन्थोंमें होता है । इससे होता है कि देव बड़ी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी है, तब उठते हैं और अपने कार्यमें लगते हैं । इसीका ब्राह्म-मुहूर्त है । (क्षपः व्युष्टिपु) रात्रीके अवशिष्ट के उषःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली गयी परिपाठी है । आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं चाहिये कि जो उषःकालमें सोया रहता हो । ब्राह्ममुहूर्तमें वेदों स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आधित

धन कैसा हो ?

। धन अब आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश हैं-

१ विपस्वत् चित्रं राधः (१)- तेजस्वी धन हो, निपातका ऐतु बने, सिद्धिकर पुरुषावे और तेजस्विना

२ सुवीर्यं मृहत् ध्रुवः अस्मे घेहि (२)- उत्तम वीर्य, धर्म और पराक्रम बढानेवाला धन, अब और यज्ञ हमें

ऐसा धन या अब नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रम-की शक्ति कम करे और यज्ञमें बाधक हो ।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये ।- कर्म ऐसे करने चाहिये कि जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तेजापन न हो, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं-

१ अध्वरः (अ+ध्वरः)- अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित कर्म, कुटिलतारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तेजापन या कपट नहीं है । (सं. २;२;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः) मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है । अध्वरका अर्थ यज्ञ है, परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती ।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार इस तरह है-

१ उपर्युधः- उषःकालमें उठनेवाले, (१)

२ जुष्टः- श्रुतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)

३ अध्वराणां रथीः- हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे रहित कर्मोंको करनेवाला,

४ वसुः- मनुष्योंका निपात उत्तम बनानेवाला, (३)

५ पुरुमित्रः- बहुतोंको मित्र,

६ भा-ऋजीकः- प्रभासे युक्त, तेजस्वी,

७ मियेध्यः- परिव्र, (५)

८ व्राता- संरक्षक,

९ मधुजिह्वः- नीला भाजन करनेवाला, मधुरभाषी (६)

१० दैव्यः- दिव्यभावयुक्त,

११ विश्ववेदाः- सब जाननेवाला, (७)

१२ जातवेदाः- जो बना है उसमें यज्ञका भागने-वाला (४)

१३ प्रचेताः- विशेष हत्ती, मन्त्रवेत्ता (८;१३)

१४ स्वईशू- आत्महन्ता, (१)

| | |
|---|----|
| होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते । | |
| स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् | ७ |
| सवितारमुपसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः । | |
| कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर | ८ |
| पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि । | |
| उपर्वुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दशः | ९ |
| अग्ने पूर्वा अनूपसो विभावसो दीदेय विश्वदर्शतः । | |
| असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः | १० |
| नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् । | |
| मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् | ११ |
| यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दृत्यम् । | |
| सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेभ्राजन्ते अर्चयः | १२ |
| श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । | |
| आ सीदन्तु वहिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् | १३ |

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत
अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥ ७ ॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उपसं अश्विना भगं
अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा
इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपर्वुधः
स्वर्दशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उपसः अनु दीदेय ।
ग्रामेषु अविता अग्नि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥ १० ॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं
मृत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दृत्यं यासि,
सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः
अप्यन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्ण अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः)
अध्वरभिः वहिभिः देवैः अध्वरं वहिषि आ सीदन्तु ॥ १३ ॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमको सब
करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये
(तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौड़ते हुए ले आओ
हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता । रात्रिके नैऋत
सविता, उषा, दोनों अधिदेवों, भग और अश्वि
आओ) । सोमका रस निकालकर ये कन्व हविष
हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्म
नेवाला हो । उपःकालमें जागनेवाले आत्मदशों
सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा
पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो ।
मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुम्हें
होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करते
करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीया जब यज्ञके पुरोहित अग्ने
दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रवाह
वाली लहरोंके समान, अग्निही ज्वालाएँ प्रदीप्त होकर

हे सुनेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन हो ।
तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके
(देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३ ॥

१५ विश्वदर्शतः— विश्वको दिखानेवाला, यन्त्रों का-
नीय, (१०)

१६ सुदानुः— उत्तम दाता, (११)

१७ अभिजिह्वः— तेजस्वी भाषण करनेवाला,

१८ क्रतानुधः— सत्य, यज्ञकी वृद्धि करनेवाला,

१९ धृतघ्नतः— नियमका योग्य पालन करनेवाला,

२० विभावसुः— तेजस्वी, विशेष तेजस्वी । (१०)

देवत्वकी प्राप्ति इन गुणोंसे होती है, अतः ये गुण अपनाकर
मनुष्यके लिये योग्य है ।

कुछ कर्तव्य

निम्नलिखित मंत्रभाग मानवोंके कुछ कर्तव्य बताते हैं,
उनका अब विचार करेंगे—

१ त्रातारं अहं स्तविष्यामि— दूसरोंकी रक्षा करने-
वाले वीरकी मैं प्रशंसा करता हूँ (५), अर्थात् जो दूसरोंकी
सुरक्षा नहीं करता वह स्तुतिके योग्य नहीं है ।

२ आयुः प्रतिरन्— आयुको बड़ाओ (६), आयु जिससे
घटे ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिये ।

३ दैव्यं जनं नमस्य— दिव्य गुणवालोंको ही प्रणाम कर
(६) जिसमें शुभगुण नहीं होंगे वह सत्कारके योग्य नहीं है ।

४ प्रामेषु अविता असि— प्रामोंमें सुरक्षा करनेवाला
हो । (१०)

सोमपान

सोमपानका विषय इस सूक्तमें अनेक बार
सूक्त वाक्य में है—

१ सुतसोमासः— मिलकर सोमरस निम्न

२ सांमपीतये देवान् आ वह— सोमों
को ले आओ, (९)

३ वहिषि आ सीवन्तु— वे देव आ
येँ, (१३)

४ वरुणः सोमं पिबतु— वरुण सोम पीने
इस सूक्तके १४ मंत्रोंमेंसे चार मंत्रोंमें सोम
इस तरह यह सूक्त सुवीर्यवर्धक उत्तम उपदेश देता

(१४) तैंतीस देवता

(क्र. १।४५) प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १० (उत्तरार्धस्य) देवाः । अनुष्टुप् ।

त्वमग्ने वसूरिह रुद्रा आदित्या उत

ःश्रुधीवानो हि दाशुपे देवा अग्ने विचेतसः । यज्ञा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतगुपम्
तान् रोहिदश्वं गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह

अन्वयः— हे अग्ने ! त्वं इह वसूर रुद्रान् आदित्यान्
यज । उत स्वध्वरं घृतगुपं मनुजातं जनं आ यज ॥ १ ॥

हे अग्ने ! विचेतसः देवाः दाशुपे श्रुधीवानो हि । हे रोहि-
दश्वं गिर्वणः ! त्रयस्त्रिंशतं तान् आ वह ॥ २ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! तুম यहां वसुओं, रुद्रों और
(सन्नुष्टिके लिये) यज्ञ कर ॥ तथा उत्तम यज्ञ करने
घृताहुति देनेवाले मनुष्य उत्पन्न हुए मानवोंकी (सन्नुष्टिके
भी) यज्ञ कर ॥ १ ॥

हे अग्ने ! विशेष ज्ञानसंपन्न देव सदाही दाशुके
फल देतेही हैं । हे लाल रंगके घोड़े (जीतने)वाले
(अग्ने) ! उन तैंतीस देवोंको तুম यहां ले आ ॥ २ ॥

| | |
|--|--|
| प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् । | अङ्गिरस्वन्महिषत प्रस्कण्वस्य शुधी हवम् ३ |
| हिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत । | राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ४ |
| ताहवत सन्त्येमा उ पु शुधी गिरः । | याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ५ |
| वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । | शोचिष्केशं पुरुप्रियाऽग्ने हव्याय वोळहवे ६ |
| ने त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् । | श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिपु ७ |
| मा त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः । | वृहद्भा विभ्रतो हाविरग्ने मर्ताय दाशुपे ८ |
| गतर्थाण्यः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य । | इहाद्य दैव्यं जनं वर्हिः सादया वसो ९ |
| प्रवाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । | अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोऽबह्वयम् १० |

महिषत जातवेदः ! प्रियमेधवत् अत्रिवत् विरूपवत्
वत् प्रस्कण्वस्य हवं शुधि ॥ ३ ॥

हिकेरवः प्रियमेधाः अध्वराणां शुक्रेण शोचिषा राजन्तं
ऊतये अहूषत ॥ ४ ॥

ताहवत सन्त्य ! इमा उ गिरः सु शुधि । कण्वस्य
याभिः अवसे त्वा हवन्ते ॥ ५ ॥

चित्रश्रवस्तम पुरुप्रिय अग्ने ! शोचिष्केशं त्वां हव्याय
वे विक्षु जन्तवः हवन्ते ॥ ६ ॥

अग्ने ! विप्राः दिविष्टिपु होतारं ऋत्विजं वसुवित्तमं
र्णं सप्रथस्तमं त्वा नि दधिरे ॥ ७ ॥

अग्ने ! दाशुपे मर्ताय हविः विभ्रतः सुतसोमाः विप्राः
अभि वृहद् भाः त्वा आ अचुच्यवुः ॥ ८ ॥

सहस्कृत सन्त्य वसो ! इहाद्य सोमपेयाय प्रातर्याण्यः
जनं वर्हिः आ सादय ॥ ९ ॥

अग्ने ! अवाञ्चं दैव्यं जनं सहूतिभिः यक्ष्व । हे सुदानवः
सोमः, तं तिरोऽबह्वयं पात ॥ १० ॥

हे महान् कर्म करनेवाले ज्ञानी (अग्ने) ! (तुमने) जैसी
प्रियमेध, अत्रि, विरूप, और अङ्गिरसकी प्रार्थनाएं सुनी थी, वैसी
प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना सुनो ॥ ३ ॥

महान् कर्म करनेवाले प्रियमेध (ऋषियोंने) यज्ञोंके मध्यमें
पवित्र प्रकाशसे तेजस्वी हुए अग्निकी (सबकी) सुरक्षाके लिये
प्रार्थना की थी ॥ ४ ॥

हे धृतराष्ट्रकी आहुतियां लेनेवाले दाता (अग्ने) ! ये प्रार्थनाएं
सुनो । कण्वके पुत्र जिन (प्रार्थनाओं)से (सबकी) सुरक्षाके
लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

हे विलक्षण यशवाले और सबको प्रिय अग्ने ! तेजस्वी
किरणवाले तुम्हें हविकों ले जानेके लिये प्रजाओंमें ये लोग
बुलाते हैं ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! ज्ञानी लोग यज्ञोंमें, (देवोंको) बुलानेवाले
ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, बहुत धनके दाता, प्रार्थना
सुननेमें तत्पर और सर्वत्र प्रसिद्ध ऐसे तुम्हें स्थापित करते
हैं ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! दाता मानवोंके लिये अब देनेवाले और त्रिदोषों
सोमरस तैयार किया है ऐसे ज्ञानी लोगोंने (हविरूप) अबके पास
(रहनेवाले) अत्यंत तेजस्वी तेरा (मन अन्नो) और खींच लिया है ८

हे बलके उत्तमकर्त्ता दानवीज (तथा सबके) निराश्रय
(अग्ने) ! इस आज सोमदानके लिये प्रातर्याण्योंने
आनेवाले दिव्य विक्षोभों (२५) आत्मवीर (दाता)
बिडलाओं ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! सब अग्ने दिव्य बलके उत्तम मानवके लिये
आदरपूर्वक यज्ञ कर । हे दातावाले ! यह सोमरस दे, इसकी
एकही दिन पूजा है, उसका सब करो ॥ १० ॥

सूक्तका द्रष्टा प्रस्कणव

सूक्तका द्रष्टा प्रस्कण्व ऋषि है। इसका नाम तृतीय है। (प्रस्कण्वस्य हवं धुधि। मं. ३) प्रस्कण्व। प्रार्थना सुनो, ऐसा अग्निसे कहा है। इस मन्त्रमें प्रस्क-
र्व समयके चार ऋषियोंका उल्लेख है। प्रियमेधा, अत्रि,
और अजिना इन ऋषियोंको प्रार्थना जैसी सुनी थी, वैसी
री (प्रस्कण्वकी) प्रार्थना सुने, यह इस मन्त्रका आशय

विशेष (आंगिरसः) क्र. ८१११-(४०); ६८-
(१); ६९-(१८); ८७-(६); ९१२८-(६) कुलमन्त्र

त्रिः (भौमः) क्र. ५१२७- (६), ३७-४३- (७९);
(५); ७७- (५); ८३-८६- (२७); ९६७१०-१२
; ८६४१-४५ (५) कुलमंत्र १३०

रूप (आक्षिप्तः) ८४३-(३३); ४४-(३०);
(१६), कुलमंत्र ७९

गङ्गिरा:—अङ्गिरा ऋषिके मंत्र अथर्ववेदमें बहुत हैं, इसलिये वेदका नाम 'अङ्गिरादेवः' ऐसा हुआ है।

। चार ऋषिः प्रस्कम्बके पूर्व समयके प्रतीत होते हैं। क्यों-
जैसा इनकी प्रार्थना सुनी गयी थी, वैसी मेरी सुनो' ऐसा
मंत्रमें कहा है।

१. ४ में 'प्रियमेध' ऋषिका नाम पुनः आया है।
 ई-करवः' अर्थात् उत्तमसे उत्तम बड़े बड़े यज्ञकर्म करने-
 , महात् शुभकर्म करनेवाले प्रियमेध ऋषि जिस तरह
 निं जतये अहूपत । मं. ४) अग्निदेवकी सबकी
 को लिये प्रार्थना करते थे, उसी तरह मैं प्रसन्न भो उसी
 की प्रार्थना कर रहा हूँ, इसलिये मेरी प्रार्थना सुननी
 हवे, ऐसा इसका कथन है।

सबकी सुरक्षा, सबकी उन्नति ही प्रार्थनाका विषय होता है। मैं 'कृति' शब्द ही प्रमाण है। इसका अर्थ— दुःखनाश, ग, संरक्षण, सुरक्षा, आनंद, नदीनी खेल, प्रीति, सहायता, जा, कामना, भला करना, शुभ कार्य, उत्साह यह है। मैं सबकी सुरक्षा, सबकी उन्नति, सबकी भलाई ही मुख्य है; कि यहाँ लिखी यह सब है और यहाँ तो संगठन कर लिखी होता है। इसलिये हमें अंतः 'कृति' पर

५ (५३)

आयेगा वहां 'सबकी संगठनपूर्वक सुरक्षा' ऐसाही अर्थ लेना चाहिये।

पांचवे मन्त्रमें प्रस्कम्भ ऋषि अपना गोत्र कहता है, (कण्व-
स्य सूनवः । सं. ५) कण्वके पुत्र जिन मंत्रोंसे तुम्हारी
प्रार्थना करते थे, वे ही ये मंत्र हैं । (याभिः हवन्ते
इमा गिरः) जिन वाक्योंसे कण्वके पुत्र प्रभुकी प्रार्थना करते
थे, वेही ये मन्त्र हैं । वैसीही प्रार्थनाएं हम करते हैं, इसलिये
इनको सुनो । यहां बताया है कि हमने परंपरा नहीं छोड़ी है,
जैसी प्रार्थनाकी परंपरा चली आयी है, वैसीही हमने रखी है ।
परंपरासे सम्भ्यता सुरक्षित रहती है, इसलिये परंपराका आदर
करना चाहिये । इस मन्त्रमें ' अवसे ' पद है, जिसका अर्थ
पूर्वोक्त ' ऊति ' के समानही सबकी सुरक्षा, सबको भलाई,
सबकी उन्नति है । इसलिये जैसी प्रार्थना करनेकी रीति पाँदे-
ल्लेसे चली आती है वैसीही प्रार्थना हम कर रहे हैं । इसलिये हे
प्रभो ! तुम हमारी प्रार्थना सुनो, अर्थात् सबको उन्नत करो ।

(विभु जन्तवः हवन्ते । मं. ६) बड़े जनसमूहमें बैठे ज्ञानी लोग तेरी प्रार्थना करते हैं । यहाँ यह मंत्रभाग सासुदायिक उपासनाका वर्णन कर रहा है । (विभु-प्रजासु) प्रजाजनोमें, सभामें, बड़ी परिपक्वमें बैठे (जन्तवः) ज्ञानीजन (हवन्ते) प्रभुकी प्रार्थना करते हैं, (शयते) सबकी सुरक्षा तथा उन्नतिके लिये पैसींदी प्रार्थना सब करंगे जायँ ।

इस सूक्तका सर्वसाधारण उपदेश यह है।

‘दैव्यं जनं वर्हिः आसादय । (मं. १) यदय ।
(मं. १०) दिव्यं विशुद्धोच्चो आसन्नोर मृदाया ओर
उनका सत्कार करो । वह एक बड़ा भारी, अथवा अद्वैत
इस सूक्तमें दोबार दिया है । सर्व साधारण जनता पूजा
नहीं करती, परन्तु दिव्य जनोको अर्थात् देवी गैरिभि पुत्र ।
शानियोंकोही पूजा यहाँ करी है । सज्जनोंको ही पूजा समझने
होनी चाहिये । जहाँ दुर्जन पूजे आदिते, वहाँ अरिपति होना
इसमें संदेह ही नहीं है ।

आदर्श पुद्ग

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
 ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

१. सोहिद्वयः- एक संकेतः सिद्धिः अन्य संकेतः
एक संकेतः सिद्धिः अन्य संकेतः

| | | |
|--|---------------------------|----|
| वक्ष्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि | । यद् वां रथो विभिष्यतात् | ३ |
| हविषा जारो अपां पिपतिं पपुरिर्नरा | । पिता कुटस्य चर्षणिः | ४ |
| आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा | । पातं सोमस्य धृष्णुया | ५ |
| या नः पीपरदिविना ज्योतिष्मती तमास्तिरः | । तामस्मे रासाधामिपम् | ६ |
| आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे | । युञ्जामादिवना रथम् | ७ |
| अरिब्रं वां दिवस्पुत्रु तीर्थे सिन्धूनां रथः | । धिया युयुज्ज इन्द्रवः | ८ |
| दिवस्कण्वास इन्द्रवो वसु सिन्धूनां पदे | । स्वं वत्रि कुह धित्सथः | ९ |
| अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः | । व्यख्यज्जिह्यासितः | १० |
| अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुर्य | । अदाशिं वि वृतिर्दिवः | ११ |

रथः जूर्णानां अधि विष्टपि यद् विभिः पतात्, वां
सः वक्ष्यन्ते ॥ ३ ॥

नरा ! पपुरिः पिता कुटस्य चर्षणिः अपां जारः हविषा
३ ॥ ४ ॥

मतवचसा नासत्या ! वां मतीनां आदारः सोमस्य
पातम् ॥ ५ ॥

। अदिविना ! ज्योतिष्मती या तमाः तिरः नः पीपरद
रथं अस्मे रासाधामि ॥ ६ ॥

। अदिविना ! पाराय गन्तवे मतीनां नावा नः आयातम् ।
युञ्जामा ॥ ७ ॥

गं दिवः धृषु अरिब्रं सिन्धूनां तीर्थे, रथः (भूलौ),
रथः धिया युयुज्जे ॥ ८ ॥

हे कण्वातः ! दिवः इन्द्रवः सिन्धूनां पदे वसु, स्वं
कुह धित्सथः ॥ ९ ॥

भाः उ अंशवे अभूत् उ । सूर्यः हिरण्यं प्रति, अतितः
ह्या व्यख्यत् ॥ १० ॥

पारं पदे ऋतस्य पन्थाः साधुर्य अभूत् उ । दिवः
वि अदाशिं ॥ ११ ॥

आप दोनोंका रथ प्रशांसेत स्वर्गधाममें जब पक्षियोंके
वेगसे दौड़ता जाता है, (तब) आपको उत्कृष्ट स्तुतियों कहीं
जाती हैं ॥ ३ ॥

हे नेताओं ! सबको परिपूर्ण करनेवाला, पालक, हतकर्तका
दर्शक, जलोंका घोषक (सूर्यदेव) अनसे (आपको) वृत्त
करे ॥ ४ ॥

हे स्तुतिप्रिय सत्यपालक ! आपको बुद्धियोंका द्वार खोलने-
वाले (इस) सोनका (अपनी) शक्तिके अनुसार पान करो ॥ ५ ॥

हे अश्विदेवों ! प्रकार देता हुआ जो हमें अन्वहारके परे
पहुँचाता है, वह अब हमें प्रदान करो ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवों ! (दुःखरूप समुद्रके) पार जानेके लिये
बुद्धियोंकी नौकाके साथ हमारे पान आइये । जाने रथको
भी जोतो ॥ ७ ॥

तुम्हारा एलोकके (सनान) निस्तृप्त नौकापान नदियोंमें
पार होनेके लिये उत्तारके स्थानपर (खड़ा है, तुम्हारा) रथ
(भूमिपर खड़ा है । अब तुम) सोमरथ (अपनी) बुद्धि
लिये करनेके साथ संयुक्त करो ॥ ८ ॥

हे कम्बवशके उवासको ! एलोकके (पक्ष) मोमरथ (जाता
है) सिन्धुओंके स्थानमें । पद पद (रथा है, अब) जाने
देरको, स्वरूपको, कहीं रखने ! ॥ ९ ॥

(उपरके) हिरण्य मूर्तके लिये । प्रकटित) तुम्हारा रथ ।
सूर्य सूर्यरथ (हो उभर रहा है । अब) जाने । हिरण्य (रथ)
होकर । व्यख्यज्जिह्यासितः सनान रथा है ॥ १० ॥

(दुःखके) पार करनेके लिये सत्यका करो । अब) जाने ।
नौका हुआ है । दिवस रथको भी जोतने लगा है ॥ ११ ॥

तत्तद्विद्वद्भिनोरवो जरिता प्रति भूपति
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा
युवोरुपा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्
उभा पितृमद्विनोभा नः शर्म यच्छतम्

। मदे सोमस्य पिप्रतोः ११
। मनुष्यच्छंभू आ गतम् १३
। कृता वनयो अकुभिः १४
। अविद्रियाभिरुतिभिः १५

सोमस्य पिप्रतोः मदे अश्विनोः तत् तत् इत् अवः
जरिता प्रति भूपति ॥ १२ ॥

शंभू ! मनुष्यत् विवस्वति ववसाना, सोमस्य पीत्या
गिरा आ गतम् ॥ १३ ॥

परिज्मनोः युवोः श्रियं अनु उपाः उपाचरत् । अकुभिः
कृता वनयः ॥ १४ ॥

हे अश्विना ! उभा पितृमद् उभा अविद्रियाभिः उतिभिः
नः शर्म यच्छतम् ॥ १५ ॥

सोमपानके आनन्दमें (किये हुए) अश्विने
(प्रसिद्ध) संरक्षणके कार्योंकी स्तोता लोग
करते हैं ॥ १२ ॥

हे सुखदायी अधिदेवों ! (आप दोनों) मेरे
स्थानमें जाकर बैठे थे, (वैसेही) सोमपान
हमारे द्वारा की गई) स्तुति सुननेके लिये यहां
चारों ओर परिभ्रमण करनेवाले तुम दोनोंकी
साथ उपा भी आ रही है । रात्रियोंसे सिद्ध कि
हविष्पाशका तुम दोनों) स्वीकार करो ॥ १४ ॥

हे अधिदेवों ! तुम दोनों रसपान करो । तथा
अविच्छिन्न संरक्षणोंसे हमें सुख दो ॥ १५ ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें आदर्श वीरोंका वर्णन है, उनके ये गुण इस सूक्तमें
वर्णित हुए हैं—

१ दस्रौ— शत्रुका नाश करनेवाले शूरवीर,

२ सिन्धु-मातरौ— सिन्धुदेश, सिन्धु नदीका देश अथवा
नदी प्रदेशको अपनी मातृभूमि माननेवाले,

३ रयीणां मनोतरौ— धनोंकी खोज करनेवाले, धनोंका
प्रबंध करनेवाले, धनोंसे सम्मान करनेवाले, धनोंके दाता, धनोंके
कारण मनोहर,

४ धिया वसुविदा— उत्तम कर्म और बुद्धिके अनुकूल
धन या स्थान देनेवाले, (मं. २)

५ मतवचसौ— मननपूर्वक मननीय भाषण करनेवाले,
६ नासत्यौ (न-अ-सत्यौ)— कभी असत्य भाषण या अयोग्य
कर्म न करनेवाले, (मं. ५)

७ अश्विनौ— घोड़ोंकी पालना करनेवाले (मं. ७)

८ शंभू— सुख देनेवाले, (मं. १३)

९ परिज्मानौ— चारों ओर परिभ्रमण करके सबकी स्थि-
ति निरीक्षण करनेवाले, (मं. १४)

इनमें ' सिन्धु-मातरौ ' यह पद इन वीरोंके जन्मस्थान-
की सूचना देता है । ' सिन्धु ' पदसे आजके सिंधदेशकी ही

कल्पना करना चाहिये ऐसी कोई बात नहीं है ।
नदीके पासका कोई प्रदेश होगा ।

वीरोंके वाहन

इस सूक्तमें अविदेवोंके विमानका स्पष्ट उल्लेख
१ वां रथः अधि विष्टपि विभिः पतार
दोनोंका रथ आकाशमें पक्षियोंसे उड़ता जाता है ।
पदसे तीन या तीनसे अधिक पक्षियोंका बोध होता है ।
नको पक्षी जोते जाते थे, ऐसा इससे पता लगता है ।
गीघ आदि पक्षी हैं और उत्तरी ध्वजके पास इनके
प्रतिघण्टेमें ३०० मीलोंने वेगसे उड़नेवाले पक्षी हैं ।
पक्षी जोते जाते होंगे । (मं. ३)

२ वां दिवः पृथु अरित्रं सिन्धूनां
युयुज्जे— आपका घुलोकेके समान विस्तृत आरु-
जानेवाला रथ नदियोंके उतारके स्थानपर सज होता
है । यहांका ' अरित्र ' पद बता रहा है कि यह
अन्य स्थानोंके वर्णनोंसे पता ऐसा लगता है कि
रथ आकाशमें विमानोंके समान, जलमें नौकाके समान
भूमिपर रथके समान चल सकता था । जलमें आरु-
जाता था, भूमिपर घोड़ोंसे और आकाशमें वेगवान्
' तीर्थ ' का अर्थ ' उतारका स्थान ' है । (मं. ८)

| | |
|--|---|
| अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा । | |
| अथाद्य दक्षा वसु विभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् । | ३ |
| त्रिपधस्थे वर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् । | |
| कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना | ४ |
| याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना । | |
| ताभिः प्वशस्मौ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा | ५ |
| सुदासे दक्षा वसु विभ्रता रथे पृक्षो बह्वतमश्विना । | |
| रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे घत्तं पुरुस्पृहम् | ६ |
| यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे । | |
| अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः | ७ |
| अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप । | |
| इपं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ वर्हिः सीदतं नरा | ८ |

हे ऋतावृधा ! मधुमत्तमं सोमं पातम् । हे दक्षा अश्विना ! अय अय रथे वसु विभ्रता दाश्वांसं उप गच्छतम् ॥ ३ ॥

हे विश्ववेदसा ! त्रिपधस्थे वर्हिषि मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् । हे अश्विना ! वां सुतसोमाः अभिद्यवः कण्वासः युवां हवन्ते ॥ ४ ॥

हे अश्विना ! युवं याभिः अभिष्टिभिः कण्वं प्र अवतम् । हे शुभः पती ! ताभिः अस्मान् सु अवतम् । हे ऋतावृधा ! सोमं पातम् ॥ ५ ॥

हे दक्षा अश्विना ! सुदासे रथे वसु विभ्रता पृक्षः बह्वतम् । समुद्रात् उत वा दिवः परि पुरुस्पृहं रयिं अस्मे घत्तम् ॥ ६ ॥

हे नासत्या ! यत् परावति स्थः, यत् वा अधि तुर्वशे (स्थः), अतः सूर्यस्य रश्मिभिः साकं सुवृता रथेन नः आ गतम् ॥ ७ ॥

अध्वरश्रियः सप्तयः सवना इत् उप अर्वाञ्चा वां वहन्तु । हे नरा ! सुकृते सुदानवे इपं पृञ्चन्ता वर्हिः आ सीदतम् ॥ ८ ॥

हे सत्यके संवर्धक देवों ! अत्यंत मधुर करो । हे शत्रुनाशक अधिदेवों ! और आत्र रक्षा कर दाताके पास आओ ॥ ३ ॥

हे सर्वज्ञाता ! तीन स्थानोंमें (फैलाये) कर) मधुररससे यज्ञको भरपूर करो । हे दोनोंके लिये सोमरस निकालकर तेजस्वी बुला रहे हैं ॥ ४ ॥

हे अधिदेवों ! तुम दोनोंने जिन अमोघ कण्वकी सुरक्षा की थी, हे शुभके पालनकर्ता ! सुरक्षा करो । हे सत्यके रक्षकों ! सोमरस पीओ ॥ ५ ॥

हे शत्रुविनाशक अधिदेवों ! सुदासके लिये रसकर (तुमने लाया था और) अब भी समुद्रसे अथवा आकाशसे अत्यंत प्रशंसनीय धन लाकर दो ॥ ६ ॥

हे सत्यके पालकों ! यदि तुम दूर हो, अथवा (ही हो, वहांसे) सूर्यके किरणोंके साथ अपने पुंर पास आओ ॥ ७ ॥

हिसारहित कर्मकी शोभा बढ़ानेवाले को पाल तुम्हें ले जाँय । हे नेता वारों ! उतन दाताके लिये अब देते हुए (तुम दोनों) बैठो ॥ ८ ॥

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।

येन शश्वद्बुधुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये १

उक्ष्येभिरर्वागवसे पुरुवस् अर्कैश्च नि हयामहे ।

शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना १०

नासत्या । सूर्यत्वचा तेन रथेन आ गतम् । येन दाशुषे
[वसु मध्वः सोमस्य पीतये ऊह्युः ॥ ९ ॥

रुवस् अवसे उक्ष्येभिः अर्कैः च अर्वाक् नि हयामहे । हे

ना ! कण्वानां प्रिये सदसि शश्वत् कं सोमं पपथुः हि १०

हे सत्यपालकों ! सूर्यके समान तेजस्वी रथसे आओ ।
जिससे दाताके लिये सदा धन (देनेके लिये और) मधुर
सोमरस पीनेके लिये (तुम दोनों) लाये जाते हैं ॥ ९ ॥

बहुत धनवाले (आप दोनोंकी हम अपनी) सुरक्षाके लिये
स्तोत्रों और काव्योंसे स्तुति करते हैं । हे अश्विदेवों ! कण्वों-
की प्रिय सभामें सदा आनन्ददायक सोमका पान तुमने किया
ही है ॥ १० ॥

सूक्तका ऋषि

यस्य सूक्तमें सूक्तकर्ता ऋषिका और उसके पूर्वजोंका वर्णन
पाया है, वह देखिये—

कण्वासः वां ब्रह्म कण्वन्ति (मं. २) — कण्वपुत्र या
गोत्रमें उत्पन्न ऋषि तुम्हारा स्तोत्र करते हैं । यहाँ
(कण्वन्ति) 'करते हैं' पद है ।

सुतसोमाः कण्वासः युवां हवन्ते (मं. ४) —
सोम निकालकर कण्वगोत्रके ऋषि तुम्हें बुलाते हैं, तुम्हारी
सेवा करते हैं ।

कण्वानां सदसि सोमं पपथुः (मं. १०) — कण्वोंकी
सोमपान तुम दोनोंने किया था ।

युवं कण्वं प्रावतं (मं. ५) — तुम दोनोंने कण्वकी सुर-
क्षा की थी ।

यस्य तरह कण्व ऋषिका और कण्वके गोत्रमें उत्पन्न हुए
गोत्र उल्लेख इस सूक्तमें है ।

वीरोंके गुण

यस सूक्तमें आये हुये वीरोंके गुणोंका विवरण इससे पूर्व हो
चका है, इसलिये उसके दुहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।
प्रावृषौ = सत्यको, यज्ञको पैलानेवाले, अश्विनौ = योगीको
रखनेवाले (मं. १), शुमस्पती = शुभ कार्य करनेवाले,
(मं. ५), विश्वपेदसौ = सब ज्ञान जाननेवाले, विद्वान्, बहुधुत,
(मं. ४), दसौ = शत्रुविनाशक, (मं. ६), नासत्या =
शत्रुके पालनकर्ता (मं. ७), नरौ = नेता (मं. ८), पुरु-

वस् = बहुतोंको बसानेवाले (मं. १०) ये गुण यहाँ प्रमुख-
स्थान रखते हैं ।

सोमरस

'तिरो-अहयं सोमं पिवतं' (मं. १) = कल निचोड़ा
हुआ सोमरस पीओ। इससे पता लगता है कि सोमसे रस निकाल-
कर १२ या २४ घण्टे हो जानेके बाद भी वह पीया जाता था ।
उसी समय पीया जाता था और कलका आज भी पीया जाता
था । 'मधुमत्तम' (मं. ३) उसमें = शहद मिलाया जाता
था, अति मधुर बनाया जाता था । 'मध्वा यज्ञं मिमिक्षतं ।'
(मं. ४) = इसकी मधुरिमासे यज्ञ भरपूर हो । अर्थात् याज्ञकोंको
भरपूर मीठा रस पीनेके लिये मिले और उपस्थित देवोंको भी मिले

रथ

अश्विदेवोंके रथमें (त्रि-यन्धुरः । मं. २) तीन स्थानों-
पर तीन बैठके, तीन वीर बैठनेके लिये तीन स्थान थे । (त्रिवृतः ।
मं. २) तीन वेष्टनोंसे यह रथ वेष्टित था । तीन चर्मोंके वेष्टन,
अथवा सबसे बाहरका वेष्टन सोने चांदीका भी होता था । गेंडेका
चर्म भी अधिक सुरक्षाके लिये बर्ता जाता था । (सुपेदसा ।)
उस रथपर सुन्दर चमक दमक रहती थी । (सुवृतः । मं. ७)
अच्छी तरह बचनेके लिये वेष्टित होनेसे रथ सुरक्षित रहता था ।
(सप्तयः वहन्तु । मं. ८) रथको छोड़े जाने से बचने के लिये । (सूर्य-
त्वचा । मं. ९) सूर्यके समान नुनहरी चमक रहती रहती
था । इससे स्पष्ट होता है कि यह रथ बड़ी शक्तिसे बनेका
जाता था ।

अध्वरः

यहां यज्ञका नाम 'अध्वर' आया है जिसमें हिंसा, कुटि-

लता, कपट, छल, मिथ्याचार, ढोंग न हो वही यज्ञका वर्णन यहां किया है। अर्थात् हिंसा न अध्वर कहलाता है।

(१७) उषा

(ऋ. १।४८) प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः । प्रगाथः=विषमा वृहत्याः, समाः सतोवृहत्याः ।

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

सह धुम्नेन वृहता विभावरी राया देवि दास्वती १

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।

उदीरय प्रति मा सूनृता उपश्चोद रायो मघोनाम् २

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दधिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ३

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।

अत्राह तत् कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ४

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।

जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ५

अन्वयः— हे दिवः दुहितः उषः ! नः वामेन सह वि उच्छ । हे विभावरी ! वृहता धुम्नेन सह (वि उच्छ) । हे देवि ! दास्वती राया (वि उच्छ) ॥ १ ॥

अश्वावतीः गोमतीः विश्व-सुविदः (उषाः) वस्तवे भूरि च्यवन्त । हे उषः ! मा प्रति सूनृताः उदीरय । मघोनां रायः चोद ॥ २ ॥

रथानां जीरा, अस्याः आचरणेषु ये दधिरे, श्रवस्यवः समुद्रे न, उषाः देवी उवास, च नु उच्छात् ॥ ३ ॥

हे उषः ! ते यामेषु ये सूरयः दानाय मनः प्र युञ्जते, एषां नृणां तत् नाम कण्वतमः कण्वः अत्र अह गृणाति ॥ ४ ॥

वृजनं जरयन्ती उषाः प्रभुञ्जती आ याति घ । सूनरी योषा इव । पद्वद् ईयते, पक्षिणः उन् पादयति ॥ ५ ॥

अर्थ— हे धुलोककी पुत्री उषा । हमारे पास तुम्हारे साथ प्रकाशित हो । हे तेजस्वी उषा ! बड़े प्रकाश (प्रकाशित हो), हे देवी । दातृत्व गुणके साथ प्रकाशित हो ॥ १ ॥

घोड़ों, गौओं और सब धनोंके साथ (रहनेवाली) सबके उत्तम निवासके लिये बहुत रीतिसे प्रकट होती उषा ! मेरे लिये सत्ययुक्त होकर उदित हो । धनवानोंके (हमारे पास) प्रेरित कर ॥ २ ॥

रथोंको प्रेरणा करनेवाली (उषा है), अतः इनके ये (रथ वैसे) आगे बढ़ाये जाते हैं, जैसे धनके वीर समुद्रमें नौका छोड़ते हैं । यह उषा (जैसी प्रकाशित होती रही (वैसे मविष्यमें भी) प्रकाशित रहेगी ॥ ३ ॥

हे उषा ! तेरे आगमन होनेपर ज्ञानी लोग अपना काम लगा देते हैं, उन (दानी) मनुष्योंका वह (प्रकाश) कण्वोंमें विद्वान् कण्व ऋषि यहां (उपः=कालमेंही) जल-पापका नाश करनेवाली, उषा देवी, (वरको) हुई आती है । जैसी साध्वी स्त्री (घरका पालन पाँववालोंको चलाती है, और पक्षियोंको उड़ाती है ॥ ५ ॥

| | |
|--|----|
| वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योवती । | |
| वयो नकिष्टे पतिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति | ६ |
| एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि । | |
| शतं रथेभिः सुभगोपा इयं वि यात्यभि मानुषान् | ७ |
| विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी । | |
| अप द्वेपो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप त्रिधः | ८ |
| उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितार्विवः । | |
| आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती विविष्टिषु | ९ |
| विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यवुच्छसि सूनरि । | |
| सा नो रथेन बृहता विभावति क्षुधि चित्रामधे हवम् | १० |
| उपो वाजं हि वंस्व याक्षिन्नो मानुषे जने । | |
| तेना वह सुकृतो अध्वरा उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः | ११ |

॥ समानं वि सृजति, भार्थिनः वि (सृजति), नोवती
न वेति । हे वाजिनीवति ! ते व्युष्टौ पतिवांसः वयः
॥ आसते ॥ ६ ॥

एषा शतं अयुक्त । सुभगा इयं उषाः परावतः सूर्यस्य
वनाद् भावि मानुषान् अभि रथेभिः वि याति ॥ ७ ॥

विषं जगद् अस्याः चक्षसे नानाम । सूनरी ज्योतिः
कृणोति । नवोनी दिवः दुहिता उषाः द्वेपः अप उच्छदप त्रिधः
(उच्छदप) ॥ ८ ॥

हे दिवः दुहितः उषः ! चन्द्रेण भानुना विविष्टिषु भूरि
भगं अस्मभ्यं आवहन्ती व्युच्छन्ती आ भाहि ॥ ९ ॥

हे सूनरि ! विश्वस्य प्राणनं जीवनं त्वे हि, यद् वि
क्षसि । हे विभावरी ! सा (त्वं) नः बृहता रथेन (आ
वि) । हे चित्रामधे । (नः) हवम् क्षुधि ॥ १० ॥

हे उपः ! यः चित्रः मानुषे जने (सं) वाजं हि वंस्व ।
ये वह्नयः त्वा गृणन्ति (तां) सुकृतः अध्वरान् उप
यह ॥ ११ ॥

७ (कण्व)

जो समान (कर्मचारी) को बाहर (कर्म करनेके लिये)
निकालती है, धन चाहनेवालोंको (भी बाहर लाती है) । यह
जलयुक्त उषा (क्षणभर भी) विश्राम नहीं करती । हे धन-
युक्त देवी ! तेरे उदय होनेपर उद सक्नेवाले पक्षी (अपने
घोंसलोंमें) नहीं बैठते ॥ ६ ॥

यह (उषा) सैकड़ों रथोंको जोतती है । यह धनवाली उषा
देवी दूरसे सूर्यके उदयस्थानसे मनुष्योंके पास रथोंके साथ
जाती है ॥ ७ ॥

सब जगद् इस (उषा) के प्रकाशके लिये प्रणाम करता है ।
(क्योंकि यही) उत्तम प्रेरणा करनेवाली ज्योति (प्रकाश)
करती है । धनवाली तुलोककी पुत्री उषा द्वेप करनेवालोंको
दूर करती है, और द्विषक शोधकोंको भी (दूर भगाती है) ॥ ८ ॥

हे तुलोककी पुत्री उषा देवी ! आन्धादशायक प्रकाशके साम
दशोंमें अखण्ड सौभाग्य हमें देती हुई, और अन्धकारको दूर
करती हुई प्रकाशित हो ॥ ९ ॥

हे उत्तम नेत्रों ! सबका प्राण और जीवन तुम्हारेमें ही है,
क्योंकि (तुम) अन्धकारको दूर करती हो । हे तेजस्विनी !
वह (तुम) हमारे पास बड़े रथसे (आओ) । हे विश्वधन
धनवाली ! (हमारी) प्रार्थना सुनो ॥ १० ॥

हे उषा ! जो विश्वधन (अथ) मनुष्यके पास है, उसे
तुम स्वाम्य करो । और जो आत्मे तुम्हें स्वीकारते हैं उनके
इश्वर यही उत्तम रीतिसे द्विषे यही धन्य करो ॥ ११ ॥

विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुपस्त्वम् ।
 सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुपो वाजं सुवीर्यम् ११
 यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदक्षत ।
 सा नो रयि विश्ववारं सुपेशसमुपा ददातु सुगम्यम् १२
 ये चिद्धि त्वामृपयः पूर्वं ऊतये जुह्वरेऽवसे महि ।
 सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राघसोपः शुक्रेण शोचिया १३
 उपो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
 प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरियः १४
 सं नो राया वृहता विश्वपेशसा मिमिक्षा समिच्छामिरा ।
 सं युञ्जेन विश्वतुरोपो महि सं वाजैर्वाजिनीवति १५

हे उपः ! त्वं सोमपीतये अन्तरिक्षात् विश्वान् देवान् आ वह । हे उपः ! सा (त्वं) गोमत् अश्वावत् उक्थ्यं सुवीर्यं वाजं अस्मासु धाः ॥ ११ ॥

यस्याः अर्चयः रुशन्तः भद्राः प्रति अदक्षत, सा उपाः नः विश्ववारं सुपेशसं सुगम्यं रयिं ददातु ॥ १२ ॥

हे महि ! त्वां ये चित् हि पूर्वं ऋपयः ऊतये अवसे जुह्वरे । हे उपः ! सा (त्वं) राघसा शुक्रेण शोचिया नः स्तोमात् अभि गृणीहि ॥ १३ ॥

हे उपः ! अद्य यत् भानुना दिवः द्वारी वि ऋणवः, नः अवृकं पृथु च्छर्दिः प्र यच्छतात् । हे देवि ! गोमतीः इयः प्र (यच्छतात्) ॥ १४ ॥

हे उपः ! नः वृहता विश्वपेशसा राया सं मिमिक्षा । इच्छामिः आ सं (मिमिक्षा) । हे महि ! विश्वतुरा युञ्जेन सं (मिमिक्षा) । हे वाजिनीवति ! वाजैः सं (मिमिक्षा) ॥ १५ ॥

उपाके साथ गौवें

इस सूक्तमें उपाका उत्तम आध्यत्म्य वर्णन हैं । जो पाठक अपने मनमें इसका पाठ करेगा, वेही इस आध्यत्मिक रमणी-यताको जान सकने हैं । उपाके साथ गौवों और घोड़ोंके होनेका वर्णन इस सूक्तमें है—

१ अश्वावृणवो गोमतीः (मं. २)— घोड़ों और गौवोंके उपाके उपा है ।

२ राघसाँ जोरा (मं. ३)— राघोंकी प्रेरणा करने-वाली उपा है ।

हे उपे ! (तुम) सोमपानके लिये अन्तरिक्ष से आओ । हे उपा ! गौओं और घोड़ोंके उत्तम वीर्य बढानेवाले अन्नका हम सबने चराने जिसकी ज्योतिषाँ प्रचायित और करना हैं, वह उपा हमारे लिये सब प्रकार वर्णन उपा रायी धन देवे ॥ ११ ॥

हे वडी उपा ! तुम्हें जिन प्राचीन ऋषियों के लिये और पालनाके लिये जुवाया था । हे तू पवित्र तेजसे युक्त सिद्धिके साथ हमारे लिये कर ॥ १२ ॥

हे उपा ! आज अपने तेजसे युक्तिके दोनों लिये दिया है । इसलिये हमें क्रूरतारहित विस्तृत वा

हे देवी ! गौओंसे युक्त अन्न (हमें दो) ॥ १३ ॥

हे उपा ! हमें बडे अनेक रूपोंवाले धनसे युक्त हमें (दो) । हे पूजनीय उपा ! सब शुभके दो । हे बलवाली उपा ! हमें बल दो ॥ १४ ॥

३ पशव इत्येत, पक्षिणः उक् पाठवाति । पाँववाले प्राणियोंको—मनुष्यों और पशुओंसे प्रेरित करती है, पक्षियोंको उड़नेके लिये प्रेरित

४ समनं अर्थिनः वि सृजति (मं. ४)— चाहनेवाले उद्यमी पुरुषोंको काम करनेके लिये प्रेरित

५ पतिवासः वयः नरिः आसतं (मं. ५)— पढ़नेवाले पक्षी अपने पोषणलिये नहीं उड़ते ।

६ उपा शतं अयुक्त, रथेभिः विर्यति (मं. ६)— उपा शतों रथोंकी जोड़ती और रथोंके

गोमत् अश्वावत् वाजं घाः (मं. १२)- गौओं वटे भारी विद्वान् हुए थे और कई साधारण थे ।
गोडोंसे युक्त अन्न हमें दो ।

गोमतीः इषः प्र यच्छतात् (मं. १५)- गौओंसे अन्न हमें दो ।

शं गौवें, घोड़े, रथ, पक्षी, पशु, कर्मचारी ये सब उषाके रहते हैं-ऐसा वर्णन है । अर्थात् उषःकालमें गौवें के लिये गोशालासे खुली की जाती हैं, वे हम्भारव करती गरसे वनमें जाती हैं, घोड़े भी इसी तरह जाते हैं और ।या अन्य पशु भी । पक्षी अपने घोसलोंको छोड़कर भक्ष्य के लिये आकाशमें उड़ते हैं, वीर अपने रथोंको जोतकर दूर अपने कार्य करने जाते हैं, कर्मचारी अपने अपने काम के लिये जानेकी तैयारी करते हैं, इस तरह उषाके साथ विश्व जाग उठता और अपने कर्ममें लग जाता है ।

उषःकालमें ऐसाही होता है । यह उषःकालका एक काव्यमय वर्णन है । उषःकालमें उठकर अपने करनेसे सबको धन, रत्न आदि मिलते हैं ।

दान धर्म

सूरयः मनः दानाय प्रयुञ्जते (मं. ४)- ज्ञानी जन मन दान देनेके कार्योंमें लगाते हैं अर्थात् उषःकालसे धर्म और यज्ञ शुरू होते हैं ।

नामजप

कण्वतमः कण्वः नाम गृणाति (मं. ४)- शत्रुओंमें जो विशेष विद्वान् है, वह श्रेष्ठ पुरुषोंके नामका करता है ।

हो 'नामजप' का भी वर्णन है और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ कण्व वंशज ही नाम है । इससे स्पष्ट है कि कण्वगोत्रमें कई ऋषि

उषाको प्रणाम

११ विश्वं जगत् अस्याः चक्षसे ननाम (मं. ८)- सब विश्व इस उषाके दृश्यको नमस्कार करता है, सूर्यको प्रणाम करता है ।

सूर्य, उषा आदि देवताओंको उदयके समय नमस्कार करनेकी वैदिक प्रथा यहां दिखाई देती है । आज भी उदयके समय सूर्यको प्रणाम करनेवाले हिंदुओं और पार्सीयोंमें बहुत हैं । दीप लगातेही दीपको प्रणाम करते हैं । नदी, सागर आदिको प्रणाम करते हैं । इस मंत्रमें उषाको प्रणाम करनेकी रीतिका उल्लेख है ।

शत्रुको दूर करना

१२ उषाः द्वेषः स्निघः अप उच्छत् (मं. ८)- उषा शत्रुओं, द्विषकोंको दूर करती है । अर्थात् रात्रिके समय चोर-डाकू, लुटेरे, घातक घूमते रहते हैं, उषःकाल होतेही वे अपने गुप्त स्थानमें जाकर छिपकर रहते हैं । इस तरह उषा इनको दूर करती है ।

पूर्व ऋषि

१३ त्वां (उपसं) पूर्वं ऋषयः जुह्वरे (मं. १४)- प्राचीन ऋषियोंने उषाका काव्य किया था । वैसाही काव्य हम कर रहे हैं, अतः—

१४ नः स्तोमान् अभि गृणीहि (मं. १४)- हमारे स्तोत्रोंको भी सुनो और उनकी प्रशंसा करो ।

यहां जैसा पूर्व ऋषियोंने उषा देवताका काव्य किया था वैसा हम नूतन ऋषि भी स्तोत्र कर रहे हैं ऐसा कथा है ।

इस सूक्तके अन्यभाव मंत्रोंके अर्थमें स्पष्ट हुए हैं ।

(१८) उषा

(ऋ. १।४९) प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः । अनुष्टुप् ।

उषो भद्रेभिरा गहि विवस्त्रिद् रोचनादधि । वहन्ववरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ?

अन्वयाः- हे उषः भद्रेभिः दिवः चित् रोचनात् आ-
ह । भरुणप्सवः सोमिनः गृहं त्वा उप वहन्तु ॥ १ ॥

अर्थ- हे उषा । कल्याणदायक बुद्धिकके नेत्रोंसे मार्गमें (यही) आओ । अरुण रंगवाले क्षिरा (घोड़े वा गौवें) सोमयाजके धर्ममें तुम्हें ले आओ ॥ १ ॥

सुपेदासं सुखं रथं यमप्यस्था उपस्त्वम्
वयाश्चित् ते पतत्रिणो द्विपद्यनुप्यदर्जुनि
व्युच्छन्ती हि रदिमभिर्विद्वमाभासि रोचनम् ।

। तेना सुश्रवसं जनं प्रावाण मुनिः
। उपः प्रारन्तूरनु दिवो अन्ते
। तां त्वामुपवसूयवो गीर्भिः कण्वा

हे उपः ! त्वं यं सुपेदासं सुखं रथं मध्यस्थाः । हे दिवः
दुहितः ! तेन अद्य सुश्रवसं जनं प्र अव ॥ २ ॥

हे अर्जुनि उपः ! ते कतूर अनु द्विपत् चतुष्यत् पतत्रिणः
वयः चित् दिवः अन्तेभ्यः परि प्र भरन् ॥ ३ ॥

हे उपः ! व्युच्छन्ती रदिमभिः विश्वं रोचनं भा भासि ।
हि तां त्वां वसूयवः कण्वा गीर्भिः अहूपत ॥ ४ ॥

हे उपा ! तुम जिस सुन्दर उषःकी
धूलोककी पुत्री । उससे आज मुझ
करो ॥ २ ॥

हे शुभ्र वर्गवाली उपा ! तेरे (कण्वा)
द्विपाद मानव, चतुष्पाद पशु और उदके
अन्ततक गमन करते हैं (और अनेक अन्तः)
हैं ॥ ३ ॥

हे उपा ! अन्यकारको दूर दूरती हुई अन्तः
जगतको प्रकाशित करती हो । यन्त्रों को
अपने स्तोत्रोंसे उस सुन्दर वस्त्र गाते हैं ।

ऋषिनाम

इस सूक्तके अन्तिम मंत्रमें ऋषिनामका उल्लेख है—
'कण्वाः गीर्भिः अहूपत (मं. ४)' कण्वा ऋषि अपनी
वाणियोंसे उपाके काव्य गाते हैं ।

'अर्जुनि उपः' (मं. ३)—श्वेत वर्गवाली उपा । प्रातः—
कालकी उपाकाही वर्णन है । श्वेतवर्ण दिनका है वह जिसमें

धुन धुनमें अधिकाधिक मिलता जाता है वह
ही उपा है ।

इस समय मनुष्य, पशु, पक्षी, अनेक अनेक
हैं । यह भी प्रभाव समयही है । इसके तिर
यमें होता है । पशु पक्षी घोषलोंमें आते हैं, नक्षत्र
हैं, अपने कार्योंसे धामके समय निवृत्त होते हैं ।

(११) सूर्यसे आरोग्य

(क. १।५०) प्रस्कणवः काण्वः । सूर्यः (११-१३ रोगप्य उपनिषदः, १३ अन्त्योऽध्वनः द्विपद्यनु)
गायत्री, १०-१३ अनुष्टुप् ।

उतु त्वं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः

अप त्वे तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्नुमिः

अदृश्रमस्य केतवो वि रदमयो जनां अनु

। द्यो विश्वाय सूर्यम् १

। सूराय विश्वचक्षसे २

। भ्राजन्तो अग्नयो यथा ३

अन्वयः— केतवः त्वं जातवेदसं देवं सूर्यं विश्वाय रतो
उत उ वहन्ति ॥ १ ॥

ये तायवः यथा, नक्षत्रा अक्नुमिः, विश्वचक्षसे सूराय
अप यन्ति ॥ २ ॥

अस्य केतवः रदमयः जनां अनु वि अदृश्रम्, यथा
भ्राजन्तो अग्नयः ॥ ३ ॥

अर्थ— क्षिरण उस वेदके प्रकाशक दिव्य सूर्य
दर्शन करानेके लिये ऊपर उठाते हैं ॥ १ ॥

चौरांकि समान, वे नक्षत्र राशिके धाम, यन्त्रोंके
(आगमन होनेपर) दूर भाग जाते हैं ॥ २ ॥

द्वय (सूर्यके मृचक) क्षिरण लोगोंको अनुकूल
निरीक्षण करके देखते हैं । वे तेजस्वी अग्नि से तेज

| | | |
|---|--|----|
| तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कुदासि सूर्य | । विश्वमा भासि रोचनम् | ४ |
| प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्कुदेपि मानुषान् | । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दशे | ५ |
| येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनु | । त्वं वरुण पश्यसि | ६ |
| वि घामेपि रजस्पृध्वद्वा मिमानो भक्तुभिः | । पश्यन्नमानि सूर्य | ७ |
| सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य | । शोचिष्केशं विचक्षण | ८ |
| अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः स्रो रथस्य नप्यः | । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः | ९ |
| उद् वयं तमसस्पति ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् | । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् | १० |
| उद्यम्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् | । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय | ११ |
| शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि | । अथो हारिद्रिवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि | १२ |

५ ! (त्वं) तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कुदासि ।

विश्वं भा भासि ॥ ४ ॥

६) देवानां विशः प्रत्यङ् उद् एषि । मानुषान् प्रत्यङ्,

) विश्वं स्वः हरो (प्रत्यङ् उद् एषि) ॥ ५ ॥

पावक वरुण ! त्वं जनान् भुरण्यन्तं येन चक्षसा अनु

॥ ६ ॥

सूर्य ! (त्वं) पृथु रजः घां, बहा भक्तुभिः मिमानः,

नि पश्यन् वि एषि ॥ ७ ॥

विचक्षण सूर्य देव ! सप्त हरितः शोचिष्केशं त्वा रथे

व ॥ ८ ॥

९ : रथस्य नप्यः शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त । ताभिः स्वयु-

क्तिभिः ॥ ९ ॥

१० वं तमसः परि ज्योतिः, उत्तरं देवत्रा देवं सूर्यं पश्यन्तः,

११ ज्योतिः उद् भगन्म ॥ १० ॥

१२ सूर्य मित्रमहः ! अय उद्यन्, उत्तरां दिवं आरोहन्,

हृद्रोगं हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

१३ हरिमाणं शुकेषु रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रिवेषु

१४ रिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

हे सूर्य ! (तू आकाशमें) तैरता है, सबका दर्शन करता है, प्रकाशको फैलाता है । दीप्तिमान् विश्वको भी प्रकाशित करत है ॥ ४ ॥

(तूम्) देवोंकी प्रजाके सामने उदित होते हो । मनुष्योंके सामने, (तथा) सब प्रकाशके दर्शन होनेके लिये प्रत्यक्ष उदित होते हो ॥ ५ ॥

हे पवित्रता करनेवाले वरुणिय देव ! तूम् सब जनोंको और इस गतिमान् जगत्को जिस प्रकाशसे (रूपासे) देखते हो, (वही हन चाहते हैं) ॥ ६ ॥

हे सूर्य ! (तूम्) विस्तृत रजोलोकसे और घुलोकसे, दिन-सकौ रात्रियोंके साथ नापन करते हुए और सबके जन्मोंकानिरीक्षण करते हुए जाते हैं ॥ ७ ॥

हे प्रकाशक सूर्य देव ! सात क्षिरणरूप घोट, शुद्ध क्षिरणवाले तुम्हें रथमें उठाकर ले जाते हैं ॥ ८ ॥

सूर्यने रथको ले जानेवाली, शुद्ध करनेवाली सात (घोटियोंको रथके साथ) जोत दिया है । उन स्वयं जोती हुई (घोटियोंसे सूर्यदेव) जाते हैं ॥ ९ ॥

तन सब अन्धकारसे ऊपर उठी ज्योतिषी (देखकर), उससे भी अधिक तेजस्वी देव सूर्यको देखते हुए, अन्तमें उच्छ्वसे उत्कृष्ट ज्योतिषी प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

हे मित्रवदह मदनोन्म सूर्य ! तू आज उदित होता हुआ, उत्तर दिशाके घुलकर चउता हुआ, मेरे हृद्रोग और नाशक रोगका नाश कर ॥ ११ ॥

तू मेरा हरिमा (पंडित) रोग शुद्ध (तेने) नाम द पक्षमें तथा हारिद्रिजने रथ देता है । और दरे उच्छ्व मेरे हरिमा रोगको रथ देता है ॥ १२ ॥

। द्विपन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं

अयं आदित्यः विश्वेन सहसा सह उत अगात् । मह्यं
द्विषन्तं रन्धयन्, अहं द्विषते सो रथम् ॥ १३ ॥

यह सूर्य सब बलके साथ उदित हुआ
शत्रुका नाश करे, पर मैं अपने द्वेषके बलके
(ऐसा भी वही करे) ॥ १३ ॥

सूर्यकिरणोंसे रोगोंकी चिकित्सा

इस सूक्तका देवता सूर्य है और सूर्यकिरणोंसे रोग दूर करनेकी सूचना इस सूक्तमें है। विशेष कर हृद्भोग, हृदयकी दुर्बलता और पालक रोग, पाण्डु रोग आदिको दूर करनेका इसमें निःसंदेह उल्लेख है। 'रोगघ्न्य उपनिषद्ः' ऐसा इस सूक्तका संकेत सूत्रकारने दिया है वह योग्यही है। रोग दूर करनेकी यह विद्या है।

मन्त्र १ से ७ तक सूर्यका वर्णन है। आठवें मन्त्रमें 'शो-
चिप्-केशं' पद सूर्यका विशेषण है जिसमें सूर्य-प्रकाशमें
शुद्धता करनेका गुण है ऐसा सूचित हुआ है। शुद्धता करनेका
ही अर्थ रोगबीजोंका नाश करके आरोग्य देना है। सूर्यके
किरणोंमें सात रंगोंके किरण होते हैं। सूर्यकिरण श्वेत रंगका
है, उसको काचसे विभिन्न क्रिया तो सात रंग स्पष्ट दीखते हैं।
इनमें रोग दूर करनेकी शक्ति है। वर्ण-चिकित्साका इस तरह
संघर्ष आता है।

आगे ९ म मन्त्रमें किरणोंका नाम ' शुन्यधुवः ' है यह भी किरणोंका शोधक गुण बता रहा है । शोषनघेदी शुद्धता होकर रोग दूर होते हैं ।

मन्त्र ११ और १२ में 'हृद्रोग, हरिमा' इन रोगोंके दूर करनेका उद्देश है। हरिमा रोगको शुक्रों और वृक्षोंमें फैलनेका

भाव यही है कि यह हरिमा यदि किसी रूप में
वह मनुष्यों के शरीर में न रहे, वृक्षों और जलोत्पन्नों
हरिमा, हरापन रहने के लिये परमेश्वर ने वृक्षों को
और स्थावरों में वृक्ष बनाये हैं । मनुष्यों में
नहीं होना चाहिये । शुद्ध रक्त न होनेसे हरिमा
दिखाई देता है, सूर्यकिरणोंसे वह हरिमा
मनुष्य हृष्टपृष्ट और आरोग्यसंपन्न हो जाता है ।

सूर्यकिरणमें (चिद्वेन सहसा सह।
प्रकारका बल रहता है। सूर्यकिरणसे शरीरके
तपानेसे वह बल प्राप्त होता है। भोजन पूर्ण न
सूर्यकिरणोंको शरीरपर रखना योग्य नहीं है।
जलसे ज्ञान करके सूर्यकिरणोंमेंही संधा,
गायत्री जप, सूर्योपस्थान आदि घण्टा देह
करनेसे पर्याप्त प्रमाणमें सूर्यकिरण-ज्ञान होता है
अच्छा होता है। अतिशीत जहां होता है वहां
लिये सुबह ९.१० बजेका समय या धार्मिक १५
निकालना योग्य होगा। यह शरीरका अन्तर्गत
अपने शरीरकी शक्ति देखकर शनैः शनैः करना

‘ मेरे शत्रु मरें, पर मैं शत्रुके अधीन न होऊँ।
सूक्तम् । अन्तिम मुद्रेश स्मरण रत्ननेथोपय १ ।

(अष्टम मण्डल)

अथ वालखिल्यम्

(२०) प्रभावी वीर

(अ. ८.१.१) प्रसङ्गः काण्वः । इन्द्रः । प्रणवाः = (विष्णो वृद्धी, सप्त सतोद्भूतौ)
 अग्नि प्र वः सुराद्यसमिन्द्रमर्चं यथा विदे ।
 यो जलित्त्यो मन्त्रः —

यो जतिनृभ्यो मधवा पुरुषसुः सहस्रेणैव शिक्षति

अन्वयः— यः सुखं इन्द्रे, यथा विद् (तथा),

अथ चत्वारिंशदध्यायः ।

अथ- आपके लिये उत्तम गिद्ध देना है ॥
तद् गिद्ध-प्रसिद्ध है (उम तरह), दूध छो ॥
मनवाज्जन्द वट्टदी मनवाजा होने के कारण उत्तम है ॥
पद्यों की संख्यामें (मन) देता है ॥ ३ ॥

अजिरासो हरयो ये त आरागो यानाएव प्रमथिगः ।

येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिरपिभ्यं स्वदेवो

एतावन्स इमं इन्द्र मुञ्चस्य गोमनः ।

यया प्राप्नो मयवन्मेध्यातिथिं यया नीपातिथिं यने

यया कण्वे मयवन्सदस्यवि यया पक्वे दशवज्रे ।

यया गोशयं असनोऽक्रजिश्वा नीन्द्र गोमादिरपत्यन्

ये ते हरयः, वाता इव, प्रमथिगः अजिरासः भागवः,

येभिः मनुषः अपत्यं परिईयसे, येभिः विदसे स्वः इमे, (तेः
भागवि) ॥ ८ ॥

हे मयवन् इन्द्र ! धने यया मेध्यातिथिं प्र प्राप्नो,
यया नीपातिथिं (प्र जावः), एतावतः ते गोमनः मुञ्चस्य
इमं ॥ ९ ॥

हे मयवन् इन्द्र ! यया कण्वे गोमन् हिरण्यवन् असनोः ।
यया त्रसदस्यवि, यया पक्वे, दशवज्रे, यया गोशयं, अक्रि-
श्वनि (असनोः) ॥ १० ॥

सूक्तमें ऋषियोंके नाम

इस सूक्तके मंत्र ५ और १३ में 'कण्व' का नाम आया
है। यह इसी सूक्तके ऋषि प्रस्कन्वका पिता या गोत्रप्रवर्तक
है। इस कण्व ऋषिके मंत्र इसी ग्रंथमें प्रारंभमें दिये हैं।
'मेध्यातिथि और नीपातिथि' ये भी कण्वके गोत्रमें
ही उत्पन्न हुए ऋषि हैं। मेध्यातिथिके मंत्र ऋ. ८।१।
३-२९ (मंत्र २७), ८।३ में मंत्र २४ है, ८।३३ में
मंत्र १९ है मिलकर ७० मंत्र हुए।

नीपातिथि के मंत्र ऋ. ८।३।१-१५ कुलमंत्र १५ है।
इसके अतिरिक्त त्रसदस्यु, पक्व, दशवज्रे, गोशयं, अक्रिश्वा ये
नाम इस सूक्तके १० वें मंत्रमें हैं। इनके ऋग्वेदमें ये स्थान हैं—
अक्रिश्वा भारद्वाजः— ऋ. ६।४९-५२ (मंत्र ६३) ;
९।३८ (मं. १२) ; ९।१०-८।६, ७ (मं. २) कुलमन्त्र ७७
हैं।

त्रसदस्युः पौष्टकृत्यः— ऋ. ४।४२ (मं. १०), ५।२७
(मं. ६) ; ९।११० (मं. १२) कुलमंत्र २८ हैं।

पक्व, दशवज्रे, गोशयंके मंत्र मिलते नहीं हैं। ये ऋषि प्रस्क-
न्व ऋषिके पूर्व समयके प्रतात होते हैं। क्योंकि 'जैसा इनको
मुझे दान दिया या वैसा हमें दो। ऐसी प्रार्थना यहां है। इस-

को मुझसे पौष्ट, मुझे धनान् प्रमुञ्च्यते।
भांजयामा दे, जिनमें तुम मनुष्योंके तब पुत्र
और जिनमें यन् विपुला निरीक्षण करते हो, (जैसा)
आओ ॥ ८ ॥

हे धनवान् इन्द्र ! तुझमें जैसी तुझे कल्पित
पूरया हो यी, जैसी नीपातिथिके (सो यी) के
इमें गोशयके साथ धन (मिलकर) तुझमें मिले।
हे धनवान् इन्द्र ! जैसा तुझमें कण्वके किये
मय धन दिया या, जैसा त्रसदस्यु, पक्व, दशवज्रे
और अक्रिश्वाको दिया या (वैसा हमें दो) ॥ १० ॥

लिये इन ऋषियोंका प्रस्कन्वके पूर्व जनने देवों

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें इन्द्रको आदर्श पुरुष बतते हुए
किया गया है—

१ सुरावसः— उत्तम धनवान्, उत्तम ऋषि

२ मघवा, पुरुवसुः— धनवान्, (मं. १)

३ शतानीकः— सैकड़ों सेना-विनोदके
वाला,

४ दाशुपे वृत्राणि हन्ति— शतके शत्रु-
शत्रुओंका नाश करता है।

५ पुरुभोजः— बहुत भोजन देनेवाला, (मं. १)

६ मन्वसानः— आनन्द प्रसन्न, (मं. ३)

७ विभूतिः— विशेष प्रभावो,

८ अक्षितवसुः— अशुभ धनवाला,

९ उग्रः— शूरवीर,

१० वज्री— वज्र-धारो, (मं. ६)

११ महेमतिः— महा बुद्धिमान् (मं. ७)

इस सूक्तका आदर्श मानव इन गुणोंके पुत्र है।
सूक्तके अर्थमें पाठक देख सकते हैं।

(नक्षत्र मण्डल)

(२१) सोमरस

(क्र. ९।९५) प्रस्कण्वः काण्वः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

| | |
|--|---|
| कनिक्रान्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः । | |
| नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः | १ |
| हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयतिं वाचमरितेव नावम् । | |
| देवो देवानां गुह्यानि नामाऽऽविष्कृणोति वह्निपि प्रवाचे | २ |
| अपामिवेदूर्मयस्तर्जुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ । | |
| नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाऽऽच विशन्त्युशतीरुशन्तम् | ३ |
| तं मर्त्यजानं महिषं न सानावंशं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् । | |
| तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो विभर्ति वरुणं समुद्रे | ४ |

— सृज्यमानः हरिः आ कनिक्रान्ति । पुनानः
 सीदन् । नृभिः यतः गाः निर्णिजं कुरुते । अतः
 भाभिः जनयत ॥ १ ॥

हरिः ऋतस्य पथ्यां वाचं इयति, हरिता नावं
 देवानां गुह्यानि नाम वह्निपि प्रवाचे भाविः
 ॥ २ ॥

इव ऊर्जयः इव तर्जुराणाः मनीषाः सोमं अच्छ
 नमस्यन्तीः उप यन्ति च सं (यन्ति) च ।
 च उशन्तं आ विशन्ति ॥ ३ ॥

जानं, महिषं न, सानौ उक्षणं गिरिष्ठां तं भंशुं दुहन्ति ।
 शानं मतयः सचन्ते । त्रितो वरुणं समुद्रे विभर्ति ॥ ४ ॥

अर्थ— धोया जानेवाला हरेरंगवाला सोम शब्द करता है ।
 शुद्ध होता हुआ (सोम) पात्रके पेटमें जा बैठता है । मनुष्यों-
 द्वारा तैयार किया गया (सोम) गौ (के दुग्धका) रूप धारण
 करता है । इसके लिये मनन करनेयोग्य (स्तोत्र) अपनी शक्तिके
 अनुसार बनाओ ॥ १ ॥

निचोडा जानेवाला हरेरंगका सोम सत्यमार्गके प्रचारकी भाषा
 बोलता है, जैसे नाविक नौका (चलाता है) । यह सोम देव
 देवताओंके गुह्य नाम, आसनपर बैठे प्रवचनकारके लिये (उसके
 प्रवचनमें) प्रकट करता है ॥ २ ॥

जलतरङ्गोंके समान त्वराशील कवियोंकी बुद्धियों सोमके
 पासही (वर्णन करनेके लिये) दौड़ती हैं । नमन करनेवालों
 (बुद्धियों, सोमके पास) जाती हैं और उस (के वर्णनमें) रमती
 हैं । इच्छा करनेवाली (मतिवों) अभीष्ट (सोमके वर्णनमें)
 प्रविष्ट होती हैं ॥ ३ ॥

धोते हुए, जैसेके समान, पर्वत-शिखरपर रहनेवाले पेटके
 (समान बलवर्धक) उस दक्षिमान (सोमके पात्रके) दुहने
 हैं । उस इष्ट (सोम) को (सचकी) बुद्धियों चारती हैं (मान
 करती हैं) । तीन स्थानों (ने रहकर लड़ने) बाटा (इन्द्र) पर-
 सोम (सोम) को जलमें धारण करता (और धोता है)
 ॥ ४ ॥

(२२) आपः

(अथर्व. ७।३९) प्रस्कण्वः । आपः, सुपर्णः, वृषभः । त्रिष्टुप् ।

दिव्यं सुपर्णं पयसं धृष्टन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।

अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयति १

(२३) सरस्वान्

(अथर्व. ७।४०) प्रस्कण्वः । सरस्वान् । २ भुरिक्, त्रिष्टुप् ।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतं उपतिष्ठन्त आपः ।

यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे १

आ प्रत्यञ्चं दाशुपे दाभ्यंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।

रायस्पोपं भवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् २

(२४) सुपर्णः

(अथर्व. ७।४१) प्रस्कण्वः । श्येनः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।

तरन्विध्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् १

सू. ७।३९।१) = (दिव्यं पयसं सुपर्णं) दिव्य जल धारण करनेवाले, (अपां धृष्टन्तं वृषभं) जलकी बड़ी करनेवाले, (ओषधीनां गर्भं) औषधियोंका गर्भ बढानेवाले, अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तं) सब प्रकारसे वृष्टिसे वृष्टि करनेवाले, गो देव (नः गोष्ठे आ स्थापयतु) हमारी गोशालाकी ओर पन करे ।

अर्थात् हमारी गोशालाके चारों ओर अच्छी तरह वृष्टि हो । और गाइयोंको हरा घास पर्वति प्रमाणमें खानेको मिले ।

(सू. ७।४०।१-२) = (सर्वे पशवः यस्य व्रतं यन्ति) सब जिसके नियमानुसार चलते हैं, (यस्य व्रते आपः उपतिष्ठन्तः) जिसके नियममें जल रहते हैं, (यस्य व्रते पुष्टपतिः निविष्टः) सबके नियममें पोषणकर्ता रहता है, (तं सरस्वन्तं अवसे हवामहे) उस सरस्वान् देवकी हम अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करते ॥ १ ॥

दाताको प्रत्यक्ष दान देनेवाले, पोषण और पालन करनेवाले, सरस्वान्, धनदाता, धनके पोषक, यशके दाता, धनका स्थान जैसे इस देवकी हम यहां रहकर प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

यह भी मेघदेवकीही प्रार्थना है । मेघकेही आधारपर पशु जीवित रहते हैं, उसीकी वृष्टिसे नदियाँ बहती हैं, उसीसे धान्य फलफूल उत्पन्न होकर सबकी पुष्टि होता है, यह सरस्वान् देवही सबका पोषणकर्ता है ।

(सू. ७।४१।१-२) = (अवसान-दर्शः, नृचक्षाः श्येनः) अन्तिम अवस्थाको जाननेवाला, मनुष्योंको जाननेवाला, श्येन पक्षी जैसा आकाशमें घूमनेवाला, (धन्वानि अति अपः ततर्द) रेतिले देशोंपर अति वृष्टि करता है, तथा (विश्वानि अवरा रजांसि) सब अवरा भूमियोंपर भी वृष्टि होती है, इन्द्र नामक मित्रके साथ (शिवः) कल्याणरूप होकर (तरन्) सबको दुःखोंसे पार करता है और (आ जगम्यात्) सबको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

(२७) इन्द्राविष्णू

(अथर्व. ७।४४) प्रस्कण्वः । इन्द्र, विष्णुः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

उभा जिग्यधुर्न परा जयेधे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्

१

(२८) ईर्ष्यानिवारणम्

(अथर्व. ७।४५) प्रस्कण्वः, २ अथर्वो । ईर्ष्यापनयनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद्विभ्वजर्तनात्सिन्धुतस्पर्याभृतम् । दूरात्त्वा मन्य उद्धृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् १
अमेरिवास्त्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्गाशिमिव शमय २

७।४४।१) — दोनों इन्द्र और विष्णु (वि जिग्यधुः) मरते हैं । वे कभी (न परा जयेधे) पराजित नहीं होते । कोई भी पराजित नहीं होता । हे इन्द्र और विष्णो ! जय ! (अपस्पृधेथां) शत्रुके साथ स्पर्धा करते हैं तब (तव दह शत्रुका सैन्य (त्रेधा वि ऐरयेथां) तीन प्रकारसे हैं ॥ १ ॥

कहा है कि अपनी तैयारी ऐसी करो कि सदा शत्रुका और अपना जय होता रहे । शत्रुका बल अनेक विभा-
ग होकर तितरबितर होकर भाग जावे ।

७।४५।१-२) = (विभ्वजनीनात् जनात्) सब जन-

ताके हित करनेवाले जनोसे (सिन्धुतः परि आभृतं) सिन्धुके भी पारसे यह (ईर्ष्यायाः नाम भेषजं) ईर्ष्याका प्रसिद्ध औषध है, दूरसे लुसे लाया है यह मैं जानता हूँ ॥ १ ॥

हे औषधे ! तू इस ईर्ष्याकी अमिको, इस दावानलको अर्थात् (एतस्य एतां ईर्ष्यां) इसके इस ईर्ष्याकी अमिको (शमय) शान्त कर ॥ २ ॥

ईर्ष्या, स्पर्धा, अर्थात् घुरी स्पर्धाको शान्त करना चाहिये । इस सूक्तमें औषधिका नाम नहीं है । यहाँ कौनसी औषधि कही है इसकी खोज करनी चाहिये ।

यहां प्रस्कण्वके अथर्ववेदके
मंत्र समाप्त हैं ।

कण्व दर्शनका द्वितीय विभाग समाप्त ।



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(६)

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् १००३

मूल्य १) रु०





ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(६)

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् १९०३

मूल्य १) रु०





ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(६)

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् १००३

मूल्य १) रु०





ऋग्वेदका सुवैद्य भाष्य

स व्य ऋ षि का दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

(१) इन्द्र

(क्र. १।५१) सव्य आह्निरसः । इन्द्रः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्वं मेपं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो वर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति नानुपा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत १
अभीमवन्वन्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनीं सुनतारुहत् २
त्वं गोव्रनङ्गियोभ्योऽवृणोरपोताव्रये शतदुरेषु गातुविह् ।
ससेन विद्धिमदायावहो वस्वाजावाद्रि वावसानस्य नर्तयन् ३

अन्वयः— त्वं मेपं, पुरु-हूतं, ऋग्मियं, वस्वः वर्णवं
गीर्भिः अभि नदत । यस्य नानुपा (कर्माणि)
न वि-चरन्ति, भुजे (तं) मंहिष्ठं विप्रं (इन्द्रं)
मर्चत ॥ १ ॥

उपः दक्षासः ऋभवः ईं सु-अभिष्टिं अन्तरिक्ष-प्रां तवि-
षीः आ वृतं मद-च्युतं इन्द्रं अभि अवन्वन्, (तं) शत-
क्रतुं जवनीं सुनता (य) आ अरुहत् ॥ २ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं अह्निरः-अस्यः गोवं अयं अयुजोः, उत
ये शत-दुरेषु गातु-विह् (अश्वः) । वि-मदाय ससेन
एवमभ्युदयः । अदि वर्तयन् आजी वयसानस्य (सजिवा
यः) ॥ ३ ॥

अर्थ— उस दुन्दुभी दच्छा अश्वराज्ये बहुतोमे आनयित
सुनितके योग्य भनके समुद्र इन्द्रके सुनितों द्वारा पतय द्यो ।
जिस इन्द्रके कर्मसे अनुष्ण-हितकारी धर्म सुन्दरी क्षिपिते माना
(सुखकारी होते) है । शतनकेविने उत १०० मनी इन्द्रके
पूजा करो ॥ १ ॥

रक्षण और कर्मसे दक्ष अयुजोमे उत अश्वो गवो
आकाशमे व्यापक अनेक अनेक सुख, सुखे-मर्चते सुनि-
तके इन्द्रका सार दिया । उत उस मैदके कर्मसे अश्वराज्य
इन्द्रके पास अश्वरा देवेवाली नव नव निव न न सुनित ।
(इन्द्रके वर्तय वसतिमे विम्व उत)

हे इन्द्र ! तुमे अह्निरा गोवंके मेरे न गोवं सुनित दक्षिके
अनेको पूजा कर देना, और नो विम्व मेरे नो गोवं
अश्वराज्य अनेको सार दिया । तुमे अश्वराज्य अनेको
समानके सुख दक्ष दिया । उत अश्वराज्य सुनिते अश्व
राज्यके अश्वराज्यके सुनिते ॥

~~CONFIDENTIAL - SECURITY INFORMATION~~

1. The first part of the document is a list of names and titles, including "The Hon. Mr. Justice" and "The Hon. Mr. Justice".

3/10
श्रीमद् रामलाल शास्त्री

आ यं पृणन्ति दिवि सन्नयर्हिपः समुद्रे न सुभ्वरः स्वा अभिष्टयः ।

तं वृत्रहस्ये अनु तस्थुरुतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अहुतःसवः ४

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रक्षीरिव प्रवणे सन्धुरुतयः ।

इन्द्रो यद् वज्री धृपमाणो बन्धसा भिनद् बलस्य परिधीरिव त्रितः ५

परीं घृणा चरति तित्विपे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्रमाशयत् ।

वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिभ्वनो निजघन्ध हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ६

द्वदं न हि त्वा न्यृपन्त्यूर्मयो ब्रह्मणीन्द्र तव यानि वर्धना ।

त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ७

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतकतविन्द्र वृत्रं मनुपे गातुयन्नपः ।

अयच्छया बाहोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्य दशे ८

२-सर्हिपः सुभ्वः स्वाः अभिष्टयः यं दिवि, समुद्रे

। पृणन्ति, शुष्माः नवाताः अहुतः-सवः ऊतयः वृत्र-

। इन्द्रं अनु तस्थुः ॥ ४ ॥

तयः अस्य युध्यतः मदे, रक्षीः- इव प्रवणे, स्व-वृष्टिं

सन्धुः । यद् बन्धसा धृपमाणः वज्री इन्द्रः त्रितः

रीर-इव बलस्य भिनद् ॥ ५ ॥

तत् (हे) इन्द्र ! दुर्गृभिभ्वनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः

तुं नि-जघन्ध (तदा) घृणा हं परि चरति, शवः

बधे । (वृत्रः) अपः पृत्वी रजसः युज्यं आ अ-

द ॥ ६ ॥

(हे) इन्द्र ! यानि तव वर्धना ब्रह्मणि (सन्ति,

नि) ऊर्मयः द्वदं न हि त्वा नि-कृपन्ति । त्वष्टा ते युज्यं

द शवः वावृधे, अभिभूति-ओजसं (य) वज्रं ततक्ष ॥ ७ ॥

(हे) संभृत-कतो इन्द्र ! (तव) बाहोः आयसं वज्रं

त्वष्टाः । मनुपे अयः गातु-यद् हरि-भिः वृत्रं यजन्त्याद्

। तथे सूर्यं दिवि आ अधारयः ॥ ८ ॥

दर्भके आसनपर बैठनेवालोंकी उत्तम प्रकारसे उत्पन्न निर्जो इच्छायें झुलोकके संबंधमें, जैसे समुद्रको नदियों जैसे, पूर्ण की जाती हैं । तथा बलवती शत्रु-रहित सुन्दर रूपवाली रक्षक शक्तियों युद्धमें उसी इन्द्रके पीछे पीछे जाती हैं ॥४॥

रक्षक शक्तियाँ इस युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आनन्दमें रहकर, जैसे बहनेवाले जलप्रवाह नीचे की ओर जाते हैं वैसे वे अपनी वृष्टिके जलप्रवाहके समान उसके पास जाती हैं । उस समय उनमें अक्षरारा बलशाल बने वज्रपाणि इन्द्रने, त्रितने जैसे अपने ऊपरके धरेको खींच दिया, वैसी ही बलधे भी लोड़ा ॥५॥

जब, हे इन्द्र ! तुने कठिनतासे पकड़ने योग्य वृत्रको पकड़की उत्तरापर उसके दलुकीपर अपना वज्र मारा, तब तेरा तेज उसके ऊपर छा गया और तेरा बल यमक उठा । उस समय वृत्र बल रोकर भूमेके ऊपर सी रहा था ॥६॥

हे इन्द्र ! त्विमे तेरे वर्धन करनेवाले स्त्रीयें हैं, त्वंम जैसे ताता-बरो धनुषने हैं, त्वंम तेरे सज्ज बने हैं । त्वंमनेता साथ रहेवाला बल बलमा और तेरे त्विमे युद्धकी यम तेरे दलुकी शक्तियें युद्ध बलकी रचना की ॥७॥

हे अनेक स्त्रीकी कारणसे हे इन्द्र ! तुने अपने इ मेने लोरेय युद्ध वज्र प्रदान किया । मनुष्यके त्वमेके त्विमे बलके प्रवाहसे बहने लुग, अनेक तेरीकी वज्रपाणि, युद्धकी मारा और अयच्छे अक्षर दिवनेके त्विमे मूर्खी युद्धमेने ॥८॥

इन्द्रो अथापि सुध्यो निरेके पत्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
 अश्वयुर्गन्धू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता
 इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
 असिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्स्याम

(२)

(ऋ. १।५२) सग्य आहिरसः । इन्द्रः । जगती; १३, १५ त्रिष्टुप् ।

त्यं सु मेपं महया स्वविदं शतं यस्य सुभ्यः साकमीरते ।
 अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः
 स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमृतिस्तविषीषु वावृधे ।
 इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुञ्जन्नर्णासि जहृपाणो अन्धसा
 स हि द्वरो द्वरिषु वत्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मद्वृद्धो मनीषिभिः ।
 इन्द्रं तमहे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठाराति स हि पत्रिरन्धसः

इन्द्र निरेके सु-ध्यः अथापि (यथा) पत्रेषु दुर्यः यूपः
 न स्तोमः (स्थितः भवति) । अश्व-युः गन्धूः रथ-युः
 वसु-युः रायः प्र-यन्ता इन्द्रः (सर्वत्र) इत् क्षयति ॥ १४ ॥

(अस्माभिः) इदं नमः वृषभाय स्व-राजे सत्य-शुष्माय
 तवसे अवाचि । (हे) इन्द्र ! अस्मिन् वृजने (वयं)
 सर्व-वीराः (स्याम, तथा) तव स्मत् शर्मन् सूरि-भिः
 स्याम ॥ १५ ॥

शतं सु-भ्यः यस्य साकं ईरते, त्यं मेपं स्वःविदं (इन्द्रं)
 सु महय । (अहं) इन्द्रं अवसे सुवृक्ति-भिः अत्यं वाजं
 न हवन-स्यदं रथं आ ववृत्याम् ॥ १ ॥

अन्धसा जहृपाणः अर्णासि उञ्जन् इन्द्रः यत् नदी-वृत्तं
 वृत्रं अवधीत्, (तदा) धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः सहस्रं
 ऊतिः सः तविषीषु वावृधे ॥ २ ॥

चन्द्र-बुध्नः मनीषि-भिः मद्वृद्धः सः हि द्वरिषु द्वरः,
 ऊधनि (च) वत्रः (अस्ति) । (यतः) सः हि अन्धसः
 पत्रिः (अस्ति तस्मान् अहं) तं मंहिष्ठ-राति इन्द्रं सु-अपस्य-
 या धिया अहे ॥ ३ ॥

इन्द्रका विपत्कालमें सुकर्मा यजमानोंने आशु-
 इसलिये आंगिरसोंमें, द्वारपर गड़े खम्भेके समान,
 रहते हैं । वह घोड़ों, गायों, रथों और धनो-
 ऐश्वर्यका दाता इन्द्र सर्वत्रही (भूजोंमें) निवास
 हम लोगोंद्वारा यह नमस्कार बलवान्, स-
 अदृष्ट बलवाले, समर्थ इन्द्रके लिये कहा गया है ।
 दयासे हम इस युद्धमें सब प्रकारके वीरोंसे युद्ध
 सुख-पूर्ण युद्धमें अनेक प्रकारके विद्वानोंसे सम्पन्न हो-
 सैकड़ों ज्ञानी जिसका साथ साथ वर्णन करते हैं ।
 साथ युद्ध करनेवाले स्वयं तेजस्वी वारे इन्द्रके,
 स्थान दो । मैं इन्द्रको, रक्षाके निमित्त अपनी
 अश्वके समान केवल इशारेसे ही चलनेवाले रथपर,
 लाता हूँ ॥ १ ॥

अन्धसे प्रसन्न और जलोंको नीचे प्रवाहित करने
 इन्द्रने जब नदीके अवरोधक वृत्रको मार दिया, तब
 जैसे पर्वत (अलट रहता है वैसे) युद्धमें अलट,
 साधनोंसे युक्त वह इन्द्र अपनी सेनाओंमें बड़ गया ।
 आनन्दका मूल और बुद्धिमानोंके साथ रहनेसे
 नन्दित होनेवाला वह इन्द्र चरनेवाले शत्रुओंपर भौंका
 वाला और युग स्थानमें रहनेवाला है । वह अन्धसे
 देनेवाला है, इस कारण मैं उस श्रेष्ठ दानी इन्द्रके
 करनेवाले अपने मनसे बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

सव्य ऋषिका दर्शन

सू. ५२]

आ यं पृणान्ति दिवि सन्नवर्हिणः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
 तं वृत्रहृते अनु तस्थुरुतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अहुतप्सवः ।
 अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रध्वीरिव प्रवणे सचुरुतयः ।
 इन्द्रो यद् वज्री धृपमाणो बन्धसा भिनद् बलस्य परिधीरिव त्रितः ।
 परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो वृक्षमाशयत् ।
 वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिभ्वतो निजघन्ध हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ।
 हृदं न हि त्वा न्यूपन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
 त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततश्च वज्रमभिभूत्योजसम् ।
 जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
 अयच्छथा बाहोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे

४

५

६

७

८

हैंपः सुभ्वः स्वाः अभिष्टयः यं दिवि, समुद्रं
 गन्ति, शुष्माः अवाताः अहुत-प्सवः ऊतयः वृत्र-
 इन्द्रं अनु तस्थुः ॥ ४ ॥
 ॥ अस्य युध्यतः मदे, रध्वीः- इव प्रवणे, स्व-वृष्टिं
 अनुः । यद् बन्धसा धृपमाणः वज्री इन्द्रः त्रितः
 इन्द्र-इव बलस्य भिनद् ॥ ५ ॥

दर्भके आसनपर बैठनेवालोंकी उत्तम प्रकारसे उत्पन्न निजा
 इच्छायें सुलोकके संबंधमें, जैसे समुद्रको नदियाँ वैसे, पूर्ण की
 जाती हैं । तथा बलवती शत्रु-रहित सुन्दर रूपवाली रक्षक
 शक्तियाँ युद्धमें उसी इन्द्रके पीछे पीछे जाती हैं ॥४॥
 रक्षक शक्तियाँ इस युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आनन्दमें
 रहकर, जैसे बहनेवाले जलप्रवाह नीचे की ओर जाते हैं वैसी
 वे अपनी वृष्टिके जलप्रवाहके समान उसके पास जाती हैं ।
 उस समय उत्तम अन्नद्वारा बलवान् बने वज्रधारी इन्द्रने,
 त्रितने जैसे अपने ऊपरके धरे की ओर दिया, वैसी ही बलसे
 भी तोड़ा ॥५॥

१ (हे) इन्द्र ! दुः-गृभिभ्वनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः
 २ नि-रूपन्त्य (तडा) घृणा ईं परि चरति, शवः
 ३ शे । (वृत्रः) अपः वृत्वी रजसः युज्यं आ अ-
 ४ ॥ १ ॥

(हे) इन्द्र ! यानि तव वर्धना ब्रह्माणि (सन्ति,
 नि) ऊर्जयः हृदं न हि त्वा नि-रूपन्ति । त्वष्टा ते युज्यं
 ५ ॥ १ ॥

१ शवः वपृधे, अभिभूति-ओजसं (५) वज्रं तजश्च ॥ ५ ॥
 २) संभृत-क्रतो इन्द्र ! (त्वं) बाहोः आयतं वज्रं
 ३ ना । मनुषे अपः गातु-यन् हरिभिः युज्यं जघन्वाँ
 ४ ते सूर्यं दिवि आ अधारयः ॥ ५ ॥

जब, हे इन्द्र ! तुने दुर्गृभिभ्वे वृत्रने वज्रको पड़ा-
 वकी उत्तरापर उसके रजुकीपर अपना वज्र मारा, तब तेरा
 तेज उसके ऊपर छा गया और तेरा बल उनके ऊपर छा गया । इस
 समय तुम जल रोचक मूत्रके ऊपर से रदा या ॥४॥
 हे इन्द्र ! निम्न तेरे वर्धन करनेवाले भोत्र ई, ५, तारा
 जैसे तारा नीचे गिरते हैं, वैसे तेरे वज्र अपने ही तेजसे नीचे
 लय देकर नीचे गिरता है और तेरे विषे समुद्रकी चमक और
 दमकिली शक्तिके उप-वज्रका रूपका या ॥५॥
 हे अनेक शक्तिके करनेवाले इन्द्र ! तुने अपने दुर्गृभि-वृत्रको
 पड़ा वज्र मारा और मनुषके वज्रके, और वज्रके
 प्रकारके वज्रके पड़ा, अनेक वज्रके पड़ा, ताराकी चमक
 और दमकिली शक्तिके उप-वज्रका रूपका या ॥५॥

वृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्यश्मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
 यन्मानुपप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्तृपाचो मरुतोऽमदन्न
 द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते ।
 वृत्रस्य यद् वद्वधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाऽभिनिच्छिरः ।
 यदिन्विचन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
 अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा वर्हणा भुवत्
 त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृपन्मनः ।
 चक्रुषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्
 त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋण्ववीरस्य वृहतः पतिर्भूः ।
 विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्
 न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
 नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चक्रुषे विश्वमानुपक् ।

यत् (स्तोतारः) भियसा स्व-चन्द्रं, अम-वत्, उक्थ्यं
 दिवः रोहणं वृहत् अकृण्वत, यत् मानुप-प्रधनाः ऊतयः
 तृ-साचः मरुतः इन्द्रं स्वः अनु अमदन् ॥ ९ ॥

(हे) इन्द्र ! यत् ते अम-वान् वज्रः सुतस्य मदे रोदसी
 वद्वधानस्य वृत्रस्य शिरः शवसा अभिनत्, (तदा) अस्य
 अहेः स्वनात् भियसा द्यौः चित् अयोयवीत् ॥ १० ॥

(हे) मघ-वन् इन्द्र ! यत् इत् तु पृथिवी दश-भुजिः
 (स्वात्), कृष्टयः विश्वा अहानि ततनन्त, अत्र अह ते
 सहः वि-श्रुतं (भवेत्) । (ते) वर्हणा शवसा द्यां अनु
 भुजन् ॥ ११ ॥

(हे) धृपन्-मनः ! स्वभूति-ओजाः त्वं अवसे अस्य
 विओमनः रजसः पारे ओजसः प्रति-मानं भूमिं चक्रुषे ।
 पति-भूः (त्वं) अपः स्वः दिवं आ पृषि ॥ १२ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं पृथिव्याः प्रति-मानं भुवः । ऋण्व-
 वीरस्य वृहतः पतिः भूः । (त्वं) सत्यं महित्वा विद्वन् अन्त-
 रिक्षं आ अप्राः । अद्धा त्वा-वान् अन्यः नकिः (आस्ति) ॥ १३ ॥

यात्रापृथिवी यस्य व्यचः न अनु (आनयाने), रजसः
 विओमनः रजि यस्य) अन्ने न आनयुः, उत (वृत्रादयः)
 मदे स्वभूतिं युयतः प्रत्य (अन्ने) न (आनयुः), (सः)
 ददः स्वभूतिं विश्वं आनयन् चक्रुषे ॥ १४ ॥

जब लोगोंने वृत्रके भयसे अन्तःकरणसे प्रभु
 बलयुक्त प्रशंसनीय दिवमें चढानेवाला वृहत् साम-
 जब प्रजाके हितार्थ युद्ध करनेवाले रक्षक प्रजपे-
 वाले वीरोंने इन्द्रका स्वर्गमें अनुमोदन किया, तब
 मारा ॥९॥

हे इन्द्र ! जब तेरे शक्तिशाली वज्रने सोम-रश्मि
 लोकोंको पीड़ित करनेवाले वृत्रका शिर बलसे तोड़
 इस वृत्रके शब्दसे भयभीत होकर द्यौ भी नीले
 हे धनवन्त इन्द्र ! यदि यह पृथिवी दशभुजो वर
 प्रजाएँ सब दिन अपनी शक्तिका विस्तारही करती हैं
 भी तेरा बल उससे अधिकही होगा । तेरी वर-
 अपनी शक्तिसे द्यौका सामना करती है ॥१०॥

हे निउर मनवाले इन्द्र ! स्वर्ग निज बलवाले
 रक्षाके लिये इस व्यापक आकाशके पार तेरे
 अर्थात् ज्ञान करानेवाली भूमि बनाई है । सर्वत्र
 अन्तरिक्ष और दिवके साथ रहता है ॥११॥

हे इन्द्र ! तू पृथिवीका दूसरा रूप हुआ है ।
 वीरोंवाले बड़े स्वर्गका स्वामी हुआ । तूने यमयु-
 शालतासे आकाशको व्याप लिया । वह भी यम-
 दूसरा कोई नहीं है ॥१२॥

द्यौ और पृथिवी जिसके विचारको नहीं आता
 रिक्त जल भी जिसका अन्त नहीं पा सकते
 रोहनेवाले अगूर भी लड़नेवाले इस इन्द्रके भय-
 नहीं पा सकते, वही एक इन्द्र दूसरे पार नका है
 है ॥१३॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुचन्द्रेरभिद्युभिः ।
 सं देव्या प्रमत्या वारशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि
 ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहृत्पु सत्पते ।
 यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः
 युधा युधमुप वेदेपि वृष्ण्या पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
 नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निवर्ह्यो नमुचिं नाम मायिनम्
 त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
 त्वं शता वङ्गदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिपूता ऋजिश्चना
 त्वमेताञ्जराज्ञो द्विर्दशाऽवन्धुना सुश्रवसोपजग्मुयः ।
 पष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्
 त्वमाचिथ सुश्रवसं तयोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र त्वंयाणम् ।
 त्वमस्मै कृत्समतिथिग्वमायुं महे राजे यूने अरन्धनायः

(हे) इन्द्र ! (वर्य) राया सं (रभेमहि), इषा
 रभेमहि, पुरुचन्द्रैः अभिद्युभिः वाजे-भिः सं (रभे-
 हि), (तथा च) वीर-शुष्मया गो-अग्रया अश्व-वत्या
 व्या प्र-मत्या सं रभेमहि ॥ ५ ॥

(हे) सत्-पते ! ते मदाः, तानि वृष्ण्या, ते सोमासः
 (च) त्वा वृत्र-हृत्पु अमदन्, यत् दश सहस्राणि अप्रति
 वृत्राणि बर्हिष्मते कारवे नि बर्हयः ॥ ६ ॥

(हे) इन्द्र ! वृष्ण्या (त्वं) युधा युधं उप च इत्
 पपि, ओजसा इदं पुरा पुरं सं हंसि । यत् परा-वति
 नम्या सख्या नमुचिं नाम मायिनं नि-वर्हयः ॥ ७ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं अतिथि-ग्वस्य तेजिष्ठया वर्तनी
 करञ्जं उत पर्णयं वधीः । त्वं ऋजिश्चना परि-सूताः
 वङ्गदस्य शता पुरः अनानु-दः अभिनत् ॥ ८ ॥

(हे इन्द्र !) श्रुतः त्वं अवन्धुना सुश्रवसा उप-जग्मुयः
 पृताद् द्विः दश अजराज्ञः पष्टिं सहस्रा नवतिं नव (च)
 रथ्या दुष्पदा चक्रेण अवृणक् ॥ ९ ॥

(हे) इन्द्र ! त्वं तव अति-भिः सुश्रवसं (तथा)
 तव त्राम-भिः त्वंयाणं आचिथ । त्वं अस्मै महे यूने
 (सुश्रवसे) राजे कृत्स्नं अतिथि-ग्वं आयुं अरन्ध-
 नायः ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हम लोग धनसे उत्तम अश्व
 अजसे उत्तम कार्यका आरम्भ करें, बहुत उत्तम
 बलोंसे उत्तम कार्यका आरम्भ करें और वेदों
 युक्त, जिसमें गायत्री प्रधानता है ऐश्वर्य,
 युक्त उत्तम बुद्धिसे सम्पन्न, कार्यका आरम्भ करें

हे उत्तम स्वामी इन्द्र ! उन आनन्दित ब्रह्म
 अर्चों और उन सोम-रसोंसे तुझे वृत्रोंसे मारने
 किया जब कि तूने दश सहस्र दुर्षयं, वृत्रोंसे ते
 गरके हित करनेके लिये नष्ट-वृष्ट कर दिया ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुका नाश करनेके लिये तूने
 युद्धको करनेके लिये शत्रुपर हमला करता है को
 इस शत्रुके एक नगरके पश्चात् दूसरे नगरको मार
 तब दूर स्थानमें शत्रुकी ओर मुकनेवाले निज
 नमुचि नामके मायावी असुरको नष्ट कर देता है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तूने अतिथि-ग्वके लिए अपने दैत्य
 और पर्णयको मारा और तूने ऋजिश्चनासे
 नगर दुसरेकी सहायताके बिनाही तोड़ दिने ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! सब वीरोंमें प्रसिद्ध तूने अजरा
 लज्जेको जानेवाले इन वीर जतपद-राजों को
 सहस्र निन्यानवे अनुचरोंको एकके योग्य छोड़
 कुचल दिया ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तूने अपने रक्षा-मायनोंसे युद्ध
 उन्हीं रक्षाओंसे त्वंयाण की रक्षा की । तूने
 सुश्रवा राजाके निमित्त कृत्स्न, अतिथिग्व और
 किया ॥ १० ॥

नि यद्वृणाक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चित् वृन्दिनो रोरुवद् वना ।
 प्राचीनेन मनसा वर्हणावता यद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि ५
 त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीति वय्यं शतकतो ।
 त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवति दम्भयो नव ६
 स घा राजा सत्पतिः शशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
 उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ७
 असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
 ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ८
 तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूपदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
 व्यश्नुहि तर्पया काममेपामथा मनो वसुदेयाय कृण्व ९
 अपामतिष्ठद्वरुणद्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
 अभीमिन्द्रो नद्यो वरिणा हिता विश्वा अनुष्टाः प्रवणेषु जिघ्रते १०

(हे इन्द्र !) यत् रोरुवद् वना श्वसनस्य वृन्दिनः
 शुष्णस्य चित् मूर्धनि नि वृणाक्षि, यत् अद्य चित् वर्हणा-वता
 प्राचीनेन मनसा कृणवः, त्वा परि कः (अस्ति ?) ॥ ५ ॥

(हे) शत-कतो ! त्वं नर्यं तुर्वशं यदुं आविथ, त्वं
 वय्यं तुर्वीति (तथा) त्वं कृत्व्ये धने रथं एतशं (आविथ) ।
 त्वं नवति नव पुरः दम्भयः ॥ ६ ॥

यः रात-हव्यः (इन्द्रस्य) शासं प्रति इन्वति, यः
 वा राधसा उक्था अभि-गृणाति सः घ राजा सत्-पतिः
 जनः शशुवत् । दानुः अस्मै दिवः उपरा पिन्वते ॥ ७ ॥

(हे) इन्द्र ! ये ते ददुषः महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं
 च वर्धयन्ति, (ते) नेमे सोम-पाः अपसा प्र सन्तु ।
 (यतः ते) क्षत्रं असमं, मनीषा असमा अस्ति ॥ ८ ॥

(हे इन्द्र !) एते इन्द्र-पानाः अद्रि-दुग्धाः चमू-सदः
 बहुलाः चमसाः तुभ्य इत् । (त्वं) वि अश्नुहि, एषां
 (इन्द्रियाणां) कामं तर्पय अथ वसु-देयाय मनः कृण्व ॥ ९ ॥

अपामं धरुण-द्वरं तमः अतिष्ठत् वृत्रस्य जठरेषु अन्तः
 पर्वतः (आसीत्) । इन्द्रः इं वरिणा हिताः प्रवणेषु अनु-
 स्थाः विदवाः नद्यः अभि जिघ्रते ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! अब तू गर्जन कर रहा हुआ अपने वन
 समान पथल शत्रुसमूहयुक्त शुष्णके ऊपर फैला है,
 कुछ तूने आजही, तत्कालही अपने शत्रु-नाथक
 सनातन भावसे युक्त अपने मनसे योग्य कार्य किया-
 अधिक श्रेष्ठ और कौन है ? ॥ ५ ॥

हे अनेकविध कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने मनुष्यों
 कारी तुर्वश और यदुकी रक्षा की । तूने वय्य, तुर्वीति
 तूनेही शत्रु-हिंसक युद्धमें रथों एतशकी रक्षा की ।
 शम्बरके नियानवे नगर विध्वंस कर डाले ॥ ६ ॥

जो अन्नका दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रकी आज्ञा
 है, अथवा जो मनुष्य धनसे युक्त वस्तुत्व करता हुआ
 है, वही मनुष्य राजा और सच्चा पालक होकर वजन
 दानी इन्द्र इसीके लिये दिव् लोकसे ऊपर जलोंके
 नीचे गिराता है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जो लोग तुझ दानोंके महान् बल और
 पौरुषको वर्णन करते हैं, वे ते सोमपान कर्ता अपने
 उत्कृष्ट वनों । क्योंकि तेरे बल और बुद्धि अद्वितीय हैं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! ये तेरे पीनेयोग्य, पत्थरपर कुम्हार निकाले
 पात्रमें स्थित बहुत सोम-रस तेरे लियेही हैं । तू इन्द्र-
 और अपने इन इन्द्रियोंकी इच्छाको तृप्त कर दे । और

धन देनेके लिये अपना मन कर, इच्छा कर ॥ ९ ॥

पहले, जलोंकी धाराओंको रोकनेवाला अन्धकार है
 था और उस तमोमय वृत्रके पेटमें पर्वत पड़ा हुआ था ।
 इन, अवरोधक वृत्रसे धिरे, और निम्न प्रवाहकी ओर च-
 तैय्यार सारे जलोंको गतिमान् करता है ॥ १० ॥

स इन्महानि समिथानि मज्जना कुणोति युध्म भोजसा जनेभ्यः ।
 अधा चन श्रद् दधति त्विपीमत इन्द्राय वज्रं निवनिघ्नते वधम्
 स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्षमया वृधान भोजसा विनाशयन् ।
 ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुकृतुः सर्तवा अपाः सृजत्
 दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते ऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
 यमिष्टासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दम्नुवन्ति भूर्णयः
 अप्रक्षितं वसु विमर्षिं हस्तयोरपाळ्हं सदस्तन्वि श्रुतो दधे ।
 आवृतासोऽवतासो न कर्तुमिस्तनूपु ते क्रतव इन्द्र भूरयः

(६)

(क. १५६) सन्य आत्त्रिसः । इन्द्रः । जगती ।

एष प्र पूर्वीरव तस्य चन्निपोऽत्यो न योपांमुदयंस्त भुवणिः ।
 दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्त्या हरियोगमृभ्वसम्

सः इत् युध्मः मज्जना भोजसा जनेभ्यः महानि सम्-
 ह्यानि कुणोति, अध चन त्विपि-मते, वधं वज्रं नि-वनि-
 घ्नते इन्द्राय (जनाः) श्रद् दधति ॥ ५ ॥

सः हि श्रवस्युः सु-कृतुः (इन्द्रः) क्षमया वृधानः
 भोजसा कृत्रिमा सदनानि वि-नाशयन्, यज्यवे अवृकाणि
 ज्योतींषि कृण्वन्, सर्तवै अपाः अव सृजत् ॥ ६ ॥

(हे) सोम-पावन् वन्दन-श्रुद् इन्द्र ! ते मनः दानाय
 अस्तु, हरी अर्वाञ्चा आ कृधि । ये ते सारथयः (ते)
 यमिष्टासः (सन्तु), केताः भूर्णयः त्वा न आ दम्नु-
 वन्ति ॥ ७ ॥

(हे) इन्द्र ! (त्वं) हस्तयोः अप्र-क्षितं वसु विमर्षिं ।
 श्रुतः (त्वं) तान्वि अपाळं सहः दधे । कर्तु-भिः आ-
 वृतासः अवतासः न ते तनूपु भूरयः क्रतवः (सन्ति) ॥ ८ ॥

भुवणिः एषः तस्य पूर्वीः चन्निपः अत्यः न योपां प्र
 अव उत् अयंस्त । (सः) हिरण्ययं हरि-योगं कृभ्वसं
 रथं आ-वृत्त्य महे दक्षं पाययते ॥ १ ॥

वही गोदा इन्द्र अपने पाप-शोषक बलसे
 लिये बड़े-बड़े युद्ध करता है । तब इस तेजसे
 वज्रका प्रहार करनेवाले इन्द्रके लिये प्रमान्न
 है ॥ ५ ॥

उस धनकी कामनावाले उत्तम कर्मकारी
 साथ बढते, बलसे शत्रुके निर्माण किये कर्मों
 और यजनशीलके निमित्त क्रूरतारहित प्रद्वेष
 वहनेके लिये जलोंको छोड़ दिया ॥ ६ ॥

हे सोम-रस पानेवाले और स्तुतिपूर्वक धन
 तेरा मन दानकी इच्छावाला हो । तू अपने दोनों
 समीप कर दे, हमारी ओर आ । जो तेरे सारथी,
 नृपणमें कुशल हों, जिससे तेरे शिक्षित घोड़े
 सकें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने दोनों हाथोंमें क्षय-रहित व
 रहा है । तूने अपने शरीरमें जिसे सब सुन चुके हैं
 रहित बल धारण किया है । निर्माता लोगों द्वारा
 कूपोंकी भाँति तेरे शरीरोंमें बहुतसे कर्म आश्रित हैं
 हैं ॥ ८ ॥

खानेकी इच्छा करनेवाला यह इन्द्र उसके अर्थात्
 रखे हुए अन्नको, घोड़ा जैसे घोड़ीको बंधे,
 है । वह सुनहरे, जिसमें घोड़े जुड़े हैं ऐसे वस्तु
 युक्त रथको अधीन कर बड़े कर्मके लिये बलवान्
 पिलाता है ॥ १ ॥

(७)

(अ. १।५७) सज्य आक्षिरसः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय वृहते वृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
 अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वागु शनसे अपावृतम्
 अध ते विश्वमनु द्वासदिष्ट्य आपो निक्षेव सवना हविष्मतः ।
 यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्रथिता हिरण्ययः
 अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
 यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे
 इमे त इन्द्र ते वयं पुरुषुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
 नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सद्यत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्यं तद्वचः
 भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
 अनु ते द्यौरुहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे

शत्रुसे अप-वृतं यस्य विश्व-आयु राधः, प्रवणे
 अपा-इव, दुः-धरं (अस्ति), (अहं तस्मै) मंहिष्ठाय
 वृहते वृहत्-रये सत्य-शुष्माय तवसे मतिं प्र भरे ॥ १ ॥

यत् श्रथिता हिरण्ययः हर्यतः इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न
 सम-अशीत, अध विश्वं ते इष्टये आपः निम्ना-इव हवि-
 षमतः सवना अनु ह असत् ॥ २ ॥

(हे) शुभ्रे उपः ! न अध्वरे अस्मै भीमाय पनीयसे
 नमसा सं आ भर । यस्य धाम हरितः न अवसे श्रवसे
 नाम इन्द्रियं ज्योतिः अकारि ॥ ३ ॥

(हे) पुरु-स्तुत प्रभु-वसो इन्द्र ! ये त्वा आ-रभ्य चरा-
 मसि इमे ते ते वयं (स्मः) । (हे) गिर्वणः ! त्वत् अन्यः
 गिरः नहि सद्यत्, (त्वं) क्षोणीः-इव नः तत् वचः प्रति
 हर्यं ॥ ४ ॥

(हे) इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि (अस्ति । वयं) तव
 स्मसि । (हे) मघ-वन् ! (त्वं) अस्य स्तोतुः कामं आ
 पृण । वृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे, इयं च पृथिवी ते
 ओजसे नेमे ॥ ५ ॥

शक्तिके लिये आवरण-रहित त्रिभुज
 आयुक्त रदनेवाला यश नीचे स्थानमें
 समान दुर्धर है, अपराजित है । मैं उस श्रेष्ठ
 वाले, सचे बलशाली और प्रभावयुक्त इन्द्र
 करता हूँ ॥ १ ॥

जब शत्रुनाशक सुनहरा सुन्दर इन्द्र
 नहीं सोचा, उसे मारही दिया तब हे इन्द्र !
 स्वागतके लिये, जल जैसे नीचे स्थलोंकी ओर
 हविवाले यजमानके यज्ञोक्ती और शुक्रा ॥ २ ॥

हे सुन्दरि उषा ! इस समय तू यज्ञमें
 नीय इन्द्रके लिये नमस्कारपूर्वक हवि ले जा,
 जिस इन्द्रका स्थान घोड़ोंके समान सुरक्षित जिन
 लिये विख्यात सामर्थ्ययुक्त और तेजस्वी बलवान्

हे बहुतोद्गारा प्रशंसनीय और प्रभुतायुक्त
 जो तेरा आश्रय लेकर कर्म करते हैं ये तेरे भक्त
 हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तेरे विना दूसरा कोई हक
 नहीं पाता । तू प्रजाओंके समान हमारी वचन
 कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम बहुत है । हम तो तेरे
 हैं । हे धनिक इन्द्र ! तू इस स्तोताकी कर्म
 बहुत बड़ी द्यौने तेरे पराक्रमको मान लिया है
 पृथिवी भी तेरे बलके सम्मुख झुक चुकी है ॥ ५ ॥

(७)

(क. ११३) सत्य आह्वितः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुभाय तवसे मतिं भरे ।
 अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्
 अथ ते विश्वमनु हासदिष्ट्य आपो निज्ञेय सवना हविष्मतः ।
 यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्रथिता हिरण्ययः
 अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
 यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे
 इमे त इन्द्र ते वयं पुरुषुत ये न्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
 नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सद्यत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः
 भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
 अनु ते द्यौर्वृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे

शवसे अप-वृतं यस्य विद्व-आयु राधः, प्रवणे
 अपां-इव, दुः-धरं (अस्ति), (अहं तस्मै) मंहिष्ठाय
 बृहते बृहत्-रये सत्य-शुभाय तवसे मतिं प्र भरे ॥ १ ॥

यत् श्रथिता हिरण्ययः हर्यतः इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न
 सम-अशीत, अथ विद्वं ते इष्टये आपः निम्ना-इव हवि-
 षमतः सवना अनु ह असत् ॥ २ ॥

(हे) शुभ्रे उपः ! न अध्वरे अस्मै भीमाय पनीयसे
 नमसा सं आ भर । यस्य धाम हरितः न अवसे श्रवसे
 नाम इन्द्रियं ज्योतिः अकारि ॥ ३ ॥

(हे) पुरु-स्तुत प्रभु-वसो इन्द्र ! ये त्वा आ-रभ्य चरा-
 मसि इमे ते ते वयं (स्मः) । (हे) गिर्वणः ! त्वत् अन्यः
 गिरः नहि सद्यत्, (त्वं) क्षोणीः-इव नः तत् वचः प्रति
 हर्य ॥ ४ ॥

(हे) इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि (अस्ति । वयं) तव
 स्मसि । (हे) मघवन् ! (त्वं) अस्य स्तोतुः कामं आ
 पृण । बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे, इयं च पृथिवी ते
 ओजसे नेमे ॥ ५ ॥

शक्तिके लिये आवरण-रहित विज
 आयुतक रदनेवाला यद्य नीचे स्थानमें
 समान दुर्धर है, अपराजित है । मैं उस श्रेष्ठ
 वाले, सचे बलशाली और प्रभावशाली इन्द्र
 करता हूँ ॥ १ ॥

जब शत्रुनाशक सुनहरा सुन्दर इन्द्र
 नहीं सोया, उसे मारही दिया तब हे इन्द्र !
 स्वागतके लिये, जल जैसे नीचे स्थलोंकी ओर
 हविषवाले यजमानके यज्ञोद्दी और शुद्ध ॥ २ ॥

हे सुन्दरि उषा ! इस समय तू यज्ञमें
 नीय इन्द्रके लिये नमस्कारपूर्वक हवि दे कर,
 जिस इन्द्रका स्थान घोडोंके समान सुरक्षित
 लिये विख्यात सामर्थ्ययुक्त और तेजस्वी बलवान्

हे बहुतोंद्वारा प्रशंसनीय और प्रसन्न
 जो तेरा आश्रय लेकर कर्म करते हैं वे तेरे नहीं
 हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तेरे बिना दूसरा कोई इन्द्र
 नहीं पाता । तू प्रजाओंके समान हमारी वस इन्द्र
 कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम बहुत है । हम तेरे
 हैं । हे धनिक इन्द्र ! तू इस स्तोत्रकी कर्म
 बहुत बड़ी द्यौने तेरे पराक्रमको मान लिया है
 पृथिवी भी तेरे बलके सम्मुख झुक चुकी है ॥ ५ ॥

(७)

(क. १५३) सत्यं जाह्निरसः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय वृहते वृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
 अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ।
 अध ते विश्वमनु दासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
 यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्रयिता हिरण्ययः ।
 अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
 यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ।
 इमे त इन्द्र ते वयं पुरुषुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
 नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सवत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ।
 भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मवचन् काममा पृण ।
 अनु ते द्यौर्वृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ।

शत्रसे अप-वृतं यस्य विश्व-आयु राधः, प्रवणे
 अपां-इव, दुः-धरं (अस्ति), (अहं तस्मै) मंहिष्ठाय
 वृहते वृहत्-रये सत्य-शुष्माय तवसे मतिं प्र भरे ॥ १ ॥

यत् श्रयिता हिरण्ययः हर्यतः इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न
 सम-अशीत, अध विश्वं ते इष्टये आपः निम्ना-इव हवि-
 षमतः सवना अनु ह असत् ॥ २ ॥

(हे) शुभ्रे उपः ! न अध्वरे अस्मै भीमाय पनीयसे
 नमसा सं आ भर । यस्य धाम हरितः न अवसे श्रवसे
 नाम ह्रिद्रियं ज्योतिः अकारि ॥ ३ ॥

(हे) पुरु-स्तुत प्रभु-वसो इन्द्र ! ये त्वा आ-रभ्य चरा-
 मसि इमे ते ते वयं (स्मः) । (हे) गिर्वणः ! त्वत् अन्यः
 गिरः नहि सवत्, (त्वं) क्षोणीः-इव नः तत् वचः प्रति
 हर्यं ॥ ४ ॥

(हे) इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि (अस्ति । वयं) तव
 स्मसि । (हे) मव-चन् ! (त्वं) अस्य स्तोतुः कामं आ
 पृण । वृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे, इयं च पृथिवी ते
 ओजसे नेमे ॥ ५ ॥

शक्तिके लिये आचरण-रहित विप्र ।
 आयुक्त रदनेवाला यश नीचे स्थानमें
 समान दुर्धर है, अपराजित है । मैं उस श्रेष्ठ
 वाले, सचे बलशाली और प्रभावशाली इन्द्र
 करता हूँ ॥ १ ॥

जय शत्रुनाशक सुनहरा सुन्दर इन्द्र ।
 नहीं सेवा, उसे मारही दिया तब हे इन्द्र !
 स्वागतके लिये, जल जैसे नीचे स्थलों की ओर
 हविवाले यजमानके यज्ञों की ओर शुद्ध ॥ २ ॥

हे सुन्दरि उपा ! इस समय तू यज्ञमें इन्द्र
 नीय इन्द्रके लिये नमस्कारपूर्वक हवि ते
 जिस इन्द्रका स्थान घोड़ोंके समान मुखके लिये
 लिये विख्यात सामर्थ्ययुक्त और तेजस्वी बनने

हे बहुतोंद्वारा प्रशंसनीय और प्रभावशाली
 जो तेरा आश्रय लेकर कर्म करते हैं ये तेरे नाना
 हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तेरे बिना दूसरा कोई इन्द्र
 नहीं पाता । तू प्रजाओंके समान हमारी वचन
 कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम बहुत है । हम तेरे
 हैं । हे धनिक इन्द्र ! तू इस स्तोत्रको कर्म
 बहुत बड़ी द्यौंने तेरे पराक्रमको मान लिया है
 पृथिवी भी तेरे बलके सम्मुख झुक चुकी है ॥ ५ ॥

—

—

(क. ११५३)

७. अभितः इदं वसु तव इत् चेकिते— चारों ओर जो धन दीया रहा है, वह सब तेरा ही है।

३. सुक्रतुः— उत्तम जनताके लिए ताला (मं. ११)

(क. ११५२)

४. संभृतक्रतुः— अनेक (मनुष्योंके लिए) भरण-पोषणके कार्य करनेवाला। (मं. ८)

५. मानुषप्रयत्नाः ऊतयः नृपावः इदं अनु प्रमदन्— मनुष्योंके हितार्थ, संरक्षक संघटित पौरोंने स्वयं तेजस्वी इन्द्रके प्रदान करके आनंदित किया। (मं. ३)

(क. ११५३)

६. त्वं ऊतिभिः सुभ्रवसं, त्रानमि आविध । त्वं यूने सशे कुत्सं निधिः न्ययः— तूने सुरक्षाकी साधनोंसे सुभ्रवा और रक्षा की। तूने तद्वग सुभ्रवा राजाके लिये कुत्स, आयुको वशमें कर दिया। (मं. १०)

इन्द्रने निम्नलिखित कार्य किये, ऐसा इन

(क. ११५३)

७. त्वं अंगिरोभ्यः गोत्रं अप वृणो— आश्विना वंशके लोगोंके लिये गौओंकी सुरक्षाके लिए खुला कर दिया। (मं. ३)

८. अत्रये शतदुरेषु गातुविद— द्वारोंवाले अशुरोंके कारागृहमें बंद किया गया था, उसको छुटकारा होनेका मार्ग बताया। (मं. १)

९. चिमदाय ससेन चित् वसु अवह— लिये सस्य-धान्य-के साधन धन दिया। (मं. १)

१०. ववसानस्य आजौ रक्षिता— सुरक्षित किया। (मं. ३)

११. त्वं अपां अपिधाना अप वृणो— जलोंके बंधनोंको तोड़कर जल-प्रवाह बढ़ानेके लिए (शत्रुका वध करके उसने जलोंको रोक रखा था, सब मानवोंके हितके लिये, जिससे जल अपने जनताको पीनेके लिये मिलने लगा।) (मं. ४)

१२. पर्वते दानुमत् वसु अधार्यः— किलेमें) दान देनेयोग्य धन रख दिया। (क. ४) कि इसका उपयोग जनताके हितके लिये किया

इन्द्रका दान

इन्द्रके पास धन है, उसका वह दान करता है और जनताकी उन्नति करता है—

(क. ११५३)

१. अश्वस्य, गोः, यवस्य दुरः, वसुनः इनः पतिः— इन्द्र घोड़ों, गौओं, जौ आदिका दाता, तथा धनका स्वामी है। (मं. २)

२. शिक्षानरः अकामकर्शनः सखिभ्यः सखा— इन्द्र शिक्षा देनेवाला नेता, किसी भक्तकी आज्ञाका मंगन करनेवाला और मित्रोंका भी मित्र (अर्थात् हर प्रकारके दानसे सहायता करनेवाला) है। (मं. २)

(क. ११५५)

३. हस्तयोः अप्रक्षितं वसु विभर्षि— तू अपने हाथोंमें (दान करनेके लिये) अक्षय धन धारण करता है। (मं. ८)

इन्द्रके पास धन है, उसका व्यय वह अपने भोग बढ़ानेके लिये नहीं करता, परंतु जनताकी भलाईके कार्यमें करता है। वह गौवें बाँटता है, बीरोंको घोड़े देता है, धन और अन्न देता है और सब जनताका सुख जिस कार्यसे बढ़ सकता है, वही कार्य करता है। विशेषतः सब जनताकी सुरक्षा वह करता है, क्योंकि सुरक्षासे ही जनता अपनी हरएक प्रकारकी उन्नति कर सकती है।

अब इन्द्रके कुछ कर्म देखिये—

इन्द्रके मनुष्य-हितकारी कर्म

इन्द्र सब जनताके हित करनेके लिये कर्म करता है। इसके सभी कर्म जनताका हित करनेके लिये होते रहते हैं—

(क. ११५१)

१. यस्य मानुषा (कर्माणि), यावः न, विचरन्ति— जिसके मनुष्योंका हित करनेके लिये किये जानेवाले कर्म, सूर्य-किरणोंके समान, चारों ओर फैले हैं। (मं. १)

२. शतक्रतुः— सैकड़ों कर्म करनेवाला (मं. २)

३ पिप्रोः पुरः प्र अरुजः- तू (इन्द्र) ने पिपु-
के नगरोंका नाश किया ।

४ दस्युहृत्येषु ऋजिश्वानं प्र आविध- अरुजोंका
के युद्धोंमें ऋजिश्वाकी सुरक्षा की । (मं. ५)

५ त्वं शुष्णहृत्येषु कुत्सं आविध- तू (इन्द्र) ने
पूँरोंके साथ किये जानेवाले युद्धोंमें कुत्सकी रक्षा की ।

६ अतिधिग्वाय शम्बरं अरन्धयः- अतिधिग्व
जैवे शम्बर अरुजका वध किया ।

७ महान्तं अर्बुदं पदा नि क्रमीः- बड़े अर्बुद
पाँवसेही लताड़ दिया ।

८ सनात् त्वं दस्युहृत्याय जज्ञिषे- तू सदाही
वध करनेके लिये दल करता है । (मं. ६)

९ आर्यान् दस्यवः विजानीहि- आर्य और दस्यु-
ह्वान ।

१० अव्रतान् शासत् वर्द्धिष्मते रन्धय- अनियम-
वालोंको दण्ड देते हुए, संयमी लोगोंके हित करनेके
नको छिन्नभिन्न कर ।

११ शाकी यजमानस्य चोदिता भव- शक्तिमान्
यज्ञकर्मकी प्रेरणा कर । (मं. ८)

१२ अनुव्रताय अपव्रतान् रन्धयन्- अनुकूल कर्म
वालोंके हितके लिये अपव्रता कुकर्मों दुष्टोंका नाश कर ।

१३ आभूमिः अनाभुवः श्रययन्- मातृभूमिके
द्वारा मातृभूमिके विशेषकीका नाश कर ।

१४ वृद्धस्य चित् वर्धतः स्तवानः- बढनेवालेसे भी
बढनेवालेकी स्तुति कर ।

१५ वज्रः संदिहः वि जघान- (तेरे भक्त)
मिलकर बढनेवाले शत्रुओंकी मार दिया । (वह प्रभुकी
जगा फल है ।) (मं. ९)

१६ ते सहः सहसा तक्षत्- तेरे बलकी अपने बलसे
सा । (परस्परकी संघटनसे बल बढ़ाया ।)

१७ ते शवः मज्जन्ता वि वाघते- तेरा बल बेगसे
को बिगड़ करता है । (मं. १०)

१८ इन्द्रः काव्ये उशने सचा मन्दिष्ट- इन्द्र कवि-
वृत्तनाके पर साथ बैठकर तृप्त हुआ ।

१९ उग्रः ययि स्रोतसा अपः निः अत्यजन्-
वीरने बर्कके पहाड़से झरनेवाला जलप्रवाह बहा दिया ।

२० शुष्णस्य दंहिताः पुरः वि ऐरयत्- शुष्ण
अरुजके सुदृढ नगर तोड़ दिये । (मं. ११)

२१ वृषपानेषु रथः आतिष्ठसि- बलवर्धक सोम-
पान करनेके स्थानको पहुँचनेके लिये रथपर चढ़ता है ।

२२ शार्यातस्य (सोमाः) प्रभृताः- शर्यात-
पुत्रके सोमरस (तुम्हारे लिये) भरकर रखे हैं । (मं. १२)

२३ कक्षीवते अर्भा वृचयां मददाः- कक्षीवान्को
तरुणी वृचयाका प्रदान किया ।

२४ वृषणध्वस्य मेना अभवः- वृषणध्वके लिये तू
मेना (वी) बना । (मं. १३)

२५ इन्द्रः निरेके सुध्यः अश्रायि- इन्द्रकाही
विपत्कालमें उत्तम बुद्धिमान् लोगोंको आश्रय करनेयोग्य है ।

२६ पञ्जेषु दुर्यः- अंगिरस कुलवालोंका इन्द्र सहायक
है ।

२७ इन्द्रः अश्वयुः, गव्युः, रथयुः, वसूयुः, रायः
प्रयन्ता क्षयति- इन्द्र घोड़े, गायें, रथ, धन और ऐश्वर्यका
दाता है । (मं. १४)

२८ त्वं नर्यं तुर्वशं यदुं वय्यं तुर्वीति, कृत्ये धने
रथं एतशं आविध- तूने मनुष्योंके हित करनेवाले तुर्वश
यदु, वय्य तुर्वीति और शत्रुनाशक युद्धमें रथ एतशकी रक्षा
की । (मं. १५)

इन मन्त्रभागोंमें अग्निशैलीकी सहायता की, अत्रिने लिये
कारागारमें मदद दी, विनदकी धान्य और धन दिया, ववसानकी
युद्धभूमिपर सहायता की, ऋजिश्वाकी शत्रुनाश करनेमें सहायता
दी, कुत्स पिपु और अतिधिग्वकी सहायता की, आर्य और
दस्युओंका विभाग करके आर्योंकी सहायता दी, धार्मिक लोगों-
की सुरक्षा की और अधार्मिकों अपने कुकर्मोंसे रोक दिया,
कविपुत्र उशनाकी तृप्त किया, कक्षीवान्को अर्भा योसा दान
दिया, इसी तरह वृषणध्वको मेना दी, तुर्वश, नर्य, यदु, वय्य
और तुर्वीतिकी युद्धमें सहायता देकर विजय प्राप्त कराना ।

इस तरह इन्द्रने सैकड़ों जनताके हितके कर्म किये हैं ।
अंगिरस, उशना आदिकोंके बड़े बड़े सुदृढ पुर, नदी नहरों
जान पड़ते थे, अंगिरसोंका कुत्र विषाद-वृषणध्वके लिये पवित्र दी,
अग्नि प्रदीप्त करनेका अग्निष्मर अंगिरसकीही दिना था :
आतुर्वेदका विस्तार करनेवाले भी बेशी थे । इनमेंसे इनकी
सहायता करनेवाले अर्थ जनताकी सहायता करता है ।

बलको और स्थायी सामर्थ्यको बढ़ाते हैं, वे अपने बड़ें। तेरा क्षात्र बल बड़ा है और तेरी बुद्धि भी बड़ी है। (मं. ८)

६. अपां धरुण-दरं तमः अतिष्ठत्, वृत्रस्य जठरन्तः पर्वतः। वव्रिणा हिताः प्रवणेषु अनुस्थाः अभि जिघ्रते-जलोंको रोकनेवाला अन्धकार था, वृत्रके बीचमें पर्वत था, घेरनेवाले वृत्रने रुकी हुई नदियों गति-र दीं। (मं. १०)

(ऋ. १।५५)

७. भीमः तुविष्मान् चर्पणिभ्यः आतपः तेजसे शिशोते- भयंकर शक्तिशाली वीर सब प्रजाजनोंको ता बढ़ानेके हेतु अपना वज्र तक्षिण करता है। (मं. १)

८. सः युध्मः ओजसा सनात् पनस्यते- वह कुशल वीर अपने प्रतापसे सदाही स्तुतिके लिये योग्य है। (मं. २)

९. देवता (त्वं) वीर्येण अति प्रचेकिते- तू अपने वीर्य पराक्रमसे अत्यंत तेजस्वी दीखता है। (मं. ३)

१०. विश्वस्यै कर्मणे पुरोहितः- सब कर्मोंका नेता। (मं. ३)

११. सः जनेषु इंद्रियं चारु प्रदुवाणः वचस्यते- इन्द्र सब मानकोंमें विशेष प्रभाव दिखानेके कारण प्रशंसित है। (मं. ४)

१२. वृषा मधवा धेनां क्षेमेण इन्वति, हर्यतः भवति- वह बलवान् इन्द्र जब रक्षा करनेसे स्तुति करता है, तब वह भक्तके लिये प्रिय होता है।

१३. धृतः अपाढं सहः तन्वि दधे। कर्तुभिः प्रतासः ते तनूषु भूरयः क्रतवः- प्रसिद्ध और भी बल तेरे शरीरमें है। कर्ताओंसे घेरे हुए, तेरे रोमें अनेक कर्म हैं। (मं. ८)

(ऋ. १।५६)

४४. सः हरियोनं हिरण्ययं ऋश्वसं रथं आवृत्य दक्षं पाययते- वह इन्द्र घोड़े-जोते हैं ऐसे सोनेके स्त्री रथको पास रखकर बड़े कार्यके लिये बल प्राप्त ता है। (बलवर्धक सोनरथ पीता है)। (मं. १)

४५. दक्षस्य विदधत्य पतिं सहः तेजसा अपि

रोह (ति)- बलसे होनेवाले युद्धके अधिपति इन्द्रको शत्रुनाशका सामर्थ्य तेजके साथ प्राप्त होता है। (मं. २)

४६. सः तुर्यणिः महान्, अरेणु तुजा शवः, गिरेः भृष्टिः न, पौंस्ये धाजते- वह शत्रुनाशक इन्द्र बड़ा है, उसका निर्मल शत्रुनाशक बल, पर्वतके शिखरके समान, युद्धमें चमकता है। (मं. ३)

४७. आयसः दुधः मायिनं गुणं आभूषु दामनि नि रमयत्- लोहेका वज्र बर्तनेवाले दुर्धर इन्द्रने कपटी गुणको कारागृहमें बेडियोंमें रक्त दिया। (मं. ३)

(ऋ. १।५७)

४८. शवसे अपवृत्तं यस्य विश्वायुः राधः दुर्धरं- शक्तिके लिये जिसकी सब आधुमिर प्रसिद्धि है, (वह सचमुच) दुर्धर बल है, अजिंक्य सामर्थ्य है। (मं. १)

४९. सत्यशुभः- जिसका बल सच्चा सामर्थ्य है। (मं. १)

५०. वृद्धत्-रयिः- बड़े धनवाला।

५१. तवस्- सामर्थ्यवान् (मं. १)

५२. अथिता हिरण्ययः वज्रः पर्वते न सं अशीत- शत्रुनाशक सुनहरा वज्र पर्वत-निवासी (वृत्र) पर तोया नहीं (पड़ा, उसे मारकर कामयाब हुआ)। (मं. २)

५३. यस्य धाम अवसे अवसे इंद्रियं ज्योतिः अकारि- जिस वीरका स्थान (सब लोगोंकी) सुरक्षाके लिये, अन्नके लिये और बलके लिए एक तेजस्वी ज्योति जैसा बनाया है। (मं. ३)

५४. ते वीर्यं भूरि- तेरा पराक्रम बड़ा भारी है। (मं. ५)

५५. विश्वं केवलं सहः सत्रा (त्वं) दधिपे- सब शुद्ध बल तू अपने साथ धारण करता है। (मं. ६)

इन्द्रकी वीरतामें उसका बल, सामर्थ्य, प्रभुत्व, वीर्य, पराक्रम, प्रभाव, शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य आदि सब गुण आगये हैं। अब इन्द्रकी शुद्ध-शक्ति देखिये-

इन्द्रकी युद्धविद्या

सव्य ऋषिके ५२ मंत्र हैं और वे केवल इन्द्र देवताके ही हैं। इनमें क्षत्रियकी युद्धविद्याका विशेष तर वर्णन है, देखिये-

(ऋ. १।५९)

१. आजौ अद्रि नर्तयन्- युद्धमें अर्द्धनर्तक समान छोर

जको नचाता रहता है । विविध प्रकारसे शत्रुपर शस्त्र-प्रहार करता है । (मं. १)

२. अर्हि वृत्रं शवसा अवधीः— अर्हि वृत्रको अपने बलसे मारा, वृत्रका वध किया । (मं. ४)

३. त्वं (तान्) मायिनः मायाभिः अप अवधमः— तू (इन्द्र) ने उन कपटी शत्रुओंको कपटोंसेही नाचे गिरा दिया । (कपटोंके साथ कपटयुक्तियोंसे, कुशल शत्रुसे कुशलता-पूर्वक किये युद्धसे लड़ना चाहिये ।) (मं. ५)

४. शत्रोः विश्वानि वृष्ण्या अव वृश्च- शत्रुके सब बलोंको काट दे । (मं. ७)

(अ. ११५२)

५. सः सहस्रं ऊतिः तविपीषु वावृधे— वह इन्द्र सहस्रों रक्षाके साधनोंसे युक्त सेनाओंमें बढ़ता है, उसका परा-क्रम बढ़ता है । (मं. २)

६. सः द्वरिषु द्वरः— वह इन्द्र घेरनेवाले शत्रुओंको भी घेरनेवाला है । (मं. ३)

७. धृपमाणः वज्री इन्द्रः बलस्य भिनत्, त्रितः परिधीन् इव— शत्रुपर हमला करनेवाले वज्रधारी इन्द्रने बल असुरको मारा, जैसा त्रितने किलेकी दिवारोंको तोड़ दिया था । (मं. ५)

८. दुर्मुभिश्चनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः तन्युं वि जघान— युद्धमें एकड़नेके लिये कठिन वृत्रके हनुपर निम्नभागमेंही वज्र मारा, तब (वृणा ईं परिचरति) उस वज्रसे तेजका फैलाव हुआ और (शवः तित्विपे) बल भी चमक उठा, पश्चात् (अपः वृत्वी रजसः बुध्नं आ अशयत्) जलको रोकनेवाला वह असुर भूमिके ऊपर गिर गया, मर गया । (मं. ६)

९. त्वष्टा ते युज्यं शवः वधृधे, अभिभूति-ओजसं वज्रं ततक्ष— त्वष्टा ने तेरे योग्य बल बढ़ाया और शत्रुका पराभव करनेवाला वज्र निर्माण किया । (मं. ७)

१०. मनुपे अपः गातृयन् हरिभिः वृत्रं जघ-
न्यान्— मनुष्यका हित करनेके लिये जलप्रवाहोंको बहाते हुए अपने घोड़ोंसे— किरणोंसे— वृत्रको मारा । (मं. ८)

११. वाहोः आयसं वज्रं अयच्छथाः— हाथोंमें तुमने फौलादका वज्र धारण किया । (मं. ८)

१२. ते अमवान् वज्रः सुतस्य मे-
धानस्य वृत्रस्य शिरः शवसा
अदेः स्वनात् भियसा योः चित्
बलवान् वज्रं जब सोमके उत्साहमें, वज्रके
वृत्रके शिरको बलसे तोड़ने लगा, तब हम
शब्दसे भयके कारण आकाश भी कांप उठा ।

१३. युध्यतः अस्य (अन्तं) न-
करते समय इस इन्द्रकी शक्तिका पार (इन्हे)
नहो सकते । (मं. १४)

१४. मरुतः आजौ त्वा अनुमदन्-
युद्धमें तेरे साथ रहकर आनंद पाया, तब
वधेन वृत्रस्य आनं प्रति नि जघन्-
वाले वज्रसे वृत्रके मुखपर तुमने प्रहार किया । (मं. १५)

(अ. ११५३)

१५. गोभिः अश्विनां अमर्ति निरुक्क-
युभिः एभिः इन्दुभिः सुमना भव— ते
युक्त सैनिकोंद्वारा निरुद्ध शत्रुको घेरकर इन ते
पान कर उत्तम उत्साही मनसे युक्त बन ।

१६. दस्युं दस्यन्तः युतद्वेषसः इवा-
शत्रुका नाश करनेके बाद हम शत्रुद्वेषित होकर
भोगोंकी प्रासिके कार्योंका प्रारंभ करेंगे । (मं. १६)

१७. यदा ते मदाः, तानि वृष्ण्या, ते
त्वा वृत्रहत्येषु अमदन्, (तदा) दह
अप्रति वृत्राणि कारवे नि वर्हयः— जब ते
वीर उन बलसे होनेवाले कर्मोंकी करने लगे,
कर्मोंमें जब तुम्हें सोमपानसे आनंद हुआ, तब
अप्रतिम वृत्रोंको ज्ञानोंके हित करनेके लिये
दिया । (मं. ६)

१८. धृष्ण्या युधा युधं उप एषि,
हंसि, परावति नमुचि मायिनं नयानि
हमला करते हुए तुम एक युद्धसे दूसरे युद्धको करते
शत्रुके नगर या किलेको तोड़ देते हैं, दूसरे
वाले कपटी नमुचि असुरको वज्रसे नष्ट कर देते हैं ।

१९. त्वं अतिथिग्वस्य तेजिष्ठया वर्तन्-
उत्त पर्णयं वधीः, त्वं ऋजिद्वना परिवृता-

पुरः अन्तानुदः अभिनत्— तूने आतिथिगवके हित लिये तेज वज्रसे करज और पर्णय नामक शत्रुका वध और ऋषिध्वसे घेरे गये वंगुदके सौ नगर या किले बिना दूसरेको सहायताके नष्ट कर दिये । (मं. ८)

(ऋ. १।५४)

**५. यत् ब्रह्मिन्ः मायिनः धृपत् मन्दिना शितां स्त अशनिं पृतन्यसि धृपतात्मना शम्बरं अव-
वृद्धतः दिवः सानु कोपयः—** जब झुण्डके साथ करनेवाले कपटी असुरपर शान्तिके साथ, तीक्ष्ण ने वज्र फेंक दिया, तब धैर्यसे स्वयं ही शम्बर असुरको मार दिया और बड़े धुलोकमें पहुंचे शिखर कांपने लगे । (मं. ४)

**६. यत् रोचतवना शुम्भस्य मूर्धनि नि वृणाक्षि-
गर्जना करता हुआ वज्र शुम्भके सिरपर फेंकता है ।**
(मं. ५)

**७. बर्हपावता प्राचीनेन मनसा कृणवः, त्वा-
कः १- शत्रुका नाश करनेकी बुद्धि सदासे रखनेवाले तेरे (जो तू यह शत्रुनाशका कार्य) करता है, इसलिये तुझसे क धेष्ठ और दूसरा कौन है ? (मं. ५)**

८. त्वं नवति नव पुरः दम्भयः— तू शत्रुके निम्न-
नगर अपना किले तोड़ दिये । (मं. ६)

(ऋ. १।५५)

**९. स इन्द्रः, अर्णवः न, समुद्रियः नयः प्रति-
पाति—** वह इन्द्र, महासागरके समान, समुद्रकी ओर जाने-
वालोंको अपने अधीन कर लेता है । (मं. २)

**१०. उग्रः त्वं तं पर्वतं न महः नृम्णस्य धर्मणां
रक्षसि—** तू उग्रवीर उस पर्वतपर बड़े पाँहपके कमोंके
सेवा स्थापित करता है । (मं. ३)

**११. स शुम्भः मज्जता ओजसा जनेभ्यः महानि
मेधानि कृणाति, वधं पञ्च निधनिपते त्विषीमते
प्राप (जनाः) धत्तुं दधति—** वह सोझा इन्द्र अपने
बड़ेसे जगताया हित करनेके लिये बड़े बुद्ध करता है,
जिसे मारक वधका प्रहार करनेवाले इन्द्रके जगत् सब लोग
बड़े इच्छासे रक्षा करेगा ऐसा) प्रज्ञा रखते हैं । (मं. ५)

**१२. सः धवस्तुः सुधातुः इमया बुधायन ओजसा
विषा सद्ना नि विभाशयन्, अशुकाणि व्योतीपि**

कृणवन्, सतैवै अपः सवसृजत्— वह कीर्तिमान् उत्तम
कर्म करनेवाला वीर मातृभूमिके साथ बड़नेवाला, अपने सामर्थ्य-
से शत्रुके बनावटी किले नष्ट करता है, आवरणरहित तेज
फैलाता है और जलप्रवाहोंको बढ़ाता है । (मं. ६)

**१८. ते सारथयः यामिष्ठासः, केताः भूर्णयः त्वा-
न आदभ्युवन्ति—** तेरे सारथी रथनिधन्वणमें कुशल हों,
तेरे शिक्षित घोड़े (समयपर) तुझे कष्ट न दें । (मं. ७)

(ऋ. १।५६)

१९. त्वावृधा देवी तविपी ऊतये सिपक्ति— तुझसे
बड़ाई गयी दिव्य सेना (जनताकी) रक्षा करनेके लिये (समय-
पर) तेरी सेवा करती है । (मं. ४)

२०. वृत्रं अहन्, अपां अर्णवं औज्जः— तूने वृत्रको
मारा और जलप्रवाहोंको नोचे बढ़ाया । (मं. ५)

**२१. समया पाष्या वृत्रस्य वि अरुजः, अपः
अरिणाः—** कठोर शत्रुसे वृत्रको मारा और जलप्रवाहोंको
बढ़ा दिया । (मं. ६)

(ऋ. १।५७)

**२२. त्वं तं महान् पर्वतं वज्रेण पर्वशः चकतिथ-
तूने उस बड़े पर्वत (पर रहनेवाले शत्रुके) वज्रसे टुकड़े कर
दिये । (मं. ६)**

२३. निपृताः अपः सतैवै अव सृजः— दूरे जल-
प्रवाहोंको बढ़ा दिया । (मं. ६)

इन मन्त्रभागोंमें बुद्धविप्राके मंत्रोंमें जनेक भाषाओं
उल्लेख है । कपटी शत्रुमें कपटी सूड-बुद्ध करना, शत्रुके सन्तान-
छोसे अपने शत्रुछा अधिक पलायनी बनाना और वधार्थ शत्रुमें
बुद्ध करना, चरित्रवाले शत्रुछेदी त्वं पर हर उग्रता न घट करना,
पर्वतपर रहनेवाले शत्रुसे पर्वत पर बुद्ध करना, रथमें रथों के हर,
भूमि-बुद्ध करनेवालों भूमिपर बुद्ध करना और जगत् सबको
करना, ये बातें प्रमुख स्थान रखती हैं ।

अहि, इन्द्र, नकुचे, शम्बर, दसु, बर्ह, पवि, वीर, शुम्भ
आदि नाम शत्रुके हैं । (वेदुदस्य सताः पुरः अभिनत् ।
पानशिव) दूसरेके लो विवि नैव विवि, (नवति नव पुरः
दम्भयः । पानशिव) शत्रुके निम्न बड़े जगत् सबको
दिये । इस तरह शत्रुका सम्पूर्ण वध करनेका उद्देश्य है ।
(पुरः) य जय वे वध है । (मं. ३) अतिशय उग्र शत्रुके
वध करने के लिये शत्रुको नोचे बढ़ाकर जलप्रवाहोंको बढ़ाकर
है । (मं. ५)

नगर ऐसे थे। इससे पता चलता है कि इन्द्रके शत्रु बड़े प्रबल थे। इन शत्रुओंका पराभव करनेका कार्य इन्द्रने किया है। कई समझते हैं कि वृत्र आदि शत्रु अनाड़ी, अपठ और गंवार थे। पर यह कल्पना अशुद्ध है। उक्त प्रकारके बड़े भारी नगर बसानेवाले ये शत्रु थे, उत्तम सामर्थ्यवान् किलोंमें वे रहते थे, उनके दुर्ग पर्वतपर, भूमिपर और जलमें रहते थे और ऐसे सैकड़ों किले थे जिनको तोड़कर इन्द्रने शत्रुका पराभव किया था। अर्थात् बड़ेही प्रबल शत्रुके साथ सामना इन्द्रको करना पड़ा था, इसमें संदेह नहीं है।

पूर्वोक्त स्थानोंमें कहा है कि इन असुरोंका वध करनेमें इन्द्रकी सहायता कई ऋषियोंको प्राप्त हुई थी। यहाँ प्रश्न होता है कि, ये ऋषि असुरोंका विरोध क्यों करते थे? ये सब ऋषि हमेशा असुरोंका विरोध करते हैं। असुर अनाड़ी नहीं थे, उनके नगर सब सुखसाधनोंसे संपूर्ण थे अर्थात् वे उत्तम ज्ञान-विज्ञान-कार्य-कुशलतासे संपन्न थे। उनके बड़े राज्य थे। पर ऋषि उनकी राज्यव्यवस्थासे सन्तुष्ट न थे। इसलिये ऋषि उनके साम्राज्यको तोड़कर नयी अच्छी शासन व्यवस्थाकी स्थापना करना चाहते थे। यही ऋषियों और असुरोंके मध्यमें झगड़की बात थी। इन्द्रने ऋषियोंकी सहायता की और असुरोंका नाश किया। इस विषयका विशेष वर्णन 'अत्रि' ऋषिके दर्शनमें विशेष विस्तारसे आनेवाला है। पाठक इसको बड़ी देखें।

असुर राक्षसोंका नाम 'पूर्व-देवाः' है। अर्थात् ये पहिले देवही थे। साम्राज्य करनेके बाद वे स्वार्थी होनेके कारण वध्य हुए। ऐसी ही हुआ करता है। देवोंकेही दानव अथवा 'राक्षस' हो जाते हैं। राक्षस प्रारंभमें सुरक्षाके कार्य करने थे, अग्निवद्ही ये थे। पर येही जनताकी रक्षा करते करते जनताकी सत्ता लगे, इसलिये ऋषियोंको उनके विरुद्ध लड़ना पड़ा।

राज्य करनेवाले प्रथम अच्छेही होते हैं, पर कुछ समयके बाद वेही अपने अपने स्वार्थपरायण होनेके कारण दुष्ट समझे जाते हैं। 'पूर्व-देवाः' शब्दका यह अर्थ देखिये। राक्षस जनताकी रक्षा करने के लिये पशुघोर कर्म करने लगे। 'असुर' शब्दके अर्थ देवों का अर्थ है, पहिले ये जनताकी रक्षाके लिये अच्छे होते थे, परन्तु अपने स्वार्थ करने के, पशुघोर अपने प्राणोंके लिये जनताकी रक्षा करने लगे, तो वेही (असुरः)

राक्षस कहलाये। यह कारण है कि ये ऋषि हलचल करते थे। इन्द्र अधिनौ आदि ऋषिों साधारणतः देवासुर-संप्रामका यह मुख्य कारण है का उसके साथ यह संबंध है।

इन्द्र शत्रुका नाश करके जलप्रवाहोंको करता है। यही युद्ध-नीति है। उसके अन्त विजयी होता है। इसलिये असुर करते थे और इन्द्र उन प्रवाहोंको बन्द लेता था।

उक्त मंत्रभागोंमें संक्षेपसे इस तरहकी पुष्टि है। पाठक अधिक विचार करके अधिक सोच सकते हैं।

आज्ञा-पालन

(अ. १।५४)

१. यः शासं प्रति इन्वति- जो (इन्द्र) पालन करता है, (इन्द्रका) शासन मानता है। (मं. १)

२. जनः सत्पतिः राजा शशुवत्- जनोंका सच्चा पालन-कर्ता राजा बड़ जाता है, उन्नत (मं. ७)

इन्द्र सबका राजा है और प्रायः वह सदा युद्ध करना पड़े तो राज्य-शासनमें अधिक रहना आवश्यकही है। असुर-राज्योंके ऋषियोंकी हलचल और ऋषियोंकी सुरक्षा करनेके लिये ही युद्ध येही वर्णन वेद भरमें प्रायः अनेक अतः हम कह सकते हैं कि वेदमें वीर-शक्तिवादी समय राजाकी आज्ञापालन करना आवश्यकही है।

सोम-पान

(अ. १।५४)

१. इन्द्रपानाः अत्रिपुण्याः चमसाः- चमसाः तुभ्यं इत्, वि अशुनि, कामे देयाय मनः कृधि- पाने योग्य, पत्युं देय कलशोंमें रखे, बहुत पात्रोंमें भरे, ये सोमराशियाँ हैं, इनका पान करो, इन मन्त्रोंकी इच्छा करो इनको धन देनेका विचार करो। (मं. ९)

इन्द्रके सूक्तोंमें तथा अन्य सूक्तोंमें भी सोमपानका वर्णन इन्द्र तथा सब दुष्यमान सैनिक प्रथम सोमपान करते थे पश्चात् युद्ध करनेके लिये शत्रुपर क्रुद्ध पड़ते थे और विजय थे । इस तरह सोमपानका संबंध आर्यजीवनके साथ त घनिष्ठ है ।

लूट

(ऋ. ११५३)

१. ससतां इव (शत्रूणां) रत्नं आविदत्- असावध बाले शत्रुओंके धनको वह इन्द्र प्राप्त करता है । (मं. १)
२. अपने सैनिकोंको साथ लेकर शत्रुपर हमला करता था, परास्त करनेके पश्चात् उसकी संपत्ति लूटकर लाता और वह धन अपने लोगोंमें वधायोग्य रीतिसे बांट था ।

वृत्र

(ऋ. ११५२)

१. इन्द्रः नदीवृत्तं वृत्रं अवधीत्- इन्द्रने नदीमें रहने-वाले शत्रुको घेरनेवाले वृत्रका वध किया । (यहां नदीपर मेवाला वृत्र है, यह बर्फही हो सकता है, मेघ नहीं ।)
२. धरुणेपु पर्वतः न अच्युतः- जलस्थानों-तालाब इकोमें यह वृत्र पर्वत जैसा स्थिर रहता है । (अर्थात् यह जल-स्थानोंमें स्थिर रहता है, नीचेसे जल बहते रहनेपर प्रका बर्फका कवच स्थिर रहता है ।)

३. अर्षोसि उज्ज्वन्- (इन्द्र) जलप्रवाहोंको नोचकी चलाता है । (मं. २)

। मेघ है, ऐसा निरवत आदि ग्रंथोंमें कहा है । वेदमंत्रोंमें नैन आभा है उसका विचार करनेसे वृत्र मेघ ही है, ऐसा नही होता । सूर्य आतेही वृत्रसे जलप्रवाह शुरू होते वृत्र पर्वत, भूमि, नदी आदिपर पड़ा रहता है, जल-प्रवाहके कारण रुक जाते हैं । अर्थात् बर्फ ही वृत्र है जो धरतीमें भूमिपर पड़ता है और सूर्य आनेसे पिघलता है बरिशीको मराने लगते हैं । नदीही वृत्रको कारण और प्रवाह रुकने लगते ऐसे वर्णन है । ये मेघके निचले भाग होने, क्योंकि सूर्य आनेसे मेघोंसे जल नही बहने लगता । वृत्रसे जलप्रवाह सूर्यके कारण रुकने लगते हैं ।

अन्धेरेके साथ भी वृत्रका संबंध है । उत्तरीय ध्रुवके पास तथा उसके आसपासके भूमिप्रदेशमें अनेक मास रहनेवाली रात्रियां होती हैं, उसी समय अन्धेरा होता है, सर्दो शुरू होती है, बर्फ पड़ता है, जलप्रवाह रुक जाते हैं । जब योग्य समयपर सूर्यका उदय होता है, तब अन्धेरा दूर होता है, प्रकाश आता है, बर्फ पिघलकर जलप्रवाह बहने लगते हैं, धनधान्य अन्नादिकी समृद्धि होती है । अस्तु । वृत्र बर्फही है ऐसा प्रतीत होता है ।

अर्थात् ये युद्ध काल्पनिक, आलंकारिक तथा काव्यमय हैं । तथापि वेदमें क्षत्रियकी विद्या इनही काम्योंसे दिखाई देती है और वर्णन ऐसे शब्दोंसे किये हैं कि वे सदाही सत्य प्रतीत हों । अध्यात्मक्षेत्रमें भी ये युद्ध वैसेही सत्य हैं । इसलिये ऐसे शब्दप्रयोग वेदमंत्रोंमें किये हैं कि जो ये सब अर्थ व्यक्त करनेमें सदा समर्थ दिखाई देते हैं । इस कारण इनही सूक्तोंमें ऐसे भी वर्णन हैं कि जो परमात्मानमें ही घट सकते हैं । देखिये-

परमात्माके कार्य

निम्नलिखित कर्म इन्द्रके हैं, परन्तु यहाँ इन्द्र परमात्माका रूप मानना उचित है-

(ऋ. ११५१)

१. दशे सूर्यं दिवि आ अरोहयः- सबसे प्रकाश दिवानेके लिये सूर्यको पुलोकमें ऊपर चढ़ाया । (मं. ४)

(ऋ. ११५२)

२. दशे सूर्यं दिवि आ अधारयः- प्रकाश दिवानेके लिये सूर्यको पुलोकमें ऊपर धारण किया । (मं. ८)

३. स्वभूति-ओजाः त्वं अवसे अस्य व्योमनः रजसः पारे ओजसः प्रतिमानं चक्षुषे, परिभूः दिवं पयि- अपने निज बलसे पुनः पुनः मानवीही प्रकाशके लिये इस आकाशके और अन्तरिक्षके भी परे अपने बलकी प्रतिमा जैसी करके रखी है, शत्रुका पराभव करता हुआ तू पुलोक तक व्यापता है । (मं. १२)

४. त्वं पृथिव्याः प्रतिमानं भुवः- तू पृथिवीकी प्रतिमा रूप हुआ है, अपरिभूरे लिये पृथिवीको उभार दे ।

५. ऋषवीरस्य बृहतः पतिः भूः- नदीयोंके निरालस्य बलसे इन निरालस्य पुलोकका उभार दे ।

६. त्वं महिष्या तस्यै विभ्यं अन्तरिक्षं आभार- जो बलसे महिषाने इन नदीयोंके अन्तरिक्षको उभार दे ।

७. त्वा चान् अन्यः नक्तिः- तेरे जैसा दूसरा कोई भी नहीं है । (मं. १३)

८. द्यावापृथिवी यस्य व्यचः न अनु आनशे-
ध्रुवोकेसे पृथ्वीपर्यंतका सब विश्व जिसके विस्तारको नहीं व्याप सकता ।

९. रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः- अन्तरिक्ष और समुद्र जिसका पार नहीं व्याप सकते ।

१०. एकः अन्यत् विश्वं आनुषक् चरुपे- एकही प्रभु दूसरे विश्वको क्रमपूर्वक करता है । (मं. १४)

(ऋ. १।५४)

११. ते शवसः अन्तः नहि- तेरे बलका अन्त नहीं है । (मं. १)

१२. रोचवत् नद्यः वना अक्रन्दयः- गर्जना करने-वाली नदियोंको गर्जना करते हुए तुमने प्रवाहित किया ।

१३. क्षोणीः भियसा कथा न सं आरत ?- पृथ्वी तेरे भयसे क्यों न कांपेगी ? अवश्य भयभीत होगी । (मं. १)

(ऋ. १।५५)

१४. अस्य वरिमा दिवः वि पप्रथे, पृथ्वी मद्रा इन्द्रं न प्रति- इस इन्द्रका बड़ापन ध्रुवोकेसे भी और पृथ्वीसे भी विस्तृत है । (मं. १)

ये वर्णन परमात्माके विषयमें ही सार्थ दीखते हैं ।

प्रार्थना

(ऋ. १।५३)

१. राया, इषा, वाजेभिः, वीरशुष्मया, गोअग्रया,

अश्ववत्या, प्रमत्या सं रभेमहि- हमें धन, अश्व, वीरोंका प्रभाव, गौ और घोड़ोंसे युक्त उत्तम बुद्धि और उससे हम बड़े कार्योंका प्रारंभ करें । (मं. ५)

२. उदचि देवगोपाः सखायः शिवतमा सुवीराः द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः- मैत्रेया यन होनेके बाद हम देवोंसे रक्षित, उनके मित्र और अत्यंत प्रिय हों । हम उत्तम वीर होते हुए लंबी आयुको लंबी करके धारण करें । (मं. ११)

(ऋ. १।५४)

३. शेवृधं जनापाद् महि तव्यं क्षत्रं भस्मे प्राहि धाः- शान्तिको बढानेवाला, शत्रुको परास्त करनेवाला क्षात्रबल हमें दे । (मं. ११)

४. सूरीन् पाहि, मघोनः रक्ष, नः सुअपते राये धाः- विद्वानोंको और धनवानोंकी सुरक्षा कर, उत्तम संतान, अन्न और धन दे । (मं. ११)

युद्धसे उपरति

(ऋ. १।५४)

१. अस्मिन् अंहसि पृत्सु नः मा (प्रक्षेप्सी) इष पापमय युद्धमें हमें न डाल । (मं. १)

इस तरह युद्धसे निवृत्त होनेके विचार भी यहाँ है । अश्व, इस रीतिसे सव्य ऋषिके ये दिव्य काव्य बड़े उत्साहपूर्वक स्फूर्ति देनेवाले और बड़े बोधप्रद हैं । पाठक इनका विचार करें ।

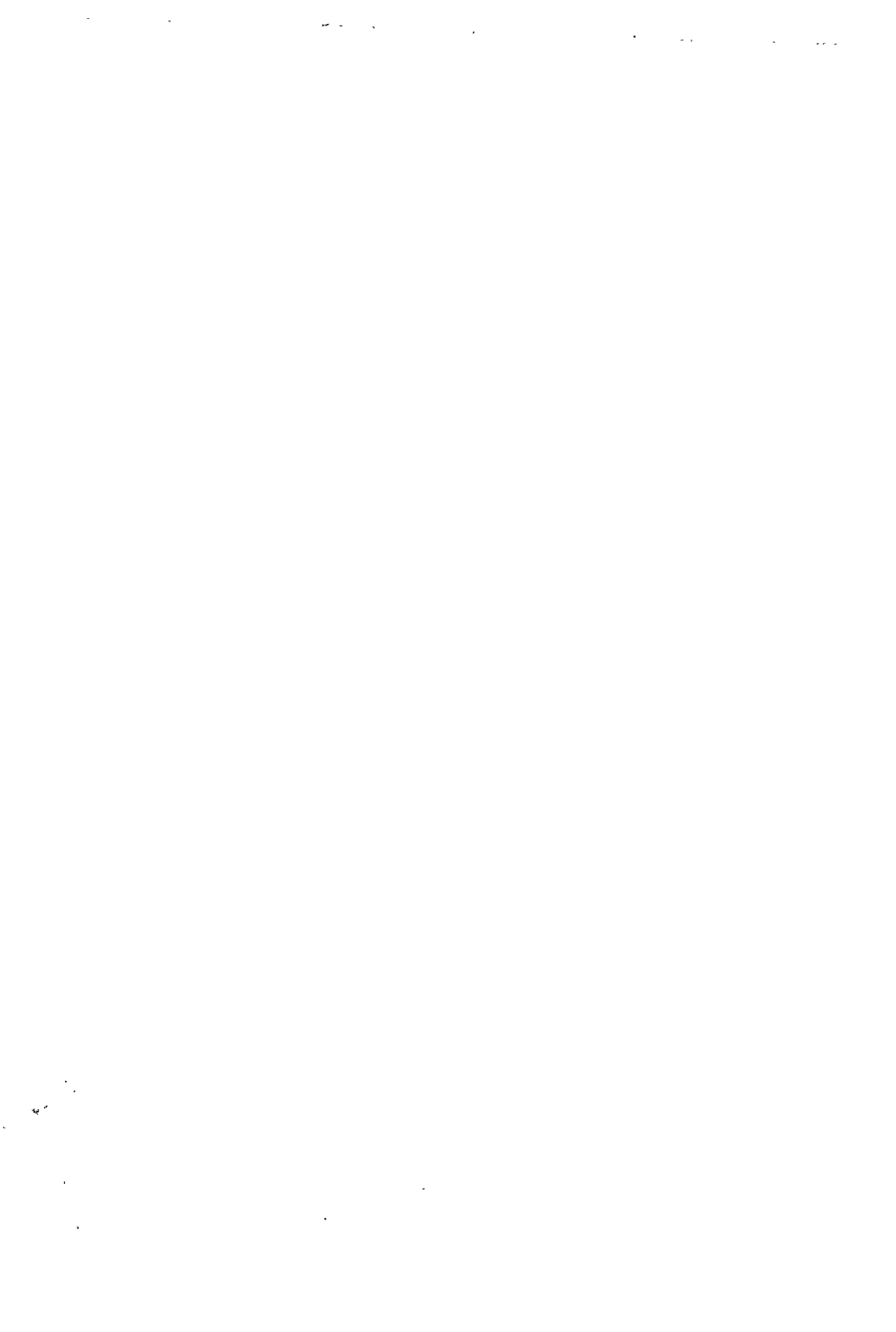
सद्य ऋषिका दर्शन समाप्त

सव्य ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

पृष्ठ

| | |
|--|----|
| विषय | |
| सव्य-ऋषिका तत्त्वज्ञान | २ |
| (ऋ. १।५१-५७ तकके सभी श्रुत तथा सभी मंत्र 'इन्द्र' देवताके हैं) | ३ |
| सव्य-ऋषिका दर्शन | " |
| (प्रथम मण्डल, दशमालुवाक) | " |
| (१) इन्द्र | ६ |
| (२) " | ९ |
| (३) " | ११ |
| (४) " | १३ |
| (५) " | १४ |
| (६) " | १६ |
| (७) " | १७ |
| इन्द्रका अग्रतिम प्रभाव | " |
| वीरकी विद्या-प्रवीणता | १८ |
| धनवान् इन्द्र | " |
| इन्द्रका दान | २० |
| इन्द्रके मनुष्य-हितकारी कर्म | २१ |
| वीर इन्द्र | २४ |
| इन्द्रकी युद्ध-विद्या | " |
| आज्ञा-पालन | २५ |
| सोम-पान | " |
| लट् | " |
| वृत्र | २६ |
| परमात्माके कार्य | " |
| प्रार्थना | |
| युद्धसे उपरति | |





ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(७)

नोधा ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदमें एकादशवाँ अनुवाक)

लेखक
भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद रामोदर साहस्रभूमि,
अध्यापक-स्वाध्याय-मण्डल, जोधपुर

सं. १९२२

मुद्रण १९२२

પુસ્તક ગણક-વચાનક-વર્ણન-શ્રીમાત્ મહાવિદ્યાર્થ, B. A.
મહાવિદ્યાર્થ, ગોવ. (૧૩. ૫૫૫૫)

नोध्या ऋषिका तत्त्वज्ञान

गीतम ऋषिश्च पुत्र नोधा नामक ऋषि है। इसका दर्शन विवेक के ग्यारहवें अनुवाकमें है। इसके साथ आठवें मण्डलमें ८ वाँ सूक्त और नवम मण्डलमें ११ वाँ सूक्त इसीके दर्शन में मिलते हैं। इसके दर्शनकी सृजवार गणना ऐसी है—

आमिके मंत्रोंमें ५९ वे सूक्तके मंत्र ' वैश्वानर अग्नि ' के हैं। इस नोधा ऋषिके मंत्र अथर्ववेदमें हैं पर ऋग्वेदकेही मंत्र वैश्वेके वैसे अथर्ववेदमें हैं-

सूक्तानुसार मन्त्र-गणना

ऋग्वेदमें प्रथम मण्डल

एकादश अनुवाक

नोधो गौतम ऋषि

एक देवता मंत्र-संख्या

५८ आग्निः ९

५९ वैश्वानरः ७

50 4

६१ इन्द्रः १६ (अथर्ववेद २०।३५।१-१६)

42 43

33 31 3

६१ महतः १५

अष्टम मण्डल प्रथम दो मन्त्र

८८ इन्द्रः ६ (अथर्व. २०।१।१-२;

२०४९१४-५)

नवम मण्डल

११ एवमनाः तामः ५.

५००१-५००२-५००३

देवताधार मन्त्र-संख्या

122

१ अ. ११. ११

4 0,2 3: 7'

• 444 •

2000

ऋग्वेद देवता अथर्ववेद

१।६१।१-१६ इन्द्र: २०।३५।१-१६

C/C/19-2 २०/१/९२

2018918-4

अर्थात् ऋ. ८।८८ सूक्तके प्रथम शो भंग अथर्ववेदमें शो वार आवे हैं। अथर्ववेदके नोपाके भंग ऋग्वेदमें शो है इसको उनका पृथक् विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अ. २०।३५) का ऋषि ऋग्वेदमें नोपाके भंग है, यज्ञोपनिषद् वर्णनक्रमणमें इसका प्रत्ये नोपाके भंग है, अथर्ववेदमें नोपाके भंग कदा भी कदा ही बर निजाना न आये। अथर्ववेदमें नोपाके भंग अथर्ववेदमें भूके ऋग्वेद में शो है अथर्ववेदमें नोपाके भंग है, नोपाके शो है।

ਅਰਜੁਨ ਦੇਵੀ ਦੇਵੀ, ਜੀ. ੧੪. ੧੨. ੧੧. ੧੦. ੯. ੮. ੭. ੬. ੫. ੪. ੩. ੨. ੧.

၂၀၁၁ ခုနှစ် ဇူလိုင်လ ၁ ရက်နေ့

[illegible][illegible]

11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 841. 842. 843. 844. 845. 846. 847

[illegible][illegible][illegible][illegible]

महोदय, आपका पत्र मिला।

Non-Indigenous

[illegible]



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य नो धा ऋ पि का दर्श न

[ऋग्वेदका एकादश अनुवाक]

(१) अजर अमर अग्नि ।

(ऋ. १।१८) नोधा गीतमः । अग्निः । जगती, ६—९ विष्टुः ।

नू चिन् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दृतो अभवद् विष्मन्तः ।
वि साधिष्ठमिः पथिभी रजो मम आ देवताता दधिषा धियासति
आ स्वमन्न युवमानो अजरस्तृष्यविष्यघ्नसेषु निष्ठमि ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्नानयन्निभदत्त
काणा वद्रेभिर्वनुभिः पुरादिता होता निपत्तो मयिषाज्जमन् ।
रथो न विक्षुब्धसान आनुषु व्यानुषग्वार्यो देव ऋष्यमि

‘ नोधस् ’ नामक सामगान है जो नोधा ऋषिका गाय है ।
‘ अस्मा इह ’ (ऋ. १।६१) यह सूक्त नोधा ऋषिका है । नोधाके
मंत्र राज्याभिषेकके समय बोले जाते हैं । यह ऐतरेय ब्राह्मणमें
नोधा ऋषिके विषयमें कहा है ।

ऋग्वेदमें इस ऋषिका नाम निम्नलिखित मंत्रोंमें आया है—

सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः । (ऋ. १।६१।१४)

सनायते गोतम इन्द्र नव्यं ।

सुनीधाय नः शवसान नोधाः (ऋ. १।६२।१३)

नोधाः सुवृत्तिं प्र भरा मरुद्भयः । (ऋ. १।६४।१)

नोधा इवाविरक्तं प्रियाणि । (ऋ. १।१२४।४)

इन मंत्रोंमें ‘ नोधा ’ ऋषिका नाम आया है और
गोत्र भी ‘ गोतम ’ कहा है । ये मंत्र यज्ञों दिये हैं ।
विषयमें इतनाही पता लगता है । पर्यावृत्त ब्राह्मणमें
का थोडासा उल्लेख आया है ।

अस्तु इस तरह नोधा ऋषिका तत्त्वज्ञान इस
विदित हो सकता है ।

भाद्रपद
संवत् २००३

}

निवेदक

श्री. दा. सातवलेकर
स्वाध्याय-मण्डल
औंध, जि. सातारा



ऋग्वेदका सुकोष भाष्य नो धा ऋ पि का दर्श न

[ऋग्वेदका एकादश अनुवाक]

(१) अजर अमर अग्नि ।

(ऋ. ११.४) नो धा नौतमः । अग्निः । जगती, ६—९ त्रिष्टुप् ।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति १
आ स्वमश्न युवमानो अजरस्तृष्यविष्यन्तसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुपितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् २
क्राणा ह्येभिर्वसुभिः पुरोदितो होता निपत्तो रयिपाळमर्त्यः ।
रथो न विद्वज्जसान आयुषु ध्यानुय्वार्या देव ऋण्वति ३

अन्वयः— १ नू चित् सहो-जाः अमृतः (अग्निः) नि
न्दते । यद् विवस्वतः दूतः अभवत्, साधिष्ठेभिः पथिभिः
जः वि नमे, देवताता हविषा आ विवासति ॥

२ अजरः (अग्निः) त्वं जग्न युवमानः तृषु अविष्यन्
वसुषु तिष्ठति । प्रुपितस्य पृष्ठं, अत्यः न, रोचते । दिवः
क्रानु न स्तनयन् अचिक्रदत् ॥

३ क्राना, ह्येभिः वसुभिः पुरोदितः, होता, अनर्त्यः रयि-
पाट् निपतः देवः, रथः न, विद्वज्जसानः आयुषु आयु-
वद् अर्थां वि ऋण्वति ॥

अर्थ— १ निःसन्देह बलके साथ उत्पन्न हुआ यद् अमर
(अग्नि देव) कभी व्याधित नहीं होता । जिस समय वह
विवस्वानका महाव्यसारी हुआ, उस समय उत्तम महापथक
मार्गोंसे उसने अन्तरिक्ष-लोकमें गमन किया (प्रकाश किया और)
देवताओंकी शक्ति फैलानेके कार्यमें (यज्ञमें) हविके अर्पणसे
(देवोंका) अदरातिथ्य भी किया ॥

२ जरारहित (अग्नि) अपने मध्यके साथ मिलता हुआ,
तुम्हारी (साथ) स्रजर, छाछीर (जलता) रहता
है । जो निश्चित होनेपर वह, पेटके समान, पोषता है । और
पुष्टीके दिखर (पर रहनेवाले मेघ) के समान गर्वता हुआ
(गर्ववार) शब्द करता है ॥

३ कर्तृवशात्, ह्यो और वसुषुताया अनुग मानने
रता हुआ, हवनकर्ता, अमर (अमृते) वर्गोंसे जोन पर
रहितः (वहाँ) विगजमान् (हुआ) देव, रथी वर्ग,
पञ्चभूतों वर्गमें होकर, सब लोकमें कमसे, स्वीकार करने
वाला इन करता है ॥

चि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहभिः सृण्या तुविष्यणिः ।
 तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर २
 तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्यो अव वाति वंसगः ।
 अभिव्रजजक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ५
 दधुद्रा भृगवो मानुषेष्वा रथि न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
 होतारमग्ने अतिथि वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ६
 होतारं सप्त जुहोरे यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
 अग्निं विश्वेपामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ७
 अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्मं यच्छ ।
 अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योजो नपात् पूर्विरायसीभिः ८
 भवा वरुथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
 उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ९

४ वात-जूतः अतसेषु जुहभिः सृण्या तुविष्यनिः वृथा
 वि तिष्ठते । हे अजर रुशदूर्मे अग्ने ! यत् तृषु वनिनः वृषायसे,
 ते एम कृष्णम् ॥

५ वातचोदितः तपुर्जम्भः वने साह्यान्, यूथे वंसगः न,
 अव आ वाति । अक्षितं रजः पाजसा अभि व्रजन्, पतत्रिणः
 स्थातुः चरथं भयते ॥

६ हे अग्ने ! भृगवः मानुषेषु, जनेभ्यः सुहवं चारुं रथि न,
 होतारं अतिथि वरेण्यं त्वा दिव्याय जन्मने, शेवं मित्रं न,
 आ दधुः ॥

७ होतारं यजिष्ठं यं अध्वरेषु वाघतं सप्त जुहोः वृणते,
 (तं) विश्वेषां वसूनां अरतिं प्रयसा सपर्यामि, रत्नं यामि ॥

८ हे सहसः सूनो, मित्रमहः ! अद्य नः स्तोतृभ्यः अच्छिद्रा
 शर्मं यच्छ । हे ऊर्जो नपात् अग्ने ! आयसीभिः पूर्वैः
 गृणन्तं अंहसः उरुष्य ॥

९ हे विभावः ! गृणते वरुथं भव । हे मघवन् ! मघव-
 : शर्मं भव । हे अग्ने ! गृणन्तं अंहसः उरुष्य । धियावसुः
 : मधु जगम्यात् ॥

४ वायुद्वारा प्रेरित होकर लकड़ियोंमें (जब अपनी)
 ओंकी तेजस्विताके साथ बड़ा शब्द करता हुआ
 तू उड़ता है, हे जरारहित तेजस्वी ज्वालाओंवाले
 तत्काल वृक्षोंमें अपना बल प्रकट करते हुए तुम्हारा
 (दिखाई देता है) ॥

५ वायुद्वारा प्रेरित हुआ, ज्वालारूप दंष्ट्रावाला (
 वनमें बलसे, गौसमुदायमें सांडकी तरह, घूमता है ।
 अक्षय अन्तरिक्षमें अपने बलसे घूमता है, तब उसे
 जंगम इस पक्षी (के समान वेगसे जानेवाले) ने उरते

६ हे अग्ने ! भृगुलोगोंने मानवोंमें, लोगोंको मुखमें
 करनेयोग्य, सुंदर धनकी तरह (पास रखनेयोग्य)
 अतिथि ऐसे तुझको, दिव्य जन्मवालोंको भी सेवा
 मित्रकी तरह, धारण किया ॥

७ देवोंको बुलानेवाले यजनीय, हिंसारहित वृक्षोंमें
 जिस (देवको) सात श्रविवज स्वीकार करते हैं, उ
 धनोंके दाताकी अन्नके समर्पणद्वारा मैं सेवा करता हूँ ।
 मैं धन भी (प्राप्त करना) चाहता हूँ ।

८ हे बलसे उत्पन्न होनेवाले (अग्ने) ! निर्वह
 बढानेवाले अग्ने ! आज हम सब स्तोताओंके लिये अन्न
 दो । हे बलको न गिरानेवाले (अग्ने) ! लोहेकी नगरियोंमें
 जनताका बचाव करते हैं वैसा) स्तोताका पापसे रक्षन

९ हे तेजस्वी देव ! स्तोताको सुख दो । हे धनवान् !
 वानोंको सुख दो । हे अग्ने ! स्तोताको पापसे बचाओ ।
 धन देनेवाला अग्निदेव आज प्रातःसमयमें शीघ्र ही अग्ने ॥

अग्नि के विशेषणों का विचार

वस्तु में अग्नि का वर्तन है। इस अग्नि का स्वभाव निश्चित करने को विशेषण अर्थात् गुणवर्तन करने के लिये एक या एक प्रयुक्त करने गये हैं, उनका विचार करना चाहिये। तथा क्रमवर्तन यह है —

सहो जाः— वस्ते उपनस, वस्ते लिये उपनस। वस्ते वस्तेवत्ता। दो आगिनीका धर्म करने के लिये वस्ते उपनस है, इस धर्मसे अग्नि उपनस होता है, इसलिये दो 'सहो जाः' कहते हैं। तुलोकनिता है 'सौमित्रा, तुलना (तुलने) और दुषी माता है, इनके संयोगसे वस्ते होती है। उत्तम धुवन तुलोकका गोक धुवना प्रसन्न प्रसन्न-हमने धुवना वहाँ प्रसन्न है, यह सूर्य भी वस्तेवत्ता कह-कल्पनसे उपनस है। पिता माता ये दो अग्नी हैं, जो 'उप' करती है। इसलिये सूर्य और पुत्र ये भी 'उप' हैं। यह एक ही सहो जा उपनस अग्नि, सूर्य और पुत्ररक्त संदिक्ता है।

१. अनृतः— (अ-नृतः) अनर अग्नि है, तूर्त भी अनर। अग्नि जाना भी अनर है। अनेक देहों में एक ही आत्मा लिये कार्य वह अनर कहलाता है।

२. सहो जाः अनृतः नि तुन्दते— वस्ते साथ उपनस अग्नि अनर व्यक्त नहीं होता। जो बलवान् है और जो लज्जित नहीं है उसको किसी तरह के कष्ट नहीं हो सकते, यह समझी है। क्योंकि जो निर्दल है और जिसको नृतुका मर है वही बड़ा दुःखी होगा। इसलिये सुख प्राप्त करने की एक है तो बल प्राप्त करना चाहिये और अपना आत्मछवि अमान्य बनना चाहिये।

३. साधिष्ठेभिः पथिभिः रवः वि मने— उत्कृष्ट पथि मार्गों का आचरण करना चाहिये। एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना हो तो जो उपनसे उपन मार्ग हो उससे जाना सुकरा है। 'अग्नि' मार्गसे अनेक पथ किता जाय तो निश्चय वह दुःख बड़ाया।

४. देवताता— (देव-ताता) देवता का बितार, देवी को देवता कहने के कर्म की पर है। सब मनुष्यों को देवता कहने के कर्म की पर है। जो अग्नि है वह देव कर्म करे करता है, (अग्निः देवताता आ विवासति)

अग्नि यज्ञी — देवता का बितार करने वाले कर्मों की संज्ञा करता है। मनुष्य अग्नि है, इसलिये उसको ऐसे कर्म करने चाहिये। (मं. १)

५. अजरः (अ-जरः) जराहितः,

७. त्वं अग्र युवमानः— अग्ने लिये जो भक्षणयोग्य वस्तु है उसको खानेवाला। 'अग्र' वह वस्तु है कि जो खाने योग्य है। बालक, लवण, वृद्ध, ज्ञान, धर्म, वैश्य, शूद्र, पशु आदि के लिये, 'अग्र' के लिये 'अग्र' खाने योग्य वस्तु-वृद्ध होती है। जो विश्व को खाने के लिये योग्य है वही उसने खाया तो उसको सुख हो सकता है, अन्यथा दुःख निश्चित है।

८. तृषु अविध्यन् अतसेषु तिष्ठति— शीघ्र ही अपनी सुरक्षा का उपाय करना हुआ अग्ने कर्वाँ में ठहरो। तृषु= तत्काल, शीघ्र। अतसे= वायु, प्रान, आत्मा, कवच, काले की दिवार, छत, छिन्धा, लकड़ी। शीघ्र अपनी सुरक्षा करो और अपने आपसे कर्वाँ में, काले में, सुरक्षित स्थान में रहो। यह सर्व सामान्य उपदेश हर एक के स्मरण में रखने योग्य है। अग्नि शीघ्र ही अपनी सुरक्षा करता हुआ बड़ता है और लकड़ियों के आश्रय से बचता रहता है।

९. पुषितस्य पृष्ठं, अत्यः न रोचते— पीछी आहुति देने पर अग्नि, बुझी डाल के लिये सिद्ध घोंडे से समान चमकता है। वैदिक समय में बुझी डाल होती थी, उस चार्ब के लिये घोंडे तैयार दिये जाते थे और लोग उसमें भाग भी लेते थे। (मं. २)

१०. क्राणा— कर्माने इसल, उदमी, पुत्रपार्थ,

११. पुरोहितः— (पुरः हितः) आगे रखा हुआ, नेता, अग्रगण्य,

१२. अनर्त्यः— अनर,

१३. रयिपाह— (रयि-पाह)— शत्रुघ्न पराजय करके उसका धन लौटकर लानेवाला,

१४. देवः— देवी संताले से दुक्त, दिव्य पुत्रताता, पुत्र होने दुक्त, नकारानर,

१५. विष्णु कवचानः— मनुष्यों को अपने अपने कर्मों के लिये बच करना है, इसलिये लिये धर्म, प्रार्थना करनेवाला,

१६. आयुषु आनुपक् वायां वि ऋणवति— मान-
वोंमें सदा स्वीकार करनेयोग्य जो धन है उनको लाता है,
प्राप्त करता है। अयोग्य वस्तुका स्वीकार नहीं करता,
प्रत्युत योग्य वस्तुकाही स्वीकार करता है। (मं. ३.)

१७. वातजूतः— वायुसे प्रेरित। यदाही वायुकी साथ
रहनेसेही अग्नि जलता है।

१८. अतसेषु तिष्ठति- (देखो टिप्पणी मं. ८)

१९ जुहुभिः सृण्या— ज्वालाक्षणी शस्त्रके साथ, ज्वाला-
रूप शस्त्रसे अग्नि लकड़ियोंको काटता है, लकड़ियोंको जला
देता है,

२०. रुशदूर्मिः— (रुशत्-ऊर्मिः)— तेजस्वी लहरों-
वाला, तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त। यदा ऊर्मि' पद ज्वालाके
लिये प्रयुक्त हुआ है, जो समुद्रकी लहर का वाचक है।

२१. वनिनः वृषायसे— वनमें रहनेवाले वृक्षों, उनकी
लकड़ियोंपर अपना प्रभाव जमा देता है। यहाँका 'वनिन्, वन'
पद वृक्ष, लकड़ी, समिधाका वाचक है। लकड़ीपर प्रभाव
जमानेका तात्पर्य जलाना है।

२२. ते कृष्णं एम— तेरा काला मार्ग है। वनमें अग्नि
वृक्षोंको जलाता हुआ जब जाता है तो वह उसका गमन मार्ग
काला दीखता है। इस काले मार्गको देखनेसे पता चलता है
कि इस मार्गसे अग्नि गया है। (मं. ४)

२३. वात-चोदितः— वायुसे प्रेरित। (टिप्पणी
१७ देखो)

२४. तपुर्जम्भः— तपुः = उष्णता, आग, ज्वाला।
जम्भः— जबड़ा, मुख, दंष्ट्रा। ज्वाला ही जिसका जबड़ा है।

२५. वने साह्वान्— वनका-वृक्षोंका-पराभव करता है,
वृक्षोंको जलाता है।

२६. अश्वितं रजः पाजसा अभिव्रजन्—अक्षय अन्त-
रिक्षमें बलमें भ्रमण करता है। धधकती हुई दावानलकी
ज्वालाएं अन्तरिक्षमें घूमती हैं।

२७. पतत्रिणः स्यातुः चरथं भयते— इस पक्षी-
सदृश वेगसे घूमनेवाले दावानल-अग्नि-को देखकर स्थावर
जंगम, सबका सब वस्तुजात भयभीत होता है। (मं. ५)

२८. भृगवः मानुषेषु जनेभ्यः दिव्याय जन्मने
वरेण्यं आ दधुः— भृगुवंशके ऋषियोंने सब मानव समाजमें

सब मानवोंके (कन्याया करनेके) लिये, उनका
द्विजत्व शिष्ट करनेके लिये, उनमें दृष्ट परिवर्तन
इस अर्थ (अग्नि) को धारण किया। यज्ञमें
भृगुवंशके ऋषियोंने सब जनताकी उन्नति करनेके
संस्थाके द्वारा जो रचना की उसमें अग्नि-उपासना
रखती है।

२९. सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः— अ-
करनेयोग्य, सुंदर रमणीय, देवोंको बुलानेवाला,
समान पूजनीय। अतिथिः— (अति, अति)
जाता है। जब अग्नि लकड़ियोंको खाता हुआ अपने
तब उसको ' अतिथि ' कहा जाता है। (मं. ६)

३०. अध्वरेषु वाघतः— हिंसारहित अश्वि-
जिसकी प्रशंसा की जाती है।

३१. यजिष्ठः— पूजनीय, यजनीय,

३२. विश्वेषां वसूनां अरतिः— सब धनों
(मं. ७)

३३. सहसः स्रुतः— बलका पुत्र (देखो टिप्पणी)

३४. मित्रमहः— मित्रकी महता बढानेवाला,

३५. अन्विष्टं शर्म यच्छ— अक्षय सुख देता है

३६. ऊर्जः न पात्— शक्तिका नाश-पतन-न
(टिप्पणी १ और ३३ देखो) शक्तिकी बढानेवाला।

३७. आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं उरुष्य-
नगरियोंसे-कीलोंसे स्तोताकी सुरक्षा कर। स्तोताके
कीलकी दिवारें हों, ऐसा और दत्तना धन उसके पास
भक्षके पास हो। (मं. ८)

३८. विभा-वसुः— विशेष प्रकाशसे युक्त,

३९. मघवा— धनवान्, प्रकाशक्षय धनसे युक्त,

४०. धिया-वसुः— बुद्धिसे, कर्मसे धन देनेवाला,
बुद्धि सुसंस्कृत करे, तत्पश्चात् उत्तम कर्म करे, तो धन

परमेश्वरका स्वरूप

यहाँ इस सूक्तमें 'अमृतः, अजरः, अमर्त्यः, देवः,
ये पद परमेश्वर, परमात्माके स्पष्ट वाचक हैं।
क्राणा, पुरोहितः, रयिपाद्, रुशदूर्मिः,
सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः, अध्वरेषु
यजिष्ठः, विश्वेषां वसूनां अरतिः, मित्रमहः,
स्रुतः, ऊर्जो न पात्, विभावसुः, धियावसुः

परमात्माके वाचक हो सकते हैं। इसी तरह कई वर्णन उनके परमात्माके वर्णन जैसेही हैं।

कारण यह है कि ऋषि 'अग्नि' पदसे जोंव, शिव (परमात्मा, परब्रह्म) और प्राकृतिक अग्नि आदि देव ग्रहण करते थे। 'तत् पञ्च अग्निः' (वा. य. ३.२.१)

सत्, विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्निं यमं।' (॥६॥४६) वह जगदी अग्नि है, सत् एकही है,

योग उघी एकका वर्ण अग्नि, यम आदि अनेक नामोंसे

। ऋषिभोग इस सच्चाईसे परिचित थे। इसलिये वे वर्णन करते करते वह परमात्माका रूप है ऐसा अनुभव उसके वर्णनमेंही परमात्माकाही वर्णन करते हैं।

'सत्' एकही है, तब तो अग्नि परमात्माकाही है। वास्तवमें विश्वरूपही परमात्मा है। अर्थात् अंत अग्नि भी परमात्माका रूप हुआ। इसलिये अग्नि के साथ परमात्माका वर्णन होना युक्तियुक्तही है।

ही सत् है, परमात्मा विश्वरूप है, अतः सब विश्व एकही रूप है। हमारी इन्द्रियां संपूर्ण सत्का ग्रहण कर नहीं पावन्तु एक एक गुणका ग्रहण कर सकती हैं। आखने

रूपका ग्रहण किया और कानने शब्दका ग्रहण किया, इससे रूपवान् अग्नि और शब्दगुणवान् आकाश परस्पर तत्त्वतः विभिन्न नहीं हो सकते। जो विश्वरूपमें एक 'सत् तत्त्व' प्रकट हुआ उसके ही गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। एक सत् तत्त्व ये पांच गुण हैं। हमारी इन्द्रियां एक एक गुणका ग्रहण करती हैं, दूसरे गुणका नहीं करती, यह हमारे इन्द्रियोंकी कमजोरी है, उस कारण उस सत्में किसी तरह न्यूनता नहीं होती।

ऋषि दिव्यदृष्टिसे संपूर्ण सत्तत्त्वका ग्रहण कर सकते थे, इसलिये वे अग्निके रूपमें परमात्माका अनुभव करते थे। यह उनकी दृष्टिकी दिव्यता है। जिसको यह दिव्यता नहीं प्राप्त हुई वह अग्निको परमात्मासे विभिन्न मानता है, यह अपूर्ण दृष्टि है। ऋषिकी दृष्टि संपूर्ण दिव्यदृष्टि थी इसीलिये वे विश्वको परमात्मरूप मानते और विद्वान्तर्गत अग्नि आदि देवताओंको भी भगवद्रूपही अनुभव करने थे। इसलिये उनके वर्णनमें, अग्निके वर्णनमें भी-परमात्माका वर्णन हुआ करता था। पूर्ण दृष्टि और अपूर्ण दृष्टिका यह भेद है। जिसकी दृष्टि पूर्ण होगी वह विश्वभरमें एकही सत्का देखेगा और देवाही वर्णन करेगा।

(२) विश्वका नेता

(ऋ. १।५९) नोधा गौतमः । अग्निर्वैधानरः । त्रिष्टुप् ।

वया इदमे अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।

धैरवानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेय अनां उपमिन् ययग्ध

मूर्ध्या दिवो नाभिरसि पृथिव्या अयामवदरती रोदरुषोः ।

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं धैरवानर ज्योतिरिदाराय

अर्थ- १ हे अग्नि ! अन्ये अग्नयः ते वयाः इत् । विश्वे

यः त्वे मादयन्ते । हे वैधानर ! क्षितीनां नाभिः अग्निः ।

मूर्ध्या स्थूणा इव जनान् ययग्ध ॥

अग्निः दिवः मूर्ध्या, पृथिव्याः नाभिः । अय रोदरुषोः

यः अयमवदरती । तं त्वा देवं देवाः अजनयन्त । हे वैधानरः

ज्योतिरिदाराय ॥

१ (नोधा)

अर्थ- १ हे अग्नि ! दूसरे अग्नयः ते वयाः इत् । विश्वे देव तेरे मादयन्ते । हे वैधानर ! क्षितीनां नाभिः अग्निः । मूर्ध्या स्थूणा इव जनान् ययग्ध ॥

२ यह अग्नि धृति के साथ जो जनता को अन्न देता है, वह अन्न देकर ही जीवता है । जो अन्न देकर ही जीवता है, वह अन्न देकर ही जीवता है ।

आ सूर्यं न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
 या पर्वतेष्वोपधीष्वप्सु या मानुषेष्वासि तस्य राजा
 बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्योऽनं दक्षः ।
 स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यक्षीः
 दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
 राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ
 प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
 वैश्वानरो दस्थुमग्निर्जघन्या अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत्
 वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
 शातयनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीये जरते सूनृतावान्

३ सूर्यं ध्रुवासः रश्मयः न, वैश्वानरे अग्ना वसूनि आ
 दधिरे । या पर्वतेषु ओपधीषु अप्सु या मानुषेषु तस्य राजा
 असि ॥

४ रोदसी सूनवे बृहती इव । मनुष्यः न, दक्षः होता स्वर्वते

सत्यशुष्माय नृतमाय वैश्वानराय पूर्वीः यक्षीः गिरः ॥

५ हे जातवेदः वैश्वानर ! ते महित्वं बृहतः दिवः चित् प्र
 रिरिचे । मानुषीणां कृष्टीनां राजा असि । युधा देवेभ्यः वरिवः
 चकर्थ ॥

६ वृषभस्य महित्वं प्र वोचं नु । पूरवः यं वृत्रहणं सचन्ते ।

वैश्वानरः अग्निः दस्थुं जघन्वान् । काष्ठाः अधूनोत्, शम्बरं
 भेत् ॥

७ वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः, भरद्वाजेषु यजतः विभावा ।

शातयनेये पुरुणीये सूनृतावान् अग्निः शतिनीभिः जरते ॥

३ सूर्यमें जिस तरह स्यायी प्रकाश किरण रहते हैं,
 इस विश्वके नेता अग्निमें सब धन रहते हैं जो पर्वतों,
 जलों, तथा मानवोंमें संपत्तियाँ हैं, उसका तू राजा है ॥

४ यावापृथिवी इस पुत्र (रूप विश्वनेताके)
 भारी विस्तृत सी हो गयी है । मनुष्यके कल्याण
 इस सामर्थ्यवान्, सत्य-बलसे युक्त, मानवश्रेष्ठ
 प्राचीनकालसे चली आयी विशाल स्तुतियाँ गाते हैं ॥

५ हे वेदज्ञाता विश्वनेता ! तेरी महिमा बड़े
 बड़ी है । मानवी प्रजाओंका तू राजा है । तुम युद्धों
 लिये धन देते हो ॥

६ मैं बलवान् देवका महात्म्य वर्णन करता हूँ ।
 जन इस वृत्रनाशकके पाद्य पहुँचते हैं । विश्वनेता
 वध करता है, दिशाओंको हिला देता है, और
 करता है ॥

७ यह विश्वनेता अपनी महिमासे सब मानवी
 का दान करनेवालोंमें यह पूजनीय और प्रेमप्रधान
 वनके पुत्र पुरुणीय (के यज्ञ) में यह सत्यवान्
 सैकड़ों गानोंसे गाया जाता है ॥

विश्वका संचालक

यह सूक्त विश्वके नेताका वर्णन करता है । यह भी एक
 अग्निगी है । इस सूक्तमें सात मंत्र हैं । प्रत्येक मंत्रमें एकवार
 'वैश्वानर' पद है, अर्थात् इस सूक्तमें ७ बार 'वैश्वानर'
 पद है । 'अग्नि' पद केवल पांचवी बार आया है । इस कारण
 इस सूक्तका देवता 'वैश्वानर' है और गौण रूपसे 'अग्नि'
 है ।

१. वैश्वानरः— विश्व + नरः— विश्वका नेतृ,
 प्रमुख, विश्वका संचालक, सबका अनुयायी (के)

२. वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः— (महिम्ना)

यह वैश्वानर कौन है ? यह अपनी महिमासे सब
 प्राणीका रूप धारण करके है । यह वैश्वानर
 यही जनता जनार्दन है । यही 'भारावण' (भारवाण)
 है । नरोंका समूहही नारायणका रूप है ।

अपनी पेट पूर्णिके लिये दूसरों की पूछे है। इसलिये 'रम्भु' इन्द्र देकर आगोंकी प्रशंसा करता योग्य होता है। गुणकर्मोंमें आर्य और रम्भु निश्चित होते हैं।

'वैश्वानर, विश्वनर, सर्वजन, सर्वजनान, सर्वज्जोक्त' ये शब्द समान भाव चतुर्निकले हैं। येशमें 'वैश्वानर' येशमें जो भाव प्रकट होता था, वही आज 'सर्वजनान, सर्वज्जोक्त' पदोंमें प्रकट होता है।

८. स्वयंत सत्यशुभाय वैश्वानराय नुतमाय यहीः गिरः (मं. ८) — अग्निज्ञानी मानवकी सार्वजनिक हित करनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ नेताके लिये ही विशेष प्रशंसा योग्य है। सब मानवकी वैश्वानर है, सब मानवही शमुदाय दे इसमें संदेह नहीं है, पर इस जनसमर्पदा नेत्रून द्वियको मिलना चाहिये इसका उत्तम निर्देश इस संवनागमें है। वह ज्ञानी चाहिये, सत्यनिष्ठाका बल उसके पास चाहिये, सार्वजनिक हित करनेमें वह तत्पर होना चाहिये और सब मानवोंमें नद श्रेष्ठ चाहिये। वही प्रशंसयोग्य है अर्थात् वही पूज्य है और वही उनका नेता होनेयोग्य है।

९. वैश्वानरः नामिः क्षितीनां (मं. ९) — सार्वजनिक हित करनेवाला यह श्रेष्ठ पुरुषही सब मानवोंका, सब जनताका नामि या केन्द्र अथवा मध्य बिन्दु है। सबके आंच इसी नेता पर लगने चाहिये। शरीरमें जैसी नामी, वैसा यह नेता राष्ट्रमें होता।

१०. स्थूणा इव जनान् ययन्थ (मं. १) — त्रिस तरह स्तंभ सब घरके लिये आधार होता है, उसी तरह यह नेता सब मानवोंके लिये आधार होता है। यह श्रेष्ठ नेता सब जनकों इस तरह चलाता है जिससे वे उत्कृष्ट सुख शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

११. अन्ये अग्नयः ते वया इत् (मं. १) — सभी मानव इस वैश्वानरका रूप है ऐसा कहा है (देखो टिप्पणी सं. २ मं. १) इसलिये सभी मानव वैश्वानरके रूप हुए, फिर कहा है कि जो 'नृ-तमः' अत्यंत श्रेष्ठ मानव होगा वही उनका नेता होनेयोग्य है (टिप्प. ८)। फिर अन्य मानवों का स्थान कहा है ? इस प्रश्नका उत्तर इस मन्त्रमागने दिया है — 'अन्य अग्नि इसकी आचाएं हैं।' यह नेता वृक्ष है और अन्य मानव उस वृक्षकी आचाएं, टहनियाँ, पत्ते आदि हैं। सब मिलकर एकही अखण्ड वृक्ष है। तथापि नेता स्कंप है

जो सब मानव ऐसे पत्ती अपने। साथ ही वृक्ष वृक्ष कहिये।

१२. विदो नमूना ख मागन्ते देव दुसमेष मानव पात्र त्री है। मानवही देवताका वरुण है। यही 'वि' है अर्थात् यही मानव-मानव। इन्द्र (इन्द्र) पात्र करते हैं।

१३. दिवः मूर्धा, पृथिव्याः कर्के अगतिः (मं. २) — वह वैश्वानर दुर्लभ मध्य, जोर दोनों ओरोंका स्थानी है। 'कर्के' अर्थात्, शीत न स्थाना, विरक्ति, क्षेत्र, क्षेत्र प्रशंसकता, स्थानी, बुद्धिमान ज्ञानी।

१४. वैवासाः वैश्वानरं अजन्तयन्ते देवो वैश्वानरको प्रकट किया। सब उपस्थ दे, वही यही मुख्य है वह तत्त गुणावा, प्रसिद्ध किया।

१५. सूर्ये रदनयः न, वैश्वानरे वक्ष्ये (मं. २) — सूर्यमें श्रेष्ठ क्षिर रहते हैं, नदमें सब धन रहते हैं। सूर्यमें श्रेष्ठ क्षिर रहते हैं, वैश्वही सब धन इस मानवका देवोंके अर्थात् सब धन मानवसंबंध है, किसी भी इसलिये व्यक्ति को सब धनीय काम सदाके करना आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति का धन है धन समाज, या समष्टिकही है। (टिप्प. १ देखें)

१६. सूनवे रोदसी वृहती (मं. १) — सूर्यके लिये यह शक्तिशाली एक बड़ा द्रव प्रत्येक मानवके लिये वही कर्मक्षेत्र है, वह रचना चाहिये।

१७. दिवः चित् वैश्वानरस्य महितं (मं. ५) — युलोकके नी इस वैश्वानर-अधिक है, क्योंकि यही सबका उत्पत्ति और रक्षक है।

१८. काष्ठाः अधूनोत्, शंवरं अच नेत्रं सब दिशाओंमें रहनेवाले शत्रुओंकी इज्जे विना विना नाश किया। सार्वजनिक शत्रुका नाश करनेमें किसी करनी नहीं चाहिये।

मरदाजेषु यजतः (मं. ७)— अन्नदान करने-
वाही पूजनीय देव है। अन्नदान करनेमें सब जनोंकी
ही मुख्यतया देखनी होती है।

रह इस सूक्तमें राज्यशासनका रहस्य कहा गया है।
प्रकट तौरपर यह अग्निसूक्त है, इसलिये इसमें अग्नि
है। पर अग्निके अनेक रूपोंमेंसे यहाँ 'वैश्वानर'
(मानुष) अग्निविशेष रीतिसे वर्णन है।

यैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
(कठ. २।५।९)

मे सब पदार्थोंमें प्रविष्ट हुआ है इसलिए प्रत्येक रूपमें

वह उस रूपवाला बना है।' अर्थात् वही अग्नि मानवोंमें
मानवरूप लिये कार्य कर रहा है। इसीलिये (वैश्वानर) सर्व
मानवसंघ यह अग्निका रूप है जिसका वर्णन इस सूक्तमें है।

इस कारण जिस तरह इस सूक्तमें 'मानव-संघ'की सुव्यवस्था
के निर्देश हैं, उसी तरह अग्निके और परमात्माके भी इन्ही
पक्षोंसे मुख्य तथा गौणवृत्तिसे वर्णन हैं। इस सूक्तके कौनसे
वर्णन केवल अग्निपरक हैं और कौनसे परमात्मपरक हैं इसका
विवेक पाठक स्वयं कर सकते हैं। यहाँ सर्वमानुषरूपका
वर्णन स्पष्टीकरणके साथ बताया है, जो मानवों की उन्नतिके
लिये अत्यावश्यक है।

शेष बातें पाठक मननद्वारा जान सकते हैं।

(३) आदर्श प्रजापालक

(क. १।६०) नोधा गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

वर्द्धिं यशसं विदधस्य केतुं सुप्राव्यं द्रुतं सद्योभयम् ।

द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा १

अस्य शासुदभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।

दिवाश्चित् पूर्वं न्यसादि होता ऽऽपृच्छयो विस्पतिर्विधु वेधाः २

तं नव्यसी दृढ आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मभुजिदमस्याः ।

यमृत्विजो वृजने मानुपासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ३

अर्थः— १ यशसं विदधस्य केतुं सुप्राव्यं सद्योभयं
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं, रातिं वर्द्धिं मातरिश्वा भृगवे

हविष्मन्तः उशिजो, ये च मर्ताः, उभयासः अस्य
सचन्ते । आऽपृच्छयो वेधाः होता विस्पतिः दिवः चित्
न्यसादि ॥

२ दृढ आ जायमानं तं नभुजिदं, अस्मत् नव्यसी
मर्ताः कस्याः प्रयस्वन्तः अशिजः आयवः मानुपासः वं
जीजनन्त ॥

अर्थ— १ यशसं, यशस्य पद, यशस्य रक्षा के लिए,
तत्काल अर्थ-प्राप्ति के लिये द्विजन्मानं रयि, यशस्य पद
धनान, दाता अग्निदेव, केतुं सुप्राव्यं द्रुतं (सुप्राव्यं
पान ले आवे ॥

२ दियेवके, उशिजो, इन्द्रा देवदेवके, उशिजो और
जो (साधारण) मानव हैं, ये दोनों इन्द्रके उशिजो रक्षक हैं।
यह प्रशस्तोप, वर्द्धि, दृढ, अस्मत्, नव्यसी, यशस्य
उदय होनेके पूर्व ही (यशस्य देवदेव) देव देव

३ (नभुजिदं) दृढ होने पर दियेवके उशिजो पद
मानव के दियेवके पद के समान ही पद हैं। यशस्य
(यशस्य देवदेवके उशिजो पद के समान ही पद हैं) यशस्य
देवदेवके पद के समान ही पद हैं ॥

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु चरेण्यो होताधापि विभु ।
 दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद् रथिपती रथीणाम्
 तं त्वा वयं पतिमग्ने रथीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
 आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात्

४ उशिक् पावकः वसुः चरेण्यः होता विभु मानुषेषु
 अधापि । दमूना गृहपतिः रथीणां रथिपतिः अग्निः दमे आ
 भुवत् ॥

५ हे अग्ने ! वयं गोतमासः तं त्वा रथीणां पतिं मतिभिः
 प्र शंसामः । वाजंभरं आशुं न मर्जयन्तः, धियावसुः प्रातः
 मक्षु जगम्यात् ॥

प्रजापतिका शासन

आदर्श स्वामी

इस सूक्तमें आदर्श स्वामीका वर्णन है, यह प्रजाओंका
 स्वामी है, यह प्रजाओंका पालक और रक्षक है, सब प्रकारकी
 प्रजाकी उन्नति करनेवाला है, देखिये इसका वर्णन किन शब्दोंसे
 किया है—

१. यशाः—यशस्वी, जो कार्य हाथमें लेगा वह यथा योग्य
 रीतिसे पूर्ण करनेवाला, अन्ततः पहुँचानेवाला,

२. विदथस्य केतुः—यज्ञका ध्वज, बुद्धका झण्डा, ज्ञान-
 प्रसारका सूचक,

३. सुप्राव्यः— उत्तम रक्षा करनेवाला, रक्षणीय,

४. सद्योअर्थः— जो प्राप्तव्य अर्थ है उसको शीघ्र
 देनेवाला, अभीष्टकी सिद्धि करनेवाला,

५. द्विजन्मा— दोवार जन्मनेवाला, एक मातासे और
 दूसरा पितासे ऐसे जो जन्मोंसे युक्त, अर्थात् अत्यंत विद्वान्,
 विद्याव्रत स्नातक ।

६. दूतः— सेवकके समान प्रजाकी सेवा करनेवाला (नेता
 होना चाहिये),

७. रथिः इव प्रशस्तः— धनके समान प्रशंसायोग्य,

८. रातिः— दाता, दानशील,

९. वह्निः— पहुँचानेवाला, उन्नतितक ले जानेवाला (मं. १)

४ (उन्नति) चाहनेवाले, बुद्ध करनेवाले,
 श्रेष्ठ आह्वान करनेवाले (अग्नि) को मानवी प्रशंसा
 किया है । (शत्रुका) दमन करनेवाला गृहपति
 अधिपति, अग्नि अपने स्थानमें प्रकट होता है ॥

५ हे अग्ने ! हम गोतमवंशी लोग उस गृह
 (अग्नि) की अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं जो
 डोकर लानेवाले घोड़ेको शुद्ध करते हैं ।
 (यह अग्नि) प्रातः सत्त्वर ही (हमारे पास) आती

१०. उभयासः अस्य शासुः सचन्ते—
 लोक इस प्रजाशासककी आज्ञा मानते हैं, इसीकी आज्ञा
 दोनों प्रकारके लोग अर्थात् ज्ञानी अज्ञानी, पतन
 सबल-निर्बल आदि,

११. आपृच्छयः— वर्णन करनेयोग्य, कठिनत्वसे
 कठिनता दूर करनेके उपाय जिसके पास जाय
 सकते हैं,

१२. वेद्याः— जो नवीन रचना उत्तम रीतिसे
 है,

१३. होता— (ज्ञानी आदिकोंको) अपने पास
 वाला,

१४. विश्वपतिः— प्रजाजनोंका पालनकर्ता, रक्षक,

१५. दिवः पूर्वं न्यसादि- सूर्यके उदय होनेसे
 अपना कर्तव्य करनेके लिये जो बैठता है, निरलस, (मं. १)

१६. हृदः आ जायमानः— प्रजाओंके
 प्रकट होता है, अन्तःकरणोंमें जिसने स्थान प्राप्त किया है ।

१७. मघुजिह्वः— मधुरभाषण करनेवाला,

१८. अस्मत् सुकीर्तिः अश्याः— हमारी प्रशंसा
 प्राप्त होती है, हम जिसका वर्णन करते हैं, हमारी
 जिसका श्रेय है,

१९. आयवः मानुषासः यं वृजने जीवन्त-
 प्रगति करनेवाले मनुष्य जिसकी कठिन समयमें प्राप्ति करते हैं

क्तिमान्, गतिमान्, पाप, आपत्ति, शक्ति,
मं. १)

हू- उभतिशो इच्छा करनेवाला,

कः— शुद्धता, पवित्रता करनेवाला,

हू— सबका निवासक, रहनेके लिये स्थान

यः— श्रेष्ठ, वरिष्ठ,

मानुषेय अघायि— जो जनतामें मिल
है,

ना— शत्रुका दमन करनेवाला,

पतिः— अपने घरका संरक्षण करनेवाला, अपने
का करनेवाला,

पतिः— धनोंका पालक, सब प्रका-
करनेवाला,

आभुवत्— अपने घर, स्थान वा देशमें
रहता है (मं. ४)

पतिः— धनोंका स्वामी,

भरः— अन्न और बलका पोषक,

यावसुः— बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला, (मं. ५)

यहाँ प्रजाका पालक कौन हो, उसमें कौनसे गुण हों, इसका
वर्णन इन शब्दोंमें पाठक देख सकते हैं। इन शब्दोंसे जिन
गुणोंका वर्णन होता है वे गुण आदर्श शासकमें होने चाहिये।
अथवा इन गुणोंसे जो युक्त हो, उसको प्रजापतिके स्थानके
लिये नियुक्त करना योग्य है। पाठक इन गुणोंका अच्छो
तारह मनन करें।

यहाँ वास्तवमें आग्निका वर्णन है, पर अग्निके वर्णनके मिथ-
से उत्तम नेताके, उत्कृष्ट प्रजाशासकके गुण यहाँ बताये हैं,
वे निःसंदेह उत्तम आदर्श शासनाधिकारिके सूचक हैं।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके अन्तिम सप्तम मन्त्रमें 'वर्यं गोतमासः'
(हम गोतम-गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषिगण) ऐसा अपना गोत्र
नाम ऋषि बता रहा है।

ऋ. १।५८ में 'भृगवः' पद न्यु गोत्रके ऋषियोंका
वाचक दीखता है। ऋ. १।५९ में 'भरद्वाज' पद है। 'शात-
वनेय' पद है। शातवनेय यह राजा भरद्वाज ऋषिसे आप्रव-
दाता प्रतीत होता है। ऋषि भरद्वाज शातवनेयका पुरोहित
होगा।

इन तीन सूक्तोंमें ऋषिका पता इतनाही लगता है।

(४) प्रभावी इन्द्र

(ऋ. १।६१; अथर्व २०।३।५।१-१६) नोध्या गौतमः । इन्द्रः । त्रिपुष्ट्र ।

अस्मा इदु प्र तवले तुराय प्रयो न इमिं स्तोमं मादिनाय ।

ऋचीपमायाध्रिगव ओदमिन्द्राय प्रज्ञाणि राततमा

अस्मा इदु प्रय इव प्र संति भराभ्याङ्गूपं वाधे सुपुक्ति ।

इन्द्राय हवा मनसा मनीषा प्रज्ञाय पत्ये धियो मर्जयन्त

मं- १ इमिं इव उ तवले तुराय नादिनाय

ध्रिगव इन्द्राय, प्रयः न, ओहं स्तोमं राततमा

इमिं ॥

स्मै इव उ, प्रयः इव, प्र संति । वाधे सुपुक्ति

भराभि । प्रज्ञाय पत्ये इन्द्राय हवा मनसा मनीषा

मर्जयन्तः ॥

अर्थ- १ इहोहो उपर्य श्रेष्ठतरी, नदिनायके, दर्शनोप
गुणकाके, अपतिबंधमाते पाते हरके लिये मैं, अथके (इमंके)
समाय, मनमोय हूँ। और राततमा विनमें अथिक प्रयत्न है
ऐसे मंत्र अर्पित करता हूँ (करता हूँ) :

२ (मैं) इव (इव) के लिये, अथ इमंके मनमोय
(मनमोय) देता हूँ। सुपुक्ति कथ इतिइति। इव के लिये
उत्तम स्तोत्र वर्णन करता हूँ। (इतिइति) तुमने राततमा
धियो इव, मन और सुपुक्तिइतिइति सुद करनेइति (मं-
१) लिये हूँ ॥

अस्मा इदु त्वमुपमं स्वर्गं भराभ्याङ्गमास्येन ।
 मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृत्किभिः सूरिं वावृध्वै
 अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
 गिरश्च गिर्वाहसे सुवृत्कीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय
 अस्मा इदु ससिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्ज ।
 वीरं दानौकसं वन्दध्वै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम्
 अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्गं रणाय ।
 वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजघ्नीशानस्तुजता कियेधाः
 अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चावन्ना ।
 मुपायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरौ अद्रिमस्ता
 अस्मा इदु भ्रादिचिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहृत्य ऊतुः ।
 परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः

३ मतीनां सुवृत्किभिः अच्छोक्तिभिः मंहिष्ठं सूरिं ववृ-
 ध्वै अस्मै इत् उ त्वं उपमं स्वर्गं आंगूषं आस्येन भरामि ॥

४ (अहं) त्वष्टा इव रथं न, अस्मै इत् उ तत्सिनाय
 गिर्वाहसे मेधिराय इन्द्राय स्तोमं गिरः विश्वं इन्वं च सुवृत्कि
 सं हिनोमि ॥

५ वीरं दान-ओकसं पुरां दर्माणं गूर्तश्रवसं वन्दध्वै
 अस्मै इत् उ इन्द्राय, ससिं इव, श्रवस्या जुह्वा अर्कं सं
 ज्ञे ॥

६ कियेधा ईशानः तुजन् येन तुजता वृत्रस्य मर्म चिद्
 विदद् रणाय (तं) स्वपस्तमं स्वर्गं वज्रं त्वष्टा अस्मै इत्
 उ तक्षद् ॥

७ सहीयान् अद्रिं अस्ता विष्णुः अस्य इत् उ महः मातुः
 सवनेषु सद्यः पितुं चारु अन्नापपिवान् पचतं मुपायत्, वराहं
 तिरः अस्ता ॥

८ देवपत्नीः भ्रा चिद् अस्मै इत् उ इन्द्राय अहिहृत्य अर्कं
 ऊतुः । (अयं) उर्वी द्यावापृथिवी परि जभ्रे, ते अस्य
 महिमानं न परि स्तः ॥

३ बुद्धिपूर्वक किये उत्तम अनुभावनायक
 द्वारा महान् विद्वान् (इन्द्र) को महत्ता बताने
 इन्द्रको, उस उपमायोगय घनप्रापक बोधने
 भर देता हूँ, बोल देता हूँ ॥

४ जैसे कारीगर रथको (बनाता है कैसे)
 सिद्धि करनेवाले प्रशंसनीय बुद्धिमान् इन्द्रके
 वाणियोंके द्वारा सबको उत्तेजित करनेवाले
 करता हूँ ॥

५ वीर, दानका घर, शत्रुके कीलोंको तोड़नेवाले,
 अन्नवाले इन्द्रकी वन्दनाके लिये इसी इन्द्रके पास,
 यशस्वी जिह्वासे स्तुतिस्तोत्रको हृदय प्रेरित करते हैं ॥

६ कईयोंका धारण करनेवाले इस (विषयके)
 (वृत्रको) मारते हुए जिस मारक वज्रसे वृत्रके
 ठीक तरह प्राप्त किया था, (मर्मपरही आघात बिना
 रणके समय उत्तम कर्म करनेवाले शत्रुपर फैलने वाला
 त्वष्टाने इसी इन्द्रके लिये बनाया था ॥

७ शत्रुका पराभव करनेवाले, वज्र फैलनेवाले
 महान् जगत्के निर्माता इन्द्रके सवनोंमें शीघ्रही अन्न
 भोजनका सेवन किया, पके हुए (शत्रुके) अन्नको उस
 और जलभोजी (वृत्र) को तिरच्छा करके वज्र मार ।

८ पृथिवी आदि देवपत्नियों इसी इन्द्रके लिये
 समय स्तुतिस्तोत्र गाती रहीं । यह इन्द्र इन बड़ी
 भी अपने अधीन रखता है पर वे (कोनों लोक) इसमें
 नहीं घेर सकते । (क्योंकि इसका महिमा बहुतही बड़ा

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
 त्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिमन्नो ववक्षे रणाय
 अस्येदेव शवसा शुपन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
 गा न ब्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः
 अस्येदु त्वेपसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
 ईशानकृद् दाशुपे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः
 अस्मा इदु प्र भरा वृत्तुजानो वृत्राय वज्रमीशानः क्रियेधाः ।
 गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेप्यनर्णास्यपां चरध्वै
 अस्येदु प्र बृहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
 युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून्
 अस्येदु भिया गिरयश्च इच्छा घावा च भूमा जनुपस्तुजेते ।
 उपो वेनस्य जोगुवान ओर्णि सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः

१

२०

२२

२२

२३

२४

अस्य इव एव महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात्
 रिरिचे । त्वराट् दमे विश्वगूर्तः स्वरिः अमन्नः इन्द्रः
 ना ववक्षे ॥

इन्द्रः अस्य इव एव शवसा शुपन्तं वृत्रं वज्रेण वि
 सचेताः श्रवः दावने, गाः न, ब्राणाः अवनीः अभि
 न ॥

११ यत् सीं वज्रेण परि अयच्छत्, (ततः) सिन्धवः
 इव उ त्वेपसा रन्त । ईशानकृद् तुर्वणिः दशस्यन्
 दः) तुर्वीतये गाधं कः ।

१२ वृत्तुजानः क्रियेधाः ईशानः अस्मै इव उ वृत्राय वज्रं
 भ । अपां चरध्वै अर्णाति इप्यन् तिरश्चा, गोः न, पर्व
 द ॥

१३ उक्थैः नव्यः अस्य इव उ तुरस्य पूर्व्याणि अर्नीनि
 इदं । नव युधे आयुधानि इष्णानः कृधायमाणः शत्रून् नि
 र्णाति ॥

१४ गिरयः च यस्य इव उ भिया रदाः । (अस्य)
 घावा च भूमा जनुपस्तुजेते । नोधा वेनस्य ओर्णि उप जो-
 गः सद्यः भुवद् वीर्याय ॥

१ इस (इन्द्र) काही महिमा घु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसे
 बहुतही बडा है । स्वर्गशासक, शत्रुदमनमें सब प्रकारके
 सामर्थ्यसे युक्त, उत्तम प्रकारसे शत्रुसे लड़नेवाला, अपने बलसे
 सुरक्षा करनेवाला इन्द्र युद्धके लिये सेनाको आगे बढाता है ॥

१० इन्द्रने इसी अपने बलसे शीघ्र ही वृत्रको
 काटा । शचेत इन्द्रने अपने दानमें प्रशुति रखकर, गार्हके
 समान, रुके हुए गोपेको और जानेवाले जगद्वारा सेना युद्ध
 किया (यदा दिना) ॥

११ जिस कारण वज्रेसे दम (जला) से आगे और अपने
 दिवा, उस कारण सब नदियाँ इसीके तेजसे न जाने कहाँ
 स्नामित करनेवाले, त्वरासे तेज और शान सेनाके इन्द्रने
 तुर्वीतये लिये जलसे पीछेवाला उत्पन्न कर देता ॥

१२ शत्रुका साथ लड़नेवाले बलवान् स्वामी (इन्द्र) ने
 इसी वृत्रपर वज्र मारा । जगद्वारा सेनाके इन्द्रने अपने
 प्रेरित करने, अपने बलसे, शत्रुका भयभीत करके युद्ध
 कर (दिने) ॥

१३ जो स्त्रीको साथ लेने किया - यहाँ सेनाके इन्द्रने
 कई इलेकरो (दस) के आलीन - जो सेनाके इन्द्रने
 युद्ध युद्धके लिये रज्जियों सेनाका है, सब युद्धका
 रणका करता हुआ, वह शत्रुको सब युद्ध करी ॥

१४ वीर्य इन्द्रने न के युद्ध करे ही सेनाके इन्द्रने
 युद्धाधिकारी को देता । युद्धाधिकारी युद्धाधिकारी
 युद्धाधिकारी युद्धाधिकारी युद्धाधिकारी युद्धाधिकारी
 युद्धाधिकारी युद्धाधिकारी युद्धाधिकारी युद्धाधिकारी

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येयामेको यन् वने भूरेरीशानः ।

प्रैतशं सूर्यं पस्पृधानं सौवश्ये सुविमावदिन्द्रः

एवा ते हारियोजना सुवृकीन्द्र ब्रह्माणि गौतमासो अकन् ।

ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मधू धियावसुर्जगम्यात्

११

११

१५ इन्द्रः सौवश्ये सूर्यं पस्पृधानं सुत्तिं एतशं प्र
आवत् । यत् भूरेः ईशानः एकः वने, (तदा) अस्मै इत्
उ एषां तत् अनु दायि ॥

१६ हे हारियोजन इन्द्र ! गौतमासः एव ते सुगुन्ति
ब्रह्माणि अकन् । एषु विश्वपेशसं धियं आ धाः । (सः)
धियावसुः प्रातः मधु जगम्यात् ॥

१५ इन्द्रने स्वयंपुत्र सूर्यके साथ सदा प्रैत
शोमयाग करनेवाले एतश्चो सुरज्ञा हो । इस
स्वामी इन्द्र प्रसन्न होता है, तब इसी इन्द्रके अग्रिम
जाते हैं, (गाये जाते हैं) ॥

१६ हे घोड़ोंके रथवाले इन्द्र ! गौतम गेहके केले
ये उत्तम स्तोत्र किये हैं । इनमें अपनी सब प्रशंसे
बुद्धि रख (एकाग्रतासे श्रवण कर) । वह बुद्धिसे ज्ञे
धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र सबरे अग्रिम
आ जावे ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनसे आदर्श वीरका वर्णन किया है,
वह देखिये—

१. तवस्— शक्तिमान्, सामर्थ्यवान् ।
२. तुरः— त्वरासे कर्म करनेमें प्रवीण,
३. माहिनः— आनन्दपूर्ण, हर्षयुक्त, निरा उत्साही,
बड़ा, महान्, आनन्द देनेवाला, राज्याधिकार, राजशक्ति,
राज्यशासनमें समर्थ,
४. ऋचीपमः— (ऋचि-वमः) विद्यामें निपुण,
५. अग्रिगुः— जिसकी गौ या संपत्ति कोई बुरा नहीं
सकता, ऐसा सामर्थ्यवाला, (मं. १)
६. प्रत्नः— पुरातन (प्रयासो पुराक्षित रखनेवाला),
७. पतिः— रक्षक, अधिपति, (मं. २)
८. महिष्ठः— बड़ा, महान्, प्रशंसनीय दाता,
९. सूरिः— ज्ञानी, विद्वान्, भाष्यकार,
१०. उपमः— उपमा देनेयोग्य, उत्तम, सर्वोत्कृष्ट, सबसे
श्रेष्ठ, (मं. ३)

११. तत्सिनः— अश्ववान्
१२. गिवांहाः— प्रशंसनीय,
१३. मेधिरः— (मेधि-रः)— बुद्धि देनेवाला, ज्ञानदाता,
(मं. ४)

१४. वीरः— शूर, पराक्रमी
१५. दान-ओकाः— दान देनेवाला, दान करनेवाला,
१६. पुरां दर्मा— शत्रुके झालोंको तोड़नेवाला,
१७. गूर्तधवाः— प्रशंसनीय दण्डवाला, (मं. ५)
१८. कियेधाः— (कियत् धाः)— किन्हीं
विशेष कारण-शक्तिके युक्त,
१९. ईशानः— स्वामी, राजा, अधिपति,
२०. तुजन्— शत्रुका नाश करनेवाला, वध करनेवाला,
२१. मर्म विदत्— शत्रुके मर्मस्थानका वेध करनेवाला,
२२. स्वपस्तमः— (सु-अपः-तमः) उत्तम कर्म
प्रवीण, (मं. ६)
२३. सहीयान्— शत्रुका पराभव करनेवाला,
२४. अर्द्रि अस्ता— शत्रुपर शत्रु फैलनेवाला,
२५. विष्णुः— शत्रुकी सेनामें घुसकर उसका नाश
वाला वीर, (मं. ७)
२६. स्वराट्— अपना अधिकार बढ़ानेवाला
शासक,
२७. दमे विश्वगूर्तः— शत्रुदमनके दण्डने
२८. स्वरिः— उत्तम प्रकारसे शत्रुके साथ
२९. अमत्रः— (अम-त्रः)— अग्नि करने
करनेवाला, (मं. ९)

३०. इन्द्रः शवसा वज्रेण शुणन्तं वृत्रं वि वृश्चत्-
इने अपने बलसे वज्रसे बलवान् वृत्रको काटा,
३१. सचेताः- बुद्धिमान्, उत्साही, दक्ष,
३२. श्रवः दावन्- अक्षका दान करनेवाला, (मं. १०)
३३. वज्रेण परि अयच्छत्- शत्रुको वज्रसे मारा,
३४. ईशान-कृत्- अधिपति, शासकका निर्माण करने-
वाला,
३५. तुर्वणिः- शत्रुका त्वरासे नाश करनेवाला,
३६. दशस्यन्- दाता, शत्रुका संहारकर्ता, (मं. ११)
३७. तूतुजानः- शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. १२)
३८. युधे आयुधानि इष्णानः शत्रून् निष्कुणाति-
इने शत्रुपर शस्त्रात् फेंकता है और शत्रुका नाश करता
। (मं. १३)

इस तरह आदर्शवीरका वर्णन इस सूक्तमें इन शब्दोंसे किया है। इन शब्दोंके वारंवार मनन करनेसे उत्कृष्ट आदर्श वीरका चित्र सामने आ जाता है। क्षत्रियोंमें ये गुण उत्कृष्ट रीतिसे रहने चाहिए।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके मंत्र १४में (नोधाः) पद है और मंत्र १३ में (गोतमासः) पद गोत्रनाम है। इसलिये इस सूक्तका ऋषि 'नोधा गौतमः' माना गया है। (गोतमासः ब्रह्माणि अकन्) गोतम गोत्रीय ऋषियोंने स्तोत्र किये। (नोधा वेनस्य ओर्णि जोगुवानः) नोधा ऋषि अपने प्रिय उपास्य देवकी रक्षासन्तिका गुणगान करता है। इस तरह इस सूक्तमें वीरका वर्णन है।

(५) वीर इन्द्र

(ऋ० १।६२) नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गपं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।

सुवृकिभिः स्तुवत ऋग्मियायाचमार्कं नरे विधुताय

प्र वो महे नहि नमो भरध्वमाङ्गप्यं शवसानाय साम ।

येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदद् सरना तनयाय धासिन् ।

वृहस्पतिर्भिनदद् विदद् गाः समुच्चियाभिर्वावशन्त नरः

धन्वयः-१ (वयं) अङ्गिरस्वत् शवसानाय शूषं माङ्गपं मन्महे । स्तुवते ऋग्मियाय नरे विधुताय सुवृकिभिः नमो नमो ॥

२ नः पूर्वे पदज्ञाः अङ्गिरसः येन अर्चन्तः गाः अविन्दन् । (हे स्तोत्राः !) वः नहे शवसानाय (तव) नहि नमः शूषं तान् प्र भरध्वम् ॥

३ सरना इन्द्रस्य अङ्गिरसां च दृष्टौ तनयाय धासि विदद् । अङ्गिरसः अङ्गि भिनद, गाः विदद् । नरः उग्रियाभिः सं वृहस्पतिः ॥

अर्थ-१ (हम) अङ्गिरा गोत्रमें उग्रय जेभीके मनानदा बलवान् और प्रशंसनीय इन्द्रके जिसे सुखदरक काम गये हैं । स्तुत्य वर्णनीय नेता सुप्रसिद्ध इन्द्रकी स्तुतिसे हम गा गान करते हैं ॥

२ हमारे पूर्व नरों अनेकोंने जेमेरे लोभमें काम धर्मसेने विध (काम)से (इन्द्रकी) दूतों को नमो नमो प्रार्थना की, तुम भी वही बलवान् इन्द्रके जिसे सुखदरक काम गये वही बलवान् मानने लोभो (अङ्गिरसे नर दे)

३ सरनासे इन्द्रकी और अङ्गिरसेका लोभमें अनेकोंने जिसे नमो नमो किया । वृहस्पतिसे सर्व (वृहस्पतिसे काम गये) शत्रुकी नष्ट किया और उग्रय जेभीके काम गये वही उग्रय जेभीके काम गये इन्द्रकी सुखदरक काम गये ।

स मुमुना न मुमुना सत विप्रैः स्मरितादि सार्वभौमः ।
 सरण्युनिः कल्पितानिन्द्र राक कले रोजन दृष्टो दृष्टः ।
 गृणानो अद्वितीयोदसा वि वक्ष्यता नृपेण गोविन्दः ।
 वि भूया अग्रयय इन्द्र सातु दिवा रज उपरमस्तमायः ।
 ननु प्रयश्नममस्य कर्म दत्तस्य चाकृतममसि दंसः ।
 उपरं यदुपरा आर्पयन् सधर्षणो नयः चतवः ।
 द्विता वि वमे सनजा सनीडे अयास्यः स्वपमानेभिरुक्तैः ।
 भगो न मेने परमे व्योमनथापयद् रोदसी मुदसाः ।
 सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनमुना युवनी स्वेमिः ।
 कृष्णभिरुक्तोपा ददाद्विगुणिता चरता अन्यान्या ।
 सनेमि सत्यं स्वपत्यमानः मृगुदाधार शयसा मुदसाः ।
 आमासु चिद् दक्षिणे पक्षमन्तः पयः कृष्णानु रसात् रोहिणीयु

४ हे राक इन्द्र ! सः सः मुमुना नमुना सारं सारः
 सरण्युनिः नवर्णैः दान्तैः सत विप्रैः स्वेण अदि कल्पितं कले
 दृष्टः ॥

५ हे दत्त इन्द्र ! अद्वितीयः गृणानः उपमा नृपेण
 गोभिः अन्यः वि वः । भूयाः सातु वि अग्रययः । दिवः
 रजः उपरं अस्तमायः ॥

६ यन् उपरं उपराः ननु-अणतः चतवः नयः अर्पयन् ।
 तन् उ अस्य प्रयश्नमं कर्म । दत्तस्य चाकृतं दंसः
 अस्ति ॥

७ अयास्यः स्वपमानेभिः अर्कैः सनजा सनीडे द्विता वि
 वने । मुदसाः सगः न, परमे व्योमन् मेने रोदसी अथायन् ॥

८ विरूपे पुनमुना युवनी स्वेमिः पयैः दिवं नून सनात्
 परि (चरतः) । अथा कृष्णभिः उपाः रसादिः वपुभिः
 अन्या अन्या वा चरतः ॥

९ मुदसाः शयसा मृगुः स्वपत्यमानः सनेमि सत्यं
 दाधार । आमासु चिद् अन्तः पक्षः (पयः) दक्षिणे ।
 कृष्णानु रोहिणीयुः स्यात् पयः (दक्षिणे) ॥

४ हे भगवं इन्द्र ! सः सः उत्तम स्तुति और
 गोपि जगत्तर प्रशंसित मुमुना । उस नेवली (इन्द्र)
 नाग और दृष्टो मात विमोदरा गले गले लगे
 पर रत्नेवाले जल को रोक्नेवाले बरछे छिन्न वि व
 ५ हे दत्त इन्द्र ! तुने अदिग केनेने अर्क
 उपा और मुदके साथ और क्रिणीये अन्यत्राये
 भूमिसे उत्तम नागको विधाय ईसा वा, (वृक्ष
 पृथोके और अन्तरिक्षमें ऊपर मुद किया ॥

६ (इन्द्र) ने उतराईसे बनेवाले लोहे के
 नदियों पुष्ट थी, (बहा रही) वह इन्द्र अत्यन्त
 बड़ दम दर्शनीय इन्द्र अत्यन्त सुन्दर धर्म है ॥

७ न बनेवाले (इन्द्र) ने गोपि बनेवाले लोहे
 सदा एकत्र रत्नेवाली तथा एक बारसे रत्नेवाले
 विभक्त किया । उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र, लोहे
 वड़े आकाशमें घुमाना दावा-दक्षिणीये करन किया ॥

८ भिन्न रूपवाली पुनःपुनः उत्तम होनेवाली (पयः)
 दिनप्रभाएँ दो त्रिधा अपनी गतिसे वृ और नृनेने
 बालसे घूम रही हैं । उननेमे रात्रो अले और उ
 भारोने एक दूसरेके पीछे चलती हैं ॥

९ उत्तम कर्म करनेवाले बलके साथ उत्तम दुरद्वारे
 कर्मों ईच्छा करते हुए, सनातन मित्रताय करन किया ।
 छोटी आसुवाली (गोपी) में भी एक दूध कात किया है
 बाली तथा बाल रंगवाली गोश्वेन भी उत्तम दूध कात

| | |
|--|----|
| सनात् सनीला अवनीखाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः । | |
| पुरु सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति श्वसारो अहूयाणम् | १० |
| सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्मुः । | |
| पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसाचनृ मनीषाः | ११ |
| सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म । | |
| धुमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः | १२ |
| सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय । | |
| सुनीधाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्ष धियावसुर्जगम्यात् | १३ |

१० सनीहाः अयाताः अमृताः पत्नीः अवनीः सहोभिः
 ११ नः, सनात् (इन्द्रस्य) पुरुः सहजा प्रताः रक्षन्ते ।

सारः बहूयाणं दुवस्यन्ति ॥

११ हे कल । (त्वं) अकैः नव्यः । सनायुषः वसूयवः

शिवः नमसा (त्वा) दधुः । हे शयसायन् ! मनीषाः,

॥ शब्दोः पानीः उद्धान्तं पति न, त्या स्पृशन्ति ॥

१२ वं दम्भ ! त्वमस्मै तव रायः मन्वात् पुत्र, न क्षीयन्ते,

तदापत्तिः । हे हन्त ! (त्वं) धीरः सुमान् कृतुमान् अस्मि ।

महोदयः ! तव सखीभिः नः शिक्ष ॥

१३ दं तत्रैवान् इन्द्र । गोपः गोपमः सनायने, परि-

॥ इति श्री भुजीभाय नः नव्यं नम्र कवचम् ॥ (नः) पिता-

॥ वृः प्रातः नद्यु जगम्यात् ॥

१० एक घरमें रहनेवाली बच्चलतारहित अनर धर्मवाली पत्नियाँ, परंपरासंरक्षक त्रिवेके समान, सदाही इन्द्रके अनेक सहस्रों कर्मोंको मुरादा करते हैं। ये बहिन अकुटिल इन्द्रकी सेवा करती हैं।

११ हे दशमीय इन्द्र । तू स्त्रीयों द्वारा स्तुति करने योग्य है ।
सनातन कायमे धन की उच्छ्र हरनेवाले बुद्धिमान् स्त्रीतामन वन-
भावने मेरे पास पहुँचने हैं । देव ध्यान इन्द्र ! दुमारे मनने ही
हुई प्रथमार्थ, प्यारी पत्नियों प्यार करनेवाले पति के नाम प्रेमों
जाती है, पैसी तुझसे पान करने हैं ।

[illegible][illegible]

१४. शचीवान्— शक्तिवान्, बुद्धिमान्, मतिमान् (१२)
 १५. धीरः द्युमान् क्रतुमान् आसि— धीर, तेजस्वी, तपस्वी, सुवर्णार्थी है।

१६. शचीभिः शिक्ष— अपनी बुद्धियोंसे पढाओ। (१२)
 १७. सुनीथः— उत्तम प्रकारसे चलानेवाला, (मं. १३)
 ये पद आदर्श-वीरके गुण बता रहे हैं। पाठक इनका मनन करें।

आदर्श स्त्री

इस सूक्तमें आदर्श स्त्रीका वर्णन देखनेयोग्य है। निम्नलिखित पद आदर्श स्त्रीके गुणोंका वर्णन कर रहे हैं—

१. विरूपाः— विशेष रूपवाली,
 २. पुनर्भूः— पुनः पुनः अपनी सजावट करके नयीसी बनने-वाली, बारंबार अपनी सजावट करनेमें दक्ष। [सूचना— 'पुनर्भूः' पद लौकिक संस्कृतमें विधवा, मृतभर्तृकाका तथा पुनः विवाहित हुई स्त्री—पुनर्विवाहित स्त्रीका वाचक है। परंतु यहां यह अर्थ नहीं है। यहां दिनप्रभा उषा और रात्री ये दो स्त्रियाँ पुनः पुनः सजकर आती हैं और इस वर्णनमें यहां यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।]

३. युवती— तरुण स्त्री,
 ४. एवः— चलनेका सुंदर ढंग
 ५. एवैः सनात् परि (चरति)— अपने चलनेके अपूर्व ढंगसे चलती है।

६. कृष्णेभिः रश्मिभिः वपुभिः आचरति— काले रंगकी और चमकीले रंगकी साड़ियाँ अपने शरीरपर पहनकर चलती है।

७. अन्या अन्या— दूसरी दूसरी सी बनकर, अपनी सजावटके ढंगसे विलक्षण शोभावाली बन कर जाती आती है, (मं. ८)

८. सनीडा— समान रीतिसे घरमें रहनेवाली,
 ९. अन्वाता— जो चञ्चल नहीं है, स्त्रियोंमें चञ्चलता यह दोष है अतः जिनमें वह दोष नहीं है, शान्त चित्त,

१०. अमृता— सुंदरा जैसी जो नहीं है, पूर्ण जीवित, पूर्ण उत्साही, दक्ष,

११. पत्नी— बरका, कुटुंबका उत्तम पालन-पोषण करनेवाली,

१२. अवनी— सुरक्षा करनेवाली, घरबारकी तासे करनेवाली,

१३. सहोभिः (युक्ता)— अनेक बलोंसे,

१४. जनिः— उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली,

१५. सहस्रा व्रता रक्षन्ते— सैकड़ों सहस्रों रक्षते हैं।

१६. स्वसा— वहिनके समान (अन्य) रहनेवाली, (मं. १०)

१७. मनीषा— बुद्धिमती,

१८. उशती— पतिका हित करनेकी इच्छावाली,

यहस्थकी गृहिणी किन गुणोंसे युक्त होनी चाहिये। वर्णन हैं। वेदमें स्त्रियोंके वर्णन बहुतही थोड़े हैं। पाठकोंको इन पदोंका विशेष मननपूर्वक अभ्यास है।

यहां यह स्त्रीका वर्णन नहीं है, पर उषा, दो स्त्रियाँ हैं ऐसा मानकर उनके मिलापसे यहां वर्णन किया है, जो अत्यंत मननके योग्य है।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके १३ वें मंत्रमें 'नोधा गौतमः' वे इस सूक्तके ऋषिके वाचक हैं। 'नोधा गौतमः' ब्रह्मा अतश्चत = गौतमपुत्र नोधा ऋषिने वह बनाया ऐसा यहां कहा है। अतः यह वर्णन

'नवग्व, दशग्व' (मं. ४)— नौ गौवें रखनेवाले, दस गौवें अपने पास रखनेवाले। नौ माष मांसंतक यज्ञ करनेवाले। 'अग्निर्ऋ' ऋषिका नाम यह चार बार आया है। यह ऋषि नोधाके पूर्व समकालीन होता है।

दृश्यका वर्णन

१. उपसा सूर्येण गोभिः अन्धः विमानु वि अप्रथयः— उपः कालके बाद सूर्योदयके किरणोंसे अन्धकार दूर हुआ और भूमिपर जो अन्ध प्रकाशित हुए। यह सूर्योदयके दृश्यका मनोहर वर्णन है।

नोधा ऋषिकां दर्शन

[स. ६२-६३]

पहरे उपराः मध्वर्णसः चतस्रः नद्यः अपि- वर्णनीय कर्म और अत्यंत सुंदर कर्म है।
 त् अस्य प्रयक्षतमं कर्म, चारुतमं दंसः ये इसके काव्यमय वर्णन हैं। ये काव्यमाधुरीकी दृष्टिसे बड़ेही
 -पर्वतकी उत्तराईपरसे नाचे बहनेवाली मोठे जलकी उत्तम वर्णन हैं। अन्य उपदेश मंत्रोंमें है, जो मनन करनेसे
 र्णो महामूर्खसे भरी हुई बह रही हैं, यही इस इन्द्रका अधिक बोधक हो सकता है।

(६) प्रवल वीर

(ऋ० १।६३) नोधा गौतमः । इन्द्रः । निष्ठुप् ।

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः । १
 यद्द ते विश्वा गिरयदिचदभ्वा भिया दृढहासः किरणा नैजन् २
 आ यद्धरी इन्द्र विम्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाहोर्धात् । ३
 येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ४
 त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं पाद । ५
 त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय शुभते सचाहन् ६
 त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः । ७
 यद्द शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूर्योनावकृतो वृथापाद ८

अर्थः— १ हे इन्द्र ! त्वं महान् (अति), यः ह
 त्वाः शुष्मैः यावापृथिवी अमे धाः । यद्द ह ते भिया
 दृढा बन्वा दृढासः गिरयः चित् किरणाः न ऐजन् ॥
 २ हे इन्द्र ! यद्द विम्रता हरी आ वेः, (तदा) जरिता
 बाहोः वज्रं आ धात् । हे आविहर्यतक्रतो पुरुहूत ! येन
 मित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि ॥

३ हे इन्द्र ! (त्वं) सत्यः, एतान् एष्णुः । त्वं क्रमुषा ।
 त्वं त्वं पाद । त्वं वृजने पृक्ष आणौ शुभते यूने कुत्साय
 उवा शुष्णं बहन् ॥

४ हे वृषकर्मन् वज्रिन् शूर वृषमणः इन्द्र ! यद्द ह वृथा-
 पाद सोनो दस्यूर्य पराचैः वि बहूतः यद्द वृत्रं उभ्ना, (तदा)
 सखा त्वं ह त्यद् चोदीः ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! तू महान् है, जिसने प्रकट होतेही
 अपने बलोंसे यावापृथिवीको शक्तिमें धारण किया । तब तेरे
 भयसे सब बड़े सुदृढ़ पर्वत भी, किरणोंके समान, धंपने लगे
 थे ॥
 २ हे इन्द्र ! जब (तूने) विविध कर्म करनेवाले घोरोंको
 चलाया, (तब) स्तोताने तेरे शीनों हाथोंमें पन्न रचा, (तुझसे
 प्रदण कराया) । हे निष्पतिबन्धतासे कर्म करनेवाले बहुत प्रसंगित
 (इन्द्र) ! जिससे तूने शत्रुओंसे और उनके प्राचीन नगरों-
 को— या बोलोंसे— गिरा दिया, (तोड़ दिया या उनपर
 हमला किया) ॥
 ३ हे इन्द्र ! तू सत्य है । तू इन शत्रुओंका नाशकरी है ।
 तू प्राचीनरोंको बधनेवाला है । तू जनताका दिनपरी और
 शत्रुका पराभव करनेवाला है । तूने दुष्टके समन जयराजके
 समन तथा शत्रुके दुष्टमें, तेवत्सी बहान दुष्टके दिन करनेके
 लिये उनके साथ रहकर उनका बध किया ॥
 ४ हे वृत्रके कर्म करनेवाले वज्रधरी शूर बड़े भयानके
 इन्द्र ! जब सहवर्षके शत्रुका शूर वृषमणने तुने दुष्टमन्त्रोंमें
 शत्रुओंको पीछे हटाकर मार डाला, और उनके सखा, य-
 निव बहुर सोनो सोनो को बर (बनेजवन) दिया ॥

त्वं ह त्यदिन्द्रारिपण्यन् दृढस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
 व्यस्मदा काष्ठा अर्वते वर्धनेव वज्रिञ्जुथिहामिवान्
 त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्माळहे नर आज्ञा हवन्ते ।
 तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत्
 त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
 वर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गहो राजन् वरिवः पूरवे कः
 त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिपमापो न पीपयः परिज्मन् ।
 यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वव क्षरथ्यै
 अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
 सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात्

५ हे इन्द्र ! त्वं ह मर्तानां त्यत् दृढस्य चित् अजुष्टौ
 अरिपण्यन्, अस्मत् अर्वते काष्ठाः आ वि वः । हे वज्रिन् !
 घना इव, अमिवान् अथिहि ॥

६ हे इन्द्र ! नरः अर्णसातौ स्वर्माळे आज्ञा त्यत् त्वां ह
 हवन्ते । हे स्वधावः ! समर्यं वाजेषु तव इयं ऊतिः अत-
 साय्या भूत् ॥

७ हे वज्रिन् इन्द्र ! युध्यन् त्वं ह त्यत् सप्त पुरः पुरु-
 कुत्साय दर्दः । हे राजन् ! यत् सुदासे वर्हिः न वृथा वर्कं
 (वृद्धा) अंडोः वरिवः पूरवे कः ॥

८ हे देव इन्द्र ! त्वं नः त्यां चित्रां इपं, आपः न, परिज्मन्
 यया शूर ! यथा विश्वव क्षरथ्यै, अस्मभ्यं, ऊर्जं न,
 त्मनं प्रति यंसि ॥

९ हे इन्द्र ! गोतमेभिः ते (स्तोत्रं) अकारि । (तव)
 इन्द्रिया नमसा ब्रह्मणि जा उक्ता । (त्वं) नः सुपेशसं वाजं
 भरा नः (वः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

अनुव्रत प्रतापी वीर

५ हे इन्द्र ! तूही मनुष्योंकी उस मुट्ट अर्जुन
 कारण उसका नाश करता हुआ, हमारे घोड़े-
 दिशाएँ सुली कर दीं- मार्ग सुला कर दिया है ।
 तू वज्रके समान, शत्रुओंका नाश कर ॥

६ हे इन्द्र ! नेता लोग सोमरक्षणके समय
 बलके बढ़ानेके समय, आवश्यक हुए युद्धमें उस
 सुलाते हैं । हे अपनी शक्तिके धारक ! मनुष्यों
 होनेवाले युद्धोंमें तेरी यह सुरक्षा प्राप्त करनेवाले हैं ।

७ हे वज्रधारी इन्द्र ! शत्रुओंसे लड़नेके समय
 शत्रुओंकी वे सात पुरियाँ पुरु कुत्सकी सुरक्षाके लिये
 हे राजन् ! जब सुदासके हित करनेके लिये शत्रुओंके
 समान, सहजहीसे काट दिया, तब अंडुध-पापी
 नागरिकोंके हितके लिये किया, दिया ॥

८ हे देव इन्द्र ! तूने हमारे ऊपर उस अष्ट अर्जुन
 समान, चारों ओरसे ऐसी घृष्टी की, हे शूर ! कि जो
 बढ़ने लगी, हमारे लिये, बल प्राप्त होनेके प्रभाव,
 उत्साह भी प्राप्त हुआ ॥

९ हे इन्द्र ! गोतम-वंशियोंने तेरे आश्रितियों
 घोड़ोंके लिये अन्नदानके साथ जल (वा स्तोत्र)
 (दिया) । तू हमारे लिये गुन्दर सृजनाला यह नरके (लो-
 क) वद बुद्धिसे धन देनेवाला इन्द्र प्रातः समय वज्र ही
 आ जाय ॥

२. त्वं महान्- तू बड़ा है,

३. जज्ञानः शुभैः अंमं धातः- प्रसन्न हृदये
 बलके प्रसन्न शक्तिके प्रभाव प्रसा दिया,

३. ते भिया विश्वा दृष्टासः- दृष्टान्- दृष्ट

शुक्लं सुदानं तविपीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
 ध्रुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मधू गोमन्तमोमहे
 न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
 यद्वित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिप्रदा मिनाति ते
 योद्धासि कृत्वा शवसा उत्त दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
 आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन्
 प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
 न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वचां ववक्षिय
 नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्वाशुपे दशस्यसि ।
 अस्माकं वोध्युचयस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये

२

३

४

५

६

२ शुक्लं, सुदानं, तविपीभिः आवृतं, गिरिं न, पुरुभोजसं,

ध्रुमन्तं, गोमन्तं शतिनं सहस्रिणं वाजं मधु ईमहे ॥

३ हे इन्द्र ! यत् मावते स्तुवते वसु वित्ससि, बृहन्तः

वीळवः अद्रयः त्वा न वरन्ते । ते तत् नकिः आ मिनाति ॥

४ कृत्वा शवसा उत्त दंसना योद्धा असि । मज्मना विश्वा

जाता अभि (भवसि) । गोतमाः यं अजीजनन्, अयं अर्कः

त्वा ऊतये आ ववर्तति ॥

५ हे इन्द्र ! (त्वं) ओजसा दिवः परि अन्तेभ्यः प्र

रिरिक्षे हि । पार्थिवं रजः त्वा न विव्याच । (त्वं) स्वचां

अनु ववक्षिय ॥

६ हे मववन् । यत् दाशुपे दशस्यसि, ते मघस्य परिष्टिः

नकिः । चोदिता मंहिष्ठः वाजसातये अस्माकं उचयस्य

वोधि ॥

२ हम शुलोकमें निवास करनेवाले, दान देनेवाले, शक्तियोंसे युक्त, पर्वतके समान, बहुतोंको भोजन स्वयं अन्नरूप, गौओंके (दूधके) साथ मिले घट्टाईको बल देनेवाले (सोमको) शीघ्रही करते

३ हे इन्द्र । जब मेरे सदृश भक्तको तू भन देता है, तब बड़े सुदृढ पर्वत भी तुझे नहीं रोक सकते । कर्मको कोई नहीं तोड़ सकता ॥

४ तू अपनी बुद्धि, बल और कर्मसे योद्धा है । तू सब उत्पन्न पदार्थोंको घेरता है । गोतम गोत्रके बनाया, वह यह स्तोत्र तुझे सुरक्षाके लिये हमारी (प्रवृत्त) करता है ॥

५ हे इन्द्र । तू अपने बलसे शुलोकके परबे बहुतही बड़ा है । पृथ्वी और अन्तरिक्ष भी तुझे रोक (तुमने हमारा दिया शरीर) धारक अभ (देवोंके) है ॥

६ हे धनसंपन्न इन्द्र । जो धन तू दाताको देना उसकी मर्यादा नहीं है । (सबका) प्रेरक और (अग्ने) तू अन्नदानके समय हमारे स्तोत्रकी ओर ध्यान दे

वीरताके गुण

इस सूक्तमें वीरताके साथ रहनेवाले निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं—

१. ऋतीपाद्— (ऋति-पाद्)— 'ऋति' का अर्थ है— सेना, गति, शत्रुका हमला, शत्रुका आक्रमण, गाली, दुःख, आपत्ति, कष्ट । इनका प्रतिष्कार करना वीरका कर्तव्य है अतः उसको 'ऋति-पाद्' कहते हैं (मं. १)

२ बृहन्तः वीळवः अद्रयः त्वा न वरन्ते— स्थायी प्रबल पर्वत अथवा शत्रु तुझे नहीं रोक सकते ।

३. ते तत् नकिः आ मिनाति— तेरे शुभकर्मों भी तोड़ नहीं सकता । तेरी योजना बीचहमें कभी नहीं होती । (मं. ३)

४. कृत्वा शवसा उत्त दंसना योद्धा असि— पुरुषार्थ, बल और शत्रुनाशक सामर्थ्यकी दृष्टिसे तू योद्धा

र है ।

मज्जना विश्वा जाता अभि भवसि- अपने सब उत्पन्न हुई आपत्तियोंको दूर करता है, सब शत्रु-रास्त करता है ।

ऊतये त्वा आ ववर्तति- अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं । (मं. ४)

ओजसा (त्वं) प्र रिरिक्षे, त्वा न विव्याच-

अपने बलसे तू सबसे बढकर श्रेष्ठ है, तेरेसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ।

(मं. ५)

८. ते मघस्य परिष्टिः नकिः- तेरे धनकी कोई सीमा नहीं है, तेरे सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं है ।

इस सूक्तके ये गुण अन्य इन्द्र सूक्तोंके वर्णनोंके साथ देखने योग्य हैं । इन्द्र सूक्त जिस क्षात्रवियाका उपदेश करते हैं वद विया यही है । ये गुण जो लोग अपनेमें पडा लेंगे वेही वीर बनकर दिग्विजयी होंगे ।

(८) वीर काव्य

(ऋ० १।६४) नोधः गौतमः । मरुतः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृत्किं प्र भरा मरुद्भ्यः ।

अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदधेष्वाभुवः

ते जशिरे दिवः ऋप्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।

पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्धनो ववक्षुरभिगावः पर्वता इव ।

दृक्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्जना

व्याख्या- १ हे नोधः । वृष्णे सुमखाय वेधसे शर्धाय
सुवृत्किं प्र भर । धीरः सुहस्त्यः मनसा, विदधेषु
गिरः, अपः न, सं अञ्जे ॥

ते ऋप्वासः उक्षणः असुराः अरेपसः, सूर्या इव शुचयः

न घोरवर्पसः रुद्रस्य मर्याः दिवः जशिरे ॥

युवानः अजराः अभोग्धनः अभिगावः पर्वता इव रुद्राः

दृक्, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृक्हा चिद् मज्जना

प्र च्यावयन्ति ॥

अर्थ- १ हे नोधः नामक ऋषि । वरुण पत्नी के शिशु, उत्तम
वस्तु करनेके लिये, शत्रुओं को बर्बाद करनेके लिये,
महर्षिके उत्तम काम्य निर्माण कर । तुझसार और शत्रुओं
कुशल में मनसे (उनको नष्ट करके दूँ और) युद्धमें पलायन
पुस्त भाषण, बल प्रदर्शक धन्य, (काम्य कर) करने हैं ।

२ वे जैसे बड़े (अग्नि) अविनाश करनेवाले, उत्तम
रहित और परिवर्तता करनेवाले, सूर्य (सूर्यके) समान, रुद्र
कालेबले (कृषिके) समान करनेवाले, अमर्युत, अमर्युत
धन्य बड़े शरीरवाले, नदी समान करनेवाले, जशिरे, रुद्र
और स्वर्गके प्रभु हुए हैं ।

३ युवा अजर, अजरा, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत
वाले, पर्वतके समान करनेवाले, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत
अमर्युत के धर (अमर्युत के धर) अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत
अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत
अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत, अमर्युत

1. The first part of the text is a list of names and titles.

2. The second part of the text is a list of names and titles.

3. The third part of the text is a list of names and titles.

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टं शुमन्तं शुभं मघवत्सु धत्तन ।
 धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्पणिं लोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः
 नू छिरं मरुतो वीरवन्तमृतीपाहं रयिमस्मासु धत्त ।
 सहस्रिणं शतिनं शुश्रूवांसं प्रातमंश्च धियावसुजंगम्यात्

१३

१४

१४ हे मरुतः ! मघवत्सु चर्कृत्यं पृत्सु दुष्टं शुमन्तं शुभं
 धनस्पृतं उक्थ्यं विश्वचर्पणिं लोकं तनयं धत्तन, शतं हिमाः
 पुष्येम ॥

१५ हे मरुतः ! अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं ऋतीपाहं शतिनं
 सहस्रिणं शुश्रूवांसं रयिं नु धत्त, प्रातः धियावसुः मधु जग-
 म्यात् ॥

१४ हे मरुत वीरो ! धनिकोंमें उत्तम कर्म
 युद्धोंमें विजयी, तेजस्वी, बलिष्ठ धनसे युक्त, कर्मों
 का दितकारी पुत्र और पौत्र प्राप्त हो और हम को
 होते रहें ॥

१५ हे मरुतो ! हममें स्थायी, वारोंसे युक्त, युद्ध
 करनेवाला, सैकड़ों और सहस्रों प्रकारका बड़नेवाला
 हमारे पास प्रातःकालही बुद्धिद्वारा कर्मोंका संग्रह
 वीर शीघ्रही आजावे ॥

वीरोंका कर्म

यह वीर काव्य है। इसमें वीरोंके कर्मोंका उत्तम वर्णन है। इस
 काव्यका प्रत्येक शब्द वीरोंके शुभ गुणोंका वर्णन करता है।
 मंत्रोंका सरल अर्थ दिया है और वहीं प्रत्येक पदका अर्थ स्पष्ट
 कर दिया है, इसलिये इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी आव-
 श्यकता नहीं है। जो भी मंत्र पाठक पढ़कर देखेंगे वह निःसंदेह
 बोधप्रद और वीरताकी उत्तेजना करनेवाला प्रतीत होगा।

बल प्राप्त करना और बढ़ाना, ज्ञान प्राप्त करना और बढ़ाकर
 उसका फैलाव करना, संघशक्ति बढ़ाना, प्रत्येक कर्म कुशलतासे
 और पूर्णतासे करना, युद्धभूमिपर अपना प्रभाव जमाना,
 पापरहित हो कर पवित्र जीवन व्यतीत करना, शरीरको दृष्टपुष्ट

बलवान् और सामर्थ्यवान् रखना और उसको
 कार्योंमें लगाना, युद्धमें अपने स्थानमें सुस्थिर रहना,
 कैसा भी हमला आ जाय, उससे न डरते हुए बल
 रहना, पर जिस समय शत्रुपर हमला किया जाय उस
 शत्रु कितना भी बलवान् हुआ तो भी उसको उबाव
 इत्यादि अनेक बातें इन मंत्रोंमें हैं। जो मानवोंके बल
 रक्षनेयोग्य हैं। इन मंत्रोंका प्रत्येक शब्द मननार्थक
 प्रद है। इसलिये पाठक प्रत्येक मंत्रका एक एक कर्म
 पूर्वक देखें और उसका अभ्यास करके बोध प्राप्त करें।

वीरता बढ़ानेवाला यह सूक्त है। इसके साथ
 संबंध है, वह वीरताकाही संबंध है।

(नवम मण्डल)

(१) सोमरस

(अ० १।१२) नोधा गौतमः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुनीः ।
 हरिः पर्यद्रवजाः सूर्यस्य द्रोणे ननक्षे अत्यो न वाजी

१

अन्वयः— १ साकमुक्षः स्वसारः मर्जयन्तः दश धीतयः

धीरस्य धनुनीः । हरिः सूर्यस्य जाः परि अद्रवत् । अत्यः
 वाजी न द्रोणं ननक्षे ॥

अर्थ— १ साथ साथ जलछा छिडकान करनेवाली
 दलचल करनेवाली, शुद्धता करनेवाली दश अगुष्टियों
 (सोम) को प्रेरणा करनेवाली हैं। इन्हें रंगछा दह
 सूर्यसे उत्पन्न दिशाओंके चारों ओर घूमन कर रहा है।
 शील घोड़के समान (यह घोम) द्रोणके पास पहुंचकर

नोवा ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

| विषय | पृष्ठ |
|---------------------------------------|-------|
| नोवा ऋषिका तत्त्वज्ञान | ३ |
| सूक्तानुसार मन्त्र-गणना | |
| (ऋग्वेदमें प्रथम, अष्टम, नवम मण्डल) | " |
| देवताचार मन्त्रसंख्या | " |
| नोवा ऋषिका दर्शन | ५ |
| (प्रथम मण्डल, एकादश अनुवाक) | " |
| (१) अजर-अमर-अग्नि | " |
| अग्निके विशेषणोंका विचार | ७ |
| परमेश्वरका स्वरूप | ८ |
| (२) विश्वका नेता | ९ |
| विश्वका संचालक (अग्नि-वैश्वानर) | १० |
| (३) आदर्श प्रजापालक | १३ |
| प्रजापतिका शासन | १४ |
| आदर्श स्वामी (अग्नि) | " |
| ऋषिका नाम | १५ |
| (४) प्रभावी इन्द्र | " |
| आदर्श वीर (इन्द्र) | १८ |
| ऋषिका नाम | १९ |
| (५) वीर इन्द्र | " |
| आदर्श वीर (इन्द्र) | २१ |
| आदर्श स्त्री | २२ |
| ऋषिका नाम | " |
| इक्ष्वाकु वर्णन | " |
| (६) प्रबल वीर | २३ |
| अतुल प्रतापी वीर (इन्द्र) | २४ |
| (अष्टम मण्डल, नवम अनुवाक) | |
| (७) वीर भाव | २५ |
| वीरताके गुण | २६ |
| (प्रथम मण्डल) | |
| (८) वीर काव्य | २७ |
| वीरोंका धर्म | ३० |
| (नवम मण्डल, पञ्चम अनुवाक) | |
| (९) सोमरस | |
| सोमरस बनानेकी रीति | ३१ |



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(८)

पराशर ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका वारहवाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवटेकर,
अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० यादगिर]

संवत् १९०३

मुद्रण ?) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनु-
पराशर सोमके मंत्र नवम मण्डलमें ९७ वें सूक्तमें हैं,
ऐसा है—

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

प्रथममण्डल

अनुवाक

| देवता | मंत्रसंख्या | छन्द |
|--------|-------------|----------------|
| अग्निः | १० | द्विपदा विराट् |
| " | १० | " |
| " | १० | " |
| " | १० | " |
| " | १० | " |
| " | ११ | " |
| " | १० | त्रिष्टुप् |
| " | १० | " |
| " | १० | " |
| " | ११ | " |

विम-मंडल

| | | | |
|------------|----|---|----|
| वमानः सोमः | १४ | " | १४ |
|------------|----|---|----|

कुलमंत्र-संख्या १०५

देवतावार मंत्र-संख्या

मंत्र-संख्या इस तरह होती है—

अग्निदेवता ११

वमानः सोमः १४

कुलमंत्र-संख्या १०५

ऋषिके मंत्रोंमें अग्निदेवताकेही मंत्र विशेषतया
पराशर सोमके सिवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मंत्र

पदा विराट् (दो चरणोंवाले विराट् छन्द) के
और चार चरणोंके त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र १४ हैं ।

अर्थात् पहिले ६१ मंत्र चार चरणोंके बनाये तो वे केवल
३०॥ ही होंगे । द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान
ही होता है ।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं ।

‘पराशरः’ पद निघण्टु ४।३ में पदनामोंमें लिखा है ।
इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं—

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य
जज्ञे । ‘पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः’ (ऋ. ७।१८।
२१) इत्यपि निगमा भवति । इन्द्रोऽपि परा-
शर उच्यते, पराशातयिता यातूनाम् । ‘ इन्द्रो
यातूनां अभवत् पराशरः ’ (ऋ. ७।१०।४।२१)
इत्यपि निगमो भवति ॥ निरुक्त. [६।१३।०।(१२१)]

अत्यंत बृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है । इन्द्रको
भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बड़ा वधन करता
है । इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य हैं—

प्र ये गृहादममदुस्स्वाया पराशरः शतयातु-
र्वसिष्ठः । न ते भोजस्य सख्यं मृपन्ताघा
सुरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ (ऋ. ७।१८।२१)
इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या-
विवासताम् । अभीष्टु शक्रः परगुर्यथा चनं
पात्रेव भिन्दन्तस्त एति रक्षसः ॥

(ऋ. ७।१०।४।२१; अथर्व. ८।४।२१)

‘पराशर, शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी नदिक
करके यज्ञगृहमें बैठे आनन्दित हो रहे हैं । ये तीनों तेरी
मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं । तब यदि कोई बिना
गुणदायक दिलोंवाली उदम हो करे । ’ इस मंत्रमें पराशर,
शतयातु और वसिष्ठ इन तीनोंके नाम हैं और वह मंत्र उच्यते-
का है ।

ऊपर दिया दूसरा मंत्र भी वसिष्ठ ऋषिके ही है—
‘इन्द्र उग्र शत्रुओंका हमें वधन करता है, ये शत्रु पहले इन्द्रका वधन
करते थे । इन्द्रने इनका वधन ऐसा किया कि वेना भू-रक्षित

—

सुदृढ तथा प्रकाशक-वसंत श्रीपाद सातवडेकर, B. A.
भारत-सुदृढालय, श्रीप (मि. अतारा)

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

इवेदमें पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनु-
१ हैं और सोमके मंत्र नवम मण्डलमें १७ वें सूक्तमें हैं,
। न्यूँरा ऐसा है-

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

द्वादशवाँ अनुवाक

| श्रुत | देवता | मंत्रसंख्या | छन्द |
|----------|-------------|-----------------|----------------|
| ६५ | अग्निः | १० | द्विपदा विराट् |
| ६६ | " | १० | " |
| ६७ | " | १० | " |
| ६८ | " | १० | " |
| ६९ | " | १० | " |
| ७० | " | ११ | " |
| ७१ | " | १० | त्रिष्टुप् |
| ७२ | " | १० | " |
| ७३ | " | १० | " |
| नवम-मंडल | | | |
| १७ | पवमानः सोमः | १४ | " १४ |
| | | कुलमंत्र-संख्या | १०५ |

देवतावार मन्त्र-संख्या

देवतावार मन्त्र-संख्या इस तरह होती है—

अग्निदेवता ११

पवमानः सोमः १४

कुलमंत्र-संख्या १०५

पराशर ऋषिके मंत्रोंमें अग्निदेवताकेही मंत्र विशेषतया
। अग्नि और सोमके सिवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मंत्र
ही हैं।

इन्ने द्विपदा विराट् (दो चरणोंवाले विराट् छन्द) के
११ हैं और चार चरणोंके त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र ४४ हैं।

अर्थात् पहिले ६१ मंत्र चार चरणोंके बनाये तो वे केवल
३०॥ ही होगे। द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान
ही होता है।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

‘पराशरः’ पद निघण्टु ४।३ में पदनामोंमें लिखा है।
इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं—

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य
जज्ञे। ‘पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः’ (ऋ. ७।१८।
२१) इत्यपि निगमा भवति। इन्द्रोऽपि परा-
शर उच्यते, पराशतयिता यातूनाम्। ‘इन्द्रो
यातूनां अभवत् पराशरः’ (ऋ. ७।१०।४।२१)
इत्यपि निगमो भवति ॥ निरुक्त. [६।१।३०। (१२१)]

अत्यंत बृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको
भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बड़ा दमन करता
है। इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य हैं—

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातु-
र्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृपन्ताघा
सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ (ऋ. ७।१८।२१)
इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मधीनामभ्या-
विवासताम्। अर्भोदु शक्रः परशुर्यथा वनं
पात्रेव भिन्दन्सत एति रक्षसः ॥

(ऋ. ७।१०।४।२१; अथर्व. ८।४।२१)

‘पराशर, शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी भक्ति
करके यज्ञगृहमें बड़े आनन्दित हो रहे हैं। ये तीनों तेरी
मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं। सब पिड़नोंके लिये
शुभदायक दिनोंकाही उदय हो जावे।’ इस मंत्रमें पराशर,
शतयातु और वसिष्ठ इन तीनोंके नाम हैं और यह मंत्र वसिष्ठ-
का है।

ऊपर दिया दूसरा मंत्र भी वसिष्ठ ऋषिकाही है— “इन्द्र
दुष्ट शत्रुओंका पूर्ण नाश करता है, ये शत्रु यज्ञके हविषा नाश
करते थे। इन्द्रने इनका नाश ऐसा किया कि वेना कुदाये

—

मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, भौध (जि. सातारा)

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

अथर्ववेदमें पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनु-
३ हैं और होमके मंत्र नवम मण्डलमें १७ वें सूक्तमें हैं,
1 और ऐसा है—

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

द्वादशवर्ष अनुवाक

| श्ल | देवता | मंत्रसंख्या | छन्द |
|----------|-------------|-----------------|----------------|
| १५ | अग्निः | १० | द्विपदा विराट् |
| १६ | " | १० | " |
| १७ | " | १० | " |
| १८ | " | १० | " |
| १९ | " | १० | " |
| २० | " | ११ | " |
| २१ | " | १० | त्रिष्टुप् |
| २२ | " | १० | " |
| २३ | " | १० | " |
| नवम-मंडल | | | |
| १७ | पवमानः सोमः | १४ | " १४ |
| | | कुलमंत्र-संख्या | १०५ |

देवतावार मन्त्र-संख्या

देवतावार मन्त्र-संख्या इस तरह होती है—

अग्निदेवता ११

पवमानः सोमः १४

कुलमंत्र-संख्या १०५

पराशर ऋषिके मंत्रोंमें अग्निदेवताकेही मंत्र विशेषतया
। अग्नि और सोमके विषय अन्य देवतापर इस ऋषिके मंत्र
ही हैं।

इन्में द्विपदा विराट् (दो चरणोंवाले विराट् छन्द) के
म ११ हैं और चार चरणोंके त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र ४४ हैं।

अर्थात् पहिले ६१ मंत्र चार चरणोंके धनाये तो वे केवल
३०॥ ही होंगे। द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान
ही होता है।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

‘पराशरः’ पद निष्पट्ट ४३ में पदनामोंमें लिखा है।

इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं—

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य

जज्ञे। ‘पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः’ (ऋ. ७।१८।

२१) इत्यपि निगमा भवति। इन्द्रोऽपि परा-

शर उच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। ‘इन्द्रो

यातूनां अभवत् पराशरः’ (ऋ. ७।१०।१२१)

इत्यपि निगमो भवति ॥ निरुक्त. [६।६।३०। (१२१)]

अत्यंत बृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको
भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बड़ा दमन करता
है। इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य हैं—

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातु-

र्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृपन्ताघा

सुरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ (ऋ. ७।१८।२१)

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या-

विवासताम्। अभीष्टु शक्रः परशुर्यथा वनं

पात्रेव भिन्दन्तस्त एति रक्षसः ॥

(ऋ. ७।१०।१२१; अथर्व. ८।४।२१)

‘पराशर, शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी भक्ति
करके यज्ञगृहमें घड़े आनन्दित हो रहे हैं। ये तीनों तेरी
मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं। तब बिड़नोंके लिये
शुभदापक दिनोंकाही उदय हो जावे।’ इस मंत्रमें पराशर,
शतयातु और वसिष्ठ इन तीनोंके नाम हैं और यह मंत्र वसिष्ठ-
का है।

ऊपर दिया दूसरा मंत्र भी वसिष्ठ ऋषिकाही है—

इष्ट शत्रुओंका पूरी नाश करता है, ये शत्रु बलके हवि
करते थे। इन्ने इनका नाश ऐसा किया कि वे

वनाका नाश होता है, अथवा (मिट्टीके) वर्तन जैसे तोड़े जा सकते हैं, ” यहाँ इन्द्रका विशेषण ‘ परा-शर ’ (दूर करके-नाशकर्ता) इस अर्थका आया है। पूर्व मंत्रमें यह नाम ऋषिका नाम है और यहाँ यह पद इन्द्रका सामर्थ्य बता रहा है। ऋग्वेदमें इन दोही मंत्रोंमें ‘ पराशर ’ पद आया है। अथर्ववेदमें दो बार पराशर पद है वे मंत्र अब देखिये—

अथ मन्थुरवायताव बाहू मनोयुजा ।

पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुभमर्दयाद्या नो
रयिमा कृषि ॥ (अ. ६।६।५।१)

अथर्ववेदमें आया दूसरा मंत्र, ऊपर दिया दूसरा मंत्रही है, अतः उसके यहाँ पुनः लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

‘ क्रोध दूर हो, शस्त्र दूर रहें, मनसे (मारनेके लिये) प्रेरित हुए हाथ दूर हों, हे (पराशर) दूरसे शत्रुको मारनेवाले वीर ! तू उन शत्रुओंके बलको दूर करके नष्ट कर और हमें धन दे । ’ यहाँ भी दूरसे शत्रुका नाश करनेवाले वीर इन्द्रकाही यह वर्णन है। यह पराशर ऋषिका वाचक पद नहीं है। अन्यत्र संहिताओंमें पराशर पद नहीं है। ऊपर दिये मंत्र ‘ पराशर ’ का अर्थ तथा उसकी व्युत्पत्ति बताते हैं। ‘ यातूनां पराशरः ’ (शत्रुओंका नाश करनेवाला), ‘ परा शुभं मर्दय ’ (दूर करके शत्रुके बलका नाश कर) ये मंत्रभाग ‘ परा-शर ’ की व्युत्पत्ति तथा अर्थ बता रहे हैं।

पराशीर्णस्य स्थविरस्य जजे ॥ (६।३०)

इसके अर्थका अक्षरशः ग्रहण करते हुवे कई लोग पराशरको वसिष्ठ पुत्र मानते हैं, परन्तु यह मानना ठीक नहीं। आगे लिखी हुई कथासे ऐसा निश्चय हो जाता है कि, वृद्धावस्थामें सय पुत्रोंका निधन होनेसे दुखी होगये हुवे वसिष्ठको पराशर आधारभूत हुवे। यही निश्चय ठीक है। महाभारतमें भी इसीका अनुवाद किया है।

एक बार पुत्र-निधनसे विरक्त होकर वसिष्ठजी अपने आश्रमसे चल पड़े। वसिष्ठके मृत पुत्र शक्तिकी विधवा पत्नी अहदयन्ती भी उनके पीछे चलने लगी। अचानक वसिष्ठजीके ज्ञात हुआ कि अपने पीछेसे कहींसे वेदध्वनि सुनाई दे रही है। ध्यान देकर सुननेपर वे समझ गये कि अहदयन्तीके चर्चा जो गमन है, वही वेदगान कर रहा है। तब उन्हें विश्वास हुआ कि वेदगान करनेवाला अभी जीवित है। वे वापस लौटे। कुछ

दिनोंके बाद ‘ अहदयन्ती ’ प्रसूत होकर जन्म हुवा। इनका लालन-पालन इनके पितामह ही किया। इसलिये वे वसिष्ठजीको ही ‘ अहदयन्ती ’ कहते। यह पराशर बालपनमें पुकारा करते। अहदयन्ती इन्हे समझाया कि वे तुम्हारे दादा हैं, न कि पिता विचारे छोटे बच्चेको दादा और पिता इनका बेटा परन्तु पराशर बड़े हो जानेपर अहदयन्तीने एक राक्षसके द्वारा मृत हो गये हुवे उनके पुनर्जात सुनाई। पराशरजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर क्रोध करनेके लिये प्रवृत्त हुवे। जब वसिष्ठजीको इस चला, तब उन्होंने पराशरजीको ओर्वक्रो क्रा इस निश्चयसे परावृत्त किया। फिर भी पराशरजीने राक्षसोंके विषयमें जो क्रोध निर्माण हुवा था, वह पाया। आगे चलकर इन्होंने सर्व आबाल वृद्ध करनेके हेतुसे राक्षस-सत्रका प्रारम्भ किया। वसिष्ठजी कुछ नहीं बोले। परन्तु निरपराध क्षण करनेके लिये पुलह, पुलस्त्य, कतु, मरु, वडे बडे मुनि वहाँ आ पहुँचे। महर्षि पुलस्त्यने जीको कहा कि निरपराध, निर्दोष राक्षसोंकी हत्या ही हो जायगी। यह बात उचित नहीं है। तब ने अपने पौत्रको उपदेश कर उस राक्षससत्रसे किया। फिर पुलस्त्यजीने सन्तुष्ट होकर प- “तुम सकलशास्त्रपारंगत और पुराणपक्का हो जाओगे। दो बार दिये।

पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति।
देवतापारमार्थ्यं च यथावद्वेत्स्यते भवान् ॥
(विष्णु १।१३)

पराशरजीने राक्षससत्रके लिये जो अग्नि शिद था उसे उन्होंने दिमाचलके उत्तरी दिशाके एक अश्वमेध दिया। ऐसा कहते हैं कि वह अग्नि आज भी पर्वत राक्षस, पाषाण और वृक्षोंको खाता है।

ततो दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं रहितं तैः सुतेर्मुनिः ।
निर्जंगाम सुदुःखार्तः पुनरप्याश्रमात्ततः ॥ १ ॥
अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥ २ ॥
तति को न्वेष मामित्येवाथ सोऽब्रवीत् ॥

अहंस्त्वुवाच—

शक्तेर्मर्ष्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनम् ।
महमेकाकिनी चापि त्वया गच्छामि नापरः ॥१५॥

वसिष्ठ उवाच—

पुत्रि कस्यैष साहस्य वेदस्याध्ययनस्वनः ॥ १६ ॥
अहंस्त्वुवाच—

अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते ॥१७॥
गन्धर्व उवाच—

एवमुक्तस्तया हृष्टो वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
अस्ति सन्तानमित्युक्त्वा मृत्योः पार्थ न्यवर्तत १८
(म. आ. १९३)

गन्धर्व उवाच—

आश्रमस्था ततः पुत्रमहश्यन्ती व्यजायत ।
शक्तेः कुलकरं राजन् द्वितीयमिव शक्तिनम् ॥१॥
जातकर्माद्यस्तस्य क्रियाः स मुनिसत्तमः ।
पौत्रस्य भरतश्रेष्ठ चकार भगवान्स्वयम् ॥२॥
परासुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥३॥
स तात इति विप्रपिं वसिष्ठं प्रत्यभाषत ॥५॥
तातेति परिपूर्णार्थं तस्य तन्मधुरं वचः ।
अहस्यन्त्यधुपूर्णाक्षी शृण्वन्ती तमुवाच ह ॥६॥
मा तात तात तातेति ब्रूहेनं पितरं पितुः ।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे ॥७॥
स एवमुक्तो दुःखार्तः सत्यवागृषिसत्तमः ।
सर्वलोकविनाशाय मतिं चक्रे महामनाः ॥९॥
तं तथा निश्चितात्मानं स महात्मा महातपाः ॥१०॥
वसिष्ठो वारयामास ॥११॥
(म. अ. १९४)

वसिष्ठ उवाच—

तस्मात्त्वमपि भद्रं ते न लोकान्दहन्तुमर्हसि ॥२३॥
(अ. १९६)

एवमुक्तः स विप्रपिंर्वसिष्ठेन महात्मना ।
न्यचछदात्मानः क्रोधं सर्वलोकपरामभवात् ॥१॥
इति च स महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।
ऋषी राक्षससत्रेण शाकेयोऽथ पराशरः ॥२॥
न हि तं वारयामास वसिष्ठो रक्षसां वधात् ॥४॥

तथा पुलस्त्यः पुलहः क्रतुश्चैव महाक्रतुः ।
तत्राजग्मुरामिवन्न रक्षसां जीवितेप्सया ॥१॥

पुलस्त्य उवाच—

कश्चित्तातापविप्रं ते कश्चिद्वन्दसि पुत्रक ।
अज्ञानतामदोषाणां सर्वेषां रक्षसां वधात् ॥११॥
गन्धर्व उवाच—

एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमता ।
तदा समापयामास सत्रं शाक्तो महामुनिः ॥२२॥
सर्वराक्षससत्राय संभृतं पावकं तदा ।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे उत्ससर्ज महावने ॥२३॥
स तत्राद्यापि रक्षांसि वृक्षानश्मन एव च ।
भक्षयन्द्दश्यते बन्धिः सदा पर्वणि पर्वणि ॥२४॥
(म. आ. १९७)

एकबार जबकि पराशरजी तीर्थयात्रा कर रहे थे, उन्होंने यमुनाके जलमें नाव चलाती हुई सत्यवतीकी देखा । पराशरजी उसपर लुब्ध हुवे और उन्होंने उसके पास काम-पूतकी इच्छा प्रकट की, उन्होंने चारों ओर धूँवा निर्माण किया । सत्यवतीने कौमार्यभंग होनेकी शंका प्रकट करनेपर इन्होंने तपश्चर्याके बलपर उसे दूर किया और सत्यवतीके शरीरको मल्लियों प्रकटनेके कारण जो दुर्गंध आया करती थी उसे हटाकर उसके शरीरकी सुगंधि एक योजनतक पहुंचेगी ऐसी व्यवस्था की । इन दोनोंके समागमसे वेद व्यासजी जन्म पा चुके । वे द्वीपमें पैदा हो गये थे, इसलिये उन्हें द्वैपायन कहने लगे ।

भीष्मस्तु... सत्यवतीमानयामास मातरं ।
यामाहुः कालीति । तस्यां पूर्वं पराशरात्कन्या-
गर्भो द्वैपायनः ॥ (म. आ. ६३/५१, ५२)
सत्यवतीकाही दूसरा नाम काली है ।

महाभारतमें पराशरजीके धर्मविषयक मतोंका उल्लेख वडे गौरवके साथ किया हुआ है ।

वृद्धः पराशरः प्राह धर्मं शुश्रमनामयम् ॥

(म. अ. १४६.४)

इन्होंने युधिष्ठिरको द्रमादात्म्य कथन दिया है । परीक्षितके शयोपवेशनके समयपर वे गंगातटपर उपस्थित हुये थे । ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि आर्य इन्द्रजितने उपास्थित थे ।

पराशरः पर्यंतश्च ।

(न. ग. भा. १)

इनके वंशमें वसिष्ठ, मित्रावर्कण तथा कुपिंडन इन तीन प्रवरोंके गौरपराशर, नीलपराशर, कुष्णपराशर, श्वेतपराशर, इयामपराशर और भूधरपराशर एवं उः भेद हो गये । इन छः में किंर पाँच उपभेद हुए । जिनके नाम—

गौरपराशर— कौटिल्य (काट्ययन), गोपालि, मेघना (समय), भीमतापन (समतापन), वादन्य (वादवीन) ।

नीलपराशर— केतुनाथ, सातेय, प्रयोदय कथमय, हर्षधि ।

कुष्णपराशर— कपिमुखा (कपिश्रम), काकेय (काक्य) काणायन जयातय (जयातपायन), पुंडर ।

श्वेतपराशर— इषीकदस्त, उपय, बालेय, आभिषायन, स्वायष्ट ।

इयामपराशर— क्रोधनायन, क्षेमि, बादरि, वाटिका, स्तंभ ।

पराशरजीने जनकको किये हुये तत्त्वज्ञानके उपदेशका अनुवादही भीष्मजीने युधिष्ठिरसे महाभारतके शान्ति पर्वमें २९६ वे अध्यायसे लेकर ३०४ वे अध्यायतक कहा है, जिसका कि नाम पराशर गीता है । सारस्वतने पराशर-जीको और उन्होंने मैत्रेयको विष्णुपुराण कहा । भागवतमें कहा है कि सांख्यायन ऋषिने पराशर और बृहस्पति इन्हें भागवत पुराण कथन किया । आगे चलकर पराशर-जीने मैत्रेयको भागवत कथन किया ।

पराशरजीके नामपर आरंभ भी कुछ ग्रन्थ हैं ।

(१) बृहत्पराशर होराशास्त्र । (१२००० श्लोकोंका ज्योतिष-विषयक ग्रन्थ)

(२) लघु पराशरी ।

(३) बृहत्पराशरीय धर्मसंहिता । (३३०० श्लोक)

(४) पराशर धर्मसंहिता । (स्मृति)

(५) पराशरोदितं वास्तुशास्त्रम् । (जिसका कि उल्लेख विश्व-कर्माने किया है ।)

(६) पराशर संहिता । (वैद्यकशास्त्र)

(७) पराशरोपपुराण (माधवाचार्यद्वारा इसके कुछ उद्ध-
किये गये हैं ।)

(८) पराशरायनं नीलपराशरम् । (जिसका नाम भीष्मजीने कहा है ।)

(९) पराशरोदितं वास्तुशास्त्रम् ।

पराशरजीने अपने योगिनामग्रन्थमें लिखा वर्णन किया है । उस परमे ब्रह्मका कि समस्तपञ्चांगका वर्णन करनेका निश्चय लेकरने अपना नीलपराशर नामें रक्खा ।

पराशरजी स्मृतिकार हैं । इनकी स्मृति मेयोदी प्राचीन है । परमेश्वरके अनेक उद्देशोंसे मानकर उसके बनन उत्पन्न किये हैं । ब्रह्मपुराणमें लिखा सारांश दिया हुआ है । कौटिल्यने तबसे करते समय इसका उल्लेख किया है । इस स्मृति तथा ५९२ श्लोक हैं । उनमें आचार और विचार किया है । इस स्मृतिमें क्षत्रियोंके कर्तव्योंके अधिक विवेचन किया है । यह स्मृति कलियुगके कृत, त्रेता, द्वापार और कलि इन युगोंमें गौतम, शंख-लिखित और पराशर ये तीन करेंगे, ऐसा भी एक विधान हममें है ।

कलौ पराशरः स्मृतः ।

पराशरजीने पुत्रोंके औरस, क्षेत्रज्ञ, दत्तक तथा ऐसे चार भेद किये हैं । सती होनेके सम्बन्धमें नील-विचार प्रकट किये हैं । इनकी स्मृतिमें मनु आदि चारोंका उल्लेख है । मनुके उल्लेखमें इन्होंने उन्हें सर्वज्ञता बताया है । इन्होंने वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र स्मृति, इनका भी विचार किया है । अपने स्मृतिके अध्यायमें इन्होंने कुछ ऋग्वेदके तथा शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्र किये हैं । मिताक्षरा, अपराक, स्मृतचन्द्रिका, हेमाद्रि ग्रन्थकारोंने इनकी स्मृतिके उल्लेख किये हुये हैं । विश्वकर्मा कई बार इनकी स्मृतिका उल्लेख किया है, इससे होता है कि, नौवे शतकके पूर्वार्धमें इस स्मृतिके बचन भूत माने जाते थे । जीवनानन्द संप्रदायमें बृहत्पराशर पायी जाती है । उसमें १२ अध्याय तथा ३३०० श्लोक हैं । यह संहिता पराशरजीने सुमतसे कही है । आज जो स्मृति उपलब्ध है, वह सुवतने की हुई संक्षिप्त आशुति है । बृहत्पराशर यह ग्रन्थ इस स्मृतिके पञ्चांगका दो सङ्ग्रह अपराक और माधवने बृहत्पराशरका उल्लेख किया

और हेमाद्रि तथा भट्टोजी दीक्षित ने भी पराशरका उल्लेख किया है ।

पराशर- सत्यायन, तन्त्रि (जर्ति), तैल्य, यूथप,

के प्रवर पराशर, वसिष्ठ और शक्ति ये तीन

प्राये वाहनपो जैहपो भौमतापनः ।

हेरेपां पञ्चम एते गौराः पराशराः ॥३३॥

सा बाह्यमयाः ग्यातेयाः कौतुजातयः ।

यः पञ्चमो येपां नीला ज्ञेयाः पराशराः ॥३४॥

यनाः कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः ।

यः पञ्चमश्चैपां कुष्णा ज्ञेयाः पराशराः ॥३५॥

म्यायनवालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये ।

हस्तश्चैपे वै पञ्च इवेताः पराशराः ॥३६॥

को यादरिश्चैव स्तम्वा वै क्रोधनायनाः ।

रेपां पञ्चमस्तु एते इयामाः पराशराः ॥३७॥

यना वाष्पायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः ।

रेपां पञ्चमस्तु एते धून्नाः पराशराः ॥३८॥

पराणां सर्वेषां ज्यार्येयः प्रवरो मतः ।

पश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः ॥३९॥

यह पराशर व्यासजीके ऋक्षशिष्यपरम्पराके बाष्क-

शिष्य था । इसके नामको उद्देश करके इसकी शारदाको

पराशरी नाम मिला है । यह ऋग्वेदका श्रुतर्षि तथा ऋषिक ऋक्षचारी है ।

(२) वायु और ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार एक पराशर व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके हिरण्यनाभका शिष्य है ।

(३) व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके कुपुमाके एक शिष्यका नाम पराशर है ।

(४) ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार व्यासजीके दत्तुःशिष्य-परम्पराके याज्ञवल्क्यका एक वाजसनेय शिष्य भी पराशर नामका था ।

(५) एक पराशर ऋषभ नामक शिवावतारका शिष्य है ।

(६) पराशर यह नाम जनमेजयके सर्पसत्रमें मरे हुये एक सर्पका भी पाया जाता है ।

पराशरके विषयमें इस तरह नडाभारतादिमें लिखा मिलता है । पराशर अनेक हुए हैं, उनमें सूक्त द्रष्टा पराशर वसिष्ठका पौत्र और शक्तिऋषिका पुत्र है, इसलिये उसको ' पराशरः शाक्त्यः ' सूत्रकारने कहा है । अन्य पराशर उसके पञ्चमावतार हैं । तथापि इस बारेमें और अधिक खोज होनी चाहिये ।

निर्देश

श्री. डा. सातवळेकर

स्वायत्त-मन्त्र

औषधि जि. सातारा

१५ भाद्रपद संवत् २००३



[ऋग्वेदका चारहवाँ अनुवाक]

(१) आग्निः

(ऋ. १।६५) पराशरः शक्त्यः । लप्तिः । द्विपदा विराट् ।

| | | |
|--|---|---|
| न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् | १ | १ |
| धर्माः पदैरनु गन्तुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः | २ | २ |
| देवा अनु व्रता गुर्वुवत् परिष्टिद्यौर्न भूम | ३ | ३ |
| मापः पन्वा सुशिभ्वन्तस्य योना गर्भे सुजातम् | ४ | ४ |
| रप्त्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुजम् क्षोदो न शंसु | ५ | ५ |
| नाग्नन्तर्गप्रतप्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ई वराते | ६ | ६ |

पुहा चतन्तं, ननः युजानं, ननः

जोषाः धीराः पदैः अनुगन्तु, विश्वे

22

ता वनु गुः । परिष्टिः भुवत्, भून ।

स्य योना गनें लुजातं पन्था लुगिभि

स्थितिः न पृथ्वी, निरिः न भुवन,

न अजलानु तर्गवत्कृतः, निम्नः न

अर्थ- १-२ गुरुमें रहनेवाले, जिनको फिर करनेवाले अवश्य साथ रहनेवाले, पशुको (जो) इसके अति प्रायः रहनेवाले) बीरको जैसे, निजकर रहनेवाले और जो जेब, (जो) पावों के बिना (पता लगाकर) पता करने १, ऐसे पता पावक तेरे समान चलो और रहने दे ।

[illegible][illegible]

| | | |
|--|----|----|
| जामिः सिन्धूनां प्रातः स्वधामिभ्याम् राजा वनान्यति | ७ | ७ |
| यत् वातजुता वना अस्थाद्विहं दाति सोमा पृथिव्याः | ८ | ८ |
| इवासित्यन्तु हंसो न सीदन् कत्वा चेतिष्ठो विशानुगमुन् | ९ | ९ |
| सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुनं शिश्वा विभुर्दूरेभाः | १० | १० |

(२) [अ. ३. १. १]

| | | |
|--|---|----|
| रयिनं चित्रा सूरः न संदगायुनं प्राणो नित्यो न स्रुतः | १ | ११ |
| तक्वा न भूर्णिवेना सिपक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा | २ | १२ |
| दाधार श्वेममोको न रण्यो यवो न पको जेता जनानाम् | ३ | १३ |
| ऋपिनं स्तुम्बा विश्व प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति | ४ | १४ |
| दुरोकशोचिः क्रतुनं नित्यो जायंय योनायं विश्वस्मै | ५ | १५ |
| चित्रो यदभ्राद् द्वेतो न विश्व रथो न रक्मि त्वेपः समस्तु | ६ | १६ |

७-८ सिन्धूनां जामिः, स्वधां प्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अति । यत् वातजुतः वना वि अस्थाद्, जामिः इ पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० कत्वा विशां चेतिष्ठः, उपभुंक्, सोमः न वेधाः, ऋतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अन्तु असिति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूरः न संदक्, आयुः न प्राणः, नित्यः न स्रुतः, तक्वा न भूर्णिः, पयः न धेनुः, शुचिः वि-भावा वना सिपक्ति ॥

१३-१४ ओकः न रण्यः, पकः यवः न, श्वेमं दाधार । जनानां जेता, ऋपिः न स्तुम्बा, विश्व प्रशस्तः, प्रीतः वाजी न, वयो दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न । योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम् । चित्रः यत् अभ्राद् द्वेतः न, विश्व रथः न रक्मि, समस्तु त्वेपः ॥

७-८ यद् नदियोंका भिन्न, यद्निनोंका भाई जैसा (सिन्धुओंका जैसा राजा (नाश करता है, वैसा यह) जाता है । जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर जाता है, (तब यह) अग्नि पृथ्वीके बालों (औपथियोंके)

९-१० कर्म करके सब प्रजाओंको जगानेवाला, कालमें जागनेवाला, सोमके समान सबकी वृद्धि करनेवाला, लियेही जो प्रकट हुआ है, पशुके समान चपल, और दूरतक प्रघाश फैलानेवाला (यह अग्नि) इनके जलोंमें छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धनके समान बाँटनीय, ज्ञानीके समान आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्रके समान दानकारी), चपल घोड़ेके समान घोषणकारी अथवा लानेवाला, दूध गो धारण करती है वैसा यह पवित्र और अग्नि वनोंमें रहता है ॥

१३-१४ घरके समान रमणीय (यह अग्नि) के समान कल्याण करता है । जनोंको विजय प्राप्त करनेवाला, ऋषिके समान स्तुतिमें मग्न, प्रजाजनोंमें प्रशस्त, बलवान् (वीर) के समान (सबकी भलाईके लिये) अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहन करना अशक्य है (इस अग्नि) नित्य शुभ कर्मके कर्ता (वीरके समान) कर्म करता है । घरमें छीके समान यह सबके लिये पर्याप्त (सुखदायी) विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब तेजस्वी के समान, प्रजाजनोंमें महारथी वीरकी तरह यह शोभता और समारोंमें तेजस्वी विजयी होता है ॥

| | | |
|---|----|----|
| जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वद्यामिभ्यान् राजा वनान्यसि | ७ | ७ |
| यद् वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः | ८ | ८ |
| श्वासित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुपभुत् | ९ | ९ |
| सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः | १० | १० |

(१) [अ. १, ६]

| | | |
|--|---|----|
| रयिर्न चित्रा सूर्यो न संदगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः | १ | ११ |
| तक्वा न भूर्णिर्वना सिपक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा | २ | १२ |
| दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पको जेता जनानाम् | ३ | १३ |
| ऋपिर्न स्तुभ्वा विश्व प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति | ४ | १४ |
| दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै | ५ | १५ |
| चित्रो यद्भ्राद् ज्वेतो न विश्व रथो न रुक्मी त्वेपः समत्सु | ६ | १६ |

७-८ सिन्धूनां जामिः, स्वसां भ्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अस्ति । यद् वातजूतः वना वि अस्थात्, अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० क्रत्वा विशां चेतिष्ठः, उपभुत्, सोमः न वेधाः, ऋतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अप्सु श्वसिति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूर्यः न संदग्, आयुः न प्राणः, नित्यः न सूनुः, तक्वा न भूर्णिः, पयो न धेनुः, शुचिः वि-भावा वना सिपक्ति ॥

१३-१४ ओकः न रण्वः, पकः यवः न, क्षेमं दाधार । जनानां जेता, ऋपिः न स्तुभ्वा, विश्व प्रशस्तः, प्रीतः वाजी न, वयो दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न । योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम् । चित्रः यद् भ्राद् ज्वेतः न, विश्व रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेपः ॥

७-८ यह नदियोंका मित्र, बहनोंका भाई ऐसा (शत्रुओंका जैसा राजा (नाश करता है, वैसा यह) जाता है । जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंमें है, (तब यह) अग्नि पृथ्वीके बालों (औषधियोंके) ९-१० कर्म करके सब प्रजाओंको जगानेवाला, कालमें जागनेवाला, सोमके समान सबकी वृद्धि लियेही जो प्रकट हुआ है, पशुके समान चपल, और दूरतक प्रकाश फैलानेवाला (यह अग्नि) जलोंमें छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धनके समान वांछनीय, ज्ञानीके समान आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्रके समान उत्तम (कारी), चपल घोड़ेके समान पोषणकारी अन्न देनेवाला दूध गौ धारण करती है वैसा यह पवित्र और अग्नि वनोंमें रहता है ॥

१३-१४ घरके समान रमणीय (यह अग्नि) समान कल्याण करता है । जनोंको विजय प्राप्त करके समान स्तुतिमें मग्न, प्रजाजनोंमें प्रशस्त, बलवान् (वीर) के समान (सबकी मलाईके डिब्बे) अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहज करना असम्भव है (अग्नि) नित्य शुभ कर्मके कर्ता (वीरके समान) कर्म है । घरमें स्त्रीके समान यह सबके लिये पर्याप्त (पुत्रके) विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब देवों के समान, प्रजाजनोंमें महारथी वीरकी तरह यह और समारोंमें तेजस्वी विजयी होता है ॥

| | | |
|--|----|----|
| आग्निः सिन्धूनां भ्राता स्वर्गामिभ्यान् राजा वनान्यसि | ७ | ७ |
| यद् वातजूता वना अस्थ्या दृष्टिर्देहति रोमा पुण्ड्रिभ्याः | ८ | ८ |
| श्वासिन्धूनां हंसो न सीदन् कृत्वा नेनिन्द्रो विशामुपभुङ्क्ते | ९ | ९ |
| सोमो न वेधाः कृतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः | १० | १० |

(१) [अ. १११]

| | | |
|---|---|----|
| रयिर्न चित्रा सूर्यो न संदग्मायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः | १ | ११ |
| तन्वा न भूणिर्वेना सिपक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा | २ | १२ |
| दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पको जेता जनानाम् | ३ | १३ |
| ऋषिर्न स्तुभ्वा विश्वु प्रशास्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति | ४ | १४ |
| दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायैव योनौवरं विश्वस्मै | ५ | १५ |
| चित्रो यदभ्राद् ह्रतो न विश्वु रथो न रुक्मी त्वेपः समत्सु | ६ | १६ |

७-८ सिन्धूनां आग्निः, स्वर्गां भ्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अस्ति । यद् वातजूतः वना नि अस्थ्या, अग्निः इ पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० कृत्वा विशां चेतिष्ठः, उपभुङ्क्ते, सोमः न वेधाः, कृतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अप्सु श्रुति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूर्यः न संदग्, आयुः न प्राणः, नित्यः न सूनुः, तन्वा न भूणिः, पयो न धेनुः, शुचिः विभावा वना सिपक्ति ॥

१३-१४ ओकः न रण्वः, पकः यवः न, क्षेमं दाधार । जनानां जेता, ऋषिः न स्तुभ्वा, विश्वु प्रशास्तः, प्रीतः वाजी न, वयो दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न । योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम् । चित्रः यद् अभ्राद् श्वेतः न, विश्वु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेपः ॥

७-८ यद् यदिर्गोहा मित्र, यदिर्गोहा भाई जैसा (यद् यदिर्गोहा जैसा राजा (नाश करता है, वैसा वह) जाता है । जब वायुधे प्रेरित होकर यद् वनों में (तब यद्) अग्नि पृथ्वी के बालों (औषधियों के) ९-१० हमें करके सब प्रजाओं को जगनेवाला, जल में जागनेवाला, सोम के समान सबको वृद्धि लिये दी जो प्रसन्न हुआ है, पशु के समान चपल और दूर तक प्रकाश फैलानेवाला (यद् अग्नि) जलों में छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धन के समान वांछनीय, ज्ञानी के समान आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्र के समान सहाकारी, चपल घोड़े के समान पोषणकारी अन्न देने दूध गो धारण करती है वैसा वह पवित्र और अग्नि वनों में रहता है ॥

१३-१४ घर के समान रमणीय (यद् अग्नि) समान कल्याण करता है । जनों को विजय प्राप्त ऋषि के समान स्तुति में मग्न, प्रजाजनों में प्रसन्न, बलवान् (वीर) के समान (सबको मलाई के लिये) अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहन करना अशक्य है (अग्नि) नित्य शुभ कर्म के कर्ता (वीर के समान) कर्म है । घर में स्त्री के समान यद् सब के लिये पर्याप्त (उपलब्ध) विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब वह के समान, प्रजाजनों में महारथी वीर की तरह दृढ़ है और समारों में तेजस्वी विजयी होता है ॥

| | | |
|---|----|----|
| य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद् धारामृतस्य | ७ | १७ |
| वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै | ८ | १८ |
| वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत् प्रजा उत प्रसूषन्तः | ९ | १९ |
| चित्तिरपां दमे विश्वायुः सवेव धीराः संमाय चक्रुः | १० | २० |

(४) [अ. १।६८]

| | | |
|---|---|----|
| श्रीणन्नुप स्थादिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमकून् व्यूणोत् | १ | ११ |
| परि यदेपामेको विश्वेपां भुवद् देवो देवानां महित्वा | २ | १२ |
| आदित् ते विश्वे ऋतुं जुपन्त शुष्काद् यद् देव जीवो जनिष्टाः | ३ | १३ |
| भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः | ४ | १४ |
| ऋतस्य प्रेपा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः | ५ | १५ |
| यस्तुभ्यं दाशाद् यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व | ६ | १६ |

२७-२८ यः ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां
आ ससाद्, ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, आत् इत् अस्मै
वसूनि प्र ववाच ॥

२९-३० यः वीरुत्सु महित्वा वि रोधत्, उत उत प्रजाः
प्रसूषन्तः । चित्तिः अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः
संमाय, सव इव, चक्रुः ॥

३१-३२ भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं
अकून् वि व्यूणोत् । एपां विश्वेपां देवानां एकः देवः
महित्वा यत् परि भुवत् ॥

३३-३४ हे देव ! यत् जीवः शुष्कात् जनिष्टाः, आत् इत्
विश्वे ते ऋतुं जुपन्त ! अमृतं एवैः सपन्तः विश्वे नाम ऋतं
देवत्वं भजन्त ॥

३५-३६ ऋतस्य प्रेपाः, ऋतस्य धीतिः (अग्निः) विश्वायुः
विश्वे अपांसि चक्रुः । यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्,
चिकित्वान् रयिं दयस्व ॥

२७-२८ जो इस (अग्नि) को गुहामें रहने
है, जो सत्यको धाराको (प्राप्त करनेके लिये)
है, जो सत्यसे (उसका) सम्मान करते हुए (-
गुणगान करते हैं, (वह) निःसन्देह उसके
(प्राप्तिके मार्ग) कहता है ॥

२९-३० जो वृक्षोंमें अपनी महिमासे रहता है,
सन्तान (जैसा होता हुआ भी अपनी) माताओं
रहता है । जो ज्ञानरूप जलके रूपमें विश्वका
होकर रहता है, उसको बुद्धिमानोंने सम्मानपूर्वक
(अपना निवास-स्थान) बनाया है ॥

३१-३२ भरणपोषण कर्ता शोभाको बढ़ाता हुआ
समीप गया है । (उसने) स्थावर जंगमोंको और
भी प्रकाशित किया है । इन सब देवोंमें यही एक
महिमासे सर्वोपरि (मुख्य) हुआ है ॥

३३-३४ हे देव ! जब जीव (वनकर) दुःख
जन्म लिया, तब सर्वोंने तेरी कर्तृत्वकी प्रशंसा की ।
अमर (देवकी) सब प्रगति करनेवालोंने जब प्राप्ति की,
हीको यश, सत्य और देवत्व प्राप्त हुआ ॥

३५-३६ सत्यका प्रेरक, सत्यका रक्षक, सब विश्व
(यह अग्नि है, इसकी प्रेरणासे) सब अपने अपने
रहते हैं । (हे अग्नि !) जो तुझे अर्पण करता है
तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है, उसको (योग्यता)
तु) धन दे ॥

| | | |
|---|----|----|
| य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद् धारामृतस्य | ७ | १७ |
| वि ये वृतन्त्यूता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै | ८ | १८ |
| वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत् प्रजा उत प्रसूष्यन्तः | ९ | १९ |
| चित्तिरपां दमे विश्वायुः सञ्जेव धीराः संमाय चक्रुः | १० | २० |

(४) [अ. १।६८]

| | | |
|---|---|----|
| श्रीणन्नुप स्थादिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्नू व्यूर्णांत | १ | ३१ |
| परि यदेपामेको विश्वेपां भुवद् देवो देवानां महित्वा | २ | ३२ |
| आदित् ते विश्वे क्रतुं जुपन्त शुष्काद् यद् देव जीवो जनिष्ठाः | ३ | ३३ |
| भजन्त विश्वे देवत्वं नाम क्रतुं सपन्तो अमृतमेवैः | ४ | ३४ |
| ऋतस्य प्रेपा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः | ५ | ३५ |
| यस्तुभ्यं दाशाद् यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व | ६ | ३६ |

२७-२८ यः ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां
आ ससाद्, ये ऋता सपन्तः वि वृतन्ति, आत् इत् अस्मै
वसूनि प्र ववाच ॥

२९-३० यः वीरुत्सु महित्वा वि रोधत्, उत उत प्रजाः
प्रसूषु अन्तः । चित्तिः अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः
संमाय, सञ्ज इव, चक्रुः ॥

३१-३२ भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं
अक्नून् वि ऊर्णांत । एपां विश्वेपां देवानां एकः देवः
महित्वा यत् परि भुवत् ॥

३३-३४ हे देव ! यत् जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः, आत् इत्
विश्वे ते क्रतुं जुपन्त ! अमृतं एवैः सपन्तः विश्वे नाम क्रतुं
देवत्वं भजन्त ॥

३५-३६ ऋतस्य प्रेपाः, ऋतस्य धीतिः (अग्निः) विश्वायुः
विश्वे अपांसि चक्रुः । यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्,
चिकित्वान् रयिं दयस्व ॥

२७-२८ जो इस (अग्नि) को गुहामें रहनेके समान
है, जो सत्यकी धाराको (प्राप्त करनेके लियेही) दे
है, जो सत्यसे (उसका) सम्मान करते हुए (उसको)
गुणगान करते हैं, (वह) निःसन्देह उसके
(प्रातिके मार्ग) कहता है ॥

२९-३० जो वृक्षोंमें अपनी महिमासे रहता है,
सन्तान (जैसा होता हुआ भी अपनी) माताओं (में)
रहता है । जो ज्ञानरूप जलैके रूपमें विश्वका जीव
होकर रहता है, उसको बुद्धिमानोंने सम्मानपूर्वक
(अपना निवास-स्थान) बनाया है ॥

३१-३२ भरणपोषण कर्ता शोभाको बढ़ाता हुआ,
समीप गया है । (उसने) स्थावर जंगमोंकी और (में)
भी प्रकाशित किया है । इन सब देवोंमें यही एक देव
महिमासे सर्वोपरि (मुख्य) हुआ है ॥

३३-३४ हे देव ! जब जीव (बनकर) शुष्क
जन्म लिया, तब सबोंने तेरी कर्तृत्वकी प्रशंसा की ।
अमर (देवकी) सब प्रगति करनेवालोंने जब प्राप्ति की,
हीकी यश, सत्य और देवत्व प्राप्त हुआ ॥

३५-३६ सत्यका प्रेरक, सत्यका रक्षक, सब विश्व
(यह अग्नि है, इसकी प्रेरणासे) सब अपने अपने कर्म
रहते हैं । (हे अग्नि !) जो तुझे अर्पण करता है
तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है, उसकी (योग्यता) जल
तू) धन दे ॥

| | | |
|---|----|----|
| नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः शुष्टि चकर्थ | ७ | ४७ |
| तत् तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद् युक्तो विवे रपांसि | ८ | ४८ |
| उपो न जारो विभावोन्नः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै | ९ | ४९ |
| त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे स्वर्दशीके | १० | ५० |

(६) [अ. १।७०]

| | | |
|--|---|----|
| वनेम पूर्वीर्यां मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यद्याः | १ | ५१ |
| आं दैव्यानि व्रता चिकित्त्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म | २ | ५२ |
| गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् | ३ | ५३ |
| अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः | ४ | ५४ |
| स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद् यो अस्मा अरं सूक्तैः | ५ | ५५ |
| एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्ताश्च विद्वान् | ६ | ५६ |

४७-४८ ते एता व्रता नकिः मिनन्ति, यत् एभ्यः नृभ्यः शुष्टि चकर्थ । ते तत् तु दंसः, यत् अहन्, समानैः नृभिः युक्तः रपांसि, यत् विवेः ॥

४९-५० उपः न जारः विभावा उन्नः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत् । त्मना वहन्तः, दुरः वि ऋण्वन्, दशीके स्वः विश्वे नवन्त ॥

५१-५२ पूर्वीः मनीषा वनेम । सुशोकः अर्यः अग्निः विश्वानि अद्याः । दैव्यानि व्रता चिकित्त्वान् मानुषस्य जनस्य जन्म आ (जानन्) ॥

५३-५४ यः अपां गर्भः, वनानां गर्भः, स्थातां चरथां च गर्भः, अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः । अमृतः स्वाधीः । विदवः विशां न ॥

५५-५६ सः हि अग्निः क्षपावान्, रयीणां दाशद्, यः स्मै सूक्तैः अरं (करोति) । हे चिकित्वः ! (त्वं) देवानां, नर्तान् च विद्वान्, एता भूम नि पाहि ॥

४७-४८ तेरे इन नियमोंको कोई नहीं तोड़ सकता, तू इन मानवोंके लिये सहायता करता है। वह कमही है कि जो (शत्रुका) वध तुमने किया और मानवोंसे युक्त होकर दुष्टोंको भी भगा दिया ॥

४९-५० उपाके प्रियकरके समान तेजस्वी सखे वाला (अग्नि) इस (कमकर्ता) को जाने। स्वर्ग (फैलानेवाले (किरणोंने) सब द्वार खोल दिये और दर्शनके समय सभी आनन्दसे स्तुति करने लगे ॥

५१-५२ हम पूर्व (अर्थात् अपूर्व उत्तम) स्थान-शुद्धिसे प्राप्त करेंगे। यह तेजस्वी स्वामी अग्नि सबको कर लेता है। दिव्य व्रतोंको यह जानता है, और मनुष्य जन्मको (भी ज्ञान इसको है) ॥

५३-५४ यह (अग्नि) जलोंके मध्यमें, वनोंके मध्यमें, और जंगलोंके मध्यमें है, इसके लिये घरमें अथवा पर्यटने (हवि अर्पण करते हैं), यह अमर देव (सबके लिये) ध्यान करनेयोग्य है। जैसा सब (व्रतोंको वधानेवाला प्रजाजनोंका आधार देता है ॥

५५-५६ यह अग्नि राजोंमें (प्रचलित होकर) (उसको) दान करता है कि, जो इसको सूक्तोंमें अर्पण करता है। हे ज्ञानी (अग्नि देव) ! तू देवोंके जन्मों और (के जीवनों) को जानता है, इन भूपदेवोंको सुरक्षा कर

| | | |
|--|---|----|
| दधन्नृतं धनयज्ञस्य धीतिमादिदयो दिधिष्वो विभृताः ।
अतृप्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाज्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः । | ३ | ६४ |
| मर्थाद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदौ राक्षे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय । | ४ | ६५ |
| महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशान्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृपता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विपि धात् । | ५ | ६६ |
| स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु धून्
वधो अग्ने वयो अस्य द्विवर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि । | ६ | ६७ |
| अग्निं विश्वा अभि पृशः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यद्भीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमर्ति चिकित्वान् । | ७ | ६८ |

६४ ऋतं दधन्, अस्य धीतिं धनयन् आत् इत् अर्थः
दिधिष्वः विभृताः अतृप्यन्तीः अपसः प्रयसा देवान् जन्म
वर्धयन्तीः अच्छ यन्ति ॥

६५ मातरिश्वा ईं यत् मथीत्, विभृतः, श्येतः गृहे गृहे
जेन्यः भूत् । सचा सन् सहीयसे राक्षे न आत् ईं भृगवाणः
दूत्यं आ विवाय ।

६६ महे पित्रे दिवे ईं रसं यत् कः पृशान्यः चिकित्वान्
अव त्सरत् । अस्ता धृपता अस्मै दिद्युं सृजत् । देवः स्वायां
दुहितरि त्विपि धात् ॥

६७ तुभ्यं स्वे दमे यः आ विभाति, अनु धून् उशतः
नमः वा दाशात् । हे अग्ने ! अस्य द्विवर्हाः वयः वधो,
सरथं यं जुनासि राया यासत् ॥

पृशः अग्निं अभि सचन्ते, स्रवतः सप्त यद्भीः
जामिभिः नः वयः न वि चिकिते, देवेषु प्रमर्ति
विदाः ॥

६४ सत्यका धारण करनेवालोंने इसकी धारण
धारण किया । पश्चात् स्वामिनीरूप धारण करनेवालों
करनेवाली, तृष्णारहित कर्मशील अन्नदानसे देवोंके
(लेनेवाले मानवोंको) बढानेवाली (प्रजायें इस
जमा होती हैं ॥

६५ वायुने जब इस (अग्नि) को मथकर प्रकट
यह श्वेत प्रकाश (प्रकट करता हुआ) घर घरमें
है । साथ रहकर बलिष्ठ राजाके लिये (सहायक को)
प्रकट होनेके पश्चात् भृगु ऋषिपर प्रेम करनेवाले (इस
उसकी सहायतार्थ) दूतकर्म किया ॥

६६ महान् पितृभूत ब्रुलोकको (अर्पण करनेके लिये)
किये) इस (सोम) रसको कौन हमला करनेवाला
इस अग्निने प्रभावको) जानता हुआ नीचे गिरा
अन्न फैलनेवाले वीरने इस (शत्रु) पर तेजस्वी अन्न (फेंका,
तब इस (सूर्य देव) ने अपनीही पुत्री (उषा)
रख दिया ॥

६७ तुम्हारे लिये अपने स्थानमें जो प्रकाश
प्रतिदिन (तुम्हारा हित) चाहनेवाले (अग्नि के लिये)
देता है, हे अग्ने ! दोनों स्थानोंमें वृद्धिगत होता हुआ
भक्तकी आयु बढा । जिसके रथमें सहायतार्थ तुम्हारे
उसको धन देता है ॥

६८ सब अन्न अग्निकेही पास आते हैं, जैसी
सात नदियां समुद्रको जा मिलती हैं । भाइयोंको भी
आयुका पता नहीं है, (परन्तु) देवोंके मनमें जो है
भी अच्छी तरह जानता है ॥

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुर्चि घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
 नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ३
 आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जग्निरे यज्ञियासः ।
 विदन्मतो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ४
 संजानाना उप सीदन्नाभिञ्जु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
 रिरिक्कांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिपि रक्षमाणाः ५
 त्रिः सत यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
 तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोपाः पशूञ्च स्थातृञ्चरथं च पाहि ६
 विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुपक्कुरुधो जीवसे धाः ।
 अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाद् ७
 स्वाध्यो दिव आ सत यद्वा रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
 विदद्भ्यं सरमा दृळ्हमूर्ध्व येना नु कं मानुषी भोजते विद् ८

७४ हे अग्ने ! शुचयः शुचिं त्वां इत् तिस्रः शरदः घृतेन
 यत् सपर्यान् । सुजाताः तन्वः सूदयन्तः यज्ञियानि नामानि
 चिद् दधिरे ॥

७५ बृहतीः रोदसी आ वेविदानाः, यज्ञियासः रुद्रिया
 प्र जग्निरे । नेमधिता मतः परमे पदे तस्थिवांसं अग्निं चिकि-
 त्वान् विदत् ॥

७६ संजानानाः उप सीदन्, पत्नीवन्तः नमस्यं अभिञ्जु
 नमस्यन् । सख्युः निमिपि रक्षमाणाः सखा स्वाः तन्वः रिरि-
 क्कांसः कृण्वत ॥

७७ त्रिः सत गुह्यानि यत् पदा त्वे इत् निहिताः, यज्ञि-
 यासः अविदन् । तेभिः अमृतं रक्षन्ते । सजोपाः पशून् च
 स्थातृन् चरथं च पाहि ॥

७८ हे अग्ने ! वयुनानि विद्वाँ क्षितीनां जीवसे शुरुधः
 व्यानुपक् वि धाः । हविर्वाद् अध्वनः देवयानान् अन्तर्विद्वाँ
 अनन्द्रः दूतः अभवः ॥

७९ स्वाध्यः सत यद्वाः दिवः आ (प्रवहान्ति) । अतज्ञाः
 रायः दुरः वि अजानन् । गव्यं दृळ्हं ऊर्ध्वं सरमा विदन् ।
 येन नु मानुषी विद् कं भोजते ॥

७४ हे अग्ने ! पवित्र होकर (याजकों) तुम
 की तीन वर्षतक जब घृतसे पूजा की । तब तुम
 (याजकों)के (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) शरीर पवित्र
 उनको पवित्र नाम (यज्ञ) भी प्राप्त हुए ॥

७५ वडे छुलोक और भूलोकके अन्दर जो
 उन याजकोंको रुदके (अग्नि)के सामर्थ्यका लाभ
 रहनेवाला मानव परम पदमें ठहरनेवाले
 प्राप्त करनेमें (समर्थ हुआ) ॥

७६ (वे) जानकर तेरे समीप गये, पत्नीयों
 नीय (अग्नि) को बुझने देक कर नमन करते रहे ।
 निद्रा लगते ही जैसा दूसरा मित्र रक्षा करता है
 सुरक्षित हुए ये (याजक) मित्र अपने शरीरोंको (पवित्र
 करने लगे ॥

७७ जो तीन गुणा सात (अर्थात् इक्कीस) गुण
 रखे हैं, उनको यज्ञ करनेवालोंने जान लिया । उनसे
 सुरक्षा वे करते हैं । सबपर प्राप्ति करनेवाला तुम
 और स्थावर जंगम सबका रक्षण कर ॥

७८ हे अग्ने ! (सब मनुष्यों)के विचार और
 कर तुम मानवोंके दीर्घजीवनके लिये शुधाके कट
 देतुसे सतत यत्नवान् होते हो । तुम अन्नपटुंचाते हो,
 मागोंको जानते हो अतः तुम (उनका) निरालम दूत
 ७९ शुभकर्म (जहाँ होते हैं) ऐसी घाल नदियों
 बह रही हैं । गव्य जाननेवालोंने सर्पातके द्वार (जहाँ
 जान लाई है । गाँवोंको रक्षनेका मुहूर्त कीला घरमाने प्र
 जिससे मानवी प्रजा मुख्य भोजन करती है ॥

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिदमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवास्तु ।
 अग्निं युञ्जं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धदणो रयीणाम् १ ५
 वि पृक्षो अग्ने मधवानो अद्युर्वि सूर्यो ददतो विश्वमायुः ।
 सनेम वाजं समिधेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः २ ५
 ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूहीः पीपयन्त युमक्ताः ।
 परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सधुरद्रिम् ३ ५
 त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
 नक्ता च चक्रुः पसा विरूपे कृष्णं च वर्णमदणं च सं धुः । ४ ५
 यान् राये मर्तान्सुपूदो अग्ने ते स्याम मधवानो वयं च ।
 छायेव विश्वं भुवनं सिसङ्ख्यापप्रिधान् रोदसी अन्तरिक्षम् ५ ५
 अर्वाद्रिरग्ने अर्वातो नृभिर्नृन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
 ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूर्यः शतहिमा नो अद्युः १ २५

८५ हे अग्ने ! तं त्वा नरः ध्रुवास्तु क्षितिषु दमे नित्यं इदं
 आ सचन्त । अस्मिन् भूरि युञ्जं अग्निं नि दधुः । विश्वायुः
 रयीणां भरणः भव ॥

८६ हे अग्ने ! मधवानः पृक्षः वि अद्युः । सूर्यः ददतः
 विश्वं आयुः वि (अद्युः) । समिधेषु अर्यः वाजं सनेम ।
 देवेषु श्रवसे भागं दधानाः ॥

८७ वावशानाः स्मदूहीः युमक्ताः ऋतस्य हि धेनवः
 पीपयन्त । सिन्धवः सुमतिं भिक्षमाणाः अग्निं समया परा-
 वतः वि सधुः ॥

८८ हे अग्ने ! सुमतिं भिक्षमाणाः यज्ञियासः दिवि त्वे
 श्रवः दधिरे । विरूपे उपमा नक्ता च चक्रुः । कृष्णं च वर्णं
 मर्तनं च सं धुः ॥

८९ हे अग्ने ! यान् मर्तान् राये सुपूदः ते वयं च मधवानः
 स्याम । छायेव विश्वं (च) आपप्रिधान्, विश्वं भुवनं
 सिसङ्ख्यापप्रिधान् ॥

९० हे अग्ने ! त्वोताः अर्वाद्रिः अर्वातो, नृभिः नृन्, वीरैः
 वीरैर्नृन्, वीरैर्नृन् । ईशानासः रायो दद्यातामः सूर्यः नः
 शतहिमा वि अद्युः ।

८५ हे अग्ने ! उम युञ्जं (अग्निं) दोस्ती
 घरमें नित्य प्रदीत करके (तेरी) सेवा करते हैं ।
 मैं बहुतही तेजस्वी बन अपने किया है । (१)
 है, उनके वैभवोंका आश्रयदाता हो ॥

८६ हे अग्ने ! मधवान् (जो द्रव्य करनेके
 पर्वोत्त) अन्न मिले । ज्ञानी शताओंके पूर्व अन्न मिले
 जानेवाले (इन सब वीर) बल प्राप्त करें । देवोंके
 (अर्पण करनेके लिये) हम धारण करें ॥

८७ (सेवा करनेकी) इच्छा करनेवाली, इच्छा
 दुग्धाद्यवाली, तेजस्वी (देव) की नित्य करनेकी
 रखी गौवे (नवको) दूध पिलाती हैं । (तेरी) सुनने
 करनेवाली नदियों पर्वतके साथ साथ बड़ी दूरी पर

८८ हे अग्ने ! (तेरी) हमको इच्छा करनेकी
 (विभूतियों) ने पुलोदमें तेरे कारणही बन
 विभिन्न रूपवाली उषा और रात्रि निर्माण की ।
 रंग (उनमें) धारण किया ॥

८९ हे अग्ने ! जिन मानवोंको वैभवके लिये
 किया, वे हम सब मधवान् बन जायें । युद्ध
 (वे दो और) अन्तरिक्षको तुमने (प्रक्षयने)
 सब भुवनको, छायाके समान, साथ देते हो ।

९० हे अग्ने ! तेरे द्वारा मूर्धन्य (दूर दूर)
 (शुक्र) फेंकीयो, अपने मेधाओंमें (शुक्र) देना
 पाँचों (शुक्र) कोरेको पराप्त कर । तेरे
 दोहर इनके मित्रान् (वीर) को वयं (दो दो दो)

| | | |
|--|---|----|
| तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु । | | |
| अधि युष्मं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् | ४ | ८५ |
| वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्वयुर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः । | | |
| सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः | ५ | ८६ |
| ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूधीः पीपयन्त युभक्ताः । | | |
| परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सधुरद्रिम् | ६ | ८७ |
| त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः । | | |
| नक्ता च चक्रुरपसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः । | ७ | ८८ |
| यान् राये मर्तान्सुपूदो अग्ने ते श्याम मघवानो वयं च । | | |
| छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् | ८ | ८९ |
| अर्वद्विरग्ने अर्वतो नृभिर्नृन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः । | | |
| ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्वुः | ९ | ९० |

८५ हे अग्ने ! तं त्वा नरः ध्रुवासु क्षितिषु दमे नित्यं इद्धं
आ सचन्त । अस्मिन् भूरि युष्मं अधि नि दधुः । विश्वायुः
रयीणां धरुणः भव ॥

८६ हे अग्ने ! मघवानः पृक्षः वि अश्वयुः । सूरयः ददतः
विश्वं आयुः वि (अश्वयुः) । समिथेषु अर्यः वाजं सनेम ।
देवेषु श्रवसे भागं दधानाः ॥

८७ वावशानाः स्मदूधीः युभक्ताः ऋतस्य हि धेनवः
पीपयन्त । सिन्धवः सुमतिं भिक्षमाणाः अर्द्धिं समया परा-
वतः वि सधुः ॥

८८ हे अग्ने ! सुमतिं भिक्षमाणाः यज्ञियासः दिवि त्वे
श्रवः दधिरे । विरूपे उपसा नक्ता च चक्रुः । कृष्णं च वर्णं
अरुणं च सं धुः ॥

८९ हे अग्ने ! यान् मर्तान् राये सुपूदः ते वयं च मघवानः
श्याम । रोदसी अन्तरिक्षं (च) आप्रिवान्, विश्वं भुवनं
छाया इव, निमग्न ॥

९० हे अग्ने ! त्वोताः अर्वद्विः अर्वतः, नृभिः नृन्, वीरैः
वीरान् वनुयाम । पितृवित्तस्य रायः ईशानासः सूरयः नः
शतहिमाः वि अश्वयुः ॥

८५ हे अग्ने ! उस तुझ (अग्नि) को स्थानी
घरमें नित्य प्रदीप्त करके (तेरी) सेवा करते हैं । हम
में बहुतही तेजस्वी धन अर्पण किया है । (तू)
है, उनके वैभवाँका आश्रयदाता हो ॥

८६ हे अग्ने ! धनवान् (जो यज्ञ करनेवाले हैं,
पर्याप्त) अन्न मिले । ज्ञानी दाताओंको पूर्ण आयु मिले
जानेवाले (हम सब वीर) बल प्राप्त करें । देवोंको
(अर्पण करनेके लिये) हम धारण करें ॥

८७ (सेवा करनेकी) इच्छा करनेवाली, दुग्ध
दुग्धाशयवाली, तेजस्वी (देव) की भक्ति करनेवाली,
रखी गौंवे (सबको) दूध पिलाती हैं । (तेरी) शुभ पुष्टि
करनेवाली नदियों पर्वतके साथ साथ बड़ी दूरीसे बहती है ।

८८ हे अग्ने ! (तेरी) कृपाकी इच्छा करनेवाले
(विभूतियों) ने सुलोकमें तेरे कारणही यज्ञ प्राप्त
विभिन्न रूपवाली उषा और रात्रि निर्माण की । लाखों
रंग (उनमें) धारण किया ॥

८९ हे अग्ने ! जिन मानवोंको वैभवके लिये
किया, वे हम सब धनवान् अन्न प्रायः । सुपूद (तू)
(ये दो और) अन्तरिक्षको तुमने (प्रकाशसे) नित्य
सब भुवनको, छायाके समान, साथ देते हो ॥

९० हे अग्ने ! तेरे द्वारा सुरक्षित (दुष्ट दम)
(शत्रुके) घोटोंको, अपने नेताओंसे (शत्रुके) नेताओंके
वीरोंसे (शत्रुके) वीरोंको पराभूत करेगे । पितृकर्म
शेखर हमारे पिदान् (वीर) छौ वयं (की शक्ति आयु)

सोमं गावो धेनवो वाचशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
 सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ३५ १६
 एवा नः सोम परिपिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
 इन्द्रमा विश वृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ३६ १७
 आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदचमूपु ।
 सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ३७ १८
 स पुनान उप सुरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि प आवः ।
 प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८ १९
 स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढूँ अभि नो ज्योतिषाऽऽवीत् ।
 येना नः पूर्वं पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा आद्रिमुष्णन् ३९ १००
 अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
 वृषा पवित्रे अधि सानो अज्ये वृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ४० १०१

१६ धेनवः गावः सोमं वाचशानाः । विप्राः मतिभिः
 सोमं पृच्छमानाः । सुतः सोमः अज्यमानः पूयते । त्रिष्टुभः
 अर्काः सोमे सं नवन्ते ॥

१७ हे सोम ! परिपिच्यमानः पूयमानः (त्वं) नः एव
 स्वस्ति आ पवस्व । वृहता रवेण इन्द्रं आ विश, वाचं वर्धय,
 पुरन्धि जनय ॥

१८ जागृविः ऋता मतीनां विप्रः पुनानः सोमः चमूपु
 आ सदत् । मिथुनासः निकामाः रथिरासः सुहस्ताः अध्व-
 र्यवः यं सर्पन्ति ॥

१९ पुनानः सः धाता, सुरे न उप, उभे रोदसी आ
 अप्राः, सः वि आवः । प्रिया चित् यस्य प्रियसासः ऊती ।
 सः तु धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥

१०० वर्धिता वर्धनः पूयमानः मीढून् सः सोमः ज्यो-
 तिषा नः अभि आवीत् । येन पदज्ञाः स्वर्विदः नः पूर्वं पितरः
 गाः आद्रिं अभि उष्णन् ॥

१०१ समुद्रः राजा प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जन-
 यन् अक्रान् । वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अधि सानो अज्ये
 पवित्रे वृहत् ववृधे ॥

१६ दूध देनेवाली गौवें सोमकी इच्छा करती हुई
 हैं) । ज्ञानी लोग अपनी बुद्धियोंसे सोमका वर्णन
 निचोड़ा हुआ सोमरस प्रवाहित होकर सबको पवित्र
 त्रिष्टुप् छन्दके स्तोत्र सोमके (वर्णनमें) संगत होते हैं ।
 १७ हे सोम ! सिंचित हुआ छाना जानेवाला सोम
 हमारे लिये कल्याण लावेवाला हो । वडे स्वस्ति
 हो, स्तुतिको बड़ा, और बुद्धिको (उत्साहित) कर ॥
 १८ जागनेवाला, सत्यभक्त बुद्धियोंमें युक्त ज्ञानी,
 सोम पात्रोंमें भरा गया है । वी पुरुष, शुभ इच्छा
 त्वरासे जानेवाले उत्तम हाथवाले याजक जिस (वेद)
 जाते हैं ॥

१९ पवित्र होनेवाले उस धारक (सोम) ने, म-
 पास जाकर दोनों लोग भर दिये, और उभने (मो-
 किये । प्रिय वस्तु जिससे अधिक प्रिय प्रतीत हो-
 सोम सबकी) सुरक्षा करता है । वह, आगीगरसी (वे-
 समान) धन देता है ॥

१०० (सबका) संवर्धन करनेवाला, स्वर्ण धन
 वाला, पवित्र होता हुआ, रसका सिंचन करनेवाला
 अपने तेजसे हमारा सुरक्षा करता है । जिससे प्र-
 ज्ञानी हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंके लिये पवनधेने

१०१ जलसे पूर्ण हुआ राजा (सोम) प्रथम भुवन
 विविध धर्मकी प्रजा उत्पन्न करता हुआ आत्मनः
 बलवर्धक चूनेवाला तेजस्वी सोम उद्य स्वर्णमें ने-
 पवित्रपर बहुत बढते लगा ॥

| | | |
|---|----|-----|
| महत्तत्सोमो महिषश्चकाराणां यद्वर्भोऽवृणीत देवान् । | | |
| अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्यं ज्योतिरिन्दुः | ४१ | १०२ |
| मत्सि वायुमिष्ट्ये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः । | | |
| मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम | ४२ | १०३ |
| ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ताऽपामीवां वाधमानो मृधश्च । | | |
| अभिधीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः | ४३ | १०४ |
| मध्वः सुदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च । | | |
| स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्द्रो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् | ४४ | १०५ |

१०२ महिषः सोमः महत् तत् चकार । यत् अपां गर्भः
गन् अवृणीत । पवमानः ओजः इन्द्रे अदधात् । इन्दुः
ज्योतिः अजनयत् ॥

१०३ हे देव सोम ! त्वं वायुं इष्ट्ये राधसे च मत्सि । पूय-
नः मित्रावरुणौ मत्सि । मारुतं शर्धः मत्सि । देवान् मत्सि ।
द्यावापृथिवी मत्सि ॥

१०४ वृजिनस्य हन्ता, अपामीवां मृधः च अप वाधमानः
ऋजुः पवस्व । पयः गोनां पयसा अभिधीणन् अभि (गच्छ-
तः) । इन्द्रस्य (सखा) त्वं, वयं तव सखायः ॥

१०५ मध्वः सुदं वस्वः उत्सं पवस्व । नः वीरं च भगं
आ पवस्व । हे इन्द्रो । पवमानः इन्द्राय स्वदस्व । समु-
द्र नः रयिं च आ पवस्व ॥

१०२ बड़े शरीरवाला सोम बड़ा कर्म करने लगा । जो
जलोंके बीचमें रहकर देवोंको वरने लगा । पवित्र सोमने बलको
इन्द्रमें बढाया । सोमने सूर्यके अन्दर तेज प्रकट किया ॥

१०३ हे सोम ! तू वायुको इष्टसिद्धि और प्रसन्नताके लिये
आनंदित करता है । पवित्र होता हुआ तू मित्र तथा वरुणको
हृष्ट करता है । मरुतोंके संघको प्रसन्न करता है, देवोंको आनन्द-
युक्त करता है तथा बुलोक और पृथिवीको सन्तुष्ट करता है ॥

१०४ कुटिलताका नाश करता हुआ, रोगों और शत्रुओंका
निवारण करके, तू सरल छाना जा । (अपने) रसके साथ
गौओंके दूधको मिश्रित करता हुआ आगे (चलता है) । इन्द्रका
मित्र तू है, और हम तेरे मित्र हैं ॥

१०५ मधुर रसके परिपाकको, धनके हौज (की तरह),
पवित्र कर । हमें वीर और धन दे । हे सोम । पवित्र होता
हुआ इन्द्रके लिये स्वादु वन । समुद्रसे हमें धन मिले ॥

आश्रिका वर्णन

पराशर ऋषिके कुलमंत्र १०५ ऋग्वेदमें है । अन्य वेदोंमें
य ऋषिके इससे विभिन्न मन्त्र नहीं हैं । इन १०५ मंत्रोंमें
११ मन्त्र अग्नि-देवताके हैं और शेष ९४ मंत्र सोम देवताके
हैं । इसलिये प्रथम अग्नि-देवताके मंत्रोंका मनन करते हैं ।
पराशरके इस मंत्रसंग्रहरूप काव्यमें उपमा, रूपक, तुलना आदि
प्रयुक्त भरण है कि कई मंत्रोंमें तो प्रत्येकमें चार चार
उपमाएँ हैं और एकसे एक अधिक रोचक है । इतनी उपमाएँ
किसी अन्य ऋषिके काव्यमें नहीं हैं । देखिये इस अग्नि-काव्यका
कितना मन्त्र कितना गम्भीर है—

चोर और भगवान्

११ गुहामें छेपार करनेवाले, अजसो अपने पास रखनेवाले,
(इसमें रहनेके कारण) अपने पासके अजसो अपना गुजारा

करनेवाले, पशुको (चुराकर पहाड़की गुहामें रहनेवाले) चोर-
को उसाही बुद्धिमान पुरुष (गौओंके और चोरके) परनिन्दोको
देख देखकर उनके अनुसन्धानसे (उसे) डंडहर (उसे प्रान्त
करते हैं और वे) सब लोग उसे घेरकर (उसके) नारों और
उसके पास पासही बैठते हैं, ताकि वह न भाग सके ।
(मन्त्र १-२)

इस मन्त्रकी उन्नाका विचार होकर तरह तरहमें अनेक
लिये निम्नलिखित भाव ध्यानमें रखिये— “एक चोरने किसीको
गौसे चुरा ली और वह किसी पहाड़की गुहामें छेपकर बैठा है ।
किसी तो पता नहीं कि वह कौन है और कहा रहता है । नाराई इतने
दिन दृष्टिमें मिलनेपर चोरी होनेका आशय विचार होता है
और जो लोग परनिन्दोसे पता लगानेमें लगते हैं वे अनेक दिनों
हैं और चोरके तथा गौओंके मूलपर दिख ई देवताके परनिन्दोसे

पता निकालते निकालते उस पर्वतके पास पहुंचते हैं कि जहां वह चोर रहता है और गौवें भी वहीं होती हैं। वह उस गुहामें दिनभर छिपा रहता है और अपने पासके अन्नपरही गुजारा करता है। उसकी खोज करनेवालोंके साथ शूरवीर भी रहते हैं और वे बड़ी सावधानतासे उस पहाड़ीमें जाते हैं, उस चोरको पकड़ते हैं और उसको बीचमें रखकर, उसको इधर उधर भागने दौड़ने नहीं देते और उसके चारों ओर वे वीर बैठ जाते हैं। यह वर्णन इस मन्त्रमें है।

यहां चोरको ढूंढकर निकालनेका विषय है। यह चोरकी उपमा ' ईश्वरको ढूंढ ढूंढकर निकालनेके लिये ' यहां लिखी है। मुख्य विषय ईश्वरको ढूंढनेका है, गौण विषय अग्निको ढूंढनेका है और इसके लिये उपमा गौवें चुरानेवाले चोरकी दी है। यह उपमा ईश्वरकी निगूढ़ता, गुप्तता, छिपे रहनेका भाव अच्छी तरह बताती है। देखिये इसका ईश्वरपरक भाव—

ईश्वर-परक अर्थ

(हृदयकी) गुहामें रहनेवाले, (भक्तोंके) नमस्कारके साथ युक्त होनेवाले, (भक्तके) नमस्कारको स्वीकारनेवाले, (इन्द्रियरूप) पशुओंको (अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले) चोर (जैसे सर्वत्र गुप्त छिपकर रहनेवाले ईश्वर) को (ढूंढनेके लिये) जोशीले धीर वीर (भक्त वेदके) पदोंके अनुसंधानसे चलते हैं, (उसे प्राप्त करते हैं और उपासना करनेके लिये) ये सब भक्तिरूप यज्ञ करनेवाले साधक साथ साथ बैठते हैं, (साधक उपासना करते हैं) । (१-२)

यह अर्थ स्पष्ट है और अधिक विवेचनकी इसके लिये कोई आवश्यकता नहीं है। अब इसी मंत्रका अग्निविषयक भाव देखिये—

अग्निविषयक अर्थ

(अरणियोंमें) गुप्त रहनेवाले, (इन्धनरूप) अन्नके साथ संयुक्त होनेवाले, (आहुतिरूप) अन्नको (देवोंतक) पहुंचानेवाले (अग्नि-को), पशुके साथ रहनेवाले चोरकी तरह, प्रेमसे परस्पर प्रीतिसे सेवा करनेवाले बुद्धिमान लोग, (मन्त्रोंके) पदोंसे पता लगाते हैं (और उस अग्नि-को) प्राप्त भी करते हैं। (इस तरह अरणियोंमें गुप्त रहा अग्नि धर्मणसे प्रदीप्त होनेके पश्चात्) सब याज्ञक (उस अग्नि-के) समीप (चारों ओर) बैठते हैं (और यज्ञ करते हैं) । (१-२)

अरणिमें अग्नि छिपा है, लकड़ोंमें अग्नि रहता है। चोरका गुहामें छिपकर रहना है। अरणीही पर्वत है। अन्दर गुप्त अग्नि है। परमेश्वर भी ऐसीही इच्छा से सर्वत्र छिपा है। इन दोनोंकी खोज करनेवाले वेदके पदोंसे वे उसे प्राप्त करते हैं और अग्निसे यज्ञ करते हैं, अथवा सामुदायिक उपासना दोनोंका परिणाम जनताकी भलाईही है।

पाठक विचार करें और देखें कि इस मंत्रमें कितने रीतिसे ज्ञान दिया है। ईश्वरके लिये ' चोर ' बहुत बहुत सन्तोंके काव्योंमें भी है। अब दूसरा मंत्र

भूमिपर स्वर्गधाम

२ ' देवोंने सत्यपालनके व्रतोंकी पालना की, वही जिससे भूमि स्वर्गके समान रमणीय बन गई । ' (देवाः ऋतस्य व्रतानि अनु गुः, (महती) भुवत्, भूमिः द्यौः न (भुवत् ॥ मं. ३) इस भागका है। इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन करनेका वैदिक धर्म कर रहा है। इसके लिये ' (१) सत्य पालन, और (२) बड़ी खोज ' ये दो बातें चाहिये। क्षेत्र संपूर्ण मानवजीवनभर है। सत्यमार्गको करनी चाहिये। खोज करना और जो सत्य मिले पालन करना, इसीसे भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन सकता है। यह मंत्रभाग विशेष महत्त्वका है, इसमें अधिक विचार होनेकी आवश्यकता है—

' ऋतं ' का अर्थ= योग्य, ठीक, सत्य, खरा, पुण्य, न्य, तेजस्वी, प्रकाशमय, उदयको प्राप्त, यज्ञ, धर्म, विधिनियम, निश्चित किये नियम, धर्मनियम, पावन पावन कर्म, दिव्य नियम, दिव्य सत्य, मुक्ति, जीवन, सत्य भाषण, परमात्मा।

व्रतं= धर्मनियम, निश्चय, संकल्प, विश्वास, पदार्थ, यज्ञ, आचार, योजना।

परिष्टिः= चारों ओर ढूंढना, खोज करना, इच्छा लना। घातपात, हिंसा।

बड़ा परिश्रम करके सत्यकी खोज करना, तब तक लगे, तब उसका पालन करना और सत्यकी ही मार्ग यह व्रत है और इसके पालनमेंही इस भूमिपर स्वर्ग

ही सकती है, जो धर्मका माध्य है। सत्यके साथ अस्त्य, त्रिगुण, अपरिग्रह (अपने पास भोगसाधनों-अत्यधिक प्रमाणमें न करना), शुद्धता, संतोष, तोषादि द्वन्द्व सहनेकी शक्ति), स्वाध्याय (ज्ञानकी ईश्वरभाक्ति आदि गुणोंका भी संबंध है। अर्थात् इन पालना करना आवश्यकही है। सत्यकी पालना होने क्रमशः इन सबकी पालना स्वयं हो जाती है। इसलिये महिमा विशेष है।

य और ऋत ये एकही जीवनके दो भाग है। इनमें एक है और दूसरी सरलता है। सत्य और सरल मिलकर सत्य होता है। यहाँ जिस सत्यकी पालनाका व्रत कहा है, 'ऋत और सत्य' मिलकर है। सचाई भी हो, ठीक हो, सरल भी हो, कुटिलता न हो, इस तरहके सत्यकी भाव यहाँ है। केवल सत्य है, पर ठीक नहीं है, तो छोड़ देना चाहिये। यहाँ 'ऋत' पद है, जो इन सबके साथ प्रयुक्त हुआ है। केवल सत्यसे ऋत कई गुणा है, यह परमात्माका निज स्वरूप है। पाठक इधका कर करें।

भूमीपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेकी इच्छा है, तो सत्यका अनिवार्य है, यह यहाँ बताया है।

२ ऋतस्य गर्भे योना सुजातं, पन्वा सुशिखि
आपः वर्धयन्ति (मं. ४)— सत्यके मध्यमें उत्तम प्रारंभ प्रकट हुए, बढनेवाले, वर्णनके योग्य इसको कर्म बढाते हैं। यहाँ भी अग्नि, सोम, जीव तथा आत्माके वर्णन साथ है। 'अग्नि' = यज्ञनिष्पादक अरणीके मध्यसे उत्तम उत्पन्न हुए, (वेदमंत्रोंकी) स्तुतिके साथ उत्तम बालक-समान इस (अग्नि) को (यज्ञविषयक प्रशस्त) कर्म करते हैं। अरुणसे उत्पन्न हुए अग्निको प्रदीप्त करके हवना-निके रूपमें बड़ा देते हैं। 'सोम' सोमवर्णसे उत्पन्न, रसकी जल बड़ा देते हैं। सोमरसमें जल मिला है। 'जीव' = गार्हपत्यरूप यज्ञमें उत्पन्न, उत्तम रूपमें रहे (जीव) को जल आदि पदार्थ बढाते हैं, संवर्धन करते हैं, दुग्धादि देकर परिपुष्ट करते हैं। 'आत्मा' परमात्मा = विश्वके बीचमें प्रकट हुए आत्मानो (वेदमंत्रोंकी) स्तुतिके वर्णन करते हुए, अनेक शुभकर्मोंके द्वारा बढाते हैं ॥ इस भूमिपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेके लिये

इस महत्त्वका प्रकृतिके बीचमें जो आत्मा है, वह उत्तम रीतिसे प्रकट होकर, हरएकके अन्तःकरणमें सूर्यके समान स्पष्ट-रूपमें दिखाई देना चाहिये। इसीका वर्णन (वैदिक सूक्तोंमें) सर्वत्र हो रहा है और सब कर्म इसीकी वधाईके लिये अर्पण होने चाहिये।

३ क ईं वरते ? (मं. ६) = इसे कौन रोक सकता है ? इसे कौन प्रतिबंधमें रख सकता है ? इस मंत्रभागमें 'वृ' धातुका प्रयोग है। 'वृ' धातुका अर्थ ऐसा है— 'स्वीकार करना, पसंद करना, मांगना, याचना करना, वापना, आच्छादित करना, घेरना, चारों ओरसे घेरना, दूर रखना, प्रतिबंध करना, प्रेम करना, भूषित करना।' चारों ओरसे घेरने, प्रतिबंधमें रखनेका भाव यहाँ है। इस (प्रभु) को कौन प्रतिबंधमें रख सकता है ?

४ यह प्रभु कैसा है ? (पुष्टिः न रणवा। मं. ५) = पुष्टि जैसी रमणीय होती है, वैसाही यह पोषक भी है और रमणीय भी है। (क्षतिः न पृथ्वी) = भूमि जैसी विस्तृत है वैसाही यह बड़ा विस्तीर्ण है। (गिरिः न भुज्जम्) = पर्वत जैसा भोजन देता है वैसाही यह सबको भोजन देता है। (क्षोदः न शंभु) = जलके समान यह कल्याणकारी, जीवनदाता अथवा दितकर्ता है। (अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः) = उत्तम दौड़नेवाला घोड़ा जैसा ऊपर बैठनेवाले बीरसे प्रेरित होकर दौड़ता हुआ चला जाता है, बीचमें ठहरता नहीं, वैसाही यह प्रभु भक्तिके शब्दोंसे प्रेरित होकर भक्तके पास सहायतार्थ जाता है, बीचमें रुकना नहीं। (सिन्धुः न क्षोदः) = नदीमें जलप्रवाह भरनेमें जमीन नदी दोनो ओरकी भूमिको काटती हुई आगे बढ़ती है, उगी तरह यह प्रभु विरोधको हटाता है और भक्तकी मद्भाग्यता के पास पहुँचता है। इसी तरह अग्निके विषयमें भी पाठक मननपूर्वक भाव समझें।

पुष्टि रमणीयता बढाती है इसलिये प्रार्थना करनेकी चाह है। पृथ्वी मनुष्यका कार्यक्षेत्र है वह मनुष्यके लिये दिन पलितन विस्तृत होता रहना चाहिये। पर्वतसे भोजन मिलना है यह हम मंत्रका तीसरा विधान है। पर्वतसे अनेक इस वस्तुतः तथा औषधियाँ होती हैं, जो अत्यधिक सस्तेमें मिलती हैं, पर्वतसे यह लेते हैं और पर्वत मेंसे ही अन्नदिन करते हैं, मिश्रित करके होकर अन्नको उत्पन्न करते हैं, इस रीतिसे पर्वतसे अन्न होता

जारः [प्रियकरः भवतु] इति)— कन्याओंकी ऐसी हार्दिक इच्छा होती है कि ऐसाही वीर हमारा प्रियकर बने। 'जार' का अर्थ = प्रियकर, प्रीति करनेवाला है। अग्निका भी यही वर्णन है, अग्निको भी यही नाम है। अस्तु, इस कारण इस मंत्रके सच्चे भावमें वस्तुतः कोई बुराई नहीं है।

'यमः जातं, यमः जन्तित्वं'— बना हुआ और बनने-वाला संपूर्ण विश्व यह यम (अग्नि) ही है। यही अग्नि विश्वके सब पदार्थोंका रूप लिये है। ऐसाही आत्मा और परमात्मा है। यह सदैव्यका सिद्धांत यहां कहा है। 'यम' का अर्थ— नियामक, नियंत्रणकर्ता, स्वयंशासक। जो नियामक है वह ऐसा प्रभुत्व करनेवाला हो।

१९. अस्तं गावः न तं चराय, वसत्या वयं इक्षं नक्षन्ते— घरके पास जैसी (शामके समय) गाँवें (बापस आती हैं और विश्राम करती हैं) वैसे हम सब (दे प्रभो !) तुम्हारे पास चलकर आते हैं, तुम्हें प्राप्त करते हैं (और तुम्हारे में विश्राम पाते हैं)। हमारी वस्तीके अन्दर रहनेवाले हम सब लोग तुझे प्रदीप्त करके तुम्हारीही सेवा करते हैं। हम सब यज्ञ करते हैं और तुझ विश्वरूपकी सेवा करते हैं।

२०. सिन्धुः न शोदः नीचीः प्र ऐनोत्, स्वर्हशे गावः नवन्ते।— नदीके जलप्रवाह जैसे एकही नीचेकी दिशासे बगसे जाते हैं, (वैसाही सब विश्व प्रभुको प्राप्ति करनेकी दिशासे बगसे दौड़ रहा है।) जैसे प्रकाशित हुए दर्शनीय (अग्निके पास) गाँवें प्राप्त होती हैं। यज्ञकी संपूर्णता करनेके लिये अग्निके पास जैसी गाँवें पहुँचती हैं, वैसेही हम सब प्रभुके यज्ञमें संमिलित होते हैं। उनका प्रतीकही यह यज्ञाग्नि है। जैसे लोग यज्ञमें संमिलित होते हैं, वैसेही प्रभुके विश्व पक्ष यज्ञके अंग बनकर सब मनुष्य विश्वयज्ञमें संमिलित हों। यहां द्वितीय सूक्त समाप्त होता है। यहांका प्रत्येक मंत्र की टिप्पणीमें दर्शाया है। अधिक मनन करके पाठक समझें और इसकी गंभीरताका अनुभव करें। ये सब बातें संक्षिप्त और सूत्र जैसे हैं। पूर्वोपर संबंधमेंही लगाना चाहिये।

नैपु जायुः = वनोंकी वनस्पतियोंका जैसा वैद्य होता है, **मर्तेषु मित्रः** = मानवोंमें जैसा मित्र भव-ही होता है, **अजुयं राजा इव** = जगत्प्रदित

तत्त्व वीरको जैसा राजा अपने पास रखता है, **वृणीति** = विजयी मद्दायकताको स्वीकार करके विजयी मद्दायकको अपने पास रखना उचित जानकर सुयोग्य औपाधियों और वनस्पतियोंको मद्दायकतासे लाना है और उनकी मद्दायकतासे ही मानव जैसे मित्रोंका प्राप्त करते हैं और शत्रुओंको राजा जैसा तत्त्व वीरोंको अपने पास रखता है मद्दायकतासे शत्रुको दूर करता है, उभी तरह वीरकी मद्दायकता प्राप्त करके निरुपद्रव तथा ताले अधम मानवोंको दूर करता है। यह तै अत्यंत आवश्यक है। **जायुः** = वैद्य, विजयी वीर। सुननेवाला, मद्दायक, मददगार, वर, वैभव, वर-सुख ॥

२२ साधुः क्षेमः न, भद्रः क्रतुः न, होमा वाद स्वाधीः भुवत्। = साधु जैसा कल्याण कर्तृत्वशक्तिके जैसा वैभव मिलकर सुख मिलता है, जैसा सबका भला होता है, वैसाही वह होता है पहुँचानेवाला अग्रणी (अग्नि) वाराणशक्तिसे सबको सुखी करता है। साधुता अपने अन्दर चाहिये और क्रतु भी करना चाहिये। इन दोनोंमें ही ताका क्षेम और भद्र करनाही है। (हेता) (दृव्यवाद्) दृव्यप्यात्र पहुँचानेवाला वे दो पावनार्थ देना और अत्र पहुँचाना, इनके साथ साथ (सु-आ-धीः) होना है, यह अनुष्ठान है। (सु-आ) पूर्णतया (धी) ध्यान करना यह अनुष्ठान है। धातुका अर्थ = रखना, स्थापन करना, एकदिशमें लगाने कार्यमें लगना, अपने आपको लगाना, आधार देना, उत्साहित करना, देना, नियुक्त करना, पवित्र करना, पालनमें लग जाना। 'इष धातुसे 'आ-धी' पद और 'सु' लगकर 'स्वाधीः' पद सिद्ध होता है।

(आधीयते स्थाप्यते प्रतिकाशय मनः मनेन इति आधिः, सु सुपु आधिः स्वाधिः) प्रतिकार करनेके लिये मन आदिका एक स्थानपर लगाना आधि है। यहां प्रतिकार शत्रुका है, शरीर, मन, बुद्धि, समाज, धर्म, राष्ट्र आदि क्षेत्रोंमें अनेक प्रकारके शत्रु उनका प्रतिहार करके वहां अपनी स्थापना प्राप्त करे।

क्षेम और भद्र सुस्थिर रखनेका सब कार्यक्रम यहाँ बताने बताया है। 'आधि' का अर्थ 'धर्म-चिन्तन, चिन्तन, उन्नतिकी आशा' आदि है, तथा मानसिक व्यापार भाव इसमें है।

३. विद्वानि नृमणा हस्ते दधानः, गुहा निपीदन् देवान् धान्। = सब पौरुषसे प्राप्त होनेवाले धन हाथमें रखकर, स्वयं गुप्त स्थानमें रहकर, इसने सब को बलमें धारण किया, बलिष्ठ किया है। इसमें दो पद महत्त्वके हैं, उनके अर्थ ये हैं— 'नृमण' = सुख, होना, मानवता, बल, शक्ति, धैर्य, धन, (नृ-मनः) देवोंका मानसिक सान्न्ध्य, बौद्धिक बल, धैर्य, शौर्य, वीर्य। 'अजः' = अपक्व फल, गति, बल, शक्ति, भय, रोग, सेवक, म, अत्मशक्ति, अनाप स्थिति।

इस मंत्रमें तीन विधान हैं (१) सब बलोंको अपने आधीन करना है, (२) स्वयं गुहामें बैठता है, गुप्त रहता है, और (३) दिव्य विधियोंको बलमें स्थापन करता है, उनका बल बढ़ाता है। प्रथम सब बलोंको, मानसिक शक्तियोंका अपने हाथमें लेना, अपने आधीन करना चाहिये। सब इन्द्रियादिकोंपर अपना प्रभुत्व रखना चाहिये। जो शक्ति अपने आधीन नहीं होती वह अपना लाभ करेगी या नहीं इस विषयमें कौन निश्चय कर सकता है! इसीलिये सब शक्तियाँ अपने आधीन करना शिरो और मुख्य बात है। इसके पश्चात् देवोंको बलमें धारण करना है, उनके शक्तिके साथ कर देना है। व्यक्तिमें इन्द्रिय-समय देव हैं, सनाजमें दिव्य ज्ञानी देव हैं और विश्वमें अग्नि और देव हैं। ये देव सान्न्ध्यसंभव रहने चाहिये और अपने धर्ममें भी रहने चाहिये। क्योंकि सब कार्य इन देवोंके द्वारा ही होते हैं। इनकी प्रतिकूलतासे कोई कर्म यथायोग्य नहीं होगा। इसलिये इनको अपने आधीन रखकर, उनके बलान् भी बनाना चाहिये, तत्पश्चात् इनसे कार्य करना है। पर यह सब अपने आपको अर्थात् गुप्त रखकर ही करना चाहिये। कौन कइसे कार्य करवाता है, इसका पता न लगे। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं, एक तो कर्त्तव्य निरतिभाव और अविद्विष्ये आलस्यार्जन होना और दूसरा शत्रुसे सुरक्षित रहना।

इसमें उन्नतिकी स्थापना के लिये ये उद्देश्य बतौली मननीय हैं।

२४ धियंघाः नरः अत्र ई विदन्ति, हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्— बुद्धिहीन धारणा करनेवाले ज्ञानी नेतागण यहाँ इस अग्रणीको प्राप्त करते हैं और हृदयसे बनाये विचारोंको उससे कहते हैं, उसको अपने हृदयके विचार सुनाते हैं। यहाँ स्पष्ट पतीत होता है कि 'बुद्धिमान् नेता सभामें परस्परके साथ मिलें, अपने अपने मनसे या हृदयसे निर्धारित किये विचार मनन पूर्वक बोलें, और एक-मतसे जो सिद्ध हो जाय उसका ग्रहण करें। यज्ञमें यही होता है, प्रथम अग्नि (अग्रणी) यज्ञस्थानमें स्थापन किया जाता है, पश्चात् मननशील कृत्विज उमकी घेर कर बैठते हैं और अपने हृदयके मंत्र वारंवार गाते हैं। सभामें यही हो, प्रथम सभापति निश्चित हो, सब सदस्य उसके पास बैठें, पश्चात् अपने हृदयसे निर्धारित किए सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार कहें और इस तरह सभाका कार्य चले। (हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्) हृदयसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार निर्धारित करके कहनेकी बात अत्यंत मुख्य है। बारीक बारीक बातोंका विचार करनेका भाव यहाँ स्पष्ट है और वही मानवी उन्नतिकी मार्ग बताता है।

२५ अजः न क्षां पृथिवीं दाधार, द्यां सत्यैः मन्त्रैः तस्तम्भ— अज (आत्मा अथवा सूर्य) ने इस विस्तृत भूमिका धारण किया है और सत्य अटल नियमोंसे प्रकाशलोकको भी सुस्थिर किया है। यहाँ 'अजः' पद मुख्य है इसका अर्थ— '(अ-जः) अजन्मा, (अजति इति अजः) गतिमान, पगति करनेवाला, हलचल करनेवाला। अज = संचालक, चलनेवाला, नेता, अग्रणी, सूर्यकिरण, क्षिरण। नेता मानुषाभिधा धारण करता है, अग्रणी राष्ट्रीय संचालन सुयोग्य रीतिमें करता है, सत्य मन्त्र अर्थात् सत्यकी सुरक्षा करनेवाले मुनियारोने, मानवीय विचारोंसे प्रकाशमय स्थानको सुरक्षा करता है। 'द्यु' का अर्थ है— 'दिन, जाकरा, प्रकाश, तेजस्वी, गेजोमन स्थान, स्वर्ग, तीक्ष्णता, अग्नि।'

२६ विद्वायुः (त्यं) पश्यः प्रिया पशति नि पादि, गुहा गुहं वाः— दीर्घ आहुति सुख होकर १५ गुहं नि स्थानोंकी सुरक्षा कर और स्वयं गुहा स्थानमें भी जाकर गुहं स्थानमें जा कर रहें।

पशुओंके जो पितृदेवता हैं वे ईश्वरकी सुरक्षा करने के लिये अज घात उत्पन्न होता है, अजका अर्थ है अजाना, अज्ञात होता है, अतः अजको घात करने से अज्ञान नष्ट होता है। अतः अजको घात करने से अज्ञान नष्ट होता है।

चाहिये । पशुओंकी सुरक्षा राष्ट्रीय उन्नति करनेवाली है । इस-
लिये इसका अवश्य विचार राष्ट्रप्रबंधमें होना चाहिये ।

२७ य ईं गुहा भेंवन्तं चिकेत, यः क्रतस्य धारां
आ ससाद ।— जो गुप्त स्थानमें सर्वत्र व्यापक होकर
रहनेवाले इस (अग्नि या आत्मा) को जानता है, वह सत्यकी
धाराको, यज्ञके मार्गको प्राप्त करता है । यह यज्ञ मनुष्योंकी
उन्नति करनेवाला है ।

२८ ये क्रता सपन्तः विवृतन्ति, अस्मै वसूनि प्र
ववाच— जो सत्यके साथ सत्यकी प्रशंसा करते हुए संगठन
करते हैं, उनके लिये धनोंकी प्राप्तिके मार्गका वर्णन कर । उनको
दी धन मिले कि जो सत्यका पालन करते हैं और सत्यके आश्र-
यसे सुसंगठित होते हैं ।

२९ यः वीरसु महित्वा विरोधत्, उत प्रजाः
प्रसुपु अन्तः (विरोधत्)— जो अग्नि औषधियों, वृक्षों, लक-
ड़ियोंमें अपनी महिमासे रहता है, और माताओंमें संतान जैसा
लकड़ियोंमें रहता है । मातारूप अरणियोंसे उत्पन्न होता है ।
अग्नि वृक्षोंमें रहता है और उनसे प्रकट होता है । अग्नि लक-
ड़ियोंमें रहता है, उनसे उत्पन्न होता है, लकड़ी इसकी माता
है और अग्नि उसका पुत्र है, पर यह पुत्र अपनी माताका और
माताके कुलहारी (विरोधत्) विरोध करता है, लकड़ियोंसे
उत्पन्न होकर उन्दीका नाश करता है । यह विरोध यहां है,
यह एक अलंकार यहां है ।

३० चित्तिः, अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः
समाय, सप्त इव चक्रुः— जो ज्ञान स्वरूप है, जो जल-
प्रपातोंके स्थानोंमें संपूर्ण आयु व्यतीत करता है, अर्थात् जो
परीके किनारोंपर सदा यज्ञ करता है, अथवा यज्ञ करवाता
है, उसका ज्ञानी या बुद्धिमान् पुरुष अच्छी तरह संमान करते
हैं, और उसको अपने घरके समान अपना आश्रय मानते हैं ।
ज्ञानी मरुद्धमें कर्ता पुरुषही अन्तर्गत लिये आश्रयस्थानसा
प्रदान होता है ।

यहां तृतीय सूक्त समाप्त हुआ है ।

३१ मुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः
चरयं अकून् वि ऊर्णात् । = सबका भरणपोषण करने-
वाला और सबकी योग्यता बढ़ानेवाला (अग्निदेव प्रदीप्त
होकर) पुलोदत्त (अपने प्रकाशसे) फैल गया, यह स्थावर
पदार्थोंको और किन्नरोंको व्यक्त या प्रकट करता है । अग्नि

प्रदीप्त होकर वह बड़ा दावानलका रूप धारण करता
अब पकाकर सबका भरणपोषण करता है, यह
आकाशमें प्रकाशता है, अग्निरूपसे भूमिपर प्रकट
जिसके प्रकाशसे स्थावर तथा जंगम सभी पदार्थ
व्यक्त रूपसे दिखाई देते हैं । सूर्य जब ऊगने लगता
रात्रिको भी वह प्रकाशित करता है । यही उ-
ल्लासता है । ' अकून् ' = रात्री, अन्धकार, प्रकाश,
किरण, सुगंधित लेप । यह एकही अग्नि-
रूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युद्रूपसे और सुलोहमें सूर्यरूपसे
प्रकाशता है । यह एकही तीन रूपोंमें दिखाई देता है ।

३२ विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा
भुवत् = सब देवोंमें एकही अपनी महिमासे
है । सब देवोंमें एकही देव सबका प्रभु है, मुक्ति-
दाता है, सबका नियामक है, जो सब विश्वपर शासन करता है ।

३३ जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः विश्वे ते
जुषन्त । = जीव शुष्कसे जन्मा है, तब सजोने लगे
की प्रशंसा की । जीव सचेतन है, वह शुष्क प्रकृतिसे
होता है । प्रकृति अचेतन है, पर जब वह चेतनसे
संयुक्त होती है, तब जीव प्रकट होता है । यहाँ
अग्नि और काष्ठका है । अग्नि जलता है, काष्ठ शुष्क
स्वयं प्रदीप्त नहीं है, पर जब उसको अग्निसे संपर्क
तब वह अग्निसे समान प्रदीप्त होता है । जीव और
वर्णन यहां समानतया किया है । प्रकृति और शुष्क
क्रमशः उनका कार्यक्षेत्र है । इस तरह प्रकट हुए सभी
यज्ञकी सेवा करते हैं । अग्निपक्षमें द्यवागिधि दोनों
करते हैं और जीवपक्षमें जीवनरूप अन्तर्गते मरणपक्षमें
दीर्घ सनका अनुष्ठान करते हैं । जीवकी यत्नमय सेवा

३४ एवैः अमृतं सपन्तः विश्वे नाम
भजन्त = अपने प्रयत्नोंसे अमरत्वकी प्राप्ति करनेवाले
साधक यश, सत्य और देवत्वको प्राप्त करते हैं ।
(यन्ति इति) = प्रगति, प्रगतिका अनुष्ठान ।
नेसे ही मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है । जिसके
नाम होता है, सत्य और सरलता ये उसके मुख्य गुण हैं ।
जिसका परिणामस्वरूप वह देवत्व प्राप्त करता है ।
अमरत्वकी प्राप्तिके लिये अनुष्ठान किया है और
पालन करता है वह देवत्व प्राप्त करता है ।

पोषण दानसे करनेवाला ज्ञानी दिव्य प्रकाशमान होनेके लिये आत्माका उपस्थान करता है, उपासना करता है। वह आत्मा (स्थातुः चरथं अक्त्तुं वि ऊर्णोत् । ३१)— स्थावर जंगम अनंत वस्तुओंको प्रकाशित करता है और अज्ञान अन्ध-कारको दूर करता है। इस प्रकाशमें आकर (ऋतस्य प्रेपाः, ऋतस्य धीतिः, विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः ३५)— सत्यकी प्रेरणा और सत्यकी धारणा करते हुए संपूर्ण आयुभर सब ज्ञानी साधक प्रशस्ततम कर्म करते हैं। (विश्वे ऋतं देवत्वं भजन्त । ३४) ये सब सत्यकी और देवत्वकी प्राप्ति करते हैं। (अस्य शासं तुरासः श्रोपन् ते क्तुं जुपन्त । ३९)— इस प्रभुके शासनको सत्वर सुनकर वे जीवन भरमें यज्ञही करते रहते हैं। (पुरुक्षुः रायः दुरः वि और्णोत् । ४०)— जिसके पास बहुत अन्न है ऐसा दानी मनुष्य मानो धनके द्वारही सबके लिये खुला करता है, (दमूना नाकं पिपेश)— वह ईदियदमन करनेवाला साधक अपने संयमसे स्वर्गभामकी शोभा बढाता है। इतनी इसकी योग्यता मानी जानी है।

ऐसे साधक (तनूपु मिथः रेतः इच्छन् । ३८)— अपने शरीरमें रेतके संवर्धनकी इच्छा करते हुए वे (अमूराः रेतः दक्षैः सं जानत) — ज्ञानीजन अपने बलोंसे संगती-करणसामग्री जानते हैं, और पश्चात् (पितुः पुत्राः) पितासे पुत्र उत्पन्न करते हैं और उसके अपना अधिकार पिता देता है।

इस दंगसे उक्त मनुष्य सूक्ष्मके मंत्रोंकी संगति देखनेयोग्य है। पाठक इस दंगसे सूक्ष्मके मंत्रोंकी संगति लगाकर बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य सूक्ष्मका विवरण समाप्त।

४२ उपः जारः न, शुक्रः शुक्रकान्, समीची दिवः न, ज्योतिः पश्चा । = उपाका प्रियर्पाति जैसा (सूर्य चारों ओर अपना प्रकाश विद्यमानमें फैलाता है, वैसाही) बलवान् तेजस्वी यह (अग्निदेव) दोनों युद्धोक्त और भूयोक्तमें अपनी ज्योति फैलाता है। सूर्य और अग्निके समान मनुष्योंको उन्नित है कि वे नौ स्वयं तेजस्विता प्राप्त करके विद्यमानमें अपना तेज फैला दें।

४३ प्रजानः कत्वा परि वभूथ = उत्पन्न होतेही प्रज-स्वतन्त्र कर्म करते वनपर प्रभाव डालता है। सबमें श्रेष्ठ बनता

है, सर्वोपरि स्थानपर विराजता है। हरएक नके उत्तमोत्तम कर्म करके श्रेष्ठ बने। देवता पिता भुवः = देवोंका पुत्र होता हुआ भी सद्गुरु आदरणीय होता है। अरणीमें निरुद्ध कर विश्वमें संमानयोग्य हो जाता है। मनुष्य हुआ भी विद्या, वीर्य और तेजसे सबसे बड़का एक मनुष्य विद्या, वीर्य आदिकी प्राप्ति करके यत्न करे।

४३ वेधाः अहतः विजानन् अग्निः पितृनां स्वादा । = कर्ममें कुशल, गर्वहीन, गौबोंके दुग्धाशयके दूधको जैसा स्वाद बनाता है, को भी स्वाद बनाता है। इसी तरह मनुष्य शक्तिसे युक्त होवे, घमंड न करे, ज्ञानी बने, नौकी तथा मधुर अन्नोंका स्वाद लेवे। 'वेधा' = न नयी नयी चीजें बनाता है। कुशल कर्म करनेवाला यदि गर्वहीन और विज्ञानसंपन्न हुआ तो बड़ानीय होता है। गौके गर्भाशयसे दूध निकलतेही दूधका सेवन करना योग्य है। इसी तरह स्वाद करना योग्य है। ये दो सूचनाएँ यहां मननीय हैं।

४४ जने न शेवः = जनोंमें सेवा करनेयोग्य पार्थी ज्ञानी और नया विधान करनेमें समर्थ होता है विशेष सुखदायी वस्तुओंका कर्ता होता है, नदी सेवा होता है। (मध्ये आहुर्यः) = कठिन समय जो सहाय्यार्थ बुलाया जाता है वही जनोंमें आश्रय होता है। (दुरोणे रणवः निपत्तः) = अपने शत्रु होकर जो रहता है। (अपने घरमें, नगरमें, अथवा अपने राष्ट्रमें जो रमणीय ममशा जाता है। हित करनेके कारण जो जनतामें सेवा करनेयोग्य नौय है। मनुष्य ऐसा बने।

४५ जातः पुत्रः न दुरोणे रणवः = समान घरमें सबके लिये रमणीय प्रतीत होता है। उसके निपथमें आदरका साथ उत्पन्न होवे।

(वाजी न प्रीतः विशः वि तारीत्) = बलवान् वीरके समान यह प्रजाजनको तारन करने ताकी सुरक्षा करता है। इसी तरह जनताको सुरक्षार्थ हरएक मनुष्यको करना उचित है।

नृभिः सनीळाः विशाः यत् अग्ने, अग्निः

नि देवत्वा अस्याः । = नेताओंके द्वारा एक घरमें
के प्रजाजनोंकी सुरक्षा करनेके निमित्त, जिस वीरको
जता है, वह अपना (अग्नि) देव सब प्रकारके
प्रेम प्राप्त करता है। एक घरमें रहनेवाले प्रजाजन
स्वकीही समस्त चाहिये। इसी सुरक्षा करनी चाहिये।
यदि जिसको सहायतासे होता है वह निःसंदेह सब दैवों
। धारण करता है, अपना ऊर्ध्व सब दिव्य भाव रहते हैं।
को सुरक्षा करनेके लिये जो अपने आपका समर्पण करता
देवत्वका अधिकारी निःसंदेह है। अग्नि जैसा जनताको
। देवके लिये संपूर्णतया अत्मसमर्पण करता है, वैसाही
होकर करना उचित है।

३३ ते एता व्रता नकिः भिनन्ति, यत् एभ्यः
धुष्टि चकर्थ । = तुम्हारे इन नियमोंका कोई उलं-
घन नहीं सकता, जो कर्पे इन मानवोंकी उन्नतिके लिये
हिये। मानवोंकी उन्नतिके कार्य ऐसे करने चाहिये कि
के अन्दर कोई भी विस्र न कर सके।

४८ यत् अहन्, ते दंतः; समनैः नृभिः युक्तः
ते, यत् विवेः । = जो तुमने शत्रुका वध किया, वह
हो बड़ा भारी पराक्रमही है। इसी तरह तुमने साधारण
बोके द्वाराही (बड़े विघ्नकारी शत्रुओंका नाश करनेके)
लिये और उनकी भगाया (यह भी तुम्हारा बड़ाही पौरव्य
। कौनोंके उचित है कि वे ऐसे पराक्रम करें।

४९ उपः न जारः, विभावा उन्नः संज्ञातरूपः
सं विकेतत् । उसके प्रियकर सूर्यके समान, यह विशेष
एक सबको जाननेवाला (अग्नि) इन (भक्तों) जाने।
। अग्नि अग्नि प्रिय माने। इसपर रुपा करे। सूर्य जैसा अपने
। अपने सब विश्वको प्रकाशित करके दयावत् जानता है,
। इसी स्वयंप्रकाश अग्नि जाने। और वैसाही राष्ट्रमें अपना
। राष्ट्रके उत्कर्षको जाने।

५० लना वहन्तः, दुरः वि ऋषवन्, दृशीके स्वः
बेधे वहन्त । = अपने (प्रकाशको) फैलते हुए, (उल-
। के) सब द्वार खोलकर, दर्शनमान आत्मा (के प्रकाशका)
। अहं (सब जानी) वर्णन करते हैं। प्रपन्नतः सभी कार्यका
। अपने स्वयं उन्नता चाहिये, विघ्नको दूर करके सब उन्नतिके
। अपने स्वयं के लिये सुख होने चाहिये। सब आत्माके प्रकाशका

चारों ओर फैलान होगा जिसका सब जानी सदा वर्णन करते
हैं ॥

इस पांचवे सूत्रके उपदेश स्पष्ट समझमें अनेकोग्य और
सबोंके व्यवहारमें लानेयोग्य है। अतः इनका विशेष विवरण
करनेकी दशा आवश्यकता नहीं है।

यहां पांचवां सूत्र समाप्त है।

५१ पूर्वोः मनीषा वनेम । सुशोकः अर्थः अग्निः
विश्वानि अस्याः । — हम पूर्व (वैभक्त अपनी) बुद्धिसे
प्राप्त करेंगे। यह तेजस्वी स्वामी अपना (अग्निदेव) सबको
अग्नि अधीन करता है। हरएकको अपना वैभव प्राप्त करना
चाहिये। स्वामी अपनी सब शक्तियोंको अपने अधीन रखे।

५२ दैव्यानि व्रता चिकित्वान्, मानुषस्य जनस्य
जन्म आ । — दिव्य नियमोंको जानो, दिव्य नियम वे हैं कि
जो सूर्य, विष्णु, वायु आदि देवताओंके संबंधमें जाननेयोग्य
हैं। क्योंकि इनपरही मानवका कुल अवलंबित है। मनुष्यका
जन्म जिस तरह सफल और सुफल होगा, वह मार्ग भी तुम्हें
जानना चाहिये।

५३ यः अपां, वनानां, स्थातां चरथां च गर्भः—
जो जलों, वनों, स्थावरों और जंगलोंके अन्दर रहता है।
यह अग्नि सब पदार्थोंमें व्यापक है। वैसाही आत्मा है।

५४ अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः । अमृतः
स्वाधीः । विश्वः विशां न । — इस (देव) के लिये घरमें
तथा पर्वतपर अर्थात् सर्वत्र अपना अर्पण किया जाता है।
यह अमर है और उत्तम ध्यान करनेयोग्य है। संतुष्ट घाता-
धारी राजा जिस तरह सब प्रजाजनोंको आहार देता है (वैसाही
यह देव सबके लिये आभय देता है और सबको उन्नति
करता है)।

५५ सः हि अग्निः क्षपावान्, रवीणां दाशवः यः
अस्मै सूक्तैः अरं करोति । — यह अग्नि अपनेमें प्रकाशित
होकर प्रत्येक दिन उसके लिये करता है, कि जो इस जगत्की
सूक्तोंसे अलंकृत करता है। जो यह करता है उसको परम
धन देता है।

५६ देवानां जन्म, मर्तान् विद्वान् एता भूम नि
पाहि । — यह देवोंका जन्म, मर्तोंका विद्वान् एता भूम नि
पाहि । यह देवोंका जन्म, मर्तोंका विद्वान् एता भूम नि
पाहि । यह देवोंका जन्म, मर्तोंका विद्वान् एता भूम नि

मेपर स्वर्ग निर्माण करनेका विचार विशेष रूपसे कहा।
 स्वः अहः केतुं उस्त्राः विविदुः ।— उन अग्नि-
 ही अपने लिये प्रकाश, दिन, ज्ञान, किरण (अथवा गौँव)
 में। अर्थात् प्रकाश और ज्ञानका राज्य हुआ। अन्धकार
 के प्रकाशका फैलाव किया। (स्वः=स्व-र) स्व अर्थात्
 का प्रकाश, अपने तेजका फैलाव, (अहः=अ-हः)
 ज्ञानि नहीं ऐसा अवसर, (केतुं) अपना ध्वज फहरानेका
 विजयका अवसर, ज्ञानके प्रचारका समय, (उस्त्राः)
 और गाँवें। मानवी सुस्थितिके लिये प्रकाश और गाँवें
 बहायक हैं।

६४ ऋतं दधन् अस्य धीतिं धनयन् = सत्यका
 रण करनेवाले इस (प्रभु) की धारक शक्तिको धारण करने-
 भन्व होते हैं। दिव्य शक्तिके तबही लाभ हो सकता है
 जब सत्य पालन और सरल आचरणकी उसको साथ हो।
 गात् (अर्थः) सबकी स्वामिनी, (दिधिष्वः) धारण करने-
 गे, (विचृन्नाः) विशेष भरण पोषण करनेवाली, (अतृप्यन्तीः)
 से रहित, निष्काम भावसे युक्त, (अपसः प्रयसा देवान्
 वर्षयन्तीः) अपने कर्मोंके द्वारा तथा अन्न-दानसे देवोंको
 अपने जन्मका संवर्धन करनेवाली प्रजाएं इसके पास
 भच्छ यन्ति) पहुंचती हैं। प्रभुके पास वही जाते हैं जो
 नौ शक्तियोंपर स्वामित्व रखते हैं, संयम रखते हैं, अपने
 दारकी शक्ति बढ़ाते और संयमसे उससे कार्य लेते हैं, यथा-
 कि अन्नका पोषण करते हैं, अन्न दान करते हैं, दिव्य
 शक्तिके संवर्धन करते हैं और अपने जन्मको सफल करने हैं,
 कार्य वितृष्ण होकर निष्काम भावसे करते हैं। येही प्रभुके
 पास पहुंचते हैं।

६५ मातरिष्वा ई यत् मर्थात्, विभृतः, श्येतः गृहे
 एते जैन्यः भूतः = वायुने जब इस अग्निके मथकर प्रकट
 किया, तब वह विशेष प्रसन्नसे युक्त होकर श्वेत प्रकाशसे घर
 में विजयी हुआ। व्यक्तिके शरीरमें प्राणायामसे आत्माका
 तेज प्रकट होता है और प्रत्येक देहमें यह धवल दशसे युक्त
 होता हुआ, विजयी होता है। समाजमें यज्ञका अग्नि वायुसे
 प्रदीप्त होता है और प्रत्येक यज्ञ-शालामें यही यज्ञाग्नि यज्ञ
 कराकर विजय देनेवाला होता है। राष्ट्रमें अमणीरूपमें नेता
 वायुस्य क्षत्रियोंके साथ मिलकर प्रभावके कार्य करने द्वारा
 विजयी होता है। इस तरह सर्व जेयोंमें देखना उचित है।

सचा सन्, सहीयसे राजेन ई भृगवाणः दूयं
 आ विवाय = साथ साथ रहकर बलवान् राजाकी सहायता
 करनेके समान, इसने भृगुवंशके लोगोंकी सहायता करनेके लिये
 दूत-कर्म भी किया। देवता आनन्द प्रसन्न होनेपर दूतकर्म
 करके भी सहायता करते हैं। जिस तरह अर्जुनका सारथ्य
 भगवान् श्रीकृष्णजीने किया था, वैसाही अग्नि यहां दूत हुआ
 है।

६६ महे पित्रे दिवे ई रसं कः पृशन्त्यः चिकि-
 त्वान् अव त्सरत् = बड़े पितृभूत धुलोकको समर्पण करनेके
 लिये तैयार किये इस सोमरसको, कौन भला इस देवताके साथ
 संबंध रखनेका इच्छुक ज्ञानी मनुष्य, गिरावेगा ? अर्थात् कोई
 भी नहीं गिरावेगा, इतना इसका बड़ा प्रभाव है। (अस्ता
 भी नहीं गिरावेगा, इतना इसका बड़ा प्रभाव है।) (अस्ता
 धृपता अस्मै दिव्यं सृजत्।) = अन्न फैलानेवाले धैर्य-
 युक्त वीरने अपने शत्रुपर तेजस्वी अन्न फैक दिया। तब
 (देवः स्वायां दुहितरि त्विर्वि धात्।) सूर्य देवने
 अपनीही दुहितामें—उषामें— अपना तेज रख दिया।
 उत्तरीय ध्रुवकी उषा जब आती है, तब उषःकालमें बड़ी विज-
 लियों प्रकाशती हैं और प्रतिक्षण सूर्य-किरणोंसे उषाका तेज
 बढ़ता ही जाता है। इस देशकी उषा प्रतिदिन आती है और
 सूर्योदयके समय विद्युत्का चमकना नहीं होता। उधर यह
 होता है।

६७ हे अग्ने ! स्वे दमे तुभ्यं यः आविद्यासति,
 अनु धून् उशतः वा नमः दाशान्, अस्य द्वियर्थाः
 वयः वर्धो = हे अग्नि देव ! अपने यज्ञस्थानमें तुम्हें पुष्पा-
 कर प्रदीप्त करके जो तुम्हारा सत्कार करता है, प्रतिदिन
 तुम्हारा सत्कार करनेकी इच्छा करता हुआ जो तुम्हें अन्न का
 दान करता है, इसके दोनों ओर रहकर इसकी आयु (या
 अन्न) तुम बढ़ाओ। तुम्हारे भक्तकी तुम उत्पत्ति करो। (सरय
 यं जुनासि तं राया यासत्) = जिसके रथपर तुम्हारा
 है उसे तुम धन देता है, उसे विजय देता है। भगवान् सारथ्य
 अर्जुनके रथपर सारथ्य करते थे और उन्होंने उनका जन्म
 प्राप्त करनेमें अच्छी सहायता की, तब उस देहके यज्ञ
 तुलना करने योग्य है।

६८ स्रवतः सप्त यज्ञीः समुद्रं न विदमाः पृथः
 अग्नि अभि सचन्ते। = यज्ञशाली यज्ञ शाली यज्ञ
 समुद्रमें जा कर मिलती हैं, वैसी सब यज्ञशाली यज्ञ शाली

पुरुषोंका शुभ व्यवहार होता है । इसकी जानकारी वैसा । निरलस वृत्तिसे करना चाहिये । दिव्य जनोंकी हवि-
पहुंचाना और हर प्रकारसे उनकी सेवा करना योग्य है ।
ये करना चाहिये कि उसके साविभ्यसे सम्मार्गका
जाय और अपना जीवन भी उसके समानही दिव्य

साध्यः सप्त यज्ञीः दिवः आ (प्रवहन्ति) = उत्तम
व्य कर्म जिनके तट पर होते हैं, ऐसी सात नदियां
बह रही हैं । यहां का (दिवः) पद हिमालयके
बोधक है, हिम पर्वतका बर्फ पिघलकर सात नदियां
हैं, जहां (सु-आ-धीः) उत्तम प्रकार ध्यान धारणा
राम्य होते हैं, ऐसे नदी किनारे इन नदियोंके साथ
यज्ञतथाः रायः दुरः वि अजानन्) = सत्यके
और दह-मार्गकी जानकारीवालेने वैभवकी प्राप्ति करने-
वालेकी रीति जान ली है । अर्थात् दहसेही सबकी
हो सकती है, यह उन्होंने जान लिया है । (गव्यं
ऊर्व सरमा विदत्) = गौओंके रखनेका सुदृढ
अर्थात् शत्रुने गौवें कहां रखी हैं, यह स्थान सरमाने
लिया है । वहां इन्द्रादि वीर जादेंगे, शत्रुका पराभव
रखे गौवें प्राप्त करके वे उनकी वापस ले आवेंगे । इस
जो शत्रुका पराभव करते हैं वे अपने वैभवकी प्राप्ति
हैं । अतः कहा है कि (येन मानुषी विद कं
ति) = जिससे मानवी जनता सुख भोग सकती है ।

८० ये अनृतत्वाय गातुं कृपवानासः विश्वा स्वप्-
नि आतस्थुः = जो अमरत्वकी प्राप्तिका मार्ग तैयार
ते हैं, वे सब शोभन कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं । क्योंकि
न कर्मके करनेके बिना अमरत्वकी प्राप्तिकी संभावनाही नहीं
। (महाङ्गिः पुत्रैः माता अदितिः पृथिवी धायसे
हा वि तस्थे, वेः) = अपने मरान् पराक्रमी पुत्रोंके
बड़ी अदिति माता सबके धारण पोषण करनेके लिये
पत्नी महिमासेही विशेष रूपसे विस्तृत रूपमें स्थिर रही है,
इस तरह पत्नी अपने बच्चोंके पोषणके लिये यत्न करती है ।
(अदितिः अदनात्) अदिति यह है कि जो भोजन देकर
रक्षणा और पोषणा करती है । पृथ्वीकी अदिति रखने
प्राप्ति है कि वह भान्य देकर सबका पोषण करती है । (महाङ्गिः
उत्तः) पुत्र बच्चे और हों, प्रभुओं और पराक्रमी हों, यह सिद्ध

पुत्रोंकी देनी आवश्यक है । ऐसे वीर पुत्रोंके साथ माता
अन्योका धारण-पोषण करे । यही माताका (महा) महत्त्व
है । जिस माताकी आठ आदित्योंके समान आठ वीर पुत्र हों,
यह माता धन्य है ।

८१ दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृपवन्, अस्मिन्
चारुं श्रियं आधि नि दधुः = एलोकके स्थानमें अमर
देवोंने जब दो आंच, सूर्य और और चन्द्र, बनाये, तब इस
अग्निमें उन्होंने सुन्दर शोभा, सुन्दर दीप्ति, रख दी । अर्थात्
इस अग्निकी भी उन्होंने तेजस्विताके साथही बनाया । सूर्य
चन्द्र, विद्युत् और अग्नि इस तरह बनाया गया । (अध
सृष्टाः सिन्धवः न नीचीः अरुषी क्षरन्ति) इसके
पश्चात् निम्न गतिसे चलनेवाली नदियोंके समान तेजस्वी दीप्ति-
वाली ज्वालाएं उससे चल पड़ीं । (हे अग्ने ! प्र अजानन्)
हे अग्नि देव । यह सब उन्होंने जान लिया है । ज्ञानी इसकी
ठीक तरह समझते हैं ।

इस आठवें सूक्तमें कई बातें विशेष महत्त्वकी कहीं गयीं
हैं, जो उन्नति चाहनेवाले साधकोंको सदा मननीय हो सकती
हैं । सब तत्त्वज्ञान यहाँ अग्निके मिषसे कहा गया है, अग्निका
निमित्त करके मानवी जीवनका तत्त्वज्ञान यहाँ कहा गया है ।
पाठक इसका विचार करें ।

यहां आठवें सूक्तका मनन समाप्त है ।

८२ पितृवित्तः रयिः न यः वयोधाः— पितासे प्राप्त
हुए धनके समान (यह अग्नि देव) अब धारणा करनेवाला
है । जिस तरह पिता-पितृद्वयसे अग्निवाली संगति मिलनेसे
अग्नीकी कम-ई करनेकी आवश्यकता नहीं होती, उस धनमें
अग्निदि सब सुखभोग मिलते हैं, उसी तरह यह अग्नि सब
सुखभोग देता है । (चिकितुषः न शालुः सु प्रपीतिः)—
ज्ञानी शासक राजाकी तरह यह उत्तम रीतिसे चलता है,
उन्नतिके मार्गका आक्रमण करनेमें वह वैसा सहायक होता है कि
जैसा उत्तम ज्ञानी राजा अपनी प्रजाका सहायक होता है ।
(स्योनशीः अतिधिः न प्रीपानः)— सुखसे विभ्रान
करनेवाले अतिधिके समान संतोष देनेवाला, अतिधनधारण
सन्तुष्ट होकर सुखपूर्वक आराम देनेवाले अतिधिके समान
आनन्द देनेवाला यह है । जिस तरह देवा सन्तुष्ट हुना अतिधि
उत्तम उपदेश श्रेष्ठ दृष्टिको रित करना है, उसी तरह यह
भी रित करता है । (विधितः सद्यः होता इष, वि

तारीत्) यज्ञ-कर्ताके घरका, इवन-कर्ताके समान, तारन करता है। जिस तरह अग्नि-होय करनेवाला अग्निशालाका संरक्षण करता है, उस तरह यह यज्ञ तथा यत्कार करनेवालेके घरका तारन करता है। अग्निदेवका जहां सत्कार होता है वहां सुरक्षा रहती है। अन्नकी प्राप्ति, सन्मागेका दर्शन, शान्ति, सुख और संरक्षण इतनी बातें इसकी उपासनासे होती हैं।

८२ देवः न सविता, यः सत्यमन्मा, कृत्वा विश्वा वृज्जनानि नि पाति— सविता देवके समान जो सत्यव्रतका मननपूर्वक पालन करता है, वह अपने कर्तृत्वसे सभी पापोंसे साधकको बचाता है। सत्यका पालन करनेवाला बड़े प्रशस्त कर्म करता है, जिससे सब कुटिलताओं और पापोंसे बचाव होता है। (पुरु प्रशस्तः अमतिः न सत्यः, आत्मा इव शेषः, दिधिपाय्यः भूत्)— अनेक लोगों द्वारा जिसकी प्रशंसा की जाती है, प्रगति करनेवालेके समान जो सत्यनिष्ठ है, आत्माके समान जो सेवाके योग्य है, वही सबका आश्रय-दाता हुआ है। 'अमति' (अमति इति)— जो गतिमान्, उन्नतिकी ओर जानेवाला, बलवान् है, जो उन्नतिके लिये हलचल करता है, वैसा यह अग्निदेव भी प्रगति करनेवाला है। 'दिधिपाय्यः' (धातुं योग्यः) आधार देने योग्य, जिसके आश्रयमें रहना योग्य है। संस्कृत भाषामें 'दिधिपाय्य' का अर्थ 'आधार, आश्रय, अवलम्ब मित्र, मय' ऐसा है। 'दिधिपु' का अर्थ 'पुनर्विवाहित पति' है। यहां मूल धातुसे बननेवाला यौगिक अर्थ लेना चाहिये। 'आधार देने योग्य, आश्रय देने योग्य' यह इसका यौगिक अर्थ है। यह प्रभु आश्रयके योग्य है। जो इसका आश्रय करेगा, वह कदापि गिरेगा नहीं। सत्यकी पालना करने और प्रशस्त करनेसे पाप दूर हो सकते हैं। यदि किसीका आश्रय करनाही हो तो जो सबसे प्रशंसनीय है, जो सत्यनिष्ठ है, जो बलवान् और सबके दित करनेके लिये हलचल करता है और आत्मा जैसा सबको उत्साह देनेवाला है, उसीका आश्रय किया जाये।

८३ यः देवः न विश्वयायाः, हितमित्रः न राजा पृथिवी उपक्षेति— जो देवताके समान सबका धारण पोषण करनेवाला है, जो हितकर्ता है और मित्र जैसा पालनकर्ता राजा है, जो पृथ्वीपर रहता है, वह अग्नि सबका पालनद्वारा, हित करनेवाला और मित्रके समान मान्य करनेवाला पृथ्वीपर रहता है। अन्नका पृथ्वी स्थानही है। जो सबका धारण कर

सकता है, जो जनताका हित करता है, जो मित्र जैसा व्यवहार कर सकता है, अग्नि योग्य है। (पुरुःसदः शर्मसदः नरः पतिजुष्टा इव नारी) = बुद्धिमान् नर भागमें रहकर युद्ध करनेवाला, वैसे एक करनेवाला, अथवा इधर उधर न रुकने वाला अपने देशमें रहकर, उसकी सुरक्षा करनेवाला तथा निष्ठाप पतिव्रता नारीके समान के पृथ्वीपर वंदनीय है।

८४ हे अग्ने ! उस पुत्रको सब मनन करनेवाला यज्ञ-स्थानमें प्रदीप्त करके इवनके द्वारा पृथ्वी पर अग्निमें बहुतही तेजस्वी बन जान दे। इस अग्निमें बहुतही आयु देकर बर्तक कर हमें दान करनेवाला हो।

८५ हे अग्ने ! वनवान् लोग जो यज्ञ करनेके अव प्राप्त करें। ज्ञानी, जो दान करते हैं, वे भी आयु, प्राप्त करें। बुद्ध-स्थानमें युद्ध करनेके लिये वीर, अन्न, धन और बल प्राप्त करें। देवों करनेके लिये इस अन्नका भाग प्राप्त करें उसका अर्पण करें।

८६ यज्ञको सेवा करनेको इच्छा करनेवाला, दुग्धाशयवाली, देवताको मज्जि करनेवाला, वस्त्रों में विचरनेवाला, यज्ञके लिये रखी गीर्वां दुग्ध लेनेके लिये दूध देता है। साथ साथ कदियों मुमतिके पर्वतके पादसे दूर दूरसे बहता है। इन कदियों होते हैं, जिसका वर्णन ऊपरके तीन मंत्रों में है।

८७ हे अग्ने ! मुमति चाहनेवाले पवित्र केशों तेरी सहायतासे ही वध प्राप्त किया। उस प्रकार रात्रि अन्धेरेसे मुक्त बनानेकी यशो है।

इस तरह काले और काल रंगोंके कर्मजन्तुओं विभिन्न वर्णवाले लोगोंका वध द्वारा संलग्न हो सूचना यहां दी है।

८८ हे अग्ने ! जिन मानवोंके देवदेवोंके पुत्रों में तुमने तैयार किया है, वे हम सब देशों पर प्रभुत्व और यशस्वी बनें। आकाश और अन्तरिक्ष पर प्रभुत्वसे भर गया है। सब सुवन उपायों के

है। जिस तरह छाया पदार्थके साथ रहती है, इस तरह भुवन इस अग्निदेवके साथ संगत हुआ है।

० हे अग्नि ! तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम सब अपने घोड़ोंके घोड़ोंका पराभव करेंगे, अपने नेताओंके द्वारा शत्रुके भ्रंशोंको जीतेंगे, अपने घोड़ोंसे शत्रुके घोड़ोंको जीत जायेंगे। अपने पितृपितामहोंके धनोके स्वामी बनकर, विद्वानोंके ज्ञानी होकर सौ वर्षोंका दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे।

१२ हे विधाता अग्निदेव ! ये सूक्त तेरे मन और हृदयको हो। तेरे उत्तम नेतृत्वसे हम धनोंको प्राप्त करेंगे और अच्छा उपयोग भी कर सकेंगे। तथा प्रभुके भक्त बन जायेंगे।

ये नम्र सरल और स्पष्ट हैं, इसलिये ८५-९१ तकके ७ गीतोंका विशेष स्पर्शाकरण, आवश्यकता न होनेके कारण, नहीं गाये।

यहाँ नवम सूक्त समाप्त हुआ है।

सोमरसका पान

पराशर ऋषिका दसवां सूक्त सोमदेवताका है। यह सूक्त सम मण्डलके ९७ वे सूक्तका एक भाग, अर्थात् ३१ से ४४ तकके १४ मंत्र, है। इसका अर्थ पूर्व स्थानमें दिया है, परंतु शेष मंत्रभागपर, विचार करनेयोग्य पदोंपर, कुछ टिप्पणी सँदेते हैं।

११ वे मधुमतीः धाराः प्र अस्थग्रन्- सोमसे ठि स्वादवाले रस-प्रवाह निकल रहे हैं। सोम कूटकर उससे रस निकाला जा रहा है। (पूतः अव्यान् वारान् अति रेपि) यह रस मेढोंके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जा रहा है, छानकर दूसरे पात्रमें रखा जाता है। (गोनां धाम पवसे) छाननेके बाद यह रस गौओंके स्थानको पवित्र करता है अर्थात् इस रसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है, मानो इससे गौओंका स्थान पवित्र हुआ। (जज्ञानः अर्कैः सूर्य अपिन्वः) रस तैयार होनेके बाद वह तेजोंसे सूर्यकी भर देता है। मनुष्यमें उत्साह बढाता है।

१३ वह सोमरस यज्ञके मार्गका अनुसरण करता है, यज्ञके धामकी प्रकाशित करता है। आनन्द बढानेवाला वह सोमरस ऋषियोंके स्तोत्रोंके पाठोंके साथ इन्द्रको समर्पित होता है।

१४ दिव्यः सुपर्णः देववीतौ धाराः पिन्वन् अव ६ (पराशर)

चाक्षि— युक्तोक्तमें अर्थात् पर्वत-शिखरपर उत्पन्न होनेवाला सुंदर पर्णोंवाला सोम यज्ञकर्ममें धारा-प्रवाहसे रसरूपमें नीचे उतरता या चूता है। (सोमधानं कलशं आविश)— सोम रखनेके पात्रमें रखा जाता है। (सूर्यस्य रश्मि उप रश्नि)— सूर्य-किरणोंमें रखा जावे। सोमरस कलशमें भर कर छाना जानेके बाद सूर्य-किरणोंमें रखा जाता है।

१५ तिष्ठः वाचः प्र ईरयति = तीन सवनोंमें तीन स्वरोंमें स्तोत्र-पाठ करते हैं। (कृतस्य धीर्ति ब्रह्मणः मनीषां) = यज्ञका धारण हो, यज्ञका कर्म सतत चले और ज्ञानकी मनीषा पूर्ण हो। ये दो कार्य अर्थात् कर्म और ज्ञान इन दो भागोंका प्रचार होना चाहिये। (गोपतिं सोमं गावः पृच्छमानाः यन्ति) = गौओंके पति सोमरसके प्रति गौवें जाती हैं अर्थात् सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है। (वावशानाः मतयः सोमं यन्ति) = सोमपानकी इच्छा करनेवाली बुद्धियाँ सोमके पास जाती हैं। सोमपान करनेको अथवा सोमका वर्णन करनेकी बुद्धियाँ जनोंकी हो जाती हैं।

१६ धेनवः गावः सोमं वावशानाः— गौवें दूध देनेवाली सोमको चाहती हैं अर्थात् गेदुग्ध सोमरसमें मिलाया जाता है। (विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः) = ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे सोमका वर्णन करते हैं। (सुतः सामः अज्यमानः पूयते)— निचोड़ा गया सोमरस छाना जाता है। (त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते)— त्रिष्टुप् छन्दके सामगान गाये जाते हैं। यह वर्णन सोमयागके अन्दर सोम तैयार करनेकी पद्धतिका है।

१७ छाना जानेवाला सोमरस ठीक तरह स्वच्छ हो जावे। (बृहता रवेण इन्द्रं आविश)— सोमरस बड़े शब्दके साथ, सामगानके बड़े आलापोंके साथ इन्द्रको दिया जावे। (पुरंधि जनय)— बुद्धि बड़े सोमपानसे बुद्धिको उत्त-जना मिले।

१८ जागृविः पुनानः सोमः चमूयु आसदत्-उत्साह बढानेवाला छाना गया सोमरस पात्रोंमें भरा जाता है। (सुदस्ताः अध्वर्यवः यं सर्पन्ति) उत्तम दायवाकें अध्वर्यु सोमके पास जाते हैं, उसको ठीक करते हैं।

१९ छाना गया वह सोमरस धारक शक्ति बढाता है। इससे (ऊती) उत्तम सुरक्षा होती है। यह सोम स्तोत्रकर्ताको धन देता है।

१०० बढाया जानेवाला और छाना जानेवाला वीर्यवर्धक सोमरस हमारी सुरक्षा करता है। जिस रसके पान करनेके बाद हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंकी खोज करनेके लिये शत्रुके झोलोंकी खोज की। रसपानसे उत्साहित होकर वारोंने शत्रुके स्थानका पता लगाया और शत्रुको परास्त किया।

१०१ समुद्रः राजा (सोमः)... प्रजाः जनयन् अक्रान् = जलसे साथ मिला हुआ सोम (वनस्पतियोंका) राजा विविध वीरोंमें उत्साह उत्पन्न करके शत्रुपर आक्रमण करने लगा। सोमरस पीनेके बाद वीरोंमें शत्रुपर हमला करनेका उत्साह उत्पन्न हुआ। (वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अध्ये पवित्रे वयुषे) = बलवर्धक निचोड़ा गया सोमरस मेढीकी ऊनकी छाननीपर जलके साथ संमिश्रित होकर बढने लगा। जलका बारंबार छिड़काव करके उसको छान लेनेका कार्य होने लगा।

१०२ बलवर्धक सोमरसने बड़े कार्य किये। जलके साथ मिश्रित होकर वह देवोंको पीनेके लिये दिया गया। इन्दुने उसका पान किया। सूर्यकी ज्योति बढने लगी।

१०३ सोम, वायु, मित्र, वरुण, मरुत, अन्य देव और यावाशुषियोंकी आनंदित करता है।

१०४ (वृजिनस्य हन्ता) सोम पाप और दुष्टिलताका नाश करता है, (अर्मावां मृयः च अपवायमानः) रोगों और शत्रुओंका नाश करता है। (गोनां पयसा अभिश्रीणन्) गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है। पश्चात् इन्द्र इस रसको पीता है। अन्य ऋत्विज् भी पीते हैं।

१०५ सोमरस मधुरताका शौजशी है। वह वीरता और नायकी बढावे। इन्द्र इस सोमरसको पीवे। यह हमारा धन बढावे।

इन चौदह मंत्रोंमें सोमरस तैयार करनेकी विधि है। सोम कूटनेके बाद वह ऊनकी छाननीसे छाना जाता है, उसमें पानी और गौका दूध मिलाया जाता है। पश्चात् देवताओंको देनेके बाद पिचा जाता है। इतनाही वर्णन यहां है। सूक्तके आवश्यक मंत्रभाग ऊपर दिये हैं, शेष मंत्रोंका संक्षिप्त सारांश दिया है। इसमें और अधिक निर्देश नहीं हैं। सोमरस विद्र करनेके ये निर्देश सठक इन मंत्रोंसे ज्ञान सक्त हैं। सोमका यह सुंदर काव्य है, जो काव्यकी दृष्टिसे देखनेसे बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है।

यहां पराशर ऋषिके दसवां सूक्त अर्थात् होता है। पराशरका जो तत्त्वज्ञान है, वह मंत्रोंका मनन करनेसे पाठकोंको बहुत ही स्पष्ट हो सकेगा।

परमात्माका दर्शन

पराशर ऋषिके दर्शनमें अन्तिके ११ मंत्र हैं और १४ मंत्र हैं। सोमके मन्त्रोंमें सोमका रस निम्न और कुछ भी अन्य बातोंका उल्लेख नहीं मिलता। कि श्लेष आदिसे कुछ बोध मिल सके। मंत्रोंमें मानवी जीवनके तत्त्वज्ञानके निर्देश मिलते हैं। इनका निर्देश हमने निम्नलिखित किया है और स्पष्ट रूपसे उसका ज्ञान देने के लिये यहां भी संक्षेपसे प्रकरणसे देते हैं। इस अर्थसे निम्नसे यहां ऋषिने परमात्माका जो दर्शन करा देखा है—

१ प्रथम दो मंत्रोंमें कहा है कि परमात्मा ब्रह्म स्थानमें छिपा है, उसकी खोज करनेके लिये इस संसारके विह दौखते हैं, उनके अनुसंधानसे ज्ञान प्राप्त हो पाय साथ चलना चाहिये, जिससे अन्तमें वह प्रकट हो है, तब उसकी सामूहिक उपसना करना बर्तते फिर दूर होने नहीं देना चाहिये। यह प्रथम मंत्र सर्वोत्तम है और ठीक तरह परमात्माका ज्ञान सहायक होनेवाली है। इसके अतिपरक, आत्मा और परक अर्थ पूर्व स्थानमें विष्णुगोत्र दिये हैं।

२ तृतीय मंत्रमें कहा है कि जो इस ज्ञानको अपने वे सत्यका व्रत पालन करनेसे इस भूमिपर स्वर्ग प्राप्त करेंगे। यह भी ठीकही है, क्योंकि यह ज्ञान सब है और इस ज्ञानसे भूमिपर स्वर्गका राज्य निःसंदेह सकेगा।

३ कह ई वराते ? (मं. ६) इस परमात्माको सक्त है ? अर्थात् इसको रोकनेवाला कोई नहीं है। अनुलनीय सामर्थ्यका वर्णन है।

४ पुष्टि, स्थान, जीवन, शान्ति, उत्साह, देवता है और सबकी उत्पत्ति करता है, यह मंत्र ५ में आता है। ५ राजा जैसा शत्रुओंको प्रतिबंध करता है, मन्त्रोंके सब संकट दूर करता है (मं. ७)

विशुः दूरेभाः—यह विशु अर्थात् सर्वत्र व्यापक है।
रक्त प्रकाश देनेवाला है। (मं. ९)

रमणीय धरके समान सबका आश्रयस्थान यह प्रभु
है। यह सबका सेम अर्थात् कल्याण करता है। (१३)

(अमं दधाति)—यह बल बड़ाता है, इसीसे सबको
प्रम होता है। (१७)

(यमः जातं, यमः जनिष्ये)—जो भूतकालमें
था, जो भविष्यकालमें बननेवाला है और वर्तमानकालमें
है वह सब सर्व नियन्ता प्रभुही है। यह सर्वेश्वरवादका
सर्वप्रमाण है। विश्वरूपही प्रभु है यह सिद्धान्त इस
से पता चला है। (१८)

१० (मतेषु मित्रः) मत्स्योंने यह सबका अनर मित्र है,
मत्स्योंने यह आविनाशी है। (२१)

११ यह साधुके समान कल्याणकारी, यज्ञके समान हितकारी,
वैष्णव ध्यान लगानेयोग्य है। (२२)

१२ यह अजन्मा पृथ्वी अन्तरिक्ष और बुलोकका धारण
करता है। सब विश्वको आधार देनेवाला यही एक है। (२५)

१३ (यः वीरुत्सु प्रजाः प्रसुप्नु अन्तः महित्वा विरो-
हः) यह अपिधियों और सभी पदार्थों और प्राणियोंमें रहता
सर्वव्यापक है। (२९)

१४ (स्यातुः चरथं व्यूर्णोत्)—स्वावर-जंगमोंको
चला करता है। सब सृष्टिको प्रकट करता है। (३१)

१५ (विश्वेषां देवानां, एकः देवः महित्वा परि-
हः)—सब देवोंमें यह एकही परमात्मदेव ऐसा है कि
असंख्य महिमासे सबमें श्रेष्ठ और सबका नियामक हुआ
है। (३२)

१६ (ते एता प्रता नकिः मिनन्ति)—इस प्रभुके निष्पन्न
सब देवता नहीं सकता। (४७)

१७ (स्थातां चरथां च गर्भः)—स्थावरों और जंगमोंमें
अन्तर रहता है। (५३)

१८ (विश्वा अमृताति सधा चप्राणः रयीणां

रयिपतिः भुवत्)—सब अनर भावोंको साथ साथ बनाने-
वाला यह प्रभु सब धनोंका स्वामी हुआ है। (७२)

१९ (हितमित्रः विश्वधायाः देवः)—सबका
हितकारी और मित्र यह देव विश्वका धारण करता है। (८४)
संक्षेपसे विश्वाधिपति प्रभुका वर्णन स्पष्ट रूपसे करनेवाले
मंत्र इन सूक्तोंमें हैं। उपनिषद्में कहा है—

आश्रित्यैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो
वभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं
प्रतिरूपो वहिश्च ॥ (ऊठ उ. २।५।९)

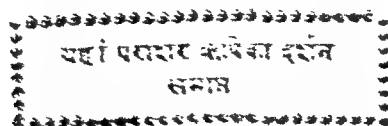
'अग्नि' जैसा सब भुवनोंमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें प्रति-
रूप बना है, वैसाही एक सर्वभूतान्तरात्मा प्रत्येक रूपके लिये
प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है। 'यहां विश्वात्माके लिये
अग्निकी ही उपमा दी है। प्रत्येक वस्तुमें अग्नि व्यापक है और
उस वस्तुका रूप लेकर रहा है, वैसाही ठीक परमात्मा है, इस-
लिये परमात्माके लिये अग्निका उत्कृष्ट साम्य है।

सब विश्व दीख रहा है। जो दीख रहा है वह रूपवान् है और
रूप अग्निका गुण है, इसलिये अग्नि सब विश्वमें व्यापक है।
अग्नि व्यापक होनेसेही सब विश्व दीख रहा है। एतसी अलग-
एक रस अग्नि सब विश्वका सब रूप लिये खाता है। यैसाही
परमात्मा है, क्योंकि परमात्मा अग्नि का अग्नि है। इसीलिये
इन पराशर ऋषिके अग्निमन्त्रोंमें उक्त प्रकार परमात्माका
वर्णन हुआ है, अग्नि का वर्णन करनेवाले मन्त्रोंमें परमात्माका
वर्णन करना है सर्वोत्तम—

तत् एव अग्निः। (उ. १।१।१)

'यह अग्नी अग्नि है।' जो अग्नि अग्नि है वह अग्नि
रूप है। इस कारण अग्नि का वर्णन अग्नि के रूप में ही
करना होता अनुचित है।

प्रत्येक इस तरह अग्नि-परमात्मा के अन्तर्गत है, अग्नि ही
वैश्वदेव का अन्तर्भाव है। अग्नि ही परमात्मा का अन्तर्भाव
करता है, जो अग्नि के रूप में सब देवों में है।



पराशर क्रयिका दर्शन

विषयसूची

| विषय | पृष्ठ |
|---|-------|
| पराशर क्रयिका तत्त्वज्ञान | ३ |
| सूक्तवार मन्त्रसंख्या | १ |
| (प्रथम मण्डल, द्वादशानुवाक, ३५ से ७३ सूक्त ।) | १ |
| (नवम मण्डल, षष्ठ अनुवाक, ९७ सूक्त ।) | १ |
| देवतावार मन्त्रसंख्या | १ |
| वसिष्ठ-वंशमें पराशर क्रयि | ८ |
| पराशर क्रयिका दर्शन | ९ |
| (प्रथम मण्डल, बारहवाँ अनुवाक) | १ |
| अग्निः (के १ से ९ तकके ९ सूक्त) | १-१३ |
| (१०) सोमः । (नवम मण्डल, छठवाँ अनुवाक) | ११ |
| अग्निका वर्णन (विवरण) | १२ |
| चौर और नगवान् | १ |
| इन्द्र-परक अर्थ | १३ |
| अग्निविषयक अर्थ | १ |
| भूमिपर स्वर्गवान | १ |
| पहले सूक्तका विवरण | १५-१६ |
| दूसरे " " | १६-१८ |
| तीसरे " " | १८-२० |
| नानवी उब्रविका ध्येय और नागं | २२ |
| चौथे सूक्तका विवरण | २०-२२ |
| पांचवे " " | २२-२३ |
| छठे " " | २३-२४ |
| सातवे " " | २४-२६ |
| आठवे " " | २६-२७ |
| नेववे " " | २७-२९ |
| सोमरसका पान | ३१ |
| दसवे सूक्तका विवरण | ३१-३२ |
| परमात्माका दर्शन | ३२ |



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(९)

गोतम ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदके द्वादश और त्रयोदश अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [बि० कानारा]

संवत् १९७३

मुल्य २) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औध (जि. घातारा)

गोतम ऋषिका तत्त्वज्ञान

वेदमें 'गोतम' ऋषिका स्थान बड़ा ऊँचा है। रहूगण
1 यह पुत्र है। गोतमके दो पुत्र मंत्रोंके दृष्टा ऋषि हुए
३ नोधा ऋषि और दूसरा वामदेव है। नोधा ऋषिका
८५ मंत्रोंका उपा है। यह ऋग्वेदके ऋषि दर्शनमें ७
। वामदेवका दर्शन ऋग्वेदका चतुर्थ मण्डलही है, जो
मंत्रोंका है और इसमें वामदेवके मन्त्र करीब करीब
हैं, और २३ मन्त्र अन्योके उसी चतुर्थ-मंडलमें हैं।

रहूगण (१२ मंत्र)

गोतम (२१४ मंत्र)

(५६६ मंत्र) वामदेव

नोधा: (८५ मंत्र)

18 तरह इन ऋषियोंके देखे मंत्र एकएक पुस्तकें बडे हैं।
1 यह गोतम ऋषिका दर्शन है इसके मंत्रोंका व्यौरा यह है—

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

चतुर्दशोऽनुवाकः ।

| सूक्त | देवता | मन्त्र-संख्या |
|-------|---------|---------------|
| ५४ | अग्निः | ६ |
| ५५ | " | ५ |
| ५६ | " | ५ |
| ५७ | " | ५ |
| ५८ | " | ५ |
| ५९ | " | १२ ३१ |
| ६० | इन्द्रः | १६ |
| ६१ | " | ६ |
| ६२ | " | ६ |
| ६३ | " | ६ ५७ |
| ६४ | " | |

चतुर्दशोऽनुवाकः ।

| | | |
|----|--------------|------|
| ८५ | मरुतः | १२ |
| ८६ | " | १० |
| ८७ | " | ६ |
| ८८ | " | ६ ३४ |
| ८९ | विश्वे देवाः | १० |
| ९० | " | ९ ११ |
| ९१ | सोमः | २३ |
| ९२ | उषाः | १५ |
| " | अश्विनौ | ३ |
| ९३ | अमर्षोमौ | १२ ५ |

ऋग्वेद नवममण्डल

३१ पवनानः सोमः ६

६१ " ३

ऋग्वेद दशममण्डल

२३ वायुः १

इन्द्र-मंत्र-संख्या

येही मंत्र देवतावार ऐसे बडे मंत्र हैं—

देवतावार मन्त्र-संख्या

| देवता | मन्त्र-संख्या |
|----------------|---------------|
| १ इन्द्रः | १४ |
| २ अग्निः | ४६ |
| ३ सूर्यः | १० |
| ४ सोमः | २९ |
| ५ विश्वे देवाः | ११ |
| ६ उषाः | १५ |
| ७ अश्विन देवाः | ३ |
| ८ अमर्षो देवाः | १२ |
| ९ वायुः | १ |

इन्द्र-मंत्र-संख्या

है, इसलिए यह अन्तमें रखा गया है। देवता-
एकएक छन्दके सूक्त प्रथम आते हैं, इनमें मन्त्र-
अधिकतासे सूक्तक्रम होता है। अनेक छन्दोंवाला सूक्त
बढ़ इनके बाद आता है।

‘नद्व प्रकरण’ है, इसमें १२;१०;६;६ मंत्रोंवाले
सूक्त उतरते क्रमसेही हैं।

प्रकरणमें ‘विधे देवा’ देवता है और इसके दो सूक्त
५ में भी संख्याके उतरते क्रमसेही हैं।

ये सूक्त एकएक देवताके एकएकही हैं। इसलिये
क्रमका संबंधही नहीं हो सकता। एकसे अधिक एक-
के सूक्त हो और उनमें मंत्रसंख्यामें विभिन्नता हो, तब
क्रमका जा सकता है। ऋग्वेदमें जहां जहां एक देवताके
सूक्त एक स्थानपर रखे गये हैं, वहां मंत्रसंख्याके उतरते
ही रखे हैं। देवताभेद अथवा छन्दभेदके कारण इस
में भ्रमवाद हुआ है।

इ नियम समझमें आनेसे कोई भी सूक्त मिला तो उसका
१, ऋषि, देवता, छन्द और मंत्रसंख्यासे जाना और वह
भी ठीक तरहसे निश्चित किया जा सकता है। जो आज
क्रम है वही ठीक जा जायगा।

गोतम ऋषिका वेदोंमें नाम

‘गोतम’ ऋषिका नाम वेदोंमें कहाँ आया है वो अब
कहे—

गोतम ऋषिके मंत्रोंमें

तु त्वा ययं पतिमग्ने रयीणां प्रशंसासो मतिभि-
गोतमासः। (ऋ. १।६०।५)

इन्द्र प्रक्ष्णाणि गोतमासो अक्रन्। (ऋ. १।६१।१६;
अथ. २०।२६।१६)

सनायते गोतम इन्द्र नव्यं अतश्च प्रक्ष हरि-
गोतमाय। (ऋ. १।६२।१३)

अकारि न इन्द्र गोतमेभिः प्रक्ष्णाणि॥ (ऋ. १।६३।१५)

गोतम ऋषिके मंत्रोंमें

स्वाग्निगोतमेभिर्कृतावा विधेनिरस्वोऽय जात-
वेदाः। (ऋ. १।७०।५)

अग्नि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विश्वरूपे ॥

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ॥२॥
(ऋ. १।७८)

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नेय।
भरस्व० ॥ (ऋ. १।७९।१०)

सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे। (ऋ. १।८५।११)
ब्रह्म कुण्वन्तो गोतमासो अकैः ॥

सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः॥ (ऋ. १।८८।४-५)
दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः। (ऋ. १।९२।७)

कञ्जीवान् ऋषिके मंत्रोंमें

क्षरन्नपो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते गोत-
मस्य ॥ (ऋ. १।९१।६।२)

अगस्त्यो (नैत्रावरुणिः) ऋषिके मंत्रोंमें
युवां गोतमः पुहमीळ्हो अग्निः दत्ता हवते
अवसे०। (ऋ. १।८३।१)

अथर्ववेदमें गोतमके मन्त्र

प्रायः ऋग्वेदकेही मंत्र अथर्ववेदमें लिये हैं, देखिये—

| ऋग्वेद | अथर्ववेद | मन्त्रसंख्या |
|--------------------------|-----------------|--------------|
| १।८६।१ | २०।१।२ | १ |
| १।८५।६ | २०।१।३।२ | १ |
| (सव्यः) १।५७।१-६ (गोतमः) | २०।१।५।१-६ | २ |
| १।८३।१-६ | २०।२।५।१-६ | ३ |
| १।८४।१३-१५ | २०।४।१।१-३ | ३ |
| १।८३।१-३, ४-६ | २०।५।१।१-३, ४-६ | ३ |
| १।८४।७-८ | २०।६।३।७-८ | ३ |
| १।८५।१-३-६ | २०।१०।१।१-३ | ३ |

कुछ उल्लेख मंत्रोंमें गोतम के नाम के उल्लेख मिलते हैं।
है। इनमें १-५७।१-६ के गोतम के मंत्रोंमें १-६
है जो अथर्ववेदमें भी मिलते हैं। २०।१।५।१-६
अथर्ववेदमें २०।१।५।१-६ के गोतम के मंत्रोंमें १-६
मिलते हैं जो अथर्ववेदमें २०।१।५।१-६ के गोतम के मंत्रोंमें १-६
है जो अथर्ववेदमें २०।१।५।१-६ के गोतम के मंत्रोंमें १-६
है जो अथर्ववेदमें २०।१।५।१-६ के गोतम के मंत्रोंमें १-६

गोतम ऋषिके मंत्रोंमें
स्वाग्निगोतमेभिर्कृतावा विधेनिरस्वोऽय जात-
वेदाः। (ऋ. १।७०।५)

अग्नि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विश्वरूपे ॥

नोधा ऋषिके मंत्रोंमें
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजी-
जनन् ॥ (ऋ. ८।८।४)

अथर्ववेदमें

मृगार ऋषिके मंत्रोंमें
यौ गोतममवचः ॥ (अथ. ४।२५।६)
अथर्वा ऋषिके मंत्रोंमें

भरद्वाज गोतम वामदेव ॥० मृडता नः ।

(अथ. १।८।३।१६)

इतने ऋषियोंके इन मंत्रोंमें 'गोतम' पद आया है और यहाँ-
के निर्देश मननीय हैं। (वयं गोतमासः त्वा प्रशंसामः) हम गोतम
ऋषि तेरी प्रशंसा करते हैं । 'गोतमासः ब्रह्माणि अकन्' गोतम
ऋषिओंने स्तोत्र किये । (गोतमः नव्यं ब्रह्म अतक्षत्) गोतम
ऋषिने यह नया सूक्त तैयार किया । (गोतमेभिः ब्रह्माणि अकारि)
गोतम ऋषियोंने अनेक सूक्त किये । (गोतमेभिः अग्निः
अस्तोष्ट) गोतमोंके द्वारा अग्नि प्रशंसित हुआ । (गोतम
दुवस्यति) गोतम स्तुति करता है । (गोतमा अमये वाचः भरस्व)
हे गोतमा अग्निके लिये वाणीसे स्तोत्र भर दे । (गोतमासः ब्रह्म
कृण्वन्तः) गोतमोंने स्तोत्र किये । (गोतमेभिः दिवः दुहिता स्तवे)
गोतमोंने उपाकी स्तुति की । (गोतमः अवसे हवते) गोतम
अपनी सुरक्षाके लिये स्तुति करता है । (गोतमाः इन्द्रं अवीतृ-
धन्त) गोतमोंने इन्द्रकी वधाई की । (गोतमा यं अजीजनन्)
गोतमोंने स्तोत्रको जन्म दिया । इस तरह पूर्वोक्त मंत्रोंमें गोत-
मोंने अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंके स्तोत्र बनाये ऐसा कहा है ।
यहाँ 'अकन्, अतक्षत्, अकारि, कृण्वन्तः' ये क्रियापद विचार
करनेयोग्य हैं । 'अतक्षत्' क्रियापद तो लकड़ीसे रथ निर्माण कर-
नेके समान स्तोत्र निर्माण करनेका भाव बता रहा है ।

यहाँ 'गोतमाः, गोतमासः' ये पद अनेक 'गोतम' थे
ऐसा भाव स्पष्ट रूपसे बता रहे हैं। अर्थात् यह पद गोतमके
वंशमें उत्पन्न ऋषियोंका वाचक है । 'गोतम' पदसे मूल 'गोतम'
ऋषिका बोध होता है, पर 'गोतमासः' पद गोतम कुल-
में उत्पन्न अनेक ऋषियोंका वाचक है । संभव है कि गोतम
ऋषिके गुरुकुलमें जो भी विद्वान् होंगे उनका सामान्यसे यह
नाम भी होगा ।

उक्त मंत्रोंमें कुछ अन्य बातें भी देखनेयोग्य हैं - (तृष्णजे
गोतमाय उत्सं सिञ्चन्) प्यासे गोतमके पानी पीनेके लिये

पानीका हौज भर दिया । (तृष्णजे गोतमाय
क्षरन्) गोतमको पानी पीनेके लिये भिसे रम
प्रवाह वहा दिया । (यौ गोतमं अवधा)
देवोंने गोतमकी सुरक्षा की थी ।

इससे पता लगता है कि गोतम ऋषिके
अग्निदेवोंने बड़ी दूरसे जलकी नहर लाकर
दिये, जिसके बाद वहाँ जलकी विपुलता हो गयी

ब्राह्मणग्रंथोंमें गोतमका

विदेघो ह माथवोऽग्नि वैश्वानरं मुने
तस्य गोतमो राहुगण ऋषिः पुरोहित
तस्मै ह स्मामन्यमाणो न
नेम्नेऽग्निर्वैश्वानरो मुखान्निष्पद्यता
तमृग्भिर्हयितुं दध्रे । वीतिहोत्रं ताम
॥११॥... स ह नैव प्रतिशुश्रव
घृतक्षत्रीमह इत्येवाभिव्याहरत् ।
घृतकीर्तावेवाग्निर्वैश्वानरो ३ ।
तन्न शशाक धारयितुं, सोऽस्य
स इमां पृथिवीं प्रापादः ॥१३॥
माथव आस । सरस्वत्यां स तत एव
दहन्नभीयायेमां पृथिवीं, तं गोतमम्
विदेघश्च माथवः पश्चाद्
इमाः सर्वा नदीरतिददाह,
गिरेर्निर्धावति, तां हव नातिददाह,
तां पुरा ब्राह्मणा न
वैश्वानरेणेति ॥१४॥... स होवाच
माथवः, काहं भवानीत्यत एव ते
भुवनमिति होवाच, सैवाप्येतर्हि
हानां मर्यादा ते हि माथवाः ॥१५॥
वाच । गोतमो राहुगणः कथं नु न
माणो न प्रत्यश्रौषीरिति स हे
नरो मुखेऽभूत्, स नेम्ने
तस्मात्ते न प्रत्यश्रौषमिति ॥१८॥ तत
भूदिति । यत्रैव त्वं घृतक्षत्रीमह
हार्पिस्तदेव मे घृतकीर्तावेवाग्निर्वैश्वानरो
दुदज्वालीचं नाशकं धारयितुं स मे मुञ्च
रपादीति ॥१९॥ (श. भा. १।३।१।१-१६)

प्रातर्गौतमस्य चतुर्हस्तरः स्तोमो भवति ।

(श. ब्रा. १४.१.११)

‘ गौतम ऋषिने अग्निष्टोमकी रचना की ’ यहां ‘ प्रातः ’ पद अग्निष्टोमका वाचक है । इस यज्ञका विधान सिद्ध करने में गौतम ऋषि मुख्य है । इस तरह ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथोंमें गौतम ऋषिका वर्णन बड़े गौरवके साथ आया है । पुराणोंमें इसका नाम ‘ गौतम ’ हुआ है, इसका वर्णन वहां जो मिलता है वह ऐसा है—

गौतम

अग्नि, आग्निवेद्य, उद्दालक आरुणि, कुश्रि, साति तथा हारिद्रुमत इन ऋषियोंका पैतृक नाम अथवा गोत्र गौतम है । शांति, आनभिन्नात, भारद्वाज, आग्निवेद्य, मांदि सैतव तथा गार्ग्य ये सब गौतमके शिष्य हैं ।

महामारतमें गौतम नाम कई स्थानोंमें पाया जाता है ।

दीर्घतमा नाम शापादपिरजायत ॥२२॥

तत्पुत्रो वेदाधितप्रातः पत्नीं लेभे स विद्यया २३

तत्पुत्रीं रूपसंपत्तां प्रद्वेषीं नाम ब्राह्मणीम् ।

स पुत्राञ्जनयामास गौतमादीन्महायशाः ॥२४॥

(म. मा. आ. १०४)

गौतमके पितासा नाम दीर्घतमा । दीर्घतमा उच्यते ऋषिके पुत्रये । अथर्ववेद छंदे बन्धु देवोंके पुरोहित वृद्धसप्तिके द्वारा साधित होनेसे दीर्घतमा जन्मान्ध हुये । वे वेदज्ञ, प्राज्ञ, ब्रह्मज्ञ तथा बुद्धिमान् थे । प्रद्वेषी नामक ब्राह्मणोंके साथ दीर्घतमा विवाद हुआ । प्रद्वेषीने झूठका यज्ञ बढ़ानेवाले गौतम को दंड देनेकी कोशिश की ।

यही यज्ञ अन्य स्थानमें अन्य प्रकारसे पाया जाता है ।

स शापादपिमुच्यस्य दीर्घे तम उपोषिवान् ।

न हि दीर्घतमा नाम जान्ता शास्त्रीर्वापिः पुरा ५४

प्रातृपूर्वेषु विधित्वा कश्यपि पुनः पुनः ।

स च भुजगान्ममभवन् गौतमश्चाभवत्पुनः ॥५६॥

(म. मा. शा. ३.६१)

वृद्धसप्तिके कारणसे जन्मान्ध होनेपर दीर्घतमा ऋषिने अथर्ववेद छंदसे यज्ञका यज्ञ करनेसे वैश्वदेवपुत्र हुये और उस कारणसे गौतम इस नामसे उद्भवने लगे ।

शरद्वतस्तु दायादमहल्या संप्रमृत्त ।

शतानन्दमृषिश्चेष्टं तस्यापि सुमहत्तमः

(नल् ३)

वैश्वत मन्वन्तरके मृषिर्षिर्षि गौतम त आपका नाम शरद्वत गौतम ऐसा भी कहा गया है ।

प्रसिद्ध मती अहल्या आपकी पत्नी थीं । इन्हे

पुत्र हुआ । विद्वान् होनेपर शतानन्द जनक हुए ।

गौतम तथा आङ्गिरस इन दोनोंके संवाद

संवाद हुआ या । महामारतके अनुवाद किया है ।

अध्यायमें मॉम्ने उस संवादका अनुवाद किया है ।

महामारतमें आपके विषयमें और एक कथा है

कश्यपोऽत्रिधैसिष्ठश्च भरद्वाजोऽप्य गो-

विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी नाम-

ते च सर्वे तपस्यन्तः पुरा चेदमर्षिमिन्द्र-

समाधिनापशिक्षन्तो ब्रह्मलोकं सनातन-

अथाभवदनावृष्टिमहंती कुदन्तन्दन ।

कृच्छ्रप्राणोऽभवच्च लोकोऽयं वै

(म. मा. ऋ. ३)

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र

जमदग्नि इत्यादि ऋषि और वसिष्ठपत्नी अहल्या, वे

चिके द्वारा सनातन लोक पानेके लिये इस वृक्ष

करते हुये विचरते थे । अनन्तर अनावृष्टि होनेके कारण

शुष्यानुर होनेके कारण बड़े दुर्बल हुये ।

पृथ्वीनाथ शैव्य गृपादार्मिने उन क्रोध पाने लगे

देखा और यह बोला—

गृपादार्मिदवाच—

प्रतिग्रहस्तारयति पुष्टिं प्रतिगृह्णाम् ।

मयि यद्विद्यते चित्तं तद्गृह्ण्य तपोधनाः ॥१॥

‘ हे तपस्विगण, दान लेनेसे पुत्र देवों के

इसलिये आप लोग पुष्टिके लिये प्रतिग्रह ग्रहण करें । ’

जो वन है, उसे आप मांगिये । ’

परन्तु उन निलोमी ऋषिवर्गके मनमें यह बात नहीं

उन्हे उत्तर दिया ।

कश्यप कतुः —

राजप्रतिग्रहो राज्ञो मध्यास्वादा विधानः ॥२॥

तज्जानमानः कस्मात्वं कुदने नः प्रदोषन् ॥३॥

(म. मा. ऋ. ३)

गौतम ऋषिका तत्त्वज्ञान

महाराज, राजाओंका प्रतिमद मधुरकी भीति स्वाद्युक्त
किन्तु वह विपके समान है । तुम उसे जानते हुवे-भी
स लिये लोभ दिख रहा हो ?' ऐसा कहकर गौतमादि
ने अन्त्य गमन किया ।

उनके उत्तक नामक एक शिव शिष्य थे । उनके गुरुभक्ति-
न्त हुवे हुवे गौतम उन्हें बोले—

यं च परितुष्टं मां विजानीहि भृगुद्वह ।

युवा पोडशवर्षो हि यद्यद्य भविता भवान् ॥२२॥

यामि पत्नीं कन्यां च स्वां ते दुहितरं द्विज ।

तामृतेऽङ्गता नान्या त्वत्तेजोऽर्हति सेवितुम् २३

हे भृगुओंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्तिते मैं संतुष्ट हुआ हूँ । हे

२, जब यदि तुम सोलह वर्षोंके युवक होते, तो मैं अपनी

३ तुम्हें पत्नी रूपसे दान करता । इस कन्याके अतिरिक्त

४ कोई भी तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ नहीं है ।

—

तां प्रतिजग्राह युवा भूत्वा यशस्विनीम् ।

गा चाभ्यनुशातो ॥२४॥

(म. भा. आश्व. ५६)

५ मुनिने युवा होकर गुरुकी आज्ञानुसार उस यशस्विनी

६ प्रहण किया । गौतमके साथ यम तथा गौतमका संवाद

—

रियात्रं निर्दि प्राप्य गौतमस्याश्रमो महान् ।

वास गौतमो ॥४॥

सुप्रतपसा युक्तं भवितुं सुमहामुनिम् ॥ ५ ॥

प्रयतो नरव्याघ्र लोकपालो यमस्तदा ।

निपद्यत्सुतपसमृषिं वै गौतमं तदा ॥ ६ ॥

स तं विदित्वा ब्रह्मर्षियममागतमोजसा ।

मञ्जलिः प्रयतो भूत्वा उपविष्टस्तपोधनः ॥ ७ ॥

तं धर्मराजो दृष्ट्वैव सत्कुलैव द्विजर्षभम् ।

मन्त्रव्रत धर्मेण क्रियतां किमिति वृणु ॥ ८ ॥

गौतम उवाच—

मातापितृभ्यामानुष्यं किं कृत्वा समवाप्नुयात् ।

यं च लोकानान्जोति पुरुषो दुर्लभान्मुचीन् ६

यम उवाच—

तपःशौचव्रता नित्यं सत्यधर्मस्तेन च ।

मातापित्रोरदरः पूजनं कार्यमङ्गता ॥ १० ॥

१ (गौतम)

अश्वमेधैश्च यष्टव्यं बहुभिः स्वातदक्षिणैः ।

तेन लोकानवाप्नोति पुरुषोऽद्भुतदर्शनान् ॥२१॥

(म. भा. शा. १२९)

‘ पारियात्र पर्वतके समीप गौतमका विशाल आश्रम था ।
गौतम उसमें रहता था । उस महामुनिकी उग्र तपस्या देखकर
लोकपाल यम उनके निकट गया और उस समय गौतम
ऋषिकी अत्यन्त कठोर तपश्चर्या करनेमें तत्पर देखा । तपस्वी
ब्रह्मर्षि गौतम तेजयुक्त और प्रभावशाली यमको आया हुवा
देखकर हाथ जोड़कर उठकर खड़े हुवे । धर्मराज यमने
उन्हीं देखतेही धर्मके अनुसार सत्कार करते हुवे उनमें पूजा
“ मैं आपका क्या कार्य करूँ ? ”

गौतम बोले, “ क्या करनेसे पुरुष मातापितासे उद्ग्राण
होता है और किस प्रकार पवित्र तथा दुर्लभ लोगोंको प्राप्त
करता है ?

यम बोले, ‘ तपस्या और पवित्र आचारयुक्त तथा नियम
और सत्य धर्ममें रत पुरुष सदा मातापिताकी पूजा करके
उनका उद्ग्राण होता है । तथा बहुतसा दक्षिणासे युक्त अधर्मेध
यज्ञ करनेसे अद्भुत तथा दुर्लभ लोगोंको प्राप्त है । ’

गौतमके उदार स्वभावके विषयमें नारदीय महापुराणमें एक
कथा उपलब्ध है ।

तपस्यन्तो मुनेस्तस्य द्वादशशब्दमवर्णनम् ॥

यभूव घोरं विधिजे सर्वसत्त्वक्षयंहरम् ॥ ६ ॥

तस्मिन्नुप्रे तु दुर्मिधे क्षुक्षामा मुनयोऽपिलाः ।

नाना देशेभ्य आयाता गौतमस्याश्रमं शुभम् ७

चतुर्विंशत्तपस्य गौतमस्य तपस्यतः ।

देहि नो भोजनं येन प्राणास्तिष्ठन्ति यमंतु ॥८॥

गौतम उवाच—

तिष्ठथ मुनयः सर्वे नम्राधमसर्मापतः ।

भोजनं नः प्रदास्यामि यावद्भूमिदमादताः ॥९॥

(म. भा. शा. १२९)

गौतम केवलसे उनके शिष्य गौतमके शिष्य
करते रहे । यमका कथन करने के बाद यम
और गौतम गये । उन दोनोंके शिष्य गौतमके शिष्य
गौतमके शिष्य गौतमके शिष्य गौतमके शिष्य
गौतमके शिष्य गौतमके शिष्य गौतमके शिष्य
गौतमके शिष्य गौतमके शिष्य गौतमके शिष्य

गौतम बोले, 'चिन्ता करनेका कारण नहीं है। जबतक अकाल रहेगा तबतक आप सब भरे निकट रहिये। मैं आपके भोजनादिका प्रबंध कहूंगा।'

बारह वर्षोंतक मुनिगण वहीं रहे। वर्षा होकर पृथ्वी धान्यादिसे संपन्न होनेपर प्रसन्न चित्तसे गौतमकी शुभ कामना करते हुवे वे वहांसे अपने अपने देश गये।

इस स्थानमें गौतमको मायादेवीका पुत्र कहा है। विचारक इस नामके बारेमें विचार करें।

गौतम एक धर्मशास्त्रकार थे। वे सामवेदकी राणायणी शाखाके नौ उपशाखाओंमें एक शाखाके अनुयायी थे। लाज्यायनीय श्रौतसूत्रमें—

उत्तमयोरिति गौतमः ॥१७॥

इस सूत्रकी टीका करते हुवे गौतमको आचार्य कहा है। सामवेदके गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कई जगह गौतमका नाम आया है। गौतमस्मृति गद्यमय ग्रन्थ है। इसमें स्वयं ग्रन्थकारने किया हुआ अथवा अन्य किसीका एक भी श्लोक नहीं है। इस ग्रन्थके अट्ठाईस भाग हैं। कलकत्तामें छपी हुई गौतमस्मृतिमें उनतीस भाग हैं। परन्तु हरदत्तकी मिताक्षरामें इस उनतीसवें भागका उल्लेख न होनेसे संभवतः वह भाग प्राक्षिप्त है।

गौतम धर्मसूत्रमें व्यवहार, उपनयनादि संस्कार, विवाह तथा उनके प्रकार, प्रायश्चित्त, राजधर्म, त्रियोंके कर्तव्य, नियोग, मद्रापातक तथा उपपातक, उनके प्रायश्चित्त, कुच्छू, अतिकुच्छू इत्यादि विचार किया हुआ है। तथा इसमें संहिता, ब्राह्मण, पुराण इत्यादि ग्रंथोंके उल्लेख कई जगह किये हैं।

गौतम धर्मसूत्रमें गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पहलीबार किया हुआ पाया जाता है। वशिष्ठ धर्मशास्त्र, अपराक, तंत्रचरित्र, शाकलभाष्य, इत्यादिमें भी गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाता है। मनुस्मृतिमें गौतमका—

सूत्रावेदी पतत्यत्रेदतथ्यतनयस्य च।

इस प्रकार उत्पन्नतनय इस नामसे उल्लेख किया हुआ है। मनुस्मृतिमें भी एक जगह गौतमका सुरापानका निषेध करने का उल्लेख है। गौतमका नाम वशिष्ठ तथा बोधायन के बाद प्रतीत होता है कि गौतम वशिष्ठ और बोधायन दोनों ही कई राज्योंका मत है कि गौतम

धर्म शास्त्रमें 'यवन' शब्दका उपयोग किया जाता है। और भारतको 'यवन' शब्दका प्रयोग नन्दरके आक्रमणके बाद (ख्रिस्तान्दपूर्व ३२२) गौतमका काल इस आक्रमण कालके बाद माना परन्तु यह मत असंगत है। स्वयं गौतमकी स्मृति 'क्षत्रिय और शूद्रोंके संयोगसे जन्म पाई हुई' देते हैं। केवल 'यवन' शब्दपरसे गौतमका जन्म करना योग्य नहीं है। तथापि कई ऐसा मानते हैं ६००-७०० वर्षके मध्यमें यह गौतम काल होना पर यह भी विवाहास्पद है। गौतम धर्मसूत्रपर क्षुरा नामक टीका, और मम्करी तथा असहाय इनके भाष्य लिखे हैं। परन्तु ये तीनों अर्वाचीन ग्रंथ हैं। स्मृतिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंमें शूद्रोंके गौतम, तथा दत्तक मीमांसामें बृहद्गौतम और उल्लेख है। जीवानन्दने १७०० श्लोकोंकी गौतमी की है। श्रीकृष्णने धर्मराजको चातुर्वर्ण्य-धर्म-व्यवस्था लिये वह स्मृति कथन की, ऐसा उस स्मृतिके ज्ञात होता है। परन्तु संभवतः वह स्मृति मेघिक पर्वसे ली गई होगी। क्योंकि अन्य कई ग्रन्थोंमें इस स्मृतिके इलाक आश्रित हुवे हैं। गौतमके नामपर और भी आग्निहोत्र, दान चन्द्रिका, न्यायसूत्र, गौतमी शिक्षा इत्यादि ग्रंथ हैं। पर ये सब वैदिक कालके गौतम ऋषिके हैं। कठिन है।

अब कुछ अन्य गौतमोंका वर्णन करते हैं—

द्वितीय गौतम— इस गौतमके बारेमें महापर्वमें—

आसन्नपूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः
पकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभः
तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन व्रमेन
अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा

(म. भा. भा. १. १. १)

'पूर्वकालमें सूर्यके सदृश तेजस्वी ऐसे पुरुषों का प्रसन्न होकर वे तीन बन्धु थे। उनके पिताका नाम गौतम था। उल्लेख है।

तृतीय गौतम— इस गौतमकी विवरणकी नाम है—

गौतम ऋषिका तत्त्वज्ञान

ये गौतमने अपनी दुराचारी माताका वध करनेको
रन्तु चिरकाली विचारवान् होनेके कारण उसके हाथसे
न हो सका । यह कथा महाभारत शान्तिपर्वके २६६वे
विस्तारसे कही हुई है ।

गौतम— इस गौतमके बारेमें भागवतमें—
‘आदिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ।
‘अतन्नाय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥
‘गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥३२॥
(भा. १२।११)

‘गौतमादि भगवान् सूर्यके साथ भिन्नभिन्न मासोंमें
चरते हैं’ ऐसा कहा है ।

गौतम— महाभारतके शान्तिपर्वमें १६८ से लेकर
१७६ एक दुराचारी गौतमकी कथा विस्तारसे कही हुई है ।

गौतम— यह गौतम अत्रिकुलका एक व्रजपति था ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।

गौतम— ‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।

गौतम— ‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।

गौतम— ‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।

गौतम— ‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।

गौतम— ‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।
‘गौतम’ नामसे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।

‘राजाही धर्म तथा प्रजापति है । इसीको इन्द्र, रुद्र,
धाता, बृहस्पति इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं । अत एव जो
राजाकी स्तुति करता है, उसको निन्दा न करनी चाहिये ।’
सनातकुमारका यह वचन सुनकर गौतम ऋषि चुप हुए ।

इस गौतमका उल्लेख और एक जगह उपलब्ध है । सामि-
ग्रीके पति सत्यवान्के पिता धुमन्तेन अपने पुत्रके मृत्युकी
आशंका कर शोक कर रहे थे । उन्हें समझाते हुये गौतमने
कहा—

अनेन तपसा वेद्मि सर्वं परिचिकीर्षितम् ।
सत्यमेतन्निबोधध्वं प्रियते सत्यवानिति ॥३३॥
(म. भा. व. २९८)

‘अर्थात् मैं अपने तपसे बलसे भविष्य तथा वर्तमान देख
रहा हूँ । आप विधास की जेबें कि सत्यवान् जन्मित हैं ।’
गौतमके भविष्यके अनुसार सत्यवान् बचने लगे थे ।

गौतम और अहल्या

गौतम ऋषि और अहल्याकी कथा ब्रह्मवैवर्त पुराणमें
तथा अमरकान्त पुराणमें है । गौतम ऋषि और अहल्या
कथामें न्यूनाधिक भिन्न है । हमने इन दोनों कथाओं का
विचार करना नहीं है, हमने यह कथा कही जानी है, जो
स्थानके पते इन कथाओं से है—

१ ब्राह्मणीकरण रामायण ३।१३.१, ३।१३.२, ३।१३.३
उत्तर-काण्ड ख. २७:

२ किमपुराण ३।२५

३ गौतमपुराण ३।३५, ३।३६

४ अमरकान्त ३।१३.१-३

५ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

६ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

७ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

८ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

९ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

१० ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

११ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

१२ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

१३ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

१४ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

१५ ब्रह्मवैवर्त ३।१३.१-३

मोक्ष को, 'निवेष्टा करने का कार्य नहीं है। जगत का प्रकाश देना जगत का सब भरे निकट रहिये। मैं आपके मोक्ष के लिए प्रार्थना करूँगा।'

बारह वर्षों तक मुनिगण नहीं रहे। वर्षा होकर पृथ्वी धान्यादिसे संतप्त होने पर पशुपतिसे गौतमकी शुभ कामना करते हुये वे वनसे अपने अपने देश गये।

इस स्थानमें गौतम को मानादेवी का पुत्र कहा है। विचारक इस नामके बारेमें विचार करें।

गौतम एक धर्मशास्त्रकार थे। वे सामवेद की राणावणी शास्त्राके भी उपशास्त्राओंमें एक शास्त्राके अनुयायी थे। लाज्यापयोग भीतमूल्यमें—

उत्तमयोरिति गौतमः ॥२७॥

इस सूत्रकी टीका करते हुये गौतमको आचार्य कहा है। सामवेदके गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कई जगह गौतमका नाम आया है। गौतमस्मृति गद्यमय ग्रन्थ है। इसमें स्वयं ग्रन्थकारने किया हुआ अथवा अन्य किसीका एक भी श्लोक नहीं है। इस ग्रन्थके अठ्ठाईस भाग हैं। कलकत्तामें छपी हुई गौतमस्मृतिमें उनतीस भाग हैं। परन्तु हरदत्तकी मिताक्षरामें इस उनतीसवें भागका उल्लेख न होनेसे संभवतः वह भाग प्राक्षिप्त है।

गौतम धर्मसूत्रमें व्यवहार, उपनयनादि संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार, प्रायश्चित्त, राजधर्म, त्रियोंके कर्तव्य, नियोग, महापातक तथा उपपातक, उनके प्रायश्चित्त, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र इत्यादिका विचार किया हुआ है। तथा इसमें संहिता, मातृगण, पुराण इत्यादि ग्रंथोंके उल्लेख कई जगह किये हैं।

बौधायन धर्मसूत्रमें गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पहलीबार किया हुआ पाया जाता है। वसिष्ठ धर्मशास्त्र, अपराक, तंत्र-चार्तिक, शांकरभाष्य, इत्यादिमें भी गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाया है। मनुस्मृतिमें गौतमका—

शूद्रावेदी पतत्यत्रेकतथ्यतनयस्य च।

इस प्रकार उतथ्यतनय इस नामसे उल्लेख किया हुआ है।

एक जगह गौतमका सुरापानका निषेध कर-

गौतमका नाम वसिष्ठ तथा बौधायन

इति प्रतीत होता है कि गौतम वसिष्ठ और

बौधायन होंगे। कई सज्जनोंका मत है कि गौतम

धर्मशास्त्रमें 'यवन' शब्दका उपयोग किया जाता है। और भारत में 'यवन' शब्दका

नन्दके आक्रमणके बाद (क्रिस्ताब्दपूर्व १२२

गौतम का काल इस आक्रमण कालके बाद मल्ल

परन्तु यह मत अग्रगत है। स्वयं गौतमकी स्मृति

'क्षत्रिय और शूरीके संगोगसे जन्म पाई हुई

वेते हैं। केवल 'यवन' शब्दपरसे गौतमका

करना योग्य नहीं है। तथापि कई ऐसा मत है

६००-७०० वर्षके मध्यमें यह गौतम काल हो

पर यह भी विवादास्पद है। गौतम धर्मसू

क्षरा नामक टीका, और मरुहरी तथा असह्य

माण्य लिखे हैं। परन्तु ये तीनों अवाचीन ग्रंथ हैं।

स्थितिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंमें श्लोक गौतम,

तथा वक्तव्य मीमांसामें बृहद्गौतम और

उल्लेख है। जीवानन्दने १७०० श्लोकोंकी गौतमस्मृति

की है। श्रीकृष्णने धर्मराजको चातुर्वर्ण्य-धर्म-व्यवस्था

लिये वह स्मृति कथन की, ऐसा उस स्मृतिके

शात होता है। परन्तु संभवतः वह स्मृति महाभारतके

मेधिक पर्वसे ली गई होगी। क्योंकि पराशरामृतके

अन्य कई ग्रन्थोंमें इस स्मृतिके श्लोक

हुये हैं। गौतमके नामपर और भी आन्दिहस्त,

दान चन्द्रिका, न्यायसूत्र, गौतमी शिक्षा इत्यादि

हैं। पर ये सब वैदिक कालके गौतम ग्रन्थोंके हैं

कठिन है।

अब कुछ अन्य गौतमोंका वर्णन करते हैं—

द्वितीय गौतम— इस गौतमके बारेमें पूर्वमें—

आसन्नपूर्वयुगे राजन्मुनयो आतरस्त्रयः ॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ॥

तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥

अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा

(म. भा. का. ११)

'पूर्वकालमें सूर्यके सदृश तेजस्वी ऐसे एक, द्वि

त्रित ये तीन बन्धु थे। उनके पिताका नाम गौतम

उल्लेख है।

तृतीय गौतम— इस गौतमको चित्रकली नामक पुत्र

गौतम बोले, ' चिन्ता करने का कारण नहीं है । जबतक अफाल रहेगा तबतक आप सब मेरे निकट रहिये । मैं आपके भोजनादि का पबंध करूँगा । '

बारह वर्षों तक मुनिगण नहीं रहे । वर्षा होकर पृथ्वी धान्यादिसे संपन्न होनेपर प्रसन्न चित्तसे गौतमकी शुभ कामना करते हुये वे वहाँसे अपने अपने देश गये ।

इस स्थानमें गौतमको मायादेवीका पुत्र कदा है । विचारक इस नामके बारेमें विचार करें ।

गौतम एक धर्मशास्त्रकार थे । ये सामवेदकी राणावणी शास्त्राके नौ उपशास्त्राओंमें एक शास्त्राके अनुयायी थे । लाय्यायनीय श्रौतसूत्रमें—

उत्तमयोरिति गौतमः ॥१७॥

इस सूत्रकी टीका करते हुये गौतमको आचार्य कहा है । सामवेदके गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कई जगह गौतमका नाम आया है । गौतमस्मृति गद्यमय ग्रन्थ है । इसमें स्वयं ग्रन्थकारने किया हुआ अथवा अन्य किसीका एक भी श्लोक नहीं है । इस ग्रन्थके अट्ठाईस भाग हैं । कलकत्तामें छपी हुई गौतम-स्मृतिमें उनत्तीस भाग हैं । परन्तु हरदत्तकी मिताक्षरामें इस उनत्तीसवें भागका उल्लेख न होनेसे संभवतः वह भाग प्राक्षिप्त है ।

गौतम धर्मसूत्रमें व्यवहार, उपनयनादि संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार, प्रायश्चित्त, राजधर्म, स्त्रियोंके कर्तव्य, नियोग, महापातक तथा उपपातक, उनके प्रायश्चित्त, कुच्छू, अतिकुच्छू इत्यादिका विचार किया हुआ है । तथा इसमें संहिता, ब्राह्मण, पुराण इत्यादि ग्रंथोंके उल्लेख कई जगह किये हैं ।

बौधायन धर्मसूत्रमें गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पहलीबार किया हुआ पाया जाता है । वसिष्ठ धर्मशास्त्र, अपराक, तंत्र-वार्तिक, शांकरभाष्य, इत्यादिमें भी गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाया है । मनुस्मृतिमें गौतमका—

शूद्रावेदी पतत्यग्रेरुतथ्यतनयस्य च ।

इस प्रकार उतथ्यतनय इस नामसे उल्लेख किया हुआ है । भविष्य पुराणमें भी एक जगह गौतमका सुरापानका निषेध करनेवाला करके उल्लेख है । गौतमका नाम वसिष्ठ तथा बौधायन के ग्रन्थोंमें आनेसे यह प्रतीत होता है कि गौतम वसिष्ठ और बौधायनके पूर्व कालीन होंगे । कई सज्जनोंका मत है कि गौतम

धर्मशास्त्रमें ' गान ' शब्दका उपयोग किना हुआ देखेता है । और भारतको ' यवन ' शब्दका परिचय जलपान-न्दरके आक्रमणके बाद (क्रिस्ताब्दपूर्व १२२ वर्ष) होने गौतमका काल इस आक्रमण कालके बाद मानना पड़ता है परन्तु यह मत असंगत है । स्वयं गौतमकी यवन शब्दका ' क्षत्रिय और शूरीके संयोगसे जन्म पाई हुई संतति ' ऐसा नेते हैं । केवल ' यवन ' शब्दद्वारासे गौतमका काल निश्चय करना योग्य नहीं है । तथापि कई ऐसा मानते हैं कि क्रि. पू. ६००-७०० वर्षके मध्यमें यह गौतम काल होना संभवनीय है पर यह भी विवादास्पद है । गौतम धर्मसूत्रपर हरदत्तने मिताक्षरा नामक टीका, और मरुहरी तथा असहाय इन दो विश्वामित्रे माध्य लिखे हैं । परन्तु ये तीनों अर्वाचीन ग्रंथ हैं । मिताक्षरा, स्मृतिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंमें श्रुतिक गौतम, और अन्तर्गत तथा दत्तक मीमांसामें बृहद्गौतम और बृहद्गौतम उल्लेख है । जीवानन्दने १७०० श्लोकोंकी गौतमस्मृति प्रकाशित की है । श्रीकृष्णने धर्मराजको चातुर्वर्ण्य-धर्म-व्यवस्था कहने लिये वह स्मृति कथन की, ऐसा उस स्मृतिके उल्लेखपरसेही शात होता है । परन्तु संभवतः वह स्मृति महाभारतके आश्वमेधिक पर्वसे ली गई होगी । क्योंकि पराशरमाधवीय तथा अन्य कई ग्रन्थोंमें इस स्मृतिके श्लोक आश्वमेधिकपर्वसे लिखे हुये हैं । गौतमके नामपर और भी आग्निहोत्रसूत्र, गृह्यसूत्र, दान चन्द्रिका, न्यायसूत्र, गौतमी शिक्षा इत्यादि ग्रंथ उपलब्ध हैं । पर ये सब वैदिक कालके गौतम ऋषिके हैं ऐसा कहना कठिन है ।

अथ कुछ अन्य गौतमोंका वर्णन करते हैं—

द्वितीय गौतम— इस गौतमके बारेमें महाभारतके शल्य पर्वमें—

आसन्पूर्वयुगे राजन्मुनयो आतरस्त्रयः ॥७॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ॥८॥

तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥९॥

अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा ॥१०॥

(म. भा. शा. ३६)

' पूर्वकालमें सूर्यके सदृश तेजस्वी ऐसे एकत, द्वित तथा त्रित ये तीन बन्धु थे । उनके पिताका नाम गौतम था, ' ऐसा उल्लेख है ।

तृतीय गौतम— इस गौतमको चिवकाली नामक पुत्र था ।

गौतमने अपनी दुराचारी माताका वध करनेको मनु चिरकाली विचारवान होनेके कारण उसके हाथसे नहीं हो सका । यह कथा महाभारत शान्तिपर्वके २६६वें विस्तारसे कही हुई है ।

गौतम— इस गौतमके बारेमें भागवतमें—
वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ।
भक्त्या चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥
गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥३२॥
(भा. १२।११)

गौतमादि भगवान् सूर्यके साथ भिन्नभिन्न मासोंमें रहते हैं ' ऐसा कहा है ।

गौतम— महाभारतके शान्तिपर्वमें १६८ से लेकर १७१ तक दुराचारी गौतमकी कथा विस्तारसे कही हुई है ।

गौतम— यह गौतम अत्रिकुलका एक ब्रह्मर्षि था ।
इसमें कौंचे लिखी हुई कथा पाई जाती है ।

१६ बार अत्रि ऋषि वैश्य राजाके यज्ञमें जाकर उसकी हत्या करने लगे ।

अत्रिब्राह्मण—

एकस्मिन्स्वामीशब्ध भुवि त्वं प्रथमो नृपः ॥१३॥
तुम इन्द्र, तुम धन्य हो । तुम ईश्वर सदृश हो । पृथ्वीपर
तुम ही प्रथम हो ।

उस वृद्ध ने बैठे हुये गौतम-नामा ऋषि कुछ होकर उन्हें

पुनर्जन्म पुनर्जन्म न ले प्रश्ना समाहिता ।

अतः प्रथमे स्थाता महेन्द्रो वै प्रजापतिः ॥१५॥
(न. भा. व. १८५)

इस वृद्ध दक्षिणा पानेके लिये राजाकी स्तुति कर रहे थे । महेन्द्राक्ष इन्द्र हैं, वेही प्रजापति हैं । तुम ऐसे ब्रह्मर्षि हो । मेरी सनसते तुम्हारी बुद्धि प्रष्ट हो रही है । इस प्रकार दोनोंने सर्वा छिडनेपर अन्तमें सन्तुष्टि स्वीकार किया ।

गौतमके १८—

गौतमो धर्मः प्रजानां पतिरेव च ।

गौतमः पुत्रश्च स धाता स बृहस्पतिः ॥१६॥
(न. भा. २. ८५)

'राजाही धर्म तथा प्रजापति है । इसीको इन्द्र, रुद्र, धाता, बृहस्पति इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं । अत एव जो राजाकी स्तुति करता है, उसको निन्दा न करनी चाहिये ।'
सनत्कुमारका यह वचन सुनकर गौतम ऋषि चुप हुए ।

इस गौतमका उल्लेख और एक जगह उपलब्ध है । सावित्रीके पति सत्यवान्के पिता सुमन्वेन अपने पुत्रके मृत्युकी आशंका कर शोक कर रहे थे । उन्हें सनसते हुये गौतमने कहा—

अनेन तपसा वेद्मि सर्वं परिचिकीर्षितम् ।
सत्यमेतान्नियोधध्वं प्रियते सत्यवानिति ॥१३॥
(न. भा. व. २९८)

' अर्थात् मैं अपने तपो बलसे भविष्य तथा वर्तमान देख रहा हूँ । आप विश्वास कीजिये कि सत्यवान् जीवित है ।' भा-
खरौ गौतमके भविष्यके अनुसार सत्यवान् वरुण लैंड में गये

गौतम और अहल्या

गौतम ऋषि और अहल्याकी कथा वाल्मीकीय रामायणमें तथा अन्यान्य पुराणोंमें है । रामः अधिक दुरागर्भे इन कथामें न्यूनतमिक निरुद्धा है । हमें इन दोनोंमें राम का विचार करना नहीं है, इनमें यह कथा कही जाती है, इस स्थानके पते हम यहां देते हैं—

१ वाल्मीकीय रामायण वा. ५८. १६, लो. १८. १६
उत्तर-काण्ड ल. २५।

२ छिगपुराण अ. २५

३ गणेशपुराण ॥३०॥ १. ११

४ ब्रह्मपुराण २. १६। १-४८

५ पद्मपुराण ल. ५५

६ स्कन्दपुराण

७ अष्टावक्ररामायण, ५ अ. ५

८ आनन्दरामायण ल. ६

९ शक्तिरा रामायण (१.१), लो. १८. १६

इसके स्थानपर गौतम और अहल्याकी कथा का वर्णन है ।
इसके तत्त्वज्ञान के संबंध में भी कुछ कहा गया है ।
इसके अन्त में कुछ और भी कहा है ।
इसके अन्त में कुछ और भी कहा है ।

एक बार ये तपस्याके लिये बाहर गये थे, उस समय इनके आश्रममें इन्द्र आया। वहाँ अरेली अद्व्या गी। गौतम जागें वहाँ नहीं थे, अपने तप करनेके स्थानमें गये थे। इन्द्र और अद्व्या भी बातचीत हुई और इन्द्र का संवन्ध अद्व्यासे हुआ। वा० रामायणका कहना है कि यह गौतम नहीं है और इन्द्र है, यह जानकर अद्व्याने इन्द्रके साथ संबंध किया। और पश्चात् "मे सन्तुष्ट हुई हूँ, अतः तुम इस मार्गसे जाओ, गौतम अनिष्टा समय हुआ है" ऐसा भी कहा। अन्य प्रयोगोंमें इससे विभिन्न कहा है। पश्चात् गौतम अपने आश्रममें आये और जो हुआ वह जानकर उसने अद्व्याका त्याग कर तप करनेके लिये किसी दूसरे स्थानपर गये।

पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी आये और उन्होंने उसकी शुद्धि की और वह गौतम ऋषिके साथ पुनः प्रेमसे रहने लगे।

इस कथाका तात्पर्य यह है, कि तपश्चर्या करनेवाला पुरुष तरुणी सुन्दरी युवतीसे विवाह न करे, और यदि करे, तो उसकी गृहस्थ धर्मसे रहकर सन्तुष्ट करता रहे और उतनाही समय तपस्याके लिये दे कि जिससे अपनी धर्मपत्नीकी कुठम करने तक संयम करनेका भार सहनेकी आपत्ति न भोगनी पड़े। मनके कामादि विकार बड़े प्रबल रहते हैं और दवाने पर भी अवसर आनेपर भडक उठते हैं। इसलिये पति का ही यह उत्तरदायित्व है, यह बतानेके लिये वा० रामायणमें यह कहा

इस तरह की है।

परमें पन्द्रहमें युवती स्वयंकर यह गौतम ऋषि तपस्यामें रहता है। संयम करनेपर भी अद्व्यासे समयपर प्रसाद हुआ अर्थात् यह अपराध गौतम का था, ऐसा आचरणावयव का भाग है। अन्य पुराणोंमें कुछ अन्य प्रकारसे यह कहा लिखी

गौतम का पारस्व्य होनेके लिये यह शानी ही क्या दवाले पाँचवा नाग्यमें गौतम को देव सेना का सेनापति बतलाया है। युद्ध करते करते वहने पर ने किसी जगद् विभ्राम तथा नि लेने लगे और येना-संनालन इन्द्र करने लगा। ऐसी अस्स इन्द्र और अद्व्या का संबंध हुआ। वहाँ तपका नामवक्तन है। कुछ भी दी, वहाँ इतना गत्य है कि वा० रामायण अ नाग्य प्रयोगोंमें कहा आने इतना गौतम अतिप्राचीन है।

इस तरह गौतम ऋषिके विषयमें महाभारत, रामायण व पुराणोंमें वर्णन है। पाठक इसका मनन करें। इस वर्णन देखनेसे अनेक गौतम थे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इन्होंने प्राचीन थे वेही वैदिक गौतम हैं ऐसा मानना योग्य है।

औद्य जि. सातारा

११११४६

निवेदन कर्ता

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल

| | |
|--|--|
| न योरुपधिदरदयः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि इत्यम् ७ | |
| त्वोतो वाज्यद्वयोऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाध्याँ अग्ने अस्यात् ८ | |
| उत घुमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुपे ९ | |

७ हे अग्ने ! यत् त्वयं यासि, रथस्य योः अद्वयः कच्चन उपधिदः न शृण्वे ॥

८ हे अग्ने ! दाध्यान् त्वोतः वाजी भदयः पूर्वस्मात् अपरः अभि प्र अस्यात् ॥

९ हे देव अग्ने ! देवेभ्यः दाशुपे घुमत् उत बृहत् सुवीर्यं विवाससि ॥

७ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये जाता है, तू तुम्हारे रथके अथवा घोड़ोंके गमनका कोई भी शब्द सुन नहीं देता है ॥

८ हे अग्ने ! जब दाताको तेरी सुरक्षा प्राप्त हुई, तब वह बलवान् बना और उसकी हीन अवस्था दृढ़ गयी, तथा वह परिणाम अवस्थासे उच्च अवस्थामें पहुँच चुका (ऐसा समझना चाहिये) ॥

९ हे अग्निदेव ! देवोंके लिये जो हवि देता है उस दाताके लिये तू तेजस्वितासे युक्त बड़ा प्रभावी वीर्य देता है

अग्रणी क्या करे ?

अग्नि अग्रणी है, क्योंकि वह जो कार्य शुरु करता है वह अग्रतक, अन्ततक (अग्रं नयति) पहुँचाता है, बीचमें नहीं छोड़ता। अग्निके जो कर्तव्य यहाँ कहे हैं वे समाज या राष्ट्रमें अग्रणीके कर्तव्य हैं, देखिये इस दृष्टिसे इस सूक्तका आशय क्या होता है। यह टिप्पणी पूर्वोक्त मंत्रोंके क्रमसे ही देखनी चाहिये —

१ हे अग्रणे ! तू (अपने अनुयायियोंके) जो हिसारहित कार्य होंगे उनमें जा, और समीपसे अथवा दूरसे उनके कथनोंको सुन, (और उनके कष्टोंको दूर करनेका यत्न कर।

२ जो वीर युद्ध करनेके लिये जाते हैं, उनमें जो दाता होंगे, अथवा उदार होंगे, उनके घरोंकी सुरक्षा सबसे प्रथम कर (और पीछेसे अन्योकी सुरक्षा कर, इससे सब वीर उदार बनेंगे और उनमें कोई स्वार्थतत्पर नहीं रहेगा।)

३ (तुम्हें देखकर) सब लोग यही कहें की युद्धोंमें निःसन्देह विजय प्राप्त करनेवाला और शत्रुका समूल नाश करनेवाला (यह अग्रणी अपने प्रभावसे ही इन लोकोंमें) प्रकट हुआ है।

४ जिन लोगोंके सत्कर्ममें तू सहायक होता है, उनके उन कर्मोंसे सब दिव्य विपुलोंको योग्य भोग मिलते हैं और उनके सभी हिसारहित कर्म दर्शनीय तथा चित्ताकर्षक होते हैं।

५ हे अंगप्रस्यंगको बलवान् बनानेवाले और बलके कार्योंके लिये ही उत्पन्न हुए वीर ! (जो पूर्वोक्त प्रकार प्रशस्ततम

कर्म करता है।) उसीको उत्तम हविष्याय देनेवाला, उत्तम तेजस्वी और उत्तम सहाय्य करनेवाला (सब लोग) कहते हैं।

६ हे तेजस्वी अग्रणे ! तू उत्तम दिव्य विपुलों, ज्ञानियोंके यज्ञ गुला ले आ, हम उनका वर्णन करेंगे (अथवा उनका उपदेश सुनेंगे) और उनसे उत्तम अन्न अर्पण करेंगे। (अग्रणीका कर्तव्य है कि वह ज्ञानियोंको इच्छा कर और उनके दिव्य उपदेश जनताको सुनावे।)

७ अग्रणी जनताकी सहायता ऐसी गुप्तताके साथ करे कि किसीको भी यह पता न लगे कि यह आज कहाँ गया और इसने इसकी सहायता इस रीतिसे की। (किसीको पता न लगे ऐसी गुप्त रीतिसे वह अनुयायियोंके पास जावे और उनकी सहायता करे।)

८ हे अग्रणे ! अपने अनुयायियोंमें जो दाता हों उनकी ऐसी सहायता कर कि जिससे वे बलवान् बनें, उनकी हीनता अवस्था पूर्ण रीतिसे दूर हो, और वे पूर्वकी अपेक्षा अधिक अच्छी स्थितिमें पहुँच जायें। किसी भी तरह उनकी अवस्था अधिक दीन न बने, पर अधिक उच्च और श्रेष्ठ बने।

९ हे अग्रणे ! देवोंके लिये जो अर्पण कर देते हैं, उन दाताओंके लिये दिव्य तेज और विजयी वीर्य प्राप्त हो।

पाठक इस भावार्थको पूर्वोक्त मंत्रों और उनके अर्थोंके साथ पढ़ें और जानें कि अग्निके मंत्रोंमें किस ढंगसे अग्रणीके कर्तव्य बताये हैं। अब इन मंत्रोंमें जो बोधवचन हैं उनका बोधार्थ विचार करते हैं —

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व

५

५ कविः सन् कविभिः विप्रस्य मनुषः हविर्भिः यथा
देवान् अयजः, (एवं) एव हे होतः सत्यतरं अग्ने ! त्वं अद्य
मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥

५ (तू) कवि होता हुआ, (अनेक) कवियोंके
(रहकर) ज्ञानी मनुष्यके हवियोंसे जैसा देवोंका यजन
है, वैसाही हे होता सत्यस्वरूप अग्ने ! तू आज अपने
दायक चमससे (उन देवोंको हवि) अर्पण कर ॥

हमारा पुरोगामी वीर

इस सूक्तमें हमारा नेता, अग्रसर, कैसा हो, वह उत्तम
शब्दोंमें कहा है । “नः पुरएता अ-दब्धः । (मं. २) =
हमारा नेता, अग्रणी, अगुवा, अग्रसर अथवा हमारा पथप्रद-
र्शक, मार्गदर्शक, नायक (पुरः एता) अग्रभागमें रहकर
सबका यथायोग्य संचालन करनेवाला (अ-दब्धः) कभी
किसीसे न दब जानेवाला हो । ‘अ-दब्धः’ का अर्थ
‘न दबाया हुआ, न दब जानेवाला, दूसरेके दबावमें न
आनेवाला, किसीसे हिसित न होनेवाला, किसीसे जखमी न
हुआ हुआ’ । हमारा वीर नेता ऐसा पुरोगामी हो और हम
उसके अनुयायी बनें और उन्नत होते रहें ।

“महे सौभगाय देवान् यज (२) = महान्
सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये सरकार-संगति-दानात्मक प्रशस्ततम
कर्म करो । यह यज्ञ देवोंकेही उद्देश्यसे होना चाहिये । अगु-
रोंके लिये नहीं । देव वे हैं कि जो दैवी संपत्तिसे सुशोभित
होते हैं ।

इस तरहके नेताको आदरसे बुलाना चाहिये, उसको
उत्तम आसन देना चाहिये और उसका अच्छी तरह सत्कार
करना चाहिये । ‘आ इहि, इह नि पीद’ (मं. २) =
हे नेता, हे अग्रणी ! यहां हमारे पास आ, यहां इस आसन-
पर बैठ, तुम्हारा सत्कार हम करते हैं । अस्मै आतिथ्यं
चकृम (मं. ३) = इसका हम बड़ा सत्कार करते हैं । यह
सत्कार करनेकी रीति देखिये—

हे अग्रणे वीर !

१ आ इहि (२)— यहां आ,
२ इह नि पीद— यहां बैठ,
३ अस्मै आतिथ्यं चकृम (३)— इसका हम सत्कार
करेंगे,

४ इह नि सत्सि (४)— यहां आरामसे बैठ जा,
५ ते मनसः वराय का उपेतिः भुवद् ? (१)— ते
मनके संतोषके लिये हम तेरे साथ कैसा बताव करें ?

६ का मनीषा शंतमा ? (१)— कौनसी मनकी इच्छा
शान्तिसुख देगी ?

७ केन मनसा ते दाशेम ? (१)— किस मनोभावसे
तेरा सत्कार करें ? किस भावसे तेरी भेंट करें ?

८ कः ते दक्षं परि आप ? (१)— कौन भला तेरे गुण
बलको प्राप्त कर सकता है, क्या करनेसे तुम्हारा बल हम
प्राप्त होगा ?

९ विश्वान् रक्षसः प्र सु घाक्षि (३)— सब (घातक)
राक्षसोंको ठीक तरह जला दे ।

१० देवान् यज (२) ; देवैः नि सत्सि (४)— देवोंका
यजन कर । देवोंके उद्देश्यसे प्रशस्त कर्म कर, क्योंकि तू
देवोंके साथ रहता है । [पूर्वोक्त मंत्रमें ‘राक्षसोंको जला दे’ ऐसा
कहा है और यहां देवोंके उद्देश्यसे उनकी प्रीतिके लिये शुभ
कर्म कर ऐसा कहा है । राक्षसोंको दूर हटाना और दिव्य वि-
धियोंको अपने पास करना यहां स्पष्ट उद्देश्य है ।]

११ वसूनां जनितः प्रयन्तः, वोधि (४)— तू
अनेक प्रकारके धनोंको उत्पन्न करता है और उनका वसा-
योग्य बटवारा करता है, इसलिये हमारी आवश्यकताका
विचार कर, अर्थात् हमें आवश्यक धनादि दे ।

१२ होत्रं उत पोत्रं वेपि (४)— तू दिव्य विधुधियोंको
बुलाना, उनके लिये अर्पण करना और उस कार्यके लिये आव-
श्यक पवित्रता करनेकी विधि जानता है ।

१३ कविः सन् कविभिः यजस्व (५)— स्वयं ज्ञानी
बनकर ज्ञानियोंके साथ प्रशस्त कर्म कर ।

१४ विप्रस्य मनुषः हविर्भिः देवान् अयजः (५)—
ज्ञानी मनुष्यके हविष्यान्नोपे दिव्य विधुधियोंका सत्कार कर ।

यहां 'रहूगणाः गोतमाः' ये पद बहुवचनमें हैं और 'गोतमः' पद एकवचनमें हैं। रहूगणके अनेक पुत्र होंगे, उनका वंश नाम यह होगा अथवा आदरके लिये भी बहुवचन हो सकता है। पर स्तुति करनेवाला, देवताकी उपासना करने-वाला स्वयं अपनाही नाम आदरके लिये बहुवचनमें लिखेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसलिये गोत्रमें उत्पन्न हुए सब ऋषियोंके लिये यह बहुवचनका प्रयोग यहां किया है ऐसा मानना शुक्तियुक्त प्रतीत होता है।

शत्रुका नाश

इस सूक्तमें थोडासा वीरकी वीरताका वर्णन है। इसमें निम्न-लिखित पद विचारणीय है।

१ दस्यून् अवधूनुषे (४) शत्रुओंको जडसे उखाड़कर दूर फेंक देता है।

२ वृत्रहन्तमः— वृत्रका, घेरनेवाले, घेर कर लडनेवाले शत्रुका नाश करता है।

३ जातवेदाः— वेद, ज्ञान और धन देनेवाला।

विचर्षणिः— विशेष ज्ञानी, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवाला
४ वाजसातमः— अनेक बटवारा करनेवाला
शत्रुनाशक वीरके ये विशेषण हैं। इन गुणोंमें युक्त यशस्क का

अङ्गिरा ऋषि

इस सूक्तमें अङ्गिरा ऋषिका नाम आया है। 'अङ्गिरा स्वत् द्वयामहे' (३) अङ्गिरा ऋषिने जैसी स्तुति की वैसीही हम कर रहे हैं। इस वर्णनसे अङ्गिरा ऋषि गोतम पूर्व समयका प्रतीत होता है।

अङ्गिराः

रहूगणः

गोतमः

यह वंश है। गोतमका पिता रहूगण, और अङ्गिरा ऋषि है। शेष मंत्र स्पष्ट हैं। यहां पांचवे सूक्तमें स्पष्टीकरण समाप्त होता है।

(६) वलका स्वामी

(अ. १।७९) गोतमो राहूगणः । १-३ अग्निः मध्यमोऽग्निर्वा; ४-१२ अग्निः ।

१-३ त्रिष्टुप्; ४-६ उष्णिक्; ७-१२ गायत्री ।

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव भ्रजीमान् ।

शुचिभ्राजा उपसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः

आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।

शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा

१

२

अन्वयः— १ हिरण्यकेशः, रजसः विसारे अहिः धुनिः

वात इव भ्रजीमान्, शुचिभ्राजाः । यशस्वतीः अपस्युवः

सत्याः न उपसः नवेदाः ॥

२ ते सुपर्णाः एवैः आ अमिनन्त । कृष्णः वृषभः नोनाव ।

यदि इदं शिवाभिः न स्मयमानाभिः आ अगात् । मिह पतन्ति

अभ्रा स्तनयन्ति ॥

अर्थ— १ (यह अग्नि आकाशमें) सुवर्ण जैसे तेजस्वी केशों— किरणोंसे युक्त (सूर्यके रूपमें) विस्तृत अन्तरीक्षमें वायुके समान गतिमान् (तथा विद्युत् रूपमें) सर्पके समान हिलने-वाला, (और पृथ्वीपर) शुद्ध प्रकाशवाला है। यशस्विनी अग्ने कर्मोंमें कुशल सच्ची पतिव्रता त्रियोंके समान (शुद्ध) उपास (इसको) जानती हैं ॥

२ (हे विद्युत् अग्ने !) तेरे पक्षी जैसे (किरण) अपनी शक्तियोंके साथ (मेघमें) चारों ओरसे घुसने लगे। काला बैल (मेघ तब) बारबार गर्जना करने लगा। तब शुभफलदायीनी हंसनेवाली (त्रियोंके समान विजयियोंके साथ पर्जन्य) चारों ओरसे आया, शुरू हुआ। धृताधार वृष्टि गिरने लगी, और मेघ भी गर्जने लगे।

बड़ा सेनापति

गोतम ऋषिके अग्नि-सूक्तोंमें यह अग्निसूक्त अन्तिम है । इसमें अग्निको 'बलका स्वामी' मानकर उसका वर्णन किया है । पाँचवें मंत्रमें 'पुर्वर्णीक' (पुन + अनीक) पद है, इसका अर्थ 'बड़ी सेनावाला' है । 'अनीक' पदका अर्थ— 'सेना, सैन्य, युद्ध, द्वन्द्व, हमला, पंक्ति, नोक, अग्रभाग, मुख, रूप' यह है । बड़ी सेनावाला, बड़ा युद्ध करनेवाला, प्रबल हमला करनेवाला वीर यह इसका आशय है । 'बल' पदके अर्थ 'सामर्थ्य और सैन्य' ऐसे दो प्रकारके होते हैं । यहाँ इस सूक्तमें अग्निका इन दोनों तरहसे वर्णन किया है ॥

१ 'सहसः यदुः' (मं. ४)— बलका पुत्र, बलके कार्य करनेके लिये जन्मा हुआ, बलसे प्रभाव दिखानेवाला । ये बलके अर्थात् शक्तिसे होनेवाले अथवा सेनासे होनेवाले कार्य ये हैं—

२ हे राजन् ! त्वमा क्षपः । रक्षसः प्रति दह (६)— हे राजा ! हे सेनापति, हे अग्ने ! तू स्वयं जनताके सब शत्रुओंको प्रतिबंध कर, शान्त कर । वैरी प्रमावी न बनें ऐसा कर । असुरों राक्षसों और दुष्टोंको जलाकर नष्ट कर दे । यहाँ अग्निका विशेषण 'राजन्' है । अग्निका 'अग्रणी' रूप मानकर 'हे राजन् अग्रणे' ऐसा अर्थ करनेसे सब अर्थ प्रकरणानुकूल बनता है ।

३ यः नः अन्तिं दूरे वा अभिदासति, सः पदीय (११)— जो दूरसे या समीपसे हमें दास बनाना चाहता है, जो हमारा नाश करना चाहता है वह नीचे गिर जावे ।

४ सहस्राक्षः विचर्यणिः रक्षांसि सेधति (१२)— सहस्र आँखवाला सब देखनेवाला अग्रणी दुष्टोंका नाश करता है । यहाँ राज-प्रकरणमें सहस्राक्ष पद सहस्रों दूतोंसे राष्ट्रके सब व्यवहारोंको देखनेवाला इस अर्थमें है । राजा, अग्रणी अपने दूतोंके सहस्रों आँखोंसे देखता है और राष्ट्रमें या राष्ट्रके बाहर जो दुष्ट शत्रु होते हैं, उनको ठीक तरह पहचान कर उनका नाश अपने बलसे अथवा सैनिकोंसे करता है ।

५ गोमतः वाजस्य ईशानः (४)— गोआँसि युक्त अबका यह स्वामी है । अर्थात् यह गोआँसि और विविध अन्नोंकी सुरक्षा अपने राज्यमें करता है । इससे जनताका पालन-पोषण करता है ।

६ जातवेदाः (१) ; कविः (५) ; वीपु वन्द्य (३)— ये

तीनों पद इसकी ज्ञानी होनेकी साक्ष्य दे रहे हैं । जातवेदा जिसमें वेद, ज्ञानग्रंथके मंत्र, प्रकाशित हुए, जो ज्ञानका प्र करता है । कविः— ज्ञानी, अतीन्द्रिय ज्ञानसे देखनेका कान्तदर्शी । वीपु वन्द्य— बुद्धिके कामोंमें ज्ञानके सिद्धि पूजाके योग्य । यह सेनापति अपनी इस तरह ज्ञानी है । लिये यह पूजनार्थ माना गया है । सेनापति और अग्रणी से ज्ञानी होना चाहिये ।

७ तिग्मजम्भः (६)— तीव्र शंतीवाला, शत्रुसे जानेवाला, शत्रुका नाश करनेवाला वीर ।

धन कैसा चाहिये

इस सूक्तमें जो धन मानवोंको खींचकर करनेवाला उसका उत्तम वर्णन है, देखिये—

१ अस्मे महि श्रवः वेहि (१)— हमें बड़ा देनेवाला, चींटी बड़ानेवाला धन दे ।

२ अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि (५)— हमें धन दे करके प्रकाशित कर अर्थात् हमें ऐसा धन दे कि जिसमें हम तेजस्वी बनें ।

३ सचासाहं विश्वास्तु पृत्स्तु दुष्टं वरेण्यं रविं आ भर (८)— हमें ऐसा धन दे कि, जिससे इन सुसंगठित धन कितने भी युद्ध करने पड़े तो भी उनमें कोई शत्रु उस धन को छीन न सके, ऐसे बलवान् हम बनें । यह मंत्रनाम धन विशेषही मनन करनेयोग्य है । इसमें धन संगठना करने वाला, शत्रुके लिये अजेय तथा शत्रुका पराभव करनेवाला और इस कारण अपने पास रखनेयोग्य हो, ऐसा धन वर्णन किया है ।

४ जीवसे माडोके विश्वायुपोषसं रविं आ वेहि (९)— ऐसा धन हमें मिले कि जो हमें दीर्घ आयु दे, सुख देवे, आयुभर हमारा पोषण करता रहे अर्थात् वह हमें क्षीणता न करे, हमें अत्यायु न बना देवे, हमारा धन बढ़ावे । धन चाहनेवालोंको उचित है कि ये इन मंत्रोंका धन अच्छी तरह करें ।

५ नः ऊतिभिः श्रव (१०)— हमारी सब शत्रुओंकी सुरक्षा कर । अनुयायियोंकी सुरक्षा करना अग्रणीका धर्म है ।

इस तरह पहिले तीन मंत्रोंकी छोटकर शेष तीनों मंत्रोंका बोध कराया है । राजा, सेनापति, अग्रणी आदिके धर्मों की तरह यहाँ वर्णन किये गये हैं ।

(८) निडर वीर

(क. १।८१) गीतमो राहूगणः । इन्द्रः । पंक्तिः । *

| | |
|--|---|
| इन्द्रो मदाय वावृधे शक्से वृत्रहा नृभिः । | |
| तमिन्महत्स्वाजिपूतेमर्मे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविपत् | १ |
| असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः । | |
| असि दध्नस्य चित् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु | २ |
| यदुदीरत आजयो धृण्वे धीयते धना । | |
| युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः | ३ |
| ऋत्वा महान् अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः । | |
| श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् | ४ |
| आ पप्रौ पार्थिवं रजो वद्धधे रोचना दिवि । | |
| न त्वाचौ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ | ५ |

अन्वयः— १ वृत्र-हा इन्द्रः मदाय शक्से नृ-भिः
वावृधे, तं इत् महत्-सु आजिपु उत इँ अर्मे हवामहे । सः
वाजेषु नः प्र अविपत् ॥

२ हे वीर । सेन्यः असि, भूरि परा-ददिः असि ।
दध्नस्य चित् वृधः असि । (त्वं) यजमानाय शिक्षसि ।
सुन्वते ते वसु भूरि ॥

३ यत् आजयः उत्-दीरते, (तदा) धृण्वे धना धीयते ।
(हे) इन्द्र ! मद-च्युता हरी-युक्ष्व । (त्वं) कं हनः, कं वसौ
दधः । अस्मान् वसौ दधः ॥

४ ऋत्वा महान् भीमः अनु-स्वधं शवः आ वावृधे ।
ऋष्वः शिप्री हरि-वान् (इन्द्रः) उपाकयोः हस्तयोः श्रिये
आयसं वज्रं नि दधे ॥

५ (हे) इन्द्र ! पार्थिवं रजः आ पप्रौ । दिवि रोचना
वद्धधे । (सम्प्रति) कः चन त्वा-वान् न । (त्वा-वान्) न
जातः, न जनिष्यते । (त्वं) विश्वं अति ववक्षिथ ॥

अर्थ— १ वृत्रनाशक इन्द्र आनन्द और बलके
मनुष्यों द्वारा बढाया जाता है । हम उसी इन्द्रको बने युद्धों
और उसीको छोटे युद्धोंमें बुलाते हैं । वह युद्धोंमें हमारी
करे ।

२ हे वीर ! तू सेनासे युक्त है । बहुत धन दान देनेवाला है ।
छोटेको भी बढा करनेवाला है । तू यज्ञ करनेवालेके लिये धन रक्ष
है । सोमयाग करनेवालेको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन है ।

३ जिस समय युद्ध छिड जाते हैं, तब तेरे द्वारा निज
वीरके लिये धन दिया जाता है । हे इन्द्र ! तू अपने
सुवानेवाले घोडोंको रथमें जोड । तूने किसी दुष्टको मारा
किसीको धनके बीचमें रखा, धनवान् बना दिया । तूने
धनके बीच रख धनवान् बनाया है ।

४ कियाशील होनेके कारण श्रेष्ठ और भयङ्कर प्रभुत्व
इन्द्रने योग्य अश्वके सेवनसे अपना बल बढा दिया । उस बल
नीय, शिरघ्राणधारी, घोडेवाले इन्द्रने अपने समीपवर्ती
हाथोंमें श्रीकी प्राप्तिके लिये लोहेका वज्र धारण
किया है ।

५ हे इन्द्र ! तूने अपनी व्यापकतासे पार्थिव लोकोंको पूरा
भर दिया है । तूने दिव् लोकमें प्रकाशमय लोक स्थापित
किये हैं । कोई भी तेरे समान नहीं है । तेरे समान
कोई उत्पन्न हुआ था और न आगे उत्पन्न होगा । तू
सम्पूर्ण विश्वको चला रहा है ।

(८) निडर वीर

(क्र. ११८१) गोतमो राहुगणः । इन्द्रः । पंक्तिः । *

| | |
|---|---|
| इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः । | |
| तमिन्महत्स्वाजिघृतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविपत् | १ |
| असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः । | |
| असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु | २ |
| यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना । | |
| युक्त्वा मदच्युता हरीं कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः | ३ |
| क्त्वा महौ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः । | |
| त्रियः कृत्स्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् | ४ |
| आ पर्यौ पार्थिवं रजो वद्धे रोचना दिवि । | |
| न त्वावौ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ | ५ |

अन्वयः— १ वृत्र-हा इन्द्रः मदाय शवसे नृ-भिः वावृधे, तं इत् महत्-सु आजिषु उत इं अर्भे हवामहे । सः वाजेषु नः प्र अविपत् ॥

२ हे वीर ! सेन्यः असि, भूरि परा-ददिः असि । दभ्रस्य चिद् वृधः असि । (त्वं) यजमानाय शिक्षसि । सुन्वते ते वसु भूरि ॥

३ पर आजयोः उत्-ईरते, (तदा) धृष्णवे धना धीयते । (३) इन्द्र ! मद-च्युता हरी युद्ध । (त्वं) कं हनः, कं वसौ दधः । अस्मान् वसौ दधः ॥

४ क्त्वा महौ भीमः अनु-स्वधं शवः आ वावृधे । अस्मिन् शिप्री हरिवान् (इन्द्रः) उपाकयोः हस्तयोः त्रियः आयसं वज्रं नि दधे ॥

५ (हे) इन्द्र ! पार्थिवं रजः आ पर्यौ । दिवि रोचना वद्धे । (त्वं) कः कश्चन त्वा-वान् न । (त्वा-वान्) न जातो, न जनिष्यते । (त्वं) विश्वं अत्रि ववक्षिथ ॥

अर्थ— १ वृत्रनाशक इन्द्र आनन्द और बलके मनुष्यों द्वारा बड़ाया जाता है । हम उसी इन्द्रको सेन्य और उसीको छोटे युद्धोंमें बुलाते हैं । वह युद्धोंमें हमारी प करे ।

२ हे वीर ! तू सेनासे युक्त है । बहुत धन दान देनेवाला है । छोटेको भी बड़ा करनेवाला है । तू यज्ञ करनेवालेके लिये धन दे है । सोमयाग करनेवालेको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन है ।

३ जिस समय युद्ध छिड़ जाते हैं, तब तेरे द्वारा नि वीरके लिये धन दिया जाता है । हे इन्द्र ! तू अपने चुवानेवाले घोड़ोंको रथमें जोड़ । तूने किसी युद्धको मारा किसीको धनके बीचमें रखा, धनवान् बना दिया । तूने धनके बीच रख धनवान् बनाया है ।

४ क्रियाशील होनेके कारण श्रेष्ठ और भयङ्कर प्रभु इन्द्रने योग्य अश्वके सेवनसे अपना बल बड़ा दिया । उस नीय, शिरछाणधारी, घोड़ेवाले इन्द्रने अपने यमोपवर्ती दो हाथोंमें श्रीकी प्राप्तिके लिये लोहका बना हुआ वज्र बना किया है ।

५ हे इन्द्र ! तूने अपनी व्यापकतासे पार्थिव लोकको भर दिया है । तूने दिव्य लोकमें प्रकाशमय लोक रचाने दिये हैं । कोई भी तेरे समान नहीं है । तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ था और न आगे उत्पन्न होगा । तू सम्पूर्ण विश्वको चला रहा है ।

‘तेन अन्धसः मन्दानः प्रियां जायां उप याहि ।
(मं. ५)’— उस अपने रथपर आरुढ़ होकर, तथा सबसे
तृप्त होकर, अपनी प्रिय पत्नीके पास जा । अर्थात् रथपरसे
यज्ञमें आकर बैठ, यज्ञका अवलोकन कर, यज्ञीय अन्नका सेवन
कर और पश्चात् उसी रथपर सवार होकर, अपने घरमें पहुंच
कर अपनी प्रिय जायाके पास जा और उससे वार्तालाप आदि
कर तथा और देखिये—

‘उप प्र याहि, गभस्त्योः दधिषे । सुतासः त्वा
उन् अमन्दिपुः । (त्वं) पत्न्या सं अमदः (मं. ६)— तू

अपने घर जा, (जानेके समय) घोड़ोंके लगाम हाथमें
सोमरस पीकर तुझे आनन्द हुआ है । (अब तू घरमें
अपनी) पत्नीसे मिलकर आनन्द कर, आनन्दित हो ।

यहां इन्द्रकी धर्मपत्नीका उल्लेख है । पर पत्नीका नाम
नहीं है । ‘इन्द्राणी, शची’ ये नाम अन्यत्र अन्यत्र
आये हैं । इन्द्रको “कौशिक” कहा है । देखो मनु
ऋषिका दर्शन (क्र. १११०११) कुशिकका पुत्र क
गोत्रमें उत्पन्न अथवा कुशिकोंपर कृपा करनेवाला ऐसे हमें
होना संभवनीय है ।

(१०) यज्ञका मार्ग

(क्र. १०८३; अथर्व. २०।२५।१-६) गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । जगती ।

अश्ववति प्रथमो गोपु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मत्यस्तद्योतिभिः ।

तामिह पृणाक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाऽभितो विचेतसः १

आपो न देवीरूप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति चित्तं यथा रजः ।

प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव २

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्तुचा मिथुना या सपर्यतः ।

असंयत्तो व्रते ते श्वेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ३

अन्वयः— १ (हे) इन्द्र ! तव ऊति-भिः सुप्र-अवीः मत्यः

अश्ववति गोपु प्रथमः गच्छति । (त्वं) वि-चेतसः आपः

अभितः सिन्धुं यथा तं इह भवीयसा वसुना पृणाक्षि ॥

२ (हे इन्द्र !) देवासः देवीः आपः न होत्रियं उप यन्ति ।

वि-त्तं रजः यथा अवः पश्यन्ति । देव-युं प्राचैः प्र

णयन्ति । वराः—इव ब्रह्म-प्रियं जोषयन्ते ॥

३ (हे इन्द्र !) यामिथुना यत-स्तुचा (त्वां) सपर्यतः, द्वयोः

अधि उक्थ्यं वचः अदधाः । असं-यत्तः ते व्रते श्वेति पुष्यति ॥

सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः (अवधि) ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! तेरी सुरक्षाओं द्वारा सुरक्षित !
भक्त मनुष्य बहुत घोड़ोंवाले और बहुत गाँवोंसे युक्त है
प्रथम प्राप्त करता है । तू चित्तको प्रसन्न करनेवाले ब्रह्म
ओरसे जैसे समुद्रको पहुंचते हैं, वैसे उधड़ी भक्तों से
धनसे पूर्ण करता है ।

२ हे इन्द्र ! दिव्य लोग दिव्य जलोंके पास जानेके
यज्ञके समीप जाते हैं । वे फैले हुए विस्तृत यज्ञस्थानको
हैं । देवोंकी भक्ति करनेवालेको वे पूर्वकी ओर ले जाते
और श्रेष्ठोंके समान ज्ञानसे प्रिय उपदेशका सेवन करते ।

३ जो दो जुड़ हुए अन्नपात्र तेरी पूजाके लिये रखे
इन्द्र ! तूने उन दोनोंमें रखे अन्नका स्तुतिके बचनके
स्वीकार किया । युद्धके लिये उद्यत न होनेवाला मनुष्य
तेरे नियममें रहनेसे सुरक्षित रहता और पुष्ट भी होता
यत् करनेवालेके लिये तेरी ओरसे भद्रा शक्ति दी
दे ।

इन्द्रसे गौओंकी प्राप्ति

इन्द्रकी सहायतासे गौयें प्राप्त होती हैं ऐसा यहां बहुतवार कहा है—

१ तव ऊतिभिः सुप्रावीः मर्त्यः अश्वावति गोपु प्रथमः गच्छति (१) — इन्द्रकी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुआ मनुष्य घोड़ों और गावोंके झुण्ड प्रथम प्राप्त करता है।

२ नरः पणोः सर्वे अश्वावन्तं गोमन्तं मोक्षं पशुं आसं अविन्दन्त (४) — नेता लोग पणोंसे पशु घोड़े, गौयें और पशुको प्राप्त करता है और सब पशु प्राप्त करता है।

यज्ञसे इन्द्रकी प्रसन्नता होती है, इन्द्रसे गौओंकी प्राप्ति होती है, इस तरह गौओंके घृतसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे जनताका कल्याण होता है। यज्ञके प्रवर्तनका यह फल

(११) दधीचीकी अस्थिसे वज्र

(क्र. १८४) गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । १-६ अनुष्टुप्; ७-९ उज्जिक्; १०-१२ पंक्तिः; १३-१५ गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्; (प्रगायः=) १९ बृहती; २० सतोबृहती ।

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि । आ त्वा पृणक्त्वान्द्रियं रजः सूर्यो न राक्षमभिः इन्द्रमिद्वरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरूप यज्ञं च मानुषाणाम् आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वगुना इममिन्द्र सुतं पिव ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा क्रतस्य सादने इन्द्राय नूनमर्चतोक्त्यानि च ब्रवीतन । सुता अमत्सुरिन्द्वो ज्येष्ठं नमस्यता सहः नकिष्टुद्र रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे । नकिष्टाऽनु मज्जना नकिः स्वश्च आनशे

अन्वयः— १ (हे) इन्द्र ! सोमः ते असावि । (हे) शविष्ठ धृष्णा ! (त्वं) आ गहि । इन्द्रियं सूर्यः न राक्षमभिः रजः त्वा आ पृणस्तु ॥

२ हरी ऋषीणां च स्तुतीः मानुषाणां च यज्ञं अप्रतिधृष्ट-शवसं इन्द्र इत् उप वहतः ॥

३ (हे) वृत्र-हन् ! रथं आ तिष्ठ, ब्रह्मणा ते हरी युक्ता । ग्रावा वगुना न मनः अर्वाचीनं सु कृणोतु ॥

४ (हे) इन्द्र ! इमं सुतं ज्येष्ठं अमर्त्यं मदं पिव ।

शुक्रस्य सादने त्वा अभि अक्षरन् ॥

५ (हे) ऋषि-गणः) नूनं इन्द्राय अर्चनं (तस्मै) उपययि च ब्रवीतन । सुताः इन्द्राः अमत्सुः । ज्येष्ठं सहः नमस्यता ॥

६ (हे) इन्द्र ! वर हरी यच्छसे, त्वन् रथिन्तरः

नकिः । मज्जना त्वा अनु नकिः । (अन्वः) सु-अश्वः

(नकिः) नकिः अश्वः ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! यह सोम तेरे लिये निचोड़ा गया है हे बलयुक्त शत्रु-नाशक इन्द्र ! तू यहाँ आ । तेरे लिये पशु हुआ, यह सूर्य जैसे किरणोंसे आकाशको व्यापता है, तेरे लिये यह सोमरस व्याप ले । (यह तेरे शरीरमें जावे ।)

२ घोड़े ऋषियोंके स्तोत्र और मनुष्योंके यज्ञके प्रायश्चित्त के बल अदृष्ट है ऐसे इन्द्रहीको ले जाते हैं, पहुँचाते हैं ।

३ हे वृत्र-घातक इन्द्र ! तू रथपर चढ़कर बैठ । त्वं द्वारा तेरे घोड़े रथमें जोड़ दिये गये हैं । ये सोम धृष्ट-शवस पर अपनी वाणोंसे तेरा मन इस ओर आकर्षित करें ।

४ हे इन्द्र ! तू इस निचोड़े हुए सर्वोत्तम अमर सोम-रस का रसकी पी । यज्ञके स्थानमें बलवर्धक सोम पी कर तेरी और बढ रही है ।

५ हे ऋषि-वृन्द लोगो ! निश्चय तुम इन्द्रकी पूजा करी होगी उसके लिये स्तोत्र पढ़ो । ये निचोड़े हुए सोम-रस इस रथ में तृप्त करें । तुम इस बड़े बलधारी इन्द्रको नमस्कार दो ।

६ हे इन्द्र ! जिस कारण तू अपने घोड़ोंको नमस्कार करता है इस कारण तुझमें बड़ा रथ कोई नहीं । यज्ञोंसे तेरी समानता करनेवाला कोई नहीं । तेरे इसमें अमर मकर भी तुझे नहीं पा सकता ।

मरुत्-प्रकरण

वीरोंका काव्य

(१२) वीर मरुत्

(स. ११५) गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती; ५, १२ त्रिष्टुप् ।

प्रये शुन्भन्ते जनयो न सतयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।

मेदन्तो हि मरुतश्चक्रे बुधे मदन्ति वीरा विन्धेपु बुधवः ।

न उभित्तसो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रे सरः ।

चिन्तो अहो जनयन्त इन्द्रियमधि त्रियो दधिरे पृथिमातरः ।

गोता नो मरुतुमयन्ते आभिस्तनूपु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।

मरुतो विन्धमनिमातितमप वरमान्येयामनु रीयते घृतम् ।

विन्धे जगत्सो मरुतमाश कथिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।

मरुतो वृत्ति यन्मरुतो दधेना पुन-मातासः पुनतीरुमुध्वम् ।

३

मरुतः - मरुतः पुन-मातासः पुनतीरुमुध्वम् ।

अर्थ- १ ये जो अच्छे कार्य करनेवाले, जगत्

वीरके पुन-वीर मरुत् वादर जाते हैं, उन यम

ममान अपने आपको-युयोमित करते हैं । मरुत

आम प्रद्विक लिये मुलीक पुन मुलीक की पस्या

तया ये वीर मरुतको तद्वगमद्वुद्धरनेवाले वीर

मरुतो या एवोगोमी दधित हो रहते हैं ।

२ मरुतको क्लानेवाले वीरोंने आक्षयमे मरु

मरुत मरुत हैं । पुनमी देवकी आगना वर

मरुत विन्धमान आनिधो प्रकट्टु करने हुए मानव

मरुत मरुत पुन-मातास वरु मुक्त हैं । ३ मरु

मरुत मरुत वीर वरु मरुत मरुत मरुत

४ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

५ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

६ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

७ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

८ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

९ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

१० मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

११ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

१२ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

१३ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

१४ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

१५ मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत

गोतम ऋषिका दर्शन

प्र यद् रथेषु पृथर्तारयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
 उत्तरुपस्य वि प्यन्ति धाराश्चर्मैवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम
 आ वो वहन्तु सप्तयो रघुप्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः
 सीदता बर्हिंरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः
 तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरु रु चक्रिरे सदः ।
 विष्णुर्यद्धावदू वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये
 शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
 भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंद्दशो नरः

| | |
|---|----|
| त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् । | |
| धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौज्जदर्णवम् | ९ |
| ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादहाणं चिदू विभिदुर्वि पर्वतम् । | |
| धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे | १० |
| जिह्वं नुनुद्रेऽवतं तथा दिशासिञ्चन्तुत्सं गोतमाय तृष्णजे । | |
| आ गच्छन्तीमवसा चित्रमानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः | ११ |
| या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुपे यच्छताधि । | |
| अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् | १२ |

९ सु-अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्ययं सहस्र-भृष्टिं
वज्रं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि कर्तवे धत्ते, अर्णवं वृत्रं
अहन्, अपां निः औज्जत् ॥

१० ते ओजसा ऊर्ध्वं अवतं नुनुद्रे, दादहाणं पर्वतं चित्
वि विभिदुः, सु-दानवः मरुतः सोमस्य मदे वाणं धमन्तः
रण्यानि चक्रिरे ॥

११ अवतं तथा दिशा जिह्वं नुनुद्रे, तृष्णजे गोतमाय
उत्सं असिञ्चन्, चित्रः-मानवः अवसा इं आ गच्छन्ति,
धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त ॥

१२ (हे) मरुतः ! शशमानाय त्रि-धातूनि वः या शर्म
सन्ति, दाशुपे अधि यच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त, (हे)
वृषणः ! नः सु-वीरं रयिं धत्त ॥

९ अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले कारीगरने त्रै
तरह बनाया हुआ, सुवर्णमय, सहस्र धाराओंसे युक्त
इन्द्रको दे दिया, उस हथियारको इन्द्रे मानवोंने प्रकट
युद्धोंमें वीरतापूर्ण कार्य कर दिखानेके लिये धारण किया
जलको रोकनेवाले शत्रुको मार डाला तथा जलको जानेके लिये
उन्मुक्त कर दिया ॥

१० वे वीर अपनी शक्तिसे ऊँची जगह विद्यमान
या झीलके पानीको प्रेरित कर चुके और इस कार्यके
राहमें रोड़े अटकानेवाले पर्वतको भी छिन्नविच्छिन्न कर चुके
पश्चात् उन अच्छे दानी मरुतोंने सोमपानसे उद्धृत आनन्द
वाण वाजा बजा कर रमणीय गानोंका सृजन किया ॥

११ वे वीर झीलका पानी उस दिशामें तेजी राहसे के
और प्यासके मारे अकुलाते हुए गोतमके लिये जलकुंडमें
जलका झरना बढने दिया । इस भाँति वे अति तेजस्वी
संरक्षक शक्तियोंके साथ आ गये और अपनी शक्तियोंसे
ज्ञानीकी लालसाको तृप्त किया ॥

१२ हे वीर मरुतो ! शीघ्र गतिसे जानेवालोंको देनेके
तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे मिलनेवाले तुम्हारे को
विद्यमान हैं और जिन्हें तुम दानीको दिया करते हो, उन्हें
दो । हे बलवान् वीरो ! हमें अच्छे वीरोंसे युक्त बन दो ।

(१३) वीर मरुत्

(अ. १।८६) गोतमो राट्गणः । मरुतः । गायत्री ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमदसः । स सुगोपातमो जनः ५२

अन्वयः— १ (हे) वि-मदसः मरुतः ! दिवः यस्य

हि क्षये पाथ, सः सु-गोपातमः जनः ॥

अर्थ— १ हे विलक्षण दंगसे तेजस्वी वीर मरुतो ! अन्तरीक्ष
से पथार कर विमके घरमें तुम प्रोमरस पीने दो, वह
ही सुरक्षित मानव है ॥

| | | | |
|---|----|------------------------|----|
| यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मर्तानाम् | १ | मरुतः गृणुता इवम् | २ |
| उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत | ३ | स गन्ता गोमति व्रजे | ३ |
| अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु | ४ | उक्तं मदक्ष शस्यते | ४ |
| अस्य भोषन्त्वा भुवो विश्वा यक्षर्षणीरभि | ५ | सूरं चित् सन्नुषीरिषः | ५ |
| पूर्वाभिर्हि ददाशिम शरद्विर्मरुतो वयम् | ६ | भवोभिश्चर्षणीनाम् | ६ |
| सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः | ७ | यस्य प्रयांसि पर्यथ | ७ |
| शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः | ८ | विदा कामस्य वेनतः | ८ |
| यूरं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना | ९ | विध्यता विद्युता रक्षः | ९ |
| गृहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमधिगम् | १० | ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि | १० |

१ (हे) यज्ञ-वाहसः मरुतः ! यज्ञैः वा विप्रस्य मर्तानां
१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००

१ वृत्त वा यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतक्षत, सः
गोमति व्रजे गन्ता ॥

१ दिविष्टिषु बर्हिषि भस्य वीरस्य सोमः सुतः, उक्तं
यस्य ॥

१ विश्वाः चर्षणीः, सूरं चित्, इष्टः सन्नुषीः, यः अभि-
भस्य वा भोषन्तु ॥

१ (हे) मरुतः ! चर्षणीनां भवोनिः वयं पूर्वाभिः
भिः हि ददाशिम ॥

१ (हे) प्र-यज्यवः मरुतः ! सः मर्त्यः सु-भगः अस्तु,
स प्रयांसि पर्यथ ॥

१ (हे) सत्य-शवसः मरुतः ! शशमानस्य स्वेदस्य
वा कामस्य विद ॥

१ (हे) सत्य-शवसः ! यूरं तत् आविः कर्त, विद्युता
रक्षः विध्यत ॥

१० गुह्यं तमः गृह्यत, विश्वं भाविजं वि यात, यज्ञ-ज्योतिः
कर्म ॥

२ हे यज्ञका गुरुतर भार उठानेवाले मरुतो ! यज्ञोंके द्वारा या
विद्वान्की बुद्धिकी सहायतासे तुम हमारी प्रार्थना सुनो ॥

३ अथवा जिसके बलवान् वीर ज्ञानीके अनुकूल हो, उसे
श्रेष्ठ बना देते हैं, वह अनेक गौओंसे भरे प्रदेशमें चला जाता
है, अर्थात् वह अनगिनती गौएँ-पाता है ॥

४ इष्टिके दिनमें होनेवाले यज्ञमें इस वीरके लिये सोमका
रस निचोड़ा जा चुका है । अब त्वात्रिका गान होता है और
सोमरससे उद्भूत आनन्दकी प्रशंसा की जाती है ॥

५ सभी मानवोंकी तथा विद्वान्की भी अन्न मिल जाय, इस-
लिये जो शत्रुका पराभव करता है, उसका काव्य-गायन सभी
वीर सुन लें ॥

६ हे वीर मरुतो ! ऊपकोंकी तथा मानवोंकी समुचित रक्षा
करनेकी शक्तियोंसे युक्त इन लोग अनेक वर्षोंसे सचमुच दान
देते आ रहे हैं ॥

७ हे पूज्य मरुतो ! वह मनुष्य अच्छे सामग्रियों से रसता है
कि जिसके अलका खेवन तुम करते हो ॥

८ हे सत्यसे उद्भूत बलसे युक्त मरुतो ! शीघ्र गतिके द्वारा
पक्षियोंसे भागे हुए, तथा तुम्हारी सेवा करनेवालेसे अनिष्टका
पूर्ण करो ॥

९ हे सत्यके बलसे युक्त वीरो ! तुम वह अपना बल प्रकट
करो । उस अनेक तेजस्वी बलसे राक्षसोंकी मार करो ॥

१० गुह्यमें विद्यमान अनेक ईश्वर हैं, जिनसे करो । सभी
देव दुरात्मियोंसे दूर कर दो । जिस तेजस्वी इन पक्षियोंके लिये
काव्यमें है, वह हमें दान दे ॥

(१४) वीर मरुत्

(ऋ. १।८७) गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती ।

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरणिशोऽनानता अविधुरा ऋजीपिणः ।
 जुष्टमासो नृतमासो अङ्गिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्त्रा इव सृभिः १
 उपहरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
 श्रोतन्ति कोशा उप वो रथेष्व्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते २
 प्रैषामज्मेपु विधुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युजते शुभे ।
 ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ३
 स हि स्वसृत् पृषदश्चो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
 असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ४

अन्वयः— १ प्र-त्वक्षसः प्र-तवसः वि-रणिशः अन्-

भानताः अ-विधुराः ऋजीपिणः जुष्ट-तमासः नृ-तमासः

के चित् उस्त्राः—इव सृभिः वि आनज्रे ॥

२ (हे) मरुतः ! वयः इव केन चित् पथा यत् उप-

हरेषु ययिं अचिध्वं, वः रथेषु कोशाः उप श्रोतन्ति, अर्चते
 मधु-वर्णं घृतं आ उक्षत ॥

३ यत् ह शुभे युजते, एषां अज्मेपु यामेषु भूमिः

विधुरा इव प्र रेजते, ते क्रीळयः धुनयः भ्राजत्-कृष्टयः

धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त ॥

४ सः हि गणः युवा स्व-सृत् पृषद-अश्चः तविषीभिः

आवृतः अया ईशानः । अय सत्यः ऋण-यावा अ-नेद्यः वृषा

गणः अस्याः धियः प्र अविता असि ॥

अर्थ— १ शत्रुदलको क्षीण करनेवाले, अच्छे व
 बडेभारी वक्ता, किसीके सम्मुख शीश न झुकाने
 विद्युडनेवाले अर्थात् एकतापूर्वक जीवनयात्रा बितानेवाले
 रस पीनेवाले या खाँदा-सादा तथा सरल बर्ताव रख
 जनताको अतीव सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा नेताओंमें प्र
 वीर सूर्यकिरणोंके समान वज्र तथा अलंकारोंसे युक्त
 प्रकाशमान होते हैं ॥

२ हे वीर मरुतो ! पंछीकी नाई किसीभी मार्गसे
 जब हमारे समीप आनेवालोंको तुम इकट्ठे करते हो, तब तु
 रथोंमें विद्यमान भण्डार, हमपर धनकी वर्षा करने ल
 और पूजा करनेवाले उपासकके लिये मधुकी नाई खच
 वाले घी या जलकी तुम वर्षा करते हो ॥

३ जब सचमुच ये वीर अच्छे कर्म करनेके लिये कठि
 उठते हैं, तब इनके वेगवान् हमलोंमें पृथ्वीतक अनाम न
 समान बहुतही काँपने लगती है । वे खिलाडीपनके भावसे प्रे
 गतिशील, चपल, चमकाले हथियारोंसे युक्त, शत्रुको विच
 कर देनेवाले वीर अपना महत्त्व या बड़प्पन दिखावा
 डालते हैं ॥

४ वह वीरोंका संघ सचमुचही यौवनपूर्ण, स्वयंप्रेरक, र
 घन्बेवाले घोडे जोड़नेवाला और भाँतिभाँतिके बलोंसे यु
 रहनेके कारण इस संसारका प्रभु एवं स्वामी बननेके
 अर्हत् अर्हत् सुयोग्य है । और वह सचाईसे बर्ताव करने
 तथा ऋण दूर करनेवाला, अनिन्दनीय और बलवान् ई
 पडनेवाला यह संघ इस हमारे कर्म तथा शान्ती का
 वाला है ॥

वृ. ८७-८८]

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।

यदीमिन्द्रं शम्यृक्काण आशतादिनामानि यक्षियानि दधिरे

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रदिमभिस्त ऋकभिः सुखादयः ।

ते वाशीमन्त इध्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः

अस्य पितुः जन्मना वदामसि, सोमस्य चक्षसा

प्र जिगाति, यत् शमि हं इन्द्रं ऋक्वाणः आशत,

एव यक्षियानि नामानि दधिरे ॥

१ ते कं श्रियसे भानुभिः रदिमभिः सं मिमिक्षिरे, ते

रदिभिः सु-खादयः वाशी-मन्तः इध्मिणः अभीरवः ते

स्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे ॥

५ पुरातन पितासे जन्म पाये हुए हम कहते हैं कि, सोमके दर्शनसे जीभ (वाणी) प्रगति करती है, अर्थात् वीरोंके काव्यका गायन करती है । जब ये वीर शत्रुको शान्त करनेवाले युद्धमें उस इन्द्रको स्मृति देकर सहायता करते हैं, तभी वे प्रशंसनीय नाम-यश धारण करते हैं ॥

६ वे वीर मरुत सबको सुख मिले, इसलिये तेजस्वी किरणों-से सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं । वे कवियोंके साथ उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे या अच्छे आभूषण धारण करने-वाले, कुल्हाडी धारण करनेवाले, वेगसे जानेवाले तथा न डरने-वाले वे वीर प्रिय मरुतोंके स्थानको पाते हैं ॥

(१५) वीर मरुत

(क. १।८८) गोतमो राहुगणः । मरुतः । त्रिष्टुप्; १, ६ प्रस्तरपंक्तिः; ३ विराड्-रूपा ।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वकै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपैर्णः ।

आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पतता सुमायाः

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिर्श्वैः ।

रुक्मो न चित्रः स्वधितिवान् पव्या रथस्य जह्ननन्त भूम

मन्वयः— १ (हे) मरुतः । विद्युन्मद्भिः सु-जकैः

ऋष्टिमद्भिः अश्व-पैर्णः रथेभिः आ यात, (हे) सु-माया ।

वर्षिष्ठया इषा, वयो, न, आ पततम् ॥

२ ते अरुणेभिः पिशङ्गैः रथ-तूर्भिः अश्वैः शुभे वरं कं आ

यान्ति, रुक्मः न चित्रः, स्वधितिवान्, रथस्य पव्या भूम

जह्ननन्तः ॥

अर्थ— १ हे वीर मरुतों! बिजलीसे युक्त या बिजलीकी नाई अति तेजस्वी, अतिशय पूज्य, हथियारोंसे सजे हुए तथा घोड़ोंसे युक्त होनेके कारण वेगसे जानेवाले रथोंसे इधर-ओधर । हे अच्छे कुशल वीरों ! तुम श्रेष्ठ अन्नके साथ पंढियोंके समान वेगपूर्वक हमारे निकट चले आओ ॥

२ वे वीर रुक्म दीख पड़नेवाले तथा भूरे बदामी वर्णवाले और त्वरापूर्वक रथ-खींचनेवाले घोड़ोंके साथ शुभ कार्य करनेके लिये और उच्च कोटिका कन्यायन संपादन करनेके लिये, सुख देनेके लिये आते हैं । वह वीरोंका संप सुवर्णकी भाँति प्रेक्षणीय तथा शस्त्रोंसे युक्त है । ये वीर वाहनके पादियोंकी लोइपट्टिकाओं-से सन्तुष्टी पृथ्वीपर गति करते हैं, गतिशील बनते हैं ॥

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृण्वन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युन्नासो धनयन्ते अद्रिम् ३

अहानि गृध्राः पर्यां च आगुरिमां धियं वाकायां च देवीम् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्केरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सर्धि पिवध्वै ४

एतत् त्यन्न योजनमचेति सस्वर्हं यन्मरुतो गोतमो वः ।

पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहन् ५

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति शोभति वाघतो न वाणी ।

अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ६

३ श्रिये कं वः तनूषु अधि वाशीः (वर्तते), वना न

मेधा ऊर्ध्वा कृण्वन्ते, (हे) सु-जाताः मरुतः ! तुवि-द्युन्नासः

युष्मभ्यं कं अद्रिं धनयन्ते ॥

४ (हे) गोतमासः ! गृध्राः वः अहानि परि आ आ अगुः,

वाकायां च इमां देवीं धियं अर्कः ब्रह्म कृण्वन्तः, पिवध्वै

उत्स-र्धि ऊर्ध्वं नुनुद्रे ॥

५ (हे) मरुतः ! हिरण्य-चक्रान् अयो-दंष्ट्रान् वि-धावत

वर-आहन् वः पश्यन् गोतमः यत् एतत् योजनं सस्वः ह

त्यन् न भवेति ॥

(हे) मरुतः ! गभस्त्योः स्व-धां अनु स्या एषा अनु-

वावतः वाणी न वः प्रति शोभति, आसां वृथा

अस्तोभयद्

३ विजयश्री तथा सुख पानेके लिये तुम्हारे शरीरोंपर मरुत लटकते रहते हैं; वनके वृक्षोंके समान (अर्थात् वनोंमें के) जैसे ऊँचे बढते हैं, उसी तरह तुम्हारे उपासक तथा मर्क) मरुत नी बुद्धिको उच्च कोटिकी बना देते हैं । हे अच्छे परितोषके उत्पन्न वीर मरुतो ! अत्यन्त दिव्य मनसे युक्त तुम्हारे मरुत, तुम्हें सुख देनेके लिये पर्वतसे भी धनका सृजन करते हैं । [पर्वतोंपरसे सोमसदृश वनस्पति लाकर तुम्हारे लिये अन्न तैयार करते हैं ।]

४ हे गोतमो ! जलकी इच्छा करनेवाले तुम्हें अब अच्छे दिन प्राप्त हो चुके हैं । अब तुम जलसे करनेयोग्य इन रिष कर्मोंको पूज्य मंत्रोंसे ज्ञानसे पवित्र करो । पानी पीनेके लिये मिले, सुगमता हो, इसलिये अब ऊपर रखे हुए कुंडके जलसे तुम्हारी ओर नहरद्वारा पहुंचाया गया है ॥

५ हे वीर मरुतो ! स्वर्गविभूषित पहियेकी शङ्खके हथियार धारण करनेवाले फौलादकी तेज डांडोंसे धाराओंसे युक्त हथियार लेकर भौंति भौंतिके प्रकारोंसे शत्रुओंपर दौडकर दूरे पडनेवाले और बालिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले तुम्हें देखनेवाले ऋषि गोतमने जो यह तुम्हारी आयोजना-छन्दोबद्ध स्तुति गुप्त रूपसे वर्णित कर रखी है, वह सचमुच अवर्णनीय है ।

६ हे वीर मरुतो ! तुम्हारे बाहुओंकी धारक शक्तिको (शूरता को) ध्यानमें रख कर बड़ी यह तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली हम जैसे स्तोताओंकी वाणी अब तुममेंसे प्रत्येकका वर्णन करती है । पढ़ले भी इन वर्णनोंने किसी विशेष हेतुके बिना शक्ति भौंति सराहना की थी ॥

बं. १, सू. ८५-८६]

वीर-काव्यमें वीररस

(क्र. ११८५)

स महेन्द्राका प्रकरण है और इसमें मरुतोंका काव्य है ।
मरुत) मरनेतक उठकर लडनेवाले ये वीर हैं । मरनेके
लेखेदार ये वीर हैं । देश, धर्म, जातिका संमान सुरक्षित
रखनेलिये ये वीर कटिबद्ध रहते हैं, इसलिये इनका महत्त्व
केस बाध्यमें अत्यंत अधिक है। यहां गोतम ऋषिके मरुदेव
के वेदसे गाये चार सूक्त और १४ मंत्र हैं । इन मंत्रोंमें
देश वीरस बडानेवाला बहुतही अच्छा वर्णन है । ये मंत्र
बना इन्का अर्थ ध्यानपूर्वक पढनेसे पढनेवालेके मनमें वीरश्री
जन्म होती है, उत्साह बढ जाता है और कुछ शुभ कर्म करके
विशेष भाव बढता है । इन मंत्रोंमें विशेष मनन करनेयोग्य
वेदवाक्य ये हैं—

। मुद्रं ससः सतयः, जनयः न, प्रशुम्भन्ते (१२।१)-
 य शुभ कर्म करनेवाले, सात सातकी कतारोंमें जानेवाले थे
 । मन्द, क्रियाओं के समान, अपने आपको सज्जते हैं । यहाँ
 नेह है परने गोशास्त्रसे सज्जकर रहते हैं, वह पाठक देखें ।
 १२ मां आजकलके धैरिजोंके समानही सज्जते थे ।

१ कृष्यः वीराः विदधेयु मदन्ति (१२।१) -
 कृष्य नाम करनेवाले ये प्रबल वीर युद्धोर्मि जानेसे आनन्दित
 होते हैं। युद्ध करनेके लिये ये उत्सुक तथा उत्साहित रहते हैं।

१. **पृथिवीमातरः महिमानं आशत (१२।२)**— जन्म-
रूपेण माता माननेवाले ये वीर अपने पराक्रमके कारण महत्त्व-
का मत करते हैं। ये वीर मातृभूमिके भक्त हैं और यही उनके
महत्त्व कारण है।

४ गोमातरः अश्विभिः शुभ्रयन्ते, तनूषु वि-
रसमतः दधिरे (१२।३) - गौकी माता माननेवाले अथवा
गर्भस्थकी माता माननेवाले ये वीर अलंकारोंसे अपने शरीरों-
को सजाते हैं, शरीरोंपर विशेष अलंकार धारण करते
हैं। ईदिक अपने शरीर सदाही सजाते हैं और प्रत्येक
शरीर और शस्त्र चमकदार रखते हैं। इसलिये अच्छी
रक्षा दी जाती है।

१. विश्वं अभिमातिनं अपवापन्ते (१२३)- वरुण अक्षी तरह प्रतिधार करते हैं, प्रकृति रक्षक हैं।

६ ये सुमन्नासः क्षाप्रिभिः विभ्राजन्ते (१२।४)- ये उत्तम कर्म करनेवाले वीर चमकदार शस्त्रात् धारण करनेसे विशेषही शोभते हैं ।

विशेषही शोभते हैं ।

७ मनोज्ञवः वृषवातासः रथेषु पृषतीः आ अयु
गध्वं अच्युता चित् ओजसा प्र च्यावयन्तः (१२।४)-
अपने रथोंमें मनके समान वेगवाले, प्रबल संघ करनेवाले, धन्वों
वाले घोड़ियोंको जोतते हैं और सुस्थिर हुए शत्रुओंको भी अपने
बलसे उखाड़कर फेंक देते हैं ।

८ रघुष्यदः समयः आ वहन्तु (१२।६)- शीघ्रगामी
घोड़ोंसे ये वीर आते हैं अर्थात् इनके घोड़े वेगवाले होते हैं।

१ **रघुपत्तवानः बाहुभिः प्र जिगात (१२।६) -** शत्रु-
नामी वीरो ! अपने शक्तिवाले बाहुओं के द्वारा पराक्रम प्रकट
करते हुए आओ ।

१० वः ऊरु सदः कृतं बर्हिः आसीदत (१२६)-
इन वीरोंके लिये घडा घर बनाया है, उसमें आसनोंपर ये बैठते हैं। आजकल सैनिकोंका घर अनेकोंके लिये जैसा एक होता है, वैसाही यह घर है, जो सब महत्तोंके लिये एकही है।

११ ते स्वतः अवधन्त (१२१७)- ये वीर अपने बलसे ही बलवन्त हैं । इनका बल इतना होता है कि इसी कारण इनका महत्त्व समझा जाता है ।

१२ उरु सदः चकिरे (१२७) इनके रहने के लिये बड़ा
विस्तृत घर बनाया है, जिसमें ये सब रहते हैं ।

१३ शूरा इव, युयुधयः न जग्मयः, श्रवस्वयः
न पृतनासु येतिरे, राजान इव त्वेयसंतपः नराः
मरुद्भयः विश्वा भुषणा भयन्ते (१२८) - ये शूरा, युयु
करनेवाले वीरोंके समान वे शत्रुपर बराबर हारके इनका करते
हैं, यथाशक्ति दृष्टिसे लड़नेवाले वीरोंके समान वे मेकाओंमें
कार्य करते हैं, राजाओंके समान वे नेहरूने न-बोले हैं। इन
वीरोंसे सब लोग भयभीत होते हैं।

१७ विष्णोः चर्चणीः शयः सवृषीः यः मनिमुवः

(२) कल्पवृक्षः । तत् आदिः सर्वं विद्युतामय-
विद्या रसः विष्णुः । अतः - देवः सत्यं वाचते !

तुम अपना वह बल प्रकट करो कि जिस महत्त्वपूर्ण तेजस्वी बलसे राक्षकोंको मारते हो ।

१६ विश्वं अत्रिणं वि यात (१३।१०)- सब पेदू दुष्टोंको दूर करो ।

(अ. १।८७)

१७ (प्रत्वक्षसः) शत्रुदलको परास्त करनेवाले, (प्र-तवसः) बड़े वनशाली, (विराप्तिनः) अच्छे वक्ता, (अनानतः) किसीके मामले में सिर न झुकानेवाले, (अविधुराः) विभक्त न होनेवाले, एकतामें रहनेवाले, (नृतमासः) मनुष्योंमें श्रेष्ठ, वीरोंमें श्रेष्ठ, नेताओंमें श्रेष्ठ नेता वीर ये महत् हैं । (१४।१)

१८ ते धुनयः भ्राजदृष्टयः धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त (१४।२)- वे वेगवान् वीर तेजस्वी शस्त्र ले कर शत्रुको उखाड़ कर फेंक देते हैं और स्वयं महत्त्वको प्राप्त करते हैं । इस तरह ये पचण्ड वीर शूर योद्धा हैं ।

१९ साः गणः युवा स्वसृन् नविषीभिः आवृतः जया ईशानः (१४।३)- यह तक्षण वीरोंका संघ स्वयं जयमें लगे बड़े संघ, अनेक शक्तियोंमें युक्त तथा आगे बढ़कर भयंकर का स्वामी बननेवाला है ।

२० साः भृगा गणः क्षणयावा अनेयः धिया प्र-सी ईवा (१४।४)- १२ वयान् वीरोंका संघ क्षण दूर करने-वाला, क्षण में ही करनेवाला, अपनी बुद्धिमें मक्की मुरझा

करता है ।

२१ ते वाशीमन्तः इष्मिणः अभीरवः वे वीर शस्त्र धारण करनेवाले, वेगसे शत्रुपर हमला तथा निर्भय हैं । निडर वीर हैं ।

(अ. १।८८)

२२ ऋष्टिमद्भिः अश्वपणैः रथेभिः आ य १)- शस्त्रास्त्रोंके साथ वेगवान् घोड़ोंसे युक्त रथ यहाँ आँवें ।

२३ स्वधीतिमान् रथस्य पव्या भूम ज (१५।२)- यह वीरोंका संघ अपने शस्त्र लेता है चक्की पट्टीसे भूमिको खोदता जाता है । इतना वेग है कि जमके रथके चक्के भूमि खुदी जाती है ।

२४ तनूपु अधि वाशीः (१५।३)- इन वीरोंके पर शस्त्र लटक रहे हैं ।

२५ अयोद्वं प्रान् विधावतः वराहान् पश्यन् ५)- कौलादकी तेज आँखोंके सदृश भाराओंसे युक्त लेकर शत्रुपर दूढ़ पड़नेवाले और बलिष्ठ शत्रुओंको देकर लड़नेवाले ये वीर हैं ।

इस तरह इस वीर-काव्यमें वीरोंका वर्णन है । काव्य इस तरह पढ़ें, वीरताके उपदेश देंगे और बोध लेकर जीवनमें डालें ।

यहाँ महत्प्रकरण समाप्त हुआ ।

त्रिंशो देव-प्रकरणं

(१६) दीर्घायुकी प्राप्ति

(अ. १८।१) गोतमो राजगणः । त्रिंशे देवाः ; (१-२, ४-५ देवाः, १० अदितिः) ।

अमर्ता; ३ निराद-स्वाना; ४-१० त्रिन्दुप ।

गो तमो नन्दा कनको यन्तु त्रिंशतोऽद्वयासो अपरीतास उद्भिदः ।

देवो नो यथा सदा नन्दं पुत्रे प्रसन्नप्रायुषो रक्षितारो दिव्यदिने

?

गोतमो नन्दा कनको यन्तु त्रिंशतोऽद्वयासो अपरीतास उद्भिदः ।

अमर्ता; ३ निराद-स्वाना; ४-१० त्रिन्दुप ।

गोतमो नन्दा कनको यन्तु त्रिंशतोऽद्वयासो अपरीतास उद्भिदः ।

अर्थ- १- कल्याणकारक, न दण्ड मानेवाले, पामर होनेवाले, उन्मत्ता हो पड़नेवाले युन कनो नारी प्राप्ति के योग आशय । परमात्मन में रहनेवाले, प्रतीतिरूप युद्धों के देव इत्यादि यथा संकल्प करनेवाले ईश्वर ।

देवानां भद्रा सुमतिर्कनूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे
तान् पूर्वया निविदा ह्रमहे वयं भगं मित्रमदिति दक्षमस्त्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्
तमोशानं जगतस्तस्थुपस्पतिं धियंजिन्वमवसे ह्रमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदन्धः स्वस्तये
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभेयावानो विदधेयु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरवक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमानिह

2.

421

3

4

453

9

१. कुरुतां देवानां भद्रा सुमतिः, (तथा) देवानां रातिः

॥ नि नि वतंताम् । वयं देवानां सख्यं उप तेदिम ।

ॐ नः वायुः जीवसे प्र तिरन्तु ॥

१. वायु पूर्वपा निविदा वयं हूमहे, भगं, मित्रं, धादितं,
२. धादितं (नरुद्रं), अयमभगं, वरुणं, सोमं, अश्विना,

॥ सरस्वती नः नमः करत् ॥

॥ — — — — — ॥ माता पृथिवी

२. भ्रूल मार्गसे जानेवाले देवोंकी कल्याणशक्त सुबुद्धि,
(तथा) देवोंकी उदारता हमें प्राप्त होनी रहे। हम देवोंकी
मित्रता प्राप्त करें। देव हमें दीर्घ आयु हमारे दीर्घ जीवनके
लिये दें ॥

३ उन (देवों) को प्राचीन मंत्रोंमें इन वस्तुओं के नाम, मित्र, अदिति, दत्त, विश्वासयोग्य (नहतोके मग), अग्नि, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, भाग्ययुक्त सरस्वती इतने पुनः देवों के नामों के समान ही हमारे काम बढ़ा देते हैं।

४ वायु उस सुखदायी औषधको हमारे काम चला देवे।

[illegible]

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
 स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ८
 शतमिधु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
 पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिपतायुर्गन्तोः ९
 अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमादितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
 विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १०

८ हे देवाः ! कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम । हे यजत्राः ! अक्षभिः
 भद्रं पश्येम । स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः तुष्टुवांसः यत् आयुः
 देवहितं वि अशेम ॥

९ हे देवाः ! शरदः शतं अन्ति इत् नु । नः तनूनां
 जरसं यत्र चक्र, यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति । नः आयुः
 गन्तोः मध्या मा रीरिपत ॥

१० अदितिः द्यौः, अदितिः अन्तरिक्षं, अदितिः माता,
 सः पिता, सः पुत्रः, अदितिः विश्वे देवाः, अदितिः पञ्चजनाः,
 अदितिः जातं जनित्वं (च) ॥

८ हे देवों ! कानोंसे हम कल्याणकारक (भाषण) के
 हे यज्ञके योग्य देवों ! आंखोंसे हम कल्याणकारक वस्तु दे
 स्थिर सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरोंसे (युक्त हम तुम्हारी) स
 करते हुए, जितनी हमारी आयु है, वहांतक हम देवोंका
 ही करेंगे ॥

९ हे देवों ! सौ वर्षतकही (हमारे आयुष्यकी मर्यादा)
 उसमें भी हमारे शरीरोंका बुढ़ापा (तुमने) किया है, तथा
 जो पुत्र हैं वेही आगे पिता होनेवाले हैं, इसलिये हमारी
 बाँचमेंही न टूट जाय (ऐसा करो) ॥

१० अदितिही बुलोक है, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र,
 सब देव, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद),
 वन चुका है और जो वननेवाला है, वह सब अदिति ही है ॥

(१७) ऋजु नीति

(क्र. १।९०) गीतमो राहूगणः । विश्वे देवाः । गायत्री; ९ अनुष्टुप् ।

| | |
|---|---------------------------|
| ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । | अर्यमा देवैः सजोपाः १ |
| ते हि वस्यो वसवानास्ते अप्रमृता महोभिः । | व्रता रक्षन्ते विश्वाहा २ |
| ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । | वाधमाना अप द्विपः ३ |
| वि नः पथः सुविताय चियन्तिचन्द्रो मरुतः । | पूपा भगो वन्द्यासः ४ |

अन्वयः— १ विद्वान् मित्रः वरुणः च नः ऋजुनीती
 नयतु । देवैः सजोपाः अर्यमा च (नयतु) ॥

२ ते हि वस्यः वसवानाः, ते अप्रमृताः, महोभिः विश्वाहा
 व्रता रक्षन्ते ॥

३ द्विपः अपवाधमानाः अमृताः ते मर्त्येभ्यः अस्मभ्यं
 शर्म यंसन् ॥

४ वन्द्यासः इन्द्रः मरुतः पूपा भगः (देवाः) सुविताय
 नः पथः वि चितयन्तु ॥

अर्थ— १ ज्ञानी मित्र और वरुण हमें सरल नीतिके मार्गों
 ले जावें । देवोंके साथ उत्साही अर्यमा भी (हमें वैधेही सरल मार्ग
 से ले जावे) ॥

२ वे धनके स्वामी, वे विशेष ज्ञानी, अपने सामर्थ्योंके
 सर्वदा अपने नियमोंकी सुरक्षा करते हैं ॥

३ दुष्टोंका नाश करनेवाले वे अमर देव हम मानवोंके लिये
 शान्तिमुख देते हैं ॥

४ वन्दनके योग्य इन्द्र, मरुत, पूपा, भग (ये देव) हमारे
 करनेके हेतु हमारे लिये मार्ग नियत करें ॥

| | | |
|--|---|---|
| उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः । | कर्ता नः स्वस्तिमतः | ५ |
| मधु वाता ऋतायते मधु क्षरान्ति सिन्धवः । | माध्वीर्नः सन्त्वोपधीः | ६ |
| मधु सकमुतोपसो मधुमत् पार्थिवं रजः । | मधु द्यौरस्तु नः पिता | ७ |
| मधुमाग्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । | माध्वीर्गावो भवन्तु नः | ८ |
| शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयमा । | शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्मः ९ | |

हे पूषन्, हे विष्णो, हे एवयावः (मरुतः) !
(नः धियः गोअग्राः कर्तः । उत नः स्वस्तिमतः) ।

ऋतायते वाताः मधु क्षरान्ति, सिन्धवः मधु (क्षरान्ति) ।

मीः नः नाध्वीः सन्तु ॥

५ कर्तुं नः मधु, उत उपसः (मधुमन्ति), पार्थिवं
सकमुत्, पिता द्यौः मधु (भवतु) ॥

८ वनस्पतिः नः मधुमान्, सूर्यः मधुमान् अस्तु । गावः
माग्नोः भवन्तु ॥

९ मित्रः नः शं, वरुणः शं, अयमा नः शं भवतु ।
इन्द्रः (च) नः शं, उक्मः विष्णुः नः शं
भवतु ॥

५ हे पूषा ! हे विष्णो ! हे गतिमान् (मरुतो) ! तुम हमारी
बुद्धियोंको मुख्यतः गौआँका विचार करनेवाली बनाओ । और
हमें कल्याणसे युक्त करो ।

६ सरल आचरण करनेवालेके लिये वायु माधुर्यको बढ़ा
कर ले आवे, नदियाँ मीठा रस (बढ़ाते ले आवें), औषधियाँ
हमारे लिये मीठी हों ।

७ रात्रि मधुरता देवे, उषाएं (मधुरता लावें), पृथ्वी और
अन्तरिक्ष मधुरता ले आवे, पिता द्युलोक मधुर होवे ॥

८ वनस्पतियाँ हमारे लिये मधुर हों, सूर्य मधुरता देवे ।
गौवें हमारे लिये मधुर हों ।

९ मित्र हमारे लिये शान्ति देवे, वरुण और अयमा हमें
शान्ति देनेवाले हों । बृहस्पति और इन्द्र हमें शान्ति देवे,
विशेष प्रगति करनेवाला विष्णु हमें शान्ति देवे ।

दशम मण्डल

(१८) वायु

(क्र. १०१३७) गोतमः । विश्वे देवाः, वातः । असुषुप् ।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः । त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत इयसे ३

१ हे वात ! भेषजं आ वाहि, हे वात ! यद्र रपः

वि वाहि । हि त्वं विश्वभेषजः देवानां दूतः इयसे ॥

१ हे वायु ! औषध बढ़ा कर ले आ । हे वायु ! जो रोग दे
बढ़ा कर ले आ । क्योंकि तुम सब रोगियोंके दुःखों के
और देवोंके दूत रोग बढ़ाते हैं ।

देवों का दूत बनता है । विश्वे देवाः मरुत देवता, सूर्य देवता,
बृहस्पति देवता, अयमा देवता, इन्द्र देवता, विष्णु देवता,
इत्यादि हैं । त्वं विश्वभेषजः, त्वम् विश्वभेषज देवता है ।
देवानां दूतः देवों का दूत है ।

विश्वे देवा देवता

१ मरुत देवता ' विश्वे देवाः ' है । यह वेदों के
देवता नहीं है । ' विश्वे देवाः ' का अर्थ ' सब देवता ' है ।
ये देवताएँ जिन मंत्रोंमें होती हैं, उन मंत्रों का देवता ' विश्वे

| मंत्र | देवता |
|--------------|---|
| क्र. १।८९। १ | ऋतवः, देवाः |
| २ | देवाः |
| ३ | भगः, मित्रः, अदितिः, दक्षः,
अस्त्रिधः (मरुतः), अर्यमा,
वरुणः, सोमः, अधिनौ, सरस्वती, |
| ४ | वातः, पृथ्वी, यौः, प्रावाणः,
अधिनौ |
| ५ | ईशानः, पूषा |
| ६ | इन्द्रः, पूषा, तार्क्ष्यः, वृहस्पतिः |
| ७ | मरुतः, विद्ये देवाः |
| ८ | देवाः, यजत्राः |
| ९ | देवाः |
| १० | अदितिः, यौः, अन्तरिक्षं, माता,
पिता, पुत्रः, विंध्य देवाः,
पञ्चजनाः, |
| क्र. १।९०। १ | मित्रः, वरुणः, अर्यमा |
| २ | ते (देवाः) |
| ३ | अमृताः |
| ४ | इन्द्रः, मरुतः, पूषा, भगः, |
| ५ | पूषा, विष्णुः, एवयावः (मरुतः) |
| ६ | वाताः, सिन्धवः, ओषधीः |
| ७ | नक्तं, उपसः, पार्थिवं रजः,
यौः |
| ८ | वनस्पतिः, सूर्यः, गावः |
| ९ | मित्रः, वरुणः, अर्यमा, वृह-
स्पतिः, इन्द्रः, विष्णुः । |

इन मंत्रोंके इन देवताओंको देखनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि इन देवताओंकी गणना करना कठिन है और गणना की भी, तो वह मंत्रके समान लंबी चौड़ी पंक्ति बनेगी। इसलिये ऐसे सूक्तोंके देवता 'विद्ये देवाः' कहे गये हैं। विद्ये देवा देवताके अन्य मंत्रोंमें इनसे भिन्न परंतु ऐसेही अनेक देवताओंके नाम आयेगे। किंवा केवल 'देवाः' पदही रहैया जैसे ऊपरके दो तीन मंत्रोंमें है। इसका आशय "अनेक देवता" इतनाही है।

पाठक इस बातको स्मरण रखें कि विद्ये देवा करके के विशिष्ट देवता नहीं है, परंतु अनिश्चित तथा अनेक देवताओंके उल्लेख विभिन्न मंत्रोंमें विभिन्न रीतिसे आता है। इसका विंध्य देवा देवता है। अनेक देवताओंसे अपने कल्याणकी प्रार्थना उपासक करता है, यही मुख्य विषय ऐसे सूक्तोंका होता है।

दीर्घ आयुकी प्राप्ति

इस सूक्तका मुख्य विषय यह है कि मनुष्यकी सुरक्षा होना वह दीर्घ आयुसे युक्त होकर आनन्द प्रप्त हो। इसके लिये जो उपाय इस सूक्तमें दिये हैं, उनका मनन करना चाहिये—

कर्म कैसे करें ?

१ ऋतवः भद्राः अद्व्यासः अपरीतासः उज्जिः (मं. १) — कर्म ऐसे हों कि जो निःसन्देह (भद्राः) करनेवाले हों, उच्चतर अवस्थाको पहुँचानेवाले हों, (अद्व्यासः) जिनके करनेके लिये किसीके नीचे दब जाना न पड़े, कि दबावके अन्दर आकर कर्म न किये जायें, प्रत्युत स्वयंस्फूर्त कर्म किये जायें, और (उज्जिः) ऊपरके दबावको दूर क उन्नतिके मार्गको खोलनेवाले हों, जो उन्नतिके मार्ग दबा कारण रुका है उसको खोलनेवाले हैं, ऊपरके दबावका करनेवाले कर्म हों।

२ अ-प्रा-युचः दिवेदिवे रक्षितारः देवाः ३ (मं. १) — प्रगतिके मार्गको प्रतिबंध न हो और प्रति सा सुरक्षितता होती रहे, यह करनेवाले दिव्य विबुध संवर्ग कार्य करनेमें सहायक हों।

३ ऋजूयतां भद्रा सुमतिः (मं. २) — सरल माने जानेवालोंकी कल्याण करनेवाली सुबुद्धिकी सहायता मिले सरल स्वभाववालोंकी प्रतिकूलता कमी न हो।

४ देवानां रातिः नः अभि निर्वर्तताम् (मं. २) — दिविबुधोंकी दानरूप सहायता हमें प्राप्त हो। हम ऐसा शुभ करें कि जिससे देवताओंकी सहायता मिलती जाय ॥

५ वयं देवानां सख्यं उप सेदिम (मं. २) — हमें देवों मित्रता प्राप्त हो। हम ऐसे शुभ कर्म करें कि जिससे संपत्तिवाले विबुध हमारे मित्र बनें।

६ नः जीवसे देवाः आयुः प्रतिरन्तु (मं. २) — हमारे आयु दीर्घ होनेके लिये देव हमें अधिक आयु प्रदान करें अर्थात् देवोंकी सहायतासे हम दीर्घायु बनें।

१ भिन्न, वरुण, अर्यमा आदि देव हमें सरल मार्गों के मार्गों से लावें । तेरे मार्गों पर हमें न चलावें । (मं. १)

२ (ते महेभिः वता रश्मन्ते)—ये अपनी शक्तियों से मर्त्यों को सुरक्षित रखते हैं, नियमों को नहीं तोड़ने, इसलिये नियमों की रक्षा करने के कारण ही उनकी शक्ति बड़ी है । अर्थात् जो सुनीतिके सुनियमों का पालन करेगा उन को भी शक्ति बढ़ेगी और वे श्रेष्ठ बनेंगे । यही प्रत्यक्षपालन का आदेश दिया है । (मं. २)

३ (द्विषः अपवाधमानाः) दुष्ट शत्रुओं को दूर करो, उनको प्रतिबंध करो, उनके दुष्ट कर्मों को प्रतिबंध करो, यह दे स्वास्थ्य-प्राप्तिका साधन । राज्यव्यवस्था में दुष्टों को साधन होना चाहिये । (अमृताः मर्त्येभ्यः शर्मं गंसन्) अमर बनकर मरनेवालों को मुक्त दो । यह नियम समाज के स्वास्थ्य का है । ज्ञानी बनकर अज्ञानियों को ज्ञान देना चाहिये । शक्तिवान् बनकर निर्यत्नों की सुरक्षा करनी चाहिये । भनवान् बनकर गरीबों की सहायता करनी चाहिये । कर्मकुशल बनकर अकुशलों को कौशल सिखाना चाहिये । यह भाव अमर बनकर मरनेवालों को अमर बनने का मार्ग दिखाना चाहिये, इस सूत्रमय वेदमंत्र में पाठक देखें । (मं. ३)

४ वन्दन के योग्य देव हमारी सुविधा का मार्ग (नः सुविताय पथः) हमें बतावें । उस मार्ग से हम जायँ और उन्नति प्राप्त करें । (मं. ४)

५ (गोअत्राः धियः कर्त) तुम्हारी बुद्धि में गोओं को यहाँ विश्वे देव-प्रकरण समाप्त हुआ ।

उप-प्रकरण

(१९) उषाः

(अ. १९२) गोतमो राहूगणः । उषाः, १६-१८ अश्विनौ । १-४ जगती;

५-१२ त्रिष्टुप्; १३-१८ उष्णिक् ।

एता उ त्या उपसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।

निष्कृण्वाना आयुधानीव घृण्वः प्रति गावोऽरुणीर्यन्ति मातरः

१

अन्वयः— १ त्याः एताः उपसः केतुं अक्रत । रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अञ्जते । घृण्वः आयुधानि इव, निष्कृण्वानाः गावः अरुणीः मातरः प्रति यन्ति ॥

अप्यस्थान प्राप्त हो । मानवी जीवन में गो की मुख्य स्थान है (स्तुतिमन्त्रः कर्त) गो को मानवी जीवन में अप्यस्थान देने मानवी को कल्याण प्राप्त होगा । (मं. १)

१ (जतायते सर्वे मधु भवति) सरल मार्ग से जले चले के लिये सब जगत् अर्थात् वायु, नदियाँ, समुद्र, ओषधी, विन, रात, उषा, पुष्पी, अन्तरिक्ष, आकाश, वनस्पति, सूर्य, गौर्वा, भिन्न, वरुण, अर्यमा, बुद्धि, इन्द्र, विष्णु आदि सब मौला होगा । इसलिये जत का मार्ग सब मनुष्य अपने आचरण लावें । 'जत' का अर्थ 'सरल, सरल, गन्त, मटल नियम' आदि सभी मानवी जीवन को सुखमय बनाने की शक्ति इस जत में है । यही विषे दे सका द्वितीय सूक्त समाप्त होता है ।

१ तृतीय सूक्त में कहा है कि 'वायु आंध्रियुगों को हमारे सब पटुंन और हमारे अन्दर जो दोष हैं उनको दूर करे' श्वास और उच्छ्वास, तथा वायु के बदन से अशुद्धि का दूर होना और जीवन प्राप्त होना, यह सब किया इसमें वर्णन की है । श्वास से प्राण-वायु अन्दर जाता और वद रफ से साथ निष्कात है और उच्छ्वास से शरीर से दोष दूर होते हैं । इस तरह रोग रहित होता है । वायु के वेग से बदन से भी नगर में शुद्ध वायु आता है, जो नगर के दोषों को दूर करता है । इस तरह न (देवानां दूतः) देवों का दूत ही है, जो सब ओषधियों को लेकर सबको नीरोग करता है ।

इस तरह यह मंत्र आरोग्य-रक्षण के उत्तम निर्देश दे रहा है । इसलिये यह मननीय है ।

यहाँ विश्वे देव-प्रकरण समाप्त हुआ ।

अर्थ— १ इन उषाओं ने अपना ध्वज फहराया है । अन्तरिक्ष के पूर्व आधे भाग में (इन्होंने) प्रकाश किया है । साहसी योद्धा जित तरह अपने शत्रु (तेजस्वी करता है, उस तरह), तेज फैलाती हुई ये गौर्वा, तेजस्वी माताएँ जैसी, इस ही ओर आ रही हैं ।

उदपन्नरूपा भानवो वृथा स्वायुजो अरुर्धार्गा अयुक्षत ।
अक्रन्तुषासो वयुनानि पूर्वथा हशन्तं भानुमरुधीरशिश्नयुः
अर्वन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इपं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उन्नेव वर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न ब्रजं व्यु१षा आवर्तमः
प्रत्यर्च्यं हशदस्या अदर्शी वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभवम् ।
स्ववं न पेशो विदथेष्वङ्गञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्नेत्
अतारिप्स तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।

धूमने हैं। जिस तरह देवताओं परस्परिणा को जाती है, उस तरह उषा नारी और परस्परिणा करती है। देवताओं के मानकों के पूर्ण दक्षिण पार्श्व और उत्तर दिशाओं में वह धूमती है, इस कारण इसमें नदी कहा है। यह नदी वेदा उषा होती है जो (पेसांसि अभि वपते) अनेक प्रकार के कृषकों और पशुओं को पड़-नती है। उषा के रंग चमड़े पट्टे में बदलने रहते हैं, इसपर कविने यह वर्णन किया है। (चक्षुः अप ऊर्णते) आँखों में धुंध रहती है, लाल मुखे करके दिखाती है। परमेश्वरी ऐसा नहीं करती, नर्तकों के रंग ऐसा करती है यह कर्कश मुखाली और नर्तकी में है।

गोतम ऋषि

सातवें मंत्र में (दिवः स्तवे दुहिता गोतमेश्वरः) इस मुखाली पुत्री का स्तवन गोतम ऋषिगोत्र में किया। गोतम गोत्र में उत्पन्न हुए ऋषियों ने यह स्तवन किया है। गोतम गोत्र में अनेक ऋषि होंगे, उनका यह नाम इस मंत्र में आया है।

घर में सेवक

आठवें मंत्र में 'दास-प्र-वर्ग' पद है। दास मेा कहते हैं, उन सेवकों का वर्ग वर्ग अर्थात् दस बीस या अधिक सेवक घर में रहें, वे घरवालों के समान काम करें।

वैदिक ऋषि अपने घर में वीसियों नौकर चाकर सेवक रहें, ऐसी प्रार्थना करते थे, इससे उनके बड़े विस्तृत प्रपंच का पता लगता है। घर में बहुत आदमी कर्तृत्ववान् न होंगे तो इतने नौकर क्योंकर वहाँ रहेंगे? इससे सिद्ध होता है कि ऋषियों का घर बहुत नर-नारियों से और अनेक बालक-बालों से भरा रहता था। इसीलिये इस सूक्त में अनेक बार अनेक गौँ, घोड़े और विशाल धन चाहिये, ऐसा कहा है।

कसाई स्त्री

इस सूक्त के दसवें मंत्र में 'कृत्तु' पद 'कसाई स्त्री' का वाचक है। 'कृत्' धातु का अर्थ 'काटना' छेदना, टुकड़ा करना' है। 'कृत्तु' का अर्थ काटनेवाली स्त्री, कसाई स्त्री। यह स्त्री 'श्व-घ्नी' कुत्ते को काटकर टुकड़े करती है और 'विजः आमिमाना' पक्षियों के पंखों को काटती है। श्वपाक चांडाल जातिकी यह स्त्री होगी। इसका यह धंदाही होगा। उषा के लिये यह उपमा है। जैसी यह कसाई स्त्री पशु को काटकर रक्त के लाल रंग से रंगित होकर लाल दीखती है, वैसीही उषा (मर्तस्य आयुः नर-

पत्नी) मानसों में पाशुको काटती है, उस कारण यह दिखती है। यह पशु नर उषा इस मंत्र में है।

आर के मन से गोमना

जो स्त्री पाने को आकर दूसरे मनुष्य के साथ संबंध रखती है, उस स्त्री को आरिणी कहते हैं और जिसके साथ संबंध रखता है, उसको आर कहते हैं। आर उस स्त्री के घर में नया कपड़े देता है और वह जो आर के सामर्थ्य में मुसोमित होती है। यही उषा स्त्री है, उस आर सूर्य है, सूर्य के प्रकाश में यह उषा मुसोमित होती है (योगा जारस्य वक्षसा विभाति ११) श्री ऋषिगोत्र में मुसोमित होती है। 'आर' शब्द अर्चन करने का भाव है। ऐसा भी होना सीमा है। इस अर्थ से व्यक्ति स्त्री की कल्पना दूर हो सकती है। 'आर' का अर्थ 'प्रेम' (lover) है। यह उषा अपने प्रियकर पर प्रेम करती है, वह वद (स्वसारं अप ययौति ११) अपने बहिन के सूर करती है। अपने बहिन पर भी प्रेम नहीं रखती। काव्य उषा के अंग्रेज राशि दूर होती है, इसपर है।

इस उषा-सूक्त का शेष वर्णन समझने आ सकता है। उषा अपना गेह आश्विन कदराया है, आकाश में प्रकाश फैलाया है। सादही घोर अपने शत्रुओं को चमकाता है वैसा तेज फैलाया है। रदा है, उषा के रथ की लाल घोड़े या बैल जोते जाते हैं, वे सूर्य किरण ही हैं। उषा आने के बाद मानवों को प्रकाश मिलता है और वे अनेक कर्म करने लगते हैं। अर्थात् उषाही ये सब करती है। इस तरह इस काव्य का वर्णन समझने योग्य है।

पदों की उलटी योजना

हिंदी भाषा के साथ तुलना करने पर वैदिक भाषा की पद-योजना उलटी प्रतीत होती है, जैसी अंग्रेजी की होती है, देखिये-

- १ अर्चन्ति, नारीः अपसो न विष्टिभिः।
- २ इयं वहन्तीः, सुकृते यजमानाय।
- ३ अपोर्णते वक्षः।
- ४ वाघते कृष्णं अभ्यम्।
- ५ अतारिष्म तमसः पारम्।
- ६ नेत्री सूनृतानाम्।
- ७ उप मासि वाजान्।

वि।

ती दिवो अन्तान्।

ती मनुष्या युगानि।

ती दैव्या व्रतानि।

को अनुवाद ऐसा होता है, इसमें शब्दोंका स्थान

बैसाही रहता है—

singing their song, like women,

their tasks.

giving refreshment, to the liberal

covers her breast.

res away the darksome monster.

have overcome the limit of this

ss.

e leader of charm of pleasant

onferrest on us strengthb.

ay I gain that wealth.

Discovering heaven's borders.

Diminishing the days of human

sures.

11 Never transgressing the divine
commandments.

हिंदीमें इसके उल्टे शब्द-प्रयोग होते हैं। जैसा—

१ स्रियाँ कर्ममें लगीं हुईं स्तोत्र-पाठ करती हैं,

२ उत्तम कर्म करनेवाले यज्ञमानके लिये अन्न ले जाती हैं,

३ छाती खोलती है,

४ काले अन्धकारको हटाती है,

५ अन्धकारके पार हम पहुंचे,

६ सत्य भाषणोंकी चलावेवाली,

७ बलोंको देती है,

८ धन प्राप्त करें,

९ आकाशके अन्तोंको प्रकट करती है,

१० मानवी युगोंको कम करती है, आयुष्य क्षीण

करती है,

११ दिव्य नियमोंका उलंघन नहीं करती।

यहां छन्दके कारण शब्द आगे पीछे हुए होंगे, पर संस्कृतमें और वेदमें भी ऐसीही पद आते हैं। 'पुस्तकं रामस्य' (रामका पुस्तक) ऐसा हिंदीके उल्टे क्रममें शब्द रचना होला और लिखना संस्कृतमें अधिक अच्छा माना जाता है। अंग्रेजीमें तो यही क्रम सदाही रखा जाता है।

॥ उपा-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अग्निहोत्र-प्रकरण

(२०) बल, वीर्य और दीर्घायु

(अ. १।१३) गोतमो राहुगणः । अग्नीषोमौ । १-३ अनुष्टुप् ४-७, १२ अनुष्टुप् ८ अक्षर विदुःगा । ९-११ गायत्री ।

अग्नीषोमाविमं सु मे दृणुतं वृषणा हवम् । प्राति स्तृणामि हवन्तं अदन्तं दृणुते मयः ।

अग्नीषोमा यो अयं जामेदं ययः सपयित । तस्मै धत्तं सुवीर्यं वीर्या शीघ्रं स्वयम्भवे ।

अर्थः— १ हे वृषणा अग्नीषोमो ! हमें मे हव

२ दृणुते । स्तृणामि प्राति हवन्तं । दृणुते अदन्तं स्वयम्भवे ॥

३ हे अग्नीषोमो ! यः अयं जामेदं ययः सपयित, तस्मै

४ धत्तं सुवीर्यं वीर्या शीघ्रं स्वयम्भवे ॥

धूमते हैं। जिस तरह देवताकी प्रदक्षिणा की जाती है, उस तरह उपा चारों ओर प्रदक्षिणा करती है। देखनेवाले मानवोंके पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें वह धूमती है, इस कारण इसको नटी कहा है। यह नटी वेद्या जैसी होती है जो (पेशांसि अधि वपते) अनेक प्रकारके रूपोंकी और वस्त्रोंकी पहनती है। उपाके रंग घण्टे घण्टेमें बदलते रहते हैं, इसपर कविने यह वर्णन किया है। (चक्षः अप ऊर्णते) छाती खुली रखती है, स्तन खुले करके दिखाती है। धर्मपत्नी ऐसा नहीं करती, नर्तकी वेद्या ऐसा करती है यह फर्क गृहपत्नी और नर्तकीमें है।

गोतम ऋषि

सातवें मंत्रमें (दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः) इस पुत्र-लाककी पुत्रीका स्तवन गोतम ऋषियोंने किया। गोतम गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने यह स्तोत्र किया है। गोतम गोत्रमें अनेक ऋषि होंगे, उनका यह नाम इस मंत्रमें आया है।

घरमें सेवक

आठवें मंत्रमें 'दास-प्र-वर्ग' पद है। दास सेवकको कहते हैं, उन सेवकोंका बड़ा वर्ग अर्थात् दस बीस या अधिक सेवक घरमें रहें, वे घरवालोंके समान काम करें।

वैदिक ऋषि अपने घरमें बीसियों नौकर चाकर सेवक रहें, ऐसी प्रार्थना करते थे, इससे उनके बड़े विस्तृत प्रपंचका पता लगता है। घरमें बहुत आदमी कर्तृत्ववान् न होंगे तो इतने नौकर क्योंकर वहां रहेंगे? इससे सिद्ध होता है कि ऋषियोंका घर बहुत नर-नारियोंसे और अनेक बालबच्चोंसे भरा रहता था। इसीलिये इस सूक्तमें अनेक बार अनेक गौर्वें, घोड़े और विशाल धन चाहिये, ऐसा कहा है।

कसाई स्त्री

इस सूक्तके दसवें मंत्रमें 'कृत्नु' पद 'कसाई स्त्री' का वाचक है। 'कृत्' धातुका अर्थ 'काटना' छेदना, टुकड़ा करना' है। 'कृत्नु'का अर्थ काटनेवाली स्त्री, कसाई स्त्री। यह स्त्री 'श्व-घ्नी' कुत्तेको काटकर टुकड़े करती है और 'विजः आमिमाना' पक्षियोंके पंखोंको काटती है। श्वपाक चांडाल जातिकी यह स्त्री होगी। इसका यह घंटाही होगा। उपाके लिये यह उपमा है। जैसी यह कसाई स्त्री पशुको काटकर रक्तके लाल रंगसे रंगित होकर लाल दीखती है, वैसीही उपा (मर्तस्य आयुः नर-

यन्ती) मानवोंकी आयुको काटती है, इस कारण वह लाल दिखती है। यह सुन्दर उपमा इस मंत्रमें दी है।

जारके धनसे शोभना

जो स्त्री पतिको छोड़कर दूसरे मनुष्यके साथ संबंध रखती है, उस स्त्रीको जारिणी कहते हैं और जिसके साथ संबंध रखती है, उसको जार कहते हैं। जार उस स्त्रीके जेवर तथा कपड़े देता है और वह जो जारके धनसे आभूषणोंसे सुशोभित होती है। यहां उपा स्त्री है, उसका जार सूर्य है, सूर्यके प्रकाशसे यह उपा सुशोभित होती है (योपा जारस्य चक्षसा विभाति ११) जो जार आभूषणोंसे सुशोभित होती है। 'जार' शब्दका अर्थ प्रेम करनेवाला पति ऐसा भी होना संभव है। इस अर्थसे व्यक्तिगत दोषकी कल्पना दूर हो सकेगी। 'जार' का अर्थ 'प्रियकर' (lover) है। यह उपा अपने प्रियकरपर प्रेम करती है, जब वह (स्वसारं अप युयोति ११) अपने बहिनके भी दूर करती है। अपने बहिनपर भी प्रेम नहीं रखती। यह काव्य उपाके आनेसे रात्रि दूर होती है, इसपर है।

इस उपा-सूक्तका शेष वर्णन समझमें आ सकता है; उपने अपना गेरुआ ध्वज फहराया है, आकाशमें प्रकाश फैलाया है, साहसी वीर अपने शत्रुओंको चमकाता है वैसा तेज फैलाया जा रहा है, उपाके रथको लाल घोड़े या बैल जोते जाते हैं, ये सर्व-किरणही हैं। उपा आनेके बाद मानवोंकी प्रकाश मिलता है और वे अनेक कर्म करने लगते हैं। अर्थात् उपाही ये सब कर्म कराती है। इस तरह इस काव्यका वर्णन समझने योग्य है।

पदोंकी उलटी योजना

हिंदी भाषाके साथ तुलना करनेपर वैदिक भाषाकी प्रद-योजना उलटी प्रतीत होती है, जैसी अंग्रेजीकी होती है, देखिये-

१ अर्चन्ति, नारीः अपसो न विष्टिभिः।

२ इषं वहन्तीः, सुकृते यजमानाय।

३ अपोर्णते वक्षः।

४ वाधते कृष्णं अभ्वम्।

५ अतारिष्म तमसः पारम्।

६ नेत्री सनुतानाम्।

७ उप मासि वाजान्।

र्त्तं स्यि ।
 र्त्तं दिवो जन्तान् ।
 र्त्तं मनुष्या युगानि ।
 र्त्तं दैव्या व्रतानि ।
 न कुरुते एव होता है, इसमें सबोंका स्थान
 न सब देखी रहता है—
 They sing their song, like women,
 in their tasks.
 Bringing refreshment, to the liberal
 one.
 Unravels her breast.
 Drives away the darksome monster.
 We have overcome the limit of this
 place.
 The leader of charm of pleasant
 life,
 Conferrest on us strength.
 May I gain that wealth.
 Discovering heaven's borders.
 Diminishing the days of human
 existence.

11 Never transgressing the divine commandments.

हिंदोंमें इसके उल्टे सम्बन्ध-प्रयोग होते हैं। वैसा—

- १ सिरों कर्ममें लगी हुई स्तोत्र-पाठ करती हैं,
- २ उत्तम कर्म करनेवाले यजमानके लिये अन्न ले जाती हैं,
- ३ छाती खोलती हैं,
- ४ काले अन्धकारको हटाती हैं,
- ५ अन्धकारके पार हम पहुँचें,
- ६ सत्य भाषणोंकी चलातेवाली,
- ७ बलोंको देती हैं,
- ८ धन प्राप्त करें,
- ९ जाकाशके जन्तोंको प्रकट करती हैं,
- १० मानवी युगोंको कम करती हैं, आयुर्व्य शीघ्र
करती हैं,

११ दिव्य नियमोंका उल्लंघन नहीं करती।

यहां छन्दके कारण शब्द आगे पीछे हुए होंगे, पर संस्कृतमें
और वेदमें भी ऐसी पद आते हैं। 'उत्तमं रानस्य'
(रानस्य उत्तम) ऐसा हिंदोंके उल्टे क्रमसे शब्द रगड़
बोलना और लिखना संस्कृतमें अधिक अच्छा माना जाता है।
अंग्रेजोंमें तो यही क्रम सदा से रखा जाता है।

॥ उषः-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अरुणिलोम-प्रकरण

(२०) बल, वीर्य और दीर्घायु

| | |
|--|---|
| अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्विष्कृतिम् । | |
| स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्रवत् | ३ |
| अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पर्णि गाः । | |
| अवातिरतं वृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः | ४ |
| युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् । | |
| युवं सिन्धूरभिश्चस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् | ५ |
| आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथनादन्यं परि श्येनो अद्रेः । | |
| अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् | ६ |
| अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुपेथाम् । | |
| सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः | ७ |
| यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो धृतेन । | |
| तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् | ८ |

३ हे अग्नीषोमौ ! यः आहुतिं वां दाशात्, यः हविष्कृतिं (च दाशात्), सः प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः व्यश्रवत् ॥

४ हे अग्नीषोमौ ! वां तत् वीर्यं चेति, यत् गाः अवसं पर्णि अमुष्णीतम् । वृसयस्य शेषः अवातिरतम् । ज्योतिः एकं बहुभ्यः अविन्दतम् ॥

५ हे सोम ! (त्वं) अग्निः च सक्रतू, युवं रोचनानि पृथानि दिवि अधत्तम् । हे अग्नीषोमौ ! गृभीतान् सिन्धूरं, अभिदास्तेः अवद्यात् अमुञ्चतम् ॥

६ हे अग्नीषोमौ ! अन्यं मातरिश्वा दिवः आ जभार । अन्यं श्येनः अद्रेः परि अभभात् । ब्रह्मणा वावृधानौ यज्ञाय उदं लोकं चक्रथुः ॥

७ हे अग्नीषोमा ! प्रस्थितस्य हविषः वीतम् । हर्यतं (यः) । हे वृषा ! जुपेथाम् । सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम् । यजमानाय शं योः धत्तम् ॥

८ यः देवद्रीचा मनसा अग्नीषोमा हविषा सपर्यात् । यः धृतेन, तस्य व्रतं रक्षतम् । अंहसः पातम् । विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥

३ हे अग्निषोमौ ! जो आपको आहुति अर्पण करता है, आपके लिये हवन (करता है), वह प्रजा के साथ उत्तम कर्म पूर्ण आयु प्राप्त करे ॥

४ हे अग्निषोमौ ! आपका वह पराक्रम (उस समय) हुआ कि जिस समय गाँओं को रखनेवाले पाणिषे (वृष माँ को तुमने) हरण किया । वृसयके शेष अनुचरों को तितरफट किया और (सूर्यकी) एक ज्योति सबके लिये प्राप्त की ॥

५ हे सोम ! (तू) और अग्नि एकही कर्म करनेवाले । तुमने ये नक्षत्रज्योतिषों आकाशमें रख दी हैं । हे अग्निषोमौ प्रतिबंधित नदियोंको अमंगल निन्दासे मुक्त किया ।

६ हे अग्निषोमौ ! (तुममेंसे) एक अग्निको वायुने आकाशमें यहाँ लाया । और दूसरे सोमको श्येनने पर्वत-शिखरपर उखाड़कर लाया है । स्तोत्रोंसे बढाते हुए (तुम दोनोंने) कर्म लिये (यहाँ) बडाही विस्तृत क्षेत्र बनाया है ।

७ हे अग्निषोमौ ! यहाँ रहे हविरजका स्वाद लो । (जो) स्वीकार करो । हे बलवान् देवो ! इसका भक्षण करो ! हमारा कल्याण करनेहारे और हमारी सुरक्षा करनेवाले होओ । और यज्ञकर्ताको सुख (देकर उधका दुःख) दूर करो ॥

८ जो देवीकी भाँति करनेवाले मनसे अग्निषोमों को अर्पण करता है, और धीका हवन करता है, उसके मनमें व्रतको सुरक्षित रखो । (उसकी) पापसे बचाओ । मानवोंके लिये बहुत सुख देओ ॥

गोतम ऋषिका दर्शन

सू. ११]

अग्नीषोमा सवेदसा सहृती घनतं गिरः । सं देवज्ञा बभूवथुः १
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं वृहस्प १०
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा ११
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्त्रिया हव्यसूदः ।
अस्मै बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् १२

अग्नीषोमौ ! सवेदसा सहृती गिरः घनतम् ।

सं देवभूयः ॥

हे अग्नीषोमौ ! वां यः अनेन घृतेन वां दाशति,
हृद दीदयतम् ॥

हे अग्नीषोमौ ! युवं नः इमानि हव्या जुजोषतम् ।

आ उप आ यातम् ॥

हे अग्नीषोमौ ! नः अर्वतः पिपृतम् । हव्यसूदः

आ प्यायन्ताम् । मघवत्सु अस्मै बलानि धत्तम् ।

अध्वरं श्रुष्टिमन्तं कृणुतम् ॥

सबको सुखी करो

११ सोमो मे सुख, उत्तम वीर्य पराक्रम करनेका सामर्थ्य, पुष्ट
और बल घोड़े, तथा विपुल धन और पूर्ण आयु चाहिये,
कहा है। उत्तम संतान वीर पुत्र हों ऐसा भी कहा है।
(६-१-१)

अग्नि और सोम इन दो देवताओंकी प्रार्थना है।
कैसे पाने आकाशसे लाया (मं. ६)। विद्युत्से जो अग्नि उत्पन्न
है, उसका यह वर्णन है। क्योंकि विद्युत् और वायु साथ
चलते हैं और आकाशसे अग्नि विद्युत्से आया और
कैसे गिरनेसे वह अग्नि पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ। यह कल्पना
है।

सोमो मे सुख-सोमपरते उखाडकर, मघवर, लाया है।
हमें यह एक आशय, वनस्पति, बलि है। रिमाउरके हेम-

९ हे अग्निषोमो ! आप एक साथ सब जानते हैं, इसलिये
(एक साथ हुई हमारो की) प्रार्थना सुनो । (यहां) देवोंमें
तुम एकदम प्रकट हुए हैं ।

१० हे अग्निषोमो ! जो तुम्हें इस घोडा अर्पण करता है,
उसे बडा (धन) दो ॥

११ हे अग्निषोमो ! तुम दोनों हमारे ये हवन स्वांकारो ।
मिलकर हमारे पास आओ ॥

१२ हे अग्निषोमो ! हमारे घोडोंको पुष्ट करो । (हमारो)
दूध देनेवाली गौओंको पुष्ट करो । हमारे धनवान् (याजकों)
को अनेक प्रकारके बल स्थापन करो । हमारे यज्ञको यशस्वी
करो ॥

शिखरोंपर यह होती है, वहांसे उखाडकर यह लाया जाती है।
(मं. ६) अग्नि और सोमने यज्ञका विस्तृत क्षेत्र बनाया है, कथं
कि सभी यज्ञ अग्नि और सोमरससेही बनते हैं।

सोमरस इंद्र पीता है, अग्नि सब देवोंको पियता है, उससे
सब देव बलवान् बनते हैं और इन्द्रके द्वारा सोमका पराक्रम
होता है और वह पशुने डुराओ गोबे हारन करके उनका शत्रु
लायी जाती है। क्योंकि सब अमुकापनेका पराक्रम किया जाता
है और सबके प्रकाशके लिये सूर्यका उदय होता है। (मं. ४)
उत्तरायण शुक्लके प्रदोष रात्रिके पञ्चम्याके बाद सूर्योदय होता है।
प्रदोष रात्रिके अन्ते सोम होकर पश्चिम की ओर गिरता है।
सूर्य विजयनेपर पुनः बढ़ते लगता है, वह उत्तरायण विजय
बनता है। (मं. ५)

यह सूर्य शुक्लके अन्ते सोम पश्चिम की ओर गिरता है,
यही है।

॥ यहां अग्नि-सोम-मघवर सबको सुखी करो ॥

सोम-प्रकरण

(२१) सोमरस

(अ. १।११) गोतमो राहूगणः । सोमः । त्रिष्टुप्; ५-१६ गायत्री; १७ उष्णिक् ।

| | |
|---|---|
| त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेपि पन्थाम् । | |
| तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः | १ |
| त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः । | |
| त्वं वृषा वृषत्वेभिर्मदित्वा युष्टेभिर्युन्यभवो नृचक्षाः | २ |
| राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्भीरं तव सोम धाम । | |
| शुचिष्ठमासि प्रियो न मित्रो दक्षाव्यो अर्यमेवासि सोम | ३ |
| या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोपधीष्वप्सु । | |
| तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेलन् राजन्सोम प्रति हव्या गृभाय | ४ |
| त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः | ५ |
| त्वं च सोम नो वशो जीवानुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः | ६ |
| त्वं सोम महे भगं त्वं यूने क्रतायते । दक्षं दधासि जीवसे | ७ |

अन्वयः- १ हे सोम ! त्वं मनीषा प्र चिकितः । त्वं रजिष्ठं पंथां अनुनेपि । हे इन्दो ! तव प्रणीती नः धीराः पितरः देवेषु रत्नं अभजन्त ॥

२ हे सोम ! त्वं क्रतुभिः सुक्रतुः भूः । विश्ववेदाः त्वं दक्षैः सुदक्षैः (भवसि) । त्वं वृषत्वेभिः मदित्वा वृषा, नृचक्षाः युष्टेभिः युष्टी अभवः ॥

३ हे सोम ! राज्ञः वरुणस्य ते नु व्रतानि । तव धाम बृहत् मनीषम् । हे सोम ! त्वं शुचिः असि । प्रियो न मित्रं अर्यमा इव दक्षाव्यः असि ॥

४ ते दिवि या धामानि, या पृथिव्यां, या पर्वतेषु ओपधीषु अप्सु (वर्तन्ते), हे सोम राजन् ! तेभिः विश्वैः सुमनाः अहेलन्, नः हव्या प्रति गृभाय ॥

५ हे सोम ! त्वं सत्पतिः असि । उत त्वं राजा, वृत्रहा त्वं भद्रः क्रतु असि ॥

६ हे सोम ! नः जीवानुं प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः त्वं च वशः, न मरामहे ॥

७ हे सोम ! त्वं महे क्रतायते त्वं यूने जीवसे दक्षं भगं दधासि ॥

अर्थ — १ हे सोम ! तू बुद्धिमान् और विशेष ज्ञानी प्रसिद्ध है । तू (सचको) भूलाकपर सरल मार्गसे ज्ञेय है । हे सोम ! तेरे मार्गदर्शनसे हमारे बुद्धिमान् पितरों देवोंमें भी रमणीय भोग प्राप्त हुए थे ॥

२ हे सोम ! तू अनेक कर्म करनेसे उत्तम कर्मकर्ता प्रसिद्ध है । तू सब जाननेवाला अनेक चतुरताओंसे युक्त बड़ा चतुर कहा जाता है । तू अनेक शक्तियोंसे युक्त बड़ा बलवान् हुआ है, तथा मानवोंका निरीक्षक तू अनेक पास रखनेके कारण धनी हुआ है ॥

३ हे सोम ! राजा वरुणके ये सब नियम हैं । तेरा बड़ा विशाल भव्य है । हे सोम ! तू शुद्ध है । तू हमारे मित्र और अर्यमाके समान चतुर कुशल है ॥

४ तेरे निवासस्थान आकाश, पृथ्वी, पर्वत, ओपधि जलोंमें हैं । हे राजा सोम ! उन सब स्थानोंसे तू आनन्द तथा विद्वेप न करता हुआ, हमारे हविष्यान्नोंका स्वीकार

५ हे सोम ! तू उत्तम पालक है । तू राजा है, तू वृत्रनाश करता है, तू सब हित करनेवाला है ॥

६ हे सोम ! हमारे दीर्घ जीवनके लिये तू प्रशंसनीय है, तेरे अनुकूल होनेपर हम नहीं मरेंगे ॥

७ हे सोम ! तू सत्यपालक बड़े तद्वग्न भगदों का के लिये बल और भाग्य देता है ॥

गोतम ऋषिका दर्शन

[११]

| | | |
|---|----------------------------|----|
| त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । | न रिष्येत् त्वावतः सखा | ८ |
| सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुपे । | ताभिर्नोऽविता भव | ९ |
| इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । | सोम त्वं नो वृधे भव | १० |
| सोम गीर्भिश्चा वयं वर्धयामो वचोविदः । | सुमृळीको न आ विश | ११ |
| गयस्फानो अमीवहा वसुविद् पुष्टिवर्धनः । | सुमित्रः सोम नो भव | १२ |
| सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । | मर्य इव स्व ओक्थे | १३ |
| यः सोम सख्ये तव रारणद् देव मर्त्यः । | तं दक्षः सचते कविः | १४ |
| उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंसः । | सखा सुशेव एधि नः | १५ |
| आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । | भवा वाजस्य संगथे | १६ |
| आप्यायस्व मदन्तिम सोम विश्वेभिरंशुभिः । | भवानः सुश्रवस्तमः सखा वृधे | १७ |
| सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिपाहः । | | |
| आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व | | १८ |

८ हे सोम राजन् ! त्वं नघायतः विश्वतः नः रक्ष ।
 ९ हे सोम ! त्वं न रिष्येत् ॥
 १० हे सोम ! ते दाशुपे मयोभुवः याः ऊतयः सन्ति, ताभिः
 विता भव ॥
 ११ हे सोम ! त्वं इमं यज्ञं इदं वचः जुजुषाणः उप
 गहि । नः वृधे भव ॥
 १२ हे सोम ! वचोविदः वयं गीर्भिः त्वा वर्धयामः ।
 सुमृळीको न विदा ॥
 १३ हे सोम ! नः गयस्फानः अमीवहा वसुविद् पुष्टि-
 वर्धनः भव ॥
 १४ हे सोम ! गावः न यवसेषु आ, मर्यः इव त्वे
 नः हृदि ररन्धि ॥

१५ हे देव सोम ! तव सख्ये यः मर्त्यः रारणद्, तं
 दक्षः सचते ॥
 १६ हे सोम ! नः अभिशस्तेः उरुष्यः, अंसः नि पाहि,
 नः सुशेवः सखा एधि ॥
 १७ हे सोम ! आप्यायस्व, ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु,
 भवानः वाजस्य संगथे भव ॥

१८ हे मदन्तिम सोम ! विश्वेभिः अंशुभिः आप्यायस्व ।
 भवानः सुश्रवस्तमः नः वृधे सखा भव ॥

१९ हे सोम ! अभिमातिपाहः ते पयांसि सं यन्तु
 वाजाः सं वृष्ण्यानि सं यन्तु ॥

८ हे राजा सोम ! तू हमारा पवित्रोसे चारों ओरसे रक्षण
 कर, तेरेसे सुक्षित हुआ भक्त नाशको नहीं पास होगा ॥
 ९ हे सोम ! दानके लिये जो सुखदायक संरक्षण तेरे पास
 है, उनसे हमारी सुरक्षा कर ॥
 १० हे सोम ! तू इस यज्ञका और इस स्तेयका स्वकार
 करके हमारे पत्न आ और हमारा संवर्धन कर ॥

११ हे सोम ! स्तोत्र जननेवाके हम अपने वानियोंके
 तेरी बधाई करते हैं, इगालिये हमारे पवनसुन्दरी होकर आ ॥

१२ हे सोम ! तू हमारी हृदि ररनेवा, गावें तु मर्त्य-
 वाला, धन-दाता, पोषणकारी और उरुष्य भव ॥

१३ हे सोम ! गावें जैसा और मर्त्य के समान तु अपने
 अपने घरमें संतुष्ट होना है, हम तरह हमने तु नः हृदि
 उत्पन्न कर ॥

१४ हे सोम देव ! तव सख्ये यः मर्त्यः रारणद्, तं
 दक्षः सचते और उरुष्यः, अंसः नि पाहि ॥

१५ हे सोम ! आप्यायस्व, ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु,
 भवानः वाजस्य संगथे भव ॥

१६ हे सोम ! त्वं इमं यज्ञं इदं वचः जुजुषाणः उप
 गहि । नः वृधे भव ॥

१७ हे सोम ! वचोविदः वयं गीर्भिः त्वा वर्धयामः ।
 सुमृळीको न विदा ॥

१८ हे सोम ! गयस्फानः अमीवहा वसुविद् पुष्टि-
 वर्धनः भव ॥

| | |
|---|----|
| या ते घामानि हाविषा यजन्ति ता ते विद्वा परिभूरस्तु यज्ञम् । | |
| गयस्फानः प्रतरणः सुर्वारोऽर्वारहा प्र चरा सोम दुर्यान् | ११ |
| सोमो धेनुं सोमो अर्चन्तमायुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । | |
| सादन्यं विदय्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै | १० |
| अयाद्धं युत्सु पृतनासु परि स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोषाम् । | |
| भरेषुजां सुश्रितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम | २१ |
| त्वमिमा ओषधीः सोम विद्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः । | |
| त्वमा ततन्धोर्वेन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो चवर्थ | २२ |
| देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य । | |
| ना त्वा ननर्दीशिने वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्ठी | २३ |

गोतम ऋषिका दर्शन

दो युन्नवर्धनः

युन्नवर्धनः सिन्धवः

विश्वतः सोम वृण्यम्

यन्त्रो दुदुहे अक्षितम्

भुवनस्य पते वयम्

दिवः पृथिव्याः

यः, (तथा) सिन्धवः

विश्वतः वृण्यं सं एतु,

नवि तुभ्यं गावः घृतं पयः

वयं स्वायुषस्य ते सतः

भवा वाजानां पतिः

सोम वर्धन्ति ते महः

भवा वाजस्य संगथे

वर्षिष्ठे अधि सानवि

इन्दो सखित्वमुश्मसि

२ हे सोम बल्लोका स्वामी तू है, बुलोक और पृथ्वीपर

ऐश्वर्यका वर्धन करनेवाला हो ॥

३ हे सोम ! वायु तेरे लिये बढ़ता है, नदियां भी तेरे लिये

बढ़ती हैं, सब तेराही वर्धन करते हैं ॥

४ हे सोम ! तू बढ जा । तेरे पास चारों ओरसे शक्ति

इकट्ठा हो जावे । बलके संमेलनमें तू उपस्थित रह ॥

५ हे भूर रंगवाले सोम ! बड़े पर्वत-शिखरपर तुम्हारे लिये

गायें घी और दूधके अक्षय प्रवाह बहाती हैं ॥

६ हे भुवनोंके स्वामी सोम ! हम उत्तम शस्त्रवाले तेरी

मित्रता प्राप्त करना चाहते हैं ॥

(२३) सोमरस

(१।६७।७-९) गोतमो राहुगणः । पवमानः सोमः । गायत्रीः ।

नास इन्द्रवास्तिरः पवित्रमाशवः । इन्द्रं यामोभिराशत

हः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्यः । आयुः पवत आयवे

वन्ति सूरमुन्नयः पवमानं मधुदधुतम् । अभि गिरा समस्वरन्

पवमानासः आशवः इन्द्रवः यामेभिः

यः आयुः इन्द्रुः सोम्यः रसः आयवे इन्द्राय

मधुदधुतं सूरं पवमानं दिव्यन्ति । गिरा

रन् ॥

७ छाननीसे छाने जानेवाले सोमरसके गतिमान प्रवाह,

अपनीही गतियोंसे इन्द्रके पास पहुँच गये ॥

८ आनन्द देनेवाला इन्द्रके लिये बड़ रदा दे ॥

९ गायें मधुरानके पवमाने सुनवाले प्रवृत्तमान सोमके

आनन्दके समय (अपने दूधके मिश्रणमें) अक्षय प्रवाह करती

हैं । वायुसे उषसी स्तुति भी सी जाती है ॥

रखते (मनीषा प्र चिकित्तिः । मे.६) उद्देश्य सब करने-

वाला होता है । मन्त्रकर्ममें सबके देना, पन्थां अनु-

नेषि । १) मन्त्रकर्ममें सब करने (प्रणीती

धीरताः सन्तं भवन्तन् । २) सब करने (प्रणीती

उद्देश्यको रखनेवाले इन्द्रके देना है ।

सोमरसका वर्णन

सोमके दो पूर्ण स्रज और तीसरे स्रजके केवल तीसरा

अंशके मंत्र दिये हैं । कुल ३२ मंत्र हैं । इनमें जो

वर्णन है, वह अर्थबोधके लिये लक्ष्य है ।

यह सोम (सुक्रतुः । २) उत्तम याग सिद्ध करनेवाला, (सुदुक्षः) उत्तम चातुर्य बढ़ानेवाला, (वृषा) बल बढ़ानेवाला और (सुह्री) तेज बढ़ानेवाला है ।

यह सोम (शुचिः । ३) पवित्र है, पवित्रता करनेवाला है, (मित्रः) हितकारी और (दक्षाय्यः) चातुर्यका बल अथवा कर्तृत्वशक्ति बढ़ानेवाला है ॥

यह सोम हिमालयके शिखरपर जलस्थानोंमें तथा पृथ्वीपर रहता है । हिमशिखरपर मिलनेवाला उत्तम और अन्यत्र मिलनेवाला मध्यम है । यह गुणोंकी दृष्टिसे उत्तम मध्यम भाव जानना उचित है । (मं. ४)

सोम राजा अर्थात् औपधियोंका राजा है, उसका रस पीकर इन्द्र वृद्धका वध करता है । सोमसे होनेवाला यज्ञ उत्तम यज्ञ है । (५)

यह सोमरस (जीवातुं) दीर्घ जीवन देनेवाला है, इससे (न मरामहे) अपमृत्यु दूर किया जा सकता है । इतनी इसकी योग्यता होनेसे यह सोमवलि बड़ी प्रशंसा करने योग्य है । (६)

यह सोमरस तरुण और वृद्धका भी आयुष्य बढ़ाकर बल भी बढ़ाती है । (७)

जिसको सोमरस मिलता है वह क्षीण नहीं होगा । यज्ञ होनेके कारण पापसे भी यह बचाता है । (८)

यह सोमरस (मयोभुवः) सुखदायी और (अविता) संरक्षक रोगादि आपत्तियोंसे बचानेवाला है । (९) यह सोमरस (वृधे) बल आदिको बढ़ाता है । (१०) यह सोमरस (अमीवद्धा) रोग दूर करनेवाला, (पुष्टि-वर्धनः) पुष्टि बढ़ानेवाला, (सुमित्रः) उत्तम मित्र जैसा सहायक है । (१२) यह रस (हृदि ररन्धि) हृदयमें आनन्द उत्पन्न करता है, अर्थात् उत्पन्न होनेसे यह आनन्द मिलता है । (१३) आप और पापसे यह बचाता है । (१५) यह रस जल, दूध या दही मिलाकर (आप्यायस्व) बढ़ाया जाता है, बढ़ानेपर भी यह (वृष्ण्यं) बल बढ़ाता है । (१६)

अमुषा परामः (अभिमाति-साहः) करनेवाला यह सोम है, इन्द्र परामर शक्ति बढ़ाती है और शत्रुका पराभव करना प्रवर्धित होता है । (पर्यांसि सेयन्तु) उग्र रसमें दूध मिलाने से । (वाजानां) शत्रुका आटा आदि अन्न भी मिलाया जाता है, जिससे यह उत्तम (वृष्णयानि) बल बढ़ानेवाला अन्न

होता है । (अमृताय आप्यायमानः) अपमृत्युको दूर करने के लिये इसमें दूध आदि मिलाकर यह बढ़ाया जाता है । (१८) यह रस (प्रतरणः) रोगादि आपत्तियोंसे तारण करता है, (सुवीरः) उत्तम वीरता लाता है, (अ-वीर-हा) शत्रु नाश करता है । (१९)

सोमसे उत्तम गौवं, वेगवान् घोड़े, शूर संतान प्राप्त होता है । (२०) विजयी उत्साह मिलता है । (२१)

सब औपधियोंका सत्त्व सोमरसमें है । (२२) यह, (सहसावान्) शक्ति बढ़ानेवाला, (वीर्यस्य ईक्षिं) वीर्य पराक्रमका स्वामी है । (२३)

इस तरह वर्णन सोमके प्रथम सूक्तमें है ।

(क्र. ९।३१)

इस सूक्तमें सोमका वर्णन करते हुए कहा है कि (चेतनं कृण्वन्ति) सोमरस ज्ञानकी चेतना करते हैं, सोमरसका गुण विशेष है । (१) (वाजानां पतिः) श्रेष्ठ अन्न है, अन्नमें अत्यंत उत्तम बलवर्धक अन्न है । (२)

तृतीय मंत्रमें (तुभ्यं वाताः अभिम्रियः) ऐसा कहा है सोमरसमें वायु मिलानेके लिये एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें बर्तना जाता है । ऐसा कईवार करते हैं जिससे वायुका मिश्रण रस साथ होता है और उसकी रुचिकरता बढ़ती है । तृतीय मंत्रमें (तुभ्यं सिन्धवः अर्पन्ति) तुम्हारे लिये नदियां बढ़ती हैं इसका भाव नदीका पानी सोमरसमें मिलाया जाता है । सब (ते महः वर्धयन्ति) सोमका महत्त्व बढ़ाते हैं सोमका गुण इससे बढ़ जाता है । (३)

(तुभ्यं गावः घृतं पयः दुदुहे) गौवं सोमके निघो और दूध देती हैं । गौका दूध तो सोमरसमें मिलानेका बर्तन कई बार इससे पूर्व आ चुका है । पर इस समयतक उसमें मिलानेका वर्णन नहीं था । यहां इस मंत्रमें वह आया है ।

(क्र. ९।६७)

(पवित्रं तिरः पयमानासः) छाननीसे छाने जालेका सोमरसका यह वर्णन है । छाननीके ऊपर सोम रखते हैं और उसका रस नीचेके पात्रमें उतरता है । इस मंत्रमें (इन्द्रं यामेभिः) इन्द्र आशत) कहा है कि तीन प्रदरोंके पश्चात् रस इन्द्रको दिये जाते हैं । 'यामेभिः' का अर्थ तीन प्रदर अर्थात् नौ घण्टे ऐसा भी है और 'याम' का अर्थ गति, प्रवाह की चाल भी है । रस निघालनेके बाद सब यज्ञ-कृत सोमके

गोतम ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

| विषय | पृष्ठाङ्क |
|---|-----------|
| गोतम ऋषिका तत्त्वज्ञान | ३ |
| सूक्तवार मन्त्र-संख्या (ऋग्वेद प्रथम, नवम, दशम मण्डल) | " |
| देवतावार मन्त्र-संख्या | " |
| गोतम ऋषिका वेदोंमें नाम | ५ |
| अथर्ववेदमें गोतमके मन्त्र | " |
| माझणग्रन्थोंमें गोतमका नाम | ६ |
| राष्ट्र देवनेवाली इष्टि | " |
| महाभारतमें गोतम | ८ |
| रामायणमें गोतम | ११ |
| गोतम और भद्रज्या | " |
| गोतम ऋषिका दर्शन | १३ |
| (प्रथम मण्डल, तेरहवाँ अनुवाक) | |
| अग्नि-प्रकरण | |
| (१) अग्रणीके कर्तव्य | " |
| अग्रणी क्या करे ? | १४ |
| बोधवचन | १५ |
| (२) लोगोंका प्रिय मित्र | १६ |
| अनन्ताका प्रिय मित्र अग्रणी | " |
| (३) न दबनेवाला धीर | १७ |
| इन्द्रका पुत्रोपाज्जी धीर | १८ |
| दे अग्रने धीर ! | " |
| (४) महारथी श्रेष्ठ धीर | १९ |
| नानबोने श्रेष्ठ धीर | २० |
| पूछने ऋषिका नाम | २१ |
| (५) शत्रुको हितानेवाला धीर | " |
| पूछने ऋषिका नाम | " |
| अनुवाक नाम | २२ |
| अनुवाक की | " |

विषयसूची

| | |
|-----------------------------------|----|
| (६) बलका स्वामी | २२ |
| बडा सेनापति | २४ |
| धन कैसा चाहिये | " |
| धृवाधार वृष्टि | २५ |
| सूक्तमें ऋषिका नाम | " |
| अग्नि-प्रकरणमें ऋषिका आदर्श पुरुष | " |
| आदर्श पुरुषका चारित्र्य | २६ |
| आदर्श पुरुषकी वीरता | " |

इन्द्र-प्रकरण

| | |
|-----------------------|----|
| (७) स्वराज्यकी पूजा | २७ |
| स्वराज्यकी पूजा | ३० |
| वज्र एक अस्त्र है | ३१ |
| अथर्वा, मनु, दधीचि | " |

(८) निडर वीर

| | |
|----------------------------|----|
| बलकी वृद्धि और शत्रुका नाश | ३२ |
|----------------------------|----|

(९) घरमें रहो

| | |
|-------------|----|
| रथ जोड़ो | ३३ |
| प्रिय पत्नी | " |

(१०) यज्ञका मार्ग

| | |
|------------------------------|----|
| अङ्गिरा, अथर्वा और उशाना ऋषि | ३६ |
| यज्ञमानका घर | " |
| इन्द्रसे गौनोंकी प्राप्ति | ३८ |

(११) दधीचिकी अस्थिसे वज्र

| | |
|------------------|---|
| दधीचिकी हड्डियाँ | " |
|------------------|---|

मरुत्-प्रकरण

| | |
|-----------------------|-------|
| वीरोंका काव्य | ४२ |
| (१२-१५) वीर मरुत् | ४२-४८ |
| वीर-काव्यमें वीर रत्न | ४९ |

विश्वे देव-प्रकरण

| | |
|----------------------------|----|
| (१६) दीर्घायुकी प्राप्ति | ५० |
|----------------------------|----|

| | |
|-----------------|----|
| (१७) ऋषु नीति | ५२ |
|-----------------|----|

| | |
|------------------|----|
| ऋषेयका दशम मण्डल | ५३ |
|------------------|----|

| | |
|-------------|---|
| (१८) वायु | " |
|-------------|---|

| | |
|-------------------|----|
| विश्वे देवा देवता | ५४ |
|-------------------|----|

| | |
|----------------------|---|
| दीर्घ आयुकी प्राप्ति | " |
|----------------------|---|

| | |
|-----------------|---|
| कर्म कैसे करो ? | " |
|-----------------|---|

| | |
|------------------|----|
| ईश्वर-उपासना | ५५ |
| मानवी न्यवहार | " |
| सदेकत्वका अनुभव | " |
| नीतिका सरल मार्ग | " |

उषा-प्रकरण

| | |
|-------------|----|
| (१९) उषा: | ५६ |
|-------------|----|

| | |
|------------------------------|----|
| उषाका उत्तम कान्य | ५९ |
| नटी, नाचनेवाली स्त्री | " |
| गोतम ऋषि | ६० |
| घरमें सेवक | " |
| कसाई स्त्री | " |
| जारके धनसे शोभना | " |
| पदोंकी उलटी योजना | " |
| (२०) बल, वीर्य और दीर्घायु | ६१ |
| सबको सुखी करो | ६३ |

सोम-प्रकरण

| | |
|-----------------|-------|
| (२१-२३) सोमरस | ६४-६७ |
|-----------------|-------|

| | |
|-----------------|----|
| सोम रसका वर्णन | ६७ |
| सुपुत्रके लक्षण | ६९ |



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१०)

कुत्स ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १५ वाँ तथा १६ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

बम्बई, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० नागपुर]

संवत् १९०३

गुरुक तथा प्रकाशक- वसंत भीपाद सातयळेकर, B. A.
भारत-गुरुगुरु, भोध (प्रि. वातारा)

कुत्स ऋषिका तत्त्वज्ञान

कुत्सके कुलका विचार

इस ऋषि अनेक हो चुके हैं, उनका वर्णन यहाँ करते हैं ।
वेदों में शानमाध्यमें कहा है—

“अत्र काबिदाबयायिका भूयते । दठनामकः
भिद्राजर्षिः, तस्य पुत्रः कुत्साय्यो राजर्षि-
सीत् । स च कदाचित् शत्रुभिः सह युयुत्सुः
ग्रामे स्वयमशक्तः सन्, शत्रूणां हननार्थं
अस्य माह्वानं चकार । स चेन्द्रः कुत्सस्य
हृमागत्य तस्य शत्रून् जघान । तदनन्तरं
गतिश्रोत्या तयोः सख्यं अभवत् । सख्यानन्तरं
स एवमपि स्वकीयं गृहं प्रापयामास । तत्र
शची इन्द्रं प्राप्तुमागता सती तौ समानरूपौ
सूतः, अयमिन्द्रो, अयं कुत्स इति विवेका-
भावेन संशयं चकार इति । अनया आख्या-
यिकया प्रतीयमानोऽर्थोऽत्र प्रतिपाद्यते । आ-
वस्युष्मा इत्यत्र । (ऋ. ४।१६।१०)

‘एक कथा सुनी जाती है । वह नामक एक श्रेष्ठ राजा था ।
उसका पुत्र कुत्स भी श्रेष्ठ राजा था । वह एक समय अपने
गुप्तोपे रहना चाहता था, पर स्वयं उससे लड़नेमें असमर्थ
था । इसलिये उसने अपनी सहायताके लिये इन्द्रको बुलाया ।
तब इन्द्र भी सहायताके लिये आया और उसने कुत्सके शत्रु-
को बध किया । इससे इन्द्र और कुत्सकी मित्रता हुई ।
कुत्स भी इन्द्रके घर जाता रहा । कुत्स और इन्द्र एकट्ठे
रहे थे, उस समय इन्द्रकी पत्नी शची इन्द्रसे मिलनेके लिये बहो
जाती । परंतु वहाँ इन्द्र और कुत्स समान रूप धारण करके
रहे थे, इसलिये शची पहचान न सकी कि कौनसा इन्द्र है ।
‘आ भाव’ आ वस्युष्मा’ मंत्रमें दे । देखिये यह मन्त्र—
‘आ वस्युष्मा मनसा यायस्तं भुवत्ते कुत्सः
सख्ये निकामः । स्वे योनौ नि पदतं सरूपा
वि वा चिकित्सइताचित् नारी ॥
(ऋ. ४।१६।१०)

(हे इन्द्र) हे इन्द्र ! (वस्युष्मा मनसा अस्तं आ याहि)
शत्रुका बध करनेकी इच्छासे तूं कुत्सके घर आया है । (कुत्सः
च ते सख्ये निकामः भुवत्) कुत्स तेरी मित्रताको भी चाहताही
है । (स्वे योनौ निपदतं) आप दोनों अपने घरमें बैठे हैं ।
(ऋतचित् नारी सरूपा वा वि चिकित्सत्) सख्य जाननेकी
इच्छा करनेवाली तेरी श्री शोनोंका समानरूप देखकर आप
दोनोंके विषयमें संदेह करने लगी ।

युद्धके सेनापतिके पोषाख शरीरपर रखनेसे शची दोनोंमेंसे
अपना पति कौनसा है यह न पहचान सकी, यह ठीकही है ।
कुत्स और इन्द्र दोनों वीर सेनापतिका कार्य करते थे । सेना-
पतिके लिये कवच आदि धारण करके रहना आवश्यक होता
है । सब शरीरपर तथा मुखपर भी कवच रखा जाय तो
वीरोंकी पहचान होना कठिन होता है । केवल आंख और
नाकही खुले रहते हैं शेष शरीरपर कवच होता है । इसलिये
वीरकी पोशाकमें पतिको एकदम पहचानना कठिन होना
स्वाभाविक है ।

कुत्सके वर्णनमें कुत्सको ‘आर्जुनेय’ कहा है । इसका अर्थ
ऐसा होता है कि यह कुत्स ‘आर्जुनो’ नामक स्त्रीका पुत्र था ।
इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र प्रमाण हैं—

१ याभिः कुत्सं आर्जुनेयं शतक्रतू ॥ (ऋ. १।११।२३)
२ अहं कुत्सं आर्जुनेयं न्यूजे ॥ (ऋ. १।२६।१)
३ त्वं ह त्वदिन्द्र कुत्सं जायः... शुष्मं कुयवं...
अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ (ऋ. १।११।२;
अथर्व. २०।३।१२)

४ बहत् कुत्सं आर्जुनेयं शतक्रतुः ॥ (ऋ. ८।१।११)
कुत्सकी माताका नाम अर्जुनेय चार बार और अथर्ववेदमें
एक बार आया है । वे मंत्रभाग ऊपर दिये हैं । कुत्सके लिये
तथा वेतसके रित करनेके लिये इन्द्रने इनका नाश किया ऐसा
मान निम्नलिखित मंत्रमें है—

अहं पितेव वेतसैरभिष्टये त्वं कुत्साय स्मदि-
मं च रन्धयन् ॥ (ऋ. १०।६५।४)

आवो यदस्युहत्ये कुत्सपुत्रम् । (१०।१०।५।११)

कुत्साय मन्मन्त्रह्यश्च दंसयः । (ऋ. १०।१३।८।१)

यौ...अवथो...कुत्सम् । (अथर्व. ४।२९।५)

इस तरह ऋग्वेदमें और अथर्ववेदमें कुत्सके वर्णनके मंत्र आये हैं। अथर्ववेदमें केवल चारही बार कुत्स पद है। ऋग्वेदमें करीब ३६ बार आया है। इन मंत्रोंके वर्णनोंसे पता लगता है कि कुत्सकी सहायतार्थ इन्द्र आता था, कुत्सके शत्रुओंसे लड़ता था, शत्रुका पराभव करके कुत्सकी सहायता करता था। कुत्सके साथ अतिथिग्व और आयु ये दो ऋषिनाम भी यहां दीखते हैं और कुत्सके पुत्रकी सुरक्षाके लिये भी इन्द्र आता था ऐसा उक्त मंत्रमें है। कुत्सके शत्रु शुष्ण आदि यहां हैं। कुत्सके विषयमें इतनाही पता चलता है। पुराणोंमें भी कुत्सका वर्णन किसी जगह नहीं है।

वात्सवमें इसके २५१ मंत्र वेदसंहिताओंमें मिलते हैं, पर इसके अतिप्राचीन होनेके कारण इसकी कथाएं नहीं हैं। अग्नि-रस गोत्रमें कुत्सका जन्म हुआ था। रुद्र उसके पिताका नाम, अर्जुनी उसकी माताका नाम था। यह इन्द्रका मित्र था, तथा अतिथिग्व और आयुका साथी था। कईयोंके मतसे रुद्रका पुत्र कुत्स कोई और है और अंगिरा गोत्रका कुत्स दूसराही है। हमारे मतमें भी ऐसाही है। अब इसके मंत्र देखिये—

कुत्स (अंगिरस) ऋषिके मंत्र

ऋग्वेद प्रथम मण्डल

(पञ्चदशोऽनुवाकः)

| सूक्त | देवता | मंत्रसंख्या |
|-------|---------------|-------------|
| १।२४ | अग्निः | १६ |
| ९५ | " | ११ |
| ९६ | " (दिविगोदाः) | ९ |
| ९७ | " (शुचिः) | ८ |
| ९८ | " (वैश्वानरः) | ३ |
| ११।०१ | इन्द्रः | ११ |
| १०२ | " | ११ |
| १०३ | " | ८ |
| १०४ | " | ९ |
| | | ३९ |

(षोडशोऽनुवाकः)

| | | |
|-------|--------------|----|
| १।१०६ | विश्वे देवाः | ७ |
| १०७ | " | ३ |
| | | १० |

| | | |
|-------------|-----------------|-----|
| १।१०८ | इन्द्राग्नी | ११ |
| १०९ | " | ८ |
| १११० | ऋभवः | ९ |
| १११ | " | ५ |
| १।११२ | अश्विनौ | २५ |
| ११३ | उषाः | २० |
| ११४ | रुद्रः | ११ |
| ११५ | सूर्यः | ६ |
| १।१७।४५-५८ | पवमानः सोमः | १४ |
| अथर्व० १०।८ | आत्मा | ४४ |
| | कुलमंत्र-संख्या | १५१ |

देवतानुसार मंत्र-संख्या

ऊपर दी मंत्रसंख्या देवतानुसारही है, तथापि यह पुनः जाती है—

| | |
|-----------------|----|
| १ अग्निः | ४७ |
| २ आत्मा | ४४ |
| ३ इन्द्रः | ३९ |
| ४ अश्विनौ | २५ |
| ५ इन्द्राग्नी | २१ |
| ६ उषाः | २० |
| ७ ऋभवः | १४ |
| ८ पवमानः सोमः | १४ |
| ९ रुद्रः | ११ |
| १० विश्वे देवाः | १० |
| ११ सूर्यः | ६ |

कुलमंत्र संख्या २५१

यहां ग्यारह देवताओंके सूक्त हैं। इनमें अथर्ववेदके मंत्र हैं और ऋग्वेदके २०७ हैं। अथर्ववेदमें कुत्स ऋषिके मंत्र हैं, पर वे ऋग्वेदकेही मंत्र हैं, उनके पते और स्थान देने हैं—

| | | | |
|------|----------|-----------------|---|
| ३ | अथर्ववेद | | |
| ॥९ | २०८१२ | मंत्र-संख्या | १ |
| १ | १३१३ | „ „ | १ |
| ॥१२ | १०७१४-१५ | „ „ | २ |
| ॥४-५ | १२३१२-२ | „ „ | २ |
| | | कुलमंत्र-संख्या | ६ |

१ मंत्र-संख्या यह है—

| |
|-----|
| १०१ |
| ९४ |
| २४ |
| १८ |
| ९ |
| ५ |
| २५१ |

इती और गायत्रीके फुटकर भेद यहाँ लिये नहीं दिये यथास्थान सूक्तके ऊपर पाठक देख सकेंगे

आत्माका सूक्त

‘आत्मा’ देवताका एक स्वतंत्र सूक्त इस ऋषिका अथर्ववेदमें मिलता है, यह इस ऋषिकी विशेषता है।

इस ऋषितकके ऋषियोंके मंत्रोंमें आग्नि, इन्द्र आदि देवताके सूक्तोंमें परमात्माका वर्णन मिलता रहा, पर इस ऋषिका एक आत्मसूक्तही स्वतंत्ररूपसे मिल रहा है। इस सूक्तमें हमें ‘सर्वात्मासिद्धान्त’ अथवा ‘सदैक्यसिद्धान्त’ किंवा ‘सर्वेश्वरसिद्धान्त’ स्पष्टरूपसे दीखता है। पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका मनन करें। यह आत्मसूक्त एक अच्छा उपनिषद्ही है। महाविद्याका यह अद्वितीय सूक्त है, जो विद्वान् साहित्यामें ब्रह्मविद्या नहीं है ऐसा मानते हैं, उनको इस सूक्तका अच्छी तरह मनन करना चाहिये।

सूचना—कुत्स ऋषिके सूक्तोंमें ऋ. १।१०५ यह सूक्त गिना गया है। ‘त्रित आप्त्यः, कुत्स आंगिरसो वा’ ऐसा विकल्प-से कुत्सऋषि इस सूक्तका द्रष्टा माना जाता है, पर इस सूक्तके मंत्र ९;१७ में ‘त्रित’ का उल्लेख है, इसलिये ऋ. १।१०५ वां सूक्त त्रित ऋषिके दर्शनमें हमने रखा है। जो पाठक इस सूक्तका अर्थ देखना चाहें वे त्रित ऋषिके दर्शनमें इसे देखें।

स्वाध्याय-मण्डल
औष (जि. छातरा)
ता. १।२।४७

निवेदक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औष

भरामेधमं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
 जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ४
 विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्षतुभिः ।
 चित्रः प्रकेत उपसो महौ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ५
 त्वमध्वर्युरुत होताऽसि पूर्यः प्रशास्ता पोता जनुपा पुरोहितः ।
 विश्वा विद्वाँ आर्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ६
 यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्क्षुसि दूरे चित् सन्तलिदिवाति रोचसे ।
 रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ७
 पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
 तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ८

४ इधमं भराम, पर्वणा-पर्वणा चितयन्तः वयं ते हवींषि
 कृणवाम । जीवातवे धियः प्रतरं साधय । अग्ने ! ॥

५ अस्य जन्तवः विशां गोपाः चरन्ति, यत् च द्विपत्
 उत चतुष्पद् अक्षतुभिः । चित्रः प्रकेतः उपसः महान् असि ।
 अग्ने ! ॥

६ त्वं अध्वर्युः, उत पूर्यः होता असि, प्रशास्ता पोता,
 जनुपः पुरोहितः (असि), हे धीर ! विश्वा आर्विज्या विद्वाँ
 पुष्यसि । अग्ने ! ॥

७ यः सुप्रतीकः, विश्वतः सदृङ्क्षुः अस्मि, दूरे चित् सन्
 तलिद् इव अति रोचसे । हे देव ! रात्र्याः चित् अन्धः
 अति पश्यसि । अग्ने ! ॥

८ हे देवाः ! सुन्वतः रथः पूर्वः भवतु । अस्माकं शंसः
 दूढ्यः अस्मि अस्तु । तत् आ जानीत, उत वचः पुष्यत ।
 अग्ने ! ॥

४ (हे अग्ने ! तुम्हारे लिये हम) इन्धन भर देंगे, प्रमे
 पर्वमें तुम्हें प्रदीप्त करते हुए हम तुम्हारे अन्दर हवि (अग्नि)
 करेंगे । हमारी दांप्रयुक्त लिये हमारी बुद्धिवांको उन्नत बना
 हे अग्ने ! तुम्हारी ॥

५ इसकी किरणें प्रजाओंको सुरक्षित करती हुई (सर्वत्र)
 चलती हैं । जो द्विपाद और चतुष्पाद हे वह (इसी अग्नि)
 सहायतासे) रात्रिके समयमें (चल फिर सकता है) । बिलकु
 तेजसे युक्त तुम ज्ञान देते हुवे उपासे भी महान् हो । हे अग्ने
 तुम्हारी ॥

६ तुम अध्वर्यु, और प्राचीन कालसे होता हो, प्रशास्ता
 पोता, और जन्मसे पुरोहित हो । हे बुद्धिमन् ! तुम सब क्रिया
 जोंके कर्तव्योंको जानते हो, (तुम सबको) पुष्ट करते हो ।
 अग्ने ! तुम्हारी ॥

७ तुम सुन्दर आदर्श हो, सब प्रकारसे दर्शनीय हो, तुम
 दूर होनेपर भी पासके समान प्रकाशित होते हो । हे देव !
 तुम रात्रिके अन्धकारमें भी दूरका देखते हो । हे अग्ने
 तुम्हारी ॥

८ हे देवा ! सोमयाग करनेवालेका रथ सबसे आगे रहे ।
 हमारा भाषण दुष्ट बुद्धिवालोंको परास्त करनेवाला हो ।
 ज्ञान तुम जान लो, और उससे अपना भाषण परिपुष्ट करो ।
 अग्ने ! तुम्हारी ॥

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिद्विणः ।

अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्रे सख्ये मा रिषामा वयं तव

यद्युक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।

आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

अथ स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।

सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।

मृच्छा सु नो भूत्वेपां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।

शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

१ वधैः दुःशंसां दूढ्यः अप जहि, ये के चिद् दूरे
अन्ति वा विणः । अथ यज्ञाय गृणते सुगं कृधि ।

१० अरुषा रोहिता वातजूता रथे यव अयुक्थाः, ते रवः
अपि इव । आद वनिनः धूमकेतुना इन्वसि । अग्ने० । ॥

११ अथ स्वनाद् उत पतत्रिणः बिभ्युः । ते द्रप्साः
यत् ते व्यस्थिरन्, तत् ते तावकेभ्यः रथेभ्यः सुगं ।

१२ अयं (स्तोत्र) मित्रस्य वरुणस्य धायसे (भवतु)
अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः (भवति) । नः सु मृच्छा । एषां
अग्ने० । ॥

१३ देवः देवानां अद्भुतः मित्रः अस्ति । अप्यग्रे धायः
मृच्छा सु नो भूत्वेपां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

१४ देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

१५ अग्ने० । ॥

१ घातक शत्रुंते दुष्टों और हिंसकोंको नष्ट-भ्रष्ट करो, जो
दूर वा समीप भस्म करनेवाले (शत्रु हों उनका नाश करो) । और
यज्ञ करनेवाले उपसर्गके लिये मार्ग सरल कर दो । हे अग्ने !
तुम्हारी० ॥

१० तेजस्वी लालवर्णवाले, वायुसे भरित हुए धेड़ोंको रथमें
जब तुम जोतते हो, तब तुम्हारी गर्जना आउके समान (होती
है) । तब इनके दृष्टोंको धूँसे धजाने तुम प्यारो हो । हे
अग्ने ! तुम्हारी० ॥

११ तुम्हारा शब्द सुनकर पक्षी भी भयभीत होने हैं ।
तब तुम्हारी चिनगाँवों धाँसे चिनगाँवों, खनी हुई चर्चों
और ध्वजों हैं, तब वरु (देव) तुम्हारे लक्ष्मणों के लिये
सुगम हो जाता है । हे अग्ने ! तुम्हारी० ।

१२ यद्यपि (अप) मित्र और वरुण के धायसे (अप) के लिये
(योग्य है) । मृच्छा सु नो भूत्वेपां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव
(युक्त है) । हमें मृच्छा (मृच्छा) देवों के लिये सुगम हो । हे अग्ने ! तुम्हारी० ।

१३ हे देव ! तुम हमें देवों के अद्भुत भवतः । अप्यग्रे धायः
मृच्छा सु नो भूत्वेपां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव
१४ देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।

दधासि रत्न द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमादिते सर्वताता ।

यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

१४ स्वे दमे समिद्धः सोमाहुतः मृळयत्तमः जरसे ते

तत् भद्रं । दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधासे । अग्ने० ! ॥

१५ हे सुद्रविणः अदिते-! सर्वताता यस्मै अनागास्त्वं
त्वं ददाशः । यं भद्रेण शवसा चोदयासि, ते प्रजावता
राधसा स्याम ॥

१६ हे देव अग्ने ! तः त्वं सौभगत्वस्य विद्वान्, इह
अस्माकं आयुः प्र तिर । नः तत् (आयुः) मित्रः वरुणः
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ।

१४ अपने स्थानमें प्रज्वलित होकर, सोमकी आ
देनेपर तुम अत्यंत सुख-देनेवाले होते हो, तुम्हारा
कल्याण करनेका कार्य है । दाताको रत्न और धन तु
हो । हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रयमें रहनेसे हमारा
कमी नहीं होगा ॥

१५ हे उत्तम धनधे संपन्न और अखण्डनीय अमि-
यज्ञोंमें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको तुम पापसे दूर करते
और उसे कल्याण करनेवाले बलसे युक्त करते हो, तु
प्रजायुक्त धनसे हम संपन्न हों ॥

१६ हे अग्निदेव ! वे तुम उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त क
मार्ग जानते हो, यहां हमारी आयु बढ़ाओ । हमारी
(आयु बढ़ानेकी प्रार्थना) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु
और द्यौ सुफल करें ॥

मानवोंका उन्नति

मानवोंकी उन्नति किस तरह हो सकती है यही मुख्य विचा-
रणीय विषय सब धर्म जिज्ञासुओंके सामने है । धर्म इसीलिये
चाहिये । मानव उन्नत होते रहें, धर्मका ध्येय यही है । इस
मूलकमें मानवोंके उत्कर्षके कुछ निर्देश हैं जो अब यहां मनन
करने योग्य हैं ।

१ अर्हते जातवेदसे मनीषया स्तोमं सं महेम (मं-२)।
जो पूजनीय है और जो उत्तम ज्ञानी है उसीकी प्रशंसा मन-
पूर्वक हम करेंगे । मनुष्य यही प्रतिज्ञा करें । जो सचमुच
सत्कार करनेयोग्य नहीं है, उसका सत्कार नहीं होना चाहिये ।
(अर्हते स्तोमः) सत्कारके योग्य जो है उसकाही सत्कार
हरे । अयोग्यकी झूठी प्रशंसा करनेसे मनुष्यकी गिरावट होती
है । साथसाथ (जातवेदसे स्तोमः) ज्ञानीकी उसके ज्ञानके

लिये प्रशंसा की जावे । जो उत्पन्न हुए पदार्थोंको यथावत्
है, जो ज्ञानविज्ञान-संपन्न है, वही सत्कारके योग्य है ।
तरह (मनीषया स्तोमः) मनसे अन्तःकरणपूर्वक,
मनमें है वही भाव यतानेके लिये भाषण करना चाहिये ।
एक भाव हो और बाहर दूसरा बताया जावे, यह ठीक
यह तो गिरावटका मार्ग है । यहाँ उन्नतिके तीन भा
बताये, एक सत्कार करनेयोग्यकाही समाजमें सत्कार
जावे, दूसरा जो ज्ञानी हो वही श्रेष्ठ माना जावे, और ती
यह कि अन्तःकरणपूर्वक कार्य किया जावे, उसमें क
कपट न हो ।

२ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा— ३५ (कं
ज्ञानी) की संगतिमें रहनेसे हमारी पक्षिलेवही उन्नत
अधिक कल्याणकारिणी बन जाती है । सत्पुरषोंकी संगतिमें

होकर कल्याणकारिणी हो सकती है। संगति उसकी प्रतीति है जो (अर्थः) सुयोग्य पूजनीय हो और (जात-वेदाः) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को यथावत् जानता हो। और (सन्तः) अपनी बुद्धि दूसरों को अपने सुविचारों से उप-दिष्ट करता हो। (सं-सद्) उत्तम वैदिक हो, उत्तम सभा में रहने वाला हो, जहाँ सन्निधौ हो, जहाँ सन्निधौ की चर्चा हो, वही उत्पत्ति के इच्छुक जाय और उन सत्पुरुषों की प्रतिष्ठा लाभ उठावे।

१ सत्ये मा रिपाम— पूर्णों के सत्पुरुषों की मित्रता से ही काम उठावे, वे कभी नहीं मिरेंगे। यह तो सत्य सिद्धान्त-ही है। (अर्थः) सुयोग्य, (जातवेदाः) ज्ञानी की मित्रता में रहने, वही तो निःसंदेह उत्कर्ष को प्राप्त होते रहेंगे।

२ सुसुक्ता देवता अग्नि है। ' अर्थः ' (सुयोग्य) और ' जातवेदाः ' ज्ञानी ये उसके पुत्र हैं। ' अग्नि ' का अर्थ ' जल ' है। (अग्निः कस्माद् अग्नीः भवति । निरुक्त) अपने लिये कार्य अन्ततः पहुँचा देता है, अनुयायियों को संवेदक पहुँचाता है, वह अग्नी अग्नि है। यहाँ ऋषिने अपने अपने देवता-वर्णन के लिये अग्नि के विषये ' सत्कारके योग्य अग्नी अग्नी ' ही रखा है। सब मंत्रों में इसका ही अनुसंधान एक करे।

३ यस्मै त्वं आयजसे, सः साधति— जिस मानव के लिये ऐसा सुयोग्य ज्ञानी सत्पुरुष अन्तःकरणपूर्वक अपने अपने यज्ञ से सहायता करता है, वही मानव सिद्धि प्राप्त करता है, वही सिद्धि पुरुष होता है। वही ' अनर्वाक्षेति ' होकर होकर सुख से रहता है और ' सुवीर्यं दधते '— अपने मानवत्व बनता है। सुयोग्य ज्ञानी की सहायता से वह पण है। (मं. २)

४ सः तूताव, पन्नं अंहतिः न अश्नोति (मं. २)— वह ब्रह्मा है, उत्पन्न होता है। इससे आपत्ति नहीं उताती। ५ प्रभाव सुयोग्य विद्वान् की सहायता होती है।

६ धियः साधय (मं. ३)— (हे सुयोग्य विद्वान् !) तू ही अर्थात् बुद्धि और कर्मशक्ति को साधनसंपन्न कर। अर्थात् तू ही बुद्धि की भी बड़ाओ और कर्मशक्ति की भी बड़ाओ।

७ जीवातवे धियः प्रतरं साधय (मं. ४)— हमारी ही आदुके लिये हमारी बुद्धि की तथा कर्मशक्ति को उच्चतर स्तर पर साधनसंपन्न करो।

८ अस्य जन्तवः यत् च द्विपत् उत चतुष्पद अफ्तुभिः विशां गोपाः चरन्ति (मं. ५)— इस (सुयोग्य ज्ञानी नेता) के अनुयायी मनुष्य (स्वयंसेवक) द्विपद और चतुष्पद अर्थात् मानवों और पशुओं की सुरक्षा करने के लिये रात्रि के समय भी (संरक्षक होकर) भ्रमण करते हैं। यह जिनका अग्रणी होता है, उनका संरक्षण करता है, जैसा दिन में वैसाही रात्रि में अपने अनुयायियों से सब प्रजा-ओं का संरक्षण करता है। यहाँ ' जन्तु ' ' जन्तवः ' पद अर्थों का संरक्षण करता है। यहाँ ' गो-पाः ' अथवा ' गोपाः ' हैं। प्राणिवाचक है। येही ' गो-पाः ' अथवा ' गोपाः ' हैं। अर्थात् ये अनेक हैं। इनका कार्य (गोपाः) संरक्षण करना है अथवा विशेषतः (गो-पाः) गौओं की सुरक्षा करना है। क्योंकि गोरक्षा ही सर्वस्व की रक्षा है। ये रक्षक ' जन्तवः ' (प्राणी) हैं। यहाँ मनुष्यवाचक पद नहीं, परंतु प्राणीवाचक पद है। क्योंकि सुरक्षा के कार्य में मनुष्य, कुत्ते, घोड़े, हाथी आदि अनेक प्राणी बर्ते जाते हैं। कुत्ते तो आजकल भी बर्ते जाते हैं। वीर घोड़ों और हाथियों पर से निरीक्षण करते हैं। कबूतर भी बर्ते जाते हैं। इसीलिये प्राणीवाचक ' जन्तु ' पद यहाँ सुरक्षा के कार्यकर्ताओं के लिये रखा है। ये ' जन्तवः गोपाः चरन्ति, ' ये प्राणिरक्षा करते हुए, पहारा करते हुए, इधर उधर घूमते हैं।

९ चित्रः उपसः महान् प्रकेतः (मं. ५)— इनका विलक्षण उषा जैसा (गेहूँ रंग का) बड़ा ध्वज है। यह विलक्षण महान् ज्ञान देनेवाला, उसके पथात् उदय होनेवाले सूर्य के समान प्रकाश देनेवाला, मार्गदर्शक है। प्रकेतः— ज्ञानी, प्रकाशक, केतु, ध्वज, झण्डा।

१० अध्वर्युः होता प्रशास्ता पोता जनपः पुरः हीतः विश्वा आर्तिविज्या विद्वान् पुष्यसि। (मं. ६)— वह सुयोग्य ज्ञानी (अध्वर्युः) विश्वरहित कर्मों का संयो-जक, (होता) दिव्य विभुओं की मुलाकर अपने साथ रखनेवाला, अथवा दान कर्ता, (प्रशास्ता) सुयोग्य शासन करनेवाला, (जनपः पुरः हीतः) जनसेही अग्रगण्य होनेवाला अथवा जनता का रक्षित करनेवाला, नेता बना हुआ, सः (आर्तिविज्या) शत्रुसंधि में सब तरफ से शत्रु-निर्बल करने के कारण उत्पन्न होनेवाले नाना रोगों को दूर करनेवाला है। अध्वर्यु के इस कर्म में निरुप-हीन होने के कारण यह नेता सब का पोषण करता है। ये पुत्र सुयोग्य ज्ञानी नेता ही हैं। इससे जनता का सर्वथा कल्याण होता है। वही (धीरः) सबको खरब देता है अथवा (धीरः) जनपद

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
 तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि पीं नयन्ति २
 त्रीणि जाना परि भूपन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ३
 पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतन् प्रशासद् वि दधावनुषु
 क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातुर्जनयत स्वधाभिः ।
 बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान् कविर्निश्चरति स्वधावान् ४
 आविष्टयो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
 उभे त्वष्टुर्विभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ५
 उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
 स दक्षाणां दक्षपतिर्वभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ६

२ अतन्द्रासः दश युवतयः त्वष्टुः गर्भं जनयन्त । इमं विभृत्रं तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं सीं परि नयन्ति ॥

३ अस्य त्रीणि जाना परिभूयन्ति । समुद्रे एकं, दिवि एकं, अप्सु (एकं) । ऋतून् अनु प्रशासत्, पार्थिवानां पूर्वां प्र दिशं अनुष्टु वि दधौ ।

४ निण्यं इमं वः कः आ चिकेत । वत्सः मातृः स्वधाभिः जनयत । महान् कविः स्वधावान् गर्भे बह्वीनां अपसां उपस्थात् निश्चरति ॥

५ आसु चारुः आविष्टयः वर्धते । जिह्मानां उपस्थे स्वयशाः ऊर्ध्वः । उभे त्वष्टुः जायमानात् विभ्यतुः । सिंहं प्रतीची प्रति जोषयेते ॥

६ उभे भद्रे मेने जोषयेते न । वाश्राः गावः न एवैः उप तस्थुः । यं दक्षिणतः हविर्भिः अञ्जन्ति सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव ॥

२ आलस्य छोडकर दस त्रियाँ (अङ्गुलियाँ,) दीप्तिके (रूप अग्नि) को उत्पन्न करती हैं । इस भरण-पोषण वाले, तीक्ष्ण तेजसे युक्त, अपने यशसे शोभित, जनोंमें शमान (अग्नि) को (लग) चारों ओर घुमाते हैं ॥

३ इस (एक अग्नि) के तीन जन्म सजाये जाते हैं । स (वडवानलरूप) एक, एलोकमें (सूर्यरूप) एक और अर्न्त (विद्युद्रूप) एक (ये वे तीन रूप एक अग्निके हैं) । ऋतु व्यवस्था इसीने की है, पृथिवीके (ऊपरके) प्राणियोंकी व्यवस्था लिये पूर्वादि दिशाओंको भी सम्यक् रीतिसे इसीने निर्माण किया है ।

४ गुप्त रहनेवाले इस (अग्नि)का तुममेंसे कौन जानता पुत्र (होते हुए भी इसने अपनी) माताओंको अपनी शक्तिमेंसे प्रकट किया है । बड़ा ज्ञानी, अपनी निज शक्तिसे युक्त और सबके अन्दर रहनेवाला (सूर्य) बड़े उ प्रवाहोंके समीप स्थानसे निकलकर संचार करता है ॥

५ इन (पदार्थों) में सुचारु रूपसे प्रविष्ट होकर यह है । कुटिल निम्न गतिसे जानेवाले जलोंके मध्यमें भी यह स्थित रहकर अपने यशसे यह ऊर्ध्व गतिसे ऊपर चढ़ता दोनों लोक इस तेजस्वी देवके उत्पन्न होनेसे डरते हैं । (अ) इस सिंह जैसे (तेजस्वी देव)की फिरसे आकर सेवा करते हैं ।

६ दोनों कल्याण करनेवाली माननीय (पूर्वोक्त) इसकी) सेवा करती हैं । इन्द्राव करनेवाली गौओंकी अपनी गतियोंसे वे इसीके पास आती हैं । जिसके शक्ति आगमें रहकर हविद्वारा (याजक) पूजा करते हैं, वही अग्नियोंसे भी अधिक बलिष्ठ हुआ है ॥

उद् यंयमीति सवितेवं बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋक्षन् ।
 उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति
 त्वेपं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सद्ने गोभिरान्निः ।
 कविर्बुध्नं परि मर्मज्यते धीः सा देवताता समितिर्वभूव
 उरु ते जयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
 विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिन्द्रोऽदग्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान्
 धन्वन्तस्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिराभि नक्षति क्षाम् ।
 विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु
 एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
 ————— सप्तमनामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

७

८

९

१०

११

सन्तानोंका परिपालन और संवर्धन

इस सूक्तमें ' औपस अग्नि ' का वर्णन है । ' औपस अग्नि ' का अर्थ उपासे प्रकट हुआ अग्नि, उपाका पुत्र सदृश सूर्य । उपासे सूर्य उत्पन्न नहीं होता, पर उपाके बाद सूर्य उदय होता है, इसलिये अलंकारिक रीतिसे सूर्यको उपाका पुत्र कहा गया है । यही ' औपस अग्नि ' है । इस अलंकारसे यहाँ अपने पुत्रोंकी पालना किस तरह करनी चाहिये, यह उपदेश इस सूक्तमें किया है ।

प्रथम मंत्र— इस मंत्रका प्रारंभ (द्वे विरूपे चरतः) इस वाक्यसे हुआ है । दो विभिन्न रंगरूपवाली स्त्रियाँ विचरती हैं, भ्रमण करती हैं, अपने नियत कर्मके लिये अपने निश्चित मार्गसे चलती हैं, किसीकी प्रतीक्षामें नहीं रहती, ना ही अपना कार्य छोड़कर किसी स्थानपर व्यर्थ गप्पें करती हुई ठहरती हैं । सदा कार्यमग्न रहनेवाली ये दो स्त्रियाँ हैं । एक स्त्री इसमें गौरवर्ण है और दूसरी काले वर्णकी है । दिनप्रभा और रात्री ये इनके नाम हैं । ये (सु-अर्थ=स्वर्थ) ये उत्तम प्रयोजन सिद्ध करती हैं । बड़ा उपयोगी कार्य ये करती हैं, इसी कार्यके लिये सदा घूमती रहती हैं । दिनप्रभाका कार्य यह है कि जगत्को प्रकाश देकर मार्ग बताना, जनताको जगाना, सबका जीवन प्रकाशमय करना । रात्रीका कार्य जनताको विश्राम देना, सुख देना है । सब विषयका इस तरह भला करनेके कार्यमें ये दो स्त्रियाँ लगी हैं और रातदिन यह इनका कार्य सतत चलता रहता है । जनताकी इस तरह सेवा करनेका कार्य ये करती हैं ।

(अन्या अन्या वत्सं उपधापयेते) इनमेंसे एक एक स्त्री दूसरीके बच्चेका लालन, पालन, पोषण और संवर्धन करती रहती है । दिनप्रभाका बालक अग्नि है और रात्री-उपाका बालक सूर्य है । रात्रीके गर्भसे सूर्य उत्पन्न होता है, पुत्र उत्पन्न होनेकी वह विचारी रात्री अपने प्यारे सुपुत्रका पालन-पोषण करनेके लिये वहाँ नहीं रहती, वह विश्वके दूसरे स्थानकी जनता-को आराम विश्राम देनेके लिये जाती है और अपने प्यारे सुपुत्रको दिनप्रभाके स्वाधीन करती है । इसी तरह दिनप्रभा नामक श्रोत्रे गर्भसे अग्निही उत्पत्ति होती है और वह अग्नि उदयी भवता अपनी सच्ची रात्री देवीके अधीन कर देती है और स्वयं अन्य प्रदेशोंकी जनताको मार्गदर्शन करनेके लिये

जाती है । इस तरह ये स्त्रियाँ अपने बच्चेको दूसरे अधीन करती हैं और अपना कर्तव्य करनेके लिये स्वयं आवश्यक है वहाँ जाती हैं । कार्यवश होनेके कारण पुत्रका पालन स्वयं नहीं कर सकती, अपना कार्य भी छोड़ सकती, ऐसी अवस्थामें प्रतिवचन प्रत्येक स्त्रीको दूसरीके पालना करना पड़ती है । और यह कार्य वह स्त्री उत्तम निभाती है । दूसरीकाही पुत्र क्यों न हो वह अपने राष्ट्रका अतः उसकी पालना वैसीही उत्तमतासे होनी चाहिये । अपने पुत्रकी, क्योंकि दोनों पुत्र राष्ट्रके सुपुत्र हैं । वह जीवनकी भावना इस मंत्रद्वारा बतायी है ।

(अन्यस्यां हरिः स्वधावान् भवति) हरि नाम है । रस हरण करता है, दुःखोंका हरण करता है । सूर्य हरि है । यह है रात्रीदेवीका पुत्र, पर इसके उत्पन्न होनेकी रात्री इसका पालन करनेके लिये रहतीही नहीं, इसका पालन दिन-प्रभाको करना पड़ता है । इस दूसरी अधीन हुआ यह कुमार सूर्य (स्वधावान् भवति) उत्तम शक्ति बढानेवाले अश्वोंको खाकर पुष्ट होता है । प्रभा इस कुमार सूर्यको अच्छे स्वादु और पुष्टीकरक देती है जिससे यह परिपुष्ट होता जाता है । दूसरी स्त्री होनेपर भी यह दिनप्रभा उसका पालन उत्तम रीतिसे करती है, किसी तरह पक्षपात नहीं करती ।

इसी तरह (अन्यस्यां शुक्रः सुवर्चाः ददशे) शुक्र का पुत्र अग्नि भी रात्रीके अधीन होकर पाला जाता है । दिनप्रभाके होते हुए उसके पुत्र अग्निका जितना तेज प्रकाश दिनप्रभाके होते हुए होता है, उससे कई गुना प्रकाश रात्रीदेवीके अधीन होनेपर होता है । अर्थात् ये स्त्रियाँ दूसरे पुत्रका पालन अधिक दक्षतासे करती हैं, यही उपदेश मिलता है । शुक्रः-बलवान्, बौध्वान्, सामर्थ्यवान् । सुवर्चा उत्तम तेजस्वी । दोनों स्त्रियोंके ये दो सुपुत्र हैं, ये दोनों अश्वों द्वारा पाले नहीं जाते, परस्परके पुत्रोंको परस्परकी माँ पालती हैं, पर वे ऐसी पालती हैं कि जिससे पुत्रोंकी उत्तम होती रहती है ।

इस प्रथम मंत्रका बोध यह है—

१ स्त्रियाँ अपना गृहस्थधर्म पालन करती हुई भी जनता की सेवाका कार्य करें, अपना संरक्षण करती हुई वे जनता के

कारण उनको अपने बालबच्चोंकी पालना करने के लिये समय नहीं मिलेगा, क्योंकि स्थान छोड़ने जाना पड़ेगा,

अतः इस तरह विशेषवाक्ये लिये बाहर गयी स्त्रीके पालना, वह स्त्री करे कि जो घरमें रहती हो,

दूसरीके बालबच्चोंकी ऐसी पालना करे कि जिससे उन उक्तिमें किसी तरह बाधा न हो, वे उत्पन्न होते जाय ।

इस तरह हेरफेरसे त्रियां समाजसेवा भी कर सकती हैं और घरबारका भी उत्तम प्रबंध हो सकता है ।

इस प्रकार प्रबंध भी होना चाहिये और समाजसेवा भी करे। समाजमें ऐसा सुप्रबंध हो कि जिससे यह सेवा निरंतर चले रहे और गृह-व्यवस्था भी न बिगड़े ।

यह बालबच्चे समाजके हैं, उनमें यह मेरा और वह मेरा ऐसा आप-पर-भाव नहीं होना चाहिये । सबकी पालना होनी चाहिये ।

समाजके स्त्री पुरुषोंमें यह समाज-जीवन बटे, ऐसी व्यवस्था बढनी चाहिये । आजकल वैयक्तिक जीवन है, समाज-जीवन समाज-जीवन आना चाहिये ।

इस जन्म होतेही उसकी माता रात्री या उषाका अन्त होता है, ऐसे भी वेदमें अन्यत्र वर्णन है । इससे 'परशुरामने मृतक मताका वध किया था,' इस कथाकी उत्पत्ति हुई है । इस सूक्तमें परस्परके पुत्रोंकी पालना परस्परकी माताएँ करती हैं यह सामाजिक जीवनका रहस्यमय उपदेश यहाँ है ।

द्वितीय मंत्र

(अतन्द्रास्तः दश युवतयः त्वष्टुः गर्भं जनयन्त)
अतन्द्रास्तः दश युवतयः त्वष्टा (की स्त्री वैरोचनी यशो-) के गर्भको उत्पन्न करती हैं, अर्थात् उत्तम रीतिसे यह प्रत्येक कार्य करती है । त्वष्टा दिव्य कारीगर है, दिव्य प्रकृतिकर्ता है । इसकी स्त्री वैरोचनी यशोधरा गर्भवती होती है । प्रसूतिके समय दश स्त्रियां जो प्रसूतिशास्त्रानुसार प्रसूति करने लगे हैं, उनको बुलाया जाता है, वे आती हैं, आलस्य, अथवा सुत्ताको डोडकर कार्य करती हैं, और उससे उत्तम पुत्रका जन्म होता है । प्रसूति कर्मके लिये उत्तम धार्मिक शिक्षा रहे, वह अपने काममें अलस्य न करे, शास्त्र-प्रतिष्ठित रहे, वह अपने काममें अलस्य न करे, शास्त्र-प्रतिष्ठित रहे और माता तथा बालक जिस रीतिसे

सुरक्षित रह सकें वैसा यत्न करें ।

यहाँ दस दाईयोंका उल्लेख है । आवश्यकता होनेपर एकसे अधिक दाईयाँ बुलाई जावें । एक दाई कार्य करे और अन्य दाईयाँ उसकी सहायता करें । प्रसूतिका समय बड़ा कठिन होता है, सहायकोंके अभावके कारण माता और पुत्रका नाश न हो यह सूचना यहाँ है ।

दस बहिर्न

इस द्वितीय मंत्रमें (दश युवतयः) दश स्त्रियोंका वर्णन है अन्यत्र वेदमें (दश खसारः) दश बहिर्नोंका वर्णन है ।

(अग्निः) तं ई हिन्वान्ति धीतयो दश । ऋ. १।१४।५

” दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजोजनन् । ऋ. १।२३।३

” अजीजनन्मृतं...दश स्वसारः ऋ. १।२९।१३

इत्यादि मंत्रोंमें (दश धीतयः, दश क्षिपः, दश स्वसारः) दस बहिर्न, स्त्रियाँ अग्नि की उत्पत्ति, प्रसूति कर्म, करती हैं ऐसा उल्लेख है । वैसाही यहाँ (दश युवतयः) दश स्त्रियाँ ऐसा है । वास्तवमें दो हाथोंकी दश अंगुलियाँही हैं । दो अरणीयाँ होती हैं, एक नीचे रहती है और उसमें दूसरी बैठती है । पीपलकी लकड़ीसे ये अरणीयाँ बनायी जाती हैं । नीचेकी स्थिर होती है और उसमें ऊपरकी दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे घुमायी जाती हैं । अत्यंत जोरसे घुमानेसे अग्नि उत्पन्न होता है । इस बातका यह आलंकारिक और बोधप्रद वर्णन है ।



अग्नि अरणीमें-गर्भमें-रहता है, दस बहिर्न उसको उत्पन्न करती हैं । यही अग्नि के जन्मका वर्णन है । पुत्र भी अग्नि ही है । अथारणी (नीचेकी लकड़ी) स्त्री है और उत्तरारणी (ऊपरकी लकड़ी) पुरुष है । इनसे पुत्रका जन्म होता है जैसा अग्निगोले अग्नि । इसी तरह पृथ्वी और सुतोक्त मध्यमें सूर्य उत्पन्न होता है । यहाँ पृथ्वी स्त्री है और सुतोक्त पितृ (सौः पितृ = संधिता) है, इनसे सूर्यको पुत्र उत्पन्न होता है ।

पृथ्वी 'काली' है और अक्षय प्रभा 'नीली' है । पृथ्वी दश पुत्र अग्नि और आकाश-प्रभाका पुत्र सूर्य है । ऐसे अनेक अनेक पर वेदमंत्रोंमें हैं ।

(इमं विभृजं, विभ्रानाकं, स्वयंशतं, जनेषु विरोचमानं तौ परि नयन्ति) इस सूक्तका मन्त्र-मन्त्र

करनेवाले, तीक्ष्ण शक्तिवाले अथवा तीक्ष्ण प्रकाशवाले, यशस्वी, जनतामें तेजस्वी अग्नि हो चारों ओर घुमाते हैं। उक्त प्रकार दोनों अग्निधर्मों अग्नि सिद्ध होनेपर उसको अनेक यज्ञस्थानोंमें या स्थण्डिलोंमें ले जाकर स्थापन करने हैं।

इधर पुत्रके पक्षमें दश धात्योंके द्वारा बालका जन्म होनेके पश्चात् उसको चडे प्रेमसे सब संबंधी चारों ओर घुमाते हैं। बर्हिनिष्कृत्य संस्कार करके उसे बाहर ले जाते हैं, चन्द्रदर्शन संस्कार करके इष्टमित्रोंके साथ चन्द्रदर्शन कराते हैं। रथारोहण, अश्वारोहण, यानारोहण, हस्त्यारोहण आदि संस्कार करके उस बालकको रथ, घोड़ा, यान, दायी आदिपर बिठलाते हैं और घुमाते हैं। विधुसे आनन्द लेनेकी यही रीति है।

तृतीय मन्त्र

(अंस्य त्रीणि जाना परिभूपन्ति) इसके तीन जन्म होते हैं, उन जन्मोंको सब सजाते हैं, सुबोधित करते हैं। इस अग्निका एक जन्म (समुद्र एकं) समुद्रमें बड़वानल रूपसे एक अग्निका जन्म माना जाता है। समुद्रके जलकी भाँप होनेका दृश्य सबेरे दिखाई देता है, रात में अग्निके विशेषरूपमें भाँप दिखाई देती है। प्रत्येक जलाशयमें भी यह दीखता है। (दिवि एकं) धुलोकमें सूर्यरूप दूसरा अग्नि है। सूर्य अग्निकाही रूप है। (अप्सु एकं) अन्तरिक्ष स्थानमें मेघाशयमें विद्युत्रूपी तीसरा अग्नि है। आकाशमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथ्वीपर अग्नि ये तीन रूप एकही अग्निके हैं। वास्तवमें सूर्य, विद्युत् और अग्नि ये तीन पदार्थ पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं पर ये एकही अग्निके ये तीन रूप हैं।

यहाँ समुद्र पद पृथ्वीस्थानका वाचक है, पृथ्वीमें भयानक प्रखर अग्नि है, पृथ्वीके पेटमें सब पदार्थ इस अग्निके कारण उबलते रहके रूपमें हैं। इस उष्णतासे पृथ्वीके जलाशयके जलकी भाँप बनती है और सूर्यकिरणोंसे भी बनती है। सूर्यसे विद्युत्, विद्युत्से अग्नि होता है और वायुमण्डलसे सूर्यकिरण केन्द्रित करनेसे भी शुष्क घासमें अग्नि उत्पन्न होता है। इस तरह ये सब आग्नेय रूप एकही अग्निके हैं अर्थात् यहाँ दैत या त्रैत नहीं है, पर एकही अग्नि अनेक रूप लेकर अनेकधा दिखाई देता है यह सर्वत्र सिद्धान्त अग्निके वर्णनसे बताया है।

चतुर्थ मन्त्र

(इमं निष्यं कः चिकेत ?) इस गुप्त रहे अग्निको

कौन जानता है ! अग्नि सभी वस्तुओंमें अत्यंत गुप्त है। व्याप्त है, पर दीखता नहीं। ज्ञानीदि उसको जानता है।

(वरसः मातुः स्वधाभिः जनयत) पुत्र जेता भी अपनी माताजीको अपनी शक्तिशक्ति प्रकट कर आग्नेय पृथ्वी प्रदीप्त होती है, विद्युत्से अन्तरिक्ष और सूर्य प्रकट या दीप्तिमान होती है। पुत्र ऐसा श्रेष्ठ समझने बने, कि जिससे उसकी माताका नाम विश्वमें बसता है। पुत्रके यज्ञसे माता, पिता, कुल और जातिका यज्ञ भी भाव यहाँ है। पुत्र का यज्ञ करनेसे कुलका यज्ञ बढ़ता है।

(महान् कविः स्वधावान् गर्भः यज्ञानां प्रपुत्रोऽपस्यात् निश्चरति) बड़ा ज्ञानी आनन्दवान् होकर वह रूप गर्भ बहुत जलप्रवाहोंके समानसे निकलकर संसार में विद्युत् रूपसे अग्नि ग्रहोंके प्रवाहोंके मध्यमें प्रकट होता है। सूर्य महाशायरके बीचमेंसे उदय हुआ है ऐसा कहा जाता है, वहाँ वह जलप्रवाहोंसे प्रकट होता है ऐसा कहा जाता है। 'अपसा' का अर्थ 'प्रशस्त कर्म' ऐसा एक और अर्थ है। प्रशस्त कर्मोंके समीप वह बड़ा कवि ज्ञानी और अनेक धर्मसे प्रभावित बना कुमार पहुंचता है। प्रशस्त कर्मस्वर्ग और दूसरोंसे कराता हुआ विशेष श्रेष्ठ बनता है। श्रेष्ठ गर्भमें था, पश्चात् प्रकट होकर जन्म लेकर बाहर आया, यह बड़ा ज्ञानी और कवि बना और (स्वधावात्) निष्कारक शक्तिये प्रभावित बना। तब वह प्रशस्त कर्मोंके करनेका अधिकारी हुआ।

पञ्चम मन्त्र

(आत्तु चारुः आविष्टयः वर्धते) इन उग्रप्रकाश अन्दर, इन मेघोंके अन्दर विद्युत्से प्रविष्ट होकर वह बड़ता है। नदियोंके किनारोंपर होनेवाले वनोंमें वह प्रदीप्त होकर बड़ता है। इन प्रशस्ततम कर्मोंमें प्रविष्ट होकर बड़ता है। प्रशस्त कर्मोंकी सुन्दर रीतिसे निकल कर वह अपने प्रभावसे बड़ता है। अग्निरूप वर्णन करने और विद्वान् ज्ञानिरूप वर्णन प्रशस्त कर्मपरक मानकर दोनों स्थानोंमें अर्थ देखना चाहिये।

(जिह्मानां उपस्थे स्वयशाः ऊर्ध्वः वर्धते) जीवालो चालसे चलनेवाले शत्रुओंके समीप भी अपने दक्षसे उबल कर यह ज्ञानी बड़ता रहता है। यह ज्ञानीके पक्षमें अर्थ हुआ अब अग्निके पक्षमें देखिये। कृष्टिल गतिसे, निरगतिसे होने

ने नदीप्रवाहोंके समीप, नदियोंके समीप यश
नेवाला अग्नि अपने निज यशसे उच्च गतिसे बड़ता
घे गति नीचकी ओर होता है और अग्निकी ज्वाला
है। इसी तरह कुटिल दुष्ट मानवोंकी तेडी चाले
और ज्ञानी विद्वान्का व्यवहार सरल होता है। यह
ब्रह्मेश्वर यहाँ बताया है।

ने जो बालक माताके न होनेके कारण दाईके द्वारा
का गया था, वही राज्यशासनद्वारा विद्यालयसे विद्या
के बाद विद्वान् होकर दुष्ट कुटिलोंकी भी उत्तम शिक्षा
पदा ज्ञानी हुआ।

उमे त्वयुः जायमानात् विश्वयतुः) दोनों तेजस्वी
प्रकट होनेसे भयभीत होते हैं। उच्च नीच, ज्ञान
अज्ञ, भेद कनिष्ठ, इन तरह इन जगत्में दो प्रकारके प्राणी
होते हैं। ये दोनों प्रकारके मानव समास्थानमें तेजस्वी
अज्ञपर उससे डरते हैं। विद्वान्की विद्याके ज्ञानने अपने
अज्ञ होनेका डर इनके मनमें होता है। दूसरे पक्षमें अग्नि,
सूर्य प्रकट हो जानेपर पृथ्वी और सौ ये दोनों भय-
भीत होते हैं। अग्नि सबको जला देगा यह भय है। विद्युत्की
शक्ति सभी भयभीत होते हैं और सूर्यके उदयसे भी डुष्टोंकी
हता है। 'त्वष्टा' का अर्थ दिव्य कारीगर, कुशल पुरुष
देवस्वी ऐसा है।

(सिंहं प्रतीची प्रति जोषयेते) पुरुष सिंहकी, मान-
वोंकी पीछेसे आनेवाले सेवा करते हैं। यहाँका 'सिंह'
श्रेष्ठता बाधक है। 'प्रतीची' का अर्थ पश्चिम है, पर यहाँ
हिन्दुवाली ऐसा भाव है। पीछे रहनेवाली जनता श्रेष्ठकी
से और श्रेष्ठ होने। 'प्रतिजोषयेते' का अर्थ प्रत्येककी
पुण्य सेवा करनेका भाव दिखाता है। श्रेष्ठ मनुष्य पीछे
से आनेवाले देखे और सिंहाबलीकन करके प्रत्येकका निरीक्षण
करे और प्रत्येकसे पुण्य पुण्य सेवा लेकर प्रत्येककी सहायता
करे।

पष्ठ मन्त्र

(उमे मन्त्रे मेने जोषयेते न) दोनों मानवों के
रके मानवों (इदमन्मा और साना ये दोनों प्रत्येक) को
होके उदमसे उदम) सेवा करनेके लक्ष्य में अपने पुण्य
करे। जिससे उम दोनों पुण्यकी प्रत्येक प्रत्येक करे।

इसी तरह सब स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने पुत्रोंकी अथवा
अपने पास रखे हुए संतानोंकी योग्य रीतिसे सेवा करें और
संतानकी उन्नति करना अपना कर्तव्य समझें।

(वाभ्राः गावः न एवैः उप तस्थुः) हम्बारव करने-
वाली गायें जैसी दौड़ती हुई अपने बच्चोंके पास पहुँचती है,
वैसीही माताएं अपने पुत्रोंके हित-साधनका यत्न करें।
गौका बछड़ेपर प्रेम अत्यंत होता है वैसा प्रेम अपनी संतानोंपर
करें और उनकी उन्नति करनेके कष्ट सहें।

**(यं दक्षिणतः हविर्भिः अक्षान्ति, सः दक्षाणां
दक्षपतिः बभूव)** जिसकी हविसे पूजा करते हैं वह बल-
वानोंसे भी बलवान् होता है। बलवानोंसे अधिक बल प्राप्त
करना यह ध्येय है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, विद्या-विष-
यक, वीर्य, शौर्य पराक्रमके संबंधका बल आदि अनेक प्रकारके
बल होते हैं। ये बल बढाने चाहिये और अपना सब बल जन-
ताकी भलाईके लिये समर्पित होना चाहिये।

सप्तम मंत्र

अग्नि अपने चिरणोंको चारों ओर फैकता है और भयंकर
सामर्थ्यवाला होता है और पश्चात् वह दोनों जगत्पृथ्वीको
सुभूषित करता है। अग्नि प्रदीप्त होता है और उससे यश आदि-
की सिद्धि होनेके कारण यह सबके लिये भूग्न बनता है। अपने
तेजसे तेजस्वी और बलिष्ठ होनेकी यही स्वप्ना है।

(सिमस्मात् शुक्रं अर्त्तं उत्तु नजने) गबर
अपना प्रभावी प्रकाशका कवच छोड़ देता है, सबको प्रकाश
देता है। मानो प्रकाशसे सब उज पर उठे। (मानुष्यः
नया बखना जहाति) मानवोंकी जने बखना जहाति है,
ये प्रकाशस्वी बनते हैं। जब अग्नि मानवोंकी सेवा करने
पर अपने प्रकाशके कवच छोड़ता है। मानव मानव मानवों-
का प्रभाव स्थापन करनेका उद्देश्य करता है।

अष्टम मंत्र

**(तदेन गोमिः अग्निः संयुज्जानां श्वेप उमर्त्तु कर्तुं
कुपुर्त्तु)** अपने अपने बल से उठे, अपने-अपने बल से
करके सब पर उठे सब पर उठे। अग्नि मानवोंकी सेवा करने
के लिये अपने कवच छोड़ देता है। अग्नि मानवोंकी सेवा करने
के लिये अपने कवच छोड़ देता है। अग्नि मानवोंकी सेवा करने
के लिये अपने कवच छोड़ देता है।

अपना निजघर शरीर है उसमें इन्द्रियरूप गौं रहती हैं, उनसे तथा उनकी शुद्धता, जल आदिके स्नानादिसे पवित्रता, तथा संपूर्ण अन्तःकरणकी निर्दोषता सिद्ध करनेसे जो उच्चतर सौंदर्य बनता है वह प्राप्त करना प्रत्येक मानवका ध्येय होना चाहिये।

दबनेवाली रक्षाशक्तियोंसे हमारी सुरक्षा कर। तू तेजस्वी बन, यज्ञ संपादन कर, अपने पाप न दबनेवाली शक्तियों बड़ा और उनसे सब राष्ट्रकी सुरक्षा कर।

दशम मन्त्र

(कविः धीः बुध्नं परि मर्मज्यते) ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धिसे अपना आधारस्थान शुद्ध करता है, जिसपर वह आनंद-से रह सकता है और उन्नत भी हो सकता है। अपना स्थान अशुद्ध रहनेतक उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है। इस तरह स्थान-शुद्धि, गृहशुद्धि और व्यक्तिकी पवित्रता होनेपर (समितिः यभूय) ऐसे परिशुद्ध विचारोंके सजनोंकी जो सभा होती है वही सच्ची समिति कहलाती है। क्योंकि वहां (सा देव-ताता) दिव्य भावोंका, दिव्य पुण्यधर्म कर्मोंका फैलाव करनेका यत्न करती है। (देव-ताता) देवत्वका विकास करने-वाली संस्थाका नाम देवताता है। ऐसी उच्च समिति बननेके लिये स्थानशुद्धि, गृहशुद्धि, व्यक्तिशुद्धि होनी चाहिये और जब ऐसी व्यक्तियाँ शुद्ध स्थानपर इकट्ठी होंगी तब वह पवित्रताका फैलाव करनेका कार्य कर सकेंगी। मनुष्य अपनी शक्ति बढ़ाये और अपनी संघटना करके सांघिक शक्ति भी बढ़ावे। सब राष्ट्रकी एक समिति हो जो राष्ट्रको संघाटित शक्ति बढ़ाने-का कार्य करे।

(धन्वन्) मरुभूमिमें, रेतिले निर्जल स्थानमें भी पार्थीवीर (गातुं) उत्तम मार्ग बना सकता है। (द्योतः ऊर्मिं कृणुते) जलप्रवाह तथा जलकी कृष्ण निर्माण कर सकता है। यह सब पुरुषार्थसे प्राप्त होने-वात है। मनुष्य अपनी शक्ति बढ़ाकर यह सब कर सकता है।

(शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अमि नक्षति) बलवन् मनुष्य जलके प्रवाहोंसे निर्जल भूमिको भी भरपूर कर सकता है। (विश्वा सनानि जटरेषु ध्रुवे) भोजन करनेयोग्य अन्नको जनताके अनेक असेक्षित उप-धारण करता है। अर्थात् जनताके भोजनके लिये सब उप-अन्न उपस्थित कर देता है। अपने राष्ट्रमें अन्न न हो-होते हों, पर वह वीर पुरुषार्थ प्रयत्नसे उनको प्राप्त करता और जनताके नाना उदरोंतक पहुंचाता है। उपग्रह लोग दृष्ट पुष्ट और आनंदित हो जाते हैं।

नवम मन्त्र

(ते महिषस्य जयः ते विरोचमानं ऊरु बुध्नं धाम परि पति) तू बलवान् बननेपर तेरा शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य तेरे तेजस्वी विस्तृत मूल स्थानको चारों ओरसे घेर लेता है। अर्थात् तेरे स्थानमें, तेरे देशमें वह सामर्थ्य भरपूर होकर निवास करता है। तेरे सामर्थ्यसे तेरा देश भर जाता है। सब जनतामें तेरा बल भरा रहता है। तेरे सामर्थ्यसे सब राष्ट्र बलवान् हो जाता है।

(इन्द्रः विश्वेभिः स्वयशोभिः अद्वेयेभिः पायुभिः अस्त्रान् पाति) स्वयं तेजस्वी बनकर सब शत्रुओं तथा न

(नवासु प्रसृपु अन्तः चरति) नवीन प्रसृपु अन्दर भी यह शक्ति संचार करती है। नूतन उत्पन्न होने-वालोंके अन्दर यह सामर्थ्य जन्मसेही रहता है। जो शक्ति संचार राष्ट्रमें भरपूर भरा रहता है वह उस राष्ट्रकी सुप्रसृपु स्वयं जन्मसे उत्पन्न होता है। जैसा अग्नि सब पदार्थोंमें रहता है वैसाही यह सामर्थ्य भी उस राष्ट्रकी नूतन उत्पन्न पदार्थोंमें दीखता है।

अन्तिम मंत्र सुबोध है इसलिये उसकी विशेष प्रशंसा आवश्यकता नहीं है। यह सूक्त अग्निहोत्र सूक्त है। अग्निहोत्र मिषसे मानवोंको उन्नति प्राप्त करनेका उपाय है। इसका अधिक मनन करनेसे मानवोंकी अभ्युदय करने-वाली अच्युत तरह ज्ञान हो सकता है।

(३) प्रजाओंका रक्षक

(ज. ११६) कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः, द्रविणोदा अग्निर्वा । त्रिष्टुप् ।

स प्रतथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।

आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।

विवस्वता चक्षसा ग्रामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् २

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरिराहुतमृअसानम् ।

ऊर्जः पुत्रं भरतं सृष्टवान् देवा अग्निं धारयन् द्राविणोदाम् ३

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिविद्द् गातुं तनयाय स्वर्वित् ।

विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ४

नक्तोषासा वर्णमामेभ्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।

द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विं भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ५

श्रवणः— १ सहसा जायमानः सः सद्यः प्रत्यधा विश्वा-
नानि बद्धं लभत । आपः च धिपणा च मित्रं साधन् ।

॥ त्रिविणोदां नमि धारयन् ॥

१ स भायोः पूर्वपा निविदा कथयता मनुतां इनाः प्रजाः
नपत् । विवस्वता चक्षता द्यां अपः च । देवाः ॥

१ हे भारोः विराः ! तं प्रथमं यज्ञसाधनं धातुतं श्रज्जसानं
२ पुत्रं भरतं सृष्टवानुं ईक्षत । देवाः ॥

४ तः सातविधा पुराणपुष्टिः स्वयं विशा गोपः
तस्योऽमिता तनयाय गातुं विदुः । देवाः ॥

५ नतोपासा वर्षं आमेभ्याने समीची इकं मिशु धाव-
॥ ११॥ एतावापामा भवतः वि भाति । देवः ॥

अर्थ— १ बलके साथ उत्पन्न होनेवाला वह अग्नि, तत्काल ही पूर्वकी तरह, सब काव्योंको ठीक रीतिसे धारण करता है। जीवन (जल) और बुद्धिके द्वारा (वह सबका) मिश्र होता है। देवोंने ऐसे धनदाता अग्निध धारण किया है ॥

२ उस अग्नि का पुके स्नेह रूप का अग्नि धीरे धीरे
मनुषी हृदय प्रकाशित उत गति दिया । मेजरों का अग्नि धीरे धीरे
और जलो को व्याप्त किया । देखने में ।

॥ श्री भगवतिराज भक्तानां ! तव प्रहारे भक्तैः पश्यते, इत्यनेन
संयुक्त, भगवतिराज, अनेन पश्यते इति, इत्यनेन भगवतिराज भक्तानां
बलि, दासता (भगवतिराज) इति इत्यनेन । इत्यनेन ।

[illegible]

1. 1940年12月，在“大跃进”运动的高潮中，毛泽东在《红旗》杂志发表《红旗》社论，提出“大跃进”运动。

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
 अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ६
 नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
 सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ७
 द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
 द्रविणोदा वीरवतीमिपं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ८
 एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ९

६ रायः बुध्नः, वसूनां संगमनः, यज्ञस्य केतुः, वेः मन्म-
 साधनः । एनं अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः ॥

७ नू च पुरा च रयीणां सदनं, जातस्य च जायमानस्य
 च क्षां, सतः च भवतः च भूरेः गोपां, देवाः द्रविणोदां अग्निं
 धारयन् ॥

८ द्रविणोदाः तुरस्य द्रविणसः प्र यंसत् । द्रविणोदाः
 सनरस्य (प्र यंसत्) । द्रविणोदाः वीरवतीं इपं नः (प्रयं-
 सत्) । द्रविणोदाः दीर्घं आयुः रासते ॥

९ हे पावक अग्ने ! समिधा एव वृधानः रेवत् नः श्रवसे
 वि भाहि । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी
 उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

६ (यह अग्नि) धनका आधार, ऐश्वर्योक्ती प्राप्ति क-
 वाला यज्ञका ध्वज (जैसा सूचक), और प्रगतिशील मान-
 लिये इष्ट सिद्धि देनेवाला है । इसे अमृतत्वकी सुरक्षा क-
 वाले देवोंने ॥

७ इस समय और पहिले भी जो संपत्तिका घर है,
 उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा उसका निवास करता
 जो है और होगा उन अनेक पदार्थोंका जो संरक्षक है, देवोंने ॥

८ धनदाता (अग्नि) जंगम ऐश्वर्यका (हमें) दान क-
 ऐश्वर्यदाता (अग्नि) सेवन करनेयोग्य (स्थावर ऐश्वर्य)
 हमें प्रदान करे । वैभव दाता (अग्नि) कीरोसे युक्त अ-
 हमें देवे । संपत्तिदाता (अग्नि हमें) दीर्घ आयु देता है ॥

९ हे पवित्रता करनेवाले अग्निदेव ! समिधाओंसे वर-
 हुआ और धन देनेवाला होकर हमारे यज्ञके लिये प्रकाश
 होओ । हमारे इस अभ्युदयका मित्र आदि० देव अनुमोदन करो
 (अ. १।९५ का ११ वा मंत्र यही है, वहां इसका अर्थ देखा)

प्रजारक्षक अग्नि

इस सूक्तमें अग्निका वर्णन है, जो इस सूक्तके पाठ कर-
 नेसे सबको विदित हो सकता है । इस अग्निके वर्णनमें कुछ
 अन्य बातें भी कुछ शब्दोंके श्लेषार्थसे बतायी हैं । इनका
 मनन यहां हम करते हैं—

‘विशां गोपाः’ (मं. ४)— प्रजा जनोंका संरक्षण करने-
 वाला, ‘सतः भवतः च भूरेः गोपाः’ (मं. ७)— जो है
 और जो होगा उस बड़े विश्वका यह संरक्षण करता है । यह
 सहसा जायमानः (मं. १)— बल्के साथ प्रकट होता
 है, बल्के कार्य करनेके लियेही यह प्रकट हुआ है । ‘मनूनां’

प्रजाः अजनयत्’ (मं. २)— मनुष्य उत्पन्न हुई प्रजा
 इसने मरण पोषण किया है ।

‘विशः आरीः’ (मं. ३)— प्रजा प्रगति करनेवाला
 हो । अपनी उन्नति करनेके लिये यत्नशील हो । प्रजा जनोंके
 ‘प्रथमं यज्ञसाधनं ऋजुसानं भरतं सृप्रदानुं ईक्षत’ (मं. १)
 जो पहिला, यज्ञको संपन्न करनेवाला, प्रगतिशील, सबका पोषण
 कर्ता और दाता हो उसीकी प्रशंसा करो । यही मनुष्य प्रथमके
 योग्य है । ‘पुद्धारपुष्टिः स्वर्धितं तनयाय गातुं विदुः’
 (मं. ४)— जो अनेकवार प्रजाका पोषण करता है, अ-
 ज्ञान जानता है और बालक्योंके सुधारका मार्ग जानता है

है। सुप्रभा निर्माण करना प्रत्येक विवाहित स्त्रीपुरुष-
के लिये है।

‘वमीची एकं शिशुं धापयेते’ (मं. ५) — एक
रहनेवाली दो स्त्रियों एक बच्चेका उत्तम रीतिसे
पालन-पोषण करती हैं। बच्चेके पालन-पोषणमें विघ्न नहीं
होता। स्त्रियाँ बच्चेपर प्रेम करें और उसकी पालनामें दत्त-
करती हैं।

‘एषः वृत्तः’ धनका आधार या आश्रय, जिसके पास
धन रहता है ऐसा, ‘वसूनां संगमनः’ धनोंको मिल-
कर रहनेवाला, ‘वेः मन्मसाधनः’ प्रगतिशील मानवके
मन करनेयोग्य साधनोंको प्रस्तुत करनेवाला, ‘अमृत-
रक्षमाणः’ अमरत्वको सुरक्षा करनेवाला मनुष्य हो।
ऐसी ही प्राप्ति, मननयोग्य विचारोंका संप्रद और

अमृत अर्थात् मोक्ष अथवा बंधननिवृत्ति करनेके उपायोंका
संप्रद करनेका विचार कहा है। (मं. ६)

‘रयीणां सदनं’ संपत्तिका घर अथवा स्थान, ‘जातस्य
जायमानस्य क्षां’ उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालेका निवास
कर्ता, सबका आश्रय होनेवालेका यहाँ वर्णन है। (मं. ७) इस
सूक्तका वर्ण विषयही ‘द्रविणोदा’ धनदाता है। धन प्राप्त
करके उसका दान करनेवाला यहाँ वर्णन किया है। ‘वीरवतीं
इषं नः यंसत्’ (मं. ८) — वीरोंके पास जो धन रहता
है वह वीरता देनेवाला धन हमें मिले। जिससे निर्धनता
निर्माण होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये।

इस सूक्तका यह सर्व सामान्य उपदेश है जो सबके लिये
मनन करनेयोग्य है।

(४) कल्याणका मार्ग

(अ. १।१७) कुत्स जाद्विरसः । अग्निः, शुचिरग्निर्वा । गायत्री ।

| | | |
|--|-----------------|---|
| अप नः शोशुचदधमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । | अप नः शोशुचदधम् | १ |
| सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । | अप नः शोशुचदधम् | २ |
| प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । | अप नः शोशुचदधम् | ३ |
| प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । | अप नः शोशुचदधम् | ४ |
| प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । | अप नः शोशुचदधम् | ५ |
| त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । | अप नः शोशुचदधम् | ६ |

द्विपो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचद्वम् ७
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्पा स्वस्तये । अप नः शोशुचद्वम् ८

७ हे विश्वतोमुख ! नावा इव द्विपः नः अति पारय० ॥

८ सः नावया सिन्धुं इव स्वस्तये नः अति पर्प० ॥

७ हे सब ओर मुखवाले (अग्निदेव) ! नौकासे (मनुष्य) पार होनेके) समान, सब शत्रुओंसे हमें पार ले जाओ० ॥

८ वह (तुम) नौकासे समुद्रके या नदीके पार जानेके समान हमारे कल्याणके लिये हमें (सब दुर्गतिसे) पार ले जाओ हमारा पाप दूर हो ॥

उन्नतिका सत्य मार्ग

पाप न करना, पापकी वासना दूर करना अर्थात् शुभकर्म करनाही उन्नतिका सत्य मार्ग है। (अयं नः अप शोशुचत्) पाप दुःख करता हुआ हमसे दूर हो जावे। हमारे पास पापके लिये कोई किसी तरह स्थान न मिलनेसे वह पाप निराधार होकर दुःख करता हुआ दूर जावे। अर्थात् हमारे पास पापके लिये कोई स्थान न मिले। हम निष्पाप हों।

हममें तीन शुभेच्छाएं स्थिररूपसे रहें। उत्तम देशमें रहना उत्तम शुद्ध मार्गसे जाना और उत्तम धन प्राप्त करना। ये तीन शुभ इच्छाएँ मनुष्यमें स्थिर रूपसे रहें। इनके साथ यज्ञ करनेकी इच्छा भी चाहिये। क्योंकि यज्ञ मनुष्यकी उन्नति करनेवाला है। (मं. २)

(अस्माकासः सूरयः) हमारे सभी संबंधी विद्वान् ज्ञानी और सुविचारी हों। हमारे संबंधियोंमें एक भी ऐसा न हो कि जो निर्बुद्ध और अनाडी हो। (मं. ३-४)

जो (सहस्रवत् : भानवः विश्वतः प्र यन्ति) बलवान् है उसके तेजका फैलाव चारों ओर होता है यह निदम है। इसलिये उन्नति चाहनेवालोंको उचित है कि वे अपनेमें बल प्राप्त करें और बढ़ावें। (मं. ५) जब बल बढ़ेगा तब उसके यशका फैलाव चारों ओर होगाही। यह बल जो ' सहस्रवत् ' परसे व्यक्त होता है वह दूसरेपर व्यर्थ आक्रमण करनेका नहीं है, प्रत्युत शत्रुके हमले होनेपर स्वयं अपने स्थानपर स्थिर रहनेका है, पराभूत न होते हुए युद्धमें अपने स्थानपर स्थिर रहनेके लिये जो बल चाहिये वह बल यह है।

यह दो प्रकारका होता है। एक बल वह है कि जिससे शत्रुपर आक्रमण करके, उसको पराभूत करके, उसको

स्थानसे उखाड़कर फेंक देना और तितर-बितर कर देना होता है। और दूसरा बल वह है कि जिससे युद्धमें शत्रु पराभूत न होते हुए डटकर अपने स्थानमें सुस्थिर होने संभव हो सकता है। ये दो बल परस्पर भिन्न हैं और जो ' सहस्रवत् ' पदसे इस मंत्रमें कहा है वह बल दूसरा है। विजयके लिये दोनों बल प्राप्त करना आवश्यक है।

' विश्वतो-मुखः ' तथा ' विश्वतः परिभूः ' वे दो पद पष्ठ मंत्रमें विशेष विचारणीय हैं। ' परिभूः ' पराभू अर्थ ' शत्रुका पराभव करना, अधीन करना, पादाक्रान्त करना, शत्रुका अपमान करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको घेरना, शत्रुके साथ स्पर्धा करना, मार्ग बताना ' ऐसा होता है।

' विश्वतः परिभूः ' का तात्पर्य ' शत्रुका सब प्रकारसे, सब ओरसे, सब तरहसे पराभव करना ' है, शत्रुका पूर्ण नाश करके उसको अपने अधीन करना और अपना प्रभाव सर्व-तोषि स्थापन करनेका भाव यहाँ है। इसलिये ' विश्वतो-मुखः ' अपना मुख चारों ओर होना अत्यंत आवश्यक है। मुख चारों ओर रखनेका तात्पर्य शत्रुके चारों ओरका योग्य निरीक्षण करके, सबकी सब परिस्थिति अपने अधीन करना है। ईश्वर जैसा (विश्वतोमुख) सब ओर मुखवाला होनेके कारण सबका योग्य निरीक्षण करता है उसी तरह विजयी की चारों ओर दूतोंद्वारा शत्रुके चारों ओरका निरीक्षण करे और विजय संपादन करे। इस दृष्टिसे ये पद बड़े मननीय हैं। (मं. ६)

जिस तरह नौकासे समुद्रके पार होते हैं, उसी तरह पापसे समुद्रके पार, तथा शत्रुओंके समुद्रसे पार, होनेका कर्तव्य मनुष्यको करना आवश्यक है। यह तो अपनी शक्ति बढ़ानेकी हो सकती है और अपनी शक्ति तब बड़ सकती है कि जब अपनेमेंसे पाप अर्थात् पतनके हेतु समूल दूर हो जायेंगे। अब

, १०-१८]

होगा तब 'स्वस्ति' अर्थात् कल्याण होगा। कल्याण जो मार्ग इस सूक्तमें कहा है वह संक्षेपसे नीचे दिया

अथ अप शोशुचत् (मं. १)— पाप अर्थात् दुष्टोंको दूर करो, (अप्-अशुद्ध मार्गसे जाना, अयोग्य बनना, वही पाप है जिससे मानवका पतन होता है।)

रपि शुशुग्धि— धन प्राप्तिके मार्गका प्रकाश हो, सुश्रेष्ठिया (मं. २)— उत्तम क्षेत्रमें रहना सहना कार्य करना,

मुगानुया— प्रगतिक्ष उत्तम मार्ग मिले,

वसूया— धन प्राप्त हो

यजामहे— जितना धन हो उससे [श्रेष्ठोंका सरकार, धर्म संगठना और दीनोंकी सहायता करनेके उद्देश्यसे] दान करते रहेंगे। अर्थात् धनसे अपनेही भोग नहीं बढ़ा-

अस्माकासः सूरयः (मं. ३)— हमारे सब लोग धर्मसे हानी हों,

वयं सूरयः ते प्र जायेमहि (मं. ४)— हम धर्मसे दूर होकर ईश्वरके भक्त बनकर बढ़ते रहेंगे। विवरूप धर्मकी सेवा स्वकर्मसे करेंगे।

सहस्वतः मानवः विश्वतः प्र यन्ति (मं. ५)—

बलवान् वीरका प्रकाश विश्वमें फैलता है, यह नियम सब जानें। निर्वैलको इस विश्वमें कोई पूछता नहीं, इसलिये अपनी शक्ति बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिये।

१० विश्वतो-मुखः (मं. ६; ७)— विश्वमें चारों ओर क्या चल रहा है वह ठीक तरह देखते रहो, चारों ओरका ठीक प्रकार निरीक्षण करो,

११ विश्वतः परिभूः (मं. ६)— सर्वत्र विजयी हो,

१२ नावा सिन्धुं इव द्विपः नः अति पारय (मं. ७; ८)— जिस तरह नौकासे समुद्रके पार होते हैं, वैसे शत्रुओंसे पार जाओ। अन्तःकरणके शत्रु पापभाव हैं, समा-जके शत्रु सामाजिक द्वेषभाव हैं और राष्ट्रके शत्रु द्वेषभाव फैलानेवाले वैरी हैं। इन सबको दूर करना चाहिये।

१३ स्वस्तये (सु-अस्ति)— अपना इस स्थानपरका निवास सुखकर करनेके लिये यत्न करो। पूर्वोक्त मार्ग इसी सिद्धिके लिये हैं।

मानवी उत्पत्तिके लिये यह उत्कृष्ट मार्ग है। पाठक इसका अधिक मनन करें और इसे जीवनमें उल्लें। जिसने मनुष्यका पतन होता है उसका नाम अप है, अयोग्य मार्गसे जाना दो पाप है, जिससे अवनाति होती है वही पार है। इसको दूर करनेका उपाय इस सूक्तमें बड़ा है जो मनुष्य मननोप है।

(५) जनताका हितकर्ता

(अ. १।१८) कुत्स आश्रितः । अग्निः, वैश्वानरोऽग्निर्वा । निधुः ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामग्निर्वा ।

इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सुर्ध्व

अन्वयः— १ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम । हि भुवनाना-

२ राजा अग्निर्वा । इतो जातो वैश्वानरः इदं वि चष्टे ।

इत्येव (५) दत्तते ॥

पृथो दिवि पृथो अग्निः पृथिव्यां पृथो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
 वैश्वानरः सहसा पृथो अग्निः स नो दिवा स रिपः पातु नक्तम् २
 वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत घौः ३

२ वैश्वानरः अग्निः दिवि पृष्ठः, पृथिव्यां पृष्ठः, विश्वाः
 ओषधीः पृष्ठः आ विवेश । सहसा पृष्ठः सः अग्निः नः दिवा
 नस्तं रिपः पातु ॥

३ हे वैश्वानर । तव तत् सत्यं जस्तु । अस्मान् मघवानः
 रायः सचन्ताम् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः
 पृथिवी उत घौः मामहन्ताम् ॥

२ यह जनताका दित करनेवाला (नेता या राजा)
 धाममें (भी) वर्णन करनेयोग्य है, भूमिपर (तो) वर्णन
 योग्य है (ही,) धन भीयणियोंको (वही) वर्णीय (ने)
 प्राप्त हुआ है । बलके कारण वर्णीय (माना हुआ)
 अग्नि (यैसा तेजस्वी नेता) हम सबको दिनमें तथा रा
 तुष्टीसे बचाने ॥

३ हे सब जनताका दित करनेवाले नेता । तुम्हारा वह
 सफल हो । हम सबको धनीलोग (पर्याप्त) धन देंगे । हम
 यदि मन्तव्य है, इसका अनुमोदन मित्र वरुण आदि देव

सब मानवोंका सहायक नेता

(विश्व) सब (नर) मनुष्यमात्र, यह विश्व-नरका अर्थ
 है । जो सब मानवोंका दित करता है वह 'वैश्वानर' है । 'क्षत्रं
 वै वैश्वानरः' (श. ब्रा. ६।६।१।७, १।३।१।१३) क्षात्र-
 भावही वैश्वानर है । क्षात्रभाव जनताके दुःखोंको दूर करता है,
 (क्षतात् त्रायते इति क्षत्रं) दुःखसे जनताकी सुरक्षा
 करता है अतः उसको क्षत्र कहते हैं । यह आर्य्य गुण है । सब
 मानवोंको दुःखों और कष्टोंसे बचाना इसका काम है, इसलिये
 इसको वैश्वानर कहते हैं ।

'नर' (नृणाति इति नरः) जो योग्य मार्गसे चलाता
 है, सब लागाका सच्ची उन्नतिके मार्गपरसे ले जाता है वह
 'नर' है । तथा (न रमते इति नरः) जो स्वार्थी भोगोंमेंही
 नहीं रमता है वह नर है अर्थात् यह सब मानवोंका दित कर-
 नेके कार्योंमेंही दत्तचित्त रहता है, इसका नाम नर है । इससे
 विश्व-नरका ऐसा अर्थ हुआ कि— 'जो सबको सुयोग्य मार्गसे
 चलाता है, नेता बनकर जो अपने अनुयायियोंको उन्नतिके
 मार्गसे चलाता है तथा स्वयं भोगोंमें न फँसता हुआ अना-
 सक्त रहकर जो श्रेष्ठ कार्योंमें तत्पर रहता है । ' जिसका
 ऐसा स्वभाव है वह नेता 'वैश्वानर' कहलाता है । यही सबका
 नेता, अग्रगामी और राजा कहलाता है ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम । (मं. १) — सब मानवोंका
 दित करनेके कार्यमें जो दत्तचित्त रहता है, उस नेता
 शुभ आशीर्वाद हमें प्राप्त हो । अर्थात् हम सब मानव भी
 उत्तम जन-हितकारी कार्य करते रहें कि जिससे सन्तुष्ट हो
 हमारा नेता हमें अपनी कृपादृष्टिमें सदैव रहे । श्रेष्ठ नेता
 कृपा उसपर होगी कि जो नेताके नियोजित कार्योंमें तत्परता
 कार्य करता रहेगा । उसके विरोधी कार्य करनेवालेपर उसका
 कभी कृपा नहीं होगी । यह तो निश्चित ही है । इससे यह हो
 मिलता है कि जनताका नेता सब मानवोंको उन्नतिके मार्गसे
 योग्य रीतिसे चलावे, स्वयं भोगोंमें न फँसे, जनताको सुमार्ग
 परसे चलावे और अनुयायी भी ऐसे हों कि जो नेताके आदेशों
 सुकूल अपना नियत कर्तव्य करते जाय और अपने नेताके
 आयोजना सफल करके, सफलतासे उत्पन्न हुई प्रशंसाको स्वयं
 के भागी बने ।

सुवनानां कं राजा अभिधीः । सब मानवोंको सु-
 देनेवाला राजा सब प्रकारसे शोभायमान होता है । 'सुवन'
 उत्पन्न हुआ, प्राणी, मानव, मनुष्यमात्र, उन्नत होनेकी शक्ति
 करनेवाला । 'कं'— सुख, आनन्द, जीवन, जल, धन, ऐश्वर्य,
 अभ्युदय, समय, मन, शरीर, शब्द, प्रकाश । 'अभिधीः'
 तेजस्वी, प्रभावी, शोभावान्, शक्तिमान्, योग्य, गुणी, मित्र-
 वाला, सुव्यवस्थापक । मानवोंका सुख बढ़ानेवालाही सर्व

कर्मनेतृत्व है और वही शक्तिमान् और प्रभावी होता है। वही राजा प्रजाको कष्ट देता है, उन्नत होनेसे रोक्ता है। वही राजा है और ना ही वह कभी बलशाली होना समभव है। वही राजा है और ना ही वह कभी बलशाली होना समभव है। वही राजा है और ना ही वह कभी बलशाली होना समभव है।

राजः जातः वैश्वानरः इदं वि चष्टे। इसी समाजसे राजा पैदा होता है, जनताका अग्रगण्य है, नेता होनेके बाद वह समाजके प्रतिष्ठितिका विशेष रीतिसे निरीक्षण करता है। समाजके साथ अपने समाजकी तुलना करके देखता है, समाजके निरीक्षण करता है और इसकी अधिक उन्नति करने के लिये निश्चित करता है। इस निरीक्षणसेही नेताका कर्तव्य निर्धारित होता है।

(सूर्य यतते) सूर्यके साथ चल करता है, जैसा सूर्य निरन्तर सबको प्रकाश बताता है, वैसाही यह नेता आलस्य छोड़कर इतनेके कर्तव्यें दत्ताचित्त रहता है। 'यत्'—उन्नतिके लिये प्रयत्न करना, तत्परतासे चल करना, पुनः पुनः प्रयत्न करना, देखना, सन्धानताके साथ निरीक्षण करना, उत्साह रखना, मिलना, साथ रहना, मिलकर चल करना, प्रगति करना। 'यतते' क्रियाके ये अर्थ हैं। जैसा सूर्य विश्वका मार्ग-दर्शक होता है, वैसा यह नेता मानवोंको मार्ग बताता है, यह अपने सामने सूर्यका आदर्श रखता है।

(वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका सच्चा हित करने-वाला नेता सचमुच अग्नि है, अग्निके समान जनतामें वह नव-प्रकाश आग उत्पन्न करता है। जैसा अग्निके पास गया (नदी, जल, आदि) पदार्थ अग्निरूप बनता है, वैसाही अग्नि के प्रति आवा मनुष्य इतनेके सट्टा उत्साही होता है। अग्नि विद्युत्, पृथिव्यां पृष्ठः) गुलेचने और भूमिपर भी अग्नि प्रकाश पायी जाती है। गुलेचने, दिव्य विद्युत्की परिपक्वता प्रकाश होती है वैसी जनतामें भी होती है। (मं. २)

(विश्वः ओषधीः पृष्ठः) जिस तरह रोग दूर करने के लिये सब औषधियोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह यह नेता मानव रोगोंकी चिकित्सा करता है और अपने ही रोगमुक्त करता है। मानो यह नेता राष्ट्रपति (ओषधीः) ही रोगमुक्त करता है। मानो यह नेता राष्ट्रपति (ओषधीः) ही रोगमुक्त करता है। मानो यह नेता राष्ट्रपति (ओषधीः) ही रोगमुक्त करता है।

राष्ट्रमें (आ विवेश) आवेश उत्पन्न करता है, नव चेतना फैलाता है। 'आ-विश्'—प्रवेश करना, स्वामी होना, अधि-कार जमाना, प्राप्त करना, प्रभाव स्थापन करना, उठना, जागना आवेश उत्पन्न करना। यह नेता (दिवा नक्तं रिपः पातु) दिनरात शत्रुओंसे हमारी सुरक्षा करे (सहसा पृष्ठः) बलके कारण इस नेताकी प्रशंसा सर्वत्र होती है। (मं. २)

जनताके नेताका (तत् सत्यं अस्तु) जो यह सामर्थ्य है वह सदा सत्य रहे, कभी कम न हो, सत्य मार्गकाही यह अवलंब करे, कभी असत्य मार्गपर न जावे। (अस्मान् मघवानः रायः सचन्तां) हमें धनवान् पर्याप्त धन दें। और यह सब हमारी आयोजना प्रभुकी लपासे सफल होती रहे इसमें कभी झुट्टि न हो। (मं. ३)

अग्निका सूक्त

यह सूक्त वस्तुतः अग्निका वर्णन करनेवाला है। अग्नि अप्रगोही है क्योंकि यह अप्रमागतक, अन्ततक, मोक्षधाम-तक पहुंचता है। यह (वैश्वानरः) सब विश्वका नेता है, यह (सूर्यं यतते) सूर्यके साथ संबंध रखता है, सूर्यसे विद्युत् और विद्युत्से अग्नि उत्पन्न होती है। इस विषयमें निम्नतम कहा है—

वैश्वानरः कस्मात् ? विश्वान् नरान् नयति, विश्वेष्वप्यनं नरा नयन्तीति वा, अपि वा विश्वान् नर एव स्यात् । "वैश्वानरस्य सुमती स्याम राजा हि कं भुवनानामग्निर्धीः । इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥" इतो जातः सर्वमिदं अग्नि विषदयति, वैश्वानरः संयतते सूर्येण, राजा यः सर्वेषां भूतानां अग्नि-प्रयणोयः, तस्य वयं वैश्वानरस्य कल्याणदां मतो स्यामिति ॥ (वि. १. १. १)

तत् को वैश्वानरः नभ्यम इत्याद्यायाः । वयं कर्मणा येन स्तौतिः ... । प्रतापादित्य इति पूर्व याद्विज्ञाः । ... । अयमेव अग्निर्वैश्वानर इति शान्त्युक्तिः ... । आदित्ये केले वा मणि वा परिमृश्य प्रतित्यरे यत्र नोनमनते सत्यं यत् । धारयति, तत् प्रदोष्यते, सोऽयमेव संयतते । (वि. १. १. २)

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्माणि स्थिरः ।

४

वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।

५

इन्द्रो यो दस्यूरधरो अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावन्निर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।

६

इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योपा तनुते पृथु जयः ।

७

इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद् वावमे वृजने मादयासे ।

८

अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चक्रुमा सत्यराधः

१ यो गोपतिः अश्वानां, यः (च) गवां वशी (अस्ति),
२ कर्मणः कर्मणि-कर्मणि स्थिरः (भवति), यः इन्द्रः वीळोः
३ असुन्वतः वधः (अस्ति), (तं) मरुत्वन्तं सख्याय

४ यो विश्वस्य जगतः प्राणतः पतिः (अस्ति), यः
५ ब्रह्मणे गाः अविन्दत्, यः इन्द्रः दस्यूर अधरान्
६ यो रुद्रेभिः (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

७ यो शूरेभिः, यः च भीरुभिः हव्यः, यः धावन्निः,
८ जिग्युभिः हूयते, विश्वा भुवना यं इन्द्रं अभि
९ रुद्रेभिः (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

१० विचक्षणः रुद्राणां प्र-दिशा एति, योपा रुद्रेभिः पृथु
११ रुद्रे, मनीषा श्रुतं इन्द्रं अभि अर्चति (तं) मरुत्वन्तं
१२ हवामहे ॥

१३ (८) सत्यराधः ! मरुत्वाः ! त्वां यद् वा वृजने सध-
१४ यद् वा ववमे वृजने मादयासे अतः तः अह्यध्वरं अह्य-
१५ ध्वरं, त्वाया हविः चक्रुम ॥

४ जो गायोंका स्वामी है और जो घोड़ों और गायोंके वशमें रखनेवाला है, जो स्तुतिको पाया हुआ इन्द्र प्रत्येक कर्ममें स्थिर रहता है, जो इन्द्र प्रयत्नसे भी यज्ञविरोधी शत्रुको दण्ड देता है, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको मित्रताके लिये हम पुकारते हैं ।

५ जो सम्पूर्ण चर और प्राणधारी जगत्का स्वामी है जिसने पहलेही प्राणयके लिये गौएँ प्राप्त कर लीं, जिस इन्द्रे दुष्टोंका नीचे गिरा दिया, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको हम मित्रताके लिये बुलाते हैं ।

६ जो शूरी और जो दुरीक से लिये नाना युद्धमें सफल बुलानेयोग्य है, जो नागसे दुर और सेना के लिये युद्ध की दारा पुकारा जाता है, जो रुद्र लोग अपने अपने शत्रुओं को मारते हैं, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको हम मित्रताके लिये बुलाते हैं ।

७ जो शूरी और जो दुरीक से लिये नाना युद्धमें सफल बुलानेयोग्य है, जो नागसे दुर और सेना के लिये युद्ध की दारा पुकारा जाता है, जो रुद्र लोग अपने अपने शत्रुओं को मारते हैं, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको हम मित्रताके लिये बुलाते हैं ।

८ जो शूरी और जो दुरीक से लिये नाना युद्धमें सफल बुलानेयोग्य है, जो नागसे दुर और सेना के लिये युद्ध की दारा पुकारा जाता है, जो रुद्र लोग अपने अपने शत्रुओं को मारते हैं, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको हम मित्रताके लिये बुलाते हैं ।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चक्रमा ब्रह्मवाहः ।

अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व । ९

मादयस्व हरिभिर्धे त इन्द्र वि ज्यस्व शिमे वि सृजस्व धेने ।

आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशान् हव्यानि प्रति नो जुपस्व । १०

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः । ११

९ (हे) सु-दक्ष इन्द्र ! त्वा-या सोमं सुषुमा । (हे) ब्रह्म-वाहः । त्वा-या हविः चक्रम् । (हे) नियुत्वः ! अध स-गणः (त्वं) मरुत्-भिः (सह) अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥

१० (हे) इन्द्र ! ये ते (हरयाः, तैः) हरि-भिः मादयस्व, शिमे वि स्यस्व, धेने वि सृजस्व । (हे) सु-शिप्र ! हरयः त्वा आ वहन्तु, (त्वं) उशान् नः हव्यानि प्रति जुपस्व ॥

११ वृजनस्य मरुत्स्तोत्रस्य गोपाः वयं इन्द्रेण वाजं सनुयाम । मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् नः मामहन्ताम् ॥

९ हे उत्तम बलवाले इन्द्र ! हमने तेरे लिये सोम बनाया है । हे स्तुतिको स्वीकार करनेवाले ! हमने तेरे हवन-सामग्री बनाई है । हे घोड़ोंवाले ! अब तू सेनास मरुतोंके साथ इस यज्ञमें आसनपर बैठकर सोम प्रसज हो ।

१० हे इन्द्र ! जो तेरे अपने घोड़े हैं तू उन घोड़ों आकर हमारे यज्ञमें आनन्द मना । अपने दोनों हाँठोंके और अपनी पाणियोंको खोल दे । हे उत्तम मुखवाले घोड़े तुझे यहाँ ले आये । तू चाहता हुआ हमारे आसन सेवन कर ॥

११ शत्रुओंके नाशक, मरुतोंके स्तोत्रोंके रक्षक हम अपने साथ मिलकर धन प्राप्त करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु पृथिवी और द्यौ उस कार्यमें हमारी सहायता करें ।

इन्द्रका वर्णन

यहोसे इन्द्रका वर्णन प्रारंभ होता है । इन्द्र और यज्ञकी कथा के मिषसे प्रतापी क्षत्रियका धर्म दर्शाया जाता है ।

१ कृष्ण-गर्भा । (मं. १)— यह वर्णन यज्ञकी नगरीका है । यज्ञ इन्द्रका शत्रु है, वह इन्द्रके साथ लड़ता है । अपनी नगरीकी सुरक्षित रखनेके लिये वह उस नगरीमें अन्धरा करता है । इस अन्धरेके कारण उस नगरीपर इन्द्रका हमला नहीं हो सकता । आजकलकी युद्धव्यवस्थामें भी बड़ी बड़ी नगरियाँ रात्रिक समय अन्धरेसे व्याप्त रखी जाती हैं जिससे उनकी सुरक्षा होती है । (कृष्णः) अन्धरा है (गर्भा) जिस नगरीके बीचमें वह कृष्णगर्भा नगरी है । ऐसी यज्ञकी अनेक नगरियाँ थीं । वह एक युद्ध-नगरी है । इन्द्रने ऐसे प्रबल शत्रुको (निःअदन्) मार डाला, वह इन्द्रका प्रभाव है ।

२ व्यसं (यज्ञं)— इन्द्रने यज्ञको कर्णोंको पहिले मारा था । (मं. २)

३ अयत्तं पिपुं अहन्— धर्म-नियमोंका पालन न करनेवाले पिपुको भी इन्द्रने मारा था । यह पिपु यज्ञका साथी था 'शंखर और जुष्ण' ये दो और यज्ञके साथी इन्द्रद्वारा मारे गये थे ।

४ यः गोपतिः, गवां वशी, अश्वानां वशी (मं. ३)— इन्द्र गौओंका पालन करता है, गौओंको वशमें रखता है और घोड़ोंकी भी उत्तम पालना करता है और घोड़ोंको उत्तम शिक्षा देकर सुशिक्षित करता है ।

५ असुव्यतः वधः— इन्द्र यज्ञ न करनेवालेको मारता है । यज्ञ जनसंघटनाका यज्ञ उपयोगी कार्य है । जो इसको नहीं करता वह बर्धव्य है । जो इन्द्रकी संगठनामें रहता

१, ए. १०१ १०२]

कुत्स काविका दर्शन

सो भूद्वारा संपटना करके जनताको बलवान् बना देंगे ।

त्वस्य जगतः प्राणतः पतिः (मं. ५)—
(और जगत्पति संपूर्ण विश्वका अधिपति है । तब विश्व
संभवे है ।

इन्द्र दस्यून् अधरान् अवातिरत्— इन्द्र शत्रुओं-
के गिराकर परास्त करता है ।

ब्रह्मणे गाः आविन्दत्— इन्द्र ब्राह्मणके लिये गाएँ
हैं । ब्राह्मणके घर अनेक विद्यार्थी पड़ते रहते हैं । ब्राह्मणका
रक्षक होता है, वहाँ विद्याभ्यास पड़ाई होती है, इन्द्र
जो ब्राह्मणको गाएँ दी जाती हैं ।

१५ शरोभिः भीतभिः हव्यः (मं. ६)— इन्द्र
शर और भीतोंद्वारा साक्षात्कार बुलाया जाता है ।

१६ यः धावद्भिः जिग्युभिः ह्रियते— जो आक्रमण
करके और विजय पानेवाले वीरोंद्वारा साक्षात्कार बुलाया
जाता है ।

११ विश्वा भुवना इन्द्रं अभि संदधुः— सब भुवन
इन्द्रके साथ अपना संबंध जोड़ती हैं, इन्द्रके साथ संबंध रख-
ना होगा ऐसा सबको प्रतीत होता है ।

१२ सत्य-राघः (मं. ८)— जिसको निश्चित रूपसे
सिद्धि मिलती है, कभी जिसका पराभव नहीं होता ।

१३ सुदक्षः (मं. ९)— उत्तम बलवान्, उत्तम दक्षता-
के साथ अपने सब कार्य करनेवाला, जो सदा सावधान रहता
है, इसलिये विजय पाता है ।

१४ ब्रह्म-वाहः— जो ज्ञानका वाहक है, ज्ञानका जो
कैलाश करता है ।

१५ स-गणः— जो सदा अपने अनुयायियोंके समूहके साथ
रहता है, जो सैनिकोंके साथ रहता है ।

१६ सुशिप्रः (मं. १०)— उत्तम हनु या होंठोंवाला, उत्तम
शिक्षणवाला,

१७ हरयः त्वा आ वहन्तु— घोड़े इन्द्रको लाते हैं,
रथको घोड़े जोते जाते हैं, जो इन्द्रको यश स्थानपर लाते हैं ।

१८ वृजनस्य (नाशकर्ता)— पाप, दुर्भाग्य, तथा दुर्ग-
तिना नाश करनेवाला ।

१९ गोपाः— संरक्षण करनेवाला इन्द्र है । ये इन्द्रके
गुण हैं । ये वीरके गुण हैं । वीरकी इनसे शोभा बढ़ती है ।

(७) शत्रुरहित प्रभु

(अ. ११०२) कुत्स आह्वितः । इन्द्रः । जगती, ११ त्रिष्टुप् ।

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे ।

तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु

अस्य श्रवो नद्यः सप्त विश्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।

अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो विततुर्मू

अन्वयः— १ यत् ते धिषणा अस्य स्तोत्रे आनजे, महः ते
इमां नही धियं प्र भरे । देवासः उत्सवे च प्रसवे च तं
सह हि इन्द्रं शवसा अनु भवन्तु ॥

२ सप्त नद्यः अस्य ध्रुवः विश्रति । द्यावाक्षामा पृथिवी
अस्य दर्शतं वपुः (धारयन्ति) । (३) इन्द्र ! सूर्याचन्द्र-
मसा अस्मे अभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतः ॥

५ (उत्सव)

अर्थ— १ हे इन्द्र ! जो कि तेरी बुद्धि इसके स्तोत्रमें
संयुक्त होती है, मैं महान् भुवनाके तेरी इस बड़ी बुद्धिको
धारण करता हूँ । देव लोगोंने प्रेष्ठ सोम-विमानके विशेष
सर्वनके समय उस शत्रुकी दमनके इन्द्रको बलपूर्वक मान-
गता की ।

२ सप्त नद्यो इस इन्द्रको नम्र देती हैं । यी, ध्रुवों और
अन्तरिक्ष इनके दर्शनमें शरीरको धारण करने हैं । हे इन्द्र !
तेरे ये सूर्य और चन्द्रमा हमारे देखने और भजन करने
करके निश्चयसे अस्मिन् सैनिक बनकर विद्यमान हैं ।

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।

आजा न इन्द्र मनसा पुरुषुत त्वायन्द्र्यो मघवच्छर्म यच्छ नः ३

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।

अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ४

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।

अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ५

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मच्छतमूतिः खजंकरः ।

अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ६

उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।

अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यघा वृत्राणि जिघ्रसे पुरंदर ७

३ (हे) मघ-वन् ! ते यं जैत्रं (रथं) संगमे अनु-
मदाम, सातये तं स्म रथं प्र भव । (हे) पुरु-स्तुत इन्द्र !
आजा नः मनसा (देहि) । (हे) मघ-वन् ! त्वायत्-भ्यः नः
शर्म यच्छ ॥

४ (हे) मघ-वन् इन्द्र ! वयं त्वया युजा वृतं जयेम
(त्वं) भरे-भरे अस्माकं अंशं उत् भव । वरिवः अस्मभ्यं
सु-गं कृधि । शत्रूणां वृष्ण्या प्र रुज ॥

५ (हे) धनानां धर्तः ! नाना हि हवमानाः विपन्यवः
इमे जनाः भवसा त्वा (यन्ति) । (हे) इन्द्र ! तव नि-भृतं
मनः जैत्रं हि (अतः) सातये अस्माकं स्म रथं आ तिष्ठ ॥

६ (इन्द्रस्य) बाहू गो-जिता । (सः) इन्द्रः अमित-
क्रतुः, सिमः, कर्मन्-कर्मन् शतं-ऊतिः खजं-करः (तथा)
ओजसा प्रति-मानं अकल्पः (अस्ति) । अथ सिषासवः जनाः
वि ह्वयन्ते ॥

७ (हे) मघ-वन् ! ते श्रवः शतात् भूयसः सहस्रात् च
कृष्टिषु उत् उत् उत् रिरिचे । मही धिषणा अमात्रं त्वा
तित्विषे । (हे) पुरं-दर ! अथ (त्वं) वृत्राणि जिघ्रसे ॥

३ हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! तेरे जिस जयशील (रथकी, हम
लोग) युद्धमें प्रशंसा करते हैं, (तू धन) देनेके लिये उस रथ
की रक्षा कर । हे बहुत प्रशंसित इन्द्र ! युद्धमें, तू हमें मनः-
पूर्वक (धनादि दे) । हे ऐश्वर्यवाले ! तू अपने पास आने
वाले हमको सुख प्रदान कर ॥

४ हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! हम लोग तुझसे मिलकर घेरनेवाले
शत्रुको जीतें । तू प्रत्येक युद्धमें हमारे भागकी रक्षा कर । धन
हमारे लिये सुगमतासे प्राप्त होनेवाला कर और शत्रुओंके बलों-
को तोड़ दे ॥

५ हे धनोंके धारक (इन्द्र) ! अनेक वक्ता विद्वान् लोग
रक्षाके लिये तेरे पास आते हैं । हे इन्द्र ! तेरा शान्त मन जय-
शील है (अतः तू हमें धन) देनेके लिये हमारेही रक्षण
आकर बैठ ॥

६ इन्द्रकी भुजायें गौरे जीतनेवाली हैं । वह इन्द्र अधीम
कर्मोंको करनेवाला श्रेष्ठ प्रत्येक कर्ममें सैकड़ों रक्षाओंसे युक्त,
शत्रुओंसे युद्ध करनेवाला और बलमें बराबरी करनेवालेको न
माननेवाला है । इस कारण धनकी प्राप्तिकी कामनावाले मनुष्य
उसे विविध प्रकारसे बुलाते हैं ।

७ हे धनिक इन्द्र ! तेरा दान प्रजा-जनोंमें सौ, शीघ्र
अधिक और सहस्रसे भी अधिक बढ गया है । बड़ी वानी
असीम गुणवाले तुझ इन्द्रको अधिक तेजस्वी बनाती है । हे
गडके तोड़नेवाले ! तू तो वृत्रोंको सदा मारताही है ।

१, २, ३, ४]

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिष्ठो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
 अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि
 त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं वभूथ पृतनासु सासहिः ।
 सेमं नः कारुमुपमन्युमुन्निदामिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः
 त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
 त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय
 विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

८

९

१०

११

८ (हे) नृपते इन्द्र ! ओजसः त्रिविष्टि-धातु प्रतिमानं
 (वसि) । (त्वं) तितः भूमीः, त्रीणि रोचना, इदं विश्वं
 भुवनं ववक्षि । (त्वं) सनात् जनुषा अशत्रुः अस्ति ॥

९ (हे इन्द्र !) त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे । त्वं पृत-
 नासु ससहिः बभूथ । सः इन्द्रः नः हमं कारं उप-मन्युं
 मुन्निदं रथं प्रसवे पुरः कृणोतु ॥

१० (हे) मघ-वन् ! अनेपु महत्-सु च आजा त्वं
 (पनानि) जिगेथ, धना रुरोधिय न । (वयं) त्वां उग्रं
 से सं शिशीमसि । (हे) इन्द्र ! मघ हवनेषु नः
 चोदय ॥

११ इन्द्रः विश्वाहा नः अधि-वक्ता अस्तु । (वयं)
 मित्रः वरुणः वाजं सनुयाम । मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः
 पृथिवी उत द्यौः तत् नः ममहन्ताम् ॥

प्रभुकी महिमा

प्रभुकी महिमा इस सूक्तमें वर्णन की है । देखिये—

१ ते महः (मं. १)— तेरी महिमा बड़ी है ।

२ उत्सवे प्रसवे ससहिः (२)— उत्सव और प्रसवके
 समय शत्रुको तू पराभूत करता है ।

३ सत नयः अस्य ध्रुवः विधति (३)— सात
 रोशनी इसको अज देती हैं, इसके दश या आठोंको धारण
 करती हैं । ये सात नदियाँ पंजाबको पाँच और दो अन्य नदियाँ
 सहित मानो जायगी, तो इन आठों रोशनीको अन्तर्गत

८ हे प्रजापालक इन्द्र ! तू बलवानोंके तियुने बलकी समा-
 नता करनेवाला है । तू तीन भूमि, तीन तेज और इस सम्पूर्ण
 लोकका भली-भाँति संचालन कर रहा है । तू सदासे जन्मतः
 शत्रु-रहित है ।

९ हे इन्द्र ! हम तुझ देवोंमें प्रथम देवको अपने यहाँ
 बुलाते हैं । तू युद्धोंमें शत्रुओंको दबानेवाला हुआ था । वइ यइ
 इन्द्र हमारे इस विजयकर्ता उत्साहवाले भेदक रथको युद्धके
 समय आगे करे ॥

१० हे धनशाल इन्द्र ! छोटे और बड़े युद्धोंमें तू धनोंको
 जीतता है परन्तु धनोंको अपने पाखड़ी रोक नहीं रखता । इन
 तुझ उग्र इन्द्रको रक्षाके लिये अधिक शक्तिशाली बनाते हैं ।
 हे इन्द्र ! तब युद्धके समय तू हमें प्रेरित कर, आगे बढ़ा !

११ इन्द्र सब दिन हमसे बोलनेवाला हो (अर्थात् हमसे
 वशी रह न दो) । हम कुटिलता-रहित होकर धन प्राप्त करेंगे ।
 मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और यँ लोक वइ अन्तः
 हमें प्राप्त करायें ॥

हो सकती है । निम्नलिखित मंत्रमें अनेक नदियोंका उल्लेख
 है—

रमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्नानं
 सचता पश्यथा । अतिफन्या मरुद्वये विन-
 स्तयाऽऽर्जुनीये गृध्या सुषोमया ।

(१५ मंत्रमें गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, घग्घा, अरवि,
 बली, मरुद्वीपा, विन्तन, अर्जुनी, सुषोमा इत्यादि नदियोंका
 उल्लेख है । इनके शुद्धि (पवित्रता), शक्ति, शक्ति, शक्ति,
 शक्ति (विद्वत्, विद्वत्, विद्वत्) के आशयसे कहा

नाम हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती ये नदियाँ प्रसिद्ध हैं। इसके आगेके मंत्रमें तृष्टामा, सुपर्तु, रसा, श्वेला, सिन्धु, कुमा, मेहन्तु कुमु, गोमती ये नाम हैं। नदियोंके वर्णनके लिये ऋ. १०।७५ वां सूक्त देखनेयोग्य है पर ये सब नदियाँ उत्तर भारतकीही हैं। दक्षिण भारतकी नदियाँ यहाँ नहीं हैं।

इनमेंसे सात नदियाँ कौनसी हैं यह अभी निश्चित रूपसे पता लगना है।

४ वयं वृतं जयेम (४)— हम घेरनेवाले शत्रुको को जीते। अर्थात् कोई शत्रु हमें घेरकर परास्त न करे।

५ शत्रूणां वृषण्या प्र रुज-शत्रुके मव बलोंको तोड़ दे। और उसे निर्बल बना दे।

६ निभृतं मनः जैवम् (५)— भरणपोषण करनेवाला मन जयशाल होता है।

७ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतीः (६)— प्रत्येक कर्ममें सैकड़ों सुरक्षा करनेके सामर्थ्य हों। (अमित-कृतुः सिमः)

अधीम कर्म करनेवालाही श्रेष्ठ होता है, परिपूर्ण बल जाता है।

८ ओजसा प्रतिमानं अकल्पः— अपनी अतुल शक्ति कारण अपने समान दूसरे किसीको अपने बराबर मानने तैयार नहीं है। यह अति प्रचण्ड शक्तिका दर्शक है।

९ पुरंदरः— (७) शत्रुके कौलोंको तोड़ने वाला,

१० अनुपा अशत्रुः असि (८)— जन्मसे शत्रु है, अज्ञातशत्रु वह होता है कि जो बड़ा प्रभावो होता है।

११ पृतनासु ससाहिः (९)— युद्धमें शत्रुका पराजित करनेवाला वीर हो।

१२ उद्भिदं कावं पुरः कृणोतु— उन्नति करनेवाले शत्रुको आगे बढ़ावे, उसका सम्मान करे।

१३ आज्ञा जिगेथ (१०)— युद्धमें जय प्राप्त करने के लिये इस प्रकारका आदर्श वीर इस सूक्तमें वर्णन किया है।

(८) शत्रु वध करनेवाला वीर

(क्र. १११०३) कुस आक्रितसः । इन्द्रः । त्रिदुष् ।

तत् त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।

क्षमेदमन्यद् दिव्यः न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः

स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।

अहन्नाहिमाभिनवौहिणं व्यहन् व्यंसं मधवा शचीभिः

अन्वयः— १ हे इन्द्र ! कवयः पुरा से इंद्रे परमं इन्द्रियं पराचैः अपारयन्त । समना-इव केतुः वस्त्र अन्वयत् इंद्रे क्षमा अन्वयत् ई दिवि से पृच्यते ।

२ सः हरिषीं आनयत् पप्रथच्च । (असुरान्) वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज । अर्द्धं अहन्, सैदिमे अभिनव । अहन्नाहिमाभिनवः (इव) नि अहन् ।

अर्थ— १ हे इन्द्र । ज्ञानी लोगोंने पूर्वकालमें ते श्रेष्ठ बलको दूरवेदी धारण किया । जैसे युद्धमें श्रेष्ठ, इस इन्द्रकी एक वद ज्योति पृथिवीपर और दूसरी वद पृथिवी में आकर जुड़ती है ।

२ उसने पृथिवीका धारण किया, और उसे आसुरिक शक्ति दिया । असुरोंको वज्रेने मार कर पृथिवीको मुक्त किया । मारा, सैदिमेको तोड़ काट दिया । इन्द्रने अहन्नाहिमाभिनवः शत्रुको मार डाला ।

स जातूभर्मा श्रद्धधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।

विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र

तदृचुपे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम विभ्रत् ।

उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यन्द्र सूनुः श्रवसे नाम दधे

तदस्पेदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।

स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान्तस ओषधीः सो अपः स वनानि

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।

य आहत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः

तादिन्द्र प्रेव वीर्यं चक्रर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।

अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा

१ सः जातूभर्मा ओजः श्रद्धधानः, दासीः पुरः वि-
भिन्दन् वि अचरत् । (हे) वज्रिन् ! विद्वान् (त्वं) अत्य-
न्तं हेति (विचित्र) यदा दस्यवे हेति अत्य (= प्रक्षिप्य)
(हे) इन्द्र ! नार्यं सहः द्युम्नं (च) वर्धय ॥

४ चर ह सूनुः श्रवसे नाम दधे तव वज्री मघ-वा
सुहत्याय उप-प्रयन् ऊचुपे इमा मानुषा युगानि कीर्तेन्यं
म विभ्रत् ॥

५ (येन वीर्येण) सः गाः अविन्दत्, सः जश्वान् अवि-
न्द, सः ओषधीः, सः अपः, सः वनानि (अविन्दत्), अत्य
इत्य तव इदं भूरि पुष्टं (वीर्यं) पश्यत, (तस्मै) वीर्याय
धत्तन ॥

६ सः शूः आ-इत्य परिपन्थी-इव अयज्वनः वेदः वि-
भजन् एति (तस्मै) भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्य-शुष्माय
सुनवाम ॥

७ (हे) इन्द्र ! यत् ससन्तं आदि वज्रेण बोधयः तव
इव वीर्यं चक्रर्थ । पत्नीः वयः च हृषितं त्वा अनु अम-
(त्वा), विद्वे देवासः त्वा अनु अमदन् ॥

३ वह विद्युत् रूप राजधारी (इन्द्र) बल धारण करता
और शत्रुके पुरोको तोड़ता हुआ विचरने लगा । वह तू हे
वज्रधारी ! शत्रुको जानता हुआ इसके न-शक शत्रुपर अपना
बाण छोड़ । हे इन्द्र ! आर्योके बल और तेजको तू पड़ा ।

४ जब कि प्रेरक इन्द्रने कीर्तिके लिये यश धारण किया तब
वज्रधारी (इन्द्र) ने शत्रुके नाशके लिये उसके समीप जाते
हुए ज्ञानीको ये मनुष्य सम्बन्धी युग और कीर्तनके गोख नाम
प्राप्त कराया ॥

५ (जिस पराक्रमसे) उन (इन्द्र) ने गीर्ष प्राप्त की,
उसने पीछे प्राप्त किये, ओषधीयों, जल, इत्यादि वनस्पतिनदित
वन प्राप्त किये, इस इन्द्रके उम बहुत पुष्ट पराक्रम को हे निमो !
देखो । तथा इस पराक्रमपर प्रज्ञा करो ।

६ जो शू (इन्द्र) क्षत्रियोके आदर कर शत्रुके समान
यज्ञ न करनेवाले शत्रुको धन लेकर उनकी बाँटना जाता है,
उस बहुत कर्मेवाले बलवान् राजा और सत्य करनेवाले (इन्द्र)
के लिये इन तीन निमोके ।

७ हे इन्द्र ! तूने जो तेने हुए अहि को बन्ने अपना,
तूने यह एक बड़ा पराक्रम कर दिखाया । उस समय देखो
पत्नीको तथा वसु को जिसे उदकेव ने मरनेके प्रसन्नसे पुत्र पुत्र
इत्यादि अनुभूत किया । तब चर देवोके नाशके लिये वयः
बल प्रकट हो ।

शुष्णं पिपुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

८ (हे) इन्द्र ! यदा शुष्णं पिपुं कुयवं वृत्रं अवधीः शम्बरस्य पुरः वि (अवधीः) तत् मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः नः ममहन्ताम् ॥

८ हे इन्द्र ! जब तूने शुष्ण, पिपु, कुयम और वृत्र और शम्बर के नगर नष्ट किये तब उस समय मित्र, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ ने हमें उत्साहित किया ॥

वीरके कर्म

इस इन्द्र-सूक्तमें जो वीरके कर्म कहे हैं, वे ये हैं—

१ ते परमं इंद्रियं अधारयन्त (मं. १)- तेरे श्रेष्ठ बलको धारण किया, अर्थात् तुममें यह बल बहुतही है ।

२ समना इव कंतुः- युद्धमें ध्वज लड़ा करते हैं, वैसा तेरा बल दूरसे प्रकट होनेवाला है ।

३ अहिं, रौहिणं, न्यस्तं अहन्, अभिनत् (२)- अहि, रौहिण और दूरे कन्धोंवाले वृत्रको काटा, मारा या बध किया ।

४ दासीः पुरः विभिन्दन् (३)- शत्रुकी नगरियोंको तोड़ा,

५ दस्यवे हेति अस्य- शत्रुपर हथियार छोड़ दिया ।

६ आर्यं सहः युजं वर्धय- आर्यके बल, सामर्थ्य और तेजको बढ़ाया ।

७ अयज्वनः वेदः वि भजन् पति (१)- करनेवाले शत्रुके धनको प्राप्त कर यज्ञ करनेवालोंको दे यज्ञ का अर्थ 'श्रेष्ठों का सरकार, जनताकी संप्रदत्ता और सहायता करनेका शुभ कर्म' है । वीर इस कर्मको प्रकट करे ।

८ ससन्तं अहिं वज्रेण अघोषयः (७)- वो अहि नामक शत्रुपर वज्र मारकर उसे जगाया और युद्धमें उसका बध किया (तत् वीर्यं) वह इन्द्रका बड़ा सा कार्य था ।

९ शुष्ण, पिपु, कुयव, वृत्र, शंबर ये शत्रुके नाम मंत्रमें हैं, इनको इन्द्रने मारा है । पिपु, शंबर, शुष्म ये क्र. १।१०।१२ में आये हैं । पूर्व सूक्त देखो । शंबरके तोड़नेका वर्णन यहाँ है ।

पूर्व सूक्तोंके साथ यह सूक्त देखनेयोग्य है ।

(९) वीरता

(क्र. १।१०४) कुत्स आह्निरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

योनिष्ठ इन्द्र निषदे अकारि तमा नि पीद स्वानो नार्या ।

विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वह्नीयसः प्रपित्वे

ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित् तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।

देवासो मन्युं दासस्य श्रमन् ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम्

अन्वयः- १ (हे) इन्द्र ! ते नि-सदे योनिः अकारि, दोषा वस्तोः प्र-पित्वे वह्नीयसः अश्वान् अव-साय वयः वि-मुच्या स्वानः नार्या न तं आ नि पीद ॥

२ त्ये नरः ऊतये इन्द्रं ओ गुः । (इन्द्रः) तु चित् सद्यः तान् अध्वनः जगम्यात् । देवासः दासस्य मन्युं श्रमन्, ते सुविताय वर्णं नः आ वक्षन् ॥

अर्थ- १ हे इन्द्र ! तेरे बैठनेके लिये स्थान हमने बना है, रात और दिनमें यज्ञका समय प्राप्त होनेपर के बनेवाले घोड़ोंको छोड़कर और लगामकी रस्सी मुँहसे छोड़कर तू शब्द करनेवाले घोड़ेके समान उसपर आकर बैठ ॥

२ वे लोग अपनी रक्षाके लिये इन्द्रके पास पहुँचे । शीघ्र उसी समय उन्हें मार्गपर पहुँचा दिया (रक्षाका मार्ग प्रदान किया) । देवलोग असुरके कोथको खा जायें, वे प्रेमके लिये अनियंत्रित इन्द्रकी दृष्टिसे पान ले लायें ।

[६. १००]

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
 क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः
 युयोप नाभिरुपरस्यायो प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
 अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते
 प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
 अध स्मा नो मघवश्चकृतादिन्मा नो मघेव निष्पपी परा दाः
 स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्सवनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
 मांस्तन्त्रां भुजमा रीरियो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय
 अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
 मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यन्मयो वय आसुतिं दाः

३

४

५

६

७

केतवेदाः त्मना अव भरते । उदन् फेनं त्मना अव
 ३. कुयवस्य योषे क्षीरेण स्नातः, ते शिफायाः प्रवणे
 जान् ॥

रुपरस्य नाभयोः नाभिः युयोप । शूरः पूर्वाभिः प्र
 राष्टि (च) । उद-भिः हिन्वानाः अञ्जसी कुलिशी वीर-
 पत्नः भरन्ते ॥

५. इन्द्र स्या नीथा प्रवि अदर्शि जानती ओकः न दस्योः
 ६. भज गात् । (हे) मघ-वन् ! अध स्त चकृताव नः
 ७. इन्द्र । निष्पपी मघा-इव नः मा परा दाः ॥

८. इन्द्र ! सः त्वं सूर्ये, सः अप्सु, अनागा-स्ये,
 ९. इन्द्र ! ते नः आ भज । ते महते इन्द्रियाय श्रद्धितं (अतः)
 १०. भुजं मा आ रीरिपः ॥

११. इन्द्र ! अध मन्ये ते अस्मै श्रत् अधायि । (त्वं)
 १२. महते धनाय चोदस्व । (हे) पुरुहूत ! अकृते योना
 १३. दाः (धाः) । क्षुध्यन्मयो वय आसुतिं दाः ॥

३ धनको जाननेवाला कुयव अपनी शक्तिये उनका धन
 छीन लाता है । वह जलमें स्थित होकर फेन युक्त जलको
 अपनी शक्तिये अपने अधीन कर रहा है । कुयवकी दोनों
 स्त्रियों जलमें स्नान कर रही हैं । हे इन्द्र ! वे दोनों नदीके
 बहावमें कदाचित् मर जायेंगी ॥

४ पत्थरपरसे जानेवाले कुयवका स्थान छिपा हुआ था ।
 वह वीर (कुयव) पूर्वाभिमुख जलोंमें तैरता था और तेजस्वी हो
 रहा था । जलोंसे स्वयं वृष होनेवाली सुन्दर परन्तु वज्रके समान
 वीरोंकी पालिका (नदियाँ) उस कुयवसे जल छीन लाती हैं ॥

५ जब वह ले जानेवाला पदचिन्ह दिखाई दिया, तब
 वह, मार्गको जाननेवाली गाय जैसे अपने पर पहुँच जाती है
 वैसे दस्युके धरकी ओर जा पहुँची । हे ऐश्वर्यवाले ! अब, तू
 बार-बार उपद्रव करनेवाले असुरसे हमारी रक्षा कर । त्रैलोक्य
 जैसे धनको देता है वैसे तू हमें अपनेसे दूर मत कर ॥

६ हे इन्द्र ! वह तू सूर्यमें, वह तू जलमें, पाप-रहित दर्भमें
 और जीव जिधकी प्रशंसा करने हैं, ऐसे धर्ममें हमें आश्रय दे ।
 तेरे महान् बलके लिये हमारे भीतर भ्रष्टा उत्पन्न हुई है,
 इसलिये तू हमारे पक्ष रहनेवाली प्रजाको रक्षा मत कर ॥

७ हे इन्द्र ! निश्चय मैं जानता हूँ, तेरे इस बलके लिये
 विशाल भारण किया गया है (लोग तेरे बलपर विश्वास
 करते हैं) । तू शनैः शनैः हमें विजित करने लिये प्रेरणा
 कर । हे इन्द्र ! तेरे मुखसे ऐसे शब्द ! स धन-रहित स्थानमें हमें
 मत्त जान, किन्तु मुख-पद्मसे लोगोके लिये भी अन्न और रक्ष
 देता रह ।

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
 आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ८
 अर्वाङ्गिहि सोमकामं त्वाऽऽहुरयं सुतस्तस्य पित्रा मदाय ।
 उरुव्यचां जठर आ वृषस्व पितेव न शृणुहि ह्यमानः ९

८ (हे) इन्द्र ! नः मा वधीः, परा दाः मा । नः प्रिया भोजनानि मा प्र मोषीः । (हे) मघ-वन् शक्र ! नः आण्डा मा निः भेत् । नः सह-जानुषाणि पात्रा मा भेत् ॥

९ (हे इन्द्र !) त्वा सोम-कामं आहुः, अयं सुतः, अर्वाङ्गि आ इहि, तस्य मदाय पितृ । उरु-व्यचाः जठरे आ वृषस्व । ह्यमानः पिता-इन नः शृणुहि ॥

८ हे इन्द्र ! हमें मत मार और हमें अपनेसे दूर भी मत कर । हमारे प्रिय भोजनोंको मत छीन । हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! हमारे गर्भगत बच्चोंको मत नष्ट कर । हमारे जानुसे वाले बच्चोंके साथ योग्य सन्तानोंको भी मत नष्ट कर ।

९ हे इन्द्र ! लोग तुझे सोमरसकी कामनावाला कहते हैं यह सोम बना हुआ है, तू उसके पास आ और उसे अपने लिए पी । अपने पेटमें बड़ा स्थान बनाकर उसमें सोम डाल । बुलाये जानेपर पिताके समान हमारी बात सुन ।

शूर वीर इन्द्र

इस सूक्तमें शूरवीर इन्द्रका वर्णन है । इसका अर्थ सुबोध होनेसे इसके वाक्य लेकर मनन करनेका कोई प्रयोजन नहीं है । तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें कुयव नामक शत्रुको परास्त कर-

नेका वर्णन है । उसकी दो स्त्रियां हैं, वे उसकी सहायता करती हैं । वृत्रके समानही यह कुयव भी जलप्रवाहोंको अपने कारमें रखता है, इसलिये इन्द्र उसका वध करके जल-होंको खुला करता है । सातवें और आठवें मंत्रमें अपनी क्षाके लिये प्रार्थना है । शेष मंत्रभाग सुगम है ।

यहां इन्द्र-प्रकरण समाप्त हुआ ।

[३] विश्वे दैव-प्रकरण

(१०) अनेक देवताओंकी प्रार्थना

(ऋ. १।१०६) कुत्स ऋषिरसः । विश्वे देवाः । जगती; ७ त्रिष्टुप् ।

- इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
 रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन १
 त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
 रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन २
 अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
 रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ३
 नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुमैरीमहे ।
 रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ४
 वृहस्पते सद्मिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत् ते मनुहितं तदीमहे ।
 रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ५

प्रार्थना- १ (वयं) ऊतये इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं,

अदितिं (व) हवामहे । हे सुदानवः वसवः !

हे अंहसः, दुर्गाद् रथं न, नः निः पिपर्तन ॥

आदित्याः देवाः । ते (ययं) सर्वतातये आ गत ।

शंभुवः भूत ॥॥

प्रवाचनाः पितरः नः अवन्तु । उत देवपुत्रे ऋता-

वृधा (नः अवतान्) ॥॥

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह, क्षयद्वीरं पूषणं सुमै-

॥

वृहस्पते ! सद्मिन्नः सुगं कृधि । योर्यत् (व) ते

मनुहितं तदीमहे ॥॥

६ (३२७)

अर्थ- १ (हम सब) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुतोंका संप, तथा अदिति की प्रार्थना करते हैं । हे उतान दान करनेवाले वयु देवो ! अब संक्षेप, जिन गरुड कठिन मार्गसे रथ को संभावितर चलाने हैं, उत गरुड हम सबको पार करो ।

२ हे आदित्य देवो ! हे शंभुवः भूत () तुम्हारे लिये अजो ! जगतीके यज्ञ करनेके लिये आदित्य देवो !

३ उतमः पितरः पितरः उत देवपुत्रे ऋतावृधा । नः अवतान् (नः अवतान्) ॥॥

४ नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह, क्षयद्वीरं पूषणं सुमैरीमहे ।

५ वृहस्पते ! सद्मिन्नः सुगं कृधि । योर्यत् (व) ते मनुहितं तदीमहे ॥॥

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपातिं काटे निवाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
 रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ६
 देवैर्नो देव्यादितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ७

६ काटे निवाळ्हः कुत्सः ऋषिः उतये वृत्रहणं शचीपातिं
 इन्द्रं अह्वत् । हे सुदानवः वसवः । विश्वस्माद् अंहसः,
 दुर्गात् रथं न, नः निः पिपर्तन ॥

७ देवी अदितिः देवैः नः नि पातु । त्राता देवः अप्रयु-
 च्छन् (नः) त्रायताम् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः
 सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

६ कुवेमें पडा हुआ कुत्स ऋषि अपनी सुरक्षा के लिये
 नाशक तथा शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना करता रहा । हे
 दान देनेवाले वसु देवों ! सब संकटोंसे, जैसे कठिन मार्ग
 चलाते हैं, वैसे हम सबको पार करो ॥

७ देवी अदिति देवोंके साथ हमारी सुरक्षा करे ।
 देव दुर्लक्ष्य न करता हुआ हमारी सुरक्षा करे । हमारे
 ध्येय मित्रादि देव विद्वत् करनेमें सहायक हो ॥

(११)

(अ. १।१०७) कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुन्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
 आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तराऽसत् १
 उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
 इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्गिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् २
 तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत् सविता चनो धात् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ३

अन्वयः— १ यज्ञः देवानां सुन्नं प्रति एति । हे आदि-
 त्यासः ! मृळयन्तः भवत । वः सुमतिः अर्वाची आ ववृ-
 त्यात्, या अंहोः चित् वरिवो-वित्तरा असत् ॥

२ अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः देवाः अवसा नः उप
 आ गमन्तु । इन्द्रः इन्द्रियैः, मरुतः मरुद्भिः, अदितिः आदित्यैः
 नः शर्म यंसत् ॥

३ तत् चनः नः इन्द्रः, तत् वरुणः, तत् अग्निः, तत्
 अर्यमा, तत् सविता धात् । तत् नः मित्रः वरुणः अदितिः,
 सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

अर्थ— १ यज्ञ देवोंकी शुभवृद्धि प्राप्त करता है ।
 आदित्यो ! आप हमें सुख देनेवाले बनो । आपको डम
 हमारे पास आजावे, जो संकटोंसे बचाती और उत्पन्न
 (ना यज्ञ) देती है ।

२ अङ्गिरसोंके सामोंसे प्रशंसित हुए देव सुरक्षा के लिये
 हमारे पास आ जायें । इन्द्र अपनी शक्तियोंके, मरुतोंके
 तथा अदिति आदित्योंके साथ हम सबको सुख देवें ॥

३ वह मधुर अन्न हम सबको इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा
 सविता देवें । और इस हमारी इच्छाका अनुमोदन मित्र
 आदि देव करें ॥

भी मनुष्य अनेक दुःख भोग करता है और मरता होता है। इस-
लिये अवस्थाने मानव को आनन्द करना है। परन्तु स्वर्ग
इन्द्र और अश्विनरश्मि रश्मिवादी यह मनको पराङ्मुख करता
है। अतः इन्द्रो मनो मेमात्रकर रश्मि इमे योग्य है।

‘प्राता देवः अमयुज्यन् नः प्रायतां’- तारक और
शत्रु रश्मि इस मनको सुरक्षा करे। सुरक्षा करनेके लिये
पर जो नियुक्त हो वह महा मानव और महा रक्षक है। रक्ष-
न रश्मिवाता कदापि रक्षक का कार्य नहीं कर सकता।

अ. १११०७ मूलके मंत्रोक्त अत्र विचार करते हैं। इन
मूलके प्रथम मंत्रमें कहा है कि ‘देवानां सुप्तं प्रति प्रति’
देवोंकी शुभ सुप्ति प्राप्त करो, आचरण ऐसा करो कि जिसमें
अश्विनकी सदानुभूति मिले। देव वशनेमें यह विधि नहीं होगी,
प्रायतः यज्ञमानेमें ही यह शुभ सुप्ति प्राप्त हो सकती है।

यही मंत्र देव परकर प्रमाण है।

‘मृज्यन्तः भवन्’- मृज्यन्तः भवन्, मृज्यन्तः भवन्
देवो न भवन्। मृज्यन्तः भवन्तः भवन् और मृज्यन्तः भवन्
भवन्तः भवन्। इसीको मृज्यन्तः भवन् कहा है।

‘सुमतिः अंशः अश्विनो विलसा अस्तु’- सुम-
ति है कि जो प्राण और अश्विन नाना और प्रथम प्र-
थम देवो है। यही मन मृज्यन्तः भवन् है।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि ‘देवा अजसा नः उपाय-
स्तु’- देव हमारे पास प्राणी शुभ परस्पर शक्तिमें प्राण
और हमारी सुरक्षा करे। जो मनको सुरक्षा करते हैं वे ही देव
कहाते हैं। तृतीय मंत्रमें अनेक देवताओंकी सदानुभूति प्राप्त
करनेका आदेश है। देवताओंकी सदानुभूति देवी लेनी होती
है इस विषयमें इसी देवताके विवरणमें प्रारम्भ ही किया है।

[४] इन्द्राग्नी-प्रकरण

(१२) शत्रुनाशक और अमणी वीर

(अ. १११०८) कुल आह्वितः। इन्द्राग्नी। त्रिदुषः।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चटे।

तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिवतं सुतस्य

यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुद्व्यचा वरिमता गभीरम्।

तावौ अयं पातवे सोमो अस्त्वरामिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम्

अन्वयः- १ हे इन्द्राग्नी। वां चित्रतमः यः रथः
विश्वानि भुवनानि अभि चटे। तेन सरथं तस्थिवांसा आ
यातं। अथ सुतस्य सोमस्य पिवतम् ॥

२ इदं विश्वं भुवनं यावत् उरुद्व्यचा वरिमता गभीरं
अस्ति, हे इन्द्राग्नी ! युवाभ्यां पातवे सोमः तावत्, मनसे
अरं अस्तु ॥

अर्थ- १ हे इन्द्र और अग्नि ! आपका विलक्षण वह रथ
(हे जो) सब भुवनोंको देखता है। उस रथमें इच्छे बैठकर
(तुम दोनों यहाँ) आओ। और सोमका निचोड़ा हुआ रस
पीओ ॥

२ यह सब विश्व जितना विस्तृत और उत्तम गंभीर है,
हे इन्द्र और अग्नि ! तुम्हारे पीनेके लिये (तैयार किया हुआ
यह) सोमरस वैसा (ही है, यह तुम्हारी) इच्छाके लिये वह
पर्याप्त हो ॥

कुत्स श्रमिका दर्शन

[१, ६, १०८]

- चक्राथे हि सधयः१ङ्गाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः । ३
- ताविन्द्राग्नी सधयश्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ३
- समिद्धेष्वग्निष्वानजानां यतसुचा बर्हिर्ह तिस्तिराणा । ४
- तीत्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ४
- यानीन्द्राग्नी चक्रधुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि । ५
- या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिवतं सुतस्य ५
- यदत्रवं प्रथमं वां वृणानो३ ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः । ६
- तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ६
- यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा । ७
- अनः परि वषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ७

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ८

यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ९

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १०

यदिन्द्राग्नी दिवि ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोपधीष्वन्सु ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ११

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १२

एवेन्द्राग्नी पापिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १३

८ हे इन्द्राग्नी ! यत् यदुषु, तुर्वशेषु, यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु स्थः, अतः हे वृषणौ ! परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

९ हे इन्द्राग्नी ! यत् अवमस्यां मध्यमस्यां उत परमस्यां पृथिव्यां स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१० हे इन्द्राग्नी ! यत् परमस्यां मध्यमस्यां अवमस्यां पृथिव्यां स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

११ हे इन्द्राग्नी ! यत् दिवि, यत् पृथिव्यां, यत् पर्वतेष्वोपधीष्वन्सु स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१२ हे इन्द्राग्नी ! उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे, अतः हे वृषणौ ! परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१३ हे इन्द्राग्नी ! सुतस्य एव पापिवांसा अस्मभ्यं विश्वा धनानि सं जयतं । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मनइन्वान् ॥

८ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों यद्, तुर्वश, द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु (के यज्ञोंमें) होंगे, तो वहांसे हे बलवान् देवो इधर आओ, और सोमरस पीओ ॥

९ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम नीचले, बीचके और ऊँचे भूमिभागमें होंगे, तो हे बलवान् देवो ! वहांसे इधर आओ और यह सोमरस पीओ ॥

१० हे इन्द्र और अग्नि ! तुम ऊपरके बीचके और नीचेके भूमिभागमें होंगे, तो वहांसे इधर आओ और इस सोमरसका पान करो ॥

११ हे इन्द्र और अग्नि ! जो तुम दोनों बुलोकमें, पर्वतों, औपधियोंमें अथवा जलोमें होंगे, तो हे बलवान् देवो ! वहांसे यहां आओ और इस सोमरसका पान करो ॥

१२ हे इन्द्र और अग्नि ! सूर्य उदय होनेपर दुलोकमें मध्यमें (बैठकर) अक्षसेवनका आनंद लेते होंगे, तो हे बलवान् देवो ! यहां आओ, और सोमके रसका पान करो ॥

१३ हे इन्द्र और अग्नि ! सोमरसका पान करके हमें प्रभारके धन ज्ञात कर देओ । हमारा इस इच्छाको मित्र और देव सहायक हों ॥

(१३)

(अ. १।१०९) कुत्स आंगिरसः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप् ।

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।

नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मद्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् १

अथर्वं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।

अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् २

मा च्छेद्म रश्मीरिति नाधमानाः पितृणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।

इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यग्नी धिषणाया उपस्थे ३

युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।

तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ४

अन्वयः— १ हे इन्द्राग्नी ! वस्यः इच्छन् ज्ञासः उत
सजातान् मनसा वि हि अख्यम् । मद्यं युवत् अन्या
नस्ति । सः वां वाजयन्तीं धियं अतक्षम् ॥

२ हे इन्द्राग्नी ! विजामातुः उत वा स्यालात् घ वां
भूरिदावत्तरा अथर्वं हि । अथ युवाभ्यां सोमस्य प्रयती नव्यं
जनयामि ॥

३ रश्मीन् मा च्छेद्म इति नाधमानाः, पितृणां शक्तीः

अनुयच्छमानाः वृषणः इन्द्राग्निभ्यां कं मदन्ति । हि अग्नी

धिषणाया उपस्थे ॥

४ हे इन्द्राग्नी ! युवाभ्यां मदाय देवी उशती धिषणा

सुनोति । हे अश्विना ! भद्रहस्ता सुपाणी तौ आ

धावतं, मप्सु मधुना पृङ्क्तम् ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र और अग्नि ! अभीष्ट-प्राप्तिकी इच्छा करता हुआ मैं, कोई ज्ञानी और जातिबंधव (सहायार्थ मिलेंगे ऐसा) मनसे (विचार करके) देख रहा हूँ । मेरे विषयमें तुम्हारी कोई विभिन्न बुद्धि नहीं है । वह (मैं) तुम्हारे सामर्थ्यका वर्णन करनेवाला स्तोत्र बनाता हूँ ॥

२ हे इन्द्र और अग्नि ! आप घुरे दामाद अथवा सालेमे भी अधिक दान करनेवाले हैं ऐसा मैं सुनता हूँ । तुम दोनोंके लिये सोमरसका अर्पण करके, नवीन स्तोत्र निर्माण करता हूँ ॥

३ 'हमारे (संतानरूपी) किरणोंका विच्छेद न हो' ऐसी प्रार्थना करनेवाले, तथा 'पितरोंकी शक्ति (वंशजोंमें) अनुवृत्ततासे रहे, ऐसी इच्छा करनेवाले बलवान् (नीर) इन्द्र और अग्नि (वृषासे) सुख आनन्दसे प्राप्त करते हैं' (यह हमें पता है । इनलिये उन देवोंकी सोमरस देनेके लिये वे) दो पत्थर सोमपात्रोंके समीप (ही) रखे हैं । जिनसे रस निकाल कर दिया जाएगा ।)

४ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम्हारे स्तोत्रके लिये दे दाम सोमपात्र सोमरस निकालकर (भरकर रख दें) । हे उन्नत दामवाले चक्षुष्य करनेवाले और घेतोम करनेवाले देव ! शीघ्रते हुए दामर आओ और अग्निमे इस मधुर रसको मिखा दो ॥

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
 तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ५
 प्र चर्षणिभ्यः पूतनाह्वेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
 प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ६
 आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
 इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ७
 पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ताऽस्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ८

५ हे इन्द्राग्नी ! वसुनः विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
 तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य,
 प्र चर्षणी मादयेताम् ॥

६ हे इन्द्राग्नी ! पूतनाह्वेषु चर्षणिभ्यः मदिरा प्र रिरि-
 चाथे दिवश्च, प्र, दिवः च, सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः प्र,
 आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी (नमो रिरिचाथे) ॥

७ हे इन्द्राग्नी ! आ भरतं, शिक्षतं, अस्माँ इन्द्राग्नी
 वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी नः पितरो सपित्वं आसन्, ते
 इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥

८ हे इन्द्राग्नी ! शिक्षतं, भरेषु अस्मान्
 पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ताऽस्माँ इन्द्राग्नी सिन्धुः पृथिवी उत
 द्यौः ॥

इन्द्र और अग्नि के वर्णन में बर्हिषि का अर्थ

इन्द्र और अग्नि के वर्णन में बर्हिषि का अर्थ है । आसद्यः
 बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य, प्र चर्षणी मादयेताम् ॥
 प्र चर्षणिभ्यः पूतनाह्वेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
 प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥
 आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
 इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥
 पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ताऽस्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

५ हे इन्द्र और अग्नि ! धन का बंटवारा करने के लिये
 तथा युद्ध का वध करने के लिये के समय आप दोनों सबके लिये
 वेग (दशांते हैं) ऐसा हम सुनते हैं । हे पूतीनाह्वेषों !
 आप दोनों इस यज्ञ में आसनपर बैठकर, सोमरस को
 प्राप्ता करो ॥

६ हे इन्द्र और अग्नि ! युद्धार्थ आहुत करनेवाले को
 अपेक्षा महत्त्वसे तुम अधिक श्रेष्ठ हो । तथा पृथिवी, पृथु-
 नदियाँ, पर्वत तथा ओ अन्य भुवन हमें, हमें भी (हमारे
 प्रभावमें अधिक हैं) ।

७ वज्रके समान जिनके बाहु बलवान् हैं, ऐसे हैं इन्द्र
 अग्नि ! धन (हमारे घरोंमें) भर दो, (हमें) मित्रा से
 हमें आमन्त्र्यसे सुरक्षित करो । जिनके साथ हमारे मित्र
 हैं, वेही सर्वके किण्वे हैं ॥

८ हे इन्द्र और अग्नि ! हमें शिक्षित करो, युद्धमें हमें युक्त
 करो । हम दसरी इच्छाको मित्र आदि न पश्याता ॥

ऐसा है । ये दो और पुरुष हैं और ये दोनों मित्र हैं
 हमें दोही माननीय करवाया होता है ।

इस दोनों पुरुषों के मध्य २३ हैं, और दो और
 दो इन्द्र और अग्नि दोनों के मध्य १० हैं । इसमें दो और अग्नि
 मध्य अग्नि और अग्नि हैं दो न दो १० ऐसा कहा है ।
 अद्वय कुशाता और उनका महत्त्व करने के लिये
 इन्द्र और अग्नि दोनों के मध्य २३ हैं ।
 अद्वय दो पुरुषों के मध्य २३ हैं ।

अव देखिये कि ये क्या करते थे—

एषः चित्रतमः, विश्वानि भुवनानि अभि
स्थिवांसा तेन सरथं आ यातम् (मं. १)—

एष अर्थात् सुन्दर है, उसपर बैठनेवाला सब भुवनोका
रहा है, उसमें बैठते हुए तुम दोनों इधर आओ।
ये वीर एकही रथमें बैठते और सब भुवनोका निरी-
क्षते थे, तथा इनका रथ सुन्दर था। इसी तरह वीर
रथपर बैठे और सब देशों और प्रान्तोंका निरीक्षण

एवं विश्वं भुवनं उरुव्यचा वरिमता गभीरं
त (१)— यह सब भुवन विस्तृत और गहन तथा गभीर
यही इसकी गभीरता देखनी चाहिये। वीर इसीका निरी-
क्षते हैं।

नामभद्रं सधयङ् चक्रार्थे (३)— वीरोंको
है कि वे अपना नाम जनताके कल्याण करनेके कार्यमें
लौकिक प्रसिद्ध करें।

वृत्रहणा स्थः— धरनेवाले शत्रुका ये वीर वध
करते हैं।

समिद्धेषु अग्निषु आनजाना (४)— प्रदीप्त अग्निमें
होते हैं। यह आत्मसमर्पणका पाठ है। जिस तरह प्रदीप्त
अग्निमें हवि अर्पित जाता है, उस तरह वीर जनताके कल्याण
के लिये अपना समर्पण करें।

यानि वीर्याणि चक्रयुः (५)— ये वीर पराक्रम
करते हैं, पराक्रम करनाही वीरोंका स्वभाव है।

वृण्वानि रूपाणि चक्रयुः— बलवान् रूप बनाते
हैं, अर्थात् अपने शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ बनाते हैं।

स स्या प्रत्नानि शिवानि— इन वीरोंकी मित्रता
लौकिक और कल्याण करनेवाली होती है। एकबार इनकी
मित्रता हुई तो उससे स्थायी कल्याण होता है।

सर्वे दुरोणे, ब्रह्मणि राजनि वा मदयः (७)—
वीर अपने घरमें (अपने देशमें) शत्रुके विषयमें अथवा
अपने कार्यमें आनन्दित होते हैं। वीरोंकी आनन्द-
भाव देखिये—

१० ये वीर यदु, पूर्वश, दुश्शु, अनु और पुन नामक
देशोंमें रहकर उनकी सहायता करते हैं। ये नाम देश-विदेश-
के हैं। वीरोंकी आनन्द-भाव देखिये—

और ये विशेषण मानते हैं। (यदु) अहिंसक, (तुर्वश) शिष्ट, (दुश्शु) द्रोहकारी, (अनु) प्राणके बलसे युक्त, (पुन) नगरोंमें रहनेवाले नागरिक, इन पांच प्रकारके लोगोंमें ये वीर रहते हैं और उनकी उन्नतिके लिये यत्न करते हैं। अथवा ये पंचजनोंके वाचक पद कई मानते हैं। ये वीर इन पांच वर्णोंके मानवोंका हित करनेका यत्न करते हैं, यह भाव यहाँ है।

११ पृथ्वीके निज, मध्य, ऊँचे प्रदेशमें ये वीर जाते हैं और
वहाँके जनताका उद्धार करते हैं। सभी प्रदेशमें रहनेवाले मानवों-
की सेवा करते हैं, यह भाव मंत्र ९ तथा १० के मंत्रार्थ है।
दोनों मंत्रोंका भाव एकही है। स्थानोंके नामोंमें क्रमभेद है।

१२ आकाश, पर्वत, पृथिवी, औषधि, जलस्थान आदिमें
ये वीर जाते हैं। आकाशमें संचार विमानोंसे होता है। इन
सब स्थानोंमें ये वीर जाते हैं और सब स्थानोंकी सुरक्षा करते
हैं। (११)

१३ उदिता सूर्यस्य दिवः मध्ये स्वधया मादयन्ते
(मं. १२)— सूर्यका प्रकाश होनेपर सूर्यप्रकाशमें रहते, स्नानगान
करते और आनन्द मानते हैं। वीरोंका यही कार्य है। वीरोंका
यही स्वभाव है। सुले स्थानोंमें ये खेलते, कूदते, खाते, पीते और
आनन्दसे विचरते हैं।

१४ विश्वा धनानि सं जयतम् (१३)— सब धन
मिलकर जीतकर लाओ। वीर ऐसाही निककर विजय पाते
और धन लाते हैं। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके १०८ वे सूक्तमें
वीरोंके वर्णनमें ये कार्य वीरोंके बताये हैं। सभी स्वर्गदेवता
वीर ये धर्म करके जनताकी सेवा कर सकते और अपने जीवन
यशस्वी कर सकते हैं। अब द्वितीय सूक्तका (ऋ. ११.१०९)
भाव देखिये—

(ऋ. ११.१०९)

१५ वस्यः इच्छन् शस्त्रः उत सज्जान् मनसा
वि भक्ष्यम् (१)— धनही इच्छा करता हुआ मैं मनो
और सज्जितोंकी मददकी अपेक्षा करता हूँ। यह भाव
वीरोंकी सुरक्षामें रहते हुए ही निकल आता है। यदि धन प्राप्त
करनेकी इच्छा है, तो प्रथम सज्जितोंकी सहायतासे धन प्राप्त करना
चाहिये और सज्जितोंकी मददमें हमारी सहायता
चाहिये।

१६ याजमर्तोधिरे जनक्षम्— यह यजमर्तोधिरे
विमान करती चाहिये। दुश्शु देशों के लिये कि जिससे यजमर्तोधिरे

[५] बहुमु-प्रकरण

(१४) ऋभु-कारीगर

(क १११०) कुत्स बाहिरसः । ऋभवः । जगती; ५, ९ त्रिष्टुप् ।

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्टा धीतिरुचधाय शस्यते ।

अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः १

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।

सौधन्वनासश्चित्तस्य भूमनाऽगच्छत सवितुर्दागुपो गृहम् २

तत् सविता वोऽमृतत्वमासुवद्गोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।

त्वं चिच्चमत्तमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ३

विद्वी शमी तरणित्वेन वायतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।

सौधन्वना ऋभवः मूरक्षसः संवत्सरे समपृचयन्त धीतिभिः ४

अन्वयः— १ हे ऋभवः ! मे अपः ततं, तत् उ पुनः । ततं । स्वादिष्टा धीतिः उचधाय शस्यते । अयं समुद्रः विश्वदेव्यः । स्वाहाकृतस्य तं उ तृप्णुत ॥

२ अपाकाः प्राञ्चः मम आभयः के चिद् आभोगयं ऐतनः यद् ऐतन । हे सौधन्वनासः ! चरितस्य भूमना विद्वानः सवितुः गृहं अगच्छत ॥

३ तत् सविता यः अमृतत्वं आसुवद्, यद् अमृतं यः सविता यः अमृतत्वं आसुवद्, यद् अमृतं यः सविता यः अमृतत्वं आसुवद्, यद् अमृतं यः सविता यः अमृतत्वं आसुवद् ॥

४ सविताः शमी तरणित्वेन विद्वी मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः । सौधन्वनाः मूरक्षसः संवत्सरे समपृचयन्त धीतिभिः ॥

अर्थ— १ हे ऋभुदेवो ! मेरा अपः ततं, तत् उ पुनः । ततं । स्वादिष्टा धीतिः उचधाय शस्यते । अयं समुद्रः विश्वदेव्यः । स्वाहाकृतस्य तं उ तृप्णुत ॥

२ अपाकाः प्राञ्चः मम आभयः के चिद् आभोगयं ऐतनः यद् ऐतन । हे सौधन्वनासः ! चरितस्य भूमना विद्वानः सवितुः गृहं अगच्छत ॥

३ तत् सविता यः अमृतत्वं आसुवद्, यद् अमृतं यः सविता यः अमृतत्वं आसुवद्, यद् अमृतं यः सविता यः अमृतत्वं आसुवद्, यद् अमृतं यः सविता यः अमृतत्वं आसुवद् ॥

४ सविताः शमी तरणित्वेन विद्वी मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः । सौधन्वनाः मूरक्षसः संवत्सरे समपृचयन्त धीतिभिः ॥

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनैकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।

उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ५

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः सुचेव घृतं जुह्वाम विद्वना ।

तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन् दिवो रजः ६

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।

युष्माकं देवा अवसाऽहनि प्रियेशमि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ७

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।

सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जित्री युवाना पितराकृणोतन ८

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुर्माँ इन्द्र चित्रमा दर्पि राधः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ९

५ उपमं नाधमानाः, अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः
उपस्तुताः ऋभवः जेहमानं एकं पात्रं क्षेत्रमिव तेजनेन वि
ममुः ॥

६ अन्तरिक्षस्य नृभ्यः सुचा इव घृतं मनीषां विद्वना
आ जुह्वाम । ये ऋभवः पितुः अस्य तरणित्वा सश्चिर ।
दिवो रजः वाजं अरुहन् ॥

७ शवसा नवीयान् ऋभुः । नः इन्द्रः वाजेभिः वसुभिः
ऋभुः वसुः ददिः । हे देवाः ! युष्माकं अवसा प्रिये अहनि
असुन्वतां पृत्सुतीः अमि तिष्ठेम ॥

८ हे ऋभवः ! चर्मणः गामे निः आर्पितव, मातरं पुनः
वत्सेन सं असृजत । हे सौधन्वनासः नरः ! स्वपस्यया जित्री
पितरा युवाना अकृणोतन ॥

९ हे इन्द्र ऋभुर्माँ ! वाजसाता वाजेभिः अविद्वि ।
चित्रं राधः आदर्पि । नः वत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः
पृथिवी उत द्यौः अहन्ताम् ॥

५ उपमा देनेयोग्य यशस्वी इच्छा करनेवाले, देवों में
कीर्तिकी इच्छा करनेवाले, प्रशंसाको प्राप्त हुए ऋभु
वर्तें जानेवाले एक पात्रको, क्षेत्रके समान, तीक्ष्ण धारका
शस्त्रसे नापा (और बना दिया) ॥

६ अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन मानव रूपधारी (ऋभुओं)
लिये चर्मसे घृतकी आहुति, मनःपूर्वक की स्तुतिके साथ, अ
र्पण करेंगे । ये ऋभु इस विश्वके पिताके साथ सत्वर
करनेके कारण, रहने लगे, युलोक और अन्तरिक्ष लोकों
बलके साथ आरोहण करने लगे ॥

७ बलसे युक्त होनेके कारण नवीन (जैसा तक्षण) ऋभु
हमारे लिये इन्द्रकी दे । बलों और धनोंके साथ रहनेवाले
ऋभु हमें धनोंके दातेही हैं । हे देवो ! तुम्हारी सुचका
(मुरझित हुए इम) किसी प्रिय दिनमें अवश्यही ऋभुओं
सेनापर विजय प्राप्त करेंगे ।

८ हे ऋभुदेवो ! चर्मवाली (अति ऊँचा) गोकी (तुम्हें)
मुँदररूपवाली बना दो, तब उस गोमानाके साथ बलके
संबंध भी तुम्हें करा दिया । हे युष्माकं पुत्रो ! हे नर
वीरो ! अपने प्रयत्नसे अति बृद्ध मातापिताओंकी तक्षण बल
दिया ॥

९ हे ऋभुओंके साथ इन्द्र ! बलसे पाश्र्वम धर्मके पुत्रों
अपने सामर्थ्यके साथ युध्व जाओ । मिलकर हमें देवों
यह हमारा प्रिय मित्र आदि देवोंके अनुमोदित होने ॥

(१५)

(क. १११११) कुत्स ऋषिरसः । ऋभवः । जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

तक्षन् रथं सुवृतं विद्वानापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वयस्तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् १
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् । २
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम्
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः । ३
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम्
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये । ४
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु । ५
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

मन्वयः— १ विद्वानापसः रथं सुवृतं तक्षन् । इन्द्रवाहाः
वृषण्वसू तक्षन् । पितृभ्यां युवद् वयः ऋभवः तक्षन् ।

अथ मातरं सचाभुवं तक्षन् ॥

१ नः यज्ञाय ऋभुमद् वयः आ तक्षत । क्रत्वे दक्षाय
सुप्रजावतीं इषं (आ तक्षत) । सर्ववीरया विशा यथा क्षयाम

२ इन्द्रियं नः शर्धाय सु धासथा ॥

३ हे नरः ऋभवः ! अस्मभ्यं सातिं आ तक्षत । रथाय
सातिं, अर्वते सातिं (आ तक्षत) । विश्वहा नः जैत्रीं सातिं
सं महेत । पृतनासु जामिं अजामिं सक्षणिम् ॥

४ ऋभुक्षणं इन्द्रं ऊतये आ हुवे । ऋभून् वाजान् मरुतः
उभा मित्रावरुणा अश्विना नूनं सोमपीतये (आ हुवे) । नः
सातये धिये जिषे हिन्वन्तु ॥

५ ऋभुः सातिं भराय सं शिशातु । समर्यजिद् वाजः
अस्मान् अविष्टु । नः तन्नो मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः
पृथिवी उत द्यौः मनहन्ताम् ॥

अर्थ— १ ज्ञानसे कुशल बने (ऋभुदेवोंने) सुंदर रथ निर्माण
किया । इन्द्रके रथको जोतनेयोग्य घोड़े भी बनाये । मातापिता-
ओंके लिये तारुण्यकी आयु दी । और बछड़ेके लिये माताको
उसके साथ रहनेयोग्य बनाया ॥

२ हमें यज्ञ करनेके लिये ऋभुओंके समान तेजस्वी (नित्य
तारुण्यकी) आयु देदो । सत्कर्म करनेके लिये और बल बढानेके
लिये प्रजा बढानेवाला अन्नही हमें देदो । सब पारोंके साथ
और प्रजाके साथ जिस तरह हम निवास कर सकेंगे, वैसा
इन्द्रियसंबंधी बल हमारी संघटनाके लिये हममें उत्पन्न करो ॥

३ हे नेता ऋभुवीरो ! हमें दोगन (मेघनकेदेवता) धन दो ।
रथके लिये शोभा दो, घोड़ेके लिये बल दो । सदा हमें विजय
देनेवाला धन दो । सुझोमें हमारे संबंधी ही अथवा अपरिचित
(सातने ही, हम उनका) पराजय कर छोड़ेंगे ॥

४ ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्रको (हम अपनी)
तुल्यताके लिये उतारते हैं । ऋभु, वाय, मरुत, दोनों मित्र और
वरुण, दोनों अश्विदेव इन सबको सोमरसके लिये हम बुझाते
हैं । हमें वे धनदायक, दुष्टों और विजय प्रदान करें ॥

५ ऋभु हमें यज्ञदान भरपूर करा देवें । समरमें विजयी
वाज हमें लाना देवें । नष्ट हमारा आकाश मित्र अदि देव
करिद्वै करें ॥

उपदेश

१ मे अपः तत्, तत् उ पुनः तायते : (११०।१)- मेरा यह व्यापक कर्म फैल गया है, मैं वहीं कर्म पुनः फैलाऊंगा। 'अपस्' का अर्थ सार्वदेशिक हितका कर्म है, वह कर्म कि जिसका परिणाम सब मनुष्यजातितक अच्छी तरह पहुंचता है, जिससे जनताका हित होता है ऐसा यज्ञकर्म। यह कर्म मैंने अब किया है और फिर भी ऐसाही कर्म करूंगा। मनुष्य वारंवार शुभ कर्म करते रहें।

२ मर्तासः अमृतत्वं आनशुः। (मं. ४)- मर्त्य मानव अमरत्व—देवत्व— प्राप्त करते हैं। प्रयत्नसे देवत्व प्राप्त करना मानवोंका कर्तव्य है।

३ असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम। (मं. ७)- अयाजकोंकी सेनाओंका हम पराभव करेंगे। हम याजक होनेसे हमाराही सर्वत्र विजय होगा।

४ यथा सर्ववीरया विशा क्षयाम, तत् इन्द्रियं नः शर्घाय सु धासथ (१।१११।२)- जिस तरह हम सब वीर प्रजाजनोंके साथ निवास कर सकेंगे, उस तरहका बल हमारे संघके लिये (हम सबमें) स्थापन करो। अर्थात् हमारे चारों

ओर वीरोंका निवास हो, हम भी वीर बनेंगे। इससे सबमें संघका बल स्थापन हो और बड़े। (नः शर्घाय) हमारे संगठनके लिये हमारा बल बड़ जाय। हममें सबमें बल जाय जिससे हमारी संगठना उत्तम रीतिसे बन सके।

५ नः जैत्र्यो सार्ति सं महेत। (मं. १)- हमारे देनेवाले वैभवका सम्मान होता रहे।

६ विश्वहा पृतनासु जामिं भजामिं सश्रुणि (मं. ३)- सर्वदा युद्धोंमें हमारा संबंध हो वा पराशत्रु हो उन सबका हम पूर्ण पराभव करेंगे और हम विजय प्राप्त करेंगे।

७ समर्यंजित् वाजः अस्मान् आविष्टु। (मं. ५) सब शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाला बल हम सबमें हमारा बल ऐसा हो कि जिससे हम सदा विजयी होते रहें।

इस प्रकार इन सूक्तोंमें विजयके निर्देश हैं जो पाठकों के ध्यानमें रखे। इन दोनों सूक्तोंमें ऋभुओंका वर्णन है और उनसे संबंध ऐतरेय ब्राह्मणकी कथाके साथ दीखता है। सविता के इनकी उन्नति करनेमें सहायता दी इत्यादि बातें उक्त सूक्तोंमें साथ देखनेयोग्य है।

यहां ऋभु-प्रकरण समाप्त हुआ है।

[६] अश्वि-प्रकरण

(१६) अश्विदेवोंके प्रशंसनीय कार्य

(ऋ. १।१।२) कुस आद्रिगरसः । १ (आद्यपादस्य) यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीयपादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अदिवनौ; २-२५ अदिवनौ। जगती; २४-२५ त्रिष्टुप्।

ईळे यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं वमं सुरुचं यामन्निटये।

यामिभरे कारमंशाय जिव्वथस्तामिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम्

अन्वयः- १ यामन् इष्टये, पूर्वचित्तये, सुरुचं वमं

भस्ति यावापृथिवी ईळे। दे अश्विना। यामिः कारं भरे

मंशाय जिव्वथः, यामिः ऊतिभिः सु भागवं उ ॥

अर्थ-१ पहिले प्रद्वरमें यज्ञ करनेके लिये, तथा अपना स्थिर करनेके लिये, अच्छी रीतिवाले यज्ञस्वरूप अश्विों के यावापृथिवीकी मैं स्तुति करता हूँ। दे अश्विदेवों! कुशल पुरुषको संग्राममें अपना धनविभाम पानेके लिये करते हो, उन रक्षासाधनोंके साथ तुम दोनों ५१।१।२

कुत्स ऋषिका दर्शन

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
 याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्ठये ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् २
 युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
 याभिर्धेनुमस्वं ? पिन्वथो नरा ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ३
 याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
 याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ४
 याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दशे ।
 याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ५
 याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
 याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ६

याभिः शुचन्ति धनसां सुपंसदं तप्तं धर्ममोम्यावन्तमत्रये ।

याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ७

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं ग्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे क्रुथः ।

याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुश्रतं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ८

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्रतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।

याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ९

याभिर्विष्पलां धनसामथव्यं सहस्रमीळ्ह आजवजिन्वतम् ।

याभिर्विशमश्च्यं प्रेणिमावतं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् १०

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।

कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ११

७ हे अश्विना ! याभिः धनसां शुचन्ति सुपंसदं, तप्तं धर्मं अत्रये ओम्यावन्तं; पृश्निगुं पुरुकुत्सं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

८ हे वृषणा अश्विना ! याभिः शचीभिः ग्रान्धं परावृजं चक्षसे, श्रोणं एतवे प्र क्रुथः, ग्रसितां वर्तिकां याभिः अमुश्रतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

९ हे अजरौ अश्विना ! मधुमन्तं सिन्धुं याभिः असश्रतं, याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं, याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१० हे अश्विना ! सहस्रमीळ्ह आजौ याभिः धनसां अथव्यं विष्पलां अजिन्वतं, याभिः प्रेणिं अश्च्यं वशं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

११ हे सुदानू अश्विना ! औशिजाय दीर्घश्रवसे वणिजे याभिः कोशः मधु अक्षरत्, स्तोतारं कक्षीवन्तं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

७ हे अश्विदेवो ! जिनसे धनदान करनेवाले सुबोध उत्तम घर दिया; तपे हुए कारागृहको अत्रिके लिये खाने दिया; पृश्निगु और पुरुकुत्सको जिनसे सुरक्षित किया, उन साधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

८ हे बलवान् अश्विदेवो ! जिन शक्तियोंसे तुमने अश्वी परावृक्को दृष्टिसेपन्न किया, लंगडे लूलेको चलने दिये बनाया, तथा (भेडियेके मुखसे) प्रस्त चिडियाको निकाल मुक्त किया, उन रक्षासाधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

९ हे जरारहित अश्विदेवो ! मोठे जलवाले नदीको जिनसे तुमने प्रवाहित किया, जिनसे वसिष्ठको सन्तुष्ट किया, जिनसे कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्यका संरक्षण किया, उन रक्षासाधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

१० हे अश्विदेवो ! सहस्रों सैनिकोंकी लड़ाईमें जिन शक्तियोंसे धनदान करनेवाली अधर्वकुलमें उत्पन्न विष्पला तुमने सहायता की, जिनसे प्रेरक अश्वपुत्र वशको सुरक्षित किया, उन रक्षासाधनोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

११ अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! उशिकू पुत्र दीर्घश्रव नामक वणिक्के लिये जिनसे तुमने मधुका भण्डार दिया, मधु कक्षीवान्को जिनसे सुरक्षित किया, उन शक्तियोंसे तुम यहां पधारो ॥

| | |
|--|----|
| याभी रसां क्षोदसोद्गः पिपिन्वथु रनश्वं याभी रथमावतं जिषे । | |
| याभिस्त्रिशोक उम्रिया उदाजत ताभिर्बु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १२ |
| याभिः सूर्य परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् । | |
| याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिर्बु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १३ |
| याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् । | |
| याभिः पूभिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिर्बु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १४ |
| याभिर्वचं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः । | |
| याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिर्बु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १५ |
| याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीपथुः । | |
| याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिर्बु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १६ |
| याभिः पठर्वा जठरस्य मज्जनाग्निर्नादीदेचित्त इन्द्रो अज्मन्ना । | |
| याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिर्बु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १७ |

१२ हे अश्विदेवो ! तुमने जिनसे नदीको जलसे किनारोंको

तोडनेवाली बना दिया, जिनसे घोड़ेरहित रथको विजय पाने-

योग्य सुरक्षित बना दिया, त्रिशोक जिनसे गौर्वें पासछा, उन

शक्तिशाले तुम यहां पधारो ॥

१३ हे अश्विदेवो ! दूर गये सूर्यके चारों ओर जिनसे तुम

जाते हैं, क्षेत्रोंका संरक्षण करनेके काममें मन्धाताको तुमने

सुरक्षित रखा, जिनसे ज्ञानी भरद्वाजको तुमने रक्षा की, उन

शक्तियोंसे तुम यहां पधारो ॥

१४ हे अश्विदेवो ! शम्बरका घर करनेके बुद्धिमें जिनसे

अतिथिग्न कशोजुव, और पठर्वादिनासकी तुमने रक्षा की,

जिनसे अनरस्तुकी शत्रुके नगर तोडनेके बुद्धिमें महाधना की,

उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१५ हे अश्विदेवो ! जिनसे नीम पतिशाले खुल बरसो,

जिनसे विचलित कटिसे तुमने सुरक्षित रखा और जिनसे पीरसे

मिथुने पृथिवीरत्न की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१६ हे अश्विदेवो ! जिनसे शत्रुको, जिनसे अग्निदेव,

जिनसे मनुष्य, एवं मनमें तुमने भागे बनाया, जिनसे स्यूमर-

श्मिकी शत्रुके साथ पीरित किया, उन शक्तियोंके साथ

तुम यहां पधारो ॥

१७ हे अश्विदेवो ! पठर्वा जिनसे मज्जना, शारीराजकी

जिनसे शरीरके अन्दर छतरी के घर करने योग्य बुद्धिमें

बुद्धिमें अग्निने मज्जना किया, तुमने महाधने जिनसे अग्नि-

रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१८ हे अश्विदेवो ! इन्द्रः पितः अग्निः न, पठर्वा याभिः

मज्जन् जठरस्य मज्जना आ अश्विदेव, मज्जये याभिः

शर्यातं मवथः, याभिः ऊतिभिः तु भागतं उ ॥

| | |
|---|----|
| याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः । | |
| याभिर्मनुं शूरमिपा समावतं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १८ |
| याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा व वा याभिररुणीरशिक्षतम् । | |
| याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं? ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | १९ |
| याभिः शंताती भवथो ददाशुपे भुज्युं याभिरश्वथो याभिराग्निगुम् । | |
| ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुमं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | २० |
| याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् । | |
| मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्यस्ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | २१ |
| यामिर्नरं गोपुयुधं नृपाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः । | |
| याभी रथौ अवथो याभिरश्वतस्ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् | २२ |

१८ हे अश्विना ! याभिः मनसा अंगिरः निरण्यथः गो-
अर्णसः विवरे अग्रं गच्छथः, शूरं मनुं याभिः इपा सं आवतं,
ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१९ हे अश्विना ! याभिः विमदाय पत्नीः नि ऊहथुः,
याभिः वा अरुणीः व वा अशिक्षतं, याभिः सुदासे सुदेव्यं
ऊहथुः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२० हे अश्विना ! ददाशुपे याभिः शन्ताती भवथः,
याभिः भुज्युं, याभिः अग्निगुं अवथः, सुभरं ओम्यावतीं
अवस्तुमं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२१ हे अश्विना ! असने कृशानुं याभिः दुवस्यथः याभिः
यूनः अर्वन्तं जवे आवतं, यत् सरड्भ्यः प्रियं मधु भरथः,
ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२२ हे अश्विना ! याभिः गोपु-युधं नरं नृपाह्ये, क्षेत्रस्य
तनयस्य साता जिन्वथः, याभिः रथान्, याभिः अश्वतः
अवथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१८ हे अधिदेवो ! तुम दोनों मनसे किये अङ्गिराके स्तोत्रों
सन्तुष्ट हुए, और जिनसे तुम बंद रखे गौओंके झुगड़ों को
लिये शत्रुघ्नी गुंफामें जानेके लिये आगे बढ़ने लगे, और
मनुको जिन शक्तियोंसे अन्न प्राप्त कराके सुरक्षित रखे,
उन शक्तियोंके साथ तुम यहाँ पधारो ॥

१९ हे अधिदेवो ! विमदके लिये उसके घर जिन शक्तियों
से तुम उसकी धर्मपत्नीको पहुँचा दिया, जिनसे तुमने अरुण रं-
वाली घोड़ियोंको सिखाया, जिनसे सुदासके घर दिव्य अन्न
तुमने पहुँचाया, उन रक्षाशक्तियोंके साथ तुम यहाँ
पधारो ॥

२० हे अधिदेवो ! दाता पुरुषको जिनसे तुम सुख देते हो,
जिनसे भुज्युकी, जिनसे अग्निगुकी रक्षा करते हो, जिनसे पुष्टि-
कारक और सुखदायक अन्नसामग्री ऋतस्त्रुमकों तुमने दी,
उन शक्तियोंके साथ तुम यहाँ आओ ॥

२१ हे अधिदेवो ! युद्धमें कृशानुकी जिनसे सहायता मिली,
जिनसे तरुण घोड़ोंको अति वेगवान् बनकर सुरक्षित किया,
जिनसे प्रिय मधु मधुमाक्षिकाओंके लिये तुमने भर दिया, उन
शक्तियोंके साथ तुम यहाँ पधारो ॥

२२ हे अधिदेवो ! जिनसे गौओंके लिये लड़नेवाले नेताओं
युद्धमें तथा क्षेत्रकी उपजका बंटवारा करनेके समय वीरोंको
सुरक्षित रखते हो, जिनसे रथों और जिनसे घोड़ोंको सुरक्षित
रखते हो, उन शक्तियोंके साथ तुम यहाँ पधारो ॥

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।

याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावतं ताभिस्तु पु ऊतिभिरश्विना गतम्

अप्लस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दत्ता वृषणा मनीषाम् ।

अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

२३ हे शतक्रतू अश्विना ! याभिः मार्जुनेयं कुत्सं,
तुर्वीतिं दभीतिं च प्र आवतं, याभिः ध्वसन्ति पुरुषन्ति
मावतं, ताभिः ऊतिभिः सु भागतं उ ॥

२४ हे दत्ता वृषणा अश्विना ! नः मनीषां जस्मे जप्त-
मनीषां वाचं कृतं, वां अद्यूत्ये अवसे निह्वये, वाजसातौ च नः
वृधे भवतम् ॥

२५ हे अश्विना ! द्युभिः अस्तुभिः अरिष्टेभिः अस्मात्
परि पातं, नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी
उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

२३ हे सैकड़ों कार्य करनेवाले अश्विदेवो ! जिनसे तुमने
मार्जुनके पुत्र कुत्सकी तथा तुर्वीति दभीतिकी रक्षा की, जिनसे
ध्वंसन्ति और पुरुषन्तिकी रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ तुम
यहा आओ ॥

२४ हे शत्रुनाशक बलवान् अश्विदेवो ! हमारी इच्छाको पूर्ण
करो, हमारी वाणीको प्रयत्न युक्त करो, तुम दोनोंको मैं अन्ध-
कारके मार्गमें सुरक्षाके लिये बुलाता हूँ। अन्तके दान करनेके
समय हमारी श्रद्धा करनेवाले बनो ॥

२५ हे अश्विदेवो ! दिन और रात, क्षीण न हुए ऐश्वर्योधि
हमें सुरक्षित रखो। इस हमारी इच्छाकी सहायता मित्र आदि
देव करें ॥

अश्विदेवोंके कार्य

इस सूक्तमें २५ मंत्र हैं और इनमें अश्विदेवोंके शुभकार्योंका
वर्णन है। "जिन रक्षाकी शक्तियोंसे अश्विदेवोंने रेभ कश्यप
आदिकोंकी रक्षा की थी, उन संरक्षक साधनोंके साथ ये अश्वि-
देव हमारे पास आजाय और हमारी सुरक्षा करें।" इतनीही
इस प्रार्थना इस संपूर्ण सूक्तमें है।

१ अस्व्यं घेतुं पिन्वथ (मं. १)— प्रसूत न होने-
वाली गौको पुष्ट किया, फिर वह गर्भधारणक्षम हुई, पक्षाव-
कण्ठों तरह दुधारु बन गयी। ऋभुओंके सूक्तमें भी कुछ
ऐसे दुधारु बननेका वर्णन है। अश्विदेव और श्वसुदेव इन
दोनोंही इसमें समानता है।

२ इषके बाद रेभ, वंदन, कश्यप (मं. ५), अन्तरिक्ष, भुवः,
भस्वः, वप्य (मं. ६), शुक्लति, अग्नि, पृथिवी, पुरुष-
(मं. ७), पराङ्मुख, क्षोण, बर्हिष्ठा (चिडिया) (मं. ८),
रेभ, कुत्स, ध्रुवर्ष, नर्य (मं. ९), विरपत्नः, अरन्ध्र वर-
पत्नः

(मं. १०), औशिज् दीर्घध्रवा वणिक् कक्षीवान् (मं. ११),
त्रिवोक् (मं. १२), मन्धाता, भरद्वाज (मं. १३), अत-
थिरव, कशोजुव, दिवोदास, प्रसदस्यु (मं. १४), उपस्तुत,
वम्र, व्यथ पृथि (मं. १५) शयु, अग्नि, मनु, स्वमररनी
(मं. १६), पठर्वा, शर्षात (मं. १७), अत्रिना, मनु,
(मं. १८), विमद, सुदास (मं. १९), भुज्यु, अग्निपु,
कृतस्तुन (मं. २०), कृष्णतु (मं. २१) : आर्जुनेय प्रथ,
तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति (मं. २३),
इनकी सहायता अश्विदेवोंने की देवः दक्षो दक्ष सुवर्तमे दक्ष
है। दक्ष अग्नि, भुज्यु ये नाम दो बार आये हैं। ये नाम दो
बार क्यों आये हैं इसका मतलब दो शरीरों का है। इन दोनोंमें कई
नाना हैं, कई क्षत्रिय हैं, कई वनिक हैं, जो हैं, कई
(चिडिया) जो एकमें हैं। इनमें एकका नाम हो तो दूसरा
चलिये।

भुज्यु अन्तर्गत दो रक्षा, दक्षसे दक्ष का। रेभ जो

वन्दन जलप्रवाहमें या कूबेमें मर रहा था, इगको बचाया । लोहेकी टांग लगाकर युद्ध करनेयोग्य बनाया । १९ तो अत्रि को स्वराज्यकी हलचल करनेके कारण कारागृहमें अपुराँमें अधिदेवीकी सहायताके वर्णन हैं । ऐसे सामर्थवान् अद्विरे डाला था, वहां उसकी सहायता की । चिडियाको भेडिया खाना चाहता था, वह भेडियाके मुखमें पहुंची थी, उस समय उसका बचाव किया । विश्पल की टांग युद्धमें कट गयी थी, उसको तात्पर्य है ।

[७] उपा-प्रकरण

(१७) उपाका काव्य

(क्र. १।११३) कुत्स आङ्गिरसः । १ (उत्तरार्धस्य) रात्रिश्च, २-२० उपाः । त्रिष्टुप् ।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिराऽगाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विश्वा ।

यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युपसे योनिमारैक्

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।

समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने

समानो अध्वा स्वप्नोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।

न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोपासा समनसा विरूपे

अन्वयः— १ ज्योतिषां इदं ज्योतिः श्रेष्ठं वा अगात् ।

चित्रः विश्वा प्रकेतः अजनिष्ट । यथा रात्रौ प्रसूता, उपसे,

सवितुः सवाय, (च) योनिं अरैक् ।

२ रुशती श्वेत्या रुशद्वत्सा आं अगात् । अस्याः कृष्णा

सदनानि अरैक् उ । समानबन्धू अमृते अनूची वर्णं आमि-

नाने द्यावा चरतः ॥

३ स्वप्नोः अध्वा समानः अनन्तः । तं देवशिष्टे अन्या-

अन्या चरतः । सुमेके विरूपे नक्तोपासा समनसा न मेथेते,

न तस्थतुः ॥

अर्थ— १ तेजोंमें यह श्रेष्ठ तेज अब प्रकट हुआ है देखो ! यह आश्चर्यकारक सर्वत्र फैलनेवाला प्रकाश अब नष्ट हुआ है । जैसी रात्रिसे (उपा) उत्पन्न हुई, (वैश्वी) उपाको, सूर्यकी उत्पत्ति करनेके लिये भी अब तब होगया है ।

२ यह तेजस्विनी गौरी (उपा अपने) तेजस्वी वा (सूर्य) की धारण करके आगयी है । इसके लिये काले रंगवाली (रात्रि) सब स्थान खुले कर रही है । ये ग्रहण बहिर्गमन अमर हैं और परस्पर साथ रहनेवाली, जगत्का तब बदलती हुई आकाशमार्गसे संचार करती हैं ॥

३ इन दोनों बहिर्गमन मार्ग एकही है और उग्ररूप नही है । उसपरसे ईश्वरकी आज्ञानुसार एकके पीछे एक ऐसी ही संचार करती हैं । सुन्दर अवयववाली परंतु विद्वत् रूपवाली ये रात्रि और उपा एक मनसे रहती हुई परस्परका बातचीत करती और नादी बीचमें कभी ये ठहरती हैं ।

उपो यदग्निं समिधे चकर्थं वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।

यन्मानुषान् यक्ष्यमाणान् अजीगस्तद् देवेषु चकृपे भद्रमग्रः १

कियात्या यत् समया भवाति या व्युपूर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।

अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति १०

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुपसं मर्त्यासः ।

अस्माभिर्ह नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ११

यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।

सुमङ्गलीर्विभ्रती देववीतिमिहाद्योपः श्रेष्ठतमा व्युच्छ १२

शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।

अथो व्युच्छादुत्तरां अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः १३

९ हे उपः ! त्वं अग्निं समिधे यत् चकर्थं । सूर्यस्य चक्षसा यत् वि आवः । मानुषान् यक्ष्यमाणान् यत् अजीगः, देवेषु भद्रं तत् अग्रः चकृपे ॥

१० याः व्यूपुः, नूनं याः च व्युच्छान् यत् समया

वियति भवाति ? पूर्वाः वावशाना अनु कृपते । प्रदीध्याना

अन्याभिः जोषं एति ॥

११ ये मर्त्यासः व्युच्छन्तीं पूर्वतरां उपसं अपश्यन्,

ते ईयुः । अस्माभिः नु प्रतिचक्ष्या अभूत् उ । अपरीषु ये पश्यान् ते आ उ यन्ति ॥

१२ हे उपः ! यावयद् द्वेषाः ऋतपाः ऋतेजाः सुम्नावरी

सूनृता ईरयन्ती सुमङ्गलीः देववीतिं विभ्रती, श्रेष्ठतमा

इह अद्य व्युच्छ ॥

१३ उपाः देवी पुरा शश्वत् व्युवास । अथो अद्य

मघोनी इदं व्यावः । अथो उत्तरान् यून अनु व्युच्छान् ।

अपरा मृता स्वधाभिः चरति ॥

९ हे उपा ! तूने अग्निको प्रदीप्त किया है । सूर्यको जागृत (तूने) प्रकाश किया है । मानवोंको यज्ञकर्मके लिये जग दिया है, यह देवोंमें अत्यंतही कल्याण करनेवाला कर्म (तूने) किया है ।

१० जो उपाएं चलीं गयीं, और जो सचमुच चलीं वाली हैं, उनमें हमारे साथ (रहनेवाली यह आजकी उपा) कितनी (थोड़ीसी) है ? पूर्व उपाओंका स्मरण करनेवाली (यह आजकी उपा हमारे लिये) अनुकूल होकर हमें आनन्द दे रही है । और प्रकाशती हुई अन्य (गत उपाओंके साथ) अपना प्रेमसंबंध जोड़ती हुई जाती है ॥

११ जिन मानवोंने प्रकाशनेवाली प्राचीन उपाओंके स्मरण था, वे चल बसे । हमने तो यह उपा देखी है (हम भी ऐसे ही चले जायेंगे ।) आनेवाली उपाओंकी जो देखेंगे, वे भी ऐसेही जायेंगे ॥

१२ हे उपा ! तू शत्रुका नाश करनेवाली, सत्यका करनेवाली, सरल व्यवहारके लियेही उत्पन्न हुई, वैभव सत्यभाषणी, सत्कर्मकी प्रेरणा करनेवाली, मंगलकारी, लिये हविर्भाग देनेवाली अत्यंत श्रेष्ठ है, (ऐसी ही) यहां प्रकाश कर ॥

१३ यह उपादेवी पहिले शश्वत् कालमें प्रकाशती है आज भी उस वैभवशालिनी (उपा) ने प्रकाश किया और वैसाही अविष्यक्त दिनोंमें भी वह प्रकाश देगी । यह रहित और मरणरहित (उपादेवी) अपनी शक्तिबलके साथ चरती है ॥

१४

१७

23

१७

१८

[illegible]

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्वृहती वि भाहि ।

प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो द्युः च्छा नो जने जनय विश्ववारे ११

यच्चित्रमग्न उपसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत योः २०

१९ देवानां माता, अदितेः अनीकं, यज्ञस्य केतुः वृहती वि भाहि । नः ब्रह्मणे प्रशस्तिकृद् न्युच्छ । हे विश्ववारे ! नः जने आ जनय ॥

२० यत् चित्रं अग्नः उपसः ईजानाय शशमानाय भद्रं वहन्ति । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत योः ममहन्ताम् ॥

१९ देवीकी माता, अदितिका बल, यज्ञका ध्वज, वही विशाल होकर तू प्रकाशित हो । हमारे स्तोत्रकी प्रशंसा करने हुई प्रकाशित हो । हे सर्वके प्यारी (उपा) ! हमारे लोगोंमें नवजीवन उत्पन्न कर ॥

२० जो विलक्षण ऐश्वर्ये उपाएं पात्रक और स्तोत्रोंके कल्याण करनेके लिये लाती हैं, हमारे उग्र ऐश्वर्यके लिये मित्र आदिदेव अनुमोदन दें ॥

यह उपाका काव्य बड़ाही मनोरंजक और उत्साह बढ़ाने-वाला है । पाठक इसका पाठ बारंबार और काव्यरसका स्वाद लेते हुए करें । मनमें उत्साहका स्फुरण देनेवाला यह काव्य नही है ।

है, इसका बोध बारंबार पाठ करनेवालोंके मनमें स्वयं स्फुरित हो सकता है । इसलिये इसका विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

{८} रुद्र-प्रकरण

(१८) शत्रुको रलानेवाला महावीर

(क. १।११४) कृत्स् आहिरसः । रुद्रः । जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय तवसे कपदिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् १

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।

यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिपु २

अन्वयः— १ यथा अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरं असत्, तथा द्विपदे चतुष्पदे शं, तवसे कपदिने क्षयद्वीराय रुद्राय इमाः मतीः प्रभरामहे ॥

२ हे रुद्र ! नः मृळ, उत नः मयः कृधि । क्षयद्वीराय ते नमसा विधेम । हे रुद्र ! मनुः पिता यत् शं च योः च आयेजे । तव प्रणीतिपु तव अश्याम ॥

अर्थ— १ जिस प्रकार हम गांवमें सब प्राणिमान इष्ट और नीरोग रहें, तथा द्विपद और चतुष्पादके लिये शांति प्राप्त हो, उस प्रकार बलवान् जटाधारी, वीरोंके आश्रय देनेवाले रुद्रके लिये ये मंत्र हम गाते हैं ॥

२ हे रुद्र ! हम सबको सुखी कर, और हम सबको नीरोग कर । वीरोंके आश्रय देनेवाले तेरा हम सब नमस्कारसे सम्मान करते हैं। मनुष्योंका पालक यह वीर शांति और रोगनिवारक शक्ति देता है । हे रुद्र ! तेरी विशेष नीतिसे उसको हम सब प्राप्त रहेंगे ।

| | |
|--|---|
| अद्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीद्वः । | |
| सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः | ३ |
| त्वेपं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वहुं कविमवसे नि ह्वयामहे । | ४ |
| आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे | ५ |
| दिवो वराहमरुपं कपदिनं त्वेपं रूपं नमस्ता नि ह्वयामहे । | ६ |
| हस्ते विभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिस्मभ्यं यंसत | ७ |
| इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् । | ८ |
| रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ | |
| मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । | |
| मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिपः | |
| मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु गीरिपः । | |
| मा नो वधीर्हविष्मन्तः सद्मिन् त्वा ह्वयामहे | |

उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुन्नमस्मे ।

भद्रा हि ते सुमतिर्मुल्यत्तमाथा वयमव इत् ते वृणीमहे

आरे ते गोन्नमुत पूरुषन्नं क्षयद्वीर सुन्नमस्मे ते अस्तु ।

मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विवर्हाः

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

९ हे मरुतां पितः । पशुपा इव अस्मे सुन्नं रास्व । ते स्तोमान् उप अकरं । हि ते सुमतिः मृळ्यत्तमा । अथ वयं ते अवः इत् वृणीमहे ॥

१० हे क्षयद्वीर ! ते गोन्नं उत पूरुषन्नं आरे । अस्मे ते सुन्नं अस्तु । नः मृळ च । हे देव । च अधि ब्रूहि । द्विवर्हाः शर्म यच्छ ॥

११ अवस्यवः अवोचाम । अस्मै नमः । मरुत्वान् रुद्रः नः हवं शृणोतु । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

९ हे मरुतों के लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक वीरों पालक गवालीयोंके समान हम सबके लिये उत्तम सुन्न दे तेरी प्रशंसा करते हैं । क्योंकि तेरी उत्तम सम्मति का देनेवाली है । इसलिये हम सब तेरेसे संरक्षण प्राप्त करनेवाले हैं ।

१० हे वीरोंके आश्रय देनेवाले ! तेरा गाथका घातक प्यका घातक शत्रु हमसे दूर रहे । हम सबके लिये तेरा प्राप्त हो । और हम सबको सुखी कर । हे देव ! हमें और कर तथा दो तुरोंवाला तू हम सबके लिये शान्ति प्रदान

११ रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम सब कहते हैं कि रुद्र के वीरोंके लिये हमारा नमस्कार है । मरुतोंके लिये हमारे साथ रहनेवाला यह महावीर हमारी प्रार्थना सुने वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौः हम सबके प्रकार हमारी उस इच्छाका अनुमोदन करें ॥

रुद्र सूक्तकी व्याख्या

१।११४ सूक्तमें 'रुद्र' शब्दके अनेक अर्थोंमें एक अर्थ 'चैद्य' है । क्योंकि इस सूक्तके मंत्र ५ में लिखा है कि "रुद्र हाथमें रोग-निवारक औषधियां धारण करता हुआ, मनुष्योंको आंतरिक शान्ति, बाह्य संरक्षण और प्राप्त रोगोंका वमनविरोचनादिद्वारा निवारण करता है ।"

इस सूक्तकी 'रुद्र' मुख्य देवता है, परंतु अंतिम मंत्रमें मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ ये देवताओंके नाम आये हैं । इनका विचार अंतिम मंत्रके विचारके समथ किया जायगा ।

मंत्र १- नगरका आरोग्य- ग्राम, नगर, पत्तन, पुरी आदिमें रहनेवाले मनुष्योंको तथा इतर प्राणिमात्रोंको आरोग्य-संपन्न रखकर, हृष्टपुष्ट, सुष्ट और उत्साही रखना राज्यके आरोग्यविभागका कर्तव्य है । यह बात इस प्रथम मंत्रमें

स्पष्टतासे कही है । जो इस प्रकार नागरिक व्यवस्था उत्तम प्रकारसे करता है, अथवा नागरिक ठीक करनेके प्रबंधोंका उपदेश नगरवासियोंको कर उसीकी प्रशंसा करना योग्य है, यह इस मंत्रका तत्त्व नगरवासियोंको उचित है कि वे इस प्रकारके प्रबंधोंके नागरिक स्वास्थ्य-विभागकी व्यवस्थापर नियुक्त हों और संमतिके अनुसार नगरवासियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करें ।

नागरिक स्वास्थ्यकी परीक्षा

नागरिक आरोग्यकी परीक्षा नगरवासियोंके आयुमें होती है । सवा सौ वर्षतक आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें रहते हैं, उस नगरका आरोग्य उत्तम है । सौ सौ वर्षके आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें रहते हैं, उस नगरका मध्यम समझना उचित है, तथा इससे अल्प आयुमें जिस नगरमें मृत्यु होती है, उस नगरका आरोग्य निम्न है ।

नाम पिता है । अपनी रक्षा करनेवाला तथा विचारपूर्वक अपना व्यवहार करनेवाला मनुष्य अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकता है । यह भाव इन शब्दोंद्वारा इस मंत्रमें सूचित किया है । मनुका मनुष्यमात्र ऐसा अर्थ कोशोंमें है । विचारशक्ति भी इसका एक अर्थ है ।

नीति— मार्ग बताना । **प्रणीति** (प्र- नीति) विशेष प्रकार-से व्यवहार करना । आचार व्यवहार विशेष रीतिसे विधिनि-यमपूर्वक करनेका तात्पर्य इस शब्दसे बोधित होता है । स्वास्थ्य-रक्षाके विशेष तत्त्वोंका शास्त्र इस शब्दसे सूचित होता है । वैद्यको उचित है कि वह सबको स्वास्थ्य-नीतिका उपदेश करे और लोगोंको उचित है कि वे स्वास्थ्य-नीतिके अनुसार अपना आचारव्यवहार करते रहें ।

मंत्र ३— सव प्रजाका आरोग्य— उदार वैद्यकी संमति-के अनुसार सब लोक आचरण करें । यह सूचना इस मंत्रके, पूर्वार्धमें है । उदार वैद्यकी योग्य सूचना कर सकता है । स्वार्थी वैद्य अपने स्वार्थके कारण लोगोंको ठीक उपदेश नहीं देगा । इसलिये उदार परोपकारी वैद्यका उपदेशार्थ सबको सुनना उचित है ।

देव-यज्या— इस मंत्रमें यह शब्द विशेष अर्थसे प्रयुक्त किया है । 'देव' शब्दका 'इंद्रिय' अर्थ है । 'यज्' का अर्थ 'सत्कार-संगति-दान' है । इंद्रियोंका सत्कार करना अर्थात् इंद्रियोंकी प्रसन्नता रखना । विद्वानोंका सत्कार, तथा पृथिवी जल, वायु आदिकी प्रसन्नता रखना भी इसका अर्थ है । वास्त-विक मनुष्योंका कल्याण इंद्रियों, विद्वानों तथा जलवायु आदि-कोंकी प्रसन्नतापर निर्भर है । यही देवयजन है ।

अरिष्टवीर— 'अरिष्ट-वीर' का अर्थ दुःखोंका निवारण करना है । तथा 'अ-रिष्ट-वीर' का अर्थ जिसके शत्रुवीरोंका नाश नहीं हुआ है । दोनों अर्थोंके साथ इस मंत्रका विचार करना चाहिए ।

हविः— हविका मुख्य यौगिक धात्वर्थ 'दान' है क्योंकि दान अर्थके 'हु' धातुसे यह शब्द बनता है । (हु-दान-आदानयोः) इसलिये 'दान' ऐसा इसका मुख्य अर्थ है, और यज्ञ, जल, घी, हवनसामग्री आदि अर्थ लाक्षणिक हैं । वैद्यकी सहायताके लिए उसको उचित दान देना सबको योग्य है, यह आशय मंत्रके अंतिम भागका है ।

मंत्र ४— क्रोधादि विकारोंको दूर रखो— आरोग्यके

लिये क्रोध, द्वेष आदि विकारोंको दूर रखना उचित है । आदि दुष्ट मनोविकार आरोग्यका सर्वथा घात करते कारण शीघ्रही, तात्पर्यमेंही शुद्ध अवस्था प्राप्त होती है । इन सब मनोविकारोंको दूर करना उचित है । यही

आरे अस्मद्वैद्यं हेळो अस्यतु ।

'दूर हमारेसे इंद्रियोंका क्रोध फैका जावे ।' ऐसा भागमें कहा है । हेळ, हेड, द्वेषका भाव यहां है ।

हेड— शब्दका अर्थ अनादर, अपमान; भूल, लता; भूल जाना, अधुरा छोड़ना । ये सब भाव बुरे हैं । इन सब भावोंको दूर करना चाहिए, तभी स्वास्थ्य रह सकता है । मनकी शुद्ध अवस्थापर स्वास्थ्य निर्भर है । लिये बुरे भावोंको दूर करके मनको शुद्ध करना आवश्यक है ।

द्वेष आदि बुरे भावोंको दूर करना और 'सु' मनमें स्थापन करना, यही आरोग्यका मुख्य साधन है । मंत्रके उत्तर अर्धने बताया है ।

मंत्रके प्रथम अर्धमें वैद्यके कई गुण वर्णन किये हैं । सत्कर्मका साधन करनेवाला, फुर्तिला शानी वैद्य निस्तेज, मरियल, दुराचारी, आलसी, अनपठ जो हो पास कोई भी न जायँ, क्योंकि उससे सच्चा आरोग्य हो सकता ।

मंत्र ५— औपाधियोंकी योजना— इस मंत्रके युरोपीयन पंडित बड़ा विलक्षण करते हैं । 'दिचो व' दो पद अलग मॉनकर उन्हींका अर्थ आकाशका जंगल ऐसा करते हैं । (देखिए म. ग्रिफिथ साहबका अंग्रेजी भा. १।११४।५) डा. मूर साहब आकाशका लाल स्वर अर्थ करते हैं । परंतु यहां 'वराह' का अर्थ स्वर नहीं

श्री सायणाचार्य 'वराह' का अर्थ (१) 'वराह' हारं उत्कृष्ट-भोजन' उत्तम भोजन करनेवाला, ऐसा है । और (२) 'वराहवद् दृढांग' स्वरके समान म वलवान् शरीर है, ऐसा भी करते हैं ।

'वर-आहार' शब्दोंसे 'वराह' शब्द बनाया जाता है । लिये यही अर्थ इस स्थानपर उचित है । वैद्यप्रकरणमें पथ्य और उत्तम श्रेष्ठ भोजनका संबंध प्रकरणानुक्रमही है । इस मंत्रके पूर्वार्धमें तेजस्वी और सुंदर वैद्यकी ही उक्त कहा है । वैद्य यदि कुरूप, मरियल, बीमार, अशक्त हुआ तो उसके व्यक्तित्वका असर रोगीपर क्या हो सकता

सुंदर और प्रसन्न मूर्तिको देखकर रोगीके मनमें यह भाव
 उत्पन्न हो कि, 'हां, यह वैद्य मुझे नारोग बना सकता है।'।
 ये मंत्रों जो कहा है कि सुंदर और तेजस्वी वैद्यकोही
 रोग, वह विलकुल योग्य है। वैद्यके सुंदर मूर्तिका तथा
 वदनका परिणाम रोगीके मनपर निश्चयसे अच्छा हो
 पाता है।

वैद्य अपने हाथमें रोगनिवारक औषधियाँ लेकर आता है।
 शत मंत्रमें आगे कहीं है। जिस समय वैद्य बीमारके पास
 है उन समय उसके साथ थोड़ीसी उच्छृङ्खल औषधियाँ
 रख रहीं चाहिए। रोगीकी अवस्थाके अनुसार यदि कोई
 वैद्य वैद्यके प्रेममय हाथसे रोगीको प्राप्त होंगे, तो उसका
 रोग बहुतही अच्छा हो सकता है। रोग दूर करनेमें मनकी
 सहायता विचार करना वैद्यका मुख्य कार्य है। यदि
 वैद्य निश्चय हो जायगा, कि 'अब मैं अच्छा हो रहा हूँ,' तो
 उसके मानसिक अवस्थासे ठीक होनेका मार्ग सुगम हो जाता है।

‘शर्म’ नाम उस अवस्थाका है कि, जो आरोग्यसे मानसिक शक्ति प्रसन्न होती है। ‘वर्म’ नाम उस शक्तिका है कि जो शरीरसे आनेवाले बीमारीको रोकती है। बीरोंके कवचका नाम ‘वर्म’ होता है, इसलिये कि उससे शत्रुके शस्त्रोंका आघात शरीर पर नहीं होता और शरीरका बचाव उससे होता है। शरीरकी ‘वर्म’ शक्ति भी वही है कि जो रोगोंके आक्रमणसे शरीरका रक्षण करती है। वमन विरेचन स्वेदन आदिको ‘छर्दि’ कहते हैं। शरीरमें प्रविष्ट हुए विषको बाहर निकालना ‘छर्दि’ का है। (छर्द्- वमने) वमन अर्थात् क्य करना, (छुद्- ने) संक्षेपन और दौति अर्थात् भूख प्रदीप्त करना तथा इन दोनोंद्वारा शरीरके सब व्यवहार ठीक करना ‘छर्दि’ का है। मनको शांत रखना, बाहरसे आनेवाले विषोंका प्रति- रक्षण तथा शरीरमें प्रसन्न हुए विषोंको बाहर निकालना और तीन प्रकारोंसे प्राणिमात्रका स्वास्थ्य ठीक रखना वैद्यका ध्य है।

मंत्र द्व — मनुष्योंके लिये योग्य अन्न— 'महत्, र्वं, मर्त्य, मर्त' आदि शब्द एकही गोत्रके हैं और इनका अर्थ 'अपघनवाला मनुष्य' ऐसा है। 'महत्तां पिता' इन शब्दोंका अर्थ 'मनुष्योंका संरक्षक' इतनाही दाता है। वैद मनुष्योंका संरक्षण करता है, इस विषयमें किसीको शंका नहीं हो सकती। तबकि मनुष्योंका आरोग्य बढ़के उपदेशपर बहुत अंगन

निर्भर है। इस मंत्रके पूर्वार्धमें 'वैद्यको सर्वसे मीठा उपदेश' किया है और सूचित किया है, कि वैद्यकी भलाई अथवा उन्नति इसी बातसे होगी। वह मीठा उपदेश यही है कि 'रोगी मनुष्योंके लिये मनुष्योंके योग्य अन्न (मर्त-भोजन) ही दिया जावे।' कई वैद्य रोगीको हिल पशुके योग्य अन्न देते हैं। ऐसा करना योग्य नहीं है। मनुष्य फलभोजी, शाकाहारी तथा धान्यभोजी प्राणी है, इसलिये उसको पथ्य ऐसा ही कहना चाहिए कि जो उसके लिये योग्य हो। और इस प्रकारक योग्य अन्नद्वारा बालबच्चोंको तथा बड़े मनुष्योंको भी आरोग्य प्राप्त कराके सुखी करना चाहिए।

मंत्रके उत्तरार्धमें 'अ-मृत' शब्दसे वैद्यको संबोधित किया है। लोगोंको मृत्युसे दूर रखनेका कार्य वैद्यका है। यह बात इस शब्दसे सूचित होती है। यह शब्द मृत्युवाता बीर भी है। यह

मरुत्का अर्थ मरनेतक उठकर लडनेवाला वीर भी है । यह अर्थ लेकर इसका वीरोचित अर्थ भी पाठक देंते ।

मंत्र ७-८- वैद्य प्रमाद न करे— वैद्यके भूल अथवा दोषसे, आलस्यसे, क्रोध और अज्ञानसे रोगी मर जाते हैं। इस-
लिये सदा सावध रहनेकी जिम्मेवारी वैद्यपर है। इन दोषोंके
कारण यदि किसीकी मृत्यु हो गई, तो उसका उत्तरदाता वैद्य
होगा। यह बात अष्टम मंत्रक उत्तरार्धसे सूचित की है।

मंत्र सातमें यह आशय है, कि वैश्य अपनी असावधानताके कारण न किसीको कुश करे तथा न किसीका घात करे। वैश्यकी थोड़ीसी भूलके कारण दूसरोंके बालबच्चे अपना मातापिता मारुते वधमें होना कोई अशक्य बात नहीं है। इसलिये वैश्यको उचित है कि वह सदा सावध रहे।

न केवल मनुष्यों परंतु पशुओंके विषयमें भी वैद्यक पंडित
दक्षता धारण करना चाहिए। दक्षता और स्वास्थ्यमत्ता न रखनेके कारणही वैद्य बड़ेबड़े प्रनाद कर सकते हैं और वैद्यके दोषके कारण दूसरोंको मरना पड़ता होता है।

‘भामितो मा वर्धाः ।’ अर्थात् मनुके दीपादे कारण
दूसरोंका वध न कर । वह वक्ष्य वशं सुख्य है । कोय, ईश्वर,
देव, चित्तका वेग अथवा क्षीम अदिके कारण निर्दिष्टा वय
नदी होना चाहिए । मय वैद्यकी उचित है कि ये इस उपा-
देशकी ओर अपना विशेष ध्यान दें । अपनेपन विनाका धन
हो उत्तरी विसर देखे । वेमेके लालचके रोगियोंका धन न
न करे ॥

१, सू. ११५]

कुत्स ऋषिका दर्शन

[९] सूर्य-प्रकरण

(१९) जगत्प्रदीप सूर्य

(क. १११५) कुत्स ऋषिगिरसः । सूर्यः । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
 आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ×१
 सूर्यो देवीमुपसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् । +२
 यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्
 भद्रा अंश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
 नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ३
 तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
 यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ४

वयः— १ देवानां अनीकं, मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः
 चक्षुः उदगात् । (तत्) द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
 प्राः । सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा ॥
 सूर्यः देवीं रोचमानां उपसं, मर्यो योषां न, पश्चात्
 वि । यत्र देवयन्तः नरा युगानि (तत्र) वितन्वते
 प्रति भद्राय ॥

१ सूर्यस्य अश्वाः भद्राः हरितः चित्राः अनुमाद्यासः
 अग्नाः । नमस्यन्तः दिवः पृष्ठं आ अस्थुः । द्यावापृथिवी
 यः परि यन्ति ॥

२ सूर्यस्य तत् देवत्वं । तत् महित्वं । कर्तो. मध्या
 यत्र सं जभार । यदाह्य हरितः सधस्थादा अनुवते, आ-
 गती यातः सिमस्मै तनुते ॥

अर्थ— १ देवोंका मुख्य तेज, मित्र वरुण और अग्नि का चि-
 क्षण नेत्र (ऐसा यह सूर्य अन्न) उदय हुआ है । (इसने) सुलो-
 क, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षलोकों (प्रकाशद्वारा) भरपूर प्रका-
 शित किया है । अचमुच सूर्य जंगम और स्थावरका ही भागी है ॥
 २ सूर्य प्रकाशमान् उपोदक के पठिने जाता है, जिन पर
 (युवा) पुश्य (युवती) धरे (पठिने जाता है) । यदा
 देवत्व-प्राप्तिके दायक मनुष्य देवता बने (योषां न)
 उनका एक पर्यायसे देवता बनता है । तत् सूर्य प्रकाशता है ॥

३ सूर्यके अन्न (१११५) के अन्तर्गत में नारायण
 परमेश्वर, आनन्ददेवताके अन्तर्गत में नारायण
 जिते हुए हैं सुलोके के सुलोके के देवता, नारायण
 जोवर के अन्तर्गत में देवता ॥

४ सूर्यका देवत्व है । तत् देवत्व । तत् महित्वं । कर्तो. मध्या
 यत्र सं जभार । यदाह्य हरितः सधस्थादा अनुवते, आ-
 गती यातः सिमस्मै तनुते ॥

X अक्षर. ११,२,१५ २०, १०, १० ।
 + " १०, १०, १५ ।
 ७ " १०, १०, १५ ।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे ।

अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्हरितः सं भरन्ति

x4

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

६

५ तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे द्योः उपस्थे सूर्यः रूपं कृणुते । अस्य हरितः अनन्तं रुशत् अन्यत् पाजः सं भरन्ति, कृष्णं अन्यत् ॥

६ हे देवाः । अद्य सूर्यस्य उदिता अवद्यात् अंहसः निः निः पिपृत् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः समहन्ताम् ॥

५ वह मित्र और वरुणका रूप देखे, इसलिये सूर्यके समीप सूर्य अपना रूप प्रकट करता है । इसके किरण (वर्ण) अनन्त तेजस्वी ऐसा एक प्रकारका रूप (दिनके समय) धारण करते हैं और दूसरा काल (रूप रात्रिके समय धारण करते हैं) ॥
६ हे देवो ! आज सूर्यके उदयके समयही आप सूर्य और पापसे हमारी सुरक्षा कीजिये और यह हमारी रक्षा मित्र आदि देवोंद्वारा अनुमोदित हो जावे ॥

उपाके पश्चात् सूर्य

उपाके पश्चात् सूर्यका उदय होता है । इस सूक्तमें सूर्यका वर्णन है । सूर्यका उदय हुआ है, सबके आँखोंको प्रकाशका मार्ग दिखाने लगा है । सूर्य स्थावर जंगम वस्तु जातका आत्मा-ही है । सूर्य न रहा तो कुछ भी नहीं रहेगा ।

सब प्रकारका जीवन सूर्यसेही मिल रहा है मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, औषधि, तृण आदि सबका जीवन सूर्यके प्रकाशपरही अवलंबित है ।

प्रथम उपा देवी आती है, उसके पश्चात् सूर्य आता है । इसलिये कविने रूपक दिया कि तरुणोंके पीछे तरुण माग रहा है । व्रतका अपनी पुत्रीके पीछे मागनेकी कथा भी इसी उद्देश्यपर रची है । सूर्यप्रकाशसेही सब मानवोंके उत्तमसे उत्तम कल्याणकारी यज्ञ सिद्ध होते हैं । इसीलिये कहते हैं कि 'यह सूर्य मनुष्योंके कल्याणके कर्म करता है ।'

सूर्यके किरण रोगबीजोंका नाश करके मानवोंको आरोग्य देते हैं, इसलिये कल्याणकारी हैं, जलका द्रवण करके अन्तरिक्षमें बादलोंको निर्माण करते और शृष्टि भी करते हैं । येही सब शुभ कर्मोंके प्रेरक हैं ।

सूर्यप्रकाशमें मनुष्य सब अच्छे कर्म करते हैं, पर वह सब किसके लिये ठहरता नहीं । समयपर अपने किरण छोड़ता है और चला जाता है और लोगोंको अपने कर्म बंद करके रहना पड़ता है । इसलिये वे सूर्यका उदय होनेतक निश्चिंत करते हैं ।

सूर्य खुलोकपर आगया तो सबके लिये प्रकाश होता है और अस्तको गया तो रात्रि होती है । प्रकाशमय दिन और अन्धकारमयी रात्रि ये दोनों रूप सूर्यकेही दो रूप हैं । सूर्य होने वाले ये कालखण्ड हैं ।

यह सूर्य मानवोंका संरक्षक है । वह संकटों, अपनिकों और रोगोंसे मानवोंकी सुरक्षा करता है । इसीलिये वह सबका रक्षक है ।

सूर्य जैसा सबको प्रकाशका मार्ग दिखाता है, वैसाही बिना सबको सच्चा उन्नतिको मार्ग दिखावे । मानवके मनुष्य सूर्यका आदर्श वेदने रखा है । सावित्रीकी उपासनाका तत्त्व यही है । यही सूर्य उपासना है । गायत्रीमंत्रका रहस्य भी सूर्यसेही है । श्रेष्ठ व्रतचारी 'आदित्य व्रतचारी' ही कहलाते हैं । अस्तु । इस तरह यह सूक्त बड़ा बोध दे सकता है । इसका मनन करें और बोध अपना लें ॥

॥ यहाँ सूर्य-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[१०] सौम-प्रकरण

(नवम मण्डल)

(२०) सोम

(अ. १।१७ ४५-५८) पवमानः सोमः । कुत्स भक्षितः । त्रिष्टुप् ।

- १ सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसद्वपुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ४५
- २ एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ४६
- ३ एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वपांसि दुहितुर्दधानः
वसानः शर्म त्रिवरुथमप्यु होतेव याति समनेषु रेभन् ४७
- ४ नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि भ्रव चम्बोः पूयमानः ।
अप्यु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ४८

मन्वयः— १ सुतः वाजी सोमः धारया, अत्यः न,
रिक्ता सिन्धुः न, निम्नं अभि वक्ष्याः । पुनानः वन्यं योनिं
॥ वसद्व । इन्द्रः गोभिः सं, सं वद्भिः वसरत् ॥ ४५ ॥

२ हे इन्द्र ! उशते ते धीरः तवस्वान् स्यः एषः सोमः
अप्यु पवते । स्वर्चक्षाः रथिरः सत्यशुष्मः यः देवयतां कामः
॥ वसद्वि ॥ ४६ ॥

३ प्रत्नेन वयसा पुनानः, दुहितुः वपांसि त्रिरः दधानः,
त्रिवरुथं शर्म वसानः, एषः अप्यु, होतेव इव, रेभन्,
समनेषु याति ॥ ४७ ॥

४ हे देव सोम ! रथिरः त्वं नः चम्बोः पूयमानः अप्यु
परि सत्य । स्वादिष्ठः मधुमान् ऋतावा सविता यः देवः
॥ सत्यमन्मा ॥ ४८ ॥

अर्थ— १ निचोडा हुआ पल्लवर्धक सोमरस धारासे, घोडेके
समान और उत्तरपरसे चलनेवाली नर्शके समान, वेगसे
चलता है । छाना जानेपर काष्ठके पात्रमें जाकर रहता है ।
यह सोमरस गोदुग्धके साथ, तथा जलके साथ, मिलता
है ॥ ४५ ॥

२ हे इन्द्र ! इच्छा करनेवाले तरे लिये यह सुखिर्वर्धक और
पल्लवर्धक सोमरस पात्रोंमें छाना जाता है । तेषस्वी इष्टि-
वाला, रथवान्, सत्य-ज्ञानधर्षसे युक्त और देवत्व-प्राप्तिके
इच्छुकोंकी कामनाके अनुसार जो (यद सोम) बनाया गया
है ॥ ४६ ॥

३ प्राचीन अक्षरवर्णके साथ छाना जानेवाला, मुझेकभी पुत्री
(उषा)के आशुष्योकी भी आच्छादित करनेवाला, तीनों स्थानोंमें
शान्ति रखनेवाला, यद जड़में (निजमा जाता है) और
स्तीलाके समान शब्द करता हुआ, यजोमैत्री वंचार करता
है ॥ ४७ ॥

४ हे सोम देव ! रथमेंके अनेकलाकू इनरे रथोंमें छाना
जाता हुआ जलके मिल जा । त्रिवर, नमुर, सत्यपल्लव
और अरुच होता जो तु देव है, नहीं तु नमन सत्यधर्म विचार
(हमारे साथ अने दे) ॥ ४८ ॥

- ५ अभि वायुं वीत्यर्पा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठाभमीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ४९
- ६ अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्पाभि धेनूः सुदुवाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ५०
- ७ अभी नो अर्प दिव्या वसून्याभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्रवामाभ्यार्पेयं जमदग्निवन्नः ५१
- ८ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ५२
- ९ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
पष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ५३

५ गृणानः वीती वायुं अभि अर्प । पूयमानः मित्रा-
वरुणा अभि । नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि (अर्प) । वृषणं
वज्रबाहुं इन्द्रं अभि (अर्प) ॥४९॥

६ हे सोम ! सुवसनानि वस्त्रा अभि अर्प । पूयमानः
सुदुवाः धेनूः अभि । चन्द्रा हिरण्या भर्तवे नः अभि । हे
देव सोम ! रथिनः अश्वान् अभि (अर्प) ॥५०॥

७ पूयमानः दिव्या वसूनि नः अभि अर्प । पार्थिवा
विश्वा अभि । येन द्रविणं अभि अश्रवाम । आर्पेयं जमदग्नि-
वत् नः अभि (अर्प) ॥५१॥

८ हे इन्दो ! अया पवा एना वसूनि पवस्व । माँश्चत्वे
सरसि प्र धन्व । ब्रध्नः चित्, वातः न, जूतः पुरुमेधः
चित् नरं तकवे दात् ॥५२॥

९ उत श्रवाय्यस्य श्रुते तीर्थे नः एना पवया अधि
पवस्व । नैगुतः पष्टिं सहस्रा वसूनि, रणाय, वृक्षं न पक्वं
धूनवत् ॥५३॥

५ स्तुति होनेपर पीनेके पूर्व वायुके साथ मिल जा
होनेपर मित्रावरुणोंके पास जा । नेता बुद्धिमान् और रथमें
वाले वीरके पास जा और बलिष्ठ वज्रबाहु इन्द्रके
जा ॥ ४९ ॥

६ हे सोम ! उत्तम पढ़नेयोग्य वस्त्र हमें दे । छाना
पर उत्तम दूध देनेवाली गौओंके पास जा । उत्तम तेजस्वी
हमारे पोषणके लिये हमें मिले । हे देव सोम ! रथयुक्त
हमें दे ॥ ५० ॥

७ छाना जाता हुआ तू दिव्य धन हमें ला दे । सब पृथ्वी
संपत्ति हमें दे, जिससे हम सब धनका उपभोग लेंगे ।
योंका तेज जमदग्निके समान हमें प्राप्त हो ॥ ५१ ॥

८ हे सोम ! इस शुद्ध धाराके साथ सब धन हमें
आहाददायक सरोवरमें (रदकर तू) धन्य हो । यहां (वृक्ष)
मूल आधार, वायुके समान (वेगवान्), पूजनीय, श्र-
समान वीर नेता (पुत्र) प्रगतिशीलको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

९ (हे सोम !) कीर्तिमान् सोमके प्रसिद्ध यज्ञमें हमारे स-
इस शुद्ध धारासे छाना जा । शत्रुओंका नाश करनेवाला (वृक्ष)
साठ सहस्र प्रकारके धन, युद्धमें विजयप्राप्तिके लिये, श-
फलवाला वृक्ष दिलाते हैं उस तरह, दिलाकर हमें दे दो ॥ ५३ ॥

- १० महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्रत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयन्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ५४
- ११ सं त्री पवित्रा विततान्येव्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दाताऽसि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ५५
- १२ एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ५६
- १३ इन्दुं रिहन्ति महिषा अदग्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समश्रुते रूपमपां रसेन ५७
- १४ त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ५८

१० इमे अस्य महि वृषनाम शूषे । माँश्रत्वे वा पृशने
वा वधत्रे । निगुतः अस्वापयत्, स्नेहयत् च । अमित्रान् अप
वध । अचितः इतः अप ॥५४॥

११ हे इन्दो ! विततानि त्री पवित्रा सं एषि । पूयमानः
रुं अनु धावसि । भगो असि । दात्रस्य दाता असि ।
मघवद्भ्यः मघवा असि ॥

१२ विश्ववित् मनीषी विश्वस्य भुवनस्य राजा एषः सोमः
पवते । विदथेषु द्रप्सान् ईरयन् इन्दुः अन्यं वारं समया वि
याति ॥५६॥

१३ महिषाः अदग्धाः इन्दुं रिहन्ति । कवयो न गृध्राः
पदे रेभन्ति । धीराः दशभिः क्षिपाभिः हिन्वन्ति । रूपं अपां
रसेन सं श्रुन्ते ॥५७॥

१४ हे सोम ! पवमानेन त्वया भरे शश्वत् कृतं, वयं वि
चिनुयाम । त्वं नः मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी
द्यौः नमहन्ताम् ॥५८॥

१० ये इसके दो बड़े (कर्म हैं, एक शत्रुपर बाणोंका)
वर्षण (करना और दूसरा शत्रुको) नम्र (करना, ये प्रजाको)
सुख देनेवाले हैं । अश्वयुद्धमें तथा बाहुयुद्धमें (शत्रुका)
वधही (होता है) । शत्रुओंको (मारकर यद सोम उनको)
छुलाता है, अथवा भगाता है । शत्रुओंको भगा दो । अज्ञानकों-
को यहाँसे दूर करो ॥५४॥

११ हे सोम ! विस्तृत तीन छाननीयोंपर तू नडता है ।
शुद्ध होनेवाला तू एक छाननीपर दौडता है । तू ऐश्वर्यवान् है ।
तू धनका दाता है । धनवानोंने भी ऐश्वर्यवान् है ॥५५॥

१२ सर्वज्ञ, मननशील, सब भुवनोंका राजा यह सोम छान
जाता है । यज्ञोंमें बुद्धिसे गिरनेवाला सोम, उनही छाननीमेंसे
सब ओरसे टपक रहा है ॥५६॥

१३ महान् अहिंसनीय सोमका स्वयं (देव) लेते हैं । कवि
लेम लुब्ध जनको छानन पयका गान करते हैं । सभी लोग
दसों अनुलिपिसे रस निकालते हैं । वह सुंदर (रस) बलके
रसके साथ मिल देते हैं ॥५७॥

१४ हे सोम ! छाने गये तुमके द्वारा युद्धमें मराही (दमेन
रुं पराक्रम) शिवे, (उस पशुधनको) इन सैन्धवीन
करके रसेमें । यह हमारी रक्षा सकल करनेके लिये मित्र अदि
देव अनुमोदन करे ॥५८॥

सोमरसका पान

सोमरसका पान करनेके विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित निर्देश हैं—

१ रथिरः । (मं. २, ४) सोमवल्लीको रथमें रखकर यज्ञ-स्थानतक बड़े समारोहसे लाते हैं ।

पश्चात् इस सोमवल्लीको फटेपर रखकर पथरोंसे कूटते हैं, अच्छी तरह कुटा जानेपर—

२ धीराः दक्षभिः क्षिपाभिः हिन्वान्ति । (१३)—
ज्ञानी लोग उस कूटे हुए सोमको दोनों हाथोंकी दसों अंगुलियों-
से अच्छी तरह दबाते और उससे रस निकाल लेते हैं ।

३ इन्दुः द्रप्स्तान् ईरयन् । (१२)— सोमसे इस समय
रसकी बूँदें नीचे टपकने लगती हैं । इन बूँदोंकी आगे धारा
बनती है—

४ अया पवा पवस्व । (८)— इस धारासे नीचे
जा—

५ एना पवया अधिपवस्व । (९) „ „

६ सुतः सोमः धारया निम्नं अभि यज्ञाः । (१)—
सोमसे रस निचोड़कर धारासे वह नीचे उतरता है, (सिन्धुः
न) जैसी नदी नीचे आती है ।

७ पुनानः वन्यं योनिं आसदन् । (१)— छाना जाकर
लकड़ीके पात्रमें वह रहता है, रखा जाता है ।

८ एपः सोमः चमूषु पवते (२)— यह सोम पात्रोंमें
छाना जाता है ।

९ चम्बोः पूयमानः । (४)— पात्रोंमें छाना जाता है, इस
तरह छाननेके लिये यह—

१० इन्दुः अर्घ्यं वारं वि अति याति । (१२)—
सोमरस ऊनकी छाननीपरसे नीचे आता है, ऊनकी छाननीसे,
कंवलमेंसे छाना जाता है ।

११ पूयमानः एकं अनु धावसि वितता त्री
पवित्रा सं पपि । (११) छाननेके समय एक छाननीसे यह
रस नीचे दौड़ता है, और फैलाये तीन छाननीयोंसे छाना जाता
है । इस समय यह—

१२ इन्दुः आग्निः सं असरत् । (१)— सोमरस जलके
साथ मिलाया जाता है ।

१३ हे सोम ! अप्सु परि चव । (४) हे सोम ! जलके

साथ मिल । सोम जलके साथ मिलाया जावे । इस तरह
सोमरस जलके साथ मिलाया जाता है ।

१४ रूपं अपां रसेन सं अवते (१३)—

रस जलके रसके साथ मिल जाता है, रसमें जल निचोड़
है पश्चात्—

१५ इन्दुः गोभिः सं असरत् । (१)—
गौओंके साथ मिलकर चलता है, गौंके दूधसे मिलाया
है ।

१६ पूयमानः सुदुवाः धेनूः अभि अर्पे । (१)—
छाना जानेवाला सोम उत्तम दूध देनेवाली गौओंके दूध
है, गौओंके दूधसे मिलाया जाता है ।

इस तरह जल और गोदुधके साथ सोमरस निचोड़ने
वह—

१७ वींती वायुं अभि अर्पे । (५)— पीनेके लिये
उसे छेदला जाय । एक पात्रसे दूसरे पात्रमें सोमरस
गया तो उसमें वायु मिलती है और पीनेके लिये तद्गुण
है । पश्चात् यह मित्रावरुण, नेता अश्विदेव, बलिष्ठ इन्द्र
देवताओंको अर्पण किया जाता है और इसके पश्चात्
इसका पान करते हैं ।

१८ यह सोम (धीरः २) बुद्धिबर्धक, (तवस्वात्
शक्ति वढानेवाला, (स्वः-चक्षाः २) दृष्टि-शक्ति वढाने
वाला, (सत्य-शुष्मः) स्थिर बलवाला, त्यागी बल देने
(स्वादिष्टः ४) रसिक, स्वादु, (मधुमान्) मधु-
(कृतावा ४) सरल भाव वढानेवाला, (ब्रह्मः ८)
आधार, बलका आधारस्तंभ, (नैगुतः ९, निगुतः १०)
शत्रुओंका नाश करनेवाला, (विश्ववित् मनीषी १०)
ज्ञानी, बुद्धिबर्धक ये सोमके गुण इस सूक्तमें वर्णन किये हैं ।

१९ त्रिवर्यं शर्म वसानः । (३)— स्थूल सूक्ष्म
कारण शरीरोंमें शान्ति सुस्थिर करनेवाला है ।

इसके पीनेसे शक्ति बढती है, शत्रुसे युद्ध लिये जावे
और शत्रु परास्त किये जाते हैं—

२० नैगुतः पष्टिं सहसा वसुनि धूनवत् । (९)—
शत्रुके साथ हजार प्रहारके धन बलसे प्राप्त किये, निम्न
(वृक्षं न पक्वं) पक्व फलवाले वृक्षको हिलाकर उठाने
किये जाते हैं, उस तरह शत्रुको हिलाकर उससे सब धन
गये ।

११ पवमानेन भरे कृतं, वयं चिनुयाम (१४) = सोम
पने युद्धमें बड़ा शौर्य दिखाया, उसके फलोंको हम इच्छा
करके अपने पास रखते हैं ।

१२ अस्य महि वृष-नाम (१०) = इस सोमके दो
बड़े सर्प हैं, एक (वृष) शत्रुपर बाणोंका वर्षण करना और
(नाम) दूसरा शत्रुको नष्ट करना । ये सोम पानेसे होते हैं
ये दोनों (शर्प) सुखदायी हैं, जनताका मुख बढ़ाते हैं ।

१३ माँश्चत्ये, पृशने वा वधत्रे (१०) = अधयुद्धमें,
अधयुद्धमें (महायुद्धमें), तथा वध करनेके अन्य प्रकारके
साधनोंमें सोमपानसे बल बढ़ता है । और—

॥ यदां सोम-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

(११) ब्रह्म-विद्या

(२१) ज्येष्ठब्रह्मवर्णनम् ।

१-४४ कुत्सः । आत्मा । त्रिष्टुप्; १ उपरिष्टाद्विराड्बृहती २ बृहतीगर्भांशुः ३ अश्विः ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

१० अनुष्टुप्गर्भा; ११ जगती; १२ पुरोबृहती त्रिष्टुप्गर्भायां पश्चि, १३, १४

पुरिष्वृहती; २२ पुराणिक्; २३ अनुष्टुप्गर्भायां पश्चि, २४, २५

२६ बृहतीगर्भा; २७ विराड् गायत्री ।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यथाधितिष्ठति । स्थार्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्ममेव मनः ।
स्वभवेनेमे विष्टमिति यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः । स्वरूपेन ह्ये सर्वज्ञानस्य यथाधितिष्ठति तस्य च

अन्वयः— १ यः भूतं च भव्यं च यः च सर्वं अधि-

तिष्ठति । यस्य च केवलं तस्य, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्ममेव मनः ।

२ ह्ये सर्वज्ञान विष्टमिति यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।

३ यथाधितिष्ठति तस्य च स्वरूपेन ह्ये सर्वज्ञानस्य यथाधितिष्ठति तस्य च

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्न्य? न्या अर्कमभितोऽविशन्त ।

वृहन्हं स्तथौ रजसौ विमानो हरितो हरिणीरा विवेश

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।

तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये

इदं सवितर्वि जानीहि पञ्चमा एक एकजः ।

तस्मिन्हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम् ।

तत्रेदं सर्वमापितमेजत्प्राणत्पतिष्ठितम्

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।

अर्धं विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व? तद् बभूव

पञ्चावाही बहत्पयमेपां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।

अगातमस्य दृष्टो न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः

३ तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्न्य अर्कमभितः नि
विशन्तः । वृहन् इ रजसः विमानः हरयो हरिणोः हरिताः
३३ ॥

४ वृहन् इ रजसः, पृष्ठं चक्रं, त्रीणि नभ्यानि, का उ तत्
इति तत्र त्रीणि शतानि षष्टिः च शङ्कवः आहताः खीलाः
३४ ॥

५ सवितर्वि इति विजानीहि, पञ्चमा पृष्ठः पृष्ठजः । यः
३५ ॥

६ तस्मिन्हापित्वमिच्छन्ते इति तस्मिन् इच्छन्ते ॥ ३६ ॥

७ आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम् । पृष्ठम्
३७ ॥

८ तत्रेदं सर्वमापितमेजत्प्राणत्पतिष्ठितम् । पृष्ठम्
३८ ॥

९ एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
३९ ॥

१० अर्धं विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व? तद् बभूव
४० ॥

११ पञ्चावाही बहत्पयमेपां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
४१ ॥

१२ अगातमस्य दृष्टो न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ।
४२ ॥

३ तीन प्रकारकी प्रजाएं अतिक्रमणको प्राप्त होती हैं,
प्रकारकी सूर्यको प्राप्त होती हैं, दूसरी वड़े रजसोको
हुए रहती हैं, और तीसरी हरण करनेवाली हरिण-शृंगोंको
होती हैं ॥ ३३ ॥

४ बारह प्रधियाँ हैं, एक चक्र है, तीन मानियाँ हैं,
मला इंग जानता है ! इस चक्रमें तीन सौ षाठ षष्टियाँ
हैं और इतने ही खील लगाये हैं, जो दिलेनाले नहीं हैं ॥ ३४ ॥

५ हे सवितार! यह तू जान, कि यही छा मोटे हैं और
अच्छे हैं । जो इनमें अच्छे एक हैं इनमें निम्न
सम्बन्ध जोड़नेकी इच्छा अन्य करते हैं ॥ ३५ ॥

६ मुझमें येनाए करनेवाला जो बड़ा प्रिय है, मैं
प्रकट होने योग्य यौनिव भी हूँ, जो कोनेमाना और
नाया है, वह नहीं इस मुझमें यौनिव और प्रतिष्ठित है ॥ ३६ ॥

७ एक चक्र एकही मध्यमानीवाला है, जो इसमें
पुनः आगे और पीछे होता है । मणिम यह पुनः
और जो इसका आगम नाभ है, वह दृष्टो रहा है ॥ ३७ ॥

८ इनमें जो पाँचोंय उदासी मानताकी है, वह
पट्टीयती है । जो मोटे मोटे हैं, वे दृष्टो पया उदासी
इसका 'न चलना' ही होना है, पान्दु चलना दृष्टो
वह बहुत दृष्टो बहुत पया है और जो गये हैं, वह
॥ ३८ ॥

९ एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
३९ ॥

तिर्यग्विलश्रमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम् ।

तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः १

या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद्य विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।

यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् १०

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत् ।

तद्वाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव ११

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।

ते नाकपालश्चरति विचिन्वान्विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य १२

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।

अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः १३

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम्

पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः १४

१ तिर्यग्विलः ऊर्ध्वबुध्नः चमसः, तस्मिन् विश्वरूपं यशः
गोपां तत् सप्त ऋषयः साकं आसत, ये अस्य महतः गोपा,
भूवुः ॥ ९ ॥

१० या पुरस्ताद्युज्यते, या च पश्चात्, या विश्वतो युज्यते
या च सर्वतः । यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कचां
मा कतमा ? ॥ १० ॥

११ यत् एजति, पतति, यत् च तिष्ठति, यत् प्राणत् अप्रा-
णत् निमिषत् च यद्भुवत्, तत् विश्वरूपं पृथिवीं वाधार, तत्
संभूय एकं एव भवति ॥ ११ ॥

१२ अनन्तं पुरुत्रा विततं, अनन्तं अन्तवत् च समन्ते ।
अस्य भूतं उत भव्यं ते विचिन्वन् विद्वान्, नाकपालः
चरति ॥ १२ ॥

१३ प्रजापतिः अदृश्यमानः गर्भे अन्तः चरति, यद्गुहा
विजायते, अर्धेन विश्वं भुवनं जजान, यत् अस्य अर्धं सः
केतुः केतुः ? ॥ १३ ॥

१४ कुम्भेन उदकं ऊर्ध्वं भरन्त उदहार्यम् । सर्वे यद्भुवा
पश्यन्ति, सर्वे मनसा न विदुः ॥ १४ ॥

१ तिरछे मुखवाला और ऊपर पृष्ठभागवाला एक पात्र है ।
उसमें नाना रूपवाला यश रखा है । वहाँ गांध साध सात ऋषि
बैठे हैं जो इस महानुभावके संरक्षक हैं ॥ ९ ॥

१० जो आगे और पीछे जुड़ी रहती है, जो चारों ओरसे
सब प्रकार जुड़ी रहती है। जिससे यश पूर्वी और कैलाश जाता
है, इस विषयमें मैं तुझे पूछता हूँ कचाओंमें यह कौनको है १०

११ जो वापता है, गिरता है, और जो स्थिर रहता है, जो
प्राण धारण करनेवाला, प्राणरहित और जो निमेषोन्मेष
करता है और जो होता है, यह विद्वान् सब दम पृथक्
धारण करता है, यह सब मिलकर एक ही होता है ॥ ११ ॥

१२ अनन्त चारों ओर फैला है, अनन्त और अन्तवत्ता ये
दोनों एक दूसरेमें मिले हैं । एकमे दूसरेके बीच और निमेष-
वालीन तथा यन्मौनताके सब यद्भुवत्के सर्वमें विभक्त
करता हुआ और पञ्च इन्द्रों के आकाश, भूवत्, स्वर्ग, वायु
है ॥ १२ ॥

१३ प्रजापति अन्तर्गुहा हुआ गर्भके अन्तर में चरता
है, और यह अनेक प्रकारसे उद्विग्न होता है । अर्धे भागमें सब
भुवत्को जन्म करता है, जो इन्द्रा इन्द्रा जाता है, जो त-
त्संभूत है ॥ १३ ॥

१४ कुम्भ के ऊपर से ऊपर से उदक निकाला जाता है ।
सब लोग देखते हैं, परन्तु सब मनसे नहीं समझते ॥ १४ ॥

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राट्भृतो भरन्ति

१५

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।

तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन

१६

ये अर्वाङ्मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।

आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम्

१७

सहस्राह्वयं वियतावस्य पक्षौ हरेहंसस्य पततः स्वर्गम् ।

स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन्त्याति भुवनानि विश्वा

१८

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणावाङ् वि पश्यति ।

प्राणेन तिर्यङ् प्राणाति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम्

१९

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।

स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद्ब्राह्मणं महत्

२०

अपादये समभवत्सो अग्रे स्वः१राभरत् । चतुष्पाद्भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् २१

१५ पूर्णेन दूरे वसति, ऊनेन दूरे हीयते, भुवनस्य मध्ये महत् यक्षं, तस्मै राट्भृतः बलिं भरन्ति ॥ १५ ॥

१६ यतः सूर्यः उदेति, यत्र च अस्तं गच्छति, तत् एव अहं ज्येष्ठं मन्ये, तत् उ किं चन न अत्येति ॥ १६ ॥

१७ ये अर्वाङ् मध्ये उत वा पुराणं वेदं विद्वांसं अभितः वदन्ति, ते सर्वे आदित्यं एव परि वदन्ति, द्वितीयं अग्निं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥

१८ अस्य हरेः हंसस्य स्वर्गं पततः पक्षौ सहस्राह्वयं वियता, सः सर्वान् देवान् उरसि उपदद्य विश्वा भुवनानि संपश्यन् याति ॥ १८ ॥

१९ सत्येन ऊर्ध्वः तपति, ब्रह्मणा अर्वाङ् विपश्यति, प्राणेन तिर्यङ् प्राणाति, यस्मिन् ज्येष्ठं अधि श्रितं ॥ १९ ॥

२० यः वै ते अरणी विद्यान्, याभ्यां वसु निर्मथ्यते, सः विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत, सः महत् ब्राह्मणं विद्यान् ॥ २० ॥

२१ अग्रे अपान् नं अनवन्, सः अग्रे स्वः आभरन्, चतु-

ष्पाद् भोग्यः भूत्वा सर्वं भोजनं आदत्त ॥ २१ ॥

१५ पूर्ण होने पर भी दूर रहता है, न्यून होनेपर भी दूर ही रहता है । विश्वके बीचमें बड़ा पूज्य देव है, इसके लिये राट्भूषेवक अपना बलिदान करते हैं ॥ १५ ॥

१६ जहांसे सूर्य उगता है, और जहां अस्तको जाता है, वही श्रेष्ठ है, ऐसा मैं मानता हूं, उसका अतिक्रमण कोई नहीं करता ॥ १६ ॥

१७ जो उरोवाले बीचके अथवा पुराणे वेदवेत्ताको कहीं ओरसे प्रशंसा करते हैं, वे सब आदित्यकी ही प्रशंसा करते हैं, दूसरा अग्नि और त्रिवृत हंसकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ १७ ॥

१८ इस हंसको स्वर्गको जाते हुए इसके दोनों पक्ष पक्ष दिनोंतक फैलये रहते हैं । वह सब देवोंको अपनी ऊर्ध्वसे लेकर सब सुवर्णोंको देखता हुआ जाता है ॥ १८ ॥

१९ मल्लके साथ ऊपर तपता है, ज्ञानसे नीचे देखता है । प्राणसे तिरछा प्राण लेता है, जिसमें श्रेष्ठ ब्रह्म रहता है ॥ १९ ॥

२० जो इन दोनों अरणियोंको जानता है, जिसमें निर्माण किया जाता है : वह ज्ञानी ज्येष्ठ ब्रह्मको जानता है और वह बड़े बड़ाको भी जानता है ॥ २० ॥

२१ प्रारंभमें पादरहित आत्मा एकही था । वह प्रारंभ स्वर्गमानंद भरता रहा । वही चार पाँचवाला भोजन देकर भोजनको प्राप्त करने लगा ॥ २१ ॥

| | |
|---|----|
| भोग्यो भवदथो अन्नमदद्बहु । यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् | २२ |
| सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः । | |
| अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः | २३ |
| शतं सहस्रमयुतं न्यबुिदमसंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम् । | |
| तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद्देवो रोचत एष एतत् | २४ |
| बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया | २५ |
| इयं कल्याण्यःजरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः | २६ |
| त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी । | |
| त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चासि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः | २७ |
| उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः । | |
| एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः | २८ |
| पूर्णात्पूर्वमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते । | |
| उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते | २९ |

२२ भोग्यः अभवत्, अथो बहु अन्नं भवत्, यः सनातनं
वत्तरावन्तं देवं उपासातै ॥ २२ ॥
२३ एवं सनातनं आहुः, उत अथ पुनः नवः स्यात्, अन्यः
अन्यस्य रूपयोः अहोरात्रे प्रजायते ॥ २३ ॥
२४ शतं सहस्रं अयुतं न्यबुिदं असंख्येयं त्वं अस्मिन्
निविष्टम् । अल्पं अभिपश्यतः एव तत् घ्नन्ति, तस्मात् एष
देवः एतत् रोचते ॥ २४ ॥
२५ एकं बालात् अरणीयस्कं उत एकं नैव दृश्यते, ततः
परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥
२६ इयं कल्याणी अजरा मर्त्यस्य गृहे अमृता, यस्मै कृता
शः शये, यः चकार सः जजार ॥ २६ ॥
२७ त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि, त्वं कुमारः उत वा कुमारी,
त्वं जीर्णः दण्डेन वञ्चासि, त्वं जातः विश्वतो मुखः नवसि ॥
२८ उत एषां पिता उत वा एषां पुत्रः, एषां ज्येष्ठः उत वा
कनिष्ठः, एकाः ह देवः मनसि प्रविष्टः प्रथमः जातः स उ गर्भे
अन्तः ॥ २८ ॥
२९ पूर्णात् पूर्णं उदचति, पूर्णं पूर्णेन सिच्यते, उतो अद्य
विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥

२२ वह भोग्य हुआ, बहुत अन्न खाते लगा । जो सनातन
और श्रेष्ठ देवकी उपासना करता है ॥ २२ ॥
२३ इसे सनातन कहते हैं, और वह आज ही फिर नया होता
है । इससे परस्पर बिना रुके दिन और रात होते हैं ॥ २३ ॥
२४ सौ, हजार, दस हजार, लाख अथवा अनगण्य रात
इसमें हैं । इसके देखते देखते ही वह सब आपात करता है,
इससे वह देव इसकी प्रशंसा करता है ॥ २४ ॥
२५ एक बालने भा स्नान है, और दूसरा दीखने ही नहीं ।
इससे जो दोनोको जानियेन देवकी देवता है, वह मुने मिल
है ॥ २५ ॥
२६ वह कल्याण करनेवाली अमृत है, मर्त्यजोके घरमें
अमर है । जिसके निविष्ट हो जाने दे, वह अमृत है, और जो
करता है वह सब होता है ॥ २६ ॥
२७ तू स्त्री है और तू ही उदक है । तू पुमान् है और
तू ही भा हुआ है । तू एक हीद्वार अन्तर्गत होकर नया है, तू
प्रकट होकर नव और पुनर्जात होता है ॥ २७ ॥
२८ इसका पिता, और इसका पुत्र इसमें श्रेष्ठ अथवा
कनिष्ठ, यह सब एक ही मनमें प्रविष्ट है, प्रथम ही
हुआ था, वह फिर कनिष्ठ जाता है ॥ २८ ॥
२९ पूर्ण होकर पूर्ण है, पूर्ण ही पूर्णको सिच्य होकर नया है,
अतः अद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥

एषा सनत्नी सनमेव जातेषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।

मही देव्युपसो विभाती सैकेनैकेन मिपता वि चष्टे

३०

अविर्वै नाम देवतर्तनास्ते परीवृता ।

तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः

३१

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति

३२

अपूर्वेणोपिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।

वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत्

३३

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चिारा नाभाविव श्रिताः ।

अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम्

३४

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।

य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन्

३५

३० एषा सनत्नी, सनं एव जाता, एषा पुराणी सर्वं परि बभूव, मही देवी उपसः विभाति, सा एकेन-एकेन मिपता विचष्टे ॥३०॥

३१ आविः वै नाम देवता ऋतेन परीवृता आस्ते, तस्याः रूपेण हमे वृक्षाः हरिताः हरितस्रजः ॥३१॥

३२ अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति, देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति ॥३२॥

३३ अपूर्वेण इषितः वाचः, ताः यथायथं वदन्ति, वदन्तीः यत्र गच्छन्ति, तत् महत् ब्राह्मणं आहुः ॥३३॥

३४ देवाः च मनुष्याः च, नामौ आराः इव यत्र श्रिताः, अपां पुष्पं त्वा पृच्छामि, यत्र तत् मायया हितम् ॥३४॥

३५ येभिः इषितः वातः प्रवाति, ये सध्रीचीः पञ्च प्रदिशः ददन्ते, ये देवाः आहुतिं अति अमन्यन्त, ते अपां नेतारः कतमे आसन् ॥३५॥

३० यह सनातन शक्ति है, सनातन कालमें नियमान्त है यही पुरानी शक्ति सब कुछ बनी है, यही बड़ी उपाओंकी प्रशिक्षित करती है, वह अकेले अकेले प्राणीके साथ दीखती है ॥३०॥
३१ रक्षणकर्त्री नामक एक देवता है, वह सत्यसे बड़ी हुई है। उसके रूपसे ये सब वृक्ष हरे और हरे पत्तोंवाले हैं ॥३१॥

३२ समीप होनेपर भी वह छोड़ता नहीं, और वह कर्म होनेपर भी दीखता नहीं। इस देवका यह काम्य देखो, जो नहीं मरता और नहीं जीर्ण होता है ॥३२॥

३३ जिसके पूर्व कोई नहीं है, इस देवताने प्रेरित की वे वाचाएँ हैं, वह वागियां यथायोग्य वर्णन करती हैं। जो कहीं हुई जहाँ पहुँचती हैं, वह बड़ा ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं ॥३३॥
३४ देव और मनुष्य नाभिमें आरे लगनेके समान यहां आश्रित हुए हैं, इस आपत्तत्वके पुष्पको मैं तुमसे पूछता हूँ, कि जहाँ वह मायासे आच्छादित होकर रहता है ॥३४॥

३५ जिनसे प्रेरित हुआ वायु बहता है, जो किसी उन्नी पाचों दिशाओं धारण करते हैं, जो देव आहुतिमें अधिक मन्ये हैं, वे जलोंके नेता कौनसे हैं ? ॥३५॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।

दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ३६

यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।

सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ३७

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।

सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ३८

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरेत्प्रदहान्विश्वदान्यः ।

यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात्क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ३९

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्

बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ४०

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे । साम्ना ये साम संविदुरजस्तद्दृशे क्व ४१

निवेशनः संगमनो बभूवो देव इव सविता सत्यधर्मा ।

इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ४२

३६ एषां एकः इमां पृथिवीं वस्ते, एकः अन्तरिक्षं परि-
बभूव, एषो यः विधर्ता दिवं ददते, एके विश्वाः आशाः
प्रति रक्षति ॥३६॥

३७ यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः, यः विततं सूत्रं विद्यात्,
सूत्रस्य सूत्रं यः विद्यात्, सः महत् ब्राह्मणं विद्यात् ॥३७॥

३८ यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः, अहं विततं सूत्रं वेद,
सूत्रस्य सूत्रं अहं वेद, अथो यद् महत् ब्राह्मणम् ॥३८॥

३९ यद् द्यावापृथिवी अन्तरा दिवदान्यः प्रदहन् अग्निः
एव, पञ्च परस्तात् एकपत्नीः अतिष्ठन्, तदानीं मातरिश्वा
इव इव आसीत् ॥३९॥

४० मातरिश्वा अप्सु प्रविष्टः आसीत्, देवाः सलिलानि
प्रविष्टाः आसन् बृहन्, ह रजसः विमानः तस्थौ, पवमानः
हरितः आविवेश ॥४०॥

४१ उत्तरेण इव अमृते अधि गायत्रीं अधिविचक्रमे ये
साम्ना साम सं विदुः, तत् अजः क्व दृशे ॥४१॥

४२ सत्यधर्मा सविता देवः इव बभूवो संगमनः निवे-
शनः, धनानां समरे इन्द्रः न तस्थौ ॥४२॥

३६ इनमेंसे एक इस पृथ्वीपर रहता है, एक अन्तरिक्षमें
व्यापता है, इनमें जो धारक है वह घुलोकका धारण करता है
और कुछ सब दिशाओंकी रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥

३७ जिसमें ये सब प्रजा पिरोयी हैं, जो इस फैले सूत्रको
जानता है, और सूत्रके सूत्रको जो जानता है, वह बड़े ब्राह्मण
जानता है ॥ ३७ ॥

३८ जिसमें ये प्रजाएं पिरोयी हैं, मैं यह फैला हुआ सूत्र
जानता हूं। सूत्रका सूत्र भी मैं जानता हूं और जो बड़ा ब्राह्मण
है, वह भी मैं जानता हूं ॥ ३८ ॥

३९ जो घुलोक और पृथ्वीके बीचमें विश्वकी जलानेवाला
अग्नि होता है, जहां दूर तक एकपत्नीही रहनी है, उस समय
वायु कहा था ॥ ३९ ॥

४० वायु जलोंमें प्रविष्ट था, सब देव जलोंमें प्रविष्ट थे, उस
समय बड़ा ही रजसका विशेष प्रभाव था, और वायु सुदृढ़-किरणोंके
साथ था ॥ ४० ॥

४१ उत्तरेपर हमने अमृतमें गायत्रीको विशेष रीतिसे प्रार्थना
करने हैं। जो कामसे काम जानते हैं, वह अजन्माने कहां
देखा ॥ ४१ ॥

४२ सत्यके धर्मसे युक्त सवितादेवके समान सब धर्मोक्त
देवताय और निवृत्तकहेतु है, वह धर्मके युद्धमें इन्द्रके धनान
स्थिर रहता है ॥ ४२ ॥

तमेव विज्ञान विभागे मुख्योपस्थानं विद्यमानं दृश्यते।

73

一、二、三、四、五、六、七、八、九、十、十一、十二、十三、十四、十五、十六、十七、十八、十九、二十、二十一、二十二、二十三、二十四、二十五、二十六、二十七、二十八、二十九、三十、三十一、三十二、三十三、三十四、三十五、三十六、三十七、三十八、三十九、四十、四十一、四十二、四十三、四十四、四十五、四十六、四十七、四十八、四十九、五十、五十一、五十二、五十三、五十四、五十五、五十六、五十七、五十八、五十九、六十、六十一、六十二、六十三、六十四、六十五、六十六、六十七、六十八、六十九、七十、七十一、七十二、七十三、七十四、七十五、七十六、七十七、七十八、七十九、八十、八十一、八十二、八十三、八十四、八十五、八十六、八十七、八十八、八十九、九十、九十一、九十二、九十三、九十四、九十五、九十六、九十七、九十八、九十九、一百。

उत्प्रेष्ट ब्रह्मका सम्पत् इति

गीतगोप अमर्त्यैरमै (काण्ड १०, सूक्त ४ म) तथा गीत-
गोप अमर्त्यैरमै (काण्ड १६, सूक्त १-१ म १२-१ गीत-
गोपमै) जेयु प्रज्ञा का उत्पत्ति वर्णन हे । जिन को गीतगोप
प्रज्ञा का दर्शन करना हो, उन को इस मन्त्रभाग का मन्त्र करना
संगत हे । इस मन्त्रभागमें पाठकों को कई प्रकारके मन्त्रों
का दर्शना होगा । कई मन्त्र तो सरल होकार भी नारत्य को
दृष्टिसे बंध ही गम्भीर प्रतीत होंग, परन्तु कई मंत्रोंके मन्त्र
और वाक्य दृष्टि और श्रुति अन्तर्गत होने पर भी उन का
आशय बिलकुलही सरल होगा । मंत्रोंमें अर्थ और आशय प्राप्त
करके हम सब को प्रज्ञा का दर्शन करने का यत्न करना चाहिये ।
देखिये; इस सूक्त का यह आरम्भ हे—

उपेष्ट ब्रह्म

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।

स्वः यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥१॥

‘ (यः भूतं मध्यं च सर्वं) भूत और भविष्य तथा वर्तमान कालमें जो है, उस सबमें (अधिष्ठिति) अधिष्ठित होता है, (यस्य च केवलं स्वः) जिसका अपना निज तेज है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये हमारा प्रणाम है । ’ इसी ज्येष्ठ ब्रह्मका हमें इस लेखमें दर्शन करना है ।

‘तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः’ यह चरण स्कन्धसूक्त में मन्त्र ३२-३४, ३६ इन चारों मंत्रोंमें है। इस चरणसे इस सूक्तके पूर्वके स्कन्धसूक्तके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। (स्कन्ध सूक्त, अथर्वं १०।७)

अथर्ववेदस्य समापितं है
 संहारंभन इमे विष्टभिते प्राश्न भूमिश्च तिष्ठतः।
 संहार इदं सर्वं आत्मन्यन्तु यत् प्राणत् निमिषत्
 च यत् ॥ २ ॥

च यन् ॥ २ ॥
(सहस्रेण नि-स्सामिते) एवमेवाधारस्तम्भे विभे
सोनिमे आधारद्विषे ये नृणां और नृणां (विभे) अने
स्वामिण ठहरे हैं । (य-पाय-विनिधय मने) जो आधार-
निधेय उन्मेष करकेवाला तथा आधारवाला है, वह यह
(सहस्रे) इस आधारस्तम्भमें ठहरा है ।

(६६म्मे) इस आधारस्तम्भमें ठहरा है । जो प्राण धारण करता है, ओसीको पल्लविलता है, जिसे आत्मा है, यह सब इस श्रेष्ठ भ्रममें है । जिस तरह वह मिश्रमें रहता है, जिस तरह जेवर सोनेमें रहते हैं, वैसे ही यह सब भ्रममें रहा है । यशों प्राणधारी सबीव जगत् भ्रममें है, ऐसा कहा है । यह कदनेका कारण यहाँ है कि ' जीव ' भ्रमसे सर्वथा पृथक् सत्तावाला है, ऐसा अनेक मत है, उसके निराकरण करनेके लिये यह प्रकारका उपाय जगत् भी उसीमें समाविष्ट हुआ है, ऐसा यहाँ कहा है । श्वावापृथिवीमें रहा सब विश्व उसीमें है, यह ऊपर कहा जा चुका है ।

एकही सनातन, पुरातन अथवा सबसे प्राचीन देवता है। यह देवताही स्वयं (सर्वं परि बभूव) सब कुछ बन जाती है। सब ओरसे अथवा सब प्रकारसे स्वयं सब कुछ बनती है। वही एक देवता अपनी शक्तिसे इस विश्वमें प्रकाश करती है और अपनी दूसरी शक्तिसे आंखसे देखती भी है। अर्थात् प्रकाश देनेवाला सूर्य भी वही बनी है और पलकें मूंदनेवाली आंख अर्थात् द्रष्टाका नेत्र भी वही बनी है। और एकही सत्त्वे ये दोनों रूप हुए हैं। उषा, सूर्य अर्थात् प्रकाश भी उसीका रूप है और दृश्य देखनेवाली आंख भी उसीका दूसरा रूप है। दृश्य विश्व (सर्वं बभूव), देखनेवाली आंख (एकेन मिपता वि चष्टे) और दर्शनका साधन प्रकाश (उपसो विभातीः) यह सब एकही सनातन देवतासे होता है। वही सनातन देवता (१) दृश्य विश्व, (२) दर्शन साधन प्रकाश और (३) द्रष्टाकी आंख यह सब त्रिपुटी बनती है।

सनातनं एनं आहुः उताद्य स्यात् पुनर्णवः ।

अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥२३॥

‘ (एनं सनातनं आहुः) इस देवताकोही सनातन कहते हैं। (उत अद्य पुनः नवः स्यात्) परन्तु यह आजही फिर नया बनता है। अर्थात् यह नया बननेपर भी सनातनही है। जैसे (अन्यो अन्यस्य रूपयोः) भिन्न भिन्न रूपवाले (अहो-रात्रे) दिन और रात्रिके विभिन्न रूप [एक सूर्यसेही] (प्रजा-येते) होते हैं ।’

जैसे एकही सूर्यसे दिनका प्रकाश और रात्रिका अन्धकार ये परस्पर विरुद्ध गुणधर्मवाले दो विभिन्न रूप बनते हैं, उसी तरह इसी एक सनातन देवसे एक पुनः पुनः नया बननेवाला रूप और दूसरा पुराना बनकर नाशको प्राप्त होनेवाला रूप, ऐसे दो रूप बनते हैं। एकही सनातन देवसे यह सब हो रहा है। इस विषयमें अगला मंत्र देखिये—

प्रजापतिका गर्भवास

प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः अदृश्यमानो बहुधा वि जायते। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान् यद् अस्य अर्धं कृतमः स केतुः ॥ १३ ॥

‘ (अदृश्यमानः प्रजापतिः) न दीखनेवाला प्रजापालक ईश्वर (गर्भे अन्तः चरति) गर्भके अन्दर संचार करता है और (बहुधा वि जायते) बहुत प्रकार विशेष रीतिसे उत्पन्न

होता है। इस तरह उसने (अर्धेन) अपने आधे भाग (विश्वं भुवनं जजान्) सब भुवनोंको उत्पन्न किया है और (यत् अस्य अर्धं) जो इसका आधा भाग है, उस आधे भागको जाननेका (सः केतुः कृतमः ?) वह विह कौनका कृतम है ?’ अर्थात् किस पद्धतिसे उसका संपूर्ण ज्ञान हो सका है।

इस मन्त्रमें कहा है कि प्रजापति परमेश्वरही गर्भमें जाकर जन्म लेकर, नाना प्रकारकी योनियोंमें विशेष रीतिसे उत्पन्न होता है। वह स्वयं अदृश्य है, तथापि विशेष रीतिसे नाना योनियोंमें उत्पन्न होनेपर वही दृश्यमान होता है और वह रीतिसे उत्पन्न होता है। इसी ढंगसे उसने अपने एक अंगसे संपूर्ण विश्व उत्पन्न किया है। विश्वके सृजन करनेकी उसकी रीति मन्त्रमें पूर्वार्धमें वर्णन की है। स्वयं ही गर्भमें आकर नाना योनियों जाकर नाना रूपोंका धारण करनाही वह रीति है।

प्रजापतिके गर्भ धारण करनेके विषयमें वेदमें अन्वय नही ऐसाही कहा है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा। (वा. य. ३.१११)

‘ प्रजापति परमेश्वर गर्भके अन्दर संचार करता है। वह जन्मनेवाला होनेपर भी अनेक प्रकारसे विविधताके साथ उत्पन्न होता है। उसके मूल स्थानको ज्ञानी लोग देखते हैं। उनमें निश्चयसे सब भुवन रहते हैं ।’

यहां भी प्रजापति परमेश्वर गर्भमें बालक-रूपसे जन्म लेता है, यह बात कही है। इसी तरह सब संसारका सृजन शब्द होता है। सब भुवन इस परमेश्वरमें बैठेही हैं कि जिस तरह मृत्तिकामें घड़े रहते हैं। यही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यकमें आया है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः । अजायमानो बहुधा विजायते। तस्य धीराः परिजानन्ति योनिं । मरीचीनां पदं इच्छन्ति वेधसः ॥ (ते. भा. ३.११३)

अम्भस्य पारे भुवनस्य मध्ये । नाकस्य पुरे महतो महीयान् । शुकेण ज्योतींषि समनुप्रविष्टः । प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः । (ते. भा. १.०१११)
महानारा, उ. १११)

आत्मवान् पूजनीय यक्ष रहता है । इसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं । ' यक्ष पदका अर्थ आत्मा अथवा परमेश्वर है । इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिन्लूयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥

(अ० १०।७।३८)

‘ भुवनके मध्यमें एक बड़ा यक्ष (पूजनीय देव) है, वह तेजस्वितामें विशेष है, और जो प्राकृतिक जलके पृष्ठपर विराजता है । इसमें जो कोई देव है वे रहते हैं, जैसी वृक्षकी शाखायें वृक्षके स्तम्भके आधारसे रहती हैं । ’

इस तरह ‘ यक्ष ’ पदसे आत्मा परमात्माका बोध होता है । पूर्वोक्त स्थानमें वर्णित नौ द्वारोंवाली सुन्दर नगरमें रहनेवाला यक्ष शरीरधारी आत्मा है, क्योंकि इंद्रियोंसे काम लेनेवाला यह है । यह विद्यात्माका अंश है । ‘ अनन्त ’ और ‘ सान्त ’ का भाव बतानेके लिये तथा जीव और शिवका विचार जानने के लिये ये मन्त्र बड़े उपयोगी हैं । इससे जीवात्माकी योग्यता का पता लग सकता है ।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः । तमेव विद्वान् विभाय मृत्योरा-मानं धीरं अजरं युवानम् ॥ ४४ ॥

‘ यह आत्मा (अ-कामः) निष्काम, (धी-रः, धीरं,) बुद्धि-को प्रकाशित करनेवाला, (अ-मृतः) अमर, (स्वयं-भूः) स्वयंही नाना रूपोंमें प्रकट होनेवाला, स्वयं होनेवाला, (रसेन तृप्तः) रससे तृप्त, (न-कुतश्चन ऊनः) कहीं भी न्यून नहीं अर्थात् सर्वत्र पूर्णतया भरपूर, (अजरं) जरा-रहित, कभी क्षीण न होनेवाला, (युवानं) युवा, सदा तदन्य है । (तं आत्मानं एव विद्वान्) उस आत्माको जाननेवाला (मृत्योः न विभाय) मृत्युसे डरता नहीं । ’ मृत्युका भय उससे दूर हो जाता है, क्योंकि मैं ‘ अजर अमर हूँ ’ यह सत्य ज्ञान उसको अपने अनुभवसे मालूम होता है ।

यहां नवद्वार शरीरमें रहनेवाले जीवात्माके वर्णनके साथ साथही परमात्माका वर्णन किया गया है । इसका कारण यह है कि परमात्माका अंशही जीवात्मा है, वह सर्वथा पृथक् अथवा सर्वथा विभिन्न नहीं है । अतः तत्त्वतः ये दोनों एकही हैं । इसलिये साथ साथ और एकही रीतिसे दोनोंका वर्णन

हुआ करता है । पाठक वेदके मंत्रोंमें सर्वत्र वही बात सकते हैं ।

शतं सहस्रं अयुतं न्ययुतं असंख्येयं स्वं अस्मिन्निविष्टम् । तदस्य ज्ञान्यभिपश्यत एव तस्मात् देवो रोचत एव एतत् ॥ २४ ॥

‘ सौ, हजार, लक्ष, करोड़ों अथवा असंख्येय इसके (तस्मात्) अपने निज बल (अस्मिन् निविष्टं) इसमें अर्थात् इस निज प्रविष्ट हुए हैं । (अभिपश्यतः) सब ओर देखनेवाले सब प्राणी (अस्य तत्) इसका वह बल (ज्ञान्ति) प्राप्त करते, भोगते हैं । (तस्मात् एव देवः) इसलिये वह देव (शत रोचते) इसको प्रकाशित करता है । ’

इस परमात्मानमें अनन्त प्रकारके बल हैं । वे बल इस विषयमें नाना पदार्थोंमें फैले हैं, जैसा सूर्यमें प्रकाश, अग्निमें शक्ति, वायुमें प्राणशक्ति, जलमें शांति, अन्नमें तृप्ति, दूधमें शक्ति और औषधियोंमें रोग दूर करनेकी शक्ति, आदि अनन्त शक्तियाँ हैं । इस विश्वके अनन्त पदार्थोंमें संप्रहित हुई हैं । वे सब बल परमेश्वरके (स्वं) निज बल हैं और परमेश्वरकेही यह विश्व बलोंके कारण इसके वे बल (निविष्टं) भरपूर भर गये हैं । बल इस विश्वमें हैं, यह बात परमेश्वर देवता और जानता है । उसके देखते देखते सब प्राणी इन बलोंको प्राप्त करते, इन बलों पर हमला करते, उनको भोगते और (ज्ञान्ति) उनको जानने में समाप्त करते हैं, जिस तरह अन्न खाकर समाप्त करते हैं । परन्तु इससे उसका असंख्येय बल कम नहीं होता, प्रत्युत इससे उस प्रभुका (रोचते) तेज बढ़ता है और वह प्रभु इस विश्वको अधिकाधिकही तेजस्वी बनाता है अर्थात् उसका बल अपरिमित और अक्षय है ।

‘ वालादेकं अणीयस्कं उतैकं नैव हृदयते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ १२४ ॥ ’ (एकं वालात् अणीयस्कं) एक विभाग बचने में सूक्ष्म है और (एकं न एव हृदयते) दूसरा विभाग दोहरा नहीं है । (ततः परिष्वजीयसी देवता) इन दोनोंको आलिंगन देनेवाली वह देवता (सा मम प्रिया) मुझे प्रिया है ।

एक देवता है, वह दोनोंको आलिंगन देकर रहती है । यह आलिंगन देनेका तात्पर्य दोनोंको अपने अन्दर समा लेना है । जिस तरह ‘ देला ’ और ‘ मिठाव ’ इन दोनोंको ‘ मिश्रित ’

१ सनकी सर्वे परि यमुज (२०) - ५५ - ५६ देवा :
एव बुद्ध भूय पयो है ।

सबमें वही एक सत्य है। यह उसकी चतुराई है, यह उसकी अद्वैत ज्ञान है, यह शाश्वत टिकनेवाला ज्ञान है, इसमें घटवध नहीं होगा। जो मनुष्य योगसाधनादि द्वारा इस ब्रह्मकी प्रेरणा को अपने अन्दर अनुभव कर सकता है, वही इस यथातथ्य ब्रह्मको जान सकता है। आत्माकी शुद्ध प्रेरणासेही मनुष्यमें सत्य ज्ञान स्फुरित होता है। किसी बाह्य प्रमाणाँके बिना प्राप्त होनेवाला सत्य ज्ञान यही है। इस ज्ञानसे एकही घोषणा होती रहती है। वह है— 'एकही ब्रह्म सर्वत्र ओतपोत भरा है, दूसरा कुछ भी वहाँ नहीं है।' यह एकत्वदर्शनही मुख्य और सत्य-दर्शन है। (सर्व खलु इदं ब्रह्म) 'सबही सबसुख ब्रह्म है।' यहाँ ब्रह्मके बिना दूसरा कुछ भी नहीं है।

देखना और जानना

अथै भरन्तं उदकं कुम्भेनैव उदहार्यम् ।

पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा, न सर्वे मनसा विदुः ॥१४॥

(कुम्भेन इव उदहार्य) घडेसे भरकर लानेयोग्य (उदकं च भरन्तं) जल घडेसे भरकर ऊपर उठाकर लानेके समान सर्व बहुधा पश्यन्ति) सब लोग अपने आंखसे उसको छत्रे तो हैं, पर (सर्वे मनसा न विदुः) सब मनसे उसे ठीक ढह जानते नहीं।'

जल घडेमें भरकर उस घडेको सिरपर रखते हैं और लाते हैं।
 खेताले लोग घडेको तो देखते हैं, पर जलको नहीं देखते।
 श्री गुरु सब लोग ब्रह्मकोही देखते और ब्रह्मके साथही
 व्यवहार करते हैं, परन्तु सब लोग यथायोग्य रीतिसे सब
 शिवको ब्रह्मस्वरूप अपने मनसे अनुभव नहीं करते।

बल्लुतः सबका सब व्यवहार मज्झते ही हो रहा है, क्योंकि सब दिग्गदी वृत्ति है, अतः सबका सब व्यवहार मज्झते साथ निश्चित हो रहा है। परन्तु इस सत्य बातकी सब लोग नहीं समझे हैं। सब समझते हैं कि 'हम व्यवहार तो मज्झते भिन्न करते'। अब समझते हैं कि 'हम व्यवहार तो मज्झते भिन्न करते कर रहे हैं।' परन्तु सब लोग खुदसे जो देख रहे हैं, वह मज्झा है, अतः व्यवहार भी उसीमे विना जा रहा है। परन्तु कोई भी इस सत्यको जानने नहीं। जब इन सबको समझे, तभी उनका व्यवहार परिशुद्ध होगा।

दूरे पूर्णेन वसति दूर जनेन हयिते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये, तस्मै यदि राष्ट्रभूता
भरन्ति ॥ ६५ ॥

‘ (पूर्वेन दूरे नसति) पूर्णके साथ दूरतक रहता है, वर
(ऊनेन दूरे शीयते) न्यूनतासे दूरतक विरहित है अर्थात्
उसमें न्यूनता नहीं है, परन्तु सर्वत्र पूर्णताही है । ऐसा बडा
(दत्ते) पूजनीय देव भुवनके मध्यमें है, इसीके लिये राष्ट्रका
भरणपोषण करनेवाले सब देव उसीको बलि अर्पण करते
हैं । ’

इस विश्वमें नर्वन पूर्णता है, किसी स्थानपर न्यूनता नहीं है, क्योंकि सब विश्व ब्रह्मका ही रूप है। यही पूजनीय देव इस विश्वमें है। इसको छोड़कर यहाँ दूसरा कुछ भी नहीं है। सब अन्य देवताएँ जो भी यहाँ हैं, वे सब इसीके रूप हैं और वे इसके तेजको धारण करती हैं और अपने कर्मसे इसीकी पूजा करती हैं।

शरीरमें जिस तरह इंद्रियाँ, कर्में और ज्ञान द्वारा आत्माकी ही उपासना करती हैं, इसी तरह विषममें सूर्यादि सभी देव परमात्माकी शक्तसे प्रकाशित होते हैं और परमात्माके लियेही आत्मार्पण करते हैं अर्थात् जो करते हैं, वह उसीके लिये करते हैं।

यतः सूर्य उदेति, अस्तं यत्र च गच्छति ।

तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं, तदु नात्येति किञ्चन ॥१६॥

तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठः, तसु नास्ति तावत्तुल्यः ।
 'जहासि सूर्यका उदय होता है और जहाँ सूर्य अस्त हो
 चला जाता है, वही श्रेष्ठ नम्र है, ऐसा मैं माना हूँ । (तसु
 उ हिं च न अस्ति) जयन्ता उदयन सिंह नदी पर गया ।'
 (अथ हिं च न अस्ति) जयन्ता उदयन सिंह नदी पर गया ।

सृष्टिके प्रारम्भमें सृष्टी उत्पत्ति और सृष्टिके विकासमें का अस्तित्व, इसी तरह अनन्त देवताओं के विनिर्माण और उनकी प्रलय, सब कुछ सृष्टि प्रक्रम के अन्तर्गत ही सम्भूत होता है, इसलिये यह अस्तित्व में है और उसके विनिर्माण के लक्ष्य में ही आगे बढ़ कर चलता है। यह हम सबका सामर्थ्य है।

चार प्रकारची प्रज्ञा

(5:15:22)

तिस्रो ह प्रजाः जन्तायै आपन्तु न्यन्याः नक्तं
अभितोऽभिस्तन् । एतन् ह तस्यै राज्ञो
विमानो हरितो हरिणीया विदेशः ॥ ३ ॥

(1-1-1)

2022年12月22日

(जमदग्निर्भागवतः । पनमानः । विष्टुः)

प्रजा ह तिस्रो अत्यायं ईयुः न्यन्या अर्कं
अभितो विविश्रे । बृहत् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः
पवमानो हरित आ विवेश ॥

(श. ८।१०।१।४)

इस मंत्रका विवरण शतपथब्राह्मणमें निम्नलिखित प्रकार
आता है—

प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास ।... स प्रजा
असृजत, ता अस्य प्रजाः सृष्टाः परावभूवुः,
तानीमानि वयांसि... ॥ १ ॥ ... स द्वितीयाः
ससृजे ता अस्य परावभूवुः, तदिवं क्षुद्रं सरी-
सृपं यदन्यत्सर्पेभ्यस्तृतीयाः ससृजे... ता अस्य
परैव वभूवुः, त इमे सर्पाः... ॥ २ ॥ ... स प्रजा
असृजत, ता अस्य प्रजाः सृष्टाः स्तनमेवाभि-
पद्य तास्ततः संवभूवुस्ता इमा अपराभूताः
॥ ३ ॥ तस्मादेतद्विषणाभ्यनूक्तं । ' प्रजा ह
तिस्रो अत्यायमीयुरिति । '

(श. ब्रा. २।५।१।१-७)

' प्रजापति प्रारम्भमें अकेलाही था... उसने प्रजाएँ उत्पन्न
कीं, उत्पन्न होतेही वे मर चुकीं, ऐसा तीन बार हुआ । ये
पक्षी, जन्तु और सर्प आदि प्राणी थे । प्रजापतिने विचार किया
कि वे प्रजाएँ क्यों मरती हैं ? तब उसको मालूम हुआ कि
इनको अन्न मिलता नहीं, इसलिये मरती हैं । तब उन्होंने चौथी
बार स्तनवाली प्रजा उत्पन्न की । स्तनमें दूध होनेसे यह प्रजा
जांघित रहने लगी । इस उत्तान्तको दर्शानेके उद्देश्यसे ऋषिने
'प्रजा ह तिस्रो अत्यायं ईयुः ०' इत्यादि मन्त्र कहा है ।'
इस सृष्टीकरणको सामने रखते हुए ऊपरके मन्त्रका अर्थ
हम करते हैं—

' (तिस्रः प्रजाः अत्यायं आगन् = ईयुः) तीन प्रकारकी
प्रजाएँ पूर्व समयमें नाश हो प्राप्त हुईं, पश्चात् (अन्याः अर्कं
अभितः न्यविशन्त) चौथी बार उत्पन्न हुईं प्रजा सूर्यप्रकाशमें
अथवा अग्निमें सञ्चिद्य रहने लगी । (रजसः विमानः बृहत्
तस्थौ) अन्तरिक्षका मापन करनेवाला बड़ा देव वहां रहता
है, (हरितः हरिणीः आ विवेश) हराभरापन हरेभरे वन-
स्पतियोंमें उन्मासे हुआ है । '

(ऋग्वेद-पाठका अर्थ)— ' (भुवनेषु अन्तः बृहत् तस्थौ)
भुवनोंके मध्यमें एक बड़ा देव है, वह (पवमानः हरितः
विवेश) वायु हरेभरे वृक्षोंमें प्रतिष्ठ हुआ है । '

तीन प्रकारकी प्रजाएँ प्रथम उत्पन्न हुईं, पश्चात्
मानवी प्रजा उत्पन्न हुई । यह मानवी प्रजा सूर्यकी तथा
की उपासना करती हुई समाज संगठन करने रहने लगी ।
और अग्नि इनका उपास्य है, वायु भी इनका उपास्य है ।
देव औषधिवनस्पतियोंमें प्रतिष्ठ होकर प्राणियोंकी रक्षा
करते हैं । यह इस मन्त्रका आशय है ।

ये सब प्रजाएँ प्रजापतिने अपनेमेंसे उत्पन्न कीं, उनके
केवल प्रजापति अकेलाही था, अतः उसने जो प्रजाएँ
कीं, वह अपनेसेही कीं । सूर्य, अग्नि तथा वायु भी
उत्पन्न हुए और वे प्रजाओंके सहायक हुए । इसी तरह
स्पतियों भी प्रजाओंकी सहायक हुई हैं ।

यहां प्रजापतिके प्रजाओंके सृजनके विषयमें कहा है ।
उत्पत्तिके पश्चात् उससे विष्टुत् अग्नि वनस्पतिके सृजनको
कही है । ये सब विभिन्न पदार्थ नहीं हैं, परन्तु वे प्रजापति
ही रूप हैं, यही यहाँके कहनेका तात्पर्य है ।

अपाद् अग्रे समभवत्, सो अग्रे स्वराभरत् ।

चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः, सर्व आदत्त भोजनम् ॥ १ ॥
भोग्योऽभवद् अथो अन्नं अदद् बहु ।

यो देवं उत्तरावन्तं उपासातै सनातनम् ॥ २ ॥

' (अग्रे अगात् सं अभवत्) सृष्टि उत्पत्तिके प्रारम्भमें
हीन सृष्टि उत्पन्न हुई । (अग्रे सः स्वः आभरत्)
उसने उसमें चैतन्य भर दिया । (चतुष्पाद् भोग्यः भूत्वा)
चतुष्पाद् भोग्ययोग्य होकर (सर्व भोजनं आदत्त)
पदार्थ भोजनके लिये उसने प्राप्त किये ॥ २ ॥ (भोग्यः
अभवत्) भोग भोगने योग्य वह बना; (अथो अन्नं अदद्)
और उसने बहुत अन्न खाया । वह सनातन (उत्तरावन्तं)
श्रेष्ठ देवकी उपासना करेगा । '

प्रारम्भमें पादहीन सृष्टि, मछली सांप आदि होती है ।
सृष्टिमें चैतन्य कार्य करने लगता है । पश्चात् गाय अश्व
ष्पाद सृष्टि होती है, वह सब घास आदि खाती है । परन्तु
सब प्राणियोंके रूपोंमें अवतीर्ण होकर सब पदार्थोंका
करता है, स्वयं भोगोंको भोगता है और दूसरोंका
बनता है । जैसी मछली छोटी मछलीको खाती है और

मल्लिका भोजन बनती है । आगे मानवप्राणीमें यही मल्लिकी उपासना करके स्वयं नक्का होनेका दावा करता । मल्लिकीसे मानवतक यह विविध सृष्टि उत्पत्ती है । यही सूर्यकी उत्पत्ति का वर्णन अंशमान है । इस सूर्यकी उत्पत्ति के मंत्र इसके आगे आते हैं—

सूर्यचक्र = कालचक्र

द्वादश प्रधयः, चक्रमेकं, त्रीणि नभ्यानि, फ उ तच्चिक्तेत । तत्राहताः त्रीणि शतानि शंकवः पृष्टिः खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥

(द्वादश प्रधयः) चक्रकी बारह हालें हैं, (एक चक्र) एक चक्र है, (त्रीणि नभ्यानि) तीन नाभियां हैं, (तत् फ उ तच्चिक्तेत) इसकी तीन ठीक तरह जानता है ? (तत्र त्रीणि शतानि शंकवः आहताः) उस चक्रमें तीन सौ शंकु लगाये हैं, (पृष्टिः खीलाः ये अविचाचलाः) और साठ खील जो फिर लपके लगाये हैं ।

सूर्यचक्रका यह वर्णन है । कालचक्र भी इसमें कहते हैं । बारह लोहेकी हालें होती हैं, वैसी १२ हालें इस कालचक्रपर

शिशिर ये छः ऋतु हैं, क्योंकि एक ऋतुमें दो महिने होते हैं; अतः इनको छः ऋतुवे भाई कहा है । ये १२ महिने हुए । एक अकेला है, यह अकेलाही जन्मा है । यह तेरहवां महिना है । अधिक मास अथवा गलमास इसकी कल्पना है, तयोत्तरा या पुरुषोत्तम मास भी इसको कहते हैं ।

इस तेरहवें महिनेके साथ अन्य बारह महिने अपना छः ऋतु अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं । इनका अर्थ इतना ही है कि चान्द्र वर्षके ३५४ दिन हैं और सौर वर्षके ३६५ दिन हैं । इन दोनों वर्षोंमें ११ दिनों का फेर है । अतः चान्द्र वर्षका सौर वर्षके साथ मेल रखनेके लिये तीन चान्द्र वर्षोंके अन्तमें एक अधिक मास मानते हैं, यह तेरहवां महिना है । इस तरह इसका ६ ऋतुओं और १२ महिनोंमें सम्बन्ध है । इन लोहेका यह वर्णन है ।

(कुम्भः । आकाश । विदुषः)

एकचक्रं वर्तत, एकनेमि, सहस्राक्षं प्र पुरो नि पश्चा । अर्धेन विश्वं भुवनं जजान, परं स्वार्थं क्व तद् वदन् ॥ ५ ॥

(अर्धेन विश्वं भुवनं जजान)

जो पूर्व पश्चिम घूमता रहता है तथा सबको प्रकाश देता हुआ आयुका मापन करता है ।

रथके सात घोड़े

पञ्चवाही वहत्यग्रमेपां प्रष्टयो युक्ता अनुस-
वहन्ति । अयातं अस्य दृश्यो न रूपं, परं नेदी-
योऽवरं दधीयः ॥ ८ ॥

‘ (पञ्चवाही एपां अग्रं वहति) पांच घोड़ोंवाला रथ इस-
को आगे खींचता है, (युक्ताः प्रष्टयोः अनुसंवहन्ति) जोड़े हुए
घोड़े इसको साथ साथ खींचते हैं । (अस्य अयातं रूपं न
दृश्ये) इसका आकर्मित न हुआ रूप कोई देखाता नहीं ।
(परं नेदीयः) दूरका पाग और (अवरं दधीयः) पासवाला
दूर है । ’

सूर्यके रथके सात घोड़े हैं । यहाँ कहा है कि पांच घोड़े रथ-
को जोड़े हैं और दो घोड़े बाजूमे जोड़े हुए चलते हैं । इस
तरह कुल सात घोड़े हुए हैं । ये सूर्यके सात किरणही हैं । मुख्य
पांच और बाजूके अस्पष्ट दो मिलकर सात किरण हैं । येही
सूर्यके घोड़े हैं । इसकी गति कोई देख नहीं सकता और इसको
रोकनेवाला भी कोई नहीं है ।

एकके तीन देव

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसं
अभितो वदन्ति । आदित्यमेव ते परि वदन्ति
सर्वे, अग्निं द्वितीयं, त्रिवृत्तं च हंसम् ॥ १७ ॥

‘ (ये) जो (अर्वाङ् मध्ये उत वा पुराणं) अथके, मध्य
कालके अथवा प्राचीन कालके (वेदं विद्वांसं) वेदके ज्ञाताकी
(अभितो वदन्ति) प्रशंसा करते हैं, (ते सर्वे) वे सब
(आदित्यं एव परि वदन्ति) सूर्यकीही प्रशंसा करते हैं, तथा
(द्वितीयं अग्निं) दूसरे अग्निकी और (त्रिवृत्तं हंसं) तीसरे
हंसकीही प्रशंसा करते हैं । ’

सूर्य, अग्नि और हंसकी प्रशंसा सर्वत्र की जाती है । हंस भी
प्रातःकालका सूर्य है और अग्नि रात्रिके समय सूर्यका प्रति-
निधि है । इस तरह सूर्य, त्रिवृत्त, अग्नि, एक ही हैं । यज्ञमें
इनकी प्रशंसा होती है । इस तरह यज्ञ, सूर्य और वेदकी प्रशंसा-
का तत्त्व सूर्यके वर्णनके साथ संबंधित हुआ है ।

सहचाल्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः
स्वर्गम् । स देवान् सर्वानुरस्युपपद्य, संपश्यन्
याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥

(अथर्व. १०।८।१८; १३।२।३८; १३।३।१८)

‘ (स्वर्गं पततः अस्य हरेः हंसस्य) स्वर्गको उड़नेवाले
चम छोले इस हंसके (पक्षौ-अर्वा पक्षौ वियतां) सहस्र दिनों
उड़ानके लिये पंख फैले हैं । वह हंस सब देवोंको (वरि-
उपपद्य) अपनी छातीवर धारण करके (विश्वा भुवनानि स-
पश्यन्) सब भुवनोंको देखता हुआ (याति) जाता है । ’

(यही मन्त्र अथर्ववेदमें ३ बार आया है, दशम कण्डमें
एक बार और तेरहवें कण्डमें दो बार ।)

यहाँका हंस सूर्यही है । यह ब्रह्माण्डके मध्यमें है । सूर्य
जो किरण ऊपरकी ओर जाता है, उसको ब्रह्माण्डके अन्तक
पहुँचनेकेलिये एक सहस्र दिन लगते हैं, ऐसा इस मन्त्रका
कई मानते हैं । कइयोंका ऐसा मत है कि अधिक मात्रकी अग्नि
१००० दिनोंके अनंतर होती है । इस विषयकी विशेष बात
होनेकी आवश्यकता है, तबतक यह मन्त्र अज्ञातही रहेगा ।

सत्येनोर्ध्वस्तपति, ब्रह्मणाऽर्वाङ् विपश्यति ।

प्राणेन तिर्यङ् प्राणिति, यस्मिन् ज्येष्ठं अग्नि-
श्रितम् ॥ १९ ॥

‘ (सत्येन ऊर्ध्वः तपति) सत्यसे अग्नि ऊर्ध्व गतिसे उन्नत
रहता है, (ब्रह्मणा अर्वाङ् विपश्यति) ब्रह्मसे ज्ञानसे नीचे
ओर सूर्य देखता रहता है, (प्राणेन तिर्यङ् प्राणिति) प्राणसे
साथ वायु तिरछा श्वसन करता है, (यस्मिन् ज्येष्ठं अधिष्ठितं)
जिसमें ज्येष्ठ ब्रह्म व्यापक है । ’

अग्निका ज्वलन ऊर्ध्वभागमें होता है । जो सत्यनिष्ठ होते
हैं, वे ऐसेही सीधे सरल रहते हैं । सूर्य अपने प्रकाशसे नीचे
की ओर देखता रहता है । वायु तिरछा व्रतन करता हुआ
बढ़ता रहता है । सूर्य, अग्नि और वायुसे सब विश्व मरा है,
जो ज्येष्ठ ब्रह्मसे परिपूर्ण है अर्थात् ज्येष्ठ ब्रह्मके ही मूल, कब
और अग्नि ये रूप हैं ।

येभिर्वात इपितः प्रवाति ये वदन्ते पञ्च
दिशः सध्रीचीः । य आहुतिमत्यमन्यन्त देवाः
अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ॥

‘ (येभिः इपितः वातः प्रवाति ?) किनसे प्रेरित हुआ
वायु बढ़ता है ? (ये सध्रीचीः पञ्च दिशः वदन्ते ?) ये
पाँचों दिशाओंकी इकट्ठा स्थान देते हैं ? (ये देवाः आहुति
अत्यमन्यन्त ?) कौन देव हैं जो आहुतियोंकी पर्वाह नहीं
करते ? (कतमे ते अपां नेतारः आसन् ?) कौनसे वे देव
हैं जो जलोंकी प्रवाहित करते हैं ? ’

इन सब प्रश्नोंका एकही उत्तर है । यह यह कि ‘ वदन्ते ’

वही ब्रह्मके द्वारा हो रहा है । ' एकही ब्रह्मके बने ये देव जो नाना कर्म करते हैं ।

इमां एषां पृथिवीं वस्त एको, अन्तरिक्षं पर्येको बभूव । दिवं एषां ददते यो विधर्ता, विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ३६ ॥

' (एषां एकः इमां पृथिवीं वस्ते) इनमेंसे एक अग्नि पृथिवीमें जाता है, (एकः अन्तरिक्षं परि बभूव) दूसरा वायु अन्तरिक्षमें व्यापता है । (एषां यः विधर्ता दिवं ददते) इनमें जो ब्रह्मा धारणकर्ता है, वह धुलोक सूर्यका धारण करता है और (एक विश्वाः आशाः प्रति रक्षन्ति) दूसरे देव सब दिशाओंकी रक्षा करते हैं । '

अग्नि पृथ्वीमें, विद्युत् अन्तरिक्षमें, सूर्य धुलोकमें और अन्य सब दिशाओं रहते हैं और सबकी रक्षा करते हैं । ये सब देव एकही ज्येष्ठ ब्रह्मकी महिमा हैं, यह पहिले कहाही है ।

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्व-
दाव्यः । यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तान् क्वेचा-
न्मातारिश्वा तदानीम् ? ॥ ३९ ॥

अप्स्वासीन्मातारिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः
सलिलान्यासन् । वृहन् ह तस्यौ रजसो
विमानः, पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥

' (यत् विश्वदाव्यः अग्निः द्यावापृथिवी अन्तरा) जब कबो जलानेवाला अग्नि धुलोक और पृथिवीके बीचमें जो है, धव्ये (प्रदहन् ऐव) जलाता हुआ जाता है, तब (यत्र एकपत्नीः परस्तात् अतिष्ठन्) एक देवकी देवपत्नियां आगे बढ़ा रती थीं और (तदानीं मातारिश्वा क्वेचाम् आनीत्) वह वायु कहा था ? '

' (मातारिश्वा अप्सु प्रविष्टः आसीत्) पसु जलोंमें प्रविष्ट होकर रहा था, (देवाः सलिलानि प्रविष्टः आसन्) सब देव जलमें गिरकर जलमें प्रविष्ट हुए थे, (रजसो विमानो वृहत् रजसो) अन्तरिक्षका मापन करता हुआ बड़ा देव परी उड़ता था, (पवमानः हरितः आ विवेश) धुलोक परनेवाला देव रोने रोने आबिष्ट हुआ था । '

जब अग्नि सब दिशोंमें जलाने लगे और सब दिशाएं जलने लगी हो जायें, तब वायु कहा करता है कि जल जलने लगता है, तब वायु उत्तरा गलाव होता है ।

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्यात् ब्राह्मणं
महत् ॥ २० ॥

' (यः ते अरणी विद्यात्) जो उन दोनों अरणियोंको जानता है, (याभ्यां वसु निर्मथ्यते) जिनसे अग्नि नामक वसुदेव मन्थनद्वारा निर्माण किया जाता है, (स मन्येत) वह माने कि (ज्येष्ठं विद्वान्) मैं ज्येष्ठ ब्रह्म जानता हूं, (स महत् ब्राह्मणं विद्यात्) वह बड़े ब्रह्मको निःसंदेह जानता है । '

जिस तरह अरणियोंमें अग्नि रहता है और घर्षणसे वह प्रकट होता है, अरणिंकी लकड़ियां सदा अग्निमय रहती हैं, उसी प्रकार सब विश्व ब्रह्ममय है, यह जो जानता है, वह ब्रह्मको यथावत् जानता है ।

मन्त्र, छन्द और यज्ञ

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद्, या विश्वतो
युज्यते, या च सर्वतः । यया यज्ञः प्राङ् तायेत
तां त्वा पृच्छामि क्तमा सार्चाम् ॥ १० ॥

' जो कच्चा यज्ञके प्रारम्भमें बोली जाती है और जो अन्तमें कही जाती है, जो सर्वत्र बोली जाती है और जो पश्चिम कर्ममें कही जाती है, जिससे यज्ञका फैलाव किया जाता है, यह कौनसी कच्चा है ? यह मैं तुझमें पूछता हूं । '

वेदमंत्रोंसे यज्ञ बिछा होता है और यज्ञ फैलाव जाता है । यज्ञ दिनके समय होता है । दृष्टादेव सूर्य देवका यज्ञ फैलानेवाला है, वैसाही वेदप्रवर्तक भी है ।

उत्तरेणैव गायत्री अमृतं यधि वि चक्रम ।
साम्ना ये साम सं विदुः पञ्चस्तद् ददते
कथं ? ॥ ४१ ॥

' (गायत्री उत्तरेणैव) उत्तर दिशि अग्नि, उत्तर दिशि उत्तर अक्षरों की ओर (वि चक्रमे) वह देव चिकन करता है । (साम्ना ये साम सं विदुः) सामके अन्तर्गतमें जो सामका पान करने लगे हों, तब (पञ्चस्तद् ददते) पञ्च देव बड़ा देवका दैंगे । '

वेदमंत्रोंसे यज्ञ बिछा होता है । यज्ञ फैलाव जाता है । यज्ञ दिनके समय होता है । दृष्टादेव सूर्य देवका यज्ञ फैलानेवाला है, वैसाही वेदप्रवर्तक भी है ।

होती है, उसी तरह वेदमंत्रोंके पाठसे तथा यज्ञक्रियाके करनेसे उसमें प्रवीणता प्राप्त होती है । इससे अजन्मा एक देव का जो सर्वत्र गुप्त रूप है, वह जाना जा सकता है ।

फलश्रुति

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा । इन्द्रो न तस्थौ समरे घनानाम् ॥ ४२ ॥

‘ (वसूनां संगमनः) धनोंका दाता, (निवेशनः) सब का निवेश करनेवाला, (सविता देवः इव सत्यधर्मा) सविता देवके समान सत्यधर्मका प्रवर्तक ज्येष्ठ देव (घनानां समरे) धनोंके जातनेके युद्धमें (इन्द्रः न तस्थौ) इन्द्रके समान स्थिर रहना है । ’

अर्थात् इस ज्येष्ठ ऋग्वेदके ज्ञानसे सर्वत्र विजय होता है, जैसा इन्द्र सदा विजयी रहता है ।

विशेष स्पष्टीकरण

इस लेखके अन्तिम विभागमें रखे १८ मंत्रों का स्पष्टीकरण यहाँ थोड़ा अधिक करना आवश्यक है । ‘ चार प्रकारकी प्रजापति ’ इस शीर्षके आगेके मंत्र ऐसे है कि जिनमें मंत्रस्थ पाद तो आशान हैं, पर इनका आशय और इन मन्त्रोंका प्रयोगन प्रकृत विषयके साथ क्या है, यह समझना मुश्किल है । इसलिये ‘ ज्येष्ठ ऋग्वेद ’ के साथ इन मंत्रोंका क्या संबंध है, इसकाही इस स्पष्टीकरणमें बताना है । मंत्रस्थ उपदेशका अर्थ विषय यहाँ बताना नहीं है । इन मंत्रोंमें ‘ ज्येष्ठ ऋग्वेद ’ का वर्णन किम अन्तर्गत हुआ है, इसकाही अब हम यहाँ बताने हैं—

‘ चार प्रकारकी प्रजापति ’ इस शीर्षके नीचे इस मूलके (मंत्र ३, २१, २२) के तीन मंत्रों हैं । इन मंत्रोंमें यह बताया है कि, ‘ प्रारम्भमें एकही प्रजापति था, उसने अपनेमें प्रजापति का वर्णन किया । सब विश्व को तेजस्वी और दयालु बना दिया, यह उसकी आभार्यता है । प्रथम सृष्टि बादरहित था, जिससे वर्षा, नद्यों आदि रहने हैं । पश्चात् पाँचवाली सृष्टि हुई । सब सृष्टिमें उसी का चैतन्य संचालित हुआ । वही सब बना हुआ और वही नोचने अर्थात् नियंत्रण करता हुआ । इस बादरहित और नदी वही एकही हुए हैं । ’ चैतन्यवाद का यह उक्तनन्द बताया है ।

‘ अहं अघ्नं, अहं अघ्नान्नादः ’ ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद् (३-१०-५) में कहा है । पाठक इस वेदवचनको उपनिषद्से साथ तुलना करके देखें ।

‘ सूर्यचक्र, कालचक्र ’ का वर्णन इसके आगे है । इन वर्णनके मंत्र तीन हैं । ‘ कालचक्र ’ के विषयमें विचार इस लेखमालामें इससे पहले विस्तारपूर्वक किया है, वही भाग स्वयं यहाँ देखें । माल एक और अखंड है उसके ऊपर, नीचे, बाएँ, दाएँ आदि विभाग कल्पित हैं । यद्यपि ये व्यवहारके साधन हैं, तथापि उनके कारण कालकी अन्वडितता नष्ट नहीं होती । मुख्य बात यहाँ बतानी है ।

‘ रथके सात घोड़े ’ सूर्यचक्रके सात रंग हैं, उनके पाँच रंग स्पष्ट हैं और आठवाँ रंगके दो अस्पष्ट हैं । इन सात रंग सूर्यके चैतन्य चरणमें हैं । सात रंग परस्पर मिलते हुए भी वे अकेले चैतन्य रंगमें समस्त पाये हैं । एक रंगके पृथक्करणसे सात रंग होते हैं और सात रंगोंके मिलने एकचैतन्य रंग बनता है, यह बात सूर्यके रथके सात घोड़ोंके वर्णनसे बतानी है । एक आत्मसि पञ्च भूत, अहंकार और बुद्धि के सात तत्त्वों का होना और सात तत्त्वोंका आत्मामें लीन होना, यह हम वर्णनसे स्पष्ट दीखता है । यह बात ८ वें मंत्रमें पठके देख सकते हैं । ‘ यह सब मिलकर एकही होता है ’ यह १३ वें मंत्र का कथन इस आठवें मंत्रमें उदाहरणमार्गसे दर्शाया है ।

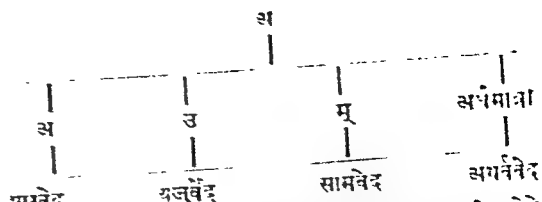
‘ एकके तीन देव ’ का वर्णन करनेवाले आगे के मंत्र हैं । सूर्य, विद्युत्, अग्नि ये आशय तत्त्वके तीन देव हैं, परन्तु ये एकही अमित्रतत्त्वके रूप हैं । सूर्यवेदी अन्नारोहण मण्डलमें विद्युत् संचार करती है और वह भूमिपर गिरने पर अग्नि उत्पन्न होता है । सूर्यचक्रण मण्डलमें गुरुत्व काय पर आलेनेसे भी सूर्यचक्रण का रूपान्तर अग्निमें होता है । इस तरह व्युत्क्रान्त का सूर्य, अन्नारोहण विद्युत् और भूमि अग्नि ये तत्त्वताः एकही हैं । इसलिये मंत्रमें कहा है कि यह सब वर्णन अकेले आशयका ही वर्णन है । (मंत्र १०)

अन्नारोहणमें वायु, विद्युत्, अन्न, यह त्रितय देवता है । सूर्यके ही इन हैं और सब देवोंका उदाहरण सूर्यके ही

है। ज्येष्ठ ब्रह्मसे मूल, मूलसे निष्पत्त और आग्नि होते हैं।
तरह ज्येष्ठ ब्रह्मसे सब देव उत्पन्न होते हैं, अर्थात् ज्येष्ठ
सब देवोंके रूप धारण करि खड़ा है।

सब मंत्रोंके वर्णनमें यह भाव प्रमुख है। अरपीतारा मन्त्राने
होनेवाले अग्नि का वर्णन २० वें मन्त्रमें है। लकड़ोंमें
अग्नि का प्रकटीकरण इस तरह होता है। लकड़ोंमें भी
ही उज्जता संगृहीत होती है, जो अग्निरूपसे प्रकट होती
अर्थात् ये सभी देव सूर्यके ही रूप हैं, इस सदैक्यवादकी
पना ये सब मन्त्र कर रहे हैं। इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन
उपका हमारे प्रस्तुत विषयसे सम्बन्ध नहीं है, अतः सूत्र-
मुल्य वर्णन का ही आशय यहाँ दिया है।

‘मन्त्र, छन्द और यज्ञ’ विषयका वर्णन करनेवाले
मंत्रों में मन्त्र है। जिस मन्त्रसे यज्ञका प्रारंभ किया जाता
है और जिससे यज्ञकी समाप्ति होती है, वह मन्त्र ओंकार है।
इसका तत्त्व यह है—



इस तरह ‘अ’ कारसे ‘ओंकार’ और ओंकारमें सब देव होते
हैं। सब वाणीमें अकारही नाना अक्षरोंके रूप लिये रहा है, जैसा
ज्येष्ठ ब्रह्म विश्वरूप बना है। यह दोनोंकी समानता पाठक देखें।

‘फलश्रुति’ का वर्णन अन्तिम मन्त्रमें है। सविता मन्त्र
विश्व का उत्पादन अपनेमैसे करता है, इसके ये सत्य नियम
इसमें स्थायी रहते हैं। ज्येष्ठ ब्रह्मसे सविता और सविता
में सब विश्वकी उत्पत्ति होती है। इसी तरह सब वस्तुओंका
संगमन एक देवमें होता है, यहाँ ज्येष्ठ ब्रह्म है। जो गद तत्त्व-
ज्ञान जानता है, वह इन्द्रके समान सुखमें विजेता होता है।
वह निर्भय होता है और विजयी होता है।

सर्वेश्वरवाद अथवा सदैक्यवादका तत्त्वज्ञान ऐसा गंभीर तत्त्व-
ज्ञान है और वेदका यही ज्ञानसर्वस्व है। पाठक इसका प्रयत्न करें।

कुत्स ऋषिके दर्शनकी विषयसूची

| विषय | पृष्ठांक | (२) पुरोंकी पालना और राष्ट्रका उत्थान | पृ. |
|---|----------|---------------------------------------|-----|
| कुत्स ऋषिका तत्त्वज्ञान | ३ | सन्तानोद्योग परिपालन और संवर्धन | १५ |
| इन्द्रके कुत्सका विचार | ३ | प्रथम मन्त्र | १८ |
| कुत्स (आंगिरस) ऋषिके मन्त्र | ६ | द्वितीय " | १९ |
| [ऋग्वेद प्रथम मण्डल, पञ्चदशोऽनुवाकः षोडशोऽनुवाकश्च] | ६ | तृतीय " | २० |
| देवतानुसार मन्त्र-संख्या | ७ | चतुर्थ " | २१ |
| ऋगनुसार मन्त्र-संख्या | ७ | पञ्चम " | २२ |
| सामान्य सूक्त | ८ | षष्ठ " | २३ |
| कुत्स ऋषिका दर्शन | ८ | सप्तम " | २४ |
| (प्रथम मण्डल, १५ वीं तथा १६ वीं अनुवाक) | ८ | अष्टम " | २५ |
| [१] अग्नि-प्रकरण | ९ | नवम " | २६ |
| (१) उक्तिका मार्ग | १० | दशम " | २७ |
| मन्त्रोंका उद्देश | १० | १) प्रयत्नकी रक्त | २८ |
| अग्निदेवी प्रदीप्त करना | १० | २) रक्त का रक्त | २९ |
| रक्तवर्षाका सम्मान | १० | | |

| | | | |
|---|----|--|-----|
| (४) कल्याणका मार्ग | २५ | [६] अश्वि-प्रकरण | |
| उन्नतिका सत्य मार्ग | २६ | (१६) अश्विदेवोंके प्रशंसनीय कार्य | १०० |
| (५) जनताका हितकर्ता | २७ | अश्विदेवोंके कार्य | १०१ |
| सब मानवोंका सहायक नेता | २८ | [७] उषा-प्रकरण | |
| अग्निका सूक्त | २९ | (१७) उषाका काव्य | १०२ |
| [२] इन्द्र-प्रकरण | | [८] रुद्र-प्रकरण | |
| (६) विश्वका पालक | ३० | (१८) शत्रुको खानेवाला महावीर | १०३ |
| इन्द्रका वर्णन | ३२ | रुद्र सूक्तकी व्याख्या | १०४ |
| (७) शत्रुरहित प्रभु | ३३ | नागरिक स्वास्थ्यकी परीक्षा | १०५ |
| प्रभुकी महिमा | ३५ | [९] सूर्य-प्रकरण | |
| (८) शत्रु-वध करनेवाला वीर | ३६ | (१९) जगत्प्रदीप सूर्य | १०६ |
| वीरके कर्म | ३८ | उषाके पश्चात् सूर्य | १०७ |
| (९) वीरता | ४० | [१०] सोम-प्रकरण | |
| शूरवीर इन्द्र | | (२०) सोम | १०८ |
| [३] विश्वे देव-प्रकरण | | सोमसञ्ज्ञा पान | १०९ |
| (१०-११) अनेक देवताओंकी प्रार्थना | ४१ | [११] ब्रह्म-विद्या | |
| विश्वे देव क्या है ? | ४३ | (२१) ज्येष्ठब्रह्मवर्णनम् । | ११० |
| इस सूक्तके देवता, प्रार्थनाका उद्देश्य | ४४ | (अथर्व० १०।८।१-४४) | १११ |
| युलोक, अन्तरिक्ष लोक, भूलोक | ४४ | ज्येष्ठ ब्रह्मका सम्यक् दर्शन | ११२ |
| संरक्षण कैसे होगा ? | ४४ | ज्येष्ठ ब्रह्म, ब्रह्ममें सब समर्पित हैं | ११३ |
| [४] इन्द्राग्नी-प्रकरण | | सब मिलकर एकही तत्त्व है | ११४ |
| (१२-१३) शत्रुनाशक और अग्रणी वीर | ४६ | पुरातन तत्त्व | ११५ |
| इन्द्र और अग्निके वर्णनमें वीरोंका स्वरूप | ५० | सनातन देवता | ११६ |
| [५] ऋभु-प्रकरण | | प्रजापतिका गर्भवास | ११७ |
| (१४-१५) ऋभु-कारीगर | ५३ | ऋषियोंका आश्रम और देवोंका मंदिर | ११८ |
| कारीगरोंका महत्त्व | ५६ | ताना और बाना, चक्रमें अग्नि | ११९ |
| ऋभुओंकी कुशलता | ५६ | उसके रूपमें विद्यका रूप | १२० |
| (१) एक चमसके चार चमस बनाये | ५६ | कमलमें यज्ञ | १२१ |
| (२) क्षीण गौको दुधार्द्र बनाया | ५६ | कुमार कुमारी एकही देव | १२२ |
| (३) वृद्धोंको तरुण बनाना | ५६ | सबका एकजीवन-स्रोत | १२३ |
| (४) सुन्दर रथ बनाना | ५६ | देखना और जानना | १२४ |
| (५) घोड़ोंकी सिंघाना | ५७ | चार प्रकारकी प्रजाएं | १२५ |
| (६) प्रजा देनेवाला अन्न | ५७ | सूर्यचक्र = कालचक्र | १२६ |
| मत्स्योंको देवत्व-प्राप्ति | ५७ | रथके सात घोड़े | १२७ |
| ऋभुओंकी देवत्व-प्राप्ति | ५७ | एकके तीन देव | १२८ |
| उपदेश | ५८ | मन्त्र, छन्द और यज्ञ | १२९ |



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(११)

त्रित ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १६ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
बन्धु, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् १००४

मूल्य १॥) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक — वसंत श्रीपाद सातवलेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औध (जि. सातारा)

त्रित ऋषिका तत्त्वज्ञान

—x—

त्रित आपका एक ऋषि था। जिसके देखे सूक्त ऋग्वेदमें हैं।
इसके नामका उल्लेख जैसा ऋग्वेदमें है, वैसाही अथर्ववेदमें भी
। 'त्रित' पदका अर्थ 'तीर्णतमः' अर्थात् अज्ञानसे पूर्ण-
ता मुक्त, परम ज्ञानी, क्लेशोंसे पूर्णतया छूटा हुआ है। ज्ञान
और विज्ञानसे संपन्न ऐसा इसका अर्थ है। 'अपां पुत्रः'
आप्यः 'जलोंका पुत्र विद्युत् अग्नि है, वही आप्य त्रित है।
अग्नि वैसा तेजस्वी ऋषि ऐसा इसका भाव है। यह विभावसुका
पुत्र है ऐसा एक मंत्रमें कहा है, वह मंत्र यह है—

विभावसुका पुत्र त्रित

(वसुभिः भालन्दनः। अग्निः)

इमं त्रितो भूरि आविन्दद् इच्छन् वैभूवसो
मूर्धनि अज्यायाः। स शेषुघो जात आ हर्म्येपु
नाभिः सुवा भवति रोचनस्य ॥ (ऋ. १०।४६।३)

'(वैभूवसः त्रितः) विभावसुके पुत्र त्रितने इस भूमिके
ऊपर अग्निको प्राप्त करनेकी इच्छा की। वह अग्नि घरोंमें उत्पन्न
हुआ और पश्चात् वह प्रकाशका केन्द्र बना।'

यहां त्रितका पिता विभावसु है ऐसा लिखा है। 'आप्य
त्रित' और 'वैभूवस त्रित' ये एकही हैं, या दो विभिन्न हैं,
इसकी खोज होनी चाहिये। इसके विषयमें वेदमंत्रोंमें पता
नहीं मिला। यदि अन्यत्र किसीको कुछ पता लगा तो वह
अवश्य प्रसिद्ध करे। त्रितकी त्रियोंके विषयमें आगे दिये मंत्रमें
देखें है—

त्रितकी त्रियाँ

(इशावाश्वा आत्रियः। पवमानः सोमः)

मादौ त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः।

इन्दुं इन्द्राय पीतये ॥ (ऋ. १।३।१२)

(रहूगण आंगिरसः। पवमानः सोमः)

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः।

इन्दुं इन्द्राय पीतये ॥ (ऋ. १।३।१२)

'(ये त्रितस्य योषणः) त्रितकी त्रियाँ पथरोंके शरीरों
के मध्य छूटती और इन्द्रके पानिके विदे रस निकालती हैं।' यहाँ

त्रितकी त्रियाँ सोमरस निकालती हैं और इन्द्रके लिये तैयार
करती हैं ऐसा लिखा है। अन्यत्र यज्ञमें ऋत्विज सोमरस
निकालते हैं। यहाँ घरमें घरकी त्रियाँ सोमरस निकालनेका
वर्णन है। अर्थात् यह पेय घरेलू है।

त्रित यज्ञ करता था, इससे उसकी गणना देवोंमें की जाती
थी, ऐसा अगले मंत्रसे प्रतीत होता है—

देवोंमें त्रितकी गणना

(गृत्समसो भार्गवः शौनकः। विश्वे देवाः)

अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत।

त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपात् ॥

(ऋ. २।३।१।६)

"अहिर्बुध्न्यः, अज एकपाद, त्रितः, ऋभुक्षाः, सविता, अपां
नपात्" इन देवोंमें त्रितकी गणना की है। अर्थात् त्रित ऋषि
भी है और देव भी है। अथवा ऋषि होता हुआ देवत्वको प्राप्त
हुआ था। क्योंकि यह त्रित इन्द्रके समान शूर था, देखो—

त्रितके समान इन्द्रका शौर्य

(सभ्य आंगिरसः। इन्द्रः)

इन्द्रो यद् वज्री धृपमानो अन्धघसा

भिनद् वलस्य परिधौरिव त्रितः ॥

(ऋ. १।५।२।५)

'अधसे उत्साहित हुए वज्रधारी इन्द्रने, त्रितके समानही
बलके दुर्गकी दिवारोंको तोड़ दिया।' इस मन्त्रमें कहा है कि
इन्द्रने जो शत्रुके कंठके तोड़ दिये, वह कर्म त्रितके कर्मके समान-
ही था। यहाँ इन्द्रके शौर्यके साथ त्रितके शौर्यकी तुलना की है।
त्रित और इन्द्रकी युद्धशैलीके विषयमें समता यहाँ दिखायी है।
देववारोंके समान ऋषि भी शूर, वीर, धीर तथा युद्धमें निपुण
होते थे ऐसा इस मंत्रसे सिद्ध होता है। वही भाव अगले
मंत्रमें देखो—

लड़नेवाला वीर त्रित

(पुनर्वसुः शत्रुः। मरुतः)

अनु त्रितस्य युध्मतः शुष्मं आवन् उत कतुम्।

अन्विन्द्रं वृत्रद्यूँ ॥ (ऋ. ८।१।२।६)

‘इन्द्रो शक्तिं वलिष्ठं वने तुष्टं त्रितेन कालारके अथके
बराहका पथ दिया।’ उराह एक राक्षस था जिसको
नेत्रे मारा था। त्रित इतना धूर, घोर, मादसी, विद्वान और
धूर था इसलिये उसके आश्रयमें बहुत लोग आकर रुका
करते थे, इस विषयमें अगला मंत्र देखनेयोग्य है—

त्रितके पास अनेकोंका आना

(उपस्तुतः पार्थिवः । अग्निः)

आ रण्वास्तो युयुधयः न सत्त्वनं

त्रितं नशन्त प्र शिपन्त इष्टये ॥

(ऋ. १०।११।४)

‘युद्धमें आनंद माननेवाले घोर त्रित तरद बलवान् सेनापतिके
सब जते हैं, उस तरद इष्टासनाकी पूर्ति करनेके लिये
नेत्रे के पास आकर उसकी सेवा करते हैं।’

त्रितके पास अनेके इस तरद लाभ होता है, इस तरद
नेत्रेका महत्त्व यदनेसे ‘त्रित’ पद सन्मानके लिये प्रयुक्त
गोत्रै लगा। घोटका सन्मान करनेके लिये घोटकी भी त्रित
इतना योग्य माना गया। इस विषयमें एक उदाहरण अब
देखो—

अभ्वही त्रित है

(दीर्घतमा औचध्यः । अश्वः)

असि यमो, असि आदित्यो अर्वन्,

असि त्रितो गुह्येन वनेन । (ऋ. १।१६।३)

‘युद्ध व्रतके अनुसार दे अश्व ! तू यम है, तू आदित्य है,
और त्रित भी तूही है।’ यहाँ अभ्वही यम, आदित्य और
त्रित है ऐसा कहा है। सर्वात्मभावसे यह वर्णन है। एकही
स्वर वस्तुका बना यह सब संसार है, इसलिये त्रित, यम,
अश्व, आदित्य ये सब एककेही रूप हैं। गीतामें भी ऐसीही
व्याख्या है—

ब्रह्मर्षिणं, ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नी, ब्रह्मणा हुतम् ।

(भ. गी. ४।२४)

अहं कतुरहं यक्षः स्वधाऽहमहमौषधम् ।

मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ (भ. गी. १।१६)

‘अर्पण, रवि, अग्नि, आहुति, यज्ञ, ऋतु, स्वधा, औषधि,
मंत्र, यी यह सब ब्रह्म (अथवा मैं, किंवा सब वस्तु) है।’
इस मंत्रका भावही इन गीताके श्लोकोंमें कहा है।

सर्वात्मभाव, सर्वसमभावसे यह वर्णन देखनेयोग्य है। त्रित

युद्धमें जाता था, वह घोर था, इसलिये घोटकी त्रितना मजाना
आदि भी जानना था, देखो—

त्रितने घोटकी सजाया

(दीर्घतमा औचध्यः । अश्वः)

यमेन दत्तं त्रित पनं आयुनिगिन्द्र एणं
प्रथमो अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वा अस्य रशनां
अगृभ्णात् सूर्यादभ्वं वसवो निरतष्ट ॥

(ऋ. १।१६।३)

‘यमने दिये इस (घोटकी) को त्रितने सज्ज किया, और
स्वयं इन्द्रने सर्वसे प्रथम उसपर आरोहण किया। गन्धर्वने
उसकी रस्सियाँ पकड़ी थीं, ऐसे घोटकी, हे वसुओं ! तुमने
सूर्यसे बना दिया था।’ यमने घोटका दिया, त्रितने उस घोटकी
सजाया अर्थात् उसकी पीठपर आसन आदि ठीक तरह लगाकर
तैयार किया, गन्धर्वने उसके लगाम पकड़े और उसपर इन्द्र
चढ़कर बैठा। इससे त्रितका इन्द्रसे संबंध क्या था इसका
पता लगता है।

त्रित इतना श्रेष्ठ बननेके कारण उसकी स्तुति भी विशेष
रूपसे होने लगी, देखो—

त्रितकी सामुदायिक स्तुति

(नामाक्तः काश्वः । वरुणः)

त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे ।

(ऋ. ८।४।१६)

‘जिस तरह गाँवों गोशालामें इकट्ठी होती हैं, वैसे तुम इकट्ठे
होकर त्रितका वर्णन करो।’ यहाँ त्रितकी सामुदायिक स्तुति
होनेका वर्णन है। इस सूक्तका देवता वरुण है, इसलिये यहाँका
‘त्रित’ पद वरुणका वाचक भी माना जा सकता है। तथा—

(गयः प्लातः । पित्रे देवाः)

त्रितं... उपसं अक्षुतम् ॥ (ऋ. १०।६।३)

‘त्रित, उषा, रात्रीका मैं स्तवन करता हूँ।’ यहाँ अन्य
देवोंमें त्रितकी गणना की है। इस विषयमें पूर्व स्थानमें दिया
मंत्र भी यहाँ देखनेयोग्य है। ‘देवोंमें त्रितकी गणना’
शीर्षक देखो।

इतना होनेपर भी त्रित स्वयं पार्थना करता था। देखो—

त्रितकी छननीपर सोम

(रहूषण आंगिरसः । पवमानः सोमः)

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोच्यत् ।

जामिभिः सूर्य सह ॥ (ऋ. १।३।५४)

‘ त्रितके उच्च छननीपर वह छाना जानेवाला सोम चम-
कने लगा, बहिनों (स्त्रियों या अंगुलियों) के द्वारा वह निचोड़ा
गया । ’ तथा और भी देखो—

त्रितका सोमरसमें जल मिलाना

(प्रकण्वः काण्वः । पवमानः सोमः)

त्रितो विभर्ति वरुणं समुद्रे । (ऋ. १।९।५।४)

‘ त्रित (समुद्रे) जलमें (वरुणं) वरणीय स्वीकारके योग्य
सोमरसको (विभर्ति) धारण करता है, मिलाता है । ’
सोमरसमें पीनेके पूर्व जल मिलाने हैं, त्रित वही कार्य कर
ता है । इसके पश्चात् उसके यज्ञमें इन्द्र आता है—

त्रितके यज्ञमें इन्द्र

(आयुः काण्वः । इन्द्रः)

यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोपासि ।

(ऋ. ८।५।२।१)

‘ हे इन्द्र ! जैसा त्रितके यज्ञमें मंत्र-गान सुनता था । ’
यहां त्रितके घर, या यज्ञमें इन्द्र जाता था और प्रेमसे वेद-
मंत्रोंका गान सुनता था, ऐसा कहा है । इसमें इन्द्र और
त्रितका सख्य बताया है, वही बात और अगले मंत्रमें देखो—

त्रितका सख्य

(गुत्समदः भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृथ
आर्येण दस्यून् । अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्व-
रूपं वरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥

(ऋ. २।१।१।९)

‘ जो तेरी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुए सब शत्रुओंकी दूर
भरते हैं, आर्योंके द्वारा सब दस्यूओंका नाश करते हैं । हमारे
देवके लिये उस त्वाष्ट्रके पुत्र विश्वरूप (राक्षस) का नाशकर
और त्रितका हित कर । ’ यहाँ त्रितके साथ सख्य करनेका
अर्थ है । त्रितका हित करने, त्रितके साथ जो मित्रता है
उसको सुरक्षित करनेके लिये इन्द्र राज करता है ऐसा इस

मंत्रमें कहा है । इन्द्र त्रितकी सहायता करता था इसके कई
उदाहरण वेदमंत्रोंमें हैं, देखो—

त्रितको कूवेसे ऊपर निकाला

(कुत्स आंगिरसः । विश्वे देवाः [बृहस्पतिः])

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत अतये ।

तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्महूरणादुरु ॥

(ऋ. १।१०।१।७)

‘ त्रित कूवेमें गिरा, तब उसने अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी
प्रार्थना की, तब बृहस्पतिने वह प्रार्थना सुनी, और उसका
आपत्तिसे बचाव किया । ’ यहाँ बृहस्पतिने त्रितको कूवेसे ऊपर
निकाला और आपत्तिसे बचाया ऐसा कहा है । त्रितने अनेक
(देवान्) देवोंकी प्रार्थना की, उनमेंसे बृहस्पतिने वह सुनी
और अन्धकारमय कूवेसे उस त्रितको ऊपर निकाल दिया
और बचाया ।

इस मंत्रका भाव आलंकारिक भी हो सकता है । अज्ञानको
अन्धेरा कुआ और बृहस्पतिने-ज्ञानदेवने-ज्ञानकी सहायतासे
अज्ञानसे मुक्त किया । यह अर्थ भी यहाँ संभव है । इसी तरह
और भी देखो—

त्रितके लिये अर्बुदका वध

(गुत्समदः भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)

अस्य सुवानस्य मन्दिनः त्रितस्य न्यर्बुदं
वायूधानो अस्तः । अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं
भिनद् वलमिन्द्रो अक्षिरस्थान् ॥

(श्र. २।१।१।२०)

‘ इस आनन्ददायक सोमके पीनेसे बड़े हुए उषाईमें त्रित-
का हित करनेके लिये अर्बुद नामक शत्रुका नाश (इन्द्रने)
किया । आंगिरोंके साथ रहनेवाले इन्द्रने, सूर्यके समान अपना
चक्र घुमाते हुए, वल नामक शत्रुका नाश किया । ’

यहाँ कहा है कि त्रितके लिये इन्द्रने अर्बुदका वध किया ।
इस तरह त्रितकी सहायता इन्द्र करता रहा दीखता है । ऐसी
सहायता करके इन्द्रने त्रितको बड़ाया, देखो—

त्रितका यश बढ़ाया

(अजिष नाभः । पवमानः सोमः)

त्रितस्य नाम जनयत् मधु शरद्
इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥

(ऋ. १।८।१।२०)

‘इन्द्र और वायुके साथ मित्रता करनेके लिये मधुर रस निकाला गया, जिससे त्रितका यश बढ गया।’ इन्द्रको सोम देनेसे और त्रितके घर आकर इन्द्रके सोमपान करनेसे त्रितका यश बढ गया यह इस मंत्रका भाव है।

त्रितको धन-प्राप्ति

(त्रित आप्तः । पवमानः सोमः)

उप त्रितस्य पाथ्योः अभक्त यद् गुहा पदम् ॥

ग्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेषु आ ईरया रयिम् ॥

(ऋ. १।१०।२-३)

‘त्रितके घर सोम कूटनेका गुप्त स्थान है। त्रितकी पीठपर तीन स्थानोंमें धन रख दे।’ यहाँ त्रितने सोम कूटकर सोमरस तैयार किया वह इन्द्रने लिया और त्रितको धन दिया ऐसा वर्णन है। इन्द्रके भक्तको इसी तरह धन प्राप्त होता है। तथा और भी देखो—

त्रितके लिये गौवें दौं

(इन्द्रो वैकुण्ठः । इन्द्रः)

अहं इन्द्रो रोधो वक्षः अथर्वणः

त्रिताय गां अजनयं अहेः अधि ॥ (ऋ. १०।४८।२)

‘मैं इन्द्र हूँ, अथर्वोंका अन्तःकरण मैंही हूँ। त्रितके लिये मैंने गौवें अहि नामक शत्रुसे प्राप्त कीं।’ और त्रितको दी। इस तरह इन्द्रने त्रितकी बहुतवार सहायता की।

अब कई मंत्र ऐसे दिये जाते हैं कि जिनका स्पष्टीकरण और यथार्थ ज्ञान इस समयतक नहीं हो सका। देखो—

त्रितमें स्वप्न

(यमः । दुःस्वप्नाशनम्)

त्रिते स्वप्नमदधुराप्ये नरः । (अथर्व. १९।५६।४)

‘नरोंने त्रित आप्तयमें निद्रा—स्वप्न—रख दिया है।’

त्रितमें पाप

(अथर्वी । पूषा)

त्रिते देवा अमृजत एतद् एनः

त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ॥१॥

द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं

मनुष्यैरनसानि ॥२॥ (अथर्व. ६।११३।१,२)

‘त्रितमें देवोंने यह पाप धोकर रख दिया। त्रितने उसको मानवोंमें शुद्ध करके रखा। बारह प्रकारसे रखा हुआ, त्रितमें धोया हुआ, पाप मानवोंसे भी शुद्ध किया गया।’

त्रित सूर्य

(गृहदिवोऽयना । वरुणः)

त्रितो घृतां दाधार ग्रीणि ॥ (अथर्व. ५।११)

‘सबका आधार त्रित तीनोंका धारण करता है।’ अन्तरिक्ष और गुलोकका धारण करनेवाले सूर्यका वरुणका यह वर्णन है। पूर्व स्थानमें वरुणके वर्णनमें त्रित है उसके साथ इस मंत्रकी संगति लग सकती है।

त्रित=गर्जना करनेवाला मेघ

(श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)

सं विद्युता दधति वाशति त्रितः । (ऋ. ५।१५)

‘विद्युतके साथ मिलता है और त्रित बड़ा शब्द करता है।’ यहाँ त्रित शब्द मेघवाची प्रतीत होता है। इस रीति त्रितका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। पाठक इसका मनन करके त्रित का यथार्थ स्वरूप जाननेका प्रयत्न करें।

अब इस स्थानपर जो त्रितके सूक्त दिये जाते हैं उनमें विवरण देवतावार और छन्दवार करते हैं—

त्रितके मंत्रोंकी क्रमवार गणना

(ऋग्वेद प्रथमं मण्डलं)

सूक्त १०५ विश्वे देवाः मंत्रसंख्या १९

(ऋग्वेद अष्टमं मण्डलं)

सूक्त ४७ आदित्याः, उषसः १८

(ऋग्वेद नवमं मण्डलं)

सूक्त ३३ पवमानः सोमः ६

३४ ” ” ६

१०२ ” ” ८

१०३ (द्वितः) ” ” ६ २६

(ऋग्वेद दशमं मण्डलं)

सूक्त १ अग्निः ७

२ ” ७

३ ” ७

४ ” ७

५ ” ७

६ ” ७

७ ” ७ ४९

इनमें त्रितके मंत्र १०६ हैं और द्वितके ६ हैं । मिलकर ११२ हुए । अब इनकी देवतावार गणना नाँचे देते हैं ।

त्रितके मंत्रोंकी देवतावार गणना

| | | |
|------------------|-------------|----|
| १ अग्निः | मंत्रसंख्या | ४९ |
| २ पवमानः सोमः | " | २६ |
| ३ विश्वे देवाः | " | १९ |
| ४ आदित्याः, उपसः | " | २८ |

११२

त्रितके मंत्रोंकी छन्दवार गणना

| | | |
|----------------------|-------------|-----|
| १ त्रिष्टुप् | मंत्रसंख्या | ५० |
| २ महापंक्तिः | " | १८ |
| ३ पंक्तिः | " | १७ |
| ४ उष्णिक् | " | १४ |
| ५ गायत्री | " | १२ |
| ६ (यवमध्या) महावृहती | " | १ |
| | | ११२ |

इस प्रकार अग्नि के मंत्र सबसे अधिक और आदित्यों के सबसे कम हैं । अब छन्दवार गणना देखिये—

इस तरह यह छन्दो-गणना है । त्रितके मंत्र त्रिष्टुप् छन्दमें

अधिक हैं और अन्य छन्दोंमें कम हैं ।

अब इनके मंत्रोंका भाव देखो जो आगे दिया जाता है ।

| | | |
|---------------------------------|---|--|
| स्वाध्याय-मण्डल | } | निवेदक |
| औध (जि. सातारा)
ता. १११/४८ | | श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औध. |





ऋग्वेदका सुबोध भाष्य त्रि त ऋ षि का दर्शन

(ऋग्वेदका १६ वाँ अनुवाक)

【 १ 】 विश्वे-देव प्रकरण

(१) अनेक देवोंकी प्रार्थना

(अ. १।१०५) त्रित आष्यः (कुत्स जांगिरसो वा)। विश्वे देवाः । पंक्तिः;
८ यवमध्या महायुवती, १९ त्रिष्टुप् ।

चन्द्रमा अस्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी १
अर्धमिदं वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुज्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी २
मो पु देवा अदः स्वरवः पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ३

अन्वयः— १ अप्सु अन्तः चन्द्रमाः (आ धावते),
विदि (च) सुपर्णः आ धावते । हिरण्य-नेमयः विद्युतः
१। पदं न विन्दन्ति । हे रोदसी ! मे अस्य (स्तोत्रस्य)
पतिम् ॥१॥

२ अर्थिनः अर्थं हव्य वै ऊँ । जाया पति आ युवते ।
(वी जायापती) वृष्ण्यं पयः तुज्जाते । (सा) रसं परि-
दाय (पुत्रं) दुहे । मे० ॥

३ हे देवाः ! स्वः अदः दिवः परि मो पु भव पादि ।
मा-सोम्यस्य शूने कदा चन मा भूम । मे० ॥

अर्थ— १ अन्तर्लक्ष्ये चन्द्रमा (रोदसी है), पु विद्युत-पुत्र
रोदसी है । (च) सुपर्णो सुपर्णो पुत्र न पश्यति स त्रयदा, वी जाया
वी स्थायि पुत्र गती अन्ते । हे दुष्टोक्त अदः (स्वः) दिवः २
प्रार्थना (का वी व) पुत्र अन्ते मे

२ अर्थिनः अर्थिनः अर्थं हव्य वै ऊँ । जाया पति आ युवते ।
पतिम् ॥१॥ (च) सुपर्णो सुपर्णो पुत्र न पश्यति स त्रयदा, वी जाया
वी स्थायि पुत्र गती अन्ते । हे दुष्टोक्त अदः (स्वः) दिवः २
प्रार्थना (का वी व) पुत्र अन्ते मे

३ हे देवाः ! स्वः अदः दिवः परि मो पु भव पादि ।
मा-सोम्यस्य शूने कदा चन मा भूम । मे० ॥

- यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
 क ऋतं पूर्य गतं कस्तद् विभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ४
 अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
 कद् व ऋतं कदनृतं क प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ५
 कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
 कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढयो वित्तं मे अस्य रोदसी ६
 अहं सो आस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
 तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ७
 सं मा तपन्त्याभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
 मूपो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ८
 अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरावता ।
 त्रितस्तद् वेदापत्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ९

४ अयमं यज्ञं पृच्छामि, तद् सः दूतः वि वोचति ।
 (ये) पूर्य ऋतं क गतम् ? कः नूतनः तद् विभर्ति ?
 मे० ॥

५ हे देवाः ! ये अमी त्रिषु स्थन, (ते) दिवः आ
 रोचने (यतन्ते) । यः ऋतं कद् ? अनृतं कद् ? वः प्रत्ना
 आहुतिः क ? मे० ॥

६ यः ऋतस्य धर्णसि कद् ? वरुणस्य चक्षणं कद् ?
 महः अर्यम्णः पथा कद् दूढयः अति क्रामेम । मे० ॥

७ पुरा सुते यः अहं कानि चित् वदामि, सः अहं
 अस्मि । तं मा व्याप्यः व्यन्ति, तृष्णजं मृगं वृकः न ।
 मे० ॥

८ पर्शवः ना अभितः, सपत्नीः इव संतपन्ति । हे
 शतक्रतो ! मूपः शिश्ना न, ते स्तोतारं मा व्याप्यः वि
 व्यदन्ति । मे० ॥

९ ये अमी सप्त रश्मयः, तत्र मे नाभिः आवता ।
 व्याप्यः त्रितः तद् वेदः । सः जामित्वाय रेभति । मे० ॥

४ मैं समीपके यज्ञसे प्रश्न पूछता हूँ, उसका (उत्तर)
 दूत (अग्नि) देगाही । (तुम्हारा) वह पुरातन (यज्ञ)
 चला आया) सरल भाव कहा गया है ? किस नवीनने
 धारण किया है ? । ० ॥

५ हे देवों ! जो (ये देव) तीनों (स्थानों) में हैं, (ये)
 ध्रुलोकके प्रकाश (स्थान) में (रहते हैं) । आपको ऋत
 कहाँ है ? आपका असत् कहाँ है ? आपको वी पुरातन
 कहाँ है ? । ० ॥

६ आपका सत्यका धारण करना कहाँ है ? वरुणकी
 दृष्टि कहाँ है ? वडे श्रेष्ठ अर्यमाका मार्ग कौनसा है जिसके
 दुर्घोंका अतिक्रमण कर सकेंगे ? । ० ॥

७ पुरातन समयमें सोमयागमें जिस यज्ञमें मैंने कई (यज्ञ)
 पडे थे, वही मैं हूँ । उसी मुखको मानसिक व्यक्त
 खा रही हैं, जैसी तृपित मृगको भेड़िया खाता है । ० ॥

८ पशुलियों सुते चारों ओरसे पत्तियोंके समान संतप
 हैं । हे शतक्रतो ! जिस तरह चुड़े कौमी जंगे तमू
 खाते हैं, वैसीही ये व्याप्य तेरी उपायना करेगा
 खा रही हैं । ० ॥

९ जो ये सात क्षिरण हैं, वही सप्त रश्मि हैं ।
 आपव त्रितको दृष्टका ज्ञान है । दृष्टलिये वह त्रिभय
 भावके लिये प्रार्थना करता है । ० ॥

- अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
 देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी १०
- सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
 ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यद्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ११
- नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
 ऋतमर्पन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी १२
- अग्रे तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
 स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी १३
- सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
 अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी १४
- ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
 व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी १५

१० अमी ये पञ्च उक्षणः महः दिवः मध्ये तस्थुः, देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीनाः नि वावृतुः । मे० ॥

११ एते सुपर्णाः आरोधने दिवः मध्ये आसते । ते यद्वतीः अपः तरन्तं पथः वृकं सेधन्ति । मे० ॥

१२ हे देवासः ! नव्यं उक्थ्यं सुप्रवाचनं तत् हितं, सिन्धवः ऋतं अर्पन्ति, सूर्यः सत्यं तातान । मे० ॥

१३ हे अग्ने ! तव त्वत् उक्थ्यं आप्यं देवेषु अस्ति । सः विदुष्टरः नः सत्तः मनुष्यत् देवान् आ यक्षि । मे० ॥

१४ मनुष्यत् सत्तः होता विदुष्टरः देवः देवेषु मेधिरो अग्निः, देवान् अच्छ हव्या सुषूदति । मे० ॥

१५ वरुणः ब्रह्म कृणोति, तं गातुविदं ईमहे । हृदा मतिं व्यूर्णोति । नव्यः ऋतं जायताम् । मे० ॥

१० ये वे पांच प्रवल बेल हैं (जो) बड़े सुलोभने मध्यमें रहते हैं, देवोंके संबंधका स्तोत्र पडतेही (वे) साय साधरी निवृत हुए हैं । ० ॥

११ ये सुन्दर पक्षी सुलोभने मध्यभागमें रहते हैं, वे विस्तृत जलमें तरनेवाले मजिमे हो नार्गमे दया देते हैं । ० ॥

१२ हे देवो ! यह नदीन अग्नि योग्य उच्छ स्तोत्र दित कारक है । नदियों जलको सा धरी हैं और तरने पर फैलता है । ० ॥

१३ हे अग्ने ! तव बड़ प्रसोक्तता मनुष्यता देवके पर है । यह तू विधेय सत्तो हमारे यः में मनुष्यके धनमें विदुष्टर देवोंको यक्षमें ला । ० ॥

१४ मनुष्यके धनन परने विदुष्टर का सत्तो देव और देवोंमें अग्नि सुषूदक वद अग्नि देवोंके स्तोत्र हव्या देवोंको सुषूदता है । ० ॥

१५ वरुण स्तोत्र ब्रह्म दे, उच नार्गदेव मनुष्यो हम नदीन रहते हैं । वरुणके स्तोत्रमें नदी नदीन देवोंको (रहते) नदीन देवोंको दे । ० ॥

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।

न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी १६

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।

तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृष्णज्ञं हूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी १७

अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।

उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी । १८

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि प्याम वृजने सर्ववीराः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामादितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १९

१६ यः असौ आदित्यः पन्थाः दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
हे देवाः ! सः न अतिक्रमे । हे मर्तासः ! तत् न पश्यथ ।
मे० ॥

१७ कूपे अवहितः त्रितः ऊतये देवान् हवते । बृह-
स्पतिः तत् शुश्राव । अंहूरणात् उरु कृष्णम् । मे० ॥

१८ अरुणः वृकः मा सकृत् पथा यन्तं ददर्श हि ।
तथा पृष्ट्यामयी इव निचाय्य उत जिहीते । मे अस्य तत्
हे रोदसी । वित्तम् ॥

१९ एना आङ्गूषेण इन्द्रवन्तः सर्ववीराः वयं वृजने
अभि प्याम । तत् नः मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी
उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

१६ यह जो आदित्यरूपी मार्ग धुलोकमें स्तुतिके वि-
योग्य किया गया है, हे देवो ! उसका अतिक्रमन नहीं कर-
ना चाहिये । हे मानवों ! वह मार्ग तुम देख भी नहीं सकते ।

१७ कूपमें पड़े हुए त्रितने अपनी सुरक्षाके लिये देवों
प्रार्थना की । बृहस्पतिने वह सुनी और कष्टोंसे छुटनेके लिये
विस्तृत मार्ग बना दिया । ० ॥

१८ लाल रंगके भेड़ियेने एक बार (मुझे) मार्गसे जाते हुए
देखा । पीठमें दर्द होनेवाले बढाईके समान उठकर वह मुझे बल-
लगाने लगा । हे भूलोक और धुलोक ! यह मेरी प्रार्थना जान ले ॥

१९ इस स्तोत्रसे (हम) इन्द्रके सामर्थ्यसे युक्त होकर, सब
सब वीर बनकर युद्धमें (शत्रुको) परास्त करेंगे । इस लो-
इच्छाका मित्र आदि सब देव अनुमोदन करें ॥

हमारी उन्नति हो

मनुष्यकी उन्नतिका मार्ग इस सूक्तमें बताया है । ' एक
कूपमें पड़े मनुष्यका उद्धार किया गया ' यह कथा इस सूक्तमें
वर्णन की है, इस तरह सभी पतितोंका उद्धार हो सकता है,
यह इसका आशय है ।

' विश्वे देवाः ' देवताका यह सूक्त है । अनेक देवताओंका
यहां संबंध है । प्रत्येक मंत्रके अन्तिम चरणमें ' रोदसी '
पद है जो धुलोक और भूलोकका वाचक है । इसका आशय
केवल पृथ्वी और आकाश इतना नहीं है, परंतु पृथ्वीसे आकाश-
तक जो भी कुछ है, वह सब इस देवताके अन्दर समाविष्ट
होता है । जो पृथ्वीपर है, जो अन्तरिक्षमें है और जो आकाश-
में है, वह सब ' रोदसी वा यावापृथिवी ' देवतामें समाविष्ट

होता है । इस देवतासे सर्वात्मभाव प्रकट होता है । सब वस्तु-
मानव जो भी कुछ इस विश्वमें है, वह सब यावापृथिवीमें है ।
ऐसी एक भी वस्तु नहीं है कि जो यावा-पृथिवीसे बाहर रह
सकती हो । यावापृथिवी, रोदसी यह द्विवचनी देवता है, य
यह एकही अखण्ड वस्तु है । प्रकाश-अन्धकार, पृथ्वी-आकाश,
जड़-चेतन, स्थूल-सूक्ष्म मिलकर एकही विश्व बनता है ।
वह इस देवतासे व्यक्त होता है, उसको उद्देय करके
सूक्त मानवोंके मनोभाव प्रकट कर रहा है ।

मानव इस विश्वका अंश है । मानव इस विश्वसे सर्वत्र
पृथक् नहीं है । मानव विश्वसे अनन्य है । इस अनन्य भावके
मनोभाव इस सूक्तमें प्रकट हुए हैं ।

इस सूक्तमें संपूर्ण विश्वरूप देवताकी प्रशंसा है, तो भी

१, सु. १०५]

लेखित देवताओंका स्पष्ट निर्देश भी यहां है—(मंत्र १)
चन्द्रमाः, सुपर्णः, यौः, विशुतः; (२) जाया, पतिः;
(३) देवाः, स्वः, यौः, सोमः; (४) यज्ञः, ऋतं; (५)
यौः, ऋतं, अमृतं, आहुतिः; (६) ऋतं, वरुणः अर्यमा;
सुतः (सोमः), अहं; (८) शतक्रवुः, स्तोता; (९) सप्त
यः, नाभिः, त्रितः आप्त्यः; (१०) पञ्च उक्षणः, यौः;
(११) सुपर्णाः, यौः, पन्थाः, आपः; (१२) देवासः, सिन्धवः,
सूर्यः, चत्वं; (१३) अग्निः, देवाः; (१४) होता, देवः,
मेः; (१५) वरुणः, ब्रह्म, मतिः, ऋतं; (१६) आदित्यः,
माः, यौः, देवाः, मर्तासः; (१७) त्रितः, देवाः, बृहस्पतिः;
(१८) अदणः वृकः, पन्थाः, तष्टा; (१९) मित्रः, वरुणः,
रतिः, सिन्धुः, पृथिवी, यौः, इतनी देवताएं इस सूक्तमें हैं,
जिनमें से इस सूक्तका देवता 'विश्वे देवाः' माना गया है।
विश्वे देवाः 'का अर्थ 'अनेक देवता' है।

इनमेंसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युस्थानमें देवताएं किस तरह
रमक होती हैं, वह देखिये—

पृथ्वी-स्थानमें

जापः, जाया, पतिः, पयः, देवाः, सोमः, यज्ञः, ऋतं,
 ऋतं, आहुतिः, सुतः (सोमरसः), अहं, स्तोता, नाभिः,
 शितः आप्यः, पन्थाः, सिन्धवः, अग्निः, होता, मतिः,
 मर्त्यः, वृकः, तष्टा, अदितिः, पृथिवी ।

अन्तरिक्ष-स्थानमें

आपः, चन्द्रमाः, विद्युतः, पयः, देवाः, धोमः, भद्रं, वरुणः,
वर्ममा, नाभिः, पन्थाः, अरुणः ।

द्यु-स्थानमें

गुरुः, द्यौः, देवाः, स्वः, सोमः, शतक्रतुः, सप्त
रिषयः, पञ्च उक्षाणाः, सूर्यः, सत्यं, व्रतम्, अदित्याः, उदरवतिः,
विश्वः, धरणः ।

ऐसी देवताओंकी गणना होती है। रोदणों जैसी देवता-
विक्रमों से देवताएं तथा अन्य सब धर्म जाती हैं। संतों
के सब रूपों से देवताओं का विग्रह होता है। सब देवता-
ओं से सब विग्रह सबके विचार करने से सब धर्मों में सब
सकते हैं।

જેમકે સિદ્ધાન્તે યવનના બે મુખ્ય-મુખ્ય દેશોને
તેમને સ્વતંત્ર રાજ્યો કીરે ગણેલા અને તેમને જાણે

मानवका उद्धार होता है। यह तत्त्व इस सूक्तमें प्रतिपादित किया गया है। अब क्रमशः मंत्रोंका विवरण देखिये—

मन्त्र १— (अप्सु अन्तः चन्द्रमाः) अन्तरिक्षमें चन्द्रमा भाग रहा है ऐसा दीखता है और (दिवि सुपर्णः) आकाशमें सूर्य चलता है ऐसा दिखाई देता है। पर वाचमें (विद्युतः) बिजलियाँ हैं इनका (पदं) स्थान निश्चयसे (न विन्दन्ति) कोई नहीं जानता। चन्द्रमाका तथा सूर्यका स्थान तो सब जानते हैं, यद्यपि ये दोनों गतिमान् हैं, तथापि इनका स्थान ज्ञानी जानते हैं, पर विद्युत् कहांसे चमकेगी यह कोई नहीं जान सकता। यह सदा गुप्त रहती है और अचानक एकदम चमक उठती है। सब दिव्यमें एकही अग्नि भरपूर भरा है, उसके अग्नि, चन्द्रमा, विद्युत् और सूर्य ये रूप हैं, पर विद्युत् रूप सदा गुप्त रहता है, अन्य रूप प्रकट होखते हैं। मैं इस तेजकी उपासना करता हूं, आकाश पृथ्वीरूप प्रभु मेरे इस प्रार्थनाका आशय जानें।

स्थूलसे सूक्ष्म जाना जा सकता है। इसी तरह अग्नि और सूर्य ये स्थायी अग्नि हैं। अग्नि धर्मनरि अग्निम उपायोमे प्रकट होता है, और विष्णु सरा गुप्त रहती है। सूर्यमे सूक्ष्मका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और तब ही हमें यह अग्नि एक ही है, यह जानना चाहिये और इसी अग्नि का अंतर अग्नि मुलमे है यह जानकर धर्म अग्नि-तत्त्वको अग्नि एका जाननी चाहिये।

इच्छा करनेमें प्राप्ति

[illegible]

1. 凡在本行開辦之各項業務，均應遵守本行所定之規章制度，並應隨時注意業務之改進，以期提高服務品質。

पत्नीमें गर्भाधान करता है, अपना वीर्य प्रदान करता है और पत्नी उसका स्वीकार करती है, इस तरह गर्भकी स्थापना होती है, (रसं परिदाय दुहे) वह पत्नी रसरूपी वीर्यका धारण करके पुत्ररूपको प्रसवती है। अथवा पतिके रसरूप पुत्रको निर्माण करती है। यह सब गृहस्थाश्रमका कार्य पति-पत्नीकी प्रबल इच्छासेही होता है। इसलिये शुभ इच्छा अवश्य धारण करनी चाहिये। शुभ इच्छाके बिना इस जागतिक व्यवहारमें सिद्धि प्राप्त होना असंभव है।

हमारी अवनति न हो

मं. ३— (स्वः अदः दिवः मो परि सु अव पादि) हमारा निज तेज इस स्वर्गके मार्गसे गिरकर नीचे न पड़े, अर्थात् हमारा तेज सदा ऊंचा फडकता रहे, उच्च मार्गसे ऊपर होकर उच्च स्थानमेंही विराजे। हम उच्च हों, कदापि अवनत न हों। सभी कार्यक्षेत्रोंमें हमारी उन्नति होती रहे, कदापि अवनति न हो। ऐसी इच्छा प्रत्येक मनुष्य अपने मनमें सदा धारण करे।

(शंभुवः शूने कदा चन मा भूम) सुख उत्पन्न करनेके साधन जहां न हों, वहां कदापि हम न रहें। अर्थात् सुखके सब साधन जहां हों वहां हम रहें। हम अपने पास सब सुखके साधन जमा करें। सब अन्न पेय, वस्त्रप्रावर्ण, औषधिवनस्पति, गृह-उद्यान, सुरक्षाके सब साधन आदि सब हमारे पास रहें। समयपर इनका उपयोग करके हम सदा आनन्द-प्रसन्न हों।

पूर्व और नूतनका मेल

मं. ४— मैं (अवमं यदां पृच्छामि) पास रहनेवाले यजनीय देवसे पूछता हूं। समीपस्थ ज्ञानी पुरुषसे ही जो कुछ पूछना हो वह पूछना चाहिये। क्योंकि शंका समाधान करना, बारंबार उससे सहायता प्राप्त करना आदि समीपस्थ ज्ञानीसेही हो सकता है। (सः विवोचति) वही मुझे कहेगा, समझा देगा, समझा देगा अथवा बता देगा।

(पूर्व्यं कृतं क गतं ? कः नूतनः तत् विभर्ति ?)

प्राचीन सत्त्व किम दिशासे जाता था ? और कौन नवीन उसको आज धारण करता है ? प्राचीन कृतव्यके मार्ग कैसे थे और उनका स्थान आजके किन सुराणोने किम तरह लिया है ? वृद्ध किम तरह आचरण करते थे और नवीन तद्वत् उसका

कितना स्वीकार कर रहे हैं ? समाजका विचार करना इसका विचार करना चाहिये। पूर्व समयमें लोगोंके (कृतं) सरलता कितनी थी और नवीनोंमें कितनी इसका विचार होना चाहिये। प्राचीन ज्ञानियोंके दोन आचरणोंमें न रहें, पर उनकी (कृतं) सरलता, सत्ता, पन, अकुटिलता तो नवीनोंके व्यवहारमें होनीही चाहिये कितनी है, इसका विचार करना चाहिये। व्यक्ति और सुधर रहा है या विगड़ रहा है, इसका निर्णय इससे जिसके पास वह (पूर्व्यं कृतं) प्राचीन सरलता होगी, अपना अगुवा करना चाहिये। ऋतवादीही नेता बने, वादी नेता न बने, क्योंकि उसपर विश्वास रखना असंभव है। इसलिये ' कृतं ' (सरलता) ही सबका मार्गदर्शक

सत्य और अनृतका स्वरूप जानो

मं. ५— (वः ऋतं कत्, अनृतं कत् ?) सत्यधर्म कौनसा है और असन्मार्ग तुम्हारा कौनसा है ? विचार करनेयोग्य प्रश्न है। प्रत्येक मनुष्य अपनेको यह कह सकता है, पर उसके सत्यका स्वरूप और असत्यका निश्चित होना चाहिये। अर्थात् एक कहेगा कि मैं शत्रुसे मिलनेसे लाभ है और दूसरा कहेगा कि शत्रुसे मिलनाही इस समय योग्य है। ऐसे विभिन्न मार्ग हो सकते हैं और विभिन्न मनुष्योंको वे विभिन्नतया प्रिय भी हो सकते हैं। इसलिये केवल ' ऋत और अनृत ' का विचार करना नहीं है, प्रत्युत उसके ' ऋत ' का अभिप्राय क्या है उसके ' अनृत ' का भाव क्या है, यह प्रथम जानना चाहिये क्योंकि आर्य, दस्यु, राक्षसोंके दृष्टिकोण विभिन्न होनेसे उनके धर्म और साध्य भी विभिन्न होंगे, इसलिये उनके सत्यका भाव क्या है, यह पहिले जानना चाहिये।

(ये त्रिषु स्थान, (ते) दिवः आ रोचने) लोग तीनों स्थानोंमें रहते हैं, वे छुलोकके पवित्र प्रकाशमें रह सकते हैं। यदि वे सच्चे सन्मार्गसे चलेंगे तो अवश्यही वे प्रकाशमें परम उच्च स्थानमें रहेंगे। उनको निकट जाननेयोग्य कोई हीन वताव कभी करना नहीं चाहिये। मनुष्यको सदा ऐसाही व्यवहार करना चाहिये कि उसकी योग्यता अधिक उच्च होती जाय।

(वः प्रत्ना आहुतिः क ?) हमने तुम्हें जो पूर्व धर्म में अर्पण किया था वह कहाँ है ? हमने जो तुम्हें पूर्व धर्म

क्यों या उसका क्या बना ? इसका विचार करना चाहिये ।
 संभव जो किया था उसका परिणाम क्या हुआ, उससे हित
 या अहित, यह विचारपूर्वक देखना चाहिये । ऐसा कभी
 होना चाहिये कि हम देतेहो रहें और उसका परिणाम
 अहित होता रहे, तथापि हम उसका विचार न करते हुए
 तो करते जायें । यह तो नृखताकी बात होगी । अतः पूर्वके
 प्रत्येक परिणाम क्या हुआ इसका विचार करके आगेका
 चलन करना चाहिये ।

हमारा ध्येय

मंत्र ६— (दुःखः अति क्रामेन) दुष्ट बुद्धिवालों का
 विक्रमन करके हम सुबुद्धिवालों की संगतिमें रहेंगे । हम
 ऐसा दमन करेंगे, जो दुष्ट होंगे उनको पीछे रखकर हम
 प्राये बहेंगे और उत्तम अवस्थामें रहेंगे । यह हमारा ध्येय है ।
 अन्तमें कहा है कि (विनाशाय च दुष्कृतां) दुष्टों का नाश
 करना चाहिये । दुष्ट मानव सब समाजको कष्ट देते हैं, इसलिये
 उनका दमन करना चाहिये, उनको बढने नहीं देना चाहिये,
 उनको प्रतिबंधमें रखना चाहिये, वे समाजको उपद्रव नहीं
 फैलावे ऐसी स्थितिमें उनको दबाकर रखना चाहिये । यह
 हमारा ध्येय है, यह सत्यरुषों का साध्य है, यही श्रेष्ठ लोग
 कार्य को चाहते हैं । इस साध्यको सिद्ध करनेके तीन उपाय

१. ऋतस्य घर्णसिः— सत्यका समय आधार,

१ वरुणस्य चक्षुः— वरिष्ठ दृष्टाका निरीक्षण, और

१ अर्यन्ः पथाः (गमनं) — आर्यं मनवालेकै मार्गसे गमन.

वे तीन साधन हैं कि जिनसे दुष्टों को दूर करके सज्जनों का मार्ग सुगम होना संभव है। (ऋतस्य धर्मासिः)

श्री गौर सरस्वतीका सामर्थ्ययुक्त वाधार प्राप्त करना चाहिए ।

जैसे कार्यके लिये सत्यका आधार हो, अपना पक्ष
विरोध करनेवाला सिद्ध हो अपने पक्षमें किसी तरह भी

कृत्रिम बाधद्वारा स्थित हो, अपने समक्ष स्थिति में न हो। (वहलस्य
ऐसी बात, कुटिलता, धोम या अनाचार न हो।) (वहलस्य)

(वसुधै कुर्वन्तु मातुरम्) वा अथवा वसुधै कुर्वन्तु मातुरम्, उक्तं निरीक्षण
मा। कर्त्तव्यतायाः अर्थः निरीक्षण हो, अथ नद कुर्वन्तु

है। कर्मकर्ताओंपर प्रेक्षा निरीक्षण हो, प्रेक्षा
निरीक्षणके कारण कोई भी कार्यकर्ता प्रेक्षा करके

ऐसा होनेसे सब लोग उत्पन्न हुए। (अथर्ववेदः पञ्चाः)

१०६। (भयंभ्याः पन्थाः)

मार्गसे कदापि नहीं जाना चाहिये, परंतु आर्षोके सम्मार्गसे ही जाना चाहिये ।

जाना चाहिये ।
 आर्यमार्गसे जाना, सत्यका आधार प्राप्त करना और
 श्रेष्ठ पुरुषके निरीक्षणमें अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे करना,
 यह मार्ग है जिससे मनुष्यकी उन्नति होती है । इसीलिये इस
 मंत्रमें ये तीन प्रश्न किये हैं— (१) तुम्हारा सत्यधर्मका
 आधार कैसा है ? (२) तुमपर श्रेष्ठ पुरुषका निरीक्षण कैसा
 है ? और (३) तुम श्रेष्ठोंके विस्तृत मार्गसे जाते हो या
 नहीं, तो देखो और जान लो कि तुम दुष्टोंका अतिक्रमण कर
 सकते हो या नहीं ?

यदि तुम्हें सत्यधर्मका आधार नहीं है, यदि तुम्हारे ऊपर श्रेष्ठ चरुपत्रका निरीक्षण नहीं है और यदि तुम आर्योके श्रेष्ठ और विस्तृत मार्गसे नहीं जाते, तो तुम समझ लो कि तुम्हें स्यादी यज्ञ नहीं मिलेगा। असत्यका आश्रय करना, दुष्टोंके पीछे चलना और जनार्णोके मार्गसे जाना ये करने नाशको प्राप्त होनेके साधन हैं। पाठक इस मंत्रका बहुत विचारपूर्वक मनन करें और अपने व्यवहारको देखें। इससे उनको सत्यो उषतिके मार्गका पता लग सकता है।

मानसिक अशान्तिका दूर करना

मानसिक अशांतता का दूर होना
मन्त्र ७—(सः बह्वं अस्मि) बहो मैं हूँ कि (यः पुरा
सुप्ते वदामि) जो पूर्व समयमें अपने पेशमें का मान
करता था। अर्थात् मैं बड़ा विद्वान् हूँ तथापि (तृष्णया मुग्धो
वृकः न) प्यासे हिरन को जैसा भौंकता वृक होता है, उस तरह
(आभ्यः ना व्यन्ति) मानसिक व्यग्रहें मुझे छू नहीं हैं।
विद्वत्ता प्राप्त करकेर भी मेरा मन शांत नहीं हुआ, नीति-
तन्त्रा सुते जाता रहा है, सोच सुते अशक्त कर रहा है, रसों
तरीख मानसिक कष्टोंसे अनेक प्रकार सुते सुख हो रहा है।
मह कभी हो रहा है। यही लड़क के बच्चे कि, सोच विचार करने-
मानसिक मानसिक शक्ति को मजबूत हो चला। बड़े
छोटे संस्कारों के अनुसार जो बरतन लक्ष्मणें शक्ति प्राप्त होती।
मानसिक शक्ति का दूर होना कि अनेक प्रकार, मनेक प्रकार,
अनेक प्रकार बरतन, सुप्ते अनेक प्रकार के सुप्ते बरतन।
अनेक प्रकार के अनेक प्रकार के बरतन। अनेक प्रकार के बरतन।
अनेक प्रकार के अनेक प्रकार के बरतन। अनेक प्रकार के बरतन।
अनेक प्रकार के अनेक प्रकार के बरतन। अनेक प्रकार के बरतन।

三、一、二、三、四、五、六、七、八、九、十

संख्या : १०७३

44-38861-250. Encl. 11/27/54

शिक्षा न व्यदन्ति) में उपासक हूँ तथापि मानसिक आपत्तियाँ मुझे खाती हैं, जिस तरह चूहे काजी लगाये सूत्रको खाते हैं। स्तुति, प्रार्थना, उपासना, भजन, पूजन करनेवालेको भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती, वह भी मानसिक आपत्तियोंकी अग्निमें जलता रहता है। मानो मनेव्यथाएँ उसको वैसी खा जाती हैं जैसे काजी लगे सूत्रके चूहे खाते हैं। स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनेमात्रसे मानसिक शान्ति नहीं मिलती, यह यहाँके मंत्रभागका तात्पर्य है। सूत्रपर काजी लगानेसे वह सूत्र चूहे खा जाते हैं, वैसा कौनसा लेप अपने ऊपर लगानेसे मानसिक व्यथारूपी चूहे अपनेको खा सकते हैं इसका विचार करना चाहिये। जिस तरह सूत्रपर काजीका लेप होनेसे चूहे काटते हैं, उसी प्रकार हमपर प्रबल भोगेच्छाका लेप लगनेसे कामक्रोधादि चूहे काटने लगते हैं। इसलिये यदि हम भोगवासनासे अलिप्त रहेंगे तो कामक्रोधादि चूहे हमें नहीं खायेंगे, यह इस मंत्रार्थका तात्पर्य है।

(सपत्नीः इव पशवः मा अभितः सं तपन्ति) सौतिनियोंके समान ये फरसे मुझे चारों ओरसे संतप्त करते हैं। जिस तरह सौतिनियाँ पतिको कष्ट देती हैं, उस तरह ये फरसे, ये शस्त्रसंभार, मुझे कष्ट देते हैं। अपनी सुरक्षाके लिये मैंने अपने चारों ओर अनेक फरसे खड़े किये, अनेक शस्त्र बढ़ा दिये, पर वेही मुझे सता रहे हैं, उस शस्त्रसंभारके नीचे मैं दब गया हूँ। उन शस्त्रधारियोंके सामने मुझे डरना पड़ रहा है। जिस तरह सुख बढ़ानेके लिये मैंने अनेक ज़ियाँ कीं, पर उनके आपसके ईर्ष्याद्वेषके और झगडोंके कारण मुझेही कष्ट हो रहे हैं, वैसेही ये सुरक्षाके साधनही मेरे सिरपर चढ़कर अब मुझे दया रहे हैं। जो मैंने अपने हितके लिये किया, वही मेरा दुःख बढ़ा रहा है।

मनुष्यका ऐसाही व्यवहार चल रहा है। मनुष्य जो सुखके लिये करता है, वही उसके स्वाधीन न रहा तो वही उसका दुःख बढ़ा देता है। इसलिये पत्नियाँ भी अधिक नहीं करना चाहिये, फरसों अर्थात् शस्त्रसंभारके अधीन भी नहीं होना चाहिये और भोगोंका लेपन भी अपने ऊपर नहीं लगाना चाहिये। तब मनुष्यको मानसिक व्यथाएँ कष्ट नहीं दे सकेंगी।

विश्वकुटुंबका भाव

मंत्र ९— (ये अमी सप्त रश्मयः) जो वे रश्मियाँ सूर्यकी फैली हैं, जहाँतक सूर्यके किरण प्रकाश (तत्र मे नाभिः आतता) वहाँतक मेरा घर, कुटुंबभाव फैला है। वहाँतक संपूर्ण विश्वको मैं अपना अपना परिवार अनुभव करता हूँ। आपस्य त्रित इसका अनुभव हुआ, अतः वह सर्वत्र बंधुभावकी करनेके लिये (जामित्वाय रेभति) प्रवचन करता है। आपस्य त्रित ऋषिकी जीवनकी इच्छाही यह है कि इस सर्वत्र बंधुभाव स्थापित हो। जहाँतक सूर्यके किरण हैं वहाँतक अपना एकही कुटुंब है ऐसा सब मानें उसमें संपूर्णतया बंधुभाव स्थापन करनेका सब बल विश्वशान्तिका यह एकमात्र उपाय है।

मंत्र १०—ये जो पांच (पञ्च उक्षणः) बैल हैं, वे मुझे मध्यमें ठहरे हैं। शरीरमें घुलोक सिर है, इस शिरमें इन्द्रिय रहते हैं, वे महा शक्तिशाली हैं। आँख, नाक, मुख, और त्वचा ये पांच बड़े शक्तिशाली हैं। इनके शृषभ, पंच प्राण, पंच अग्नि आदि नाम हैं। (देवत्रा प्रवक्ष्यन्ति) देवताओंकी उपासना प्रारंभ होतीही ये पांचों (सप्तोक्ता निववृत्तुः) एकदम विषयोंसे निवृत्त होते हैं। जब मन तन सनामें तल्लीन होता है, उसके साथ साथ ये सब इन्द्रिय बेल विषयोंसे निवृत्त होते हैं और येभी उपासनामें मग्न होते हैं। मन तथा इन्द्रियोंकी शुभ प्रवृत्ति करनेका यह साधन है।

मंत्र ११— ये (सुपर्णाः) उतम पंखवाले पक्षी मुझे मध्यभागमें बैठे हैं, (यक्ष्मतीः अपः तरन्तं) वेगसे चलनेवाले जलप्रवाहोंमें तैरनेवाले (वृक्तं पथः सेघन्ति) मेरे मार्गमें ही वे हटाकर एक ओर करते हैं, मार्गमें रहने देते। यहाँ सूर्यकिरण पक्षी हैं और भेडिया अन्धकार ये सूर्यकिरण अन्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग देते हैं। इससे मनुष्य जायँ और सुकृति आनंद प्राप्त करे। यहाँ अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करके प्रकाशके मार्गको प्रकाश करना दुःखसे मुक्त होनेका साधन बताया है।

हितकारी स्तोत्र

मंत्र १२— यह (नव्यं उक्थ्यं) नवीन स्तोत्र (सुप्रवाचनं) बारंबार पढ़कर मनन करनेयोग्य (हितं) और

क है। जिस तरह (सिन्धवः श्रुतं अर्पन्ति) रहना योग्य है।

जल बढ़ता है और जैसा (सूर्यः सत्यं ततान) प्रकाश फैलता है, उस प्रकार यह नया सूक्त (विद्यारूप) शान्ति और (ज्ञानसूर्यका) प्रकाश देकर सबका करता है। इस मंत्रमें ' सु-प्र-वाचन ' पद है। उत्तम सुभाषित, शुभवचन ऐसा इसका अर्थ है। यदि इसका (सु-प्र-वाचन) उत्तम वाचन, उत्तम पठना हो सकेगा, उस पदसे सूक्त लिखे जाते थे और उनका वाचन किया था ऐसा भाव उससे निकलेगा और लेखनकी कलाकी भी इसीसे हो सकेगी। पर यहां ' वाचन ' पद ' वचन ' अर्थमें है ऐसी विद्वानोंकी संमति है।

सज्जनोंकी संगतिमें रहो

मंत्र १३— (देवेषु उक्थ्यं आप्यं) देवी संपत्तिवाले दुष्टोंके साथ जो बंधुभाव होता है वही प्रशंसनीय होता है। यदि दुष्टोंके साथ अपना संबंध रखना उचित नहीं है। (विदुस्तरः) अत्यंत ज्ञानी बन और (देवान् आ यक्षि) दुष्टों, दिव्य विबुधोंका यहां का और उनका सम्मान कर।

मंत्र १४— अत्यंत ज्ञानी बुद्धिमान् अग्नि जैसा तेजस्वी है, दिव्य विबुधोंका अवलपानादि द्वारा सत्कार करता है।

ज्ञानीके मार्गदर्शनमें रहो

मंत्र १५— (वरुणः ब्रह्म कृणोति) वरिष्ठ ज्ञानी नया काव्य करता है, बिना ज्ञानके मार्गदर्शन करना संभव है। इसलिये (गातुर्विदं ईमहे) जो मार्गदर्शन करता है उसीकी हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसके मार्गदर्शने हम उन्नतिके मार्गपर चलेंगे और उन्नतिकी प्राप्ति। वह ज्ञानी— (हृदा मतिं वि ऊर्णोति) अपने रससे सद्बुद्धिकी प्रकट करके अनन्तताका मार्गदर्शन करता है। (नयः कृतं जायतां) नदी रीतिसे सत्य मार्ग बनता है अपनी नदी आयोजना प्रकट करता है जिससे जानसे पथ बनाना होता है। इसलिये अच्छे सज्जनोंकी संगतिमें

रहना योग्य है।

मंत्र १६— यह जो सूर्यका प्रकाशमार्ग धुलोकमें प्रशंसित हुआ है, उसका (न अतिक्रमे) उल्लंघन करना योग्य नहीं है। (मर्तासः, तत् न पश्यथ) हे मानवो ! क्या आप यह नहीं देखते ? अर्थात् प्रकाशके मार्गसेही मनुष्योंको जाना चाहिये, कभी उसका उल्लंघन करना किसीको भी उचित नहीं है। सब मानव इसका महत्त्व अनुभव करें और समझें कि यही हमारी उन्नतिका साधन है।

मंत्र १७— कूपमें पड़ा त्रित अपने उद्धारके लिये देवोंकी प्रार्थना करता है। बृहस्पति-ज्ञानी देवोंने वह उसकी पुकार सुनी और अधोगतिसे उसको ऊपर उठा कर उन्नत किया।

दुःखके अन्दर रहनेवाला अपने दुःखसे मुक्त होनेके लिये दिव्य विबुधों-ज्ञानियोंकी प्रार्थना करता है। उनमेंमें जो ज्ञानी उसकी सहायता करते हैं, वे उसकी सहायतार्थ उसके पास आते हैं और उसका उद्धार करते हैं अर्थात् दुःखसे उन्मुक्त करते हैं।

मंत्र १८— ताल रंगके (पृक्तः) ने उड़ने, अर्थात् उदयकालके आदिखने, सुते देखा कि मैं ठीक मार्गों पर रहा हूं। और (निचाय्य उन् विर्जति) मैंने तुम ऊपर उठाया, मेरा उद्धार किया, सुते हुए मुझे ऊपर, जिस तरह पीठमें बंधे होनेपर तब खन केरों उठते हैं और पीठकी पीठसे मुक्त होता है।

मंत्र १९— इस सूक्तके अन्तमें (ययं नदीदीपः पृजने अनि ध्याम) हम नदी के किनारे बैठकर जलमें स्नान करने लगे हैं और नदी के किनारे बैठकर जलमें स्नान करने लगे हैं।

इस सूक्तके अन्तमें बड़े महत्त्वपूर्ण है, नदी के किनारे बैठकर जलमें स्नान करने लगे हैं और नदी के किनारे बैठकर जलमें स्नान करने लगे हैं।

[२] आदित्य-प्रकरण

विजय, लाभ और निष्पापीपन प्राप्त करना

(अ. ८।४७) त्रित आप्यः । आदित्याः, १४-१८ आदित्योपसः (दुःस्वप्नम्) । महापृथ्विः ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुपे ।

यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।

पक्षा वयो यथोपरि व्य१से शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २

व्य१से अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन ।

विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ३

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।

मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ४

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।

स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ५

अन्वयः— १ हे मित्र वरुण ! (हे अर्यमन् !) महतां वः अवः दाशुपे महि । हे आदित्याः ! यं द्रुहः अभि रक्षय, ईं अघं न नशात् । वः ऊतयः अनेहसः, वः ऊतयः सु-ऊतयः ॥

२ हे देवाः आदित्यासः ! अघानां अपाकृतिं विद । वयः यथा पक्षा उपरि (कुर्वन्ति), अस्मै शर्म यच्छत । वः ऊतयः ० ॥

३ अस्मै अधि तत् शर्म (अस्ति तत्) पक्षा वयो न वि यन्तन । हे विश्ववेदसः विश्वानि वरूथ्या मनामहे । वः ऊतयः ० ॥

४ हे प्रचेतसः ! यस्मै क्षयं जीवातुं च अरासत, (तस्मै) इमे आदित्याः विश्वस्य घेत् मनोः रायः ईशते । वः ऊतयः ० ॥

५ दुर्गाणि यथा नः अघा परि वृणजन् । इन्द्रस्य शर्मणि स्याम । उत आदित्यानां अवसि । वः ऊतयः ० ॥

अर्थ — १ हे मित्र, वरुण (और अर्यमा) ! आप ओं श्रेष्ठोंका संरक्षण दाताके लिये बहुत (ही) प्राप्त होता है । हे आदित्यो ! जिसको द्रोही शत्रुसे आप सुरक्षित रखते हैं, उसे पाप कष्ट नहीं देता । क्योंकि आपकी सुरक्षाएँ निराल हैं, आपकी रक्षाएँ उत्तम हैं ॥

२ हे देव आदित्यो ! हमारे पापोंका नाश करनेवाला तुम्हें है । पक्षी जिस तरह अपने बच्चोंपर (पंखोंके द्वारा) करते हैं, वैसा हमें सुख देओ । आपकी ० ॥

३ हमारे ऊपर आपका वह सुख (रहे), जैसा पंखोंके पक्षी (अपने बच्चोंको) देते हैं । हे सर्वज्ञो ! सब प्रकारके संरक्षण हम चाहते हैं । आपकी ० ॥

४ हे ज्ञानी देवो ! जिसके लिये आश्रय और जीवनरक्षण तुम देते हो, उसके लियेहो, (उसको धन देनेके लियेही) हे आदित्य सब मानवोंके धनोपर अधिकार स्थापित करते हैं । आपकी ० ॥

५ जिस तरह कठिणताओंको दूर करते हैं, ऐसे हम पापोंको दूर करते हैं । इन्द्रके आश्रयमें हम रहेंगे और आदित्योंकी सुरक्षामें भी रहेंगे । आपकी ० ॥

परिहृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।

देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ६

न तं तिमं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।

यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ७

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्तइव वर्मसु ।

यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ८

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु ।

माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ९

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।

त्रिधातु यद्भूरुध्यं १ तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १०

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः ।

सुतीर्थमर्वतो यथाऽनु नो नेपथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११

६ परिहृता इव अना जनः युष्मादत्तस्य (धनं) वायति । हे आश्रयः देवा ! ये अहेतन (सः) अदभ्रं (शक्ति), वः ऊतयः ॥

७ तं तिमं चन त्यजः न द्रासत् । तं गुरु (न द्रासत्) । हे आश्रयः ! सप्रथः यस्मा उ शर्म अराध्वं, वः ऊतयः ॥

८ हे देवाः ! (यथा) युध्यन्तः वर्मसु, युष्मे अपि (वर्म) ष्मसि । यूयं नः महः एनसः उरुष्यत । यूयं अर्भादु (अरुष्यत) । वः ऊतयः ॥

९ वः अदितिः उरुष्यतु । अदितिः शर्म यच्छतु । माता मित्रस्य देवतः अर्यम्णः वरुणस्य च (शर्म यच्छतु) । वः ऊतयः ॥

१० हे देवाः ! यत् शर्म शरणं, यत् भद्रं, यत् अनातुरं, यत् त्रिधातु, यत् वरुध्यं, तत् अस्मासु वि यन्तनाः वः ऊतयः ॥

११ हे आश्रयः ! कूलादिव स्पशः अव हि ख्यत । सुतीर्थमर्वतः यथा । नः सुगमं अनुनेपथ । वः ऊतयः ॥

६ दुःखी अवस्थामें रहकर (तुम्हारी भक्तिमें) जीवित रहा (भक्त) मानव तुम्हारे दिवे (धन) को प्राप्त करता है । हे शीघ्रगामी देवो ! जिसके पास तुम जाते हो वह तुम्हें (धन प्राप्त करता है) । आरधी ॥

७ उसको तक्षिण शस्त्र भी नहीं छूटता । वह छूट तो उसे नहीं छूटता । हे अदिति ! जिसके तुम जाते हो वह तुम्हें (वर सुखी होता है) । आरधी ॥

८ हे देवा ! जैसे तुम कनिष्ठों के वर्म में (वर्मसु) होते हो (वर्मसु) वैसे तुम भी बड़े वर्म में (वर्मसु) होते हो । जैसे तुम बड़े वर्म में (वर्मसु) होते हो (वर्मसु) वैसे तुम भी बड़े वर्म में (वर्मसु) होते हो । आरधी ॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।

गवे च भद्रं घेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १२

यदाचिर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।

त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मदधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १३

यच्च गोषु दुष्प्वप्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।

त्रिताय तद्विभावर्थाप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १४

निष्कं वा वा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।

त्रिते दुष्प्वप्यं सर्वमाप्त्ये परि दग्नस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १५

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुपे ।

त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्प्वप्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १६

यथा कलां यथा शकं यथा ऋणं संनयामसि ।

एवा दुष्प्वप्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १७

१२ इह भद्रं रक्षस्विने न, अवयै न, उत उपयै न ।
गवे च भद्रं, घेनवे, वीराय, श्रवस्यते च (भद्रं भवतु) ।
वः ऊतयः ० ॥

१३ हे देवासः ! यत् आविः अस्ति, यत् दुष्कृतं
अपीच्यम्, तत् विश्वं आप्त्ये त्रिते (मयि मा भूत्), अस्मत्
आरे दधातन । वः ऊतयः ० ॥

१४ हे दिवः दुहितः ! यत् च गोषु यत् च अस्मे,
दुष्प्वप्यं, हे विभावर्त ! तत् आप्त्याय त्रिताय परा वह ।
वः ऊतयः ० ॥

१५ हे दिवः दुहितः ! निष्कं वा वा कृणवते दुष्प्वप्यं, वा
स्रजं, (तत्) सर्वं आप्त्ये त्रिते परि दग्नसि । वः ऊतयः ० ॥

१६ तदन्नाय, तदपसे, तं भागं उपसेदुपे त्रिताय द्विताय
च हे उषः ! दुष्प्वप्यं वह । वः ऊतयः ० ॥

१७ यथा कलां, यथा ऋणं, यथा शकं, संनयामसि, एव
सर्वं दुष्प्वप्यं आप्त्ये सं नयामसि । वः ऊतयः ० ॥

१२ यहां राक्षसी लोगोंका कल्याण न हो, बतकोंका
कल्याण न हो और उपद्रवी लोगोंका नी न हो । बैल, गव,
वीर और यशके लिये दल करनेवालाका कल्याण हो । आपकी० ॥

१३ हे देवो ! जो प्रकट (पाप) हुआ हो, जो पुत्र का स्व
हो, वह सब सुख त्रित आपसमें न रहे, वह दूर बहे ।
आपकी० ॥

१४ हे सुलोककी पुत्री (उषा) ! जो गौत्रमें और स्व
पुरा स्वप्न बाधाकारी हो, हे त्रेत्रस्विनी उषा ! उसके
आपसमें- सुखमें- दूर कर ॥ आपकी० ॥

१५ हे सुलोककी पुत्री ! अलंकार करनेवाले (मुद्गर) के
अथवा माला बनानेवाले (माली) के पास जो दुष्ट स्वप्न हो
सब (सुख) आपस त्रितकी छोटकर दूर चला जाय । आपकी० ॥

१६ वह अन्न लेनेवाला, वह कर्म करनेवाला, अन्न
भोगका अंग स्वीकार करनेवाला त्रित और दित है, हे उष !
उसके पासमें वह दुष्ट स्वप्न (का कारण पाप) दूर रहा दे ।
आपकी० ॥

१७ जैसा सुद, जैसा ऋण और जैसा नूल बड़ (शक्न)
हम पूर्णतया दे डालते हैं, वैसाही सब दुष्ट स्वप्न आपकी
पासमें पूर्णतया ले जाते हैं । आपकी० ॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागतो वयम् ।
उषो यस्मादुष्वप्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १८

१८ वयं अद्य अजैष्म । असनाम च । अनागतः अभूम् । हे उषः ! यस्माद् दुष्वप्यात् अभैष्म, तत् त्वं उच्छन्तु । वः ऊतयः ० ॥

१८ हमने आज विजय प्राप्त किया है । हमने लाभ प्राप्त किया है । हम निष्पाप बने हैं । हे उषादेवी ! जिस दुष्ट स्वप्नसे हम भयभीत हो चुके थे, वह (भय) दूर हो । आपकी ० ॥

विजयी बनना, लाभ प्राप्त करना और निष्पाप होना

इस सूक्तका अन्तिम मंत्रमें कहा है, वह यह है । (मंत्र १८)

१ अद्य वयं अजैष्म—आज हम विजयी होंगे, आजही शत्रुको परास्त करेंगे ,

२ अद्य वयं असनाम— आजही हम लाभ प्राप्त करेंगे, धनादि ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे,

३ अद्य वयं अनागतः अभूम्—आज हम सब निष्पाप बनेंगे, निर्दोष व्यवहार करेंगे,

पापसे दोष होते हैं, दोषसे बुरे कर्म होते हैं, बुरे कर्म हुए तो उनके दोषोंसे लाभ नहीं होता, और विजय भी नहीं मिलता । इसलिये सबसे पहिला कर्तव्य निष्पाप होना है, यही सब उन्नति का आधार है । इसलिये इस सूक्तमें प्रायः अनेक मंत्रोंमें यही विषय कहा है—

मं. १— यं अभि रक्षथ, ईं अयं न नशत्—जिसको (देव) सुरक्षा करते हैं उसको पाप नहीं लगता,

१— अघानां अपाकृतिं विद— तुम पापोंका निराकरण करनेका उपाय जानते हैं,

५— नः अघा परि वृणजन्—हमारे पापोंको दूर करो,

८— पूयं नः महः अर्भात् एनसः उरुष्यत— तुम हमें बड़े और छोटे पापसे बचाओ,

११ यत् आविः अपीव्यं कुच्छत्, तत् अस्माद् अरे दधातन— जो प्रकट अथवा गुप्त पाप हुआ हो वह सब हमसे दूर करो,

१८ वयं अद्य अनागतः अभूम्— हम आज निष्पाप बनेंगे, निर्दोष होंगे ।

इस तरह १८ मंत्रोंमेंसे ६ मंत्रोंमें निष्पाप होनेकी सूचना दी है । क्योंकि यहाँ मानवी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है । इसके साथ साथ पापसे बुरा स्वप्न होता है और मानवीको सताता है, पाप न हुआ तो बुरा स्वप्न भी नहीं सतायेगा, यह भाव मंत्र १४—१७ तकके चार मंत्रोंमें कहा है—

१४ दुष्वप्यं परा वह— दुष्ट स्वप्न हमसे दूर बहा दे,

१५ दुष्वप्यं परि वृक्षसि— दुष्ट स्वप्न चारों ओरसे दूर करो,

१६ दुष्वप्यं वह— दुष्ट स्वप्न दूर बहा दो,

१७ दुष्वप्यं संनयामसि— दुष्ट स्वप्नको हर्षित कर दो,

इस तरह दुष्ट स्वप्नका जो मूल कारण माना है वह दूर करनेकी सूचना यहाँ है । नैतिक, वास्तविक, मनसिक दोषोंसे दुष्ट संस्कार और दुष्ट स्वप्न होते हैं । मानवी व्यवहारके स्वभावके सूचक स्वप्न हैं, यदि स्वप्न दुष्ट होने लगे, तो मनसिक कारणों कि मनुष्यके व्यवहार और संस्कार बुरे हैं, उनका सुधार आवश्यक है ।

इस तरह इस सूक्तके १८ मंत्रोंमेंसे १० मंत्रोंमें चारों ओर दुष्ट संस्कारों, तथा उनके सूचक दुष्ट स्वप्नोंके दूर करनेका आदेश दिया है । इनके अन्तर्गत व्यवहार के अर्थ हैं ।

इससे प्राप्त होनेकी सुझाव (अर्थव्युत्पत्ति) निम्न है और उक्त संस्कार (सु-क-म-) नहीं हैं, ऐसा अनेक मंत्रोंमें कहा है । इसका अर्थ यह है कि ऐसे विषयों में जो स्वप्न के अन्तर्गत आते हैं, उनका सुधार करना चाहिए । अतः दुष्ट स्वप्न-दूर करनेके लिये अनेक उपाय बताये हैं ।

- मं. १— यया पक्षा उपरि कुर्वते-पक्षी अपने छोटेछोटे
बच्चोंपर अपने पंख फैलाकर उनको सुरक्षा करते हैं,
३— पक्षा चयो न— पक्षीय पक्षी अपने छोटे बच्चोंको
सुरक्षा करते हैं,
वैसी सुरक्षा ईश्वर भणोंकी करता है । भणिक करके लोग उस
सुरक्षाको प्राप्त करें । और
मं. १— द्रुष्टः अभि रक्षय- द्रोही पातपात करनेवालोंसे
बचान करो,
१— अस्मे शर्म यच्छ- हमें मुझ अपना आशयस्थान
मिले,
३— विश्वानि वरुण्या मनामहे-यव प्रकारके कवन,
संरक्षण हमें चाहिये,
४— क्षयं जीवातुं च अरासत- निपाय और जीवन-
साधन प्राप्त हो,
५— विश्वस्य रायः ईशते- यव भणोंका स्वामो
है,

- ७— तं तिमं मुमं त्यजः न श्रामन्- न
तीव्र और बड़ा पातक सत्र भी न करे,
८— तमसु युध्यन्तः- कवन पारन करते हुए
९— शर्म यच्छतु- मुझ, आशय और जगत्,
१०— शर्म, भद्रं, अनातुरं, वरुणं,
अस्मासु वि यन्तन- मुझ, स्वभाव, निरोपिता, कवन
तीन प्रकार शक्तियां हमें प्राप्त हों,
११— नः सुगं अनुनेय- हमें सुख (कन्या)
ले लो,
१२— गये, धनये, वीराय, अवस्वते मन्त्र-ये,
वीर और वशकी इच्छा करनेवालोंका कन्या हो,
१३— जैवा (कन्या) सूद, जैवा (कन्या) कन्या
(यया शर्म गनयामासि) जैवा सुर, पांश वा जगत्
सेप किया जाता है, वैसीही इसारी दुर्गति निरूपेण हो।
इस सूक्तका इस तरह मनन करके पाठक जगत्पर
योग्य बोध प्राप्त करें।

[३] सोम-प्रकरण

(अ. १।३३) त्रित आप्तः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव १
अभि द्रोणानि वभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् २
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्पन्ति विष्णवे ३

अन्वयः- १ विपश्चितः सोमासः, अपां ऊर्मयः नः वनानि
महिषा इव, (च) प्र यन्ति ॥

२ वभ्रवः शुक्राः ऋतस्य धारया, गोमन्तं वाजं द्रोणानि
अभि अक्षरन् ॥

३ सुताः सोमाः इन्द्राय, वायवे, वरुणाय, मरुद्भ्यः
विष्णवे (च) अर्पन्ति ॥

अर्थ- १ ये ज्ञानी सोमरस, जलप्रवाहोंके
(अथवा) वनोंमें भैयों (के जानेके) समान, बहते हैं ।

२ भूरे रंगवाले स्वच्छ (सोमरस), जलसे
साय, गौओंसे उत्पन्न (दुग्धरूपी) अन्नको (निर्र)
बहते हैं ॥

३ निचोड़े सोमरस इन्द्र, वायु, वरुण, मरुद् और विष्णु
लिये बहते हैं ॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ४
 अभि ब्रह्मीरनूषत यद्भीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ५
 रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहास्रिणः ६

४ तिस्रः वाचः उदीरते । धेनवः गावः मिमन्ति । हरिः कनिक्रदत् पति ॥

५ ब्रह्मीः यद्भीः ऋतस्य मातरः अभि अनूषत । दिवः क्रियुं मर्मृज्यन्ते ॥

६ हे सोम ! रायः चतुरः समुद्रान् सहास्रिणः अस्मभ्यं विश्वतः आ पवस्व ॥

४ तीन वचन (ऋक्, यजु और साम) गाये जाते हैं । दुधारू गौर्वे शब्द करतो हैं । हरे (रंगका सोम) शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है ॥

५ ज्ञानभय प्रगतिशाल सत्यज्ञानको माताएं जैसी (वेद-वाणिषां) गायीं जाती हैं । बुलोकके पुत्र (सोम) को (जलसे) शुद्ध करते हैं ॥

६ हे सोम ! धनके चार समुद्र और सहस्रों ऐश्वर्य हमारे पास चारों ओरसे ले आ ॥

(क्र. १।३४) त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्पति । रुजद्ब्रह्मा व्योजसा १
 सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्पति विष्णवे २
 वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ३
 भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ४
 अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ५
 समेनमहृता इमा गिरो अर्पन्ति सस्रुतः । धेनुर्वाधो अवीवश ६

२. कूट कूट कर रस निकालना

१ सोमं वृषाभिः अद्रिभिः सुन्वन्ति— सोमको बलवाले पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं। (९।३४।३)

२ पाष्योः पदं उप अभक्त— दो पत्थरोंमें सोम अपना स्थान प्राप्त करता है, कूटा जाता है। (९।१०२।२)

कूटनेके विषयमें ये मंत्र-भाग हैं। इसके पश्चात् छाननेका वर्णन देखो—

३. सोमरसको छानना

१ गोभिः अज्ज्ञानः अव्यया वाराणि परि अर्पति— गौओंके दूधके साथ मिलकर भेड़ीकी ऊनसे छाना जाता है। (९।१०३।२)

२ अव्यये वारे मधुश्चुतं कोशं परि अर्पति—भेड़ीकी ऊनकी छाननीसे नीचे चूता हुआ सोमरस पात्रमें भरा जाता है। (९।१०३।३)

३ पुनानः चम्ब्योः परि विशत्— छाना गया सोमरस पात्रोंमें भरा गया है। (९।१०३।४)

४ पुनानः परि याहि— छाना जानेके बाद पात्रमें रखो। (९।१०३।५)

५ पयमानः परि विश्रावति— छाना जानेके बाद सोमरस पात्रोंमें दीप्त होकर जाकर रदता है। (९।१०३।६)

४. सोमरसमें दूध आदिका मिलाना

सोमरसका पान करनेके पूर्व उसमें जल, दूध या सत्तूका मिलाया जाता है और पश्चात् पीया जाता है—

१ सोमासः, अपां ऊर्मयः न, प्र यन्ति— सोमरस

जलोंकी लहरोंके समान बनकर प्रवाहित होते हैं, इतने तक मिलाये जाते हैं। (९।३३।१)

२ वभ्रवः शुक्राः, क्रतस्य धारया, गोमस्तं बाधे, द्रोणानि अभि अक्षरन्— भूरे रंगके छाने गये सोमरस, जलकी धाराके साथ मिलाये जाते हैं, और गौके दूधके साथ तथा गोदुग्धके साथ मिलाये, अन्नके साथ मिलाकर पात्रोंमें रखा जाते हैं। (९।३३।२)

३ धेनवः गावः मिमन्ति, हरिः कनिकरत् पति— दुधारू गौयें शब्द करती हैं, दुधकर दूध निकाल आती हैं और हरे रंगके सोमरसके साथ वध मिलाया जाता है, मिलानेके समय एक प्रकारका शब्द होता है। (९।३३।४)

४ रूपैः हरिः सं अज्यते— हरे रंगका सोमरस आदिके मिलानेके बाद विविध रूपोंमें शोभता है। (९।३३।५)

५ धेनूः वाश्रः अवीचशत्— दुधारू गौयें शब्द करती हैं और सोमरसको चाहती हैं, सोममें अपना दूध मिलाया चाहती हैं। (९।३४।६)

६ गोभिः अज्ज्ञानः— गोदुग्धके साथ मिला हुआ सोम। (९।१०३।२)

७ पुनानः स्वधा अनु परि याहि— छाना जानेके बाद अन्नोंके साथ सोमको मिलाओ। (९।१०३।५)

इस तरह सोमरस तैयार करते हैं, देवोंको अर्पण करते हैं (देखो ९।३३।३; ९।३४।२, ४; ९।१०३।६) और पशुओं को पीते हैं। पात्रोंमें रखते हैं आदि बातें स्पष्ट हैं। अनामिका अधिक विवरण अनावश्यक है।

॥ यहाँ सोम-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[४] अग्नि-प्रकरण

(अथ दशमं मण्डलम् ।)

(ऋ. १०१) त्रित, आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्रे बृहन्नुपसामूर्ध्वो अस्थानिर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषाऽगात् ।

१

अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सन्नान्यग्राः

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्रे चारुर्विभृत ओषधीषु ।

२

चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिकदद्वाः

३

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाज्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।

आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।

४

ता ई प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता

अन्वयः— १ बृहन् (अग्निः) उपसां अग्रे ऊर्ध्वः
 स्यात् । तमसः निर्जगन्वान् । ज्योतिषा आ जगात् ।
 —भंगः जातः अग्निः रुशता भानुना विश्वा सन्नानि आ
 ग्राः ॥

२ हे अग्ने ! ओषधीषु विभृतः जातः चारुः सः रोदस्योः
 गर्भः अस्ति । चित्रः शिशुः तमांसि अस्तून् परि (भवति)
 मातृभ्यः अधि कनिकदत् प्र गाः ॥

३ विद्वान् जातः बृहन् विष्णुः इत्या अस्य परमं तृतीयं
 पति पाति । अस्य आसा त्वं पयः यत् अक्रत, अत्र
 सचेतसः अग्नि अर्चन्ति ॥

४ अतः उ पितुभृतः जनित्रीः अन्नावृधं स्या अन्नैः प्रति
 चरन्ति । ई ताः पुनः अन्यरूपाः प्रत्येषि । मानुषीषु विभु
 र्ण होता अस्ति ॥

अर्थ—१ यह श्रेष्ठ (अग्नि) उपःकालके पूर्वही उठ कर यज्ञ
 हुआ है (प्रज्वलित हो रहा है) । यह अब अन्धकारसे बाहर हुआ
 है, प्रकाशके साथ प्रकट हुआ है । सुन्दर अंगवाला यह प्रदीप्त
 हुआ अग्नि अपने तेजस्वी प्रकाशसे सब स्थानोंको व्यापता है ॥

२ हे अग्ने ! तू ओषधियोंमें (लकड़ियोंमें) भरपूर भर कर उतम
 प्रकट हुआ है, यह तू अब इस यात्रा-वृषिबीज गर्भ (केन्द्र)
 ही है । विचित्र प्रभाववाला तू बालक जैसा अन्धकारों और
 रात्रियोंको पराभूत करता है और (ओषधि-लकड़ियों)
 माताओंको गोदमें बैठनेके लिये गर्जना करता हुआ जाता है ।

३ विद्वान् प्रकट हुआ बड़ा विष्णु (जैसा यह अग्नि) इस तरह
 तीसरे परम स्थानका पालन करता है । (लोग) इसके मुखमें
 अपना दुग्ध अर्पण करते हैं । यहाँ विशेष ज्ञानो द्रव्यका प्रजन
 करते हैं ॥

४ इस कारण अन्न धारण करनेवाली मातारें (ओषधियों,
 लकड़ियों) अन्नको रुद्ध करनेवाले दुष्ट (अग्नि) अन्नसे
 वंचित करती हैं । (अग्ने ज्ञे) इन विभिन्न रूप धारणकारी
 (ओषधियोंके) पक्ष आते हैं । अन्नके मातृको प्रकाशमें
 ही प्रजन करते हैं ॥

मं. १०, सू. १-२]

मं. ३—(विद्वान् जातः) वह आदर्श तत्त्व विद्या बड़ा विद्वान् ज्ञानी और चतुर बनता है। (वृहन्) वह बातोंमें श्रेष्ठ होता है। (विष्णुः) वह सर्वत्र गमन करके सब निरीक्षण करता है। (तृतीयं परमं अभि पाति) अर्थात् सभी स्थानोंकी सुरक्षा करना है। (अस्य आसा स्वं भयः अकृत) इसके पीनेके लिये गौवें अपना दूध देती हैं, सब लोग इसको पियेच्छ दूध पिलाते हैं। (सचेतसः अर्चन्ति) अर्थात् इस आदर्श तत्त्वकी प्रशंसा करते हैं अर्थात् ज्ञानियोंके आदरके लिये वह योग्य होता है।

मं. ४—(पितृभृतः जनित्र्याः अन्नावृधं अन्नैः प्रति-
रन्ति) सुयोग्य अन्न लेकर माताएँ अन्नसेही पुष्ट होने-
वाले अपने बालकको उत्तम अन्नसे पुष्ट करती हैं। अपने बालक-
को योग्य अन्नसे समशी सेवा करती हैं। अपने बालकका
अन्नसे सत्कार करती हैं। (पुनः ता अन्यरूपाः प्रत्येषि)
अर्थात् वह बाल बड़ा होकर उन माताओंका सत्कार करनेके
लिये उनके पास पहुंचता है। अर्थात् अपनी माताओंका सत्कार
मो बड़ा होनेपर करता है। इस तरह यह अन्योन्य सेवासे
अर्पू यज्ञ होता है। (मानुषीषु विभु होता)
अर्थात् समाजमें यज्ञरूपी जीवन व्यतीत करनेवाला यह आदर्श
य होता है।

(ऋ. १०१२) त्रित माप्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वौ ऋतुँऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्रे त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः
वेधि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धाताऽसि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वभिरहन्

१

२

मन्वयः— १ हे यविष्ठ ! उशतः देवान् पिप्रीहि । हे
होतृपते ! ऋतुं विद्वान् इह यज । हे अग्ने ! ये दैव्याः
ऋत्विजः तेभिः (देवा) होतृणां (मध्ये) त्वं मायजिष्ठः असि ॥

२ जनानां होत्रं उत पोत्रं वेधि । मन्धाता, ऋतवा
द्रविणोदा असि । वयं हवींषि स्वाहा कृणवान् । अहन्
अग्निः देवः देवान् यजतु ॥

मं० ५— यह आदर्श तत्त्व (अध्वरस्य होता) विद्या-
रहित कर्मोंका करनेवाला, (यज्ञस्य केतुः) यज्ञ प्रकारके
सत्कार- संगति- दानात्मक कार्योंका कर्ता (रुशन्, चित्र-
रथः) तेजस्वी और सुंदर रथमें बैठनेवाला, (महा देवस्य-
देवस्य शर्धिः) अग्ने निज महत्त्वसे प्रत्येक विबुधके लिये
हितकारी कर्म करनेवाला, (जनानां अतिथिः) जनोके
घरोंमें अतिथिवत् पूजा होकर उनके हितके कर्म करनेके लिये
जानेवाला हो । (श्रिया) इसकी यशस्विताके कारण वह
सदा प्रशंसायोग्य होता है ।

मं० ६— वह आदर्श तत्त्व अनेकानेक तेजस्वी वस्त्र
पहनता है, पृथ्वीमें वह केन्द्र-स्थानमें रहता है, जहाँ वह
रहता है वही केन्द्र- सब हलचलोंका केन्द्र बनता है, इसी
स्थानमें वह सबका विशेष हित करता है, वह मानो सब
ज्ञानियोंकी इकट्ठा करता है और उनके द्वारा शुभ कर्म करता है।

मं० ७— वह आदर्श तत्त्व सब विश्वको अपने तेजसे भर
देता है, मातापितरोंका नाम अधिक यशस्वी करता है। बलवान्
तत्त्व बनकर जिनको चाहिये उनकी सहायता करता है और
दिव्य ज्ञानियोंकी एकत्रित करके उनसे सत्कर्मोंकी सिद्ध कराता है।

इस तरह आदर्श बलवान् सत्कर्म-प्रेरक तत्त्वका वर्णन इस
सूक्तमें अमिके मित्वसे किया गया है। सब तत्त्व इसका मनन
करें, इन गुणोंकी अपनाई और अपना जीवन दिव्य बनावें।

अर्थ— १ हे देवा ! इच्छा करनेवाले देवोंको संतुष्ट कर ।
हे ऋतुओंके स्वामिन ! ऋतुओंको जानेवाला तू यज्ञ यजन
कर । हे अग्ने ! जो दिव्य ऋत्विज् है उनके साथ रहनेवाला
तू, उन होतृओंके मन्त्रमें तूही पूजनीय है ॥

२ तेजस्वी यजन तथा यज्ञके कर्म तू प्रान करता है । तू
स्थानकर्ता, सत्कर्म करनेवाला और यज्ञदाता है। हम इच्छा
करके स्वाहाकारके साथ करते हैं। हमसे अग्निदेव सब
देवोंका यजन करे ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।

अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अघ्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति । ३

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष्टद्विष्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति । ४

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।

अग्निष्टद्वोता ऋतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ५

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।

स आ यज्ञस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ६

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वाऽऽपस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।

पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं शुमदये समिधानो वि भाहि ७

३ देवानां पन्थां अपि आ अगन्म । यन् शक्नवाम तन्
अनु प्रवोळ्हुं (समर्थोः भवेम) । विद्वान् सः अग्निः यजात् ।
य इह उ होता, सः सो अघ्वरान् ऋतून् कल्पयाति ॥

४ हे देवो ! अविदुष्टरासः इयं वः विदुषां यन् व्रतानि
जनिताः । विद्वान् अग्निः तन् विश्वे आ पृणाति । योभिः
ऋतुभिः देवाँ कल्पयाति ॥

५ दीनदक्षाः मर्त्याः । पाकत्राः मनसा यज्ञस्य यन् न
मन्वते, न ह्यध्वरान् होता ऋतुविद्वान्यजिष्ठः अग्निः ऋतुताः
देवाँ कल्पयाति ॥

६ विश्वेषां अध्वराणां नीकं चित्रं केतुं त्वा जनिता
जजान । स आ यज्ञस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः
क्षुमतीर्विश्वजन्याः ।

७ यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वाऽऽपस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं शुमदये समिधानो वि भाहि ।

३ देवोंने निश्चित किये मार्गसेही हम जाते हैं । हम
सकता है वह करनेके लिये (हम समर्थ हैं) । अग्नी
अग्नि यह यजन करे । वही होता है, वही विद्वान्
ऋतु नियत करता है ॥

४ हे देवो ! अज्ञानी हम आप ज्ञानियोंके नियमांश
करते हैं, (यह सत्य है) । यह ज्ञानी अग्नि यह
परिपूर्ण करे । उन ऋतुओंके अनुकूल वह देवोंके लिये
सिद्ध करता है ॥

५ क्षीण बलाले मनुष्य बुद्धिहीन अपारंपर्यके धार
भी जिस वक्ता निवारणक नहीं करते, यह वक्ता
बोला, ध्वनिकर्ता, ऋतुज्ञाता, यजनकर्ता प्रणीत
अनुसार देवोंका यजन करता है ॥

६ यह विश्वजिन यज्ञोंमें प्रमुख, विश्वोंके यज्ञ
पवित्र, ऐसे नृक्षों यजमानके स्थापित किया है । इह उ होता
बुद्धि, मर्त्याओंके मान रहितपक्ष, स्पार्हा, यज्ञ
यज्ञोंके विश्व यज्ञके स्थापनके लिये अनुकूल यजन करे ॥

७ नृक्ष आश्वय और पुष्यके यज्ञोंके स्थापित किया है । अथ
प्रकट किया है । अथ यज्ञ अनु नियमित स्थापित किया है ।
नृक्ष नियमित किया है । इह उ होता । नृक्षोंके यज्ञोंके
यजन है, यज्ञ नृक्षोंके स्थापित यज्ञोंके यजन करता है ।

युवाके कर्तव्य

मंत्र १— (देवान् पिप्रोहि) देवों का संतोष प्राप्त करना चाहिये । दिव्य विबुध सदाचारसेही संतुष्ट होते हैं । ऐसे देवोंके समान सदाचारसेपत्र होना चाहिये । (ऋतून् दान्) ऋतुओंको यथावत् जान, किंश ऋतुमें क्या होता उसमें कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसका ज्ञान प्राप्त करना है, तथा (ऋतून् यज) ऋतुओंके अनुकूल यजन कर । ऋतुमें जो यजन करना चाहिये वैसा यजन कर । (ऋतूणां त्वं आयजिष्ठः) होताओंमें तू यजनोप हो । यजन करनेकी विद्यामें तू सबसे विशेष ज्ञानवाला बन, जिससे तुझे अनुकूल यजन करके तू नौरोग, बलवान् और उत्साही बने ।

मंत्र २— (जनानां होत्रं पोत्रं वोषि) लोगोंके इवन और वन कर्मोंको तू करता है । (मन्याता, ऋतवा द्रविणोदासि) मनको ध्यानमें लगानेवाला, संस्कार करनेवाला और दान दत्त होता है । (देवः देवान् यजतु) यह स्वयं देव है यह देवोंका संस्कार करे ।

मंत्र ३— (देवानां पन्था अगन्म) देवोंके मार्गसे हम चलते हैं । (यत् शक्नवाम) जिसकी हमारी शक्ति होगी उतना (तत् अनु प्रचोळ्हुं) हम कर्ष करनेके लिये दत्त करेंगे । अर्थात् शक्ति होनेपर हम पन्था नहीं छोड़ेंगे । (विद्वान् यजात्) विद्वान्ही यज्ञ करे, दक्ष-प्रक्रिया जाननेवाला यज्ञ करे । (स अध्वरान् कल्पयाति) वह हिंसारहित कर्मोंको यथासांग करता है ।

मंत्र ४— (अविदुष्टरासः वयं विदुषां व्रतानि प्रणिनाति) हम अज्ञानके कारण विद्वानोंके निश्चित किये प्रणिनाति करते हैं, हमारे अज्ञानके कारण मार्गमें दोष होता रहता है । इसीलिये अज्ञान दूर करना चाहिये और ज्ञान

यचना चाहिये । (विद्वान् विश्वं पृणाति) जो विद्वान् होता है वह सब कुछ कर्तव्य यथायोग्य रीतिसे करता है । उसमें दोष रहने नहीं देता; (ऋतुभिः देवान् कल्पयाति) ऋतुओंके अनुकूल वह देवोंके लिये यज्ञ करता है और उनको प्रसन्न करता है ।

मंत्र ५— (दीन-दक्षाः पाकत्राः मर्त्यासः मनसा यज्ञस्य न मन्वते) क्षीणबल अपरिपक्व मानव मनसे भी यज्ञ करनेकी बात नहीं सोच सकते । जो बलवान् पूर्ण ज्ञानी पुरुष हैं वेही यज्ञ करनेके विषयमें सोचते हैं । इसीलिये कहते हैं कि (विज्ञानन् ऋतुवित् यजिष्ठः ऋतुशः देवान् यजाति) ज्ञानी यज्ञशास्त्रवेत्ता पवित्र यज्ञकर्ता ऋतुके अनुसार देवोंका यजन करता है और कृतकृत्य होता है ।

मंत्र ६— (विश्वेषां अध्वराणां केतुं त्वा जनिता जजान) सब हिंसारहित कर्मोंका ध्वज तू है, ऐसा मानकरही संसारके जनकने तुझे— तुझको—उत्पन्न किया है । यह आदेश अग्नि निम्ने प्रत्येक मानवके लिये है । प्रत्येक मानव हिंसारहित कर्म करे और ऐसे शुभ कर्मोंका ध्वज जैसा केन्द्र भी बने । (सः त्वं नृवतीः स्वाहोः शुभतीः इषः यज्ञस्य) वह तू सब सज्जनोंको इच्छा करके इच्छा करनेयोग्य बलवर्धक कर्मोंका यजन कर अर्थात् सबकी पहुंचाओ । ऐसा अज्ञ सबकी मिले कि जिस सबकी उष्टि हो, बल बड़े, तथा सब लोग इच्छे हों अर्थात् आपसमें सुसंगठित हों ।

मंत्र ७— (पितृयार्णं पंथां अनु प्र विद्वान् विनाहि) अपने पूर्वजोंके मार्गको जानकर अपने तेजमें समझना रहे । अपना तेज बारी बारी फैला दे ।

संक्षेपमें यह उपदेश दक्ष सत्त्वमें किया है । उपर्युक्त युवा मंत्र करे, उनके निर्देश अपनेके वर्तनके लिये हम मूलमें किये हैं ।

(अ. १०३) वित्त आश्लः । अग्निः । त्रिपुर ।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय तुष्टुर्मां अदधि ।
चिकिद्धि भाति भाता वृहताऽसिक्नीमेति रुशतीनपाजन्

१

अन्वयः— १ हे राजन् ! इनः अरतिः समिद्धः रौद्रः तुष्टुर्मां दक्षाय अदधि । चिकिद्धि विनाति । वृहता भाता रुशतीं बराजन् असिक्नीं एति ॥

अर्थ— १ हे राजन् ! तू पशु ब्रह्मचरिण, प्रसी, नर नक्षत्र तथा उत्तम रत्न विनाश करनेवाला रौद्र बलवर्धन करनेके लिये अग्निः इष्टि करो और फैलाना है । अपने जल ही द्वारा यथायोग्य है । वृहते तेजसे तेजस्विनी (उषा) को प्रसन्न करना तुम्हारे लक्ष्य है वृहते रुशती है ॥

- कृष्णां यदेनीमभि वर्षसा भूजनयन्योपां वृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तमायन्दिवो वसुभिररतिविं भाति २
- भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्युभिरग्निरितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्यात् ३
- अस्य यामासो वृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईक्ष्यस्य वृष्णो वृहतः स्वासो भामासो यामनक्तवधिकित्रे ४
- स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य वृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीलुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति धाम् ५
- अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयनियुद्धिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ६

२ यत् कृष्णां पूर्णां वृहतः पितुः जां योपां जनयन् वर्षसा अभि भूत् । अरतिः दिवः वसुभिः सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं स्तमायन् वि भाति ॥

३ भद्रः भद्रया सचमानः आगात् । पश्चात् जारः स्वसारं अभि एति । सुप्रकेतैः युभिः वितिष्ठन् अग्निः रुशद्भिः वर्णैः रामं अभि अस्यात् ॥

४ अस्य वृहतः अग्नेः इन्धानाः यामासः वग्नून् न (वाधन्ते) । सख्युः शिवस्य ईक्ष्यस्य वृष्णः वृहतः स्वासः अक्तवः भामासः यामन् चिकित्रे ॥

५ रोचमानस्य वृहतः सुदिवः यस्य भामासः, स्वनाः न, पवन्ते । यः ज्येष्ठेभिः तेजिष्ठैः क्रीलुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः धां नक्षति ॥

६ ददृशानपवेः जेहमानस्य अस्य शुष्मासः नियुद्धिः स्वनयन् । देवतमः अरतिः विभ्वा यः प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भिः विभाति ॥

२ यद् काली रात्रिद्ये, बडे (सूर्यरूपां) पितृदेव ज्ञानार्थं (उपास्यो) श्रीद्ये प्रकट करके, अपनी शरीरकान्तिसे प्रकाश करता है । यद् प्रगतिशील देव, सुलोकमें वसनेहारों के किरणोंके ऊपरही ऊपर यात्र कर, स्वयं प्रकाशित होय है ।

३ कल्याणकर्ता (अग्नि) कल्याण करनेवाला (उपा) के साथ प्रकट हुआ है । जार (सूर्य) अपनी बहिन (उपा) के पाँछे पाँछेसे जाता है । उत्तम तेजस्वी ज्वालाओंसे उरनेवाला अग्नि अपने तेजस्वी किरणोंसे प्रत्येक रमणीय वस्तुको प्रकाश करता है ।

४ इस बडे अग्निके प्रकाशकिरण वक्ता मर्कटके जैसे नहीं देते । मित्र कल्याणकारी स्तुत्य बलिष्ठ श्रेष्ठ और ईश्वरीय अग्निके तेजस्वी किरण चारों ओर व्यापते हुए दीखते हैं ।

५ देखीयमान श्रेष्ठ तेजस्वी इस अग्निको ज्वालाएँ, कृपे समान शब्द करती हुई फैलती हैं । जो (अग्नि) श्रेष्ठ तेजस्वी उत्तम क्रीडनशील ऊपरकी ओर जानेवाले किरणोंसे आकाशको जाकर पहुँचता है ॥

६ जिसके रथके पहिये दिखाई देते हैं, जो इतक बलवान् है, उसके बलवान् किरण वायुके समान शब्द करते हैं । यह अतिश्रेष्ठ प्रगतिशील देव चारों ओर व्यापता हुआ सुप्रसन्न तेजस्वी किरणोंके साथ प्रकाशता है ॥

9

७ वह तू हम नबकी महत्वके स्थानमें पहुँचा दे । न तू रज
सुलोक और भूलोकका प्रगतिकर्ता होकर यहाँ निवास कर । तू
प्रगति करनेवाला गतिशील अग्नि वेगवान् दिनदिननिवाले
घोड़ोंके साथ यहाँ आ ॥

इस सूक्तमें सर्वसामान्यतः अग्नि के वर्णन के मिथसे राजा के चर्च कहे हैं। राजा अग्निके समान तेजस्वी, मार्गदर्शक, प्रगतिशील और जनताका प्रमुख नेता हो। राजगद्दी पर आये तदन राजाके सामने अग्निका आदर्श रखा गया है। देखिये यह सूक्त राजाका वर्णन किस तरह कर रहा है—

मंत्र १—(राजन्, राजा) राजगद्दीपर आया तदण राजा
प्रसाध रखन करनेवाला हो, तेजस्वी हो, (इनः) सय राज्यका
रक्षन करनेवाला हो, समर्थ शाक्तशाली अधिपति हो,
(भरतिः) गतिमान्, प्रगति करनेवाला, हलचल करनेवाला,
गुपार हमला करनेवाला, सहायता करनेवाला, पबंधकर्ता,
दिमान् योजक हो, (समिद्धः) प्रदीप्त, तेजस्वी और प्रतापी

छात्रों को पुनः नवीन बनाकर प्रकट करता है, विज्ञानसे पत्रों में नवजीवन निर्माण करता है, विद्यादानकी आयोजनाओंसे पत्रों में नवीन उत्साहमय जीवन देता है' (अरतिः) यह पत्रों में करनेवाला राजा (विभाति) बनकता है, जैसे (सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं स्तभायन) सूर्यके छिरन आकाशमें फैलकर सूर्यका तेज बढ़ाते हैं, उस प्रकार पत्रोंकी उन्नति करनेवाला राजा सब प्रकार राष्ट्रमें प्रगतिशील होता है ।

मं. ३— (भद्रः भद्रया सत्यनातः भागान्) यस्मात्
कृत्याण करिनेवाला (राजा) कृत्या करिने के कर्मि
मन रहनेवालो प्रजाके मान भिन्न कर आगे भद्र है, यही
तथा उभतिहा साधन होला है। (जागः लक्ष्मणः लक्ष्मिः)
प्रिय कर या हृद मनुष्य जन्म पद भद्र निकलने के लिये
सूर्य ज्योति उभाक सनन है, ये ही लक्ष्मण लक्ष्मि

सन्धि बलिष्ठ बडे मित्र राजाके (स्वासः अक्तवः भामासः यामन् चिकित्रे) उत्तम सुखवाले अन्धकार दूर करनेवाले तेजस्वी मार्ग (प्रजाका दुःख) दूर करते हैं । (भामः—तेज, प्रकाश, सूर्य, क्रोध) राजा और सब राजपुरुष शुभ कार्य करनेवाले, प्रशंसायोग्य, बलवान्, बडे विचारवाले, और प्रजाके मित्र हों, उनके सुख आनन्द प्रसन्न रहें, वे अज्ञान दानता दारिद्र्यको प्रजासे दूर करें और ऐसे कार्य करें कि जिससे प्रजाका सुख बढ़ता जाय ।

मं. ५— (रोचमानस्य बृहतः अस्य) तेजस्वी इस बडे राजाके (भामासः स्वनाः न पवन्ते) प्रकाश शब्दोंके समानही पवित्र करते हुए चले जाते हैं । अर्थात् इस राजाके प्रगतिके मार्ग और ज्ञानके उपदेश सबको शुद्ध और पवित्र करते हुए उन्नत करते हैं । राजा ऐसी कार्यकी आयोजनाएँ करे कि सब लोग उन्नतिपथपरही बढ़ते रहें । (ज्येष्ठेभिः तेजष्ठैः क्रीळुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः द्यां नक्षति) श्रेष्ठ तेजस्वी क्रीडाकुशल वरिष्ठ तेजोंके साथ वह स्वर्गको पहुँचता है । इस तरहके साथियोंसे वह भूमिपर स्वर्गधाम लाता है ।

मं. ६— जिसके रथके पहिये सदा चलते रहते हैं, ऐसे इस राजाके (शुष्मासः) बल-संवर्धनके प्रयत्न (नियुद्भिः स्वनयन्) वायुवेगसे चलते हैं । ऐसा यह (देवतमः

अरतिः विभ्वा) देवोंमें भी श्रेष्ठ प्रगतिशील प्रभावी (प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भिः विभाति) पुरातन पर जैसे तेजस्वी किरणोंसे प्रकाशता है । उसके मार्ग प्राचीन पराको सुरक्षित रखते हैं और नया तेज उनमें भर देते हैं, लिये वह सबकी उन्नति कर सकता है ।

मं. ७— (सः नः महि आ वक्षि) वह राजा महत्त्वके स्थानको पहुँचा देवे, हमारी सब प्रकार उन्नति करे (अरतिः आ सत्सि) सबकी प्रगति करनेके लिये तत्पर होकर बैठे । कभी आलस्य न करे । (सुतुकः रभस्वान्) उत्तम प्रगति करनेवाला गतिशील वीर राजा (सुतुकैः रभस्वद्भिः इह आगम्याः) प्रगतिशील वेगवान् वीरोंके साथ यहाँ आवे और हमारा सहायक हो । अर्थात् स्वयं पुरुषाणाम् वनकर अपने जैसे पुरुषार्थी साथियोंके साथ राष्ट्रकी प्रगति कार्यमें लगे ।

इस तरह यह सूक्त युवा राजाके कर्तव्य बता रहा है । वास्तवमें यह अग्निकाही वर्णन कर रहा है, पर परिवर्तित मंत्रमें अग्निको 'राजा' कहकर सब सूक्तका सूक्त राजापरक देखनेकी सूचना मिली है । प्रत्येक पदके अर्थ अग्निको और राजापरक लगाकर जो विचार करेंगे, वे इस सूक्तके मर्मको अच्छी प्रकार-जान सकते हैं ।

(क्र. १०१४) त्रित भाष्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र ते याक्षि प्र त इयमिं नमन् भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्ष्वे पूरवे प्रत्न राजन् १
यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महँश्चरासि रोचनेन २

अन्वयः— १ ते प्र याक्षि । नमन् ते प्र इयमिं । नः हवेषु यथा वन्द्यः भुवः । हे प्रत्न राजन् अग्ने । त्वं इयक्ष्वे पूरवे, धन्वन् इव प्रपा, असि ॥

२ हे यविष्ठ ! यं त्वा जनासः अभि संचरन्ति । गावः उष्णं इव व्रजं । देवानां मर्त्यानां दूतः अग्नि । अन्तः महान् रोचनेन चरसि ॥

अर्थ— १ तेरे लिये मैं यजन करता हूँ । तेरे लिये मनीष्य स्तोत्र करता हूँ । हमारे यज्ञोंमें तू चंदनीय होकर १६ । हे प्राचीन राजन् अग्ने । तू याज्ञक मानवके लिये, निर्जल प्रदेशमें पियाऊके समान, हो ॥

२ हे तक्ष्ण ! तेरी सब लोग सेवा करते हैं । तैम्री (शीतल पीडित) गौंसे उष्ण गोशालामें जाती है । तू देवों और मानवों का दूत है । इस विश्वके अन्दर यज्ञ होकर अपने तेजस्वी सूचन करता है ॥

श्र.मं. १०, सू. ४-५]

मं. ५— (सनयासु नव्यः जायते) सनातन या पुरातन प्रजाओंमें ही नवीन विचार उत्पन्न होता है और सुदृढ़ होता है जिस तरह सूखी लकड़ियोंमें अग्नि प्रदीप्त होता है। इसलिये सनातन विचारमाला सुदृढ़ रखनी चाहिये और उसमें नवीन सुयोग्य विचारोंके लिये स्थान भी होना चाहिये। इस तरह प्राचीन तथा नवीनका मेल हो जानेसे समाज तथा राष्ट्र दृढ होता रहता है। (वने धूमकेतुः पलितः तस्यो) वनमें-लकड़ियोंमें-अग्नि प्रज्वलित होकर रहता है। लकड़ियां न दुई तो अग्नि नहीं होगा। अग्नि ही उत्साही युवकोंका प्रतीक है। उसके लिये उत्साह-शुद्धि होनेयोग्य साधन चाहिये। (अस्ताता आपः प्रवेति) जिसने स्नान नहीं किया वही अस्थिर नगर स्नान करनेके लिये जाता है; अर्थात् स्नान करनेसे आवश्यकता उसको स्नान करनेके स्थानके पास पहुंचाती है। इसी तरह अज्ञानी ज्ञानीके पास, निर्धन उद्योगियोंके स्थानमें, और इसी तरह अन्यान्य आवश्यकताओंवाले अपनी इच्छापूर्ति करनेके लिये योग्य स्थानपर जाते हैं। अज्ञानी ज्ञानीके पास जाकर ज्ञान कमाता है, निर्धन कारीगर धनिकोंके पास जाकर धन प्राप्त करता है, इसी तरह अपनी अपनी कमनापूर्ति लोग करते रहते हैं। राजाने अपने राज्यमें इस तरह सबकी अपनी कामनापूर्ति सुयोग्य रीतसे करानेकी सहायित्व परकेलिये हुली रखना चाहिये।

(पं सचेतसः मर्ताः प्रणयन्तः) जिसके पास उत्साही मनव जायें, उसे प्रसन्न करें और अपनी कामना सुयोग्य मार्गसे पूर्ण करें। यह मार्ग सब मानवोंकी उन्नतिके लिये योग्य है।

मं. ६— (वनगू तनुत्यजाः) वनोंमें जानेवाले और गिरका त्याग करके भी अपना कर्तव्य करनेवाले रक्षक वस्कराः रशनाभिः अग्नि अर्घीतां) चोर डाकू शैकी रस्तीयोंसे पकड़ते और बांध देते हैं। इसी तरह सब

राष्ट्र-पुरुष अपना कर्तव्य-पालन करते जायें। वही राजाकी (नव्यसी मनीषा) प्रकट इच्छा होनी चाहिये। नवीन इच्छा यही है, पुरानी जीर्ण अथवा क्षोण इच्छा नहीं। नया, प्रबल सुदृढ़ इच्छा यही है कि सब गुणोंका दमन हो और सज्जनोंका पालन हो। यह कार्य करनेके (शुचयद्भिः अंगैः रथं युक्ष्व) पवित्र अंगोंसे युक्त रथको जातकर तैयार हो जा। रथके सब अङ्ग पवित्र अर्थात् निर्दोष हों, किसीमें किसी तरहका दोष न हो। ऐसेही सब राजपुरुष अपना कर्तव्य-पालन करनेके लिये तैयार रहें।

मं. ७— (जात-वेदाः) ज्ञान और धन बढ़ानेवाला इनकी वृद्धि करनेवाला राजा हो। (ब्रह्म वर्धनी भूत्) ज्ञान राष्ट्रके संवर्धन करनेवाला हो, सब प्रकारका ज्ञान वर्धनका कार्य करे। (नमः च) अन्न और शस्त्र राष्ट्रका अच्छी तरह संवर्धन करे। (नमः— अन्न, शस्त्र, नमन, स्तोत्र, ज्ञान)। (इयं गीः सदं इत् वर्धनी भूत्) यह वाणी, यह ग्रंथ-रचना सदा राष्ट्रका संवर्धन करनेवाली हो। राष्ट्रमें ऐसे ग्रंथ न बनें कि जिनकी विचारधारा राष्ट्रकी उन्नतिमें विघ्न करनेवाली हो। (तनयानि लोक रक्ष) बालबच्चोंकी सुरक्षा हो, क्योंकि राष्ट्रका भविष्यकाल इन्हींपर अवलंबित रहता है। बालबच्चे जैसे होंगे, वैसाही राष्ट्र होगा। (अप्रयुच्छन् नः तन्वः रक्ष) अशुद्धि अथवा प्रमाद न करते हुए हमारे शरीरोंकी सुरक्षा कर। यहाँ 'तन्वः' पद है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर अर्थात् कमलाः शरीर, मन और बुद्धिकी सुरक्षा हो ऐसा भाव यहाँ है। राष्ट्रके मानवोंके शरीर, इंद्रियां, मन और बुद्धिकी सुरक्षा हो, यह इसका आशय है।

अग्निके वर्णनके निमित्त जो राष्ट्रसंवर्धनका उपदेश और राजाके कर्तव्योंका उपदेश यहाँ किया है, उनका यह संक्षेप स्पष्टीकरण है।

(श्र. १०५) त्रित आप्तः । अग्निः । विदुषः ।

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्दुदो भूरिवन्मा वि चटे ।
सिषक्त्यूषानिष्योरुपस्थ उत्तस्य नव्ये निहितं पदं वेः

अन्वयः— १ रयीणाम् धरुणः भूरिवन्मा एकः समुद्रः, धरुणः दुदः वि चटे । निष्योः उत्तस्य ऊपर लिप्यति ।
उत्तस्य नव्ये वेः पदं निहितम् ॥

अर्थ— सब धर्मोंका आधार, अर्थात् वस्तुओंमें कमलें फैला देनेवाला एक 'वन्मा' समुद्र है, वह हमारे सब शरीरोंके देवता है। देवता (वन्मा) के रक्षकमें वह रहता है। उस रक्षकके नाममें वन्मा का स्थान है ॥

समानं नीलं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्चतीभिः ।
 ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामापि दधिरे पराणि २
 ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
 विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ३
 ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
 अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ४
 सप्त स्वसूरूपीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
 अन्तर्यमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वन्निमविदत्पूषणस्य ५
 सप्त मर्यादाः कवयस्ततश्चुस्तासामेकामिदम्यंहुरो गात् ।
 आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीले पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ६

२ समानं नीलं वसानाः महिषाः वृषणः अर्चतीभिः सं जग्मिरे । कवयः ऋतस्य पदं नि पान्ति । गुहा पराणि नामानि दधिरे ॥

३ ऋतायिनी मायिनी सं दधाते । मित्वा शिशुं वर्धयन्ती जज्ञतुः । विश्वस्य ध्रुवस्य चरतः नाभिं कवेः तन्तुं मनसा वियन्तः ॥

४ ऋतस्य वर्तनयः प्रदिवः सुजातं वाजाय ह्यः सचन्ते हि । वावसाने रोदसी अधीवासं मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते ॥

५ वावशानः विद्वान् अरूपीः सप्त स्वसूः मध्वः कं दृशे उज्जभार । पुराजाः अन्तरिक्षे अन्तः येन । पूषणस्य तन्नि इच्छन् अविदत् ॥

६ कवयः सप्त मर्यादाः तवक्षुः । तासां पृथां इत् अनि भगात् अंडुरः (नवति) । आयोः स्कम्भः पथां विसर्गे उपमस्य नीले धरुणेषु तस्थौ ॥

२ एक वरमे रहनेवाले मैनेके समान बलवान् वीर कविने साय इच्छे होते हैं । कवि सत्यके स्थानको सुरक्षा करते हैं । (और अपने) हृदयमें श्रेष्ठ नामोंका धारण करते हैं ॥

३ सत्य-प्रवर्तिका और कुशलकारिणी (वे दो जने, अरिणियों अग्निने पुत्रका) मिलकर धारण करती हैं । समयपर पुत्रको (अग्निको) निर्माण करती हैं और वसती हैं । सब स्थावरजंगमका मध्य और कविके (कर्मका) अग्नि) धागा है, वह वे मनसे निश्चित करते हैं । (कर्मका) इमको उपास्य मानते हैं ॥

४ सत्यके प्रवर्तक, इष्ट वस्तु प्राप्त करनेवाले दिग्गज उत्तम जन्मे हुए (इस अग्नि) की बल प्राप्त करने के लिये उपासना करते हैं । सबको वधानेवाले यावापृथिवी के लोक (लोक अपने अन्दर रहनेवाले अग्निको) मधुर वृत्त बढाते हैं ॥

५ सबको वशमें रखनेवाले ज्ञानी (अग्नि) के लोक रंगकी (ज्वालारूपी) सात नीळी बद्दिनीको अपने पुत्र स्वरूपको दिव्यानेके लिये ऊपर उठाया । शक्ति भी ऐक्य उत्पन्न होनेवाला (यह अग्नि) अन्तरिक्षके अन्दर (स्वर्ग) नियमन करता है । पूषाका स्वरूप प्राप्त करनेको इच्छा (विशाल रूप उसने) प्राप्त किया ॥

६ कवियोंने सात मर्यादाएँ बनायी हैं । उनमेंसे एक एक उल्लेखन करता है वह पापी (बनता है) । जो मन-वश आधारस्तंभ है, जड़ोंमें नाना मार्ग चलते हैं उस उस स्थानों, उन धैर्यमय सर्वाचारके स्थानोंमें (पवित्रात्मा) रहता है ॥

असत्त्वं सत्त्वं परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मवदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं आयुनि वृषभश्च धेनुः

७

असत्त्वं सत्त्वं परमे व्योमन् । पूर्वं आयुनि वदितेः
स्ये इक्षस्य जन्मन् । नः ऋतस्य प्रथमजाः अग्निः । वृषभः
धेनुः ॥

७ असत् और सत् परम स्थानमें (इच्छे) रहते हैं ।
पहिले समयमें अलङ्घितके समीप बलका जन्म हुआ है । वही
हमारा यज्ञप्रवर्तक प्रथम उत्पन्न हुआ अग्नि है । वही वृषभ
और धेनु (पुरुष और स्त्री शक्तियाँ) रहती हैं ॥

सत्य तत्त्वका ज्ञान

इस सूक्तमें सत्य तत्त्वका ज्ञान प्रकट हुआ है । अतः इसका
नमन विद्युप रीतिसे करना चाहिये । (रयीणां धरुणः) एक
आत्मा है जो सब प्रकारकी शोभाओं, धनों और जीवनोंका
प्रकारक अथवा आधार है । इसीके कारण संपूर्ण विश्वमें सब
शोभा, रमणीयता, मनोहारिता तथा आनन्दमयता
जन्म ले रही है, इसका आधार न होनेसे यह सब शोभा दूर
होती, ऐसा एक आत्मा है अथवा एक तत्त्वकी सत्ता है । यह
(एकः समुद्रः) एकही एक अलग अविभक्त समुद्र जैसा
नमन एकरस भरा हुआ है, सर्वत्र समत्वभावसे व्यापता है,
कहीं और एक जैसा फैला है, कोई जगह इन्होंने अव्याप्त ऐसी
होती नहीं है । इस तरह यह सर्वव्यापक होनेके कारणही
(नूरे-जन्मा) अनन्त पदार्थोंमें, उन उन पदार्थोंके रूपोंमें
व्यक्तता है, इसी कारण इसको 'विश्वरूप, सर्वरूप, अनन्तरूप'
कहते हैं, क्योंकि जो भी रूप इस विश्वमें है वे सबके सब रूप
इसकी ही हैं, प्रत्युत जो अरूप वस्तुएँ हैं वे भी इसीके रूप या
स्वर्गके भाव हैं । यह सर्वरूप धारण करनेवाला आत्मा
(असत् हृदः वि चष्टे) हमारे सबके अन्तःकरणोंमें रहता
है और सब देख रहा है । परमात्मा सबके अन्तःकरणोंमें है,
पर वस्तुओंमें सब वस्तुओंका रूप धारण करके रहा है और
सब विषयका व्यवहार देख रहा है ।

(निष्पयोः उपस्थे ऊधः तिपक्ति) 'निष्प' का अर्थ
है 'गुप्त, गुह्य, छिपा, आच्छादित' और 'ऊध' का अर्थ है 'द्रव्य'
यह स्थान, जहाँ माताके पेटमें द्रव्य रहता है, उसका आशय ।
इसका अन्वयार्थ यह है कि—'यों गुप्त वस्तुओंके निष्कटके रसशयके
पत्र वह रहता है ।' इसका विचार ऐसा करना चाहिये ।
कण्डियोंके पर्यन्तसे अग्नि उत्पन्न होती है, उत्पत्तिके पूर्व वह
जलकण्डियोंमें गुप्त रहती है । ये जलकण्डियाँ दो रहती हैं,

एक अधर-अरणी और दूसरी उत्तर-अरणी । अग्निको अपने
अन्दर आच्छादित रखनेवाली इन दो अरणियोंमें यह अग्नि
रहती है । इनके पास सोमरसका स्थान होता है, उसके समी-
पवर्ती स्थानमें इन दो लकड़ियोंमें गुप्त रूपसे यह अग्नि रहती
है । दो वस्तुओंमें गुप्त रूपसे रहनेवाली यह अग्नि है यह मुख्य
आशय यहाँ है ।

जो पुरुष ये दो वस्तुएँ गृहमें रहती हैं, उनमें गुप्त रूपसे
पुत्ररूप अग्नि है । पूर्वोक्त मंत्रका यह भी एक आशय है । इसी
तरह जड़ और चेतन ये दो वस्तुएँ हैं, इनमें गुप्त रूपसे व्यापने-
वाली आत्मा है, यह मुख्य आशय यहाँ है । प्रत्येक स्थानमें
(ऊधः—रसका स्थान) विभिन्न होगा इसमें संदेह नहीं है ।
यज्ञाग्निके समीप सोमरसका पात्र, गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुषोंके
समीप पुष्टिकारक अवस्थान और जड़चेतनमें हृदय अथवा
जीवनस्थानही यह स्थान होगा । जड़चेतनमें जीवन (अष्टप)
प्रकृति रूप जड़-जविभावरूप चेतनमें—व्यापक आत्मतत्त्व)
किस तरह रहता है यह तत्त्व यहाँ बताया है । इसी विषयमें
और अधिक स्पष्टीकरण आगे करते हैं—

मंत्र १—(उत्सस्य मध्ये वेः पदं निहितं) जलाशयके
मध्यमें पक्षीका स्थान नियत हुआ है पक्षी जीव है, उसका स्थान
जलाशयके मध्यमें है । यह जलाशय हृदय है, इसीको 'मानस'
अथवा 'मानस सरोवर' कहते हैं । इस तरह मंत्रका आशय यह
हुआ, जीवका स्थान हृदयमें है, वही जीव भाव है । जड़ और जीव
इन दो भावोंमें व्यापक एक आत्मा रहता है, जीवनरस इसीके
साथ संबंधित रहता है । यह सबके हृदयोंके अंतर्बोध स्थिति का
निरीक्षण करता है । वस्तुतः यह एक समुद्र जैसा व्यापक आत्मा
है, जो अनेक वस्तुओंको धारण करता है, एक होता हुआ

१०, सू. ५]

अधीवासं मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते) यहां बालेको मधुर घृतमिश्रित अन्नसे बड़ाते, पुष्ट करते हैं ।
 भूमि यहां रहनेवालोंको अनादि द्वारा पुष्ट करते हैं ।
 कोषी और मिष्ट अन्नकी आहुतियां देकर प्रदीप्त करते हैं ।
 इसी त्रिध और मिष्ट अन्नसे पुष्ट करते हैं ।

अध्या—(वावृशानः विद्वान्) बड़ा वक्ता ज्ञानी अग्नि
 रूपीः सप्त स्वसृः) लाल रंगकी सात ज्वालारूपी
 नौको (मध्वः कं दशो उज्जभार) मधुरिमासे सुंदर
 सा दर्शन होनेके लिये ऊपर उठाता है । अग्नि प्रदीप्त
 कर उसकी ज्वालाएँ ऊपर उठती हैं, जब मधुर घीकी
 हुतियाँ उसमें डाली जाती हैं । इसी तरह इंद्रियाँ आत्मा-
 ज्वालाएँ हैं जो आत्माकी प्रभासे प्रकाशती हैं ।

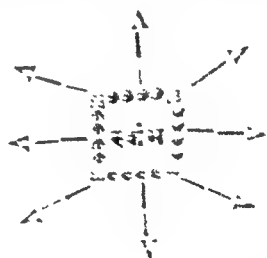
(पुराजाः अन्तरिक्षे येमे) सबसे प्रथम जन्मा यह
 आत्मा या अग्नि अन्तरिक्षमें प्रज्वलित होता है, रहता है,
 शांति नियमन करता है । 'पुरा-जाः' सबसे प्रथम जो
 है, सबसे पूर्व जो उत्पन्न हुआ, वह आत्मा है, इस विषयमें
 किसीको कोई संदेह नहीं हो सकता । यह आत्मा इस आकाश-
 में व्यापक है । और सब स्थावर जंगमका नियमन करता
 है । विश्वकी प्रतिष्ठा इसी कारण होती है । यज्ञमें अग्नि भी
 उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् उसमें तथा उससे सब
 उत्पन्न होता है । इसलिये अग्निको 'पुरा-जाः' कहते हैं ।

(पूषणस्य वस्त्रि इच्छन् अविदत्) पूषाके रूपको
 प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ वह उस स्वरूपकी प्राप्त
 हुआ । 'पूषा' नाम सूर्यका है । सूर्य जैसा तेजस्वी बननेकी
 इच्छा अग्निने की, और पश्चात् वैसा बना । जीवने भा
 नारायण बननेकी इच्छा की और नरका नारायण बना ।
 इसी अन्तिम उत्पत्ति है । जीवकी अन्तिम उत्पत्ति-मुक्ति-शिव
 बन जाना है । वह जीव पूषाका योगा पदमता है, पूषाकी
 बनता है ।

अध्या—अब आचार-धर्म कहते हैं । (अथ यः सप्त
 मर्यादाः ततधुः) शान्तिधर्म सात मर्यादाएँ मानवके लिये
 निर्माण की हैं । १ चोरी, २ छुराकी मारपीट हाथ अस्त्रव्यवहार,
 ३ मद्रारवा, ४ मद्यपान, ५ पुनः पुनः इच्छामें करना, ६ कृतक
 भाषा और ७ उभे विषयोंके लिये अत्यन्त मोहक करव देना
 मर्यादा मर्यादाएँ तत्पश्चात् बनी हैं । शान्तिकर करने के
 लिये मर्यादाएँ बनी हैं — १ मद्यपान, २ चोरी, ३ छुराकी

असद्व्यवहार, ४ मृगया, ५ दण्ड (राजाको छोड़कर अन्योंने
 अपने हाथमें लेना), ६ कठोर व्यवहार करना, ७ दूसरोंको दुष्पण
 देते रहना । इस तरह ७ मर्यादाएँ मानवी आचारके लिये ज्ञानी
 पुष्योंने कही हैं । (तासां एकां इत् आभि अगात्,
 अंशुरः) इनमेंसे एक मर्यादाका भी जो उल्लंघन करता है
 वह पापी होता है । यह बात सबसे ध्यानमें आ सकनेवाली है ।
 जो इन सातों मर्यादाओंका उल्लंघन नहीं करता वह पुण्यात्मा
 होकर उच्चतम अवस्थामें विराजता है । पापीकी अधोगति
 होती है ।

(आयोः स्कम्भः) यह पुण्यात्मा मनुष्यत्वका आधार-
 स्तम्भ है । संपूर्ण मानवता इसपर रहती है । जहाँसि (पयां
 विसर्गे) अनेक मार्ग विभिन्न दिशाओंमें जाते हैं वह केन्द्र
 यही पुण्यात्मा है । इसका एकही धर्मपद है, इससे भिन्न भिन्न
 दिशाओंमें जानाही अधर्मके विभिन्न पथ हैं जो मनुष्यकी
 गिराते हैं । मध्य केन्द्रमें कोई मार्ग नहीं होता,
 मार्ग तो वहाँसि विरुद्ध दिशाओंमें मानवको ले जाते
 हैं । मध्य केन्द्रमें कोई मार्ग नहीं है, वहाँ मार्गदा होना भी
 संभव नहीं । वह स्थिर पद है जो केवल धर्मस्वरूपी है । धर्म
 स्तम्भ और उससे चलनेवाले विभिन्न मार्गोंका योग ।



वहाँ दिया है । इसके पता लिये । (अथ यः सप्त
 मर्यादाः ततधुः) शान्तिधर्म सात मर्यादाएँ मानवके लिये
 निर्माण की हैं । १ चोरी, २ छुराकी मारपीट हाथ अस्त्रव्यवहार,
 ३ मद्रारवा, ४ मद्यपान, ५ पुनः पुनः इच्छामें करना, ६ कृतक
 भाषा और ७ उभे विषयोंके लिये अत्यन्त मोहक करव देना
 मर्यादा मर्यादाएँ तत्पश्चात् बनी हैं । शान्तिकर करने के
 लिये मर्यादाएँ बनी हैं — १ मद्यपान, २ चोरी, ३ छुराकी

मं. २— यज्ञप्रवर्तक कभी न दबनेवाला तेजस्वी अग्नि दिव्य किरणोंसे चमकता है। जिस तरह बलवान घोड़ा पुउदौउमें दौड़ता है, भीचमें धकता नहीं, उसी तरह यह अग्नि अपने उपासककी सहायता करनेके लिये दौड़ता है, कभी पीछे नहीं हटता।

मं. ३— अग्निही सब यज्ञोंका अभिपति है, उपःकालमें होनेवाले हवनोंका भी यही स्वामी है। कोई शत्रु इस अग्नि-को परास्त नहीं कर सकते। इसीमें समस्त हवनीय द्रव्योंका हवन होता है।

मं. ४— यह अग्नि हविष्यद्रव्योंको लेता और स्तोत्रोंको सुनता है और देवोंमें जाकर विराजता है। यह स्तुत्य हवनकर्ता देवोंको बुलाकर लानेवाला पवित्र देव अग्नि सब देवोंको घृतयुक्त अन्न पहुंचाता है।

मं. ५— ज्वालाओंसे प्रदीप्त अग्निको इन्द्रके समान स्तुतियों और हवनोंसे संतुष्ट करो। सभी विद्वान् इस देवोंको बुलानेवाले शानी अग्निकी स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं ॥

मं. ६— जिस तरह घुड़स्वार युद्धभूमि इकट्ठे होते हैं, उस तरह जिसके पास सब धन इकट्ठे होते हैं। वह अग्नि हमें इन्द्रसे प्राप्त होनेवाले संरक्षणोंके समान उत्तम संरक्षण हमें देवे और हमें सुरक्षित रखे।

मं. ७— अग्नि अपने वेदीपर बैठकर अपने महत्त्वसे हवनके योग्य प्रदीप्त होता है। सब देव उसके पास पहुंचते हैं और उसीसे उत्तम संरक्षण सबको प्राप्त होते हैं।

मानव धर्म

इस तरह अग्निका वर्णन इस सूक्तमें है। इस सूक्तके कई वाक्यांश मानव धर्मका बोध कराते हैं उनको अब नीचे दैते हैं—

१ अवोभिः शर्मन् पृथते (मं. १) = उत्तम संरक्षणोंसे अपने स्थानमेंही उत्तम संवर्धन होता है। अर्थात् सुरक्षाकी शक्ति न रही तो वृद्धि नहीं होती।

२ विभावा ज्येष्ठेभिः भानुभिः पर्येति— तेजस्वी पुरुष श्रेष्ठ तेजोंसे तेजस्वी बनकर सर्वत्र जाता है, सबको अपने तेजसे प्रभावित करता है।

३ ऋतावा विभावा अजस्रः विमाति (मं. २) मरल, तेजस्वी और पराजित न होकर प्रकाशित होता है।

४ अपारिद्धतः सखिभ्यः सख्या आ विवाप— करनेके लिये न यकनेवाला और मित्रोंका दित करनेके लिये भावसे प्रयत्न करता है।

५ शूयैः अरिप्रयः आ स्कन्नाति (मं. ३) शत्रु अपराजित औरही सबको आधार दे सकता है। पराजित वाला आधार देनेमें कभी समर्थ नहीं है।

६ पृथः देवान् जिगाति (मं. ४) जो उन्नत होता वही देवोंको प्राप्त करता है। दिव्यता उसीको प्राप्त होती है।

७ उक्तां रेजमानं नमोभिः आ कृणुध्वम् (मं. ५) तेजसे चमकनेवालेको नमनपूर्वक अपने सामने आदर्श रखो।

८ चिप्रासः सहानां जुह्वं जातवेदसं मतिभिः कृणन्ति— जो ज्ञानी होते हैं वे बलिष्ठ वीरोंको इकट्ठे करते और उनको संगठित करते और ज्ञान प्रकाश करनेवालेकी सुदृढ़ प्रशंसा करते हैं।

९ यस्मिन् विश्वा वसूनि सं जग्मुः, ऊतीः मसं अवाचीनाः आ कृणुष्वं (मं. ६) जिसके पास सब प्रकारके धन हैं वही हमें सब प्रकारके संरक्षण देवे। जिसके पास सामर्थ्यही नहीं है वह क्या सहायता करेगा?

१० मह्ना जघानः हव्यः वभूथ (मं. ७) जो अपने महत्त्व प्रकट करता है वही प्रशंसनीय होता है। जिसके पास महत्त्व नहीं उसकी कौन प्रशंसा करेगा?

११ देवासः केतं अनु आयन्— दिव्य बिबुध ज्ञानके पास अवश्य पहुंचते हैं। ज्ञानीही देव कहलाते हैं।

१२ प्रथमासः ऊमाः अवर्धन्त— जो सबसे प्रथम अर्थात् उत्तम होता है, उसीसे सब प्रकारके संरक्षण प्राप्त होते हैं। जो स्वयं अधम होगा, वह किसीका भी संरक्षण नहीं कर सकता।

यहां पूर्वोक्त मंत्रोंसे सामान्य मानव धर्म किस तरह जान जाता है वह बताया है, ये वर्णन अग्निकेही हैं, वे पृथक् वाक्योंमें पढ़नेसे वेही मानव धर्मको बताते हैं। कहीं कहीं क्रिया आदिके रूपमें अल्प परिवर्तन करना आवश्यक होता है, यह सहजहीसे पाठकोंके समझमें आ सकता है।

(ऋ. १०७) त्रित आप्यः । जग्निः । त्रिष्टुप् ।

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
 सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुह्य्या ण उरुभिर्देव शंसैः
 इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
 यदा ते मर्तो अनु भोगमानइवसो दधानो मतिभिः सुजात
 अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
 अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य
 सिन्ध्वा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
 ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुषुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु
 द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
 बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विधु होतारं न्यसादयन्त

१

२

३

४

५

अन्वयः— १ हे देव अग्ने ! दिवः पृथिव्याः नः विश्वायुः
 स्वस्ति यजथाय धेहि । सचेमहि । हे दस्म देव । उरुभिः
 शंसैः तव प्रकेतैः नः उरुह्य्य ॥

२ हे अग्ने ! इमाः मतयः तुभ्यं जाताः । गोभिः अश्वैः
 राधः अभि गृणन्ति । यदा मर्तः ते भोगं अनु भानद् । हे
 वसो सुजात ! मतिभिः दधानः ॥

३ (अहं) अग्निं पितरं, अग्निं आपिं, अग्निं, भ्रातरं,
 सत्त्वं इव सखायं मन्ये । बृहतः अग्नेः अनीकं सपर्यं । दिवि
 यजतं सूर्यस्य शुक्रम् ॥

४ हे अग्ने ! सनुत्रीः अस्मे धियः सिन्ध्वाः । दमे आ नित्य-
 होता, ये त्रायसे सः ऋतावा रोहिदश्वः पुरुषुः । अस्मै
 द्युभिः अहभिः वामं अस्तु ॥

५ द्युभिः हितं मित्रं इव प्रयोगं प्रत्नं मृत्विजं अध्वरस्य
 जारं अभि आप्यः बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त । विधु होतारं
 न्यसादयन्त ॥

अर्थ— १ हे अग्निदेव ! दुलोक और पृथ्वीलोकसे
 हमारे लिये संपूर्ण आयु और कल्याण (तथा सब प्रकारका
 अन्न) यत्न करनेके लिये दे दीजिये । (इससे हम तुम्हारी)
 सेवा करेंगे । हे दर्शनीय देव ! तुम्हारे बहुत प्रशंसनीय ऐसे
 ज्ञानोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥

२ हे अग्ने ! ये हमारी बुद्धियां तुम्हारे लिये दी हैं । ये
 गावों और घोडोंके साथ रहनेवाले धनकी प्रशंसा करते हैं ।
 जब मनुष्य तुम्हारेसे भोग प्राप्त करता है । हे अग्निनाल
 अग्ने ! (हमारी) बुद्धियोंसे (तुम्हारीसे प्रशंसा) पारन
 होता है ॥

३ मैं अग्निको पिता, आन, भाई और यश साथ रहने-
 वाला मित्र मानता हूँ । बड़े अग्निसे कुछ धानपान (मेष, बल)
 का हम वस्त्र कर ले हैं । जैसा दुःकर्म पवनवीर्य मूर्खके मुख
 प्रशंसाका संस्कार होता है ॥

४ हे अग्ने ! स्तुति करनेवाली हमारी बुद्धियों सिद्ध हैं ।
 धरमे लिये हम सब अग्निवाला मृत्विजके मुखसे करता है । वह
 सत्यता, अबुद्ध और अहङ्कार होता है । इसके लिये हम
 शान्तिसे और धन प्राप्त हो ॥

५ अग्निदेव ! हमने अग्निसे पितृकारक, भयके समान भय-
 मक, प्रशंसित, मित्रमिव, अहंकारके समान अग्निदेवसे अग्निदेव
 मक, मृत्विजके मुखसे अन्न प्राप्त करने हैं और अध्वर्यु
 देवके मुखसे मेष, बल, यश प्राप्त करने हैं ॥

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
 यथाऽयज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात
 भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
 रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वोऽप्रयुच्छन्

६ हे देव ! दिवि देवान् स्वयं यजस्व । पाकः अप्रचेताः
 ते किं कृणवन् । हे देव ! ऋतुभिः देवान् यथा अयजः । एव
 हे सुजात ! तन्वं यजस्व ॥

७ हे अग्ने ! नः अवितो भव । उत गोपाः । उत वय-
 स्कृन् वयोधाः भव । हे सुमहः । हव्यदातिं नः रास्व च ।
 उत नः तन्वः अप्रयुच्छन् त्रास्व ॥

६ हे देव ! तुलोकमें देवोंका स्वयं यजन कर । पूर्ण होने
 अज्ञानी तैरा क्या करेगा ? हे देव ! ऋतुके अनुसार
 देवोंका यजन करता है वैसाही ऋतुके अनुसार अपने
 भी यजन कर ॥

७ हे अग्ने ! हमारी सुरक्षा करनेवाला हो । और अपने
 वाला हो । और आयु बढ़ानेवाला और अन्न देनेवाला हो
 हे पूज्य अग्ने ! हविष्यान्न हमें दो । और हमारे
 विना प्रमाद किये सुरक्षित रखो ॥

मानव धर्मका संदेश

इस सूक्तमें जो मानव धर्मका संदेश दिया है वह अब
 हम नीचे देते हैं—

१ नः विश्वायुः स्वस्ति यजथाय धेहि (मं. १)—हमें
 पूर्ण आयु चाहिये और सुखसे रहनेकी परिस्थिति भी चाहिये,
 क्योंकि इनसे हम जीवनभर यज्ञीय आयु विताना चाहते हैं ।
 मनुष्य दीर्घ आयु बनें, सुखसे रहें और जीवनभर सब जनोके
 हितार्थ शुभ कर्म करें ।

२ उरुभिः शंसैः प्रकेतैः उरुष्य—बहुत बड़े प्रशंसा-
 नीय ज्ञान और विज्ञानसे सुरक्षा प्राप्त करें ।

३ मतयः गोभिः अश्वैः राघः अभि गृणन्ति (मं. २)
 जो धन गायों और अश्वोंके साथ रहता है, उसकी प्रशंसा सब
 बुद्धियाँ करती हैं । घरमें गौँ, घोड़े और सब प्रकारका धन
 रहे ।

४ मर्तः मतिभिः दधानः भोगं अनु आनद्—मनुष्य
 अपनी बुद्धियोंसे (उन धनोंका धारण करता है और उनका)
 भोग प्राप्त करता है । धनका उपयोग सदबुद्धिसे करे और
 धर्मानुकूल भोग भोगे ।

५ अग्निं पितरं आपिं भ्रातरं सखायं मन्ये (मं. ३)
 तेजस्वी प्रमुक्तो मैं पिता, आत्मा, भाई और मित्र मानता हूँ ।

६ बृहतः अनीकं सपर्यं । — बड़े वीरके अनेक
 सत्कार करना योग्य है ।

७ धियः सिन्धः (मं. ४)—हमारी बुद्धियाँ निश्चित
 जानेवाली हों । कोई मनुष्य शुभ कर्मको बीचमेंही न करे ।

८ दमे यं प्रायसे सः क्रतावा रोहिदश्च पुरुषः
 घरमें जो सुरक्षित होता है वह सत्कर्म करता, घोड़ोंके रक्षण
 और बहुत अन्न प्राप्त करता है । प्रजाकी सुरक्षा होगी तो वह
 प्रजा अनेक कर्म करके धनधान्य प्राप्त कर सकते हैं ।

९ असौ द्युभिः अहोभिः कामं अस्तु—हमें श्री-
 दिन उत्तम प्रशंसनीय धन मिले ।

१० हितं प्रत्नं मित्रं अध्वरस्य जारं आभवा
 अजनन्त (मं. ५)—हित करनेवाला पुराना मित्र, जो
 अर्द्धसक कर्म करता है, उसीको मनुष्य प्रकट रूपसे स्तुति
 करते हैं ।

११ होतारं विश्वं न्यसादयन्त—दाताको प्रजाओंमें
 (मुख्य स्थानपर) रखते हैं ।

१२ अप्रचेताः पाकः किं कृणवन् (मं. ६)—अज्ञानी
 और अपरिपक्व (इस जगत्में) क्या कर सकेगा ?

१३ ऋतुभिः देवान् अयजः, तन्वं यजस्व—
 ऋतुओंके अनुकूल विषुवोंका सत्कार कर, तथा अपने शरीर
 भी सुरक्षा कर ।

नः अविता, गोपाः, वयस्कृत्, वयोधाः भव
= हमारा संरक्षक, पालक, दीर्घायु देनेवाला, अन्न
दाता ।

नः तन्वः अप्रयुच्छन् रास्व— हमारे शरीरोंको
न करते हुए सुरक्षित रखो ।

मंत्र भागोंका मनन करनेसे अनेक प्रकारके मानव-धर्मोंके
विदित हो सकते हैं । मंत्रों या सूक्तोंसे देवता वर्णनके
सा सामान्य पद हैं उनका मनन करनेसे मानव धर्म सिद्ध
हैं । 'जैसा देव करते हैं वैसा मनुष्य करे' यह नियम है
(अर्जुनस्तत्कारवाणि) । अतः देवोंके गुण मनुष्य धर्मके
होते हैं । इस तरह वेदमूलकही सब स्मृतियों सिद्ध
हैं । देवोंके गुण मनुष्य अपनेमें धारण करे और उग्रत
हुआ देव बने, नरका नारायण हो, यह वेद धर्मका उक्त-
माग्य है । जो पढ़ने मंत्रोंका मनन इस तरह कर सकते
हो वेद धर्मका गुण तत्त्व जान सकते हैं ।



त्रित ऋषिका आदर्श पुरुष

त्रित ऋषिने जिस वर्णनीय आदर्श पुरुषको अपने कल्पमें
नीय रूपसे प्रकट किया वह आदर्श पुरुष यह है ।— अयम
र्षोः पुत्रमे प्रबल इच्छा-शक्ति रहनी चाहिये । क्योंकि इच्छा-
शक्ति ही सब श्रेष्ठ कर्म होते हैं और इच्छाही नहीं हुई तो
भी नहीं बन सकता । प्रतिदिनके कार्य सिद्धिके प्रति
वृत्ति है वे इच्छाशक्तिकेही बलसे पहुंचते हैं—

इच्छाशक्तिका बल

इच्छाशक्तिके बलके विषयमें निम्न स्थानमें दर्शाये मन्त्रभाग
चार करनेयोग्य हैं—

१ अर्थिनः अर्थ इत् वै (पुत्रते) [ऋ. १।१०।५।२] =
अर्थी प्राप्तिको इच्छा करनेवालेही अपने अर्थके साथ संतुल
रहित हैं अर्थात् इच्छा करनेसे प्रयत्न होता है और पश्चात्
प्राप्ति प्राप्त होती है । इच्छाही न हो तो सिद्धिके आशा
करना व्यर्थ है ।

जाया पतिं वा पुत्रते= जो पतिको इच्छा करती
और उसे प्राप्त करती है । वे दोनोंपुत्रको इच्छा करते हैं और
(वृष्णं पयः तुजाते) बलवर्धक दूधको प्रेरित करते हैं,
अर्थात् गर्भाधान करते हैं । (रत्नं परिदाय दुहे) रत्नको

वीर्यका दान करते पुत्रको उत्पन्न करने अथवा दौड़ने करते हैं । यह
सब पति और पत्नीको इच्छाशक्तिका फल है ।

विवाह करना, पुत्र उत्पन्न करना, धन प्राप्त करना आदि
कार्य भी इच्छाशक्तिकेही सकल और सुकल होते हैं । इस-
तरह इससे भी महान् महान् कार्य इसी शक्तिके होते हैं, इस-
लिये अपनी इच्छाशक्ति बलवती और सम्प्रवृत्त बनानी चाहिये ।
आदर्श पुरुष सम्प्रवृत्त और उत्साहमयी इच्छाशक्तिके संपन्न
होना चाहिये ।

बहुपत्नी करनेका निषेध

त्रित ऋषि बहुपत्तियों करनेको तुरीतिका निषेध करता
है देखो—

सपत्नाः पशव इव मा अभितः सं तपन्ति ।
(ऋ. १।१०।५।८) = चारों ओरसे ऊलहाड़े जैसे काटने लगते
हैं, वैसी सपत्नियाँ मुझे कष्ट देती हैं । अर्थात् आदर्श पुरुष
बहुपत्नीयों न करे । एकपत्नी व्रत आदर्श व्रत है ।

अनेक पत्तियों करनेसे घरमें अनेक प्रकारके कलह होते हैं
और सबको क्लेश होते हैं । राजा दशरथके घरमें कैकेयीके
कारण कैसा वैरभाव उत्पन्न हुआ, और उसका परिणाम कितना
भयानक हुआ, यह सबको विदितही है । इसलिये एकपत्नी व्रत
पालन करना योग्य है ।

दुष्ट बुद्धियोंका निग्रह

दुर्जनोका दमन करनेसे समाजमें सुख और शान्ति स्थानित
हो सकती है इसलिये कहा है—

दूढ्यः अति क्रामेय (ऋ. १।१०।५।९) = दुष्टबुद्धि-
वालोंका अतिक्रमण करना चाहिये । उनको पीछे हटाकर आगे
बढ़ना चाहिये । उनको आगे बढ़ने नहीं देना चाहिये । यही
उनका निग्रह करना है । आदर्श पुरुष यह करे ।

दुर्जनोका निर्दालन करना और सज्जनोंका पालन करना
चाहिये । यही आदर्श राज्यशासन है । आदर्श पुरुष
ऐसाही करते रहते हैं ।

उन्नतिका पथ

समाजको उन्नति जिस नियमसे होती है इसका विचार निम्न-
लिखित मन्त्रभागोंद्वारा बताया है—

१. क्रतस्य घर्णांसि= सत्यका धारण करना,

२. वरुणस्य चक्षुषं= श्रेष्ठके निरीक्षणमें कार्य करना और

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृण्वदप्रचेताः ।
 यथाऽयज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात
 भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
 रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वोऽप्रयुच्छन्

६ हे देव ! दिवि देवान् स्वयं यजस्व । पाकः अप्रचेताः
 ते किं कृण्वन् । हे देव ! ऋतुभिः देवान् यथा अयजः । एव
 हे सुजात ! तन्वं यजस्व ॥

७ हे अग्ने ! नः अविता भव । उत गोपाः । उत वय-
 स्कृत् वयोधाः भव । हे सुमहः । हव्यदातिं नः रास्व च ।
 उत नः तन्वः अप्रयुच्छन् त्रास्व ॥

६ हे देव ! तुल्यो हमें देवोंका स्वयं यजन कर । पूर्ण होने
 अज्ञानी तैसा क्या करेगा ? हे देव ! ऋतुके अनुसार
 देवोंका यजन करता है वैसाही ऋतुके अनुसार अपने यजन
 भी यजन कर ॥

७ हे अग्ने ! हमारी सुरक्षा करनेवाला हो । और अपने
 गोपा हो । और आयु बढ़ानेवाला और अन्न देवत्व के
 हे पूज्य अग्ने ! हविष्यान्न हमें दो । और हमारे यजन
 विना प्रमाद किये सुरक्षित रखो ॥

मानव धर्मका संदेश

इस सूक्तमें जो मानव धर्मका संदेश दिया है वह अब
 हम नीचे देते हैं—

१ नः विश्वायुः स्वस्ति यजथाय धेहि (मं. १)—हमें
 पूर्ण आयु चाहिये और सुखसे रहनेकी परिस्थिति भी चाहिये,
 क्योंकि इनसे हम जीवनभर यज्ञीय आयु विताना चाहते हैं ।
 मनुष्य दीर्घ आयु वनें, सुखसे रहें और जीवनभर सब जनोके
 हितार्थ शुभ कर्म करें ।

२ उरुभिः शंसैः प्रकेतैः उरुष्य—बहुत बड़े प्रशंसा-
 नीय ज्ञान और विज्ञानसे सुरक्षा प्राप्त करें ।

३ मतयः गोभिः अश्वैः राघः अभि गृणन्ति (मं. २)
 जो धन गायों और अश्वोंके साथ रहता है, उसकी प्रशंसा सब
 बुद्धियाँ करती हैं । घरमें गौबें, घोड़े और सब प्रकारका धन
 रहे ।

४ मर्तः मतिभिः दधानः भोगं अनु आनत्—मनुष्य
 अपनी बुद्धियोंसे (उन धनोंका धारण करता है और उनका)
 भोग प्राप्त करता है । धनका उपयोग सद्वुद्धिसे करे और
 धर्मानुकूल भोग भोगे ।

५ अग्निं पितरं आपिं धातरं सखायं मन्ये (मं. ३)
 तेजस्वी प्रभुको मैं पिता, आत्मा, माई और मित्र मानता हूँ ।

६ वृहतः अनीकं सपर्ये । — बड़े बोरके सत्कार
 सत्कार करना योग्य है ।

७ धियः सिन्ध्राः (मं. ४)—हमारी बुद्धियाँ स्थिर
 जानेवाली हों । कोई मनुष्य शुभ कर्मको बीचमेंही न डेरे ।

८ दमे यं त्रायसे सः क्रतावा रोहिदम्भः पुष्क-
 घरमें जो सुरक्षित होता है वह सत्कर्म करता, घोड़ोंके रज
 और बहुत अन्न प्राप्त करता है । प्रजाकी सुरक्षा होगी तो
 प्रजा अनेक कर्म करके धनधान्य प्राप्त कर सकेगी ।

९ अस्यै धुभिः अहोभिः कामं अस्तु—हमें श्रे-
 दिन उत्तम प्रशंसानीय धन मिले ।

१० हितं प्रत्नं मित्रं अध्वरस्य जारं आभ-
 अजनन्त (मं. ५)—हित करनेवाला पुरातन मित्र, के
 अहिंसक कर्म करता है, उसीको मनुष्य प्रकट रूपसे सांका
 करते हैं ।

११ होतारं विश्व न्यसादयन्त—दाताको प्रजापति
 (मुख्य स्थानपर) रखते हैं ।

१२ अप्रचेताः पाकः किं कृण्वन् (मं. ६)—अज्ञानी
 और अपरिपक्व (इस जगत्में) क्या कर सकेगा ?

१३ ऋतुभिः देवान् अयजः, तन्वं यजस्व—
 ऋतुओंके अनुकूल विधियोंका सत्कार कर, तथा अपने यजन
 भी सुरक्षा कर ।

१४ नः भविता, गोपाः, वयस्कृत्, वयोधाः भव
मं. ७) - हमारा संरक्षक, पालक, दीर्घायु देनेवाला, अन्न
देनेवाला हो।

१५ नः तत्त्वः अप्रयुच्छन् रास्व - हमारे शरीरोंको
माद न करते हुए सुरक्षित रखो।

इन मंत्र भागोंका मनन करनेसे अनेक प्रकारके मानव-धर्मोंके
नियम विदित हो सकते हैं। मंत्रों या सूक्तोंसे देवता वर्णनके
तो जो सामान्य पद हैं उनका मनन करनेसे मानव धर्म सिद्ध
होता है। 'जैसा देव करते हैं वैसा मनुष्य करें' यह नियम है
(यद्देवा अकुर्वन्स्तत्करवाणि)। अतः देवोंके गुण मनुष्य धर्मके
संशोधक होते हैं। इस तरह वेदमूलकही सब स्मृतियाँ सिद्ध
होती हैं। देवोंके गुण मनुष्य अपनेमें धारण करे और उन्नत
होता हुआ देव बने, नरका नारायण हो, यह वेद धर्मका उच्चा-
वृत्ति मार्ग है। जो पाठक मंत्रोंका मनन इस तरह कर सकते
हैं, वेही वेद धर्मका गुह्य तत्त्व जान सकते हैं।



त्रित ऋषिका आदर्श पुरुष

त्रित ऋषिने जिस वर्णनीय आदर्श पुरुषको अपने काव्यमें
वर्णनीय रूपसे प्रकट किया वह आदर्श पुरुष यह है। - प्रथम
आदर्श पुरुषमें प्रबल इच्छा-शक्ति रहनी चाहिये। यौगिक इच्छा-
शक्तिकेही सब श्रेष्ठ कर्म होते हैं और इच्छाही नहीं हुई तो
कुछ भी नहीं बन सकता। प्रतिदिनके कार्य सिद्धिके प्रति
पहुँचते हैं वे इच्छाशक्तिकेही बलसे पहुँचते हैं -

इच्छाशक्तिका बल

इच्छाशक्तिके बलके विषयमें निम्न स्थानमें दर्शाये मन्त्रभाग
विचार करनेयोग्य हैं -

१ अर्थिनः अर्थे इत् वै (पुनन्ते) [ऋ. १।१०५।२] =
अर्थको प्राप्तकी इच्छा करनेवालेही अपने अर्थके साथ संतुष्ट
होते हैं अर्थात् इच्छा करनेसे प्रसन्न होता है और पचास
शिखि प्राप्त होती है। इच्छाही न हो तो शिखि प्राप्त
करना अर्थ है।

आया पति आ युवते = जो पत्नीको इच्छा करने
और उसे प्राप्त करता है। वे दोनों पुत्रका इच्छा करते हैं और
(पुष्पं पयः पुञ्जाते) बलवर्धक दूधको मिल करके पका-
वर्ताना गर्भाधान करते हैं। (रस्सं परिशय उदेति) रस

वीर्यका दान करके पुत्रका उत्पादन अथवा दोहन करते हैं। यह
सब पति और पत्नीको इच्छाशक्तिका बल है।

विवाह करना, पुत्र उत्पन्न करना, धन प्राप्त करना आदि
कार्य भी इच्छाशक्तिकेही सफल और सुकल होते हैं। इसे
तरह इससे भी महान् महान् कार्य इसी शक्तिसे होते हैं, इस-
लिये अपनी इच्छाशक्ति बलवती और संप्रवृत्त बनाना चाहिये।
आदर्श पुरुष संप्रवृत्त और उत्साहमयी इच्छाशक्तिके संवदन
होना चाहिये।

बहुपत्नी करनेका निषेध

त्रित ऋषि बहुपत्नियों करनेकी कुरीतिका निषेध करना
है देखो -

सपत्नोः पश्य इव ना अभितः सं तपन्ति ।
(ऋ. १।१०५।८) = चारों ओरसे ऊँहाडि जैसे काटने लगते
हैं, वैसी सपत्नियाँ सुते कष्ट देती हैं। अर्थात् आदर्श पुनर
बहुपत्नीयों न करे। एकपत्नी मत आदर्श जन है।

अनेक पत्नियों करनेसे घरमें अनेक प्रकारके झगड़ होते हैं
और सबको क्रोधा होते हैं। राजा इसलिये घरमें किसीको
कारण क्रोधा वैरभाव उत्पन्न हुआ, और उसका परिणाम विपत्ति
अन्यक्त हुआ, यह सबको विदित है। इसलिये एकपत्नी मत
पालन करना योग्य है।

दुष्ट बुद्धियोंका निग्रह

दुर्जनता दमन करनेमें मन्त्रमें पुनर और शक्ति का उल्लेख
हो सकता है इसलिये पढ़ाई -

दुष्टः अति कामिन् (ऋ. १।१०५।१०) = दुष्ट का
बलकी अतिमानन करने वाला दुष्ट का मन ही दुष्ट का मन
बढ़ता चले। दुष्टको अति मानने न करना चाहिये। दुष्ट
उपको नम्र करना है। - इसी उद्देश्य से।

दुर्जनता निरोधित करके और दमन का कार्य करना
चाहिये। दुष्ट आदर्श का उल्लंघन है। आदर्श पुनर
दुष्ट करने नहीं दे।

उन्नतिको रस

उन्नतिको रस - उन्नतिको रस है इच्छाशक्ति का रस।
उन्नति का रस ही उन्नति का रस है -

१. उन्नतिको रस - उन्नतिको रस है इच्छाशक्ति का रस।
२. उन्नतिको रस - उन्नतिको रस है इच्छाशक्ति का रस।

३. अर्यम्णाः पथा (गमनं)- अर्यमनके योग्य मार्गसे गमन करना।

ये मार्ग उन्नतिके लिये आवश्यक हैं। आदर्श पुरुष यही मार्ग अपने आचरणमें लाता है।

मानवोंकी उन्नति करना बड़ा कठिन कार्य है। उसका आधार सत्य-पालन है, सत्पुरुषोंके निरीक्षणमें रहना और आर्यधर्मके अनुसार चलना उसके लिये अत्यंत आवश्यक है। जो ऐसे व्रतसे चलेगे वेही आदर्श पुरुष हो सकते हैं।

विद्या-व्यासङ्ग

मनुष्य ज्ञानी पुरुषका आश्रय करे, ज्ञान प्राप्त करे और सबका आदर्श हो उनका मार्गदर्शक बने, इस विषयमें ऋ. १।१०।५ का १७ वाँ मन्त्र अच्छा मार्गदर्शन करता है—

१ कूपे अवहितः त्रितः ऊतये देवान् हवते । तत्
वृहस्पतिः शुभ्राव । अहूणात् उरु कृण्वन् ।
(ऋ. १।१०।१७) परतंत्रताकी गतमें त्रित ऋषि पडा था, उसने अपने उद्धारके लिये देवोंसे सहायताकी प्रार्थना की, वृहस्पति- ज्ञानदेवने वह प्रार्थना सुनी और पापपूर्ण परतंत्रताकी गतसे उसको निकालनेके लिये बड़ा विस्तृत ज्ञानका मार्ग बताया, जिससे त्रित बाहर आया और स्वतंत्र हुआ।

विद्याका महत्त्व इस तरह त्रित ऋषि अपने अनुभवसे वर्णन कर रहा है। ज्ञानी पुरुषको गुरु करके अज्ञानमें पड़े अज्ञानी अपनी सुल्लिखी, स्वतंत्रताका मार्ग जान सकते हैं। इस तरह विद्याका महत्त्व यही बताया है।

२ नमसा निर्जगन्वान् । (ऋ. १०।१।१)- अज्ञान अन्धकारसे दूर होना चाहिये। तमस् अज्ञानका वाचक है। अन्धकारमें योग्य मार्ग दीखता नहीं वह अन्धकार हटनेपर दीखता है।

३ ज्योतिषा आ अगान् । (ऋ. १०।१।१)- प्रकाश-रूप ज्ञानके साथ, अर्थात् ज्ञानी बनकर प्रकट होना चाहिये। ज्ञानके मार्गसे अग्नि बढ़ना चाहिये, प्रगति करनी चाहिये। ज्ञान-ही उत्कर्षका सहायक है।

४ दधता भानुना विश्वा सयानि आ अग्राः ।
(ऋ. १०।१।१)- देवस्वी ज्ञानके प्रकाशसे सभी वना-स्थान मनमूर पड़ानेवाले हैं। सनातनोंमें व्याख्यान-प्रवचनद्वारा ऐसे

ज्ञानका प्रकाश करो कि जिससे वहाँके सब सदस्य हमसे और अपना अभ्युदय करनेमें सिद्ध हो जाय।

५ विद्वान् वृहन् जातः । (१०।१।३)- बड़ा ज्ञानी होना चाहिये। ऐसाही बड़ा भारी ज्ञानी सबका दर्शक अग्रणी होता है।

६ विद्वान् विश्वं पृणाति । (ऋ. १०।१।४)- विद्वान् ही सब प्रकारका कर्तव्य योग्य रीतिसे करता है।

७ विजानन् कृतुवित् याजिष्ठः । (ऋ. १०।१।५)- ज्ञानीही कर्म करनेकी विधि जान सकता है और कुशलतापूर्वक कर्म करके भी दिखा सकता है। ज्ञानसेही यह सिद्ध होता है। ज्ञानसेही कर्ममें कुशलता प्राप्त होती है।

८ पन्थां अनु प्रविद्वान् विभाहि । (ऋ. १०।१।६)- मार्गका जानेवाला बनकर प्रकाशित हो। अर्थात् जो मार्गमें जानकार है वही उस मार्गमें सहायकारी हो सकता है। वही मार्गके आक्रमण करनेमें सहायक होता है।

९ चिकित् विभाति । (ऋ. १०।१।७)- ज्ञानीकी प्रकाशता है, अर्थात् ज्ञानका प्रकाश सबसे अधिक है।

१० चिकित्वः अमूढः । (ऋ. १०।१।८)- ज्ञानीकी ही मूढता दूर होती है। ज्ञानी मूढ नहीं होता है। ज्ञानमें मूढत्व दूर होता है।

११ ब्रह्मवर्धनीः भूत् । (ऋ. १०।१।९)- ज्ञानीकी सबकी उन्नति करनेवाला होता है। ज्ञानसेही सब साक्षियोंका संवर्धन होता है।

१२ देवास्तः केतं अनु आयन् । (ऋ. १०।१।१०)- दिव्य विबुध ज्ञानके मार्गकाही अनुसरण करते हैं।

ज्ञान प्राप्त करना, अज्ञानसे मुक्त होना, घरपरमें ज्ञान प्रसार करना, इससे राष्ट्रकी उन्नति होती है। जो ज्ञानी होता है वही कर्तव्य और अकर्तव्य जानता है और योग्य धर्मपूर्ण योग्य कर्तव्य करके, अपना और राष्ट्रका नेता बनकर उन्नति करता है। यही आदर्श पुरुष है।

गूरता, वीरता और युद्धसिद्धता

वीरताके विषयमें त्रित ऋषिके निर्देश अत्यंत स्पष्ट है देखिये—

१ वयं सर्ववीराः वृजने अभिष्याम ।

(ऋ. १।१०।५।१२)

हम सब सब प्रकारसे शूर वीर धीर और युद्धनिपुण बनकर युद्धमें शत्रुके सम्मुख खड़े रहेंगे और शत्रुको परास्त करेंगे । शत्रुका पराभव करनेयोग्य जो समर्थ बनता है वही आदर्श वीर कहलाता है ।

२ अद्य वयं अनागतः लभूम, अजैष्म, असनाम ।

(ऋ. ८।४।७।८)— आज हम सब निर्दोष बनेंगे, विजयी होंगे और धन प्राप्त करेंगे । विजयी होनेके पूर्व अपने अन्दरके सब दोष दूर करने चाहिये, समाजके दोष दूर हुए तोही वह सामर्थ्यवान बनता है और विजयी होता है और विजयी होनेसे ही सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है ।

३ द्रुहः अभि रक्षथ । (ऋ. ८।४।७।९)— द्रोहकारी शत्रुओंसे सुरक्षा करो । अर्थात् द्रोहकर्ताओंको दूर करो ।

४ वमंसु युध्यन्तः । (ऋ. ८।४।७।८)— कवच धारण करके युद्ध करो जिससे वीर सुरक्षित रहेंगे और वे शत्रुका पराभव कर सकेंगे ।

५ शर्म, भद्रं, अनातुरं, वरुध्यं, त्रिधातु अस्मासु वि यन्तन । (ऋ. ८।४।७।१०)— सुख, कल्याण, नीरोगिता और सुरक्षितता करनेवाली तीन धारक शक्तियाँ हमें प्राप्त हों । शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ये तीन शक्ति सबल हुई तो उनसे यह सब प्राप्त हो सकता है ।

६ दक्षाय आ द्दक्षि । (ऋ. १०।३।१)— बल बढ़ानेके लिये वह अपने राष्ट्रमें चारों ओर निरीक्षण करता है ।

७ अवोभिः शर्म पथते । (ऋ. १०।६।१)— संरक्षण देनेवाली प्रजाका सुख बढ़ता है । स्वल्प और शूरतासे वह संरक्षण होता है ।

८ शूषैः अरिष्टरथः आस्कन्नाति । (ऋ. १०।६।२)—

शत्रुओंसे अपराजित वीरही सबकी सुरक्षा देकर आधार या आश्रय देता है ।

९ विप्रासः सहानां जुहं मतिभिः आ गृणन्ति ।

(ऋ. १०।६।५)— ज्ञानी लोग बलिष्ठ वीरोंकी संघटना करते हैं और उनकी विचारपूर्वक प्रशंसा करते हैं ।

१० ऊतीः जस्मे अवाचीनाः आकृणुष्व ।

(ऋ. १०।६।६)— सब प्रकारके संरक्षण हमारे पास सुसज्ज स्थितिमें रहें ।

११ ऊमाः अवर्धन्त, प्रथमासः । (ऋ. १०।६।७)—

जो अपनी संरक्षक शक्तियोंका संवर्धन करते हैं वेही प्रथम बंदनोप नेता होते हैं ।

१२ वृद्धतः अनीकं सपर्य । (ऋ. १०।७।१)— बड़े वीरोंके सेनाबलका सत्कार करना योग्य है ।

राष्ट्रके कल्याण करनेमें दुष्टोंको दूर करनेका कार्य प्रमुख स्थान रखता है । सज्जनोंका परिचाय और दुष्टोंका नाश करना आवश्यक है । यही ईश्वरके कर्तव्य है शूरता, वीरता, धीरता आदिसे यह हो सकता है । इसीलिये आर्य पुरुषमें ये गुण गुण होने चाहिये ।

इस तरह त्रित ऋषिके बतये और वर्णनादिये आर्य पुरुषमें ये सब गुण होने चाहिये । इन गुणोंका विचार करके पाठक और भी अधिक गुणोंकी गणना कर सकते हैं । देवता वर्णनके प्रसंगमें जो जो गुण गुण वर्णन दिये गये हैं, वे सब लक्ष्य मानवमें रहनेयोग्य हैं । ये गुण जहाँ होंगे वहाँ आर्य पुरुष होगा । इसी तरह वेद अनुशासिकादि सबमें आर्य पुरुषकी रक्षता है, मनुष्य उसे देखे, जाने और सेवा करनेका दायर है ।



त्रित ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

| विषय | पृष्ठाङ्क | विषय |
|--|-----------|--|
| त्रित ऋषिका तत्त्वज्ञान | ३ | पृथ्वी-स्थानमें, अन्तरिक्ष-स्थानमें, द्यु-स्थानमें |
| विभावसुका पुत्र त्रित, त्रितकी ब्रियाँ | " | इच्छा करनेके प्राप्ति |
| देवोंमें त्रितकी गणना, त्रितके समान इन्द्रका शौर्य | " | हमारी अवनति न हो, पूर्व और नूतनका मेल |
| लडनेवाला वीर त्रित | " | सत्य और अनृतका स्वरूप जानो |
| शस्त्र तीक्ष्ण करनेवाला त्रित | " | हमारा ध्येय, मानसिक अशान्तिका दूर करना |
| त्रितका युद्ध करना, शत्रुभेदक त्रित | ४ | विश्व-कुटुंबका भाव, हितकारी स्तोत्र |
| घृत्रकी काटनेवाला त्रित, वराहवध करनेवाला त्रित | " | सज्जनोंकी संगतिमें रहे |
| त्रितके पास अनेकोंका आना | " | ज्ञानीके मार्गदर्शनमें रहे |
| अश्वही त्रित है, त्रितने घोड़ेको सजाया | ५ | [२] आदित्य-प्रकरण |
| त्रितकी सामुदायिक स्तुति | " | विजय, लाभ और निष्पापीपन प्राप्त करना |
| त्रित प्रार्थना करता है | " | (ऋ० अष्टम मण्डल) |
| प्रजाओंमें जानेवाला त्रित, कण्व-होता त्रित | ६ | विजयी बनना, लाभ प्राप्त करना और निष्पाप होना |
| इन्द्रके साथ सोमपान करनेवाला त्रित | " | [३] सोम-प्रकरण |
| त्रित सोमको स्वच्छ करता है | " | (ऋ० नवम मण्डल) |
| त्रितकी छननीपर सोम | " | सोमरसका पान |
| त्रितका सोमरसमें जल मिलाना | ७ | (१) सोमकी धोकर स्वच्छ करना |
| त्रितके यशमें इन्द्र, त्रितका सख्य | " | (२) कूटकूटकर रस निकालना |
| त्रितको कूपेसे ऊपर निकाला | " | (३) सोमरसको छानना |
| त्रितके लिए अर्घुदका वध, त्रितका यश बढ़ाया | " | (४) सोमरसमें दूध आदिका मिलाना |
| त्रितको धन-प्राप्ति | " | [४] अग्नि-प्रकरण |
| त्रितके लिए गौयें दीं, त्रितमें खन | ८ | (ऋ० दशम मण्डल) |
| त्रितमें पाप, त्रित सूर्य | " | आदर्श यशस्वी तप |
| त्रित = गर्जना करनेवाला मेघ | " | युवाके कर्तव्य |
| त्रितके मंत्रोंकी क्रमवार गणना | " | तप राजाके कर्तव्य |
| (ऋग्वेद प्रथम, अष्टम, नवम, दशम मण्डल) | " | राजाके कर्तव्य |
| त्रितके मंत्रोंकी देवतावार गणना | ९ | सत्य तत्त्वका ज्ञान |
| " " इन्द्रवार गणना | " | अग्निका वर्णन |
| त्रित ऋषिका दर्शन | ११ | मानव धर्म |
| (प्रथम मण्डल, १२ वीं अनुवाक) | " | मानव धर्मका संदेश |
| [१] अश्वे देव-... | " | त्रित ऋषिका आदर्श पुत्र |
| ... | " | इच्छा-शक्तिका बल, बहुपत्नी करनेका विषय |
| ... | " | बौद्धा निग्रह, उत्कृष्टिका पय |
| ... | १४ | शूरता, वीरता और युद्ध-विद्वत्ता |

